Comparative Politics and Government

DPOL202

LOVELY
PROFESSIONAL
UNIVERSITY

तुलनात्मक राजनीति और सरकार

COMPARATIVE POLITICS AND GOVERNMENT

Copyright © 2012
All rights reserved with publishers

Produced & Printed by
USI PUBLICATIONS
2/31, Nehru Enclave, Kalkaji Extn.,
New Delhi-110019
for
Lovely Professional University
Phagwara

पाठ्यक्रम (SYLLABUS)

तुलनात्मक राजनीति और सरकार

(Comparative Politics and Government)

उद्देश्य:

1. विद्यार्थियों को तुलनात्मक प्रशासन तथा राजनीति के अवधारणात्मक आधारों को समझने योग्य बनाना।
2. विद्यार्थियों को विश्व में विभिन्न प्रकार की राजनीतिक प्रणालियों के तुलनात्मक विश्लेषण करने योग्य बनाना।
3. विद्यार्थियों को भारतीय राजनीतिक प्रणाली का विश्व की विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों से तुलना करने में सहायता करना।

Objectives:

1. To make the students understand the conceptual bases of the comparative government and politics.
2. To enable the students to do a comparative analysis of the different kinds of political system in the world.
3. To help the students to make a comparison of Indian Political System with the different political systems of the world.

Sr. No.	Topics
1.	**Nature and Scope of Comparative Politics**: Definitions, development of comparative politics, comparative politics and comparative government, comparative method and comparative politics, traditional approach to the study of comparative politics
2.	**Constitutions and Constitutionalism:** Constitution- Meaning, Process of growth, kinds of constitution, necessity of a good constitution; Constitutionalism- Meaning, development of Constitutionalism, Liberal and Marxist notions.
3.	**Political Culture and Political Socialisation:** Political Culture- meaning, mapping the three levels of political culture; Political socialisation- meaning, agents of political socialisation, trends in contemporary political cultures.
4.	**Socio - Economic bases and Salient Features of the Constitutions**: Constitutions of UK, USA, Russia, France, China and Switzerland; Amendment Process in the Constitution of USA and Switzerland, Federal System of the USA and Switzerland.
5.	**Constitutional Structure - Executive:** British King and Prime Minister, the President of the USA, France, Russia, China and Plural Executive of Switzerland.
6.	**Constitutional Structure - Legislature**: Composition and Powers of the British Parliament, US Congress, Swiss Federal Assembly, Russian and French Parliament and National People's Congress of China.
7.	**Constitutional Structure - Judiciary:** US Supreme Court and Judicial Review, Judicial system of UK Russia, France and Federal Judiciary of Switzerland.
8.	**Political Parties and Party systems:** Party system-Meaning of a political party, functions of political parties, kinds of party system; Pressure groups- Meaning of a pressure group, difference between political parties and pressure groups, role of pressure group
9.	**Politics of Representation and Participation:** Political Parties in the USA, U.K. Russia and France, Role of Communist Party in China, Interests Groups in the USA, UK, Russia and France.
10.	**Globalization:** Globalisation and Comparative Politics, Trans-national state, Responses from developed and developing societies.

विषय-सूची

इकाई (Units)	(CONTENTS)	पृष्ठ संख्या (Page No.)
1.	तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति और विषय क्षेत्र (Nature and Scope of Comparative Politics)	1
2.	तुलनात्मक पद्धति और राजनीति (Comparative Method and Politics)	37
3.	संविधान और संविधानवाद (Constitution and Constitutionalism)	51
4.	राजनीतिक संस्कृति (Political Culture)	75
5.	राजनीतिक सामाजीकरण (Political Socialisation)	95
6.	सामाजिक-आर्थिक आधार और संविधान के मुख्य लक्षण (Socio-Economic Bases and Salient Features of the Constituion)	108
7.	संवैधानिक संरचना–कार्यपालिका (Constitutional Structure – Executive)	144
8.	संवैधानिक संरचना-व्यवस्थापिका (Constitutional Structure – Legislature)	178
9.	संवैधानिक संरचना–न्यायपालिका (Constitutional Structure – Judiciary)	214
10.	दलीय व्यवस्था (Party System)	243
11.	दबाव समूह (Pressure Groups)	266
12.	प्रतिनिधित्व की राजनीति और सहभागिता (Politics of Representation and Participation)	277
13.	राजनीतिक दल (Political Parties)	291
14.	भू-मण्डलीकरण (Globalization)	326

नोट

इकाई–1: तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति और विषय क्षेत्र (Nature and Scope of Comparative Politics)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

1.1 तुलनात्मक राजनीति और सरकार: अर्थ, परिभाषा, प्रकृति और विस्तार क्षेत्र (Comparative Politics and Government : Meaning, Definition, Nature and Scope)

1.2 तुलनात्मक राजनीति का विकास (Development of Comparative Politics)

1.3 राजनीतिक विकास का अर्थ एवं परिभाषा (The Meaning and Definition of Political Development)

1.4 सारांश (Summary)

1.5 शब्दकोश (Keywords)

1.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- तुलनात्मक राजनीति की परिभाषा, अर्थ, विस्तार क्षेत्र और विकास का विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

आधुनिक राजनीतिक वैज्ञानिकों (political scientists) का यह दावा है कि उन्होंने राजनीतिक प्रक्रिया के सिद्धान्त व प्रतिरूप (model) निर्माण की ओर प्रथम चरण के रूप में राजनीतिक विश्लेषण (Political analysis) की नवीन अवधारणाओं (concepts) के सुझाव प्रस्तुत किये हैं। इनकी मान्यता है कि 'राज्य की अवधारणा' विश्लेषण के उपकरण (tool of analysis) के रूप में, उन राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना व उपयोगी अध्ययन करने में विशेष सहायक नहीं, जिनमें आकार, संगठन, संस्थाओं व संस्कृति की आधारभूत भिन्नताएं हों। इसलिये राजनीति-विज्ञान में शताब्दियों से प्रचलित राज्य, सरकार, संस्था, शक्तियों व जनमत की अवधारणाओं के स्थान पर नयी अवधारणाओं का प्रचलन व प्रयोग अनिवार्य माना जाने लगा जिससे राजनीतिक क्रिया की गहराइयों व वास्तविकताओं में झांका जा सके और उसके सम्बन्ध में तुलनात्मक आधार पर कोई सामान्यीकरण (generalization) सम्भव हो। इसलिए आधुनिक राजनीति-शास्त्रियों द्वारा राजनीतिक अध्ययन में, राजनीतिक व्यवस्था (political system), भूमिका (roles), राजनीतिक संस्कृति (political culture) इत्यादि नई अवधारणाओं का प्रयोग किया जाने लगा। इन नयी अवधारणाओं में भी आधारभूत अवधारणा (basic concept) 'राजनीतिक व्यवस्था' को माना जाने लगा क्योंकि, अन्य सभी अवधारणाएं इसी से सम्बद्ध दिखाई दीं। इस 'राजनीतिक व्यवस्था' से सम्बन्धित राजनीतिक प्रक्रिया के विभिन्न स्तरों पर तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर, राजनीतिक व्यवहार सम्बन्धी सिद्धान्त निर्माण के लक्ष्य से युक्त शास्त्र ही तुलनात्मक राजनीति कहा जाता है।

नोट

1.1 तुलनात्मक राजनीति और सरकारः अर्थ, परिभाषा, प्रकृति और विस्तार क्षेत्र (Comparative Politics and Government : Meaning, Definition, Nature and Scope)

तुलनात्मक रानजीति के अर्थ का विस्तृत विवेचन करने से पहले इसका 'तुलनात्मक सरकार' (comparative government) से अन्तर समझ लेना आवश्यक है। सामान्यतया, तुलनात्मक राजनीति को 'तुलनात्मक शासन' या 'तुलनात्मक सरकार' का पर्याय समझ लिया जाता है। दोनों का ही सम्बन्ध 'राजनीति' से होने के कारण इनका एक दूसरे के लिए अदल-बदल कर प्रयोग करना कुछ स्वाभाविक ही है। परन्तु राजनीति-विज्ञान में इनका सुनिश्चित अर्थ किया जाता है। **जी॰ के॰ रॉबर्ट्स** ने तुलनात्मक सरकार व तुलनात्मक राजनीति को अलग-अलग माना है। उन्होंने तुलनात्मक सरकार की परिभाषा इस प्रकार दी है।

"तुलनात्मक सरकार, राज्यों, उनकी संस्थाओं व सरकारों के कार्यों का अध्ययन है जिसमें शायद राज्य क्रिया से अत्यधिक निकट का सम्बन्ध रखने वाले पूरक समूहों–राजनीतिक दल व दबाव समूहों, का भी अध्ययन सम्मिलित है।"

जीन ब्लोण्डेल ने भी तुलनात्मक सरकार की परिभाषा करते हुए लिखा है–

"तुलनात्मक सरकार समकालीन विश्व में राष्ट्रीय सरकारों के प्रतिमानों का अध्ययन है।"

तुलनात्मक सरकार की उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि इसमें राज्य से सम्बन्धित औपचारिक संस्थाओं का ही मुख्यतः तुलनात्मक अध्ययन होता है। इसमें राजनीतिक व्यवहार से सम्बन्धित सभी प्रक्रियाओं व अन्य गैर-सरकारी संस्थाओं का अध्ययन सम्मिलित नहीं किया जाता। यद्यपि वर्तमान में राजनीतिक दल व दबाव समूहों की हर राज्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका के कारण इनका अध्ययन भी तुलनात्मक सरकार में सम्मिलित किया जाने लगा। परन्तु मुख्य जोर शासन की संस्थाओं के तुलनात्मक विश्लेषण पर रहता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि तुलनात्मक शासन में सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन नहीं किया जाता। राजनीतिक व्यवहार के अनेक पहलू व अनेकों गैर-शासकीय संस्थाएं, जिनसे सरकारों का व्यवहार ढलता व बदलता है, तुलनात्मक सरकार में सम्मिलित नहीं की जाती है।

तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राजनीतिक व्यवहार की सम्पूर्णता (totality of political behaviour) के अध्ययन से है। इसमें सरकारों व राजकीय संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन तो स्वतः ही सम्मिलित रहता है। क्योंकि, राजनीतिक व्यवहार, राजनीति संस्थाओं व मुख्यतः सरकारी संस्थाओं के इर्द -गिर्द घूमता है। परन्तु, इसके अलावा तुलनात्मक राजनीति में उन प्रभावों व प्रक्रियाओं का अध्ययन भी सम्मिलित किया जाता है जिससे सरकारों का व्यवहार इस प्रकार बनता है। **जी. के. रॉबर्ट्स** ने तुलनात्मक राजनीति का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है–

"तुलनात्मक राजनीति बृहत क्षेत्र का संकेतक है जिसमें तुलनात्मक सरकारों व गैर-शासकीय राजनीति–कबीलों, सम्प्रदायों (communities) व गैर-राजकीय संगठनों की राजनीति–का भी अध्ययन किया जाता है।"

एडवर्ड ए. फ्रीमैन (Edward A. Freeman) भी तुलनात्मक राजनीति के विस्तृत क्षेत्र की बात करते हैं। इनकी मान्यता है कि तुलनात्मक राजनीति में केवल सरकारों के विभिन्न रूपों का ही तुलनात्मक अध्ययन सम्मिलित नहीं होता वरन् विविध राजनीतिक प्रक्रियाओं व उनसे सम्बद्ध राजनीतिक व गैर-राजकीय संस्थाओं का भी तुलनात्मक अध्ययन सम्मिलित होता है।

तुलनात्मक राजनीति की उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि तुलनात्मक राजनीति व तुलनात्मक शासन समानार्थी नहीं हैं। तुलनात्मक शासन, राजनीति के केवल शासन सम्बन्धी संस्थागत पहलुओं के अध्ययन तक सीमित है जबकि तुलनात्मक राजनीति उससे एक कदम आगे बढ़कर उन सभी शक्तियों (forces) व प्रभावों का भी अध्ययन करती है जो राजनीतिक संस्थाओं, राजनीतिक प्रक्रिया व राजनीतिक व्यवहार को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से विशेष प्रकार का बनाने के लिए उत्तरदायी है।

नोट

तुलनात्मक राजनीति, तुलनात्मक विश्लेषण व तुलनात्मक विधि से भी भिन्न है। तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण (comparative political analysis) मुख्यत: राजनीति–विज्ञान से सम्बद्ध तुलनात्मक विश्लेषण को कहते हैं और इस कारण यह सुव्यक्त (explicit) या अव्यक्त (implicit) रूप से राजनीति–विज्ञान में राजनीतिक स्पष्टीकरण (political explanations) करने में केन्द्रीभूत रहता है। तुलनात्मक विधि, सामान्य आनुभविक प्रस्थापनाओं (propositions) की स्थापना की मौलिक विधियों में से प्रमुख विधि है। यह केस विधि (case method) की विलोम है।

क्या आप जानते हैं तुलनात्मक राजनीति की व्याख्या करते हुए फ्रीमैन ने लिखा है, "तुलनात्मक राजनीति सरकारों के विविध प्रकारों व विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं का तुलनात्मक विश्लेषण है।"

इस प्रकार तुलनात्मक राजनीति, विभिन्न शासन व्यवस्थाओं, राजनीतिक प्रक्रियाओं व राजनीतिक व्यवहार का तुलनात्मक ढंग से अध्ययन व विश्लेषण है। **राल्फ ब्रेबन्ती** ने तुलनात्मक राजनीति की व्यापक परिभाषा की है। इन्होंने लिखा है–

"तुलनात्मक राजनीति सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में उन तत्त्वों की पहचान व व्याख्या है जो राजनीतिक कार्यों व उनके संस्थागत प्रकाशन को प्रभावित करते हैं।"

तुलनात्मक राजनीति की संक्षिप्त व शायद सबसे स्पष्ट परिभाषा **एम॰ कर्टिस** ने दी है। उनके अनुसार–

"तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राजनीतिक संस्थाओं की कार्यविधि व राजनीतिक व्यवहार की महत्त्वपूर्ण निरन्तरताओं, समानताओं और असमानताओं से है।"

तुलनात्मक राजनीति इस प्रकार राजनीतिक संस्थाओं व राजनीतिक व्यवहार की समानताओं–असमानताओं के अध्ययन से सम्बद्ध है। इसमें अर्थपूर्ण विश्लेषण के लिए आवश्यक व्याख्यात्मक परिकल्पनाएं (explantory hypothesis) होती हैं। कथनों का परीक्षण व आनुभविक तथ्यों (empirical data) के संवर्ग व वर्गीकरण किये जाते हैं। अवलोकन व जहां सम्भव हो परीक्षण कर, शोध प्रविधियों का प्रयोग करके तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन, राजनीति के बारे में ज्ञान–वर्धन करता है।

तुलनात्मक राजनीति की उपरोक्त परिभाषाओं व व्याख्या से स्पष्ट है कि यह एक स्वतन्त्र अनुशासन है। तुलनात्मक राजनीति में, एक स्वतन्त्र अनुशासन के लिए आवश्यक सुस्पष्ट एवं निश्चित विषय–क्षेत्र है। इसकी भी अध्ययन सम्बन्धी स्वविकसित पद्धतियाँ व प्रविधियाँ हैं। इसकी प्रकृति व विषय–क्षेत्र के विवेचन से यह और भी स्पष्ट हो जायेगा कि तुलनात्मक राजनीति एक स्वतन्त्र अनुशासन (Independent discipline) है।

तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति (The Nature of Comparative Politics)

तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति को लेकर विद्वानों में विचार–विभेद हैं। मोटे तौर पर इसकी प्रकृति सम्बन्धी विचारों को दो प्रमुख धारणाओं में विभक्त किया जाता है राजनीति–शास्त्र के विद्वान व तुलनात्मक राजनीति के अग्रणी कम या अधिक मात्रा में दोनों में से किसी एक धारणा के समर्थक दिखाई देते हैं। यह दो धारणाएँ हैं–

(क) तुलनात्मक राजनीति लम्बात्मक तुलना है। (It is vertical comparative study)

(ख) तुलनात्मक राजनीति क्षैतीजीय तुलना है। (It is horizontal comparative study)

तुलनात्मक राजनीति लम्बात्मक तुलनात्मक अध्ययन है (Comparative Politics is Vertical Comparative Study)

तुलनात्मक राजनीति एक ही देश में स्थित विभिन्न स्तरों पर स्थापित सरकारों व उनको प्रभावित करने वाले राजनीतिक व्यवहारों का तुलनात्मक विश्लेषण व अध्ययन है। इसके विचारक यह मानते हैं कि प्रत्येक राज्य में कई स्तरों पर सरकारें होती हैं। मोटे रूप से उन्होंने इन सरकारों को दो प्रकार की बताया है। **प्रथम** सर्वव्यापक या सार्वजनिक या राष्ट्रीय सरकार तथा दूसरी आंशिक, स्थानीय या व्यक्तिगत (private) सरकार।

नोट

इन विचारकों के अनुसार तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध इस प्रकार की एक ही देश में स्थित विभिन्न सरकारों–सर्वव्यापक व आंशिक–की आपस में तुलना से है। इस धारणा के विचारक मानते हैं कि यद्यपि एक ही देश में सर्वव्यापक या राष्ट्रीय सरकार तो एक ही होती है परन्तु आंशिक सरकारें अनेकों होती है और इसलिये इनसे सम्बन्धित राजनीतिक प्रक्रियाओं व संस्थाओं की तुलना करके निश्चित निष्कर्ष निकालना सम्भव है। जैसे अगर एकात्मक राज्य है तो उसमें एक राष्ट्रीय सरकार होगी और कई स्थानीय सरकारें या निगम (corporation) होंगे। अगर राज्य व्यवस्था संघात्मक है, तो राष्ट्रीय, प्रान्तीय व स्थानीय सरकारें होंगी। इस धारणा के समर्थक यह मानते हैं कि एक ही राज्य में विभिन्न स्तरों की विविध सरकारों की तुलना करना 'लम्बात्मक तुलना' कहलाता है और तुलनात्मक राजनीति इन्हीं की पारस्परिक तुलना करने से सम्बद्ध शास्त्र है। इस प्रकार की मान्यता रखने वालों ने इसलिए तुलनात्मक राजनीति की परिभाषा इस आधार पर की है और कहा है कि "तुलनात्मक राजनीति एक ही देश की विभिन्न सरकारों की लम्बात्मक तुलना है।" (comparative politics deals the vertical comparison of various government within the same cournty.)

तुलनात्मक राजनीति की उपरोक्त परिभाषा नहीं की जा सकती है। इस परिभाषा का आधार ही तर्कसंगत नहीं लगता। क्योंकि राष्ट्रीय सरकार एवं आंशिक सरकारों के बीच दृष्टिगोचर होने वाली समानता सतही है। वैसे भी इन समानताओं की गहराई में जाएं तो इनमें असमानताएँ ही अधिक दिखाई देंगी और ऊपर से केवल मात्रा का अन्तर दिखाई देने वाला वास्तव में एक प्रकार का अन्तर भी प्रतीत होगा। इन सतही समानताओं का, जो एक ही देश की विभिन्न सरकारों में दिखाई देती हैं, विस्तृत विवेचन करके ही इनमें व्याप्त असमानताओं को समझा जा सकता है और इस के सन्दर्भ में ही यह निष्कर्ष निकालना सम्भव होगा कि तुलनात्मक राजनीति एक ही देश की विभिन्न सरकारों की लम्बात्मक तुलना नहीं है। संक्षेप में राष्ट्रीय व आंशिक या स्थानीय सरकारों में निम्नलिखित समानताएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं।

(क) आर्थिक साधनों की समानता– यद्यपि ऊपर से देखने पर राष्ट्रीय व आंशिक सरकारों में आर्थिक साधनों की समानता लगती है, क्योंकि आर्थिक साधन दोनों ही प्रकार की सरकारों के पास होते हैं, फिर भी यह आर्थिक साधनों की समानता अपने में कोई तुलनात्मक अध्ययन के लिए उपयोगी नहीं हो सकती। यह सही है कि दोनों के ही आर्थिक साधनों का उत्थान-पतन होता रहता है और उनमें तुलना की संभावनाएँ भी निहित दिखाई देती हैं पर वास्तव में ऐसा सम्भव नहीं है। यदि राष्ट्रीय सरकार के आर्थिक साधनों को, स्त्रोत (resources) आकार व सम्भावनाओं की दृष्टि से देखें तो यह बहुत व्यापक दिखाई देते हैं जिनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में राज्य के हर व्यक्ति व स्थान से है जबकि आंशिक सरकारों के साधन इतने व्यापक नहीं होते। इसके अलावा दोनों के आर्थिक साधनों में वृद्धि का प्रक्रियात्मक अन्तर भी स्पष्ट लगता है। इससे तुलना में जो समानता लगेगी वह आधारभूत नहीं होगी। क्योंकि इनकी कोई एक-सी विषय-परिधि (common frame of reference) नहीं हो सकती। इसलिए जब ऐसी विभिन्न सरकारों की तुलना की जाय तो यह तुलनात्मक विश्लेषण किसी सामान्यीकरण की सम्भावना तक नहीं ले जाता है और दोनों की समानता प्रकारात्मक (qualitative) नहीं, मात्रात्मक (quantitative) ही रह जायेगी जिसका तुलनात्मक राजनीति में विशेष उपयोग सम्भव नहीं।

(ख) नियमों या विधियों की समानता– हर प्रकार की सरकार में, चाहे वह राष्ट्रीय हो या आंशिक हो, संगठन व संचालन के लिए नियमों व विधियों का पाया जाना अनिवार्य है। इन नियमों की समानता के आधार पर उनकी तुलना भी की जा सकती है। परन्तु, जब राष्ट्रीय सरकार के कानूनों व नियमों तथा आंशिक सरकार के नियमों व विधियों का अध्ययन करते हैं तो दानों में ऊपर से समानता दिखाई देते हुए भी गहराई में जाने पर असमानता अधिक और समानता कम दिखाई देगी।

राष्ट्रीय सरकार के नियम व कानून अधिक दृढ़ होते हैं और उनका पालन भी अधिक दृढ़ता से कराया जाता है। उनका आकार न केवल बृहत्तरता-युक्त होता है वरन् उनमें जटिलता भी अधिक होती है। उनके पीछे राष्ट्रीय शक्ति होती है जिससे उनका सामान्यतया उल्लंघन नहीं किया जा सकता। दूसरी तरफ, आंशिक सरकार के नियमों में उतनी दृढ़ता व व्यापकता नहीं होती। उनके पीछे सम्प्रभु (sovereign) शक्ति का नहीं होना उनकी सुरक्षा व्यवस्था ही में कमी नहीं लाता वरन् अनुपालन (obedience) में भी ढीलता का तत्त्व समाविष्ट कर देता है। अत: दोनों ही प्रकार की सरकारों में नियमों की इस समानता या असमानता के आधार पर कोई अर्थपूर्ण तुलना सम्भव नहीं ऐसी तुलना से दोनों की

नोट

प्रकृति समझने में भले ही कुछ सहायता मिले परन्तु इस तुलना से सरकारों के बारे में कोई ऐसे सिद्धान्त नहीं बनाये जा सकते, जो हर देश व स्थान की ऐसी ही सरकारों के सम्बन्धों व विशिष्टताओं के स्पष्टीकरण में सहायक हों।

(ग) शक्ति की समानता– हर प्रकार की सरकार के संगठन को बनाये रखने के लिए कुछ न कुछ शक्ति अनिवार्य होती है और इसलिए हर सरकार की शक्ति कम या अधिक मात्रा में प्रतीत होती है। यह शक्ति राष्ट्रीय व व्यक्तिगत या आंशिक सरकारों में भी विद्यमान होती है। परन्तु इनकी तुलना करते हैं तो विदित होता है कि न केवल राष्ट्रीय सरकारों की शक्ति में अवपीड़न (coercion) का तत्त्व प्रमुख रूप से पाया जाता है वरन् अधिक स्थायित्व व दृढ़तायुक्त भी होती है। यह बात व्यक्तिगत सरकारों के बारे में सही नहीं दिखाई देती।

उपरोक्त विवेचन से, ऊपरी समानताओं के बावजूद, राष्ट्रीय व आंशिक सरकारों के सम्बन्ध में, असमानताओं का ही अधिक आभास होता है। इसलिये तुलनात्मक राजनीति में एक ही देश की विभिन्न-स्तरीय सरकारों का तुलनात्मक विश्लेषण सम्भव दिखाई देते हुए भी समान्यीकरण (generalization) की सम्भावनाएँ नहीं रखता। एक जैसी विषय-परिधि के अभाव के कारण इसके निष्कर्ष प्रमाणिक (valid) नहीं होंगे और इससे जो सिद्धान्त बनाये जायेंगे उनको भी किसी संवर्ग (category) में रखकर उनसे अन्य देशों की सरकारों को समझना सम्भव नहीं होगा। साथ ही इस प्रकार की सरकारों की तुलना भी संस्थाओं की औपचारिकता तक सीमित दिखाई देती है। राजनीतिक व्यवहार की वास्तविकताओं को समझने में इससे कोई सहायता मिलती प्रतीत नहीं होती। इसलिए अंत में यही निष्कर्ष निकलता है, कि तुलनात्मक राजनीति की यह धारणा अब मान्य नहीं और इस कारण इस आधार पर तुलनात्मक राजनीति की परिभाषा करना तुलनात्मक राजनीति की सही प्रकृति का चित्रण नहीं करता।

तुलनात्मक राजनीति क्षेतीजीय तुलनात्मक अध्ययन है (Comparative Politics is horizontal Comparative Study)

तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति सम्बन्धी दूसरी धारणा के अनुसार यह राष्ट्रीय सरकारों का क्षैतीजीय तुलनात्मक अध्ययन है। आधुनिक राजनीति-शास्त्रियों में से अधिकांशत: इस धारणा से सहमत हैं क्योंकि तुलनात्मक राजनीति के उद्देश्यों की पूर्ति इसी प्रकार की तुलना से होती है। ऐसी तुलना का महत्त्व भी रहता है। इससे ही ऐसे सामान्यीकरण सम्भव होते हैं जिससे हर सामान्य व विचित्र राजनीतिक व्यवहार को समझा व विश्लेषित किया जा सकता है। इसलिए तुलनात्मक राजनीति की यह धारणा इसकी सही प्रकृति का चित्रण करती हुई मानी जा सकती है।

अगर तुलनात्मक राजनीति राष्ट्रीय सरकारों की क्षैतीजीय तुलना है तो इसमें दो सम्भावनाएँ सम्मिलित दिखाई देती हैं। **पहली** तो यह कि यह तुलना, एक ही देश की विभिन्न कालों में विद्यमान राष्ट्रीय सरकारों की आपस में हो सकती है, तथा दूसरी, उन राष्ट्रीय सरकारों में, जो आज सम्पूर्ण विश्व में विद्यमान हैं, हो सकती है। तुलनात्मक राजनीति की इस धारणा की इन दोनों ही सम्भावनाओं का विस्तृत विवेचन कर इसकी प्रकृति का स्पष्टीकरण करना सरल होगा। संक्षेप में यह निम्न प्रकार है–

(क) एक देश की राष्ट्रीय सरकारों की ऐतिहासिक तुलना (Historical Comparison of National Governments within a Country)– एक ही देश में विद्यमान राष्ट्रीय सरकारों की ऐतिहासिक तुलना, तुलनात्मक राजनीति में होनी चाहिए। इस प्रकार की तुलनाओं से तुलनात्मक राजनीति का विचार-क्षितिज विस्तृत होता है। हर राज्य की वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था की लम्बी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि होती है। वर्तमान की राजनीतिक संस्थाओं, प्रक्रियाओं और राजनीतिक व्यवहारों का तुलनात्मक विश्लेषण अतीत के सन्दर्भ में ही व्यवस्थित ढंग से किया जा सकता है। एक ही देश में जो विभिन्न राष्ट्रीय सरकारें हुई हैं, उनका तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक भी है। इसी अतीत के ज्ञान के सन्दर्भ में वर्तमान राजनीति व्यवहार की प्रकृति को समझना सम्भव है। इसमें यदि इतिहास को एक क्षैतीजीय निरन्तर रेख (horizontal continum) के रूप में रखें तो भारत के सन्दर्भ में यह तुलना प्राचीन भारत की राष्ट्रीय सरकारों, मध्यकालीन भारत, ब्रिटिशकालीन भारत की राष्ट्रीय सरकारों तथा आधुनिक स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रीय सरकारों में की जा सकती है। इसे चित्र 1.1 में स्पष्ट किया गया है।

नोट

ऐतिहासिक निरन्तर रेख

(Historical Continuum)

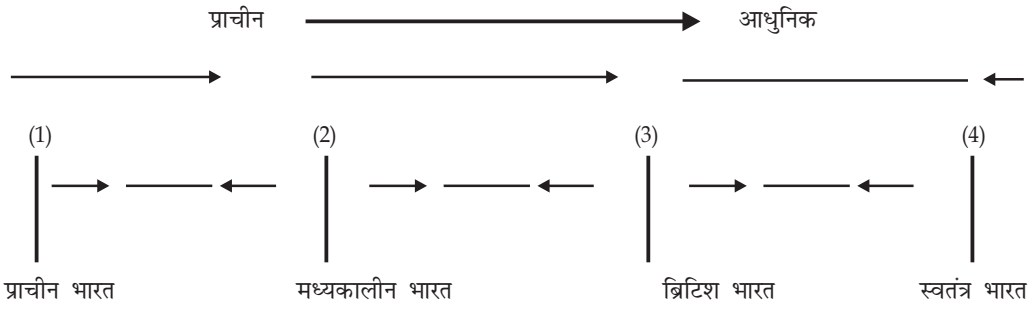

चित्र 1.1 एकदेशीय राष्ट्रीय सरकारों की ऐतिहासिक तुलना

उपरोक्त चित्र 1.1 से स्पष्ट है कि स्वतन्त्र भारत की वर्तमान राष्ट्रीय सरकार के व्यवहार की विशेषताओं को, अतीत की राष्ट्रीय सरकारों से तुलना करके अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। यह तुलना उपरोक्त चित्र में अंकित एक व दो, या दो व तीन, या तीन व चार की राष्ट्रीय सरकारों के बीच की जा सकती है, या एक की तीन या एक की चार या दो की चार पर दिखाई गई राष्ट्रीय सरकारों के बीच की जा सकती है।

इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन तुलनात्मक राजनीति में अधिक उपयोगी बन जाता है क्योंकि इतिहास में जो घटनाएँ हुई हैं, उनका क्रमिक विकास व प्रभाव दिखाई देता है। इस प्रकार के विकास की सामग्री इतिहास से उपलब्ध होती है और किसी की राजनीतिक संस्कृति का आधार बनती है। इस सामग्री के आधार पर किसी सरकार का 'समय-निरन्तर' (time-continuum) पर अंकन करके उनमें तुलना की जा सकती है। इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन को अगर आवश्यक हो तो अधिक गहन भी बनाया जा सकता है। नीचे चित्र 1.2 व 1.3 में इस प्रकार की तुलनाओं को दर्शाया गया है–

ऐतिहासिक निरन्तर रेख–स्वतन्त्र भारत

(Historical Continuum–Independent India)

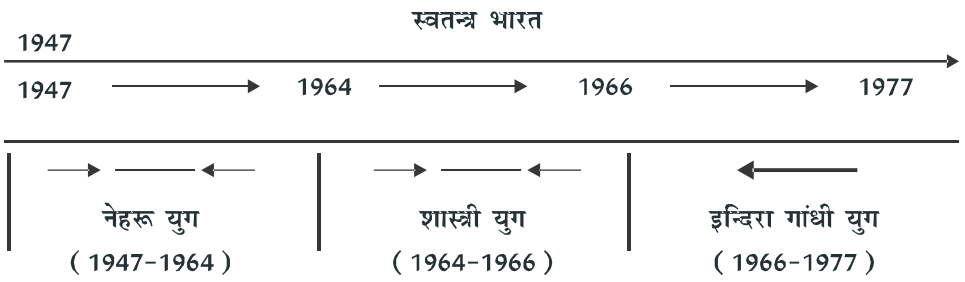

चित्र 1.2 स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रीय सरकारों की ऐतिहासिक तुलना

नोट

ऐतिहासिक निरन्तर रेख–इन्दिरा गांधी युग

(Historical Continuum–Indira Gandhi Era)

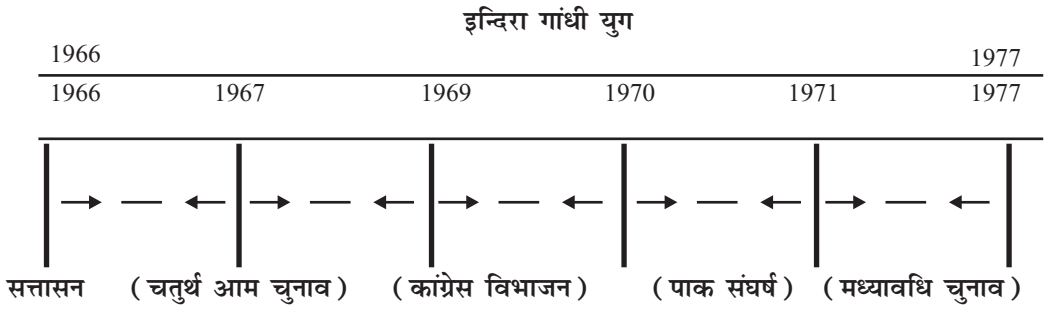

चित्र 1.3

राष्ट्रीय सरकारों की यह समस्तरीय तुलना अवश्य ही ऐतिहासिक सन्दर्भ में की जा सकती है परन्तु इसके लिए यह जरूरी है कि हर काल की राष्ट्रीय सरकार के बारे में समान जानकारी व तथ्य उपलब्ध हों। अगर ऐसा नहीं होगा तो तुलना सम्भव नहीं होगी। तुलना के लिए केवल तथ्य ही काफी नहीं, वरन् इन तथ्यों के सुस्पष्ट आधार भी हों। यहाँ यह समस्या उत्पन्न होती है कि क्या पहले तथ्यों के आधार निश्चित किये जायें या तथ्य एकत्रित करके आधार खोजे जाएँ? पहले आधार निश्चित कर तथ्य एकत्रित करना व्यावहारिक नहीं लगता। इससे तो तथ्यों का संकलन ही सम्भव नहीं होगा। जो आंकड़े आधारों की कसौटी पर ठीक नहीं उतरेंगे उनको ऐसी व्यवस्था में एकत्र ही नहीं किया जा सकता है। इसलिए आंकड़े पहले संकलित करके बाद में आधार देखे जायें। इस प्रकार राष्ट्रीय सरकारों की ऐतिहासिक आधार पर तुलना विभिन्न तथ्यों को सुस्थिर आधार प्रदान करके करनी चाहिए जिससे एक–सी विषय–परिधि (common frame of reference) में की गयी तुलना, राजनीतिक व्यवहार के बारे में कुछ सामान्यीकरण सम्भव बनाये।

इस प्रकार, तुलनात्मक राजनीति में ऐतिहासिक सन्दर्भी राष्ट्रीय सरकारों की सम–स्तरीय तुलना की जाती है। इस प्रकार की तुलना का अपना अलग महत्त्व भी है। परन्तु तुलनात्मक राजनीति में यही काफी नहीं। इसकी इस शास्त्र में सीमित उपयोगिता ही है इससे केवल एक राज्य की राष्ट्रीय सरकारों को विभिन्न कालों में समझने में ही सहायता मिलती है। उस राष्ट्र से भिन्न प्रकार की संस्कृति, सभ्यता व संगठन वाले राज्य में संचालित सरकार की प्रकृति व राजनीतिक व्यवहार को समझने के लिए यह पर्याप्त नहीं है। इसके अलावा भी वर्तमान सरकार और अतीत कालीन सरकारों में तुलना के लिए आवश्यक समान विषय–परिधि सम्भव नहीं होती। ऐसी तुलनाएँ राजनीतिक व्यवहार की गत्यात्मकताओं (dynamics) के स्थान पर केवल संस्थात्मक सतह तक ही सम्भव होती है। इस कारण तुलनात्मक राजनीति में विभिन्न राष्ट्रों में प्रचलित राष्ट्रीय सरकारों से सम्बन्धित राजनीतिक व्यवहारों की तुलना करना अधिक उपयोगी होगा।

(2) समकालीन विश्व में व्याप्त राष्ट्रीय सरकारों की क्षैतीजीय तुलना है। (Horizontal comparison of national governments across national boundaries within contemporary world) – तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति सम्बन्धी सर्वमान्य धारणा आज यही है कि यह समकालीन विश्व में प्रचलित राष्ट्रीय सरकारों का तुलनात्मक अध्ययन है। **जीन ब्लोण्डेल** ने इसका समर्थन करते हुए लिखा है–

"हमारे पास तुलनात्मक सरकारों के अध्ययन का केवल एक ही दृष्टिकोण शेष बचता है और वह है समकालीन विश्व की राजनीतिक व्यवस्थाओं से सम्बद्ध राष्ट्रीय सरकारों का राष्ट्रीय सीमाओं के आर–पार अध्ययन करना।"

वास्तव में इसी प्रकार की तुलना से न केवल सामान्यीकरण सम्भव है, वरन् राजनीतिक व्यवहार के सम्बन्ध में ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी किया जा सकता है जिनसे हर देश की राजनीतिक व्यवस्था को समझा जा सके। इनसे हर विचित्र राजनीतिक घटना का स्पष्टीकरण किया जा सकता है। इनसे राजनीतिक संस्थाओं और व्यवस्थाओं की प्रकृति व कार्यविधि को भी समझा जा सकता है।

नोट

तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तुलनात्मक राजनीति एक स्वतन्त्र अनुशासन है जो राजनीति-विज्ञान में एक महत्त्वपूर्ण शाखा बन गया है। यद्यपि इसका अध्ययन भी राजनीतिक संस्थाओं से सम्बन्धित राजनीति से है फिर भी यह राजनीति-विज्ञान से इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें राज्य व गैर-शासकीय राजनीति, दोनों का ही अध्ययन सम्मिलित होता है। जबकि राजनीति-विज्ञान, गैर-शासकीय राजनीति से प्रत्यक्ष रूप में सम्बन्धित नहीं होता। इस प्रकार, तुलनात्मक राजनीति, एक ही देश की राष्ट्रीय सरकारों का ऐतिहासिक सन्दर्भ व राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार तुलनात्मक प्रणयन ही नहीं है; यह इसके साथ, राजनीतिक प्रक्रियाओं व राजनीतिक व्यवहार तथा सरकारी तन्त्रों को प्रभावित करने वाली गैर-सरकारी व्यवस्थाओं का भी तुलनात्मक अध्ययन है।

तुलनात्मक राजनीति का विषय-क्षेत्र (Scope of Comparative Politics)

तुलनात्मक राजनीति का विषय-क्षेत्र अभी भी सीमांकन (demarcation) की अवस्था में है इसके विषय-क्षेत्र की निर्माण-अवस्था के कारण ही जी.के. राबर्ट्स (G.K. Roberts) ने अपने एक नवीन लेख 'Comparative Politics today' में यहां तक लिखा है कि, "तुलनात्मक राजनीति सब कुछ है या वह कुछ भी नहीं है।" इसके विषय-क्षेत्र में एक सीमा के बाद विस्तृतता इसे राजनीति-विज्ञान के अनुरूप बना देती है तथा दूसरी तरफ, इसके क्षेत्र की अत्यधिक संकुचित अवधारणा इसे स्वतन्त्र अनुशासन (Independent discipline) की अवस्था से ही वंचित कर देती हैं इसलिए इसके विषय-क्षेत्र की प्रमुख समस्या यह बन जाती है कि तुलनात्मक राजनीति में क्या-क्या सम्मिलित किया जाय और क्या-क्या इसके अध्ययन से बाहर रखा जाय? साथ ही यह प्रश्न भी आता है कि राजनीति सम्बन्धी किसी पहलू को इसके अध्ययन में सम्मिलित करने या नहीं करने का आधार क्या हो? विषय-क्षेत्र के सीमांकन की यह समस्या इस कारण और भी उलझी हुई लगती है कि इसके विचारक, अध्ययन पद्धतियों परिवर्त्यों, विश्लेषण के उपागमों (analytical approaches), सिद्धान्तों के प्रकारों व विश्लेषण की इकाई पर भी एकमत नहीं हो पा रहे हैं। यहां **हेरी एक्सटीन** (Harry Eckstein) की तुलनात्मक राजनीति के विषय-क्षेत्र के सम्बन्ध में यह कथन उद्धृत करना इस विवाद की गम्भीरता का स्पष्टीकरण करने के लिए पर्याप्त होगा। एक्सटीन ने लिखा है–

"सबसे अधिक आधारभूत बात तुलनात्मक राजनीति के बारे में यह है कि आज यह एक ऐसा विषय है जिसमें अत्यधिक विवाद है क्योंकि यह संक्रमण-स्थिति में है–एक प्रकार की विश्लेषण शैली से दूसरे प्रकार की शैली में प्रस्थान कर रहा है।"

इससे स्पष्ट है कि तुलनात्मक राजनीति की परिभाषा व प्रकृति की तरह इसका विषय-क्षेत्र भी विवाद का विषय हैं इसके क्षेत्र को लेकर परम्परावादियों व आधुनिक राजनीति-शास्त्रियों में गहरा मतभेद है। जीन ब्लोण्डेल Jean Blondel) ने यह विवाद दो बातों से सम्बन्धित बताया है। **पहला** है तुलनात्मक राजनीति की सीमा सम्बन्धी व **दूसरा** है मानकों व व्यवहारों के पारस्परिक सम्बन्धों सम्बन्धी विवाद। इन दोनों का विस्तृत विवेचन करके ही तुलनात्मक राजनीति के विषय क्षेत्र का निर्धारण कर सकना सम्भव होगा।

सीमा संबंधी विवाद (Controversy over the Boundary): तुलनात्मक राजनीति में सीमा सम्बन्धी विवाद हर अध्ययन के दृष्टिकोण से सम्बन्धित है। सभी राजनीति शास्त्री इस बात पर तो सहमत हैं कि तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राष्ट्रीय सरकारों से है और इसमें भी केवल सरकारी ढांचों (governmental structures) का ही अध्ययन नहीं अपितु सरकारों के कार्यकलापों व गैर-राजकीय संस्थाओं के राजनीतिक कार्यों का भी अध्ययन आवश्यक रूप में सम्मिलित रहता है। लेकिन उनमें विवाद इस बात को लेकर है कि तुलना से सम्बन्धित राजनीतिक कार्यकलापों से क्या अर्थ समझा जाय? अर्थात सरकार की क्रियाओं की व्याख्या किस ढंग से की जाय? इस सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण प्रचलित हैं। इनमें से कौन-सा दृष्टिकोण तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन के लिए अपनाया जाय तथा कोई विशेष दृष्टिकोण ही को क्यों अपनाया जाए, यह विवाद का विषय रहा है? यह दृष्टिकोण है–कानूनी दृष्टिकोण व व्यावहारिक दृष्टिकोण। इन दोनों दृष्टिकोणों का अर्थ स्पष्ट करके ही इस विवाद को समझा व इस सम्बन्ध में निष्कर्ष निकाला जा सकता है। संक्षेप में इनका विवेचन इस प्रकार है

(क) कानूनी या संस्थागत दृष्टिकोण (Legalistic or Institutional Approach)–इस दृष्टिकोण के अनुसार तुलनात्मक राजनीति में केवल संविधान द्वारा स्थापित सरकारी संरचना का, तथा संविधान द्वारा नियत किये गये

नोट

राजनीतिक व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन ही किया जाना चाहिए। इस विचार के समर्थकों की मान्यता है कि संविधान ही सरकार के ढांचे का संगठन करता है और इसी के द्वारा हर संस्था के कार्यों का नियमन होता है। इसलिए तुलना राष्ट्रीय सरकारों के आधार, संविधान व इनके द्वारा नियत कार्यकलापों की ही होनी चाहिए। उनके अनुसार इसके अलावा अन्य किसी भी आधार पर राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन न केवल असम्भव होगा, वरन् अव्यावहारिक भी होगा। संविधान द्वारा नियत कार्य अगर कोई संस्था विशेष किसी परिस्थिति विशेष के कारण नहीं करती तो इस विचित्र व्यवहार का अध्ययन तुलनात्मक राजनीति में उपयोगी नहीं होगा। इस प्रकार के विचित्र व्यवहार से विचलन (deviation) अस्थायी होता है इसलिए तुलनात्मक राजनीति में ऐसे व्यवहारों का अध्ययन सम्मिलित नहीं होना चाहिए। इन व्यवहारों से सामान्यीकरण में भी कोई सहयोग नहीं मिलता। इसलिए कानूनी दृष्टिकोण के अनुसार तुलनात्मक राजनीति में केवल उसी राजनीतिक व्यवहार की तुलना होनी चाहिए जो संविधान में कानून द्वारा स्थापित राजनीतिक संस्थाओं से सम्बद्ध हो।

कानूनी दृष्टिकोण की आलोचना की गयी है। आलोचकों की मान्यता है कि इस प्रकार की तुलना केवल सतही व दिखावटी होगी। यह राजनीतिक व्यवहार के औपचारिक पहलू का ही अध्ययन होने के कारण, इससे राजनीतिक प्रक्रियाओं की वास्तविकताओं को समझने में अधिक सहायता नहीं मिलती। जैसे सोवियत रूस के संविधान व संविधान द्वारा नियत राजनीतिक कार्यकलापों का अध्ययन रूस की राजनीतिक व्यवस्था की सच्ची प्रकृति का कोई संकेत नहीं देता। यही बात ब्रिटेन के बारे में कही जा सकती है जहाँ संवैधानिक दृष्टि से आज भी निरंकुश राजतन्त्र (absolute monarchy) विद्यमान है। भारत के उदाहरण से यह और भी स्पष्ट हो जायेगा। भारत में संविधान द्वारा एक सहकारी संघ (co-operative federalism) की स्थापना की गयी है। परन्तु एक ही राजनीतिक दल का प्रभुत्व व राज्यों में भी इसी का बहुमत सम्पूर्ण संघात्मक व्यवस्था को व्यवहार में एकात्मक के समान बना देता है। उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि तुलनात्मक राजनीति के सीमा सम्बन्धी विवाद का यह दृष्टिकोण अध्ययन व तुलना के लिए विशेष उपयोगी नहीं है।

(ख) व्यवहारवादी दृष्टिकोण (Behavioural Approaches)- इस दृष्टिकोण के समर्थकों को व्यवहारवादी (behaviouralists) कहा जाता है। उनके अनुसार तुलनात्मक राजनीति में केवल कानूनी व्यवस्था का औपचारिक अध्ययन व तुलना पर्याप्त नहीं है। वास्तव में राजनीतिक व्यवस्था किस प्रकार व्यावहारिक बनती है, तथा राजनीतिक संस्थाओं का वास्तविक व्यवहार क्या है, यह प्रमुख बात है। जीन ब्लोण्डेल ने तो राजनीति के व्यावहारिक पक्ष को आधारभूत व मौलिक (substantive) माना है। उसके अनुसार तुलनात्मक राजनीति को कानूनी परिधि में न बन्धकर उससे बाहर निकलना है। व्यवहारवादियों के अनुसार तुलनात्मक राजनीति में राष्ट्रीय संस्थाओं व गैर–राजकीय (non-governmental) संस्थाओं के राजनीतिक व्यवहार से सम्बन्धित सब तथ्य एकत्रित करके विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं में तुलना करनी चाहिए। राज्य सरकार व संस्थाओं के कार्य व कार्यविधि का अवलोकन कर उनकी तुलना करना राजनीतिक व्यवस्था की गत्यात्मकता (Dynamism) को सही अर्थों में समझना है।

व्यवहारवादी दृष्टिकोण को और अच्छी तरह से समझने के लिए इसका अर्थ जानना लाभदायक होगा। व्यहारवादी अपने आपको विशुद्ध वैज्ञानिक बनाने और सिद्ध करने में प्रवृत्त हैं। राजनीति–विज्ञान में यह आन्दोलन समाज–विज्ञानों पर प्राकृतिक विज्ञानों के प्रभाव परिणाम है। यह प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों के बीच में एक गुणात्मक निरन्तरता की पूर्वधारणा लेकर चलता है। व्यवहारवादियों की मूल मान्यता यह है कि समाज–विज्ञानों की अवधारणाएँ एवं सिद्धान्त, प्राकृतिक विज्ञानों के समान हो सकते हैं। राजनीति–विज्ञान पर प्राकृतिक विज्ञानों व अन्य समाज–विज्ञानों के प्रभाव को ही 'व्यवहारवादी क्रांति' (behavioural revolution) कहा जाता है। राजनीति–विज्ञान में यह एक मोड़ है, जिसने राजनीति–विज्ञान में, विषय–वस्तु, अन्य अनुशासनों से सम्बद्ध, पद्धतियों और प्रविधियों (techniques), एवं मूल्यों इत्यादि की दृष्टि से आमूल परिवर्तन कर दिए हैं।

हींज युलाउ की मान्यता है कि 'राजनीतिक व्यवहार' का तात्पर्य केवल प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यवेक्षणीय (Observational) राजनीतिक क्रियाओं से ही नहीं है, अपितु व्यवहार के उन बोधात्मक (perceptual), अभिप्रेरणात्मक (Motivational) तथा अभिवृत्त्यात्मक (Attitudinal) घटकों से भी है जो कि मानव के राजनीतिक

नोट

अभिज्ञानों (Identifications), मांगों और आशाओं तथा उसके राजनीतिक विश्वासों, मूल्यों एव लक्ष्यों की व्यवस्था का निर्माण करते हैं। उसमें संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न स्तर भी सम्मिलित हैं। इन सबका अभिमुखीकरण (orientation) अनेक कारणों व आयामों से सम्बद्ध तत्त्वों से होता है, इसलिए स्वभावत: राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन अन्य समाज-विज्ञानों से अलग-थलग नहीं रह सकता है। संक्षेप में वे सभी व्यवहारात्मक प्रक्रियाएँ, जो मनुष्य के राजनीति अभिज्ञान, मांगों, आकांक्षाओं और उसके लक्ष्यों, मूल्यों और राजनीतिक विश्वासों की व्यवस्थाओं का निर्माण करती हैं, तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन-क्षेत्र बन जाती है।

व्यवहारवादी दृष्टिकोण का तुलनात्मक राजनीति में महत्त्व और स्पष्ट करने के लिए, व्यवहारवादियों द्वारा की गई राजनीति-विज्ञान की परिभाषा का उल्लेख करना आवश्यक है। डेविड ईस्टन ने राजनीति-शास्त्र की परिभाषा करते हुए लिखा है–"राजनीति-शास्त्र समाज में मूल्यों अधिकृत वितरण से सम्बन्धित ज्ञान है।" हर राजनीतिक समाज में मूल्यों का 'अधिकृत वितरण' केवल सरकारें ही करती हैं। अन्य व्यक्तियों व संस्थाओं द्वारा मूल्यों का वितरण व प्रचलन अवश्य होता है, परन्तु यह अधिकृत नहीं हो सकता; क्योंकि यह बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकते। इसलिए हर समाज में 'शासन-तन्त्र' का विशेष महत्त्व होता है। सरकार ही वह तन्त्र है, जिससे मूल्यों का अधिकृत वितरण होता है। जो आवश्यकता पड़ने पर इसके लिए बाध्य भी करती है। इस प्रकार, हर राजनीतिक समाज में हर प्रकार से राजनीतिक गतिविधि 'शासन-तन्त्र' के इर्द-गिर्द ही चक्कर लगाती है, और इसी के सन्दर्भ में हर राजनीतिक गतिविधि में इन मूल्यों के वितरण की व्यवस्था की विभिन्न राजनीतिक समाजों के सन्दर्भ में तुलना आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार तुलनात्मक राजनीति का विषय-क्षेत्र 'शासन-क्रिया' के तुलनात्मक विश्लेषण से सम्बद्ध है। स्वयं उन्हीं के शब्दों में–

"तुलनात्मक सरकार (राजनीति) के अध्ययन में, उन तरीकों का, जिनसे समाज में मूल्यों का अधिकृत विवरण होता है, परीक्षण किया जाता है।"

शासन-क्रिया या मूल्यों का अधिकृत वितरण या आवंटन दो-तरफी क्रिया है। पहले हर शासन-तन्त्र को क्रियाशील बनाना होता है। फिर यह सरकारी तन्त्र, इस प्रेरणा (activation) के कारण अनुक्रियात्मक (responsive) बनता है। हर राजनीतिक समाज में शासन-तन्त्र पर चारों तरफ से प्रभाव व दबाव पड़ते रहते हैं। यह प्रेरणा तथ्य शासन तन्त्र को संवेदनशील बनाते हैं जिससे यह अनुक्रिया करता है। इसे चित्र से और भी स्पष्ट समझा जा सकता है।

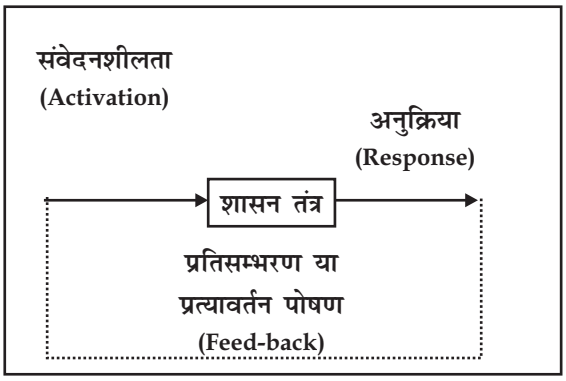

हर राजनीतिक व्यवस्था में शासन-तन्त्र पर पड़ने वाले प्रभावों व दबावों से यह संवेदनशील बनकर तुरन्त अनुक्रिया करता है और इस अनुक्रिया से प्रत्यावर्तन पोषण होता है और सम्पूर्ण राजनीतिक प्रक्रिया इस चक्र में चलती रहती है। इसमें संस्थाओं के दोनों ही प्रकार–राजनीतिक व गैर-राजकीय–महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं और तुलनात्मक राजनीति में इन दोनों ही का अध्ययन अनिवार्य है। ब्लोण्डेल ने तुलनात्मक राजनीति को उन सब प्रभावों के तुलनात्मक अध्ययन से सम्बद्ध माना है जो शासन-तन्त्र की संवेदनशीलता के पीछे रहते हैं। उनके अनुसार–

बहुत अधिक सुनिश्चितता से यह व्याख्या करने के बजाय कि, यह 'वस्तुएँ' सरकार से सम्बन्धित हैं और वह सरकारों से सम्बन्धित नहीं है, यह देखना अधिक उपयोगी होगा कि शासन-तन्त्र किन-किन तथ्यों व मार्गों (channels) से संवेदनशील बनकर अनुक्रियात्मक होता है।"

इस प्रकार, तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध प्रमुखतया शासन-क्रिया के इर्द-गिर्द घूमते राजनीतिक व्यवहार के तुलनात्मक अध्ययन से है। परन्तु शासन-क्रिया तीन स्तरों पर संचालित होती है या यों कहें कि मूल्यों का अधिकृत आवंटन तीन स्तरों पर परिचालित होता है। इसलिए, "तुलनात्मक राजनीति में परिचालनता (operations) के इन स्तरों का, जिनसे मूल्यों का आवंटन होता है, परीक्षण करना महत्त्वपूर्ण है।" यह तीन स्तर हैं–

नोट

(1) मूल्यों व गन्तव्यों का नियमन (Formulation of Values and Goals)

(2) मूल्यों को आत्मसात करना व निर्दिष्ट निर्णयों में रूपान्तरण (Digestion of Values and their Transformation in goal Decisions)

(3) निर्णयों का कार्यान्वयन (Implementation of Decisions)

मूल्यों व गन्तव्यों के नियमन के अन्तर्गत उस प्रक्रिया का अध्ययन होता है, जिसके द्वारा समाज के मूल्य व उद्देश्यों का निर्माण होता है और जो सरकार के सामने जनता की मांगों के रूप में आते हैं जिन्हें ईस्टन 'मांगों व समर्थनों' (Demands and Supports) का नाम देते हैं और जो आमण्ड के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था के निवेश (inputs) हैं। इनके प्रति जनता जागृत होती है और शासन–तन्त्र को भिज्ञ बनाती है। जीन ब्लोण्डेल की मान्यता है कि तुलनात्मक राजनीति में हमें "सर्वप्रथम यह देखना चाहिए कि मूल्यों का किस प्रकार नियमन होता है और किन–किन तरीकों से सरकार इनसे भिज्ञ बनती है।" इस प्रकार व्यवहारवादियों के अनुसार उन मूल्यों व उद्दश्यों के नियमन की प्रक्रिया का तुलनात्मक राजनीति में अध्ययन व तुलना की जानी चाहिए जो समाज में मांगों के रूप में उभर आते हैं।

मूल्यों को आत्मसात करने व निर्दिष्ट निर्णयों में रूपान्तरण से तात्पर्य यह देखने से है कि विभिन्न मांगों व मूल्यों को 'शासन–तन्त्र' किस प्रकार ग्रहण करता है, और इनको सम्पूर्ण समाज पर लागू होने वाले निर्णयों में किस प्रकार रूपांतरित करता है? यहां यह देखना होता है कि शासन–तन्त्र के सामने प्रस्तुत होने वाली असंख्य मांगों में से यह किसको आत्मसात करता है और किन मूल्यों को ग्रहण करने से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप ने इंकार करता है?

निर्णयों का कार्यान्वयन सरकारी क्रिया का तीसरा और अंतिम स्तर है। सरकार जनता के जिन उद्देश्यों व मूल्यों को स्वीकार कर निर्णयों का रूप देती है उन्हें नियमों या विधियों में बदलकर लागू करती है। यह शासन क्रिया, नियम निर्माण, नियम क्रियान्विति और नियम निर्णय की तीन क्रियाओं से सम्बन्धित होती है।

व्यवहारवादी राजनीतिक व्यवस्था को एक इलेक्ट्रोनिक (electronic) यन्त्र के रूप में देखते हैं। शासन–तन्त्र द्वि–मार्गी प्रचालन है। यह एक ऐसी मशीन है, जो संकेत (signals) ग्रहण करती है और इनका अन्य संकेतों में रूपान्तरण करती है। तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध शासन–तन्त्र द्वारा ग्रहण किये गये संकेतों व उनके रूपान्तरण की प्रक्रिया से है। इस प्रकार तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन–क्षेत्र में, राजनीतिक समाज में मूल्यों व गन्तव्यों के नियमन की प्रक्रियाओं, इन मूल्यों को शासन–तन्त्र द्वारा आत्मसात करना व निर्दिष्ट निर्णयों में रूपान्तर और स्वीकृत निर्णयों के कार्यान्वयन से सम्बद्ध प्रक्रियाएँ सम्मिलित की जाती है। व्यवहारवादी हर सरकार के कार्यों के यह तीन पहलू मानते हैं और तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र इन तीनों प्रक्रियाओं से सम्बन्धित राजनीतिक व्यवहार के तुलनात्मक विश्लेषण तक मानते हैं।

व्यवहारवादियों द्वारा राजनीतिक व्यवस्था की संकल्पनात्मक सरलता व शासन–क्रिया से सम्बन्धित तीन प्रक्रियाओं की तुलना तक तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र को सीमित रखना इस शास्त्र को स्वतन्त्र अनुशासन की अवस्था से वंचित रखना है। इससे राजनीतिक व्यवहार के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्तों का सर्वव्यापक स्तर पर निर्माण नहीं होता। अत: तुलनात्मक राजनीति का विषय–क्षेत्र, शासनक्रिया के उपरोक्त तीन स्तरीय तुलनात्मक अध्ययन तक समिति करना और इस आधार पर राष्ट्रीय सरकारों के व्यवहार को समझने का प्रयास एक सीमा के बाद सम्भव नहीं है।

मानकों व व्यवहार के सम्बन्धों का विवाद (Controversy over the Relationship of Norms and Behaviour)

तुलनात्मक राजनीति का विषय–क्षेत्र सम्बन्धी दूसरा विवाद अधिक जटिलताओं का जनक है। मानक (norms) की अभिव्यक्ति, कानून प्रक्रियाओं (procedures) व नियमों (rules) में होती है। परन्तु राजनीतिक व्यवहार कई बार इन कानूनों के प्रतिकूल होता है और यही तुलनात्मक अध्ययन में पेचीदगियाँ उत्पन्न करता है। अगर राजनीतिक आचरण मानकों के अनुरूप रहे तो तुलना करना सरल होगा। पर साधारणतया ऐसा हमेशा नहीं होता या होता है तो बाध्यकारी शक्ति के जोर पर होता है। इससे यह समस्या उत्पन्न होती है कि यह राजनीतिक व्यवहार तुलना में सम्मिलित करके अगर निष्कर्ष निकाले गये तो वे निष्कर्ष स्वत: ही अशुद्ध होंगे। साथ ही इसको तुलना से बाहर रखना राजनीतिक व्यवस्थाओं की वास्तविकताओं से दूर रहना है। इसलिए तुलनात्मक राजनीति में यह भी देखा जाना चाहिए कि राजनीतिक व्यवहार मानकों के अनुकूल है या प्रतिकूल। अर्थात राजनीतिक क्रिया से सम्बन्धित व्यक्तियों द्वारा मानकों के अभिव्यक्त

नोट

कानूनों का कितना पालन और कितना उल्लंघन होता है?

यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मानक व व्यवहार दोनों ही अचल नहीं रहते। यह आवश्यक नहीं कि जो मानक व व्यवहार आज हैं वह आगे आने वाले समय में भी रहें। यह दोनों ही गत्यात्मक हैं। इनमें साम्य (harmony) व गतिरोध दोनों ही हो सकता है। सामान्यतया इनमें पारस्परिकता रहती है और दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। मानक में परिवर्तन, व्यवहार में भी परिवर्तन लाता है, और स्वयं व्यवहार भी नवीन मानक की स्थापना का कारण बन सकता है। इसलिए तुलनात्मक राजनीति में मानक व व्यवहार के राजनीतिक पहलुओं का अध्ययन भी सम्मिलित होना चाहिए। जीन ब्लोण्डेल ने भी लिखा है–

"जबकि आधारभूत दृष्टि से तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध सरकार की संरचना से होना चाहिए पर साथ ही उसका सम्बन्ध व्यवहार के स्फटित (crystallized) प्रतिमानों व आचरणों (practices) से भी होना चाहिए। क्योंकि, सरकार की जीवित तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन-क्षेत्र के बारे में उपरोक्त विवादों के विस्तृत विवेचन से यह स्पष्ट है कि इसमें न केवल शासनतन्त्रों व संगठनों की तुलना की जाती है और न ही मानक व व्यवहारों के सम्बन्धों का विश्लेषण मात्र ही किया जाता है, वरन् इसके क्षेत्र में इन दोनों का ही समावेश आवश्यक है। अत: निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि तुलनात्मक राजनीति के विषय-क्षेत्र में विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं की शासन-संरचनाओं (governmental structures), शासन-व्यवहार प्रतिमानों (governmental behaviour patterns) व गैर-राजकीय संस्थाओं के राजनीतिक व्यवहार प्रतिमानों का अध्ययन सम्मिलित है। इस प्रकार तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन, कानून-निर्माण, कानून-प्रयोग और विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं के अंगों से सम्बन्धित निर्णयों और राजनीतिक दलों व दबाव-समूहों जैसे संविधानातिरिक्त अभिकरणों (extra-constitutional agencies) के अध्ययन तक ही सीमित नहीं रहता, वरन् इससे आगे भी बढ़ता है। इनमें उन तथ्यों का अध्ययन भी एक विशिष्ट तरीके से करना होता है जो सामान्यतया अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और मानवशास्त्र (anthropology) के क्षेत्र में आते हैं। **सिडनी वर्बा** (Sydney Verba) ने तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन-क्षेत्र की व्यापकता का संकेत देते हुए लिखा है–

"तुलनात्मक राजनीति में क्रांति का श्रीगणेश अनेक साहसी सिद्धान्तों के कारण हुआ–इनमें कहा गया कि केवल वर्णन से आगे बढ़कर सैद्धान्तिक दृष्टि से अधिक संगत समस्याओं की ओर देखिए, एक मामले से आगे बढ़कर अनेक मामलों की तुलना की ओर देखिए, सरकार की औपचारिक संस्थाओं के अध्ययन से आगे बढ़ते हुए राजनीतिक प्रक्रियाओं और राजनीतिक कार्यों की ओर देखिए, तथा केवल पश्चिमी यूरोपीय देशों का अध्ययन न करके एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमरीका के नवोदित राष्ट्रों की ओर देखिए।"

इसका तात्पर्य यह है कि राजनीतिक अनुभवों, संस्थाओं, व्यवहारों और सरकारों की मुख्य व्यवस्थाओं की प्रक्रियाओं का व्यापक रूप से अध्ययन करते समय तुलनात्मक राजनीति में सजग व सचेत तुलनाओं का विशिष्ट महत्त्व है। तुलनात्मक राजनीति में उन संविधानातिरिक्त अभिकरणों (agencies) का अध्ययन भी सम्मिलित होता है जिनका औपचारिक सरकारी संस्थाओं से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में निकट का सम्बन्ध होता है जैसा कि एम. कर्टिस ने भी स्पष्ट लिखा है कि, "राजनीतिक संस्थाओं और राजनीतिक व्यवहार की कार्य-प्रणाली में महत्त्वपूर्ण नियमितताओं, समानताओं और असमानताओं से तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध है।"

अन्त में तुलनात्मक राजनीति के विषय-क्षेत्र के सम्बन्ध में निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि इसका सम्बन्ध शासन प्रणालियों की विभिन्नता एवं समानता दोनों से ही है परन्तु, समानताओं से अधिक महत्त्व असमानताओं का है। ऐसा इसलिए है कि आधारभूत दृष्टि से तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक समाज और शासन-तन्त्र की पारस्परिकता व विविध राजनीतिक व्यवहारों से सम्बन्धित प्रक्रियाओं की तुलना की जाती है, और यह प्रक्रियाएं विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की होती है। सामाजिक व्यवस्था का संस्थागत प्रकाशन भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार का होने के कारण राजनीतिक व्यवहार व उससे सम्बन्धित प्रक्रियाओं को भी भिन्न-भिन्न प्रकार का बना देता है। इस विविधता-भिन्नता व विषमतायुक्त राजनीतिक व्यवहार के तुलनात्मक अध्ययन से तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध है।

नोट

1.2 तुलनात्मक राजनीति का विकास (Development of comparative Politics)

तुलनात्मक राजनीति के विकास के प्रमुख चरणों का विवेचन करने से पहले कुछ विवादों की संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है क्योंकि, इन विवादों में दो विवाद प्रमुख हैं–पहला विवाद है, अधि-सिद्धान्तीय (Meta-Theoretical) व दूसरा है, पूर्व-सिद्धान्तीय (Pre-Theoretical) विवाद। इन विवादों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है

अधि-सिद्धान्तीय विवाद, सिद्धान्तों के सिद्धान्त (theory of Theories) से सम्बन्धित है। तुलनात्मक राजनीति में इससे तात्पर्य उस विवाद से है जिसमें तुलनात्मक राजनीति के कुछ विद्वान, इस आधारभूत सिद्धान्त पर मत-विभेद हैं। तुलनात्मक राजनीति के कुछ विद्वान, इस आधारभूत सिद्धान्त, जिस पर इसकी अध्ययन पद्धतियां व विश्लेषण शैली आधारित हैं, को उचित नहीं मानते हैं। यह न केवल इसको चुनौती देती है, वरन् इसका परित्याग करना चाहते हैं। आधुनिक राजनीतिशास्त्रियों की मान्यता है कि इस आधारभूत सिद्धान्त को छोड़ना आवश्यक है। जब तक यह आधारभूतता बनी रहेगी, तब तक तुलनात्मक राजनीति में नवीन पद्धतियों व प्रविधियों का प्रयोग सम्भव नहीं होगा। इस प्रकार, एक तरफ, परम्परावादियों द्वारा इस सिद्धान्त की सार्थकता व उपयोगिता की बात की जाती है, और दूसरी तरफ, आधुनिक राजनीतिशास्त्री इन्हें न केवल अस्वीकार करते हैं, वरन् इन्हें निरर्थक मानते हैं। यह विद्वान तुलनात्मक राजनीति में नये आयाम ढूंढ रहे हैं जिनकी अपनी पद्धति, अपने दृष्टिकोण व आधार हों।

इस प्रकार, आधुनिक राजनीति-विद्वान नकारात्मक ढंग से तो तुलनात्मक राजनीति में लम्बी अवधि से प्रचलित सिद्धान्तों को गलत बता रहे हैं और साकारात्मक ढंग से नये आयामों के नये आधार, जिनकी पद्धति व दृष्किोण भिन्न हों, प्रस्तुत कर रहे हैं। यह सिद्धान्तों का विवाद मौलिक है इससे ही तुलनात्मक राजनीति का पुरातन से आधुनिक में प्रवेश की अड़चनों का आभास मिलता है। यह विवाद आज भी बना हुआ है। एक तरफ, राजनीतिक प्रक्रियाओं की विभिन्नताएँ व राजनीतिक व्यवहार की विचित्रताएँ, तुलनात्मक विश्लेषण को चुनौती दे रही हैं, और परम्परागत अध्ययन दृष्टिकोण को ही, ज्ञान की वर्तमान सीमाओं में सर्वश्रेष्ठ ठहरा रही हैं तो दूसरी तरफ, इन चुनौतियों का सामना करने के लिए नई अवधारणाएँ, नई अध्ययन पद्धतियाँ व नवीन दृष्टाकोण और उपागम प्रस्तुत किए जा रहे हैं। यह सिद्धान्तों का विवाद ही अधि-सिद्धान्तीय विवाद कहा जाता है।

पूर्व-सिद्धान्तीय विवाद से तात्पर्य उस स्थिति से सम्बन्धित विवाद से है, जो सिद्धान्त से पूर्व की स्थिति से सम्बद्ध है। किसी भी शास्त्र में सिद्धान्त निर्माण की तीन अवस्थाएँ या स्तर होते हैं। यह तीन स्तर हैं–परिकल्पनाकरण (hypothesisation) सामान्यीकरण व सैद्धांतीकरण। पूर्व-सिद्धान्तीय विवाद का संबंध पहले व दूसरे स्तरों से है। आधुनिक तुलनात्मक राजनीति अभी तक परिकल्पनाकरण व सामान्यीकरण से आगे नहीं बढ़ पाई है। इन स्तरों के संबंध में भी अनेक विवाद हैं। हेरी एक्सटीन ने इन विवादों के कारणों पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि "तुलनात्मक राजनीति के बारे में सबसे अधिक आधारभूत बात यह है कि आज यह ऐसा अनुशासन है जिसमें अत्यधिक विवाद है, क्योंकि यह शास्त्र एक प्रकार की विश्लेषण शैली से दूसरे प्रकार की शैली में संक्रमण की अवस्था में है।"

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तुलनात्मक राजनीति में विवाद ही विवाद हैं। इस अनुशासन का कोई सरल व सीधा विवेचन सम्भव नहीं। इसकी वर्तमान अवस्था को समझने के लिए हेरी एक्सटीन के अनुसार तीन बातें करनी होंगी। **प्रथम** तो इसके विकास का ऐतिहासिक विवेचना करना होगा। **दूसरे,** यह समझाना होगा कि यह अनुशासन वर्तमान मतभेदों की अवस्था में कैसे आया? और **तीसरे**, इसके वर्तमान विचारकों में व्याप्त प्रमुख विवादों व उनकी इस शास्त्र से अपेक्षाओं की व्याख्या करनी होगी। इन तीनों प्रश्नों के उत्तर परस्पर गठबन्धित हैं और इस शास्त्र के विकास का ऐतिहासिक विवेचन करने पर बहुत कुछ स्पष्ट हो सकेगा। इसलिए तुलनात्मक राजनीति के विकास पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

नोट

तुलनात्मक राजनीति की परम्परागत धारणा (The Classical Tradition of Comparative Politics)

तुलनात्मक राजनीतिक का इतिहास लगभग उतना ही प्राचीन है जितना राजनीतिक चिन्तन का इतिहास है। सम्पूर्ण लिखित इतिहास ही तुलनात्मक राजनीति का इतिहास कहा जा सकता है। इसके सर्वप्रथम चिन्तक व लेखक होने का श्रेय अरस्तू को ही प्राप्त है। अरस्तू की भूमिका तुलनात्मक राजनीति को ठोस आधार देने में न केवल महत्त्वपूर्ण मानी जाती है, वरन् कई कारणों से मौलिक भी कही जा सकती है। अरस्तू ने जिन समस्याओं को तुलनात्मक विश्लेषण के लिए चुना व जिन पद्धतियों का राजनीतिक अध्ययन में प्रचलन किया, वे आज भी तुलनात्मक राजनीति में प्रचलित हैं। अरस्तू ने राजनीतिशास्त्र को अनुशासन के रूप में प्रधानता दी, और इस बात पर बल दिया कि राजनीति का अध्ययन इस प्रकार होना चाहिए जिससे राजनीति सम्बन्धी ज्ञान का विकास एक शास्त्र के रूप में किया जा सके। जब किसी अध्ययन को शास्त्र का रूप देना होता है तो सबसे पहले उसकी अध्ययन पद्धति की खोज की जाती है जिससे यह पता लगाया जा सके कि वह कौन-कौन सी पद्धतियां है जो उसे शास्त्र बनाने में अधिक से अधिक सहायक होंगी? अरस्तू ने सर्वप्रथम उन पद्धतियों को बताया और तुलनात्मक राजनीति अध्ययन को शास्त्र के रूप में विकसित करने का प्रारम्भिक प्रयास किया।

अरस्तू ने तुलनात्मक राजनीति को केवल सैद्धान्तिक बल ही नहीं दिया, अपितु तत्कालीन विश्व में प्रचलित 158 संविधानों का तुलनात्मक विश्लेषण करके राजनीतिक अध्ययन को सुनिश्चित तथ्यों पर आधारित किया। आनुभविक विश्लेषण का यह सर्वप्रथम प्रयोग था। अरस्तू ने अपनी पुस्तक **पोलिटिक्स** में राजनीति की अध्ययन पद्धतियों संबंधी प्रश्न उठाये और अनेक प्रश्नों का स्वयं ही इस पुस्तक में उत्तर भी दिया। अरस्तू ने प्लेटो द्वारा प्रयुक्त निगमनात्मक पद्धति (deductive method) को राजनीतिशास्त्र में पर्याप्त नहीं मानकर आगमनात्मक पद्धति (inductive method) पर बल दिया। पद्धतियों के प्रति अरस्तू का यह विशेष लगाव **पोलिटिक्स** को एक पद्धति सम्बन्धी पुस्तक बना देता है, जिसमें सर्वत्र पद्धतियों संबंधी प्रश्न उठाये गये हैं। अन्त में यह कहना उपयुक्त होगा कि अरस्तू 'तुलनात्मक पद्धति' के प्रवर्तक होने के कारण 'तुलनात्मक राजनीति' के संस्थापक भी थे। उन्होंने सरकारों के वर्गीकरण के लिए सुनिश्चित आधार बताए और तुलनात्मक पद्धति को प्रचलित किया। इसलिए अरस्तू का तुलनात्मक राजनीति में विशेष स्थान व महत्त्व है।

टास्क तुलनात्मक राजनीति का प्रथम चिन्तक और लेखक होने का श्रेय किसे प्राप्त है?

मैकियावेली व पुनःजागरण काल (Machiavelli and Renaissance)

तुलनात्मक राजनीति का आधुनिक अध्ययन, पुनःजागरण काल के राजनीतिक चिन्तन से आरम्भ हुआ माना जाता है। इस काल में राज्य को 'दैवी' (divine) नहीं 'मानवकृत' माना गया और इसलिए इसके पुनर्गठन या नव-निर्माण का या यों कहें इसमें सुधार मार्ग प्रशस्त हुआ।

मैकियावेली पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के इस सांस्कृतिक पुनःजागरण काल का ही शिशु था। उसने राजनीति-शास्त्र में पद्धति सम्बन्धी प्रश्न फिर उठाए और राजनीतिक अध्ययन को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने का अप्रत्यक्ष प्रयास किया। तुलनात्मक राजनीति को तो मैकियावेली की महत्त्वपूर्ण देन रही है, क्योंकि उसके राजनीति सम्बन्धी सभी निष्कर्ष विभिन्न शासन व्यवस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन पर ही आधारित हैं। उसकी पुस्तक **प्रिन्स** (Prince) के अध्ययन से, तुलनात्मक राजनीतिक अनुशासन को उसकी देन का संकेत मिलता है। इस पुस्तक में मैकियावेली ने यह व्यक्त किया है कि राजनीति का व्यवस्थित व तुलनात्मक अध्ययन क्यों आवश्यक है? उसके चिन्तन व लेखन से यह स्पष्ट होता है कि राज्य मनुष्य द्वारा निर्मित संस्था है और राजनीति का उद्देश्य सामाजिक अभियन्त्रण (social engineering) है।

नोट

मैकियावेली ने बताया कि राज्य मनुष्य द्वारा निर्मित है इसलिए इनमें भिन्नताएं पाई जाती हैं। इन विविध राजनीतिक व्यवस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन से श्रेष्ठतर व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार से रचे गए राज्य विभिन्न प्रकार से कार्य करते हैं। इनमें से कुछ अच्छे तो कुछ बुरे हो सकते हैं। यह अच्छे व बुरे राज्य का ज्ञान किसी शासन व्यवस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन से ही सम्भव है। इस प्रकार मैकियावेली द्वारा प्रस्तावित तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर राजनीतिक व्यवहार के बारे में प्रारम्भिक सामान्यीकरण कर सकना सम्भव है।

मैकियावेली के राजनीतिक चिन्तन से एक बात यह भी उभरती है कि राजनीति का उद्देश्य सामाजिक अभियन्त्रण है। प्रत्येक राष्ट्र यह चाहता है कि उनके राजनीतिक कार्यकलापों के फलस्वरूप श्रेष्ठतम समाज की रचना हो। समाज की ऐसी रचना के लिए राजनीतिज्ञ भिन्न-भिन्न मार्ग अपनाते हैं। इस कारण उनके कार्यों के प्रतिमान सर्वोत्तम है? इसके उत्तर के लिए अनेक देशों के शासकों के कार्यकलापों के प्रतिमानों का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक हो जाता है। यही मैकियावेली ने भी किया और इस कारण वह तुलनात्मक राजनीति का प्रेरक बना।

मैकियावेली ने सर्वोत्तम राजनीति व सामाजिक व्यवस्था के ज्ञान के लिए विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाओं की तुलना को अनिवार्य माना है। स्वयं उसने शासकों को परामर्श देने के लिए विभिन्न देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं व शासकों के कार्यों का अध्ययन किया और उनकी परस्पर तुलना कर निष्कर्ष निकाले। यह निष्कर्ष **प्रिन्स** नामक पुस्तक में शासक को सुझाव के रूप में व्यक्त हुए। उदाहरण के रूप में उसने बताया कि शासन को 'किराये के सैनिकों' (mercernary soldiers) पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। इस सामान्यीकरण की प्रामाणिकता के लिए मैकियावेली ने विभिन्न देशों के शासकों के तुलनात्मक आधार पर ही एकत्रित किए उदाहरण दिए। तुलनात्मक राजनीति को यह उनकी अप्रत्यक्ष देन है। उसने तुलनात्मक राजनीति पर कोई पुस्तक तो नहीं लिखी, परन्तु अपनी पुस्तक **प्रिन्स** में विभिन्न शासन व्यवस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष सम्मिलित करके, तुलनात्मक राजनीति अध्ययन का महत्त्व स्पष्ट किया।

हेरी एक्सटीन ने **प्रिन्स** का तुलनात्मक पद्धति की दृष्टि से मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि यह निम्न स्तर की पुस्तक है। इसके निष्कर्ष भी सुव्यवस्थित या उच्चकोटि के नहीं हैं, और इन पर आधारित सिद्धान्त भी अस्तव्यस्त से ही हैं व इन सिद्धान्तों को जो शास्त्रीय रूप दिया है वह भी विकृत ही है। लेकिन एक्सटीन यह स्वीकार करते हैं कि यदि मैकियावेली ने इतना विकृत ढंग से तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग न किया होता तो आज तुलनात्मक राजनीति में प्रयुक्त शुद्ध पद्धतियों की खोज नहीं हो पाती। इसलिए मैकियावेली द्वारा प्रस्तुत पद्धतियों की खोज नहीं हो पातीं इसलिए मैकियावेली द्वारा प्रस्तुत पद्धतियां, तुलनात्मक अध्ययन की वर्तमान की परिशुद्ध शैलियों की पृष्ठभूमि मानी जा सकती हैं। इस प्रकार, यह कहना उचित होगा कि मैकियावेली की तुलनात्मक राजनीति को अप्रत्यक्ष देन भी अत्यन्त महत्त्व की है।

नोट्स मैकियावेली समाज को सम्बन्धों का प्रतीक बताकर इन सम्बन्धों की भिन्नता का संकेत देता है। यह सम्बन्ध एक देश में ही भिन्न-भिन्न प्रकार के नहीं होते, वरन् हर देश में अलग-अलग प्रकार के होते हैं। इससे यह प्रश्न सामने आता है कि किस समाज में सम्बन्ध श्रेष्ठतर हैं? मैकियावेली ने श्रेष्ठतर समाज व्यवस्था का ज्ञान भी तुलनात्मक अध्ययन से ही सम्भव माना है।

नोट

मोन्टेस्क्यू व बुद्धिवाद युग (Montesquieu and The Enlightment): बुद्धिवाद के युग में तुलनात्मक राजनीति की पद्धतियों को छोड़ जिन समस्याओं को उठाया गया तथा जो सिद्धान्त प्रतिपादित किए गये वे आधुनिक ही नहीं वरन् अधिक परिशुद्ध भी दिखाई देते हैं। इनमें मोन्टेस्क्यू की कृति **दि स्पिरिट आफ दी लॉज** (The Spirit of the Laws) आश्चर्यजनक रूप में आधुनिक है।

मोन्टेस्क्यू भी, मैकियावेली की तरह ही अपने चिन्तन का लक्ष्य मूलत: राजनीतिज्ञता तक सीमित रखता है। परन्तु उसका उद्देश्य यह बताने के बजाय कि सरकारें किस प्रकार व्यवहार करें, यह बताना अधिक था कि सरकारों का संगठन किस प्रकार किया जाए? उसने आगमनात्मक पद्धति का प्रयोग संवैधानिक अभियन्त्रण (Constitutional Engineering) में किया। मोन्टेस्क्यू, संविधान निर्माण की कला को न केवल विकसित ही करना चाहता था, वरन् उसे वैज्ञानिक आधार भी प्रदान करना चाहता था। उसकी मान्यता थी कि अगर राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था व वातावरण में सन्तुलित सम्बन्ध स्थापित किया जाए तो उचित संविधान का निर्माण सम्भव होगा। उसका यह भी कहना था कि सामाजिक व्यवस्था स्वयं मानव द्वारा निर्मित है। यह सामाजिक व्यवस्था, मोन्टेस्क्यू के अनुसार, सम्बन्धों व संगठनों का ही प्रतीक है। इन सम्बन्धों और संगठनों की प्रकृति मनुष्यों द्वारा बदली जा सकती है। यह सामाजिक परिवर्तन को एक तकनीक कहता है और इसे मनुष्यों द्वारा संचालित मानता है।

इन दार्शनिक विचारों को पुस्तक रूप देते समय मोन्टेस्क्यू को तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग अनिवार्य दिखाई दिया। तुलनात्मक पद्धति के द्वारा ही वह देख सकता था कि विभिन्न समाजों में से किन समाजों के संगठन श्रेष्ठतर हैं? इसी के द्वारा ही, वह देख सकता था कि इन सम्बन्धों व संगठनों को मनुष्य ने बदलने का किस प्रकार प्रयत्न किया है और यह प्रयत्न कहाँ तक सफल हुए हैं? अगर सफल हुए हैं तो क्यों और नहीं हुए हैं तो क्यों नहीं हुए हैं? इन सब प्रश्नों के उत्तरों की तलाश ने उसे तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करने की अवस्था में अनिवार्यत: ला दिया। इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन में उसके विचारों का मुख्य बिन्दु तुलनात्मक पद्धति पर बल देना बन गया। इसके अलावा भी मोन्टेस्क्यू की तुलनात्मक राजनीति को विशेष रूप से यह देन रही है–

(क) राजनीतिक व्यवस्थाओं का संरचनात्मक तथा प्रकार्यात्मक विश्लेषण (A structural and functional analysis of Political systems)– मोन्टेस्क्यू ने यह बताया कि राजनीतिक व्यवस्थाओं को न केवल संगठनों की तुलना से समझा जा सकता है, और न ही केवल कार्यों के सन्दर्भ में इन्हें समझना सम्भव है। इनमें से किसी एक आधार से राजनीतिक व्यवस्थाओं की वास्तविकताओं को नहीं समझा जा सकता। इसलिए उन्होंने बताया कि राजनीतिक व्यवस्थाओं को समझने के लिए उनके संगठनों व क्रियाओं का विश्लेषण करना आवश्यक है। उसने यह भी बताया कि राजनीतिक व्यवस्थाओं का अलग-अलग विश्लेषण करना उपयोगी नहीं होगा। यह विश्लेषण तुलनात्मक करना होगा। मोन्टेस्क्यू द्वारा संरचनाओं और कार्यों, दोनों ही को तुलनात्मक विश्लेषण में सम्मिलित करना वास्तव में राजनीतिक व्यवस्थाओं के आधुनिकतम उपागम, संरचनात्मक तथा प्रकार्यात्मक, का संकेत देना है।

(ख) राजनीतिक व्यवस्थाओं की प्रकारणा (Typology of Political Systems)– मोन्टेस्क्यू ने स्पष्ट किया कि राजनीतिक व्यवस्थाओं के संगठनों व प्रक्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन अपने आप में पूर्ण नहीं है। उसने कहा कि राजनीतिक व्यवस्थाएं, तुलनात्मक अध्ययन अपने आप में पूर्ण नहीं है। उसने कहा कि राजनीतिक व्यवस्थाएँ, तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर वर्गीकृत की जायें और इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि उनके संवर्ग बनाए जा सकें। उसने विभिन्न शासन व्यवस्थाओं के वर्गीकरण के साध्य को प्राप्त करने के साधन के रूप में तुलनात्मक पद्धति को अपनाया। इस प्रकार मोन्टेस्क्यू द्वारा तुलनात्मक पद्धति हर प्रकार के राजनीतिक विश्लेषण के लिए अपरिहार्य मानी गई।

(ग) राजनीतिक व्यवस्था, समाज, अर्थव्यवस्था व परिवेश में सम्बद्धता (Linkages between polity, society, economy and ecology) – प्रत्येक राज्य में, समाज, राजनीतिक व्यवस्था, अर्थव्यवस्था और परिवेश में अटूट सम्बन्ध होता है। सम्बन्ध भिन्न-भिन्न प्रकार का हो सकता है। इसलिए तुलनात्मक पद्धति से ही इन संबंधों की श्रेष्ठता का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। मोन्टेस्क्यू ने तुलनात्मक राजनीति के विषय-क्षेत्र का भी संकेत दिया कि इसमें केवल राजनीतिक व्यवस्था ही नहीं, कुछ अंशों में सामाजिक, आर्थिक परिवेश के राजनीतिक व्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का भी अध्ययन सम्मिलित किया जाना चाहिए।

नोट

(घ) राजनीतिक गत्यात्मकता के यान्त्रिकी सिद्धान्तों का प्रतिपादन (A set of Mechanistic Theories of Political Dynamics)– मोन्टेस्क्यू का विचार था कि राजनीतिक गतिविधियों के विषय में सिद्धान्त निर्माण करते समय प्रमुख बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि सिद्धान्तों का आधार मनुष्यों की गतिविधियां या मानव-क्रिया ही रहें। राजनीतिक प्रक्रियाओं का उसने इस प्रकार अध्ययन करने का सुझाव दिया कि उसमें मनुष्य ही केन्द्र रहे। यह भी तुलनात्मक ढंग से होने पर ही, राजनीतिक व्यवहार की वास्तविक गत्यात्मकताओं की तह तक पहुंचा जा सकेगा। इससे स्पष्ट है कि मोन्टेस्क्यू ने तुलनात्मक राजनीति को प्रत्यक्ष रूप से पोषित किया व विशेषकर तुलनात्मक राजनीति को प्रत्यक्ष रूप से पोषित किया व विशेषकर तुलनात्मक पद्धति को परिष्कृत करके तुलनात्मक राजनीति का प्रणेता बना।

1.3 राजनीतिक विकास का अर्थ एवं परिभाषा (The Meaning and Definition of Political Development)

राजनीतिक विकास का अर्थ और परिभाषा करने से पहले हमें इसके सम्बन्ध में प्रचलित उन दृष्टिकोणों को समझ लेना आवश्यक है जो विकास को विशेष मार्ग पर अग्रसर प्रक्रिया के रूप में लेते हैं। राजनीतिक विकास को लेकर ऐसे दो दृष्टिकोण हैं–

(अ) राजनीतिक विकास का एक-मार्गी दृष्टिकोण (unilinear view) , और

(ब) राजनीतिक विकास का बहु-मार्गी दृष्टिकोण (multi-linear view) ।

(अ) राजनीतिक विकास पर एक-मार्गी दृष्टिकोण रखने वाले विचारक यह मानते हैं कि सभी राष्ट्र विकास के मार्ग से होते हुए आगे की ओर बढ़ रहे हैं। इनकी इस सम्बन्ध में पहली मान्यता है कि सभी राज्यों में राजनीतिक विकास का केवल एक ही मार्ग है। इस विचार के समर्थकों की दूसरी मान्यता है कि दुनिया के सभी राष्ट्र विकास के इस एक मार्ग पर विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में हैं। इनकी तीसरी मान्यता यह है कि राजनीतिक विकास के लिए प्रयत्नशील राष्ट्रों के सामने विकसित राज्यों का आदर्श है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों का अभिमत है जिनमें से किसी एक आदर्श को विकसित राजनीतिक व्यवस्था का आदर्श माना जा सकता है। पहला आदर्श पाश्चात्य जगत के राज्यों का, दूसरा सोवियत रूस का और तीसरा आदर्श चीन का है।

इस दृष्टिकोण में राजनीतिक विकास का एक मार्ग और एक मार्ग के कारण विकास की एक दिशा का होना ही स्वीकार किया गया है। अत: इस आधार पर किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को अविकसित से विकसित की निरन्तर-रेखा पर अंकित करके समझना कठिन नहीं होगा। इस दृष्टिकोण के प्रतिपादकों का कहना है कि राजनीतिक विकास के संकेतकों (indicators) का निश्चय करके राजनीतिक व्यवस्थाओं को इस विकास-मार्ग पर अंकित करते ही उनकी राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं की गत्यात्मकताओं का ज्ञान हो जाएगा। इससे राजनीतिक व्यवस्थाओं को सुनिश्चित संवर्गों में विभक्त या वर्गीकृत करना आसान हो जाता है। इस विकास मार्ग पर दो राजनीतिक व्यवस्थाओं को किसी एक संकेतक, लक्षण या परिवर्त्य के आधार पर अंकित करके तुलनात्मक विश्लेषण करना भी अत्यन्त सरल हो जाता है। उदाहरण के लिए राजनीतिक संस्कृति के लौकिकीकरण की विशेषता के आधार पर कुछ राजनीतिक व्यवस्थाओं को विकास मार्ग पर निम्न प्रकार से चित्रित करके उनकी प्रकृति को समझा जा सकता है।

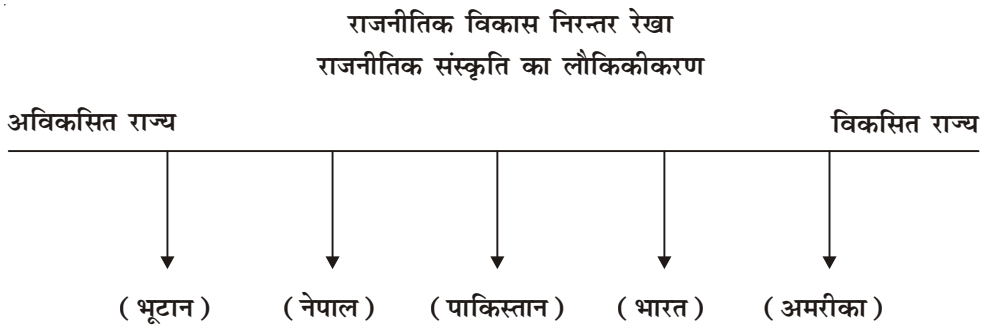

चित्र 1.4 संस्कृति के लौकिकीकरण के आधार पर राज्यों का विकास अंकन

नोट

चित्र 1.4 में हमने विभिन्न राज्यों का संस्कृति के लौकिकीकरण के आधार पर जो विकास निरन्तर पर अंकन किया है वह तथ्यों पर आधारित नहीं है। इस पर मतभेद ही होंगे। क्योंकि, राज्यों का यह स्थानांकन, केवल इस दृष्टिकोण के समर्थकों के अनुसार विकास के इस एक मार्गी विचार की तुलनात्मक विश्लेषणों में उपयोगिता स्पष्ट करने के लिए मनमाने ढंग से ही किया गया है।

(ब) राजनीतिक विकास का बहु-मार्गी विचार इससे भिन्नता रखता है। विकास के दूसरे दृष्टिकोण के समर्थक राजनीतिक विकास को बहुमार्गी मानते हैं और तीन दलीलें इसकी पुष्टि के लिए देते हैं। उनकी पहली मान्यता है कि राजनीतिक विकास बहु-दिशाई व बहु-आयामी (multi-directional and multi-dimensional) है। क्योंकि, स्वयं विकास की अनेक दिशाएँ होती हैं। उनके अनुसार राजनीतिक विकास सामान्य विकास की धारा में समाई हुई, किन्तु, स्पष्ट रूप से विशिष्ट धारा है। जब समाजों का विकास बहु-दिशाई है तो उनका राजनीतिक विकास भी बहु-दिशाई हो जाता है। इनकी दूसरी मान्यता पहली मान्यता का परिणाम कही जा सकती है। यह मान्यता राजनीतिक विकास को बहु-मार्गी मानती है। इस मान्यता के पीछे यह धारणा है कि विकास बहुमार्गीय ही होता है और बहु-मार्गी ही हो सकता है। क्योंकि, ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों से विकास के उद्देश्य व लक्ष्य निर्धारित होते हैं और इसी से विकास की दिशा का निरूपण होता है। अत: विकास की तरह ही राजनीतिक विकास भी बहु-मार्गी है। इन दो मान्यताओं से इनकी तीसरी मान्यता उभरती है। इसके अनुसार राजनीतिक विकास के आदर्श या गन्तव्य एक-से नहीं होते हैं। सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं के सामने कोई एक या एक-सा विकास-आदर्श नहीं होता है। विकसित और साम्यवादी राज्यों में भी इन आदर्शों को लेकर इतनी भिन्नताएँ हैं कि उनका आदर्श या लक्ष्य अपना सकना सम्भव ही नहीं है।

राजनीतिक विकास के मार्ग को लेकर इन दोनों दृष्टिकोणों में आंशिक समानता ही दिखाई देती है। पश्चिम, सोवियत रूस या चीन का राजनीतिक विकास प्रतिमान अब स्वीकार नहीं किया जाता है। विकासशील राज्यों का राजनीतिक विकास अगर एक दिशा में ही रहा होता तो उनकी प्रकृति को समझना अत्यन्त सरल हो जाता। वास्तविक कठिनाई यहाँ यह आती है कि इन देशों में विकास की न एक दिशा है और न ही विकास का कोई एक मार्ग है। यहाँ तक कि, राजनीतिक विकास के विभिन्न पहलुओं को लेकर भी भिन्नताएँ और विविधताएँ पाई जाती हैं। इसलिये राजनीतिक विकास के मार्ग के सम्बन्ध में दूसरा दृष्टिकोण अधिक तर्कसंगत व सही लगता है। किन्तु इन दृष्टिकोणों से राजनीतिक विकास के अर्थ के बारे में केवल इतना स्पष्ट हो पाया है कि यह बहुमुखी और अनेक-मार्गी प्रक्रिया है।

राजनीतिक विकास के अर्थ को लेकर अभी भी विचारकों में मतभेद बना हुआ है। इसके अर्थ पर मतभेद का प्रमुख कारण इसकी व्याख्या का विचारक विशेष का दृष्टिकोण है। उदाहरण के लिए, स्पर्ट एमर्सन, लिपसेट, कोलमैन और कटराइट ने राजनीतिक विकास को आर्थिक विकास की राजनीतिक पूर्व-शर्त के रूप में समझने का प्रयास किया है। जबकि रोस्टोव जैसे अर्थशास्त्री ने इसको औद्योगिक समाजों की विशेष राजनीति बताया है। गुन्नार मिर्डल और लरनर जैसे समाजशास्त्रियों ने राजनीतिक विकास को राजनीतिक आधुनिकीकरण का पर्याय बताया है। बिंडर इसको राष्ट्रीय राज्य का प्रचालक या संघटक मानता है। रिग्स ने इसकी व्याख्या प्रशासकीय एवं कानूनी विकास के आधार पर की है। डायच और फार्ल्स ने इसको जन-संचारण और जन-सहभागिता माना है। आमन्ड और कोलमैन राजनीतिक विकास को लोकतंत्र का पर्याय कहते हैं। साम्यवादी और तानाशाही शासन व्यवस्थाओं के समर्थक स्थायित्व और व्यवस्थित परिवर्तन को राजनीतिक विकास का नाम देते हैं। कुछ विचारक राजनीतिक विकास को शक्ति एवं संगठन का एक रूप मानते हैं। आमन्ड, कोलमैन, ब्लेक, आयन्स्टैड और कोर्न होजर ने राजनीतिक विकास को सामाजिक परिवर्तन की बहु-दिशा-युक्त प्रक्रिया के एक पहलू के रूप में विवेचित किया है।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक विकास की व्याख्याएँ और उसके विभिन्न अर्थ विचारक के दृष्टिकोण विशेष पर निर्भर करते हैं। समाजशास्त्री और अर्थशास्त्री के दृष्टिकोणों की भिन्नता के कारण इन दोनों से सम्बन्धित विचारक राजनीतिक विकास की अलग-अलग ढंग से व्याख्या करते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि राजनीतिक विकास का सही अर्थ समझने से पहले इसकी विभिन्न व्याख्याओं के भ्रमजाल का विवेचन करके यह देखना होगा कि इसका किन-किन अर्थों में प्रयोग किया जाता रहा है। ल्यूशियन पाई का अभिमत है कि राजनीतिक विकास

नोट

की विभिन्न व्याख्याएं इसको अलग-अलग दृष्टिकोणों से देखने और समझने की कोशिश का परिणाम है। अत: राजनीतिक विकास का अर्थ और परिभाषा समझने से पहले इसकी विभिन्न दृष्टिकोणों से की गई व्याख्याओं को विस्तार से समझना आवश्यक है, जिससे इसके एक पक्षीय या दृष्टिकोण विशेष पर आधारित अर्थ से बचा जा सके। ल्यूशियन पाई ने राजनीतिक विकास के विभिन्न अर्थ और व्याख्याओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि राजनीतिक विकास की अवधारणा की इतने दृष्टिकोणों से व्याख्या की जा सकती है कि इन सबकी सूची बनाना ही सम्भव नहीं है। स्वयं पाई ने राजनीतिक विकास की दस व्याख्याओं का उल्लेख करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि किस तरह यह सब राजनीतिक विकास का भ्रामात्मक अर्थ में प्रयोग है। इन व्याख्याओं का संक्षेप में उल्लेख करके ही राजनीतिक विकास का सही अर्थ समझा जा सकता है। अत: हम इन्हें यहाँ संक्षेप में ही दे रहे हैं। इनका विस्तार से विवेचन पाई ने अपनी पुस्तक **आस्पेक्ट्स आफ पोलिटिकल डेवेलपमेन्ट** में किया है। पाई के द्वारा प्रयुक्त शीर्षकों के आधार पर ही हम यह व्याख्याएँ कर रहे हैं।

(क) राजनीतिक विकास आर्थिक विकास की राजनीतिक पूर्वशर्त के रूप में (Political development as the pre-requisite of economic development) – इस व्याख्या के समर्थक स्पर्ट एमर्सन, लिपसेट, कोलमैन और कटराइट हैं। उनके अनुसार राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक उन्नति की समुचित व्यवस्था करने में सक्षम होती है। अत: राजनीतिक विकास, राजनीति की एक ऐसी स्थिति को कहा जाए जो आर्थिक उन्नति, प्रगति और समृद्धि में सहायक हो। इन विद्वानों के अनुसार जो राजनीतिक व्यवस्था आर्थिक उन्नति में सहायक नहीं होगी। उस व्यवस्था को राजनीतिक दृष्टि से विकसित नहीं कहा जायेगा।

राजनीतिक विकास की यह व्याख्या न व्यावहारिक है और न ही तुलनात्मक विश्लेषणों के लिए किसी तरह से उपयोगी हो सकती है। इससे राजनीतिक विकास, आर्थिक विकास के साथ जुड़कर रह जाता है। इन दोनों को गठबन्धित करना न तर्क-संगत है और न ही यथार्थवादी। अत: राजनीतिक विकास का यह अर्थ और व्याख्या स्वीकार नहीं की जा सकती।

(ख) औद्योगिक समाजों की विशेष राजनीति के रूप में राजनीतिक विकास (Political development as the politics typical of industrial societies) – राजनीतिक विकास की यह धारणा भी आर्थिक विकास से जुड़ी हुई है। इसमें यह माना गया है कि औद्योगिक जीवन भी एक ऐसे सामान्य प्रकार के राजनीतिक जीवन को प्रकट करता है जिसको हर समाज प्राप्त करना चाहता है। इसका यही अर्थ है कि औद्योगिक समाज, चाहे उनकी राजनीतिक प्रकृति कैसी भी हो, राजनीतिक व्यवहार और कार्य-संचालन के विशेष मापदण्ड प्रस्तुत करते हैं जो राजनीतिक विकास में सहायक होते हैं और सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं के लिए विकास के समुचित लक्ष्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। रोस्टोव ने आर्थिक विकास को परस्पर सम्बन्धित बताया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि आर्थिक विकास का हर स्तर राजनीतिक संगठन की संरचनात्मकता के साथ सामयवी सम्बन्ध रखता है। यह व्याख्या भी आर्थिक पक्ष पर बल देने वाली और आर्थिक विकास के साथ राजनीतिक विकास को जोड़ने वाली होने के कारण अमान्य हो जाती है।

(ग) राजनीतिक आधुनिकीकरण के रूप में राजनीतिक विकास (Ploticial development as political modernisation) – राजनीतिक विकास के इस पहलू पर अलग शीर्षक के अन्तर्गत विस्तार से विचार किया जाएगा इसलिए यहां इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि इस रूप में राजनीतिक विकास और राजनीतिक आधुनिकीकरण को एक-सा मान लिया जाता है। अगर कोई राजनीतिक समाज राजनीतिक दृष्टि से आधुनिक है अर्थात उसमें सत्ता की बुद्धिसंगतता, संरचनाओं का विभिन्नीकरण और विशेषीकरण तथा जन-सहभागिता है तो वह राजनीतिक विकास की अवस्था मानी जाएगी। किन्तु, राजनीतिक विकास और राजनीतिक आधुनिकीकरण समानार्थी नहीं है। एक राजनीतिक व्यवस्था राजनीतिक दृष्टि से विकसित हो सकती है, किन्तु राजनीतिक दृष्टि से आधुनिक भी होगी यह आवश्यक नहीं है। अत: इन दोनों को एक मानकर राजनीतिक विकास की व्याख्या करना राजनीतिक आधुनिकीकरण को संकुचित अर्थ के दायरे में बांधना है।

नोट

(घ) राष्ट्रीय राज्य के प्रचालक के रूप में राजनीतिक विकास (Political development as the operation of nation state)– राजनीतिक व्यवस्थाएं अन्ततः एक राष्ट्र के निर्माण से ही तो सम्बोधित होती हैं। अतः राजनीतिक विकास का मापदण्ड, राष्ट्रीयता की भावना के विकास और एक राष्ट्रीय राज्य के निर्माण से जोड़ दिया जाता है। इसमें यह माना गया है कि राजनीतिक जीवन का संगठन और राजनीतिक गतिविधियों का संचालन उन मानदण्डों के अनुसार होना चाहिए जो एक आधुनिक दृष्टि से राष्ट्रीय राज्य से अपेक्षित है। इस अर्थ में राजनीतिक विकास, राष्ट्रीय राज्य का समानार्थी होकर इसकी स्थापना के साथ रूक जाना चाहिए। यहां हम यह कह सकते हैं कि राजनीतिक विकास कह देना गलत होगा। वैसे अनेक विद्वान इस मत का विरोध करते हैं और यह मानते है कि पश्चिम में राष्ट्रीय राज्य तो अंतिम स्तर तक पहुंच गए हैं और राष्ट्रीय राज्यों के रूप में उनका अन्त समीप है किन्तु उनका राजनीतिक विकास अभी क्रमिक है। इसलिए इस मत को केवल उन राज्यों में ही सही माना जा सकता है जो नवोदित हैं और जहां राष्ट्रवाद एक प्रबल बन्धनकारी शक्ति के रूप में सक्रिय है। अतः राजनीतिक विकास को राष्ट्रीय राज्य के प्रचालक के रूप में भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

(च) प्रशासकीय और विधिक विकास के रूप में राजनीतिक विकास (Political development as administrative and legal development)– कुछ लोग यह मानते हैं कि कोई भी राज्य तब तक विकसित नहीं माना जा सकता जब तक उसके पास सार्वजनिक मामलों का प्रभावशाली प्रशासन करने की व्यवस्था के रूप में विधिसम्मत नौकरशाही नहीं हो। किसी देश में नौकरशाही ही राजनीतिक व्यवस्था को सक्रिय बनाने का माध्यम होती है। इसलिए नौकरशाही की प्रकृति, आकार और आधार राजनीतिक विकास के प्रमुख लक्षण माने जा सकते हैं। नौकरशाही की तरह ही देश में सर्वव्यापी कानूनों के माध्यम से विधि के शासन की स्थापना का होना या नहीं होना भी राजनीतिक विकास के साथ जोड़ा जा सकता है। यही सही है कि राजनीतिक विकास में राजनीतिक संरचनाओं का विभिन्नीकरण और विशेषीकरण होता है और इसको व्यावहारिक बनाने के लिए प्रशासकीय कार्मिकों की अनिवार्य रूप से आवश्यकता पड़ती है पर यह तो स्वेच्छाचारी शासन में भी देखने को मिलता है कि प्रशासन चलाने के लिए वृहत्तर नौकरशाही हो किन्तु इस आधार पर इनको राजनीतिक दृष्टि से विकसित नहीं माना जा सकता है। अतः यह व्याख्या भी भ्रमात्मक ही कही जानी चाहिए।

(छ) जन-संचारण और सहभागिता के रूप में राजनीतिक विकास (Political development as mass mobilization and participation)– राजनीतिक दृष्टि से विकसित राजनीतिक व्यवस्थाओं में जन-संचारण और जन-सहभागिता बढ़ जाती है। यह सहभागिता रचनात्मक ही हो यह आवश्यक नहीं है। जन-संचालन और जन-सहभागिता के नकारात्मक पहलू खतरनाक और राजनीतिक विकास के स्थान पर राजनीतिक पतन के प्रतीक बन सकते हैं। दूसरी पेचीदगी, राजनीतिक विकास की इस व्याख्या से यह उत्पन्न होती है कि जन-सहभागिता का मापदण्ड क्या हो? सोवियत रूस में निर्वाचनों में करीब-करीब शत-प्रतिशत मतदान होता है तथा पश्चिमी जर्मनी में यह मत प्रतिशत 93 तक पहुंच गया था और अमरीका में कुछ राज्यों के स्तर के चुनावों में यह 40 प्रतिशत तक रह जाता है। क्या इन प्रतिशतों को जन-सहभागिता का माप माना जाय। इसका निष्कर्ष पाठकों पर ही छोड़ा जाता है। अतः राजनीतिक विकास को राजनीतिक व्यवस्था में जन-संचालन व जन-सहभागिता से जोड़कर समझना कठिन ही है।

(ज) लोकतन्त्र के निर्माण के रूप में राजनीतिक विकास (Political development as the building of democracy)– लोकतन्त्र के निर्माता के रूप में राजनीतिक विकास की व्याख्या करना तर्कसंगत लगता है। इस अर्थ में राजनीतिक विकास, राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं को प्रतियोगी, स्वतन्त्र तथा जन-सहभागिता के लक्षणों से युक्त करने की प्रक्रिया है। इस विचार के अनेक समर्थक हैं कि लोकतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना यथार्थ में राजनीतिक विकास ही है। ऊपर से देखने पर इन दोनों की परस्पर सम्बन्ध-सूत्रता का अवशोधन होता है किन्तु, लोकतन्त्र का विचार मूल्यों और विचारधाराओं से गठबन्धित है जबकि, राजनीतिक विकास की अवधारणा मूल्यों और विचारधाराओं से उन्मुक्त है। अतः इन दोनों में सम्बन्ध स्थापित कर सकना कठिन हो जाता है।

नोट

(झ) स्थायित्व और व्यवस्थित परिवर्तन के रूप में राजनीतिक विकास (Political development as stability and orderly change)– राजनीतिक विकास को स्थायित्व और व्यवस्थित परिवर्तन की व्यवस्था भी माना जाता है। जिन राजनीतिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन की सुनिश्चित और व्यवस्थित प्रविधियां प्रचलित रही तथा जहां अनावश्यक उथल-पुथल नहीं होती हो वे राजनीतिक विकास की अवस्था में मानी जाती है। यहां स्थायित्व सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सभी पहलुओं से सम्बन्धित लगता है। इसी तरह इन्हीं क्षेत्रों में व्यवस्थित परिवर्तन की व्यवस्था को राजनीतिक विकास कहा जाएगा। इस अर्थ में यह सामान्य विकास की व्याख्या कही जा सकती है, राजनीतिक विकास की व्याख्या यह नहीं हो सकती। राजनीतिक विकास का इन पहलुओं से केवल सम्बंध ही है, यह इन पर पूर्णतया आश्रित नहीं रहता है। इस अर्थ में दो कठिनाइयां और उत्पन्न होती हैं। एक तो यह कि व्यवस्थित परिवर्तन किन विधियों द्वारा निष्पादित परिवर्तन को कहा जाएगा। इस पर सहमति हो ही नहीं सकती। दूसरी कठिनाई यह है कि स्थायित्व के संकेतक कौन-कौन से बनाए जाएं। अत: राजनीतिक विकास को इस रूप में समझने का प्रयास भी विशेष सहायक नहीं है।

(ट) शक्ति-संचारक के रूप में राजनीतिक विकास (Political development as mobilization of power)– राजनीतिक व्यवस्था अपनी पूर्ण शक्ति का प्रयोग किस स्तर अथवा मात्रा में करती है इस आधार पर उनकी विकास अवस्था को मापने की बात भी पर्याप्त महत्त्व रखती है। विकास वाली राजनीतिक व्यवस्थाओं में शक्ति के प्रयोग की आवश्यकता नहीं रहती है। इसमें यह आशय भी सन्निहित है कि राजनीतिक व्यवस्था विकास के लिए कितनी शक्ति समाज से जुटा पाती है। शक्ति जुटाना तभी सम्भव होता है जबकि सरकार को स्वाभाविक जन-समर्थन प्राप्त होता रहे। ऐसी अवस्था तभी आएगी जब शासन में जन-सहभागिता होगी। इसको विकास की स्थिति माना जाता है। यह अर्थ अन्तत: राजनीतिक विकास का लोकतन्त्र के साथ सम्बन्ध कर देता है और वही पेचीदगियां उत्पन्न हो जाती हैं जिनकी चर्चा हम इससे पहले लोकतन्त्र के विकास के रूप में कर आए हैं।

(ठ) सामाजिक परिवर्तन की बहु-दिशायुक्त प्रक्रिया के एक पहलू के रूप में राजनीतिक विकास (Political development as an aspect of a multidimensional process of social change)– इस रूप में राजनीतिक विकास को सामाजिक प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं में से एक पहले मानकर व्याख्यायित किया गया है। इस सम्बन्ध में यह तो ठीक है कि राजनीतिक विकास का परिवर्तन की सामाजिक प्रक्रिया से घनिष्ठ सम्बन्ध है पर इससे यह उसका एक पहलू नहीं बन जाता है। राजनीतिक क्षमता, आर्थिक या सामाजिक क्षमता से अवश्य प्रभावित होती है किन्तु, इनको इसका निर्णायक नहीं माना जा सकता है। इसलिए राजनीतिक विकास को सामाजिक परिवर्तन की बहु-दिशायुक्त प्रक्रिया के एक पहलू के रूप में नहीं समझा जा सकता है।

राजनीतिक विकास की इन व्याख्याओं के संक्षिप्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक विकास की अवधारणा के अर्थ पर अत्यधिक मतभेद है। इस वर्णन से यह भी बात उभरती है कि विभिन्न विचारक, राजनीतिक विकास को अलग-अलग दृष्टिकाणों के आधार पर राजनीतिक विकास का विभिन्न पहलुओं से सम्बन्ध होते हुए भी यह अपने आप में पृथक और सुनिश्चित लक्षणों वाली अवधारणा है। इसलिए इसको किसी व्याख्या विशेष से बांधना न तो वांछनीय है और न ही इसकी वास्तविकता प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है। अगर यथार्थवादी दृष्टिकोण से देखा जाए तो राजनीतिक विकास की यह सभी व्याख्याएं एकपक्षीय और इस कारण अधूरी हैं। इन व्याख्याओं में विचारक के दृष्टिकोण विशेष के आधार पर राजनीतिक विकास को समझाने का प्रयास किया गया है जो आंशिक रूप से ही माना जा सकता है। यही कारण है कि ल्यूशियन पाई ने इन सब व्याख्याओं को एकपक्षीय या अपूर्ण मानकर अस्वीकार किया है और स्वयं अपनी व्याख्या प्रस्तुत की है।

पाई राजनीतिक विकास की अवधारणा पर गहराई से विचार करने वाले विचारकों में प्रमुख और अग्रणी विचारक हैं। पाई के अनुसार राजनीतिक विकास का अर्थ करते समय इसके निर्माणक तत्त्वों को ध्यान में रखना आवश्यक है। उसके अनुसार हम राजनीतिक विकास को तीन स्तरों पर होने वाले विकासों के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। उसके अनुसार राजनीतिक विकास के चिह्न राजनीतिक व्यवस्था के तीन भिन्न-भिन्न स्तरों पर देखे जाते हैं। डा. एस. पी. वर्मा ने इन तीन स्तरों को निम्नलिखित संदर्भों या पहलुओं के रूप में विवेचित किया है- (i) सम्पूर्ण जनसंख्या के सन्दर्भ में, (ii) शासकीय और सामान्य व्यवस्थाई निष्पादन के स्तर के सन्दर्भ में, और (iii) राजनीति के संगठन के सन्दर्भ में।

नोट

अत: राजनीतिक विकास का अर्थ या व्याख्या राजनीतिक व्यवस्था के इन तीन पहलुओं में होने वाले विकासों का समुच्चय है। इन तीनों रूपों में राजनीतिक विकास की व्याख्या करके इसका अर्थ स्पष्ट करना सम्भव होगा। अत: संक्षेप में, इन तीनों का अलग-अलग विवेचन करना आवश्यक है।

(i) सम्पूर्ण जनसंख्या के सन्दर्भ में राजनीतिक विकास की व्याख्या में यह देखा जाता है कि राजनीतिक व्यवस्था की जनता की प्रकृति में कोई मौलिक परिवर्तन हुए हैं या नहीं। अगर किसी व्यवस्था की जनता में अभिवृत्तात्मक व व्यावहारिक परिवर्तन हो जाएं तो इस आधार पर राजनीतिक व्यवस्था को राजनीतिक दृष्टि से विकसित कहा जाएगा। यह परिवर्तन इस प्रकार है- (क) जनता पराधीनता के स्तर पर ऊपर के अधिकारियों के आदेश प्राप्त करने और उनके अनुसार कार्य करने के स्थान पर राजनीतिक निर्णय लेने की प्रक्रिया को निरूपित करने वाली और उनमें सहभागी बन जाए। (ख) जनता राजनीतिक प्रक्रियाओं के प्रति उदासीन या निष्क्रिय न रहकर उनमें अधिकाधिक सहभागी बन जाए। (ग) जनता में समानता के सिद्धान्तों के प्रति अधिक संवेदनशीलता (sensitivity) आ जाए और (घ) सर्वव्यापी नियमों को व्यापकतर स्वीकृति मिलने लग जाए। राजनीतिक व्यवस्था की जनता में इस प्रकार के लक्षणों का आना जनता के स्तर पर राजनीतिक विकास का सूचक है। इसको ल्यूशियन पाई 'समानता' के एक शब्द में अभिव्यक्त करते हैं। अर्थात, जिस राजनीतिक समाज में समानता हो वह राजनीतिक दृष्टि से विकास वाला समाज माना जा सकता है।

(ii) शासकीय और सामान्य व्यवस्थाई निष्पादन के स्तर पर राजनीतिक विकास का अर्थ राजनीतिक व्यवस्था की उस अभिवृद्ध क्षमता से लिया जाता है जिससे वह सार्वजनिक मामलों को आधिकारिक और अच्छी तरह से निष्पादित करने लगती है। राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता के तीन मानदण्ड पूरे होने पर व्यवस्था को विकसित कहा जा सकता है। यह तीन मानदण्ड इस प्रकार है कि राजनीतिक व्यवस्था- (क) राजनीतिक मामलों का उचित प्रबन्ध कर सके, (ख) राजनीतिक विवादों को नियंत्रित रख सके, और (ग) जनता की मांगों का उचित निपटान कर सके। राजनीतिक व्यवस्था तथा शासकों में इन तीनों कार्यों के निष्पादन की क्षमता तो उसे राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता कहा जाता है। इस तरह, राजनीतिक विकास की यह व्याख्या राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता के सन्दर्भ में की गई व्याख्या है।

(iii) राजनीतिक संगठक के रूप में राजनीतिक विकास को राजनीतिक व्यवस्थाओं में संरचनात्मक और प्रक्रियात्मक परिवर्तनों से जोड़ा जाता है। एक विशेष प्रकार की संरचनात्मक व्यवस्था राजनीतिक विकास का लक्षण प्रस्तुत करती है। राजनीति के संगठक के रूप में राजनीतिक विकास वाली राजनीतिक व्यवस्थाओं में यह तीन लक्षण आ जाते हैं- (क) संरचनात्मक विभिन्नीकरण बढ़ जाता है। (ख) संरचनाओं में बहुत अधिक प्रकार्यात्मक विशेषीकरण हो जाता है। (ग) सहभागी संस्थाओं संगठनों में अधिकाधिक एकतामयी समन्वय स्थापित हो जाता है। इस प्रकार, राजनीतिक व्यवस्था के संगठन के सन्दर्भ में राजनीतिक विकास संरचनात्मक विभिन्नीकरण और कार्यात्मक विशेषीकरण का संकेतक है। इससे संरचनाओं की एकता और सामंजस्य को आंच नहीं आती है। उनमें एकता, समन्वय और पारस्परिकता बनी रहती है।

ल्यूशियन पाई के अनुसार राजनीतिक विकास की इस त्रिमुखी व्याख्या के आधार-स्तम्भ समानता, क्षमता और विभिन्नीकरण है। वह उन्हीं राजनीतिक व्यवस्थाओं को राजनीतिक विकास के मार्ग पर अग्रसर मानता है जिनमें जनता में समानता का सिद्धान्त लागू हो, राजनीतिक व्यवस्था और सरकार आने वाली मांगों, विवादों और राजनीतिक मामलों का निष्पादन करने में समर्थ हो और इनसे सम्बन्धित संरचनाएं अलग-अलग और विशेषीकृत होते हुए भी समन्वय और सामंजस्य रखती रहे।

राजनीतिक विकास और राजनीतिक आधुनिकीकरण (Political Development and Political Modernisation)

राजनीतिक विकास को राजनीतिक आधुनिकीकरण और आधुनिकीकरण के समान ही विकास की प्रक्रिया मानने की प्रवृत्ति काफी प्रचलित रही है। सर्वप्रथम हण्टिगटन राजनीतिक विकास को आधुनिकता से पृथक प्रक्रिया माना और यह बताया कि दोनों में संबंध होते हुए भी दोनों पृथक प्रकार की प्रक्रियाएं हैं। उसने आधुनिकीकरण को राजनीतिक विकास का प्रेरक नहीं बताकर राजनीतिक विकास को आधुनिकीकरण लाने वाली प्रक्रियाओं और संरचनाओं से संबंधित माना है। हण्टिगटन के अनुसार राजनीतिक विकास ''राजनीतिक संगठनों और प्रक्रियाओं का संस्थाकरण है।'' इस प्रकार, हण्टिगटन ने राजनीतिक विकास को संस्थाकरण करने के समान मानकर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि अच्छी

नोट

तरह संस्थाकृत राजनीतिक व्यवस्था में अधिक अनुकूलता, जटिलता, स्वायत्तता और क्रमिकता आ जाती है। जो राजनीतिक विकास के संकेतक हैं। इस विचार से राजनीतिक विकास, राजनीतिक आधुनिकीकरण के समान ही विकास-प्रक्रिया नहीं माना जा सकता है। हण्टिगटन ने इसको आधुनिकीकरण के समान ही विकास प्रक्रिया नहीं माना जा सकता है। हण्टिगटन ने इसको आधुनिकीकरण से भिन्न किन्तु, राजनीतिक आधुनिकीकरण से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित प्रक्रिया माना है।

जाग्वाराइब ने राजनीतिक विकास और राजनीतिक आधुनिकीकरण में अन्तर करते हुए यह माना है कि राजनीतिक विकास की अवधारणा राजनीतिक आधुनिकीकरण से अधिक व्यापक और सर्वग्राही है। उसने इस सम्बन्ध में लिखा है, ''राजनीतिक विकास एक प्रक्रिया के रूप में राजनीतिक आधुनिकीकरण तथा राजनीतिक संस्थाकरण का जोड़ है।'' (Political development, as a process, is political modernisation plus political institutionalisation) आयन्टैड ने राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को ऐतिहासिक और प्रकार्यात्मक दोनों ही रूपों में देखने का प्रयास किया है। उसने प्रकार्यात्मक दृष्टि से राजनीतिक आधुनिकीकरण के तीन लक्षणों की चर्चा की है। यह लक्षण है- (क) अत्यधिक विभिन्नीकृत राजनीतिक संरचनाओं का विकास, (ख) केन्द्रीय सरकार की गतिविधियों का बढ़ता हुआ विस्तार और (ग) परम्परागत अभिजनों (elites) का शक्तिहीन होना। इसका अभिमत है। कि संरचनात्मक विविधता और विभिन्नीकरण और निरंतर संरचनात्मक परिवर्तन के परिणामस्वरूप केन्द्र और बृहतर समूहों के बीच पारस्परिकता और अन्त:क्रिया बढ़ जाती है और उभरती संरचनाओं की सामर्थ्य निरंतर परिवर्तन का मुकाबला करने और दीर्घकालिक विकास लाने वाली हो जाती है। राजनीतिक आधुनिकीकरण को ऐतिहासिक दृष्टि से देखते हुए आयन्स्टैड ने इसके दो चरणों की चर्चा की है। प्रथम स्थिति में, मध्यम वर्ग निर्णय-केन्द्र में सम्मिलित कर लिये जाते हैं और इसके साथ-साथ उनके लिए उन्नत जीवन स्तर की स्थितियों की व्यवस्था होती है। इसके साथ ही साथ लौकिकीकरण की प्रक्रिया और प्रौद्योगिक विकास भी होता है। दूसरी दशा में जनता को पूर्णतया निर्णय केन्द्रों में सम्मिलित कर दिया जाता है।

इस प्रकार जाग्वाराइब और आयन्स्टैड राजनीतिक आधुनिकीकरण को व्यापक अवधारणा नहीं मानते हैं। जाग्वाराइब का कहना है कि राजनीतिक विकास में राजनीतिक आधुनिकीकरण के अलावा संस्थाओं या संरचनाओं का संस्थाकरण भी हो जाता है। आमन्ड के अभिमत का उल्लेख करते हुए उसने राजनीतिक विकास में (1) भूमिका विभिन्नीकरण, जिसमें (क) भूमिकाओं और उप-व्यवस्थाओं का विशेषीकरण, (ख) स्त्रोतों का लचीलीकरण, (ग) प्रकार्यों की बुद्धिसंगतता और (घ) साधनों को निर्मित करना सम्मिलित है (2) उप-व्यवस्था स्वायत्तता और (3) लौकिकीकरण के लक्षणों की बात कही है। इससे जाग्वाराइब यह स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है कि राजनीतिक विकास में राजनीतिक आधुनिकीकरण से अधिक व भिन्न प्रकार का विभिन्नीकरण होता है। राजनीतिक आधुनिकीकरण में सत्ता की बुद्धिसंगतता, राजनीतिक संरचनाओं के विभिन्नीकरण और राजनीतिक सहभागिता ही प्रमुख आयाम माने गये हैं जबकि राजनीतिक विकास में अगर आमन्ड द्वारा दिये गये उपरोक्त लक्षणों को ही लें तो भी इससे बृहत्तर और भिन्न प्रकार की परिवर्तन प्रक्रियाओं का अर्थ-बोधन होता है। ल्यूशियन पाई ने जिन तीन लक्षणों को सर्वप्रथम राजनीतिक विकास के लिए प्रतिपादित किया उस आधार पर भी राजनीतिक विकास राजनीतिक आधुनिकीकरण से व्यापक अवधारणा बन जाती है। इसका सम्बन्ध पाई के शब्दों में समानता, क्षमता और विभिन्नीकरण से होता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण और राजनीतिक विकास में लक्षणों की दृष्टि से मौलिक अन्तर नहीं पाया जाता है। किन्तु, बारीकी से देखने पर राजनीतिक आधुनिकीकरण, संक्रमणशील समाजों की राजनीतिक व्यवस्थाओं में आने वाले संरचनात्मक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों तक ही सीमित है। यद्यपि इससे राजनीतिक व्यवस्था की उप-व्यवस्थाओं, राजनीतिक संस्कृति तथा उनकी प्रक्रियाओं में आने वाले परिवर्तनों का बोध भी होता है, परन्तु इससे राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता, उपव्यवस्थाओं की स्वायत्तता इत्यादि का संकेत नहीं मिलता। इस प्रकार, राजनीतिक विकास न सिर्फ आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का परिणाम कहा जा सकता है। बल्कि राजनीतिक विकास को राजनीतिक आधुनिकीकरण का पर्याय माना जा सकता है। यद्यपि राजनीतिक विकास और राजनीतिक आधुनिकीकरण गत्यात्मक अवधारणाएं हैं और तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययनों में इनका विशेष रूप से प्रयोग उपयोगी निष्कर्षों तक पहुंचाने में सहायक होता है, फिर दोनों में काफी अन्तर पाए जाते हैं।

नोट

कुछ विद्वान, जिनका हम राजनीतिक आधुनिकीकरण के विस्तृत विवेचन में उल्लेख करेंगे, उपरोक्त विचार से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार राजनीतिक विकास की अवधारणा सीमित और स्थैतिक (static) है क्योंकि, इसका सम्बन्ध प्रमुखतया संरचनाओं के संस्थाकरण से है जबकि आधुनिकीकरण के राजनीतिक पक्ष का सम्बन्ध प्रमुखतया सांस्कृतिक परिवर्तनों से है। इन विद्वानों की मान्यता है कि इससे राजनीतिक विकास का सम्बन्ध औपचारिकताओं से जुड़ जाता है। जबकि, राजनीतिक आधुनिकीकरण का सम्बन्ध वास्तविकताओं से अधिक होता है। इस सम्बन्ध में हम विद्वानों में मतभेद ही अधिक पाते हैं। जब तक सब विद्वान राजनीतिक विकास और राजनीतिक आधुनिकीकरण के अर्थ और लक्षणों पर सहमत न हो जाएं तब तक इन दोनों में कौन-सी अवधारणा व्यापक और बृहत्तर संदर्भ रखती है कह सकना सम्भव नहीं है। उदाहरण के लिए, अगर ल्यूशियन पाई के अनुसार राजनीतिक विकास का अर्थ और लक्षण (समानता, क्षमता और विभिन्नीकरण) लिये जाएं तो यह राजनीतिक आधुनिकीकरण के मुकाबले में सीमित बन जाती है। अगर इसका आमन्ड के द्वारा बताया गया अर्थ और लक्षण (भूमिका विभिन्नीकरण, उप-व्यवस्था स्वायत्तता और लौकिकीकरण) लिए जाएं तो यह राजनीतिक आधुनिकीकरण से अधिक सर्वग्राही अवधारणा बन जाती है। इसी तरह, जाग्वाराइब के द्वारा उल्लेखित लक्षण (सामाजिक सामंजस्य, सहभागिता, समानुरूपता, प्रतिनिधात्मकता, वैधता और प्रयोज्यता) इसको इतनी व्यापक अवधारणा बना देते हैं कि राजनीतिक आधुनिकीकरण इसका परोक्ष रूप से परिणाम बन जाता है।

निष्कर्ष में हम यही कह सकते हैं कि राजनीतिक विकास और राजनीतिक आधुनिकीकरण पर इतना मतभेद बना हुआ है कि सुनिश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। उदाहरण के लिए, आयन्स्टैड ने राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को प्रकार्यात्मक (अत्यधिक विभिन्नीकृत राजनीतिक संरचनाओं का विकास, केन्द्र सरकार की गतिविधियों का बढ़ता हुआ विस्तार और परम्परागत अभिजनों का शक्तिहीन होना और इसके परिणामस्वरूप केन्द्र और वृहत्तर समूहों के मध्य पारस्परिकता और अन्त:क्रिया में वृद्धि और ऊर्ध्वगामी या उभरती संरचनाओं के साथ निरन्तर परिवर्तन का मुकाबला करने और दीर्घकालिक विकास लाने वाली हो जाना) तथा ऐतिहासिक (मध्यम वर्ग निर्णय केन्द्रों में सम्मिलित किये गये और दूसरी अवस्था में जनता को पूर्णतया निर्णय केन्द्रों में सम्मिलित करना) दृष्टि से देखकर इतनी व्यापक अवधारणा बना दिया है कि यह राजनीतिक विकास से किसी तरह सीमित नहीं रह जाती है। अत: इन दोनों के बारे में सापेक्षता वाले निष्कर्ष इनके अर्थों व लक्षणों विशेष से जोड़कर ही निकाले जा सकते हैं।

राजनीतिक विकास के स्तर या अवस्थाएँ (Stages of Political Development)

राजनीतिक विकास के स्तर या अवस्थाओं का विचार अर्थशास्त्र से लिया गया प्रतीत होता है। रोस्टोव ने अपनी पुस्तक स्टेजेज ऑफ इकोनोमिक ग्रोथ में आर्थिक विकास के विभिन्न स्तरों के विचार का विकास किया है। इससे यह प्रेरणा मिली कि राजनीतिक विकास के भी विभिन्न स्तरों के बारे में सोचा जाने लगा। राजनीतिक विचारक भी यह मानने लगे कि विश्लेषणात्मक आनुभाविकता की दृष्टि से राजनीतिक विकास के सुनिश्चित परिचालक और स्तर हो सकते हैं जो प्रतिमानित क्रम और भविष्यवाणी करने योग्य अनुक्रमों के अनुसार अवश्य ही राजनीतिक विकास के स्तर होते हैं। अत: रोस्टोव के विचारों का राजनीतिक विकास के स्तर-निर्णय या स्तर-अध्ययन पर निश्चित प्रभाव माना जा सकता है। जाग्वाराइब का मत है कि ''मैं इस बात पर जोर देकर कहता हूं कि व्यक्त या अव्यक्त ढंग से वे सब विचारक, जो राजनीतिक विकास को प्रक्रिया के रूप में लेते हैं, राजनीतिक विकास को ऐतिहासिकता और विश्लेषणात्मकता की दृष्टि से अभिज्ञाननीय निश्चित स्तरों के क्रम में प्रस्तुत करते हैं।''

(क) हण्टिंगटन के विचार (The views of Huntington)- हण्टिंगटन ने अपने एक निबन्ध 'पोलिटिकल डेवेलपमेन्ट एण्ड पोलिटिकल डिके' में राजनीतिक पतन की बात कहते हुए राजनीतिक विकास के अवस्थावादियों पर गम्भीर आरोप लगाए और इस विवेचन प्रक्रिया में स्वयं ने राजनीतिक विकास के विभिन्न स्तरों की बात कही। उसने तीन प्रमुख परिचालन सेटों की बात कही है जिनका उन राज्यों से सम्बन्ध है जिन्होंने सफलतापूर्वक राजनीतिक विकास की निश्चित अवस्था या उससे आगे की अवस्था तक विकास कर लिया है। इस प्रकार, उसने राजनीतिक विकास के तीन स्तर विशेष माने हैं। संक्षेप में यह इस प्रकार है :

नोट

(i) सत्ता की बुद्धिसंगतता का स्तर, जिसमें अनेकों स्थानीय सत्ताओं के स्थान पर एक केन्द्रीय सत्ता का निर्माण हो जाता है। इसे वह सत्ता के केन्द्रीकरण की अवस्था कहता है। इससे उसका तात्पर्य यह है कि राजनीतिक विकास का यह वह स्तर है जब सत्ता के स्त्रोतों के रूप में एक ही केन्द्रीय सत्ता–अभिकरण या प्रकरण स्थापित हो जाता है।

(ii) नये राजनीतिक कार्यों का विभिन्नीकरण और उनके लिए विशिष्ट संरचनाओं का विकास, राजनीतिक विकास की प्रक्रिया का दूसरा स्तर है। इसमें राजनीतिक प्रक्रिया में नवीन राजनीतिक कार्यों के निष्पादन सम्मिलित हो जाते हैं। इनके निष्पादन के लिए उपयुक्त संरचनात्मक व्यवस्था का विकास हो जाता है।

(iii) अभिवृद्ध सहभागिता जो परिसरीय सामाजिक समूहों और समाज के भागों को धीरे–धीरे केन्द्रिय सत्ता में सम्मिलित करने का स्तर है।

हण्टिंगटन की मान्यता है कि विकास की यह प्रक्रिया तभी सम्भव होती है जब यह तीनों सुनिश्चित प्रचालन या क्रिया–स्तर क्रमिक रूप से उपलब्ध किये जाएं जिसमें से हरएक का विकास से सम्बन्धित स्तर से सम्बन्ध हो। उसका अभिमत है कि यह इसी क्रम में प्रचालित होने पर ही राजनीतिक विकास के रूप में स्तर बन सकता है, अर्थात प्रथम के बाद दूसरा और तीसरा स्तर आ सकता है। उसने स्पष्ट किया है कि इन तीनों का एक–दूसरे के ऊपर–नीचे या साथ–साथ प्रचालन घातक होता है और उसमें राजनीतिक विकास नहीं, राजनीतिक पतन आता है। वह यही स्वीकार करता है कि यह तीनों एक साथ, एक–दूसरे के ऊपर प्रचालित हो सकती है जैसा आज अधिकांश विकासशील राज्यों में हो रहा है, किन्तु, उस अवस्था में यह विकास की घातक अवरोध अवस्था हो जाएगी। इस प्रकार तीनों अवस्थाओं का एक–दूसरे के पहले आरोहण न हो या तीनों एक साथ प्रचालित न हों उससे बचाव के लिए वह दो सुझाव देता है। प्रथम सुझाव में यह कहा गया है कि ऐसी अवस्था से बचने के लिए संचालन (moblization) प्रक्रिया को इतना धीमा कर दिया जाए जिससे परिसर से व्यक्तियों का केन्द्र में आना उनकी पूर्ण आत्मसातता के अनुसार ही हो। दूसरा सुझाव यह है कि संस्थाओं के निर्माण को, जो उसके अनुसार राजनीतिक विकास का प्रमुख साधन है, प्रोत्साहित किया जाए।

यह सब बताते हुए भी हण्टिंगटन के विचारों में राजनीतिक पतन की बात ही छाए रही है। यही कारण है कि वह राजनीतिक पतन का विस्तृत विवेचन करते हुए राजनीतिक विकास की अवस्थाओं के विचार की आलोचना करता है। किन्तु, इस आलोचना का यह तात्पर्य नहीं है कि वह स्वयं राजनीतिक विकास के स्तर नहीं मानता है। वास्त्व में, उसकी शिकायत उन राजनीतिक विकास के स्तरवादियों से है जो यह मानते हैं कि विकास की एक अवस्था तक पहुंचना स्वत: ही दूसरी अवस्था की ओर अग्रसर होने का मार्ग खोल देता है। उसका अभिमत है कि ऐसा न होकर कोई समाज दूसरे स्तर से तीसरे की तरफ नहीं बढ़कर प्रथम स्तर की तरफ भी मुड़ सकता है। विकासशील राज्यों में ऐसा ही हो रहा है और इसका प्रमुख कारण उसके अनुसार एक स्तर का दूसरे स्तर के साथ–साथ प्रचालित होना है। इसलिए उसने राजनीतिक विकास की स्तर प्रक्रिया को एक मार्गी नहीं मानकर इस सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष इस प्रकार बताए हैं– (क) राजनीतिक विकास अप्रत्यावर्तनीय (irreversible) या ऐसी प्रक्रिया नहीं है जो उल्टी नहीं जाती हो। (ख) विकासशील राज्यों में हो रहे सब राजनीतिक परिवर्तन राजनीतिक विकास नहीं माने जा सकते हैं। (ग) राजनीतिक विकास के विकास स्तर अनुक्रम में प्रचालित नहीं होते हैं क्योंकि अन्य कई तथ्य और परिवर्त्य ऐसा नहीं होने देते हैं। (घ) राजनीतिक विकास में आधुनिकीकरण और औद्योगिकीकरण सम्मिलित नहीं हैं।

(ख) आयन्स्टैड के विचार (Eisenstadt's views)– आयन्स्टैड ने भी राजनीतिक विकास के स्तरों और आधारभूत प्रचालनों को, अतीत की विकासशील व्यवस्थाओं के ऐतिहासिक विश्लेषण और सामान्य सिद्धान्तों की अतीत की प्रक्रियाओं के आधार पर स्पष्ट किया है। वह राजनीतिक विकास की प्रक्रिया को आधुनिक स्थिति में आवश्यक रूप से दो स्तरों में विभक्त पाता है। यह अवस्थाएं हैं– (क) सीमित आधुनिकीकरण का स्तर, जिसे वह पश्चिम में अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के विकास के स्तर के साथ ऐतिहासिक दृष्टि से जोड़ता है और इसमें वह मध्यम वर्ग के लोगों को निर्णय–केन्द्रों में सम्मिलित करना और सांस्कृतिक लौकिकीकरण तथा वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी विकास सम्मिलित करता है। (ख) जन–आधुनिकीकरण का स्तर, जिसे वह पश्चिम में बीसवीं सदी के विकास के स्तर के साथ ऐतिहासिक दृष्टि

नोट

से जोड़ता है। और इसमें वह जनसाधारण को निर्णय केन्द्रों में सम्मिलित करना और बहुत बड़े पैमाने पर विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विस्तार और प्रसार सम्मिलित करता है। (ख) जन-आधुनिकीकरण का स्तर, जिसे वह पश्चिम में बीसवीं सदी के विकास के स्तर के साथ ऐतिहासिक दृष्टि से जोड़ता है। और इसमें वह जन-साधारण को निर्णय केन्द्रों में सम्मिलित करता है और बहुत बड़े पैमाने पर विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विस्तार और प्रसार सम्मिलित करता है।

आयन्स्टैड का कहना है कि विगत शताब्दियों (18वीं और 19वीं) में जो समाज सीमित आधुनिकीकरण के स्तर का राजनीतिक विकास नहीं कर पाए थे उनमें आज दोनों स्तरों का अंशाच्छादन (overlapping) राजनीतिक व्यवस्थाओं पर अत्यधिक दबाव उत्पन्न कर देता है और राजनीतिक व्यवस्था को तोड़ने की स्थिति उत्पन्न करता है जिससे तभी बचा जा सकता है जब जनसाधारण का समुचित समाजीकरण कर लिया जाए और समाज में जोड़ने वाली ताकतों को सबल बनाया जाए।

(ग) आमन्ड के विचार (Almond's views)– हण्टिंगटन और आयन्स्टैड ने राजनीतिक विकास की प्रत्यक्ष रूप से चर्चा नहीं की है। हण्टिंगटन राजनीतिक पतन के विचार में डूबे रहकर राजनीतिक विकास के स्तरों का विवेचन करता रहा है। इसी तरह, आयन्स्टैड राजनीतिक आधुनिकीकरण और राजनीतिक विकास को एक-सा मानकर आधुनिकीकरण के स्तरों के साथ राजनीतिक विकास के स्तरों को जोड़ देता है। किन्तु, आमन्ड ने राजनीतिक व्यवस्था से ही सम्बन्धित अधिक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण को अपनाकर राजनीतिक विकास के स्तरों को विवेचित किया है। उसने राजनीतिक विकास के चार आधारभूत प्रचालनों (operations) और स्तरों का उल्लेख किया है। यह चार स्तर इस प्रकार हैं-

(क) राज्य-निर्माण (state-building) **का स्तर** - इसमें (i) केन्द्रीय सत्ता का निर्माण (ii) इस सत्ता का राजनीति में प्रवेश और (iii) विभिन्न समूहों का केन्द्रीय सत्ता के अधिकार क्षेत्र में एकीकरण होना सम्मिलित होता है।

(ख) राष्ट्र-निर्माण (nation-building) **का स्तर** - इसमें (i) निष्ठा और प्रतिबद्धता उत्पन्न करना जिससे (ii) विदेशों के समर्थन बढ़ जाए, सम्मिलित होता है।

(ग) सहभागिता का स्तर - इसमें राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय रूप से सम्मिलित समूहों और समाज के संस्तरों (strata) को अभिवृद्ध और व्यापक बनाना सम्मिलित होता है।

(घ) वितरण (distribution) **का स्तर** - इसमें सामाजिक जीवन के लिए लाभों को पुन:निर्धारण की अनेक विधियों के द्वारा सबकी पहुंच में लाना सम्मिलित होता है।

आमन्ड की मान्यता है कि जिन समाजों में राजनीतिक विकास हुआ है और जिन समाजों में राजनीतिक विकास का अंतिम स्तर आ गया है। वे सब इसी अनुक्रम से एक स्तर के बाद दूसरे स्तर में पहुंचे हैं और विकासशील राज्यों में और कुछ अन्य अविकसित व्यवस्थाओं में इन सभी विकास स्तरों में अंशाच्छादन या इनको एक साथ चलाने के प्रयत्नों से राजनीतिक व्यवस्था पर अधिक बोझ पड़ने लगता है जो व्यवस्थाओं को विखण्डित करने का कारक बन जाता है।

(घ) ओरगेन्स्की के विचार (Organski's views)- जाग्वाराइब का कहना है कि राजनीतिक विकास के स्तरों का श्रेष्ठतम विवेचन, जिसे वह अत्यधिक पूर्ण वर्णन मानता है, आरगेन्स्की के द्वारा अपनी पुस्तक स्टेजेज आफ पोलिटिकल डेवेलपमेन्ट में किया गया है। ओरगेन्स्की राजनीतिक विकास को, राष्ट्रीय गन्तव्यों के लिए राष्ट्र के मानवीय और भौतिक स्त्रोतों का उपयोग करने में सरकार की बढ़ती हुई कार्य-दक्षता के आधार पर समझने का प्रयत्न करता है। इसके साथ ही वह राजनीतिक विकास को राष्ट्रीय विकास, राष्ट्रीय वृद्धि और आधुनिकीकरण के लिए अभिव्यक्ति की शब्दावली मानता है और यह कहता है कि यह एक ही यथार्थ को उद्घाटित करने वाली अवधारणाएं हैं। उसके अनुसार अभिवृद्ध आर्थिक उत्पादकता, बढ़ती हुई भौगोलिक और सामाजिक प्रचालनता, बढ़ती हुई राजनीतिक कार्यकुशलता जिससे राष्ट्रीय गन्तव्यों को प्राप्त करने में राष्ट्र के मानवीय व भौतिक स्त्रोतों का प्रचालन करना सम्मिलित है, बहुत कुछ एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। वह राजनीतिक विकास के स्तरों का विवेचन इसी आधार पर करता है।

ओरगेन्सकी यह मानता है कि ज्यों-ज्यों राष्ट्र विकसित होता जाता है वैसे ही राष्ट्रीय सरकार के कार्य और आगे विकास

नोट

को प्रेरित करने के लिए उसमें परिवर्तित होते रहते हैं उसके अनुसार यह स्तरों के एक क्रम से ही होता है। यद्यपि यह स्तर-क्रम अटलनीय या अवश्यंभावी नहीं होता है फिर भी सामान्यतया ऐसा पाया जाता है तथा इसे आनुभविक रूप से देखा जा सकता है। वह यह भी मानता है कि विश्लेषणात्मक और आनुभविक कारणों से यह स्तर आनुक्रमिक होता है, अर्थात किसी स्तर की पूर्ण प्राप्ति तब तक असम्भव है जब तक कि उसके पहले का स्तर व्यवहार में प्राप्त नहीं हो जाता है। दो आनुक्रमिक स्तरों पर लागू होने वाली समस्याओं का कुछ अंश तक एक दूसरी पर आच्छादन हो सकता है, किन्तु इस प्रकार के अंशाच्छादन की भी सीमाएं होती हैं, अर्थात दो आनुक्रमिक स्तरों पर लागू होने वाली समस्याएँ पूर्णतया एक समान नहीं हो सकती हैं। क्योंकि, ओरगेन्स्की हर विकास स्तर की अपनी विशिष्ट समस्याएँ मानते हैं जो दूसरे स्तर की समस्याओं के समान केवल आंशिक रूप में ही हो सकती है। अगर दो आनुक्रमिक स्तरों की अपनी-अपनी समस्याओं का भिन्नता नहीं होकर उनमें एक समानता होती है तो उसका आशय यह है कि पहले वाला स्तर यथार्थ में पूर्णतया प्राप्त ही नहीं हुआ है और जब तक यह पूर्णतया प्राप्त नहीं हो जाए इसके आगे के स्तर को सफलतापूर्वक कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता। अत: आरेगेन्स्की का राजनीतिक विकास के स्तरों का विवेचन विशिष्ट लक्षणों और मान्यताओं पर आधारित है। उसके द्वारा दिये गए राजनीतिक विकास के विभिन्न स्तरों को समझने के लिए आवश्यक है कि हम संक्षेप में इन विशेषताओं का विवेचन करें। ओरगेन्स्की के राजनीतिक विकास के स्तरों सम्बन्धी उपरोक्त विवेचन से निम्नलिखित बातें विशेष रूप से उभरती हैं- (क) राजनीतिक विकास स्वायत्त किन्तु, अन्य विकासों (आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक) से पूर्ण रूप से पृथक और स्वतंत्र प्रक्रिया नहीं है। (ख) राजनीतिक विकास आनुक्रमिक स्तर से ही होता है। (ग) राजनीतिक विकास के हर स्तर की अपनी विशिष्टताएँ होती हैं। जो अन्य स्तर पर अधिक से अधिक आंशिक रूप में ही पाई जा सकती है। (घ) राजनीतिक विकास का एक स्तर पूर्ण रूप से प्राप्त होने के बाद ही उसके आगे के स्तर पर जाना सम्भव है, अर्थात अगर विकास के अनुक्रम में पहले का स्तर पूर्णतया प्राप्त नहीं हुआ है तो उसे आगे का स्तर कभी भी सफलतापूर्वक प्राप्त नहीं किया जा सकता। (च) राजनीतिक विकास के विभिन्न स्तरों का आनुभविक पर्यवेक्षण या अवलोकन सम्भव है। इसका आशय यह है कि विकास के विभिन्न स्तरों को सुनिश्चित प्रविधियों द्वारा मापना सम्भव है। (छ) दो क्रमिक स्तरों का अंशाच्छादन सम्भव है किन्तु, सीमित रूप में ही यह हो सकता है तथा अक्रमिक स्तरों का अंशाच्छादन सम्भव है किन्तु, सीमित रूप में ही यह हो सकता है तथा अक्रमिक स्तरों में यह असम्भव है। उदाहरण के लिए, प्रथम और दूसरे स्तर में कुछ सीमित-सा अंशाच्छादन हो सकता है, किन्तु प्रथम और दूसरे स्तर में ऐसा अंशाच्छादन बिलकुल असम्भव है।

राजनीतिक विकास स्तरों के सम्बन्ध में ओरगेन्स्की की उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है। कि राजनीतिक विकास के निश्चित स्तर तो होते हैं, उनकी अपनी पृथक-पृथक विशिष्टताएँ भी होती हैं, किन्तु, एक स्तर और दूसरे स्तर के बीच निश्चित सीमा-रेखा ज्ञान की वर्तमान सीमाओं में खींच सकना सम्भव नहीं है। इसी कारण, ओरगेन्स्की दो क्रमिक स्तरों में सीमित अंशाच्छादन स्वीकार करते हैं। इस विवेचन से यह बात भी स्पष्ट होती है कि जब तक पहले का स्तर पूर्णतया प्राप्त नहीं कर लिया जाए, राजनीतिक विकास का उससे आगे का स्तर कभी भी सफलतापूर्वक प्राप्त नहीं हो सकता। इन बातों के संदर्भ में उसने राजनीतिक विकास के स्तर स्वीकार किये हैं जो इस प्रकार हैं-

(i) आदिम एकीकरण की राजनीति (politics of primitive unification) (ii) औद्योगिकीकरण की राजनीति (politics of industrialisation), (iii) राष्ट्रीय लोक-कल्याण की राजनीति (politics of national welfare), (iv) समृद्धि की राजनीति (politics of abundance)

(i) ओरगेन्स्की के अनुसार राजनीतिक विकास का पहला स्तर आदि एकीकरण की राजनीति का है। इस अवस्था में सरकारें अपनी जनसंख्या पर प्रभावशाली राजनीतिक एवं प्रशासनिक नियंत्रण स्थापित करती हैं। ऐसी केन्द्रीय सत्ता का निर्माण निश्चित भूभाग और सुस्पष्ट जनसंख्या या जनसमुदायों से सम्बन्धित होता है। अगर इसको परम्परागत ढंग से देखें तो यह स्तर राज्य की सुस्थिरता का स्तर है जिसमें राज्य के चारों तत्त्व-जनसंख्या, निश्चित भू-भाग, संगठन या सरकार तथा सम्प्रभुता-विद्यमान होते हैं। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक का पश्चिम के राज्यों का विकास स्तर इसी

नोट

प्रकार का कहा जा सकता है।

(ii) राजनीतिक विकास का दूसरा स्तर आर्थिक दृष्टि से औद्योगिकीकरण की प्रक्रियाओं तथा सामाजिक, राजनीतिक दृष्टि से ऐसे परिवर्तनों से सम्बन्धित है जिसमें नये वर्ग निर्मित होते हैं, सहभागिता का विस्तार और अभिवृद्धि राष्ट्रीय एकीकरण होता है। यह स्तर ऐतिहासिक दृष्टि से सम्पन्न हुआ है और विश्लेषण की दृष्टि से तीन वैकल्पिक सम्भावनाएं प्रस्तुत करता है। ये तीन वैकल्पिक सम्भावनाओं वाले प्रतिमान इस प्रकार हैं-

(अ) बुर्जुआ या मध्यवर्गीय मॉडल (Bourgeois Model)- यह आधुनिक पश्चिमी लोकतन्त्र से भिन्न प्रतिमान है। इसमें श्रमिकों की कीमत पर पूंजी-संचय होता है। किन्तु, इस पूंजी-संचय के साधन निजी रहते हैं और यह गुप्त ढंग से ही किया जाता है। इस मॉडल में नये बुर्जुआ, क्रांति या धीरे-धीरे संक्रमणता से पहले के अभिजाततंत्री अभिजनों को हटा देते हैं और स्वयं शासन पर छा जाते हैं।

(c) स्टालिन का मॉडल (Stalinist Model)- इसमें श्रमिकों की कीमत पर पूँजी-संचय होता है किन्तु, पूँजी-संचय के साधन नये वर्ग के हाथ में होते हैं, जो खुले रूप से ऐसा करके, पहले के अभिजनों या मध्य वर्ग को शक्तिपूर्वक व क्रांतिकारी साधनों से हटा कर स्वयं नौकरशाही का एक नया वर्ग बन जाते हैं।

(l) समन्वयी मॉडल (Syncratic model)- यह इटली के संदर्भ में फासिज्म का विशेष प्रतिमान है, जिसमें पुराने और नये अभिजनों में समन्वय रहता है और एक स्वेच्छादारी राज्य, समन्वय कराने वाले मध्यवर्गीय कृषकों के हितों की रक्षा करता है और धीमी गति से पूँजी-संचय श्रमिकों की कीमत पर होता रहता है।

(iii) राष्ट्रीय लोक-कल्याण की राजनीति का यह स्तर पहले वाले स्तर के पूँजी संचय की प्रक्रिया को उलट देने वाली प्रक्रियाओं से सम्बन्धित है। इससे पहले वाले स्तर में पूँजी-संचय जनता की कीमत पर किया जाता है किन्तु, इसमें जनता को पूँजी द्वारा शोषण से मुक्त रखा जाता है और व्यापक पैमाने पर बहुत बढ़े हुए पूँजी साधनों को जनता में पुनः वितरित करके जन-सहभागिता को सम्भव बनाया जाता है। यह जन-सहभागिता लोकतंत्र की स्थापक हो यह आवश्यक नहीं है।

ओरगेन्स्की की मान्यता है कि राजनीतिक विकास के स्तर के भी तीन वैकल्पिक मॉडल ऐतिहासिकता और विशेषणात्मकता की दृष्टि से देखे जा सकते हैं। यह तीन वैकल्पित मॉडल इस प्रकार हैं- (1) जन लोकतन्त्र (Mass Democracy), जिसमें मताधिकार का विस्तार और उपभोक्ता वस्तुओं तथा सर्वसाधारण की पहुंच होती है।

(2) नाजीवाद (Nazism), जिसमें अत्यधिक भावनात्मक या अबुद्धिसंगत सहभागिता और संतुष्टीकरण रहता है। इस स्तर पर राज्य स्वेच्छाचारी तथा जनता की एकता का प्रतीक होता है। (3) साम्यवादी (Communism) मॉडल, जिसमें लोककल्याणकारी राज्य के लक्षण, जनता की प्रतीकात्मक जन-सहभागिता, सर्वाधिकारी शासन और साम्यवादी दल की अधिनायकता होती है।

(iv) समृद्धि की राजनीति का स्तर जो कि आजकल अमरीका में आने लगा है। यह स्तर वैज्ञानिक प्रविधियों और अत्यधिक परिष्कृत उपकरणों से अत्यधिक उत्पादकता (super-productivity) का है जिसमें हरेक के लिए वस्तुओं की सामान्य उपलब्धि रहती है। यह राजनीतिक विकास की सबसे जटिल अवस्था है। इसमें कार्य करने की आवश्यकता में कमी हो जाती है जिससे उत्पादक रोजगार भी कम हो जाता है किन्तु संगठित श्रमिकों की शक्ति बढ़ जाती है। ऐसे समाज में आर्थिक से हटकर, राजनीतिक और सांस्कृतिक हितों पर बल दिया जाने लगता है। इसमें आर्थिक और राजनीतिक अभिजनों का विलयन (union) हो जाता है जो शक्ति का केन्द्र ला देता है। नियोजन की आवश्यकता बढ़ती जाती है। और समाजवादी व्यवस्था की तरफ समाज बढ़ने लगता है जो लोकतान्त्रिक हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। वैसे अधिकांशतः ऐसे स्तर पर समाज लोकतान्त्रिक नहीं रहता है।

ओरगेन्स्की का राजनीतिक विकास के स्तर आनुक्रमों का मुख्य विचार उसकी औद्योगीकरण की समझ और व्याख्या पर आधारित है जिसे वह दोनों ही रूपों-आर्थिक और सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं, में समाज के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण मानता है। इस प्रकार ओरगेन्स्की राजनीतिक विकास के स्तरों की बात राष्ट्रीय विकास से सम्बन्धित बनाकर करता है। इस सम्बन्ध में जाग्वाराइब तो यहां तक कहता है कि ''ओरगेन्स्की

नोट

का विकास सिद्धान्त समझने के लिए दो उपागमों की आवश्यकता पड़ेगी जिनमें से एक का सम्बन्ध समाज के समग्र राष्ट्रीय विकास से और उसके विविध स्तरों से रहेगा और दूसरे का सम्बन्ध राजनीतिक विकास की विशिष्ट प्रक्रियाओं और स्तरों से तथा पहली वाली प्रक्रिया से उसका सम्बन्ध क्या है, इससे रहेगा।'' यह ओरगेन्स्की के विकास सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमजोरी है कि वह समग्र समाज के राष्ट्रीय विकास के साथ राजनीतिक विकास को व उसके स्तरों को समझने का प्रयास करता है।

राजनीतिक विकास के स्तरों के सम्बन्ध में हमने चार विचारकों के द्वारा प्रतिपादित विकास अनुक्रमों का विवेचन किया है। जाग्वाराइव इन सबको अपूर्ण मानता है और यह विचार प्रस्तुत करता है कि राजनीतिक विकास के स्तरों के विवेचन में केवल प्रकार्यात्मक स्तरों का या केवल वास्तविक स्तरों का वर्णन काफी नहीं है। उसका अभिमत है कि हण्टिंगटन, आयन्स्टैड और आमन्ड ने राजनीतिक विकास के स्तरों का निर्धारण प्रकार्यात्मक आधार पर किया है जबकि ओरगेन्स्की ने यथार्थ के आधार पर किया है। किन्तु राजनीतिक विकास के वास्तविक स्तर अनुक्रम को समझने के लिए इन दोनों को आधार बनाना आवश्यक है। अत: हम अन्त में जाग्वाराइब द्वारा प्रस्तुत स्तरों का विवेचन करना आवश्यक समझते हैं।

(च) जाग्वाराइब के विचार (Jaguaribe's views)– जाग्वाराइब ने राजनीतिक विकास के स्तरों के निर्धारण में दो दृष्टिकोणों का उपयोग किया है। एक यर्थाथ और दूसरा प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण हैं। उसका मत है कि इन दोनों ही दृष्टिकोणों से आधारभूत, विशिष्ट और विचित्र प्रचालनों से जो आनुक्रमिक क्रम से चलते हैं, कुछ मौलिक स्तरों का बोध होता है। यथार्थ दृष्टिकोण में प्रचालनों और स्तरों का अन्तत: सम्बन्ध ''सामूहिक मानव शक्ति के निर्माण और उपयोग की प्रक्रिया'' से है। यथार्थ प्रक्रिया वास्तव में मानव के सामान्य सामाजिक सांस्कृतिक विकास, जिससे उसका मानवीय और प्राकृतिक पर्यावरण पर नियन्त्रण बढ़ता जाता है, से संबंधित है और आनुभविक दृष्टि से यह जैसा वास्तव में इतिहास में घटित हुआ है उस पर आधारित है। इस दृष्टिकोण से समाजीय विकास (societal development) के वास्तविक या यथार्थ स्तर इस प्रकार रहे हैं–

राजनीतिक विकास के स्तरों के विविध विचार

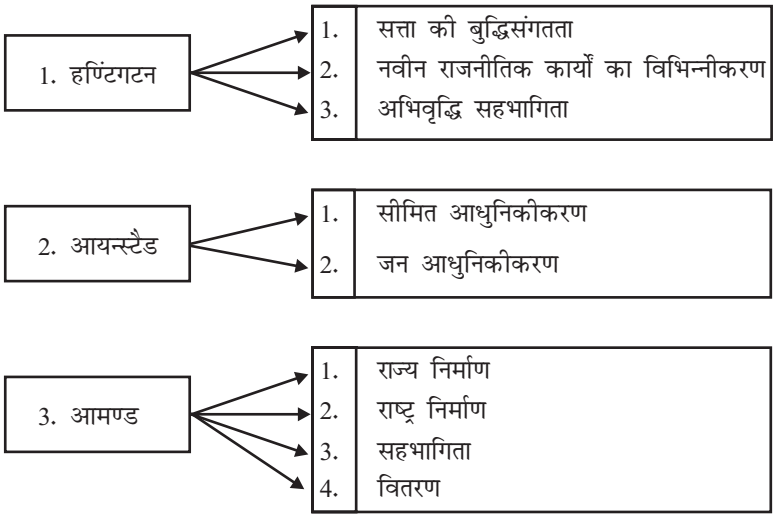

नोट

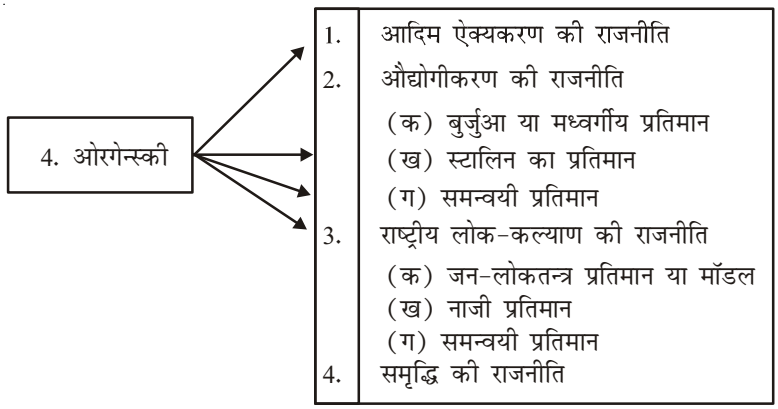

(i) एकीकरण (Unification)

(अ) राजनीतिक एकीकरण (Political unification)

(इ) अतिरिक्त समाजीय विस्तार (Extra societal expansion)

(स) अन्तः समाजीय विविधीकरण (Intra societal diversification)

(ii) यन्त्रीकरण (Mechanization)

(अ) औद्योगिकीकरण विस्तार (Industrialization Expansion)

(ब) अन्तर्राष्ट्रीय विस्तार (International expansion)

(स) राष्ट्रीय विविधीकरण (National diversification)

(iii) सामाजिक संगठन (Socio-organisation)

(अ) सामान्यकृत संगठन (Generalized organisation)

(ब) अन्तराष्ट्रीयकरण (Internationalisation)

(स) पुनः मानवीकरण (अ-मानवीकरण) (Re-humanization or dehumanization)

जाग्वाराइब ने समाजीकरण के स्तर का अर्थ करते हुए बताया है कि यह समाज पर राजनीतिक नियंत्रण की स्थापना का स्तर है। इसके तीन उपवर्ग होते हैं जो क्रम से प्राप्त होते हैं। यन्त्रीकरण से प्रकृति पर समाजीय नियन्त्रण का आशय है। इसके भी तीन उपस्तरों की चर्चा की गई है। सामाजिक संगठन से समाजीय स्व-नियन्त्रण का अर्थ लिया गया है और इसमें भी तीन उप-स्तर होते हैं। इस प्रकार, जाग्वाराइब द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक विकास का पहला स्तर ओरगेन्स्की के द्वारा प्रतिपादित आदि एकीकरण के समान है। इसका दूसरा स्तर उसके ''औद्योगिकीकरण के स्तर के समान है। जाग्वाराइब के द्वारा प्रतिपादित तीसरा स्तर, ओरगेन्स्की के 'राष्ट्रीय-लोककल्याण' और 'समृद्धि की राजनीति' के तीसरे और चौथे स्तर के समान है। किन्तु, इनके उप-स्तरों को लेकर दोनों के स्तर विवेचनों में पर्याप्त अन्तर है जिनकी बारीकी में जाने की यहां आवश्यकता नहीं है।

प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण से जाग्वाराइब ने विकास के चार स्तरों को प्रमुख माना है। उसका अभिमत है कि अगर हम इस दृष्टिकोण को लेकर राजनीतिक विकास की प्रक्रिया (राजनीतिक से जाग्वाराइब का आशय अभिवृद्धि राजनीतिक आधुनिकीकरण और संस्थाकरण से है) का समाजों के किसी ऐतिहासिक काल में पहले दृष्टिकोण में बताए गये स्तरों को ध्यान में रखते हुए, स्तर निर्धारण करें तो निम्नलिखित चार स्तर प्रमुख रूप से स्पष्ट होंगे- (क) मॉडल-निर्माण (model building), (ख) राज्य-निर्माण (state building), (ग) राष्ट्र-निर्माण और (nation-building), (घ) सामंजस्य निर्माण (consensus-building)

नोट

जाग्वाराइब की मान्यता है कि राजनीतिक विकास का पहला प्रकार्यात्मक स्तर मॉडल निर्माण का है। यह वह स्तर है जब सत्ता में परिवर्तन आता है। यह सत्ता परिवर्तन पहले वाले सत्ताधारियों के स्थान पर केवल दूसरों का सत्ता में आना मात्र हो तो भी इनके नये विकास–अभिमुखी राजनीतिक ढांचे या योजनाएं बनाई जाती हैं जो वास्तव में नया राजनीतिक मॉडल बनाता ही है। दूसरे स्तर में नवीन राजनीतिक मॉडल के अनुरूप शासन तन्त्र को बनाना या सुधारना है तथा तीसरे स्तर पर राजनीतिक शक्ति संरचना को बृहत्तर समाजीय व्यवस्था के साथ तालमेल बैठाने की अवस्था में या समाजीय व्यवस्था को राजनीतिक शक्ति व्यवस्था के साथ तालमेल की अवस्था में लाना है। चौथे स्तर में, सम्पूर्ण समाजीय व्यवस्था को, नई सत्ता के साथ समन्वय की अवस्था में लाकर सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता है।

इस प्रकार, जाग्वाराइब ने राजनीतिक विकास के विभिन्न स्तरों का यथार्थवादी तथा प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण, दोनों से ही विवेचन किया है। किन्तु, राजनीतिक विकास के प्रारम्भिक अध्येता को जाग्वाराइब का यह स्तर निर्धारण और विभिन्न स्तरों का विवेचन कुछ जटिल सा लगेगा।

राजनीतिक विकास की व्याख्या, अर्थ, लक्षणों और स्तरों के विवेचन के साथ अगर राजनीतिक विकास के सिद्धान्त निर्माण के प्रयत्नों की संक्षिप्त चर्चा नहीं करेंगे तो यह वर्णन अधूरा ही माना जाएगा। राजनीतिक विकास के सिद्धान्त निर्माण का सर्वप्रथम प्रयास आमन्ड का ही रहा है। बाद में ल्यूशियन पाई, आयन्सटैड, पेनोक और हण्टिंगटन ने इसमें योगदान दिया। किन्तु राजनीतिक विकास के सिद्धान्त निर्माण में सर्वाधिक योगदान रिग्स और हेलियों जाग्वाराइब का ही माना जाता है। इन्होंने राजनीतिक विकास पर सम्पूर्ण चिंतन को एक सैद्धान्तिक सूत्र में बांधने का प्रयास किया है। जाग्वाराइब द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त अधिक व्यापक और गहनतम है। रिग्स का सिद्धान्त इस प्रकार है–

रिग्स द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक विकास का सिद्धान्त (Theory of Political Development as Propounded by Riggs)

रिग्स का मत है कि पश्चिमी राजनीतिक संस्थाओं का अपनाना पाश्चात्य संस्कृति के प्रतिमानों को अपनाना नहीं माना जा सकता है। इसी तरह, वह तकनीकी परिवर्तनों और सांस्कृतिक परिवर्तनों में अन्तर करता है और यह निष्कर्ष निकालता है कि राजनीतिक संस्थाएं तकनीकी प्रगति का परिणाम होती हैं। सांस्कृतिक विकासों से इनकी उत्पति नहीं होती है। उदाहरण के लिए, राजनीतिक दलों की स्थापना टेक्नोलॉजी का परिणाम है और पश्चिम की तरह साम्यवादी राज्यों को भी स्वीकार है। उसने राजनीतिक विकास के संरचनात्मक और प्रकार्यात्मक विश्लेषणों में अन्तर करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि संरचनात्मक विश्लेषणों में संरचनाओ को ही महत्व दिया गया है और उनके प्रकार्यो में हुए परिवर्तनों की अनदेखी कर दी गई है जबकि, प्रकार्यात्मक विश्लेषणों में प्रकार्यात्मक परिवर्तनों पर अत्यधिक बल दिया गया है और संरचनात्मक परिवर्तनों की अवहेलना ही हुई है। उसने राजनीतिक विकास के सिद्धान्त में संरचनात्मक परिवर्तनों पर बल दिया है। रिग्स ने संरचनावादी होने के कारण अपने द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक विकास के सिद्धान्त का मूल आधार संरचनात्मक विभिन्नताओं को ही बनाया है।

रिग्स, ल्यूशियन पाई के विकास समष्टि–लक्षण, जो समानता, क्षमता और विभिन्नीकरण पर आधारित है को लेकर अपने विकास सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। उसकी मूल मान्यता यह है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं में जितना अधिक संरचनात्मक विभिन्नीकरण एवं विशेषीकरण होगा उनमें उतनी ही समस्याओं का सामना करने तथा लक्ष्य प्राप्ति की क्षमता होगी। अगर संरचनात्मक विभिन्नीकरण और विशेषीकरण नहीं होगा या कम होगा तो उसी अनुपात में राजनीतिक व्यवस्थाओं में समस्याओं का समाधान करने की क्षमता भी कम हो जाएगी। रिग्स की मान्यता है कि अगर राजनीतिक व्यवस्था में पर्याप्त विभिन्नीकरण नहीं है तो समानता और क्षमता दोनों ही बेमानी हो जाएंगी। चूंकि, अत्यधिक विभिन्नीकृत समाज में सरकारी संस्थाओं के विकास से ही ऐसी राजनीतिक प्रक्रियाएं व्यावहारिक बनती हैं

नोट

जिनमें उच्च स्तर की क्षमता होती है और जो काफी मात्रा में सहभागिता की समानता लाने में सहायक होती हैं। इस कारण, रिग्स समानता और क्षमता को सर्वाधिक महत्त्व देता है। वह इन में संतुलन को बनाए रखने का सुझाव देता है। यह संतुलन तभी सम्भव है जब वामपंथी और दक्षिणपंथी शक्तियां समानता का विकास करती हैं जबकि दक्षिणपंथी शक्तियां व्यवस्था की क्षमता में वृद्धि करती है।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

सही विकल्प चुनिए (Choose the correct option) –

1. तुलनात्मक राजनीति का प्रथम चिन्तक और लेखक था :-

   (क) मोन्टेस्क्यू (ख) अरस्तू (ग) मैकियावेली (घ) हीगल

2. 'पालिटिक्स' पुस्तक किसकी कृति है-

   (क) अरस्तू (ख) मैकियावेली (ग) हीगल (घ) मोन्टेस्क्यू

3. राजनीतिक अध्ययन को सुनिश्चित तथ्यों पर आधारित करने के लिए अरस्तू द्वारा तत्कालीन कितने देशों के संविधानों का अध्ययन किया गया-

   (क) 100 (ख) 120 (ग) 140 (घ) 158

4. "प्रिन्स" पुस्तक के रचयिता हैं:-

   (क) अरस्तू (ख) हीगल (ग) मैकियावेली (घ) मोन्टेस्क्यू

5. 'द स्पिरिट आप द लाज' के लेखक है:-

   (क) मोन्टेस्क्यू (ख) मैकियावेली (ग) अरस्तू (घ) हीगल

1.4 सारांश (Summary)

- तुलनात्मक राजनीति के अर्थ का विस्तृत विवेचन करने से पहले इसका 'तुलनात्मक सरकार' (comparative government) से अन्तर समझ लेना आवश्यक है। सामान्यत:, तुलनात्मक राजनीति को 'तुलनात्मक शासन' या 'तुलनात्मक सरकार' का पर्याय समझ लिया जाता है। दोनों का ही सम्बन्ध 'राजनीति' से होने के कारण इनका एक दूसरे के लिए अदल-बदल कर प्रयोग करना कुछ स्वाभाविक ही है।
- **जीन ब्लोण्डेल** तुलनात्मक सरकार की परिभाषा करते हुए लिखा है–"तुलनात्मक सरकार समकालीन विश्व में राष्ट्रीय सरकारों के प्रतिमानों का अध्ययन है।"
- तुलनात्मक सरकार की उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि इसमें राज्य से सम्बन्धित औपचारिक संस्थाओं का ही मुख्यत: तुलनात्मक अध्ययन होता है।
- तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राजनीतिक व्यवहार की सम्पूर्णता (totality of political behaviour) के अध्ययन से है। इसमें सरकारों व राजकीय संस्थाओं एवं राजनीतिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन तो स्वत: ही सम्मिलित रहता है।
- **राल्फ ब्रेबन्ती** ने तुलनात्मक राजनीति की व्यापक परिभाषा की है। इन्होंने लिखा है–"तुलनात्मक राजनीति सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में उन तत्त्वों की पहचान व व्याख्या है जो राजनीतिक कार्यों व उनके संस्थागत प्रकाशन को प्रभावित करते हैं।"

नोट

- तुलनात्मक राजनीति की संक्षिप्त व शायद सबसे स्पष्ट परिभाषा **एम॰ कर्टिस** ने दी है। उनके अनुसार–"तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राजनीतिक संस्थाओं की कार्यविधि व राजनीतिक व्यवहार की महत्त्वपूर्ण निरन्तरताओं, समानताओं और असमानताओं से है।"
- तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति को लेकर विद्वानों में विचार–विभेद है। मोटे तौर पर इसकी प्रकृति सम्बन्धी विचारों को दो प्रमुख धारणाओं में विभक्त किया जाता है। राजनीति–शास्त्र के विद्वान व तुलनात्मक राजनीति के अग्रणी कम या अधिक मात्रा में दोनों में से किसी एक धारणा के समर्थक दिखाई देते हैं। यह दो धारणाएँ हैं–

  (क) तुलनात्मक राजनीति लम्बात्मक तुलना है। (It is vertical comparative study)

  (ख) तुलनात्मक राजनीति क्षैतीजीय तुलना है। (It is horizontal comparative study)
- तुलनात्मक राजनीति एक ही देश में स्थित विभिन्न स्तरों पर स्थापित सरकारों व उनको प्रभावित करने वाले राजनीतिक व्यवहारों का तुलनात्मक विश्लेषण व अध्ययन है।
- समानताओं के बावजूद, राष्ट्रीय व आंशिक सरकारों के सम्बन्ध में, असमानताओं का ही अधिक आभास होता है। इसलिये तुलनात्मक राजनीति में एक ही देश की विभिन्न–स्तरीय सरकारों का तुलनात्मक विश्लेषण सम्भव दिखाई देते हुए भी सामान्यीकरण (generalization) की सम्भावनाएँ नहीं रखता। एक जैसी विषय–परिधि के अभाव के कारण इसके निष्कर्ष प्रमाणिक (valid) नहीं होंगे और इससे जो सिद्धान्त बनाये जायेंगे उनको भी किसी संवर्ग (category) में रखकर उनसे अन्य देशों की सरकारों को समझना सम्भव नहीं होगा।
- तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति सम्बन्धी दूसरी धारणा के अनुसार यह राष्ट्रीय सरकारों का क्षैतीजीय तुलनात्मक अध्ययन है।
- अगर तुलनात्मक राजनीति राष्ट्रीय सरकारों की क्षैतीजीय तुलना है तो इसमें दो सम्भावनाएँ सम्मिलित दिखाई देती हैं। **पहली** तो यह कि यह तुलना, एक ही देश की विभिन्न कालों में विद्यमान राष्ट्रीय सरकारों की आपस में हो सकती है, तथा दूसरी, उन राष्ट्रीय सरकारों में, जो आज सम्पूर्ण विश्व में विद्यमान हैं, हो सकती है।
- तुलनात्मक राजनीति में ऐतिहासिक सन्दर्भी राष्ट्रीय सरकारों की सम–स्तरीय तुलना की जाती है। इस प्रकार की तुलना का अपना अलग महत्त्व भी है। परन्तु तुलनात्मक राजनीति में यही काफी नहीं। इसकी इस शास्त्र में सीमित उपयोगिता ही हैं इससे केवल एक राज्य की राष्ट्रीय सरकारों को विभिन्न कालों में समझने में ही सहायता मिलती है। उस राष्ट्र से भिन्न प्रकार की संस्कृति, सभ्यता व संगठन वाले राज्य में संचालित सरकार की प्रकृति व राजनीतिक व्यवहार को समझने के लिए यह पर्याप्त नहीं है।
- तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तुलनात्मक राजनीति एक स्वतन्त्र अनुशासन है जो राजनीति–विज्ञान में एक महत्त्वपूर्ण शाखा बन गया है। यद्यपि इसका अध्ययन भी राजनीतिक संस्थाओं से सम्बन्धित राजनीति से है फिर भी यह राजनीति–विज्ञान से इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें राज्य व गैर–शासकीय राजनीति, दोनों का ही अध्ययन सम्मिलित होता है। जबकि राजनीति–विज्ञान, गैर–शासकीय राजनीति से प्रत्यक्ष रूप में सम्बन्धित नहीं होता। इस प्रकार, तुलनात्मक राजनीति, एक ही देश की राष्ट्रीय सरकारों का ऐतिहासिक सन्दर्भ व राष्ट्रीय सीमाओं के आर–पार तुलनात्मक अप्रणयन ही नहीं है; यह इसके साथ, राजनीतिक प्रक्रियाओं व राजनीतिक व्यवहार तथा सरकारी तन्त्रों को प्रभावित करने वाली गैर–सरकारी व्यवस्थाओं का भी तुलनात्मक अध्ययन है।
- "सबसे अधिक आधारभूत बात तुलनात्मक राजनीति के बारे में यह है कि आज यह एक ऐसा विषय है जिसमें अत्यधिक विवाद है क्योंकि यह संक्रमण–स्थिति में है–एक प्रकार की विश्लेषण शैली से दूसरे प्रकार की शैली में प्रस्थान कर रहा है।"

नोट

- इससे स्पष्ट है कि तुलनात्मक राजनीति की परिभाषा व प्रकृति की तरह इसका विषय-क्षेत्र भी विवाद का विषय है इसके क्षेत्र को लेकर परम्परावादियों व आधुनिक राजनीति-शास्त्रियों में गहरा मतभेद है। जीन ब्लोण्डेल Jean Blondel) ने यह विवाद दो बातों से सम्बन्धित बताया है। **पहला** है तुलनात्मक राजनीति की सीमा सम्बन्धी व **दूसरा** है मानकों व व्यवहारों के पारस्परिक सम्बन्धों सम्बन्धी विवाद।
- इस प्रकार, तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध प्रमुखतया शासन-क्रिया के इर्द-गिर्द घूमते राजनीतिक व्यवहार के तुलनात्मक अध्ययन से है। परन्तु शासन-क्रिया तीन स्तरों पर संचालित होती है या यों कहें कि मूल्यों का अधिकृत आवंटन तीन स्तरों पर परिचालित होता है। इसलिए, "तुलनात्मक राजनीति में परिचालनता (operations) के इन स्तरों का, जिनसे मूल्यों का आंवटन होता है, परीक्षण करना महत्त्वपूर्ण है।" यह तीन स्तर हैं–

  (1) मूल्यों व गन्तव्यों का नियमन (formulation of values and goals)

  (2) मूल्यों को आत्मसात करना व निर्दिष्ट निर्णयों में रूपान्तरण (digestion of values and their transformation in goal decisions)

  (3) निर्णयों का कार्यान्वयन (implementation of decisions)
- व्यवहारवादी राजनीतिक व्यवस्था को एक इलेक्ट्रोनिक (electronic) यन्त्र के रूप में देखते हैं। शासन-तन्त्र द्वि-मार्गी प्रचालन है। यह एक ऐसी मशीन है, जो संकेत (signals) ग्रहण करती है और इनका अन्य संकेतों में रूपान्तरण करती है। तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध शासन-तन्त्र द्वारा ग्रहण किये गये संकेतों व उनके रूपान्तरण की प्रक्रिया से है। इस प्रकार तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन-क्षेत्र में, राजनीतिक समाज में मूल्यों व गन्तव्यों के नियमन की प्रक्रियाओं, इन मूल्यों को शासन-तन्त्र द्वारा आत्मसात करना व निर्दिष्ट निर्णयों में रूपान्तर और स्वीकृत निर्णयों के कार्यान्वयन से सम्बद्ध प्रक्रियाएँ सम्मिलित की जाती हैं।
- तुलनात्मक राजनीतिक का इतिहास लगभग उतना ही प्राचीन है जितना राजनीतिक चिन्तन का इतिहास है सम्पूर्ण लिखित इतिहास ही तुलनात्मक राजनीति का इतिहास कहा जा सकता है। इसके सर्वप्रथम चिन्तक व लेखक होने का श्रेय अरस्तू को ही प्राप्त है। अरस्तू की भूमिका तुलनात्मक राजनीति को ठोस आधार देने में न केवल महत्त्वपूर्ण मानी जाती है, वरन् कई कारणों से मौलिक भी कही जा सकती है। अरस्तू ने जिन समस्याओं को तुलनात्मक विश्लेषण के लिए चुना व जिन पद्धतियों का राजनीतिक अध्ययन में प्रचलन किया, वे आज भी तुलनात्मक राजनीति में प्रचलित हैं।
- अरस्तू ने तुलनात्मक राजनीति पर केवल सैद्धान्तिक बल ही नहीं दिया, अपितु तत्कालीन विश्व में प्रचलित 158 संविधानों का तुलनात्मक विश्लेषण करके राजनीतिक अध्ययन को सुनिश्चित तथ्यों पर आधारित किया। आनुभविक विश्लेषण का यह सर्वप्रथम प्रयोग था। अरस्तू ने अपनी पुस्तक **पोलिटिक्स** में राजनीति की अध्ययन पद्धतियों सम्बन्धी प्रश्न उठाये और अनेकों प्रश्नों का स्वयं ही इस पुस्तक में उत्तर भी दिया।
- तुलनात्मक राजनीति का आधुनिक अध्ययन, पुनःजागरण काल के राजनीतिक चिन्तन से आरम्भ हुआ माना जाता है। इस काल में राज्य को 'दैवी' (divine) नहीं 'मानवकृत' माना गया और इसलिए इसके पुनर्गठन या नव-निर्माण का या यों कहें इसमें सुधार मार्ग प्रशस्त हुआ।
- तुलनात्मक राजनीति को तो मैकियावेली की महत्त्वपूर्ण देन रही है, क्योंकि उसके राजनीति सम्बन्धी सभी निष्कर्ष विभिन्न शासन व्यवस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन पर ही आधारित हैं। उसकी पुस्तक **प्रिन्स** (Prince) के अध्ययन से, तुलनात्मक राजनीतिक अनुशासन को उसकी देन का संकेत मिलता है। इस पुस्तक में मैकियावेली ने यह विचार व्यक्त किया है कि राजनीति का व्यवस्थित व तुलनात्मक अध्ययन क्यों आवश्यक है? उसके चिन्तन व लेखन से यह स्पष्ट होता है कि राज्य मनुष्य द्वारा निर्मित संस्था है और राजनीति का उद्देश्य सामाजिक अभियन्त्रण (social engineering) है।
- मैकियावेली समाज को संबंधों का प्रतीक बताकर इन सम्बन्धों की भिन्नता का संकेत देता है। यह सम्बन्ध एक देश में ही भिन्न-भिन्न प्रकार के नहीं होते, वरन् हर देश में अलग-अलग प्रकार होते हैं।

नोट

- मैकियावेली के राजनीतिक चिन्तन से एक बात यह भी उभरती है कि राजनीति का उद्देश्य सामाजिक अभियन्त्रण है।
- मैकियावेली ने सर्वोत्तम राजनीति व सामाजिक व्यवस्था के ज्ञान के लिए विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाओं की तुलना को अनिवार्य माना है। स्वयं उसने शासकों को परामर्श देने के लिए विभिन्न देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं व शासकों के कार्यों का अध्ययन किया और उनकी परस्पर तुलना कर निष्कर्ष निकाले। यह निष्कर्ष प्रिन्स नामक पुस्तक में शासक को सुझाव के रूप में व्यक्त हुए।
- इतिहास तुलनात्मक राजनीति के विकास को उन्नीसवीं शताब्दी में ले आता है। इस काल की राजनीतिक विचारधाराओं की भूमिका तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन के सम्बन्ध में नकारात्मक ही रही है। इससे यह अभिप्राय है कि इस युग में तुलनात्मक पद्धति के विकास को या तुलनात्मक अध्ययन के विचार को प्रत्यक्ष रूप में प्रोत्साहन नहीं मिला।
- हीगल जर्मन दार्शनिक था। उसके अनुसार आत्मा का मोक्ष मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य है। मानव का विकास एक नैतिकता की दिशा में हो रहा है, और अंतिम वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करना (relization of ultimate reality) ही मोक्ष प्राप्त करना है। उसके अनुसार जो अंतिम विवेक (reason) है, वह भिन्न-भिन्न प्रकार के रूप में पृथ्वी पर अवतार लेता है और उसका एक रूप स्वयं मनुष्य है। राज्य भी एक ऐसा ही अवतरित स्वरूप है।
- हीगल इसलिए ही "राज्य को ईश्वर का पृथ्वी पर विचरण" कहता है। इस आधार पर वह एक सर्वशक्तिमान राज्य की कल्पना करता है, जिसमें मनुष्य पूर्णतया राज्य के अधीन रहता है।
- राजनीतिक विकास पर एक-मार्गी दृष्टिकोण रखने वाले विचारक यह मानते हैं कि सभी राष्ट्र विकास के मार्ग से होते हुए आगे की ओर बढ़ रहे हैं। इनकी इस सम्बन्ध में पहली मान्यता है कि सभी राज्यों में राजनीतिक विकास का केवल एक ही मार्ग है। इस विचार के समर्थकों की दूसरी मान्यता है कि दुनिया के सभी राष्ट्र विकास के इस एक मार्ग पर विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में हैं। इनकी तीसरी मान्यता यह है कि राजनीतिक विकास के लिए प्रयत्नशील राष्ट्रों के सामने विकसित राज्यों का आदर्श है इस दृष्टिकोण के समर्थकों का अभिमत है कि ऐसे तीन आदर्श है जिनमें से किसी एक आदर्श को विकसित राजनीतिक व्यवस्था का आदर्श माना जा सकता है। पहला आदर्श पाश्चात्य जगत के राज्यों का, दूसरा सोवियत रूस का और तीसरा आदर्श चीन का है।
- इस दृष्टिकोण के प्रतिपादकों का कहना है कि राजनीतिक विकास के संकेतकों (indicators) का निश्चय करके राजनीतिक व्यवस्थाओं को इस विकास-मार्ग पर अंकित करते ही उनकी राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं की गत्यात्मकताओं का ज्ञान हो जाएगा।
- राजनीतिक विकास का बहु-मार्गी विचार इससे भिन्नता रखता है। विकास के दूसरे दृष्टिकोण के समर्थक राजनीतिक विकास को बहुमार्गी मानते हैं और तीन दलीलें इसकी पुष्टि के लिए देते हैं। उनकी पहली मान्यता है कि राजनीतिक विकास बहु-दिशाई व बहु-आयामी (multi-directional and multi-dimensional) है। क्योंकि, स्वयं विकास की अनेक दिशाएँ होती हैं। उनके अनुसार राजनीतिक विकास सामान्य विकास की धारा में समाई हुई, किन्तु, स्पष्ट रूप से विशिष्ट धारा है। जब समाजों का विकास बहु-दिशाई है तो उनका राजनीतिक विकास भी बहु-दिशाई हो जाता है। इनकी दूसरी मान्यता पहली मान्यता का परिणाम कही जा सकती है। यह मान्यता राजनीतिक विकास को बहु-मार्गी मानती है।
- इन दो मान्यताओं से इनकी तीसरी मान्यता उभरती है। इसके अनुसार राजनीतिक विकास के आदर्श या गन्तव्य एक-से नहीं होते हैं। सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं के सामने कोई एक या एक-सा विकास-आदर्श नहीं होता है। विकसित और साम्यवादी राज्यों में भी इन आदर्शों को लेकर इतनी भिन्नताएँ हैं कि उनका आदर्श या लक्ष्य अपना सकना सम्भव ही नहीं है।
- पश्चिम, सोवियत रूस या चीन का राजनीतिक विकास प्रतिमान अब स्वीकार नहीं किया जाता है। विकासशील राज्यों का राजनीतिक विकास अगर एक दिशा में ही रहा होता तो उनकी प्रकृति को समझना अत्यन्त सरल हो

नोट

जाता। वास्तविक कठिनाई यहाँ यह आती है कि इन देशों में विकास की न एक दिशा है और न ही विकास का कोई एक मार्ग है।

- राजनीतिक विकास के अर्थ को लेकर अभी भी विचारकों में मतभेद बना हुआ है। इसके अर्थ पर मतभेद का प्रमुख कारण इसकी व्याख्या विचारक विशेष का दृष्टिकोण है। उदाहरण के लिए, स्पर्ट एमर्सन, लिपसेट, कोलमैन और कटराइट ने राजनीतिक विकास को आर्थिक विकास की राजनीतिक पूर्व-शर्त के रूप में समझने का प्रयास किया है जबकि रोस्टोव जैसे अर्थशास्त्री ने इसको औद्योगिक समाजों की विशेष राजनीति बताया है। गुन्नार मिर्डल और लरनर जैसे समाजशास्त्रियों ने राजनीतिक विकास को राजनीतिक आधुनिकीकरण का पर्याय बताया है। बिंडर इसको राष्ट्रीय राज्य का प्रचारक या संघटक मानता है।
- आमन्ड और कोलमैन राजनीतिक विकास को लोकतंत्र का पर्याय कहते हैं। साम्यवादी और तानाशाही शासन व्यवस्थाओं के समर्थक स्थायित्व और व्यवस्थित परिवर्तन को राजनीतिक विकास का नाम देते हैं। कुछ विचारक राजनीतिक विकास को शक्ति एवं संघटन का एक रूप मानते हैं। आमन्ड, कोलमैन, ब्लेक, आयन्स्टैड और कोर्न होजर ने राजनीतिक विकास को सामाजिक परिवर्तन की बहु-दिशा-युक्त प्रक्रिया के एक पहलू के रूप में विवेचित किया है।
- पाई ने इसकी सर्वप्रथम परिभाषा उस समय दी जब इस अवधारणा का विकास हो रहा था। उसके द्वारा दी गई परिभाषा इस प्रकार है-''राजनीतिक विकास, संस्कृति का विसरण (diffusion) और जीवन के पुराने प्रतिमानों को नई मांगों के अनुकूल बनाने, उन्हें उनके साथ सामंजस्य बैठाना है।''

1.5 शब्दकोश (Keywords)

- **आत्मसात–** ग्रहण करना
- **विहंगम दृष्टिकोण–** विस्तृत नजरिया

1.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. तुलनात्मक राजनीति और सरकार से आप क्या समझते हैं? इसके अर्थ-प्रकृति, परिभाषा और विस्तार क्षेत्र की व्याख्या कीजिए।
2. तुलनात्मक राजनीति के विकास पर प्रकाश डालिए।
3. राजनीतिक विकास के अर्थ एवं परिभाषा की विवेचना कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (ख) 2. (क) 3. (घ) 4. (ग) 5. (क)

1.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *तुलनात्मक शासन एवं राजनीति*–डॉ. बीरकेश्वर प्रसाद सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन (पी. एण्ड डी.) 24, दरियागंज, अंसारी रोड, दिल्ली।
2. *तुलनात्मक राजनीति*–जे.सी. जौहरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि., दिल्ली।
3. *तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ*–सी.बी. गेना विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड, दिल्ली।
4. *तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा*– ओम प्रकाश गाबा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।

नोट

इकाई–2: तुलनात्मक पद्धति और राजनीति (Comparative Method and Politics)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

2.1 तुलनात्मक पद्धति और तुलनात्मक राजनीति (Comparative Method and Comparative Politics)

2.2 तुलनात्मक पद्धति की प्रकृति (The Nature of Comparative Method)

2.3 तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के परम्परागत उपागम (Traditional Approach to the Study of Comparative Politics)

2.4 सारांश (Summary)

2.5 शब्दकोश (Keywords)

2.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

2.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- तुलनात्मक पद्धति की प्रकृति और तुलनात्मक राजनीति के परम्परागत उपागम की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग राजनीतिशास्त्र के अध्ययन में राजनीतिशास्त्र के जनक अरस्तू के समय से होता आया है। सिसेरो, पोलीबियस टेसीटस, मैकियावेली, मोन्टेस्क्यू, टाक्कविल, बेजहाट, सर हेनरी मेन तथा ब्राइस इत्यादि अनेक राजनीतिक दार्शनिकों व राजनीतिशास्त्रियों ने अपने अध्ययन में इस पद्धति का उपयोग किया है। इस पद्धति के प्रयोग से अध्ययनकर्ता, विभिन्न राज्यों, उनके संगठनों, उनकी नीतियों एवं कार्यकलापों का तुलनात्मक अध्ययन करता है और इस प्रकार की तुलनाओं के आधार पर राजनीतिक निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करता है। परन्तु, दूसरे विश्वयुद्ध से पहले के राजनीतिशास्त्रियों द्वारा, तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग अतीत व प्रचलित राजनीतिक व्यवस्थाओं की परस्पर तुलना करके 'आदर्श प्रकार' या राजनीतिक इतिहास की प्रगतिशील शक्तियों की खोज करने तक ही सीमित रहा था। उन्होंने इस पद्धति का प्रयोग ऐसी सामान्य धारा (general current) की खोज करने में किया जो सभी संविधानों में प्रवाहित होती हो और जिस पर अनुभव के अनुमोदन की छाप लग गई हो। इस प्रकार 1945 तक इस पद्धति का प्रयोग, राजनीतिक व्यवस्थाओं की औपचारिक, कानूनी व संवैधानिक तुलनाओं तक ही सीमित रहा । यद्यपि युद्ध के बाद के तुलनात्मक विश्लेषणों में भी तुलनात्मक पद्धति का मूलतः वही तार्किक (Logical) क्रम प्रयोग में आता है, फिर भी, एशिया व अफ्रीका के नवोदित राज्यों के कारण, राजनीतिक व्यवस्थाओं की अनेकता, विचित्रता ने तथा तुलना के प्रत्ययों और विश्लेषण उपकरणों के परिष्करण (sophistication) ने तुलनात्मक पद्धति को परिमार्जित कर दिया है।

नोट

2.1 तुलनात्मक पद्धति और तुलनात्मक राजनीति (Comparative Method and Comparative Politics)

अब तुलनात्मक पद्धति, किसी राजनीतिक व्यवस्था को किसी अन्य राजनीतिक व्यवस्था से यान्त्रिकी तुलना (mechanical comparison) मात्र नहीं मानी जाती है। अब इसका प्रयोग सर्जनात्मक प्रक्रिया (creative process) के रूप में इस प्रकार से होता है जिससे तुलनाएँ अधिक अर्थपूर्ण बनाई जा सकें। सामाजिक विज्ञानों में यान्त्रिकी तुलनाएँ किसी अर्थपूर्ण निष्कर्ष तक नहीं पहुंच सकती हैं। जैसे भारत के प्रधानमन्त्री की, भारत के किसी गांव की पंचायत के सरपंच से तुलना की जाए तो यह तुलना केवल यान्त्रिकी ही हो सकती है और ऐसी तुलना से न तो प्रधानमन्त्री के बारे में और न ही सरपंच के बारे में कोई अर्थपूर्ण निष्कर्ष निकाला जा सकता है। अब तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग विशेष अर्थों में होने लगा है। यह एक सृजनात्मक प्रक्रिया के रूप में देखी जाने लगी है। पर इस नये अर्थ में इसका प्रयोग बहुत कठिन बन गया है, क्योंकि सामाजिक विज्ञानों में तुल्य घटनाओं की अपनी इच्छा व 'मानस' होता है। यही कारण है कि सामाजिक विज्ञानों में इस पद्धति का उपयोग अधिक प्रेरक, चुनौती वाला पर साथ ही फलदायक बन गया है।

अरेण्ड लिज़फार्ट ने इस पद्धति की परिभाषा करते हुए लिखा है कि ''तुलनात्मक पद्धति, अन्य सभी परिवर्त्यों को स्थिर रखते हुए, दो या अधिक परिवर्त्यों के बीच सामान्य आनुभविक सम्बन्ध की स्थापना करने की विधि है।'' अर्थात तुलनात्मक पद्धति सामान्य आनुभविक प्रस्थापनाएँ स्थापित करने की आधारभूत पद्धतियों में से एक है। आर्थर एल. कालबर्ग ने इस पद्धति की संक्षिप्त परिभाषा की है। वह तुलनात्मक पद्धति को मापन का एक रूप (form of measurement) मात्र मानता है। लासवेल और आमण्ड ने तुलनात्मक पद्धति को वैज्ञानिक पद्धति कहकर परिभाषित किया है। लासवेल के अनुसार, ''तुलनात्मक पद्धति, वैज्ञानिक पद्धति से भिन्न हो ही नहीं सकती है।'' उसकी मान्यता है कि राजनीतिक घटनाओं पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए एक स्वतन्त्र व पृथक तुलनात्मक पद्धति अनावश्यक है। अत: इनके अनुसार तुलनात्मक पद्धति, वैज्ञानिक पद्धति की तरह ही सामान्य नियमों की खोज के लक्ष्य की प्राप्ति की विधि है।

कालबर्ग, लासवेल व आमण्ड द्वारा किया गया तुलनात्मक पद्धति का अर्थ, इस पद्धति की प्रकृति का सही चित्रण नहीं करता है। यह मापन का एक रूप मात्र नहीं कहा जा सकता है। मापन से ही तुलनाएँ नहीं हो जाती हैं। यद्यपि यह सही है कि मापन में तुलना अन्तर्निहित है, पर मापन एक घटना के बारे में सामान्य निष्कर्ष से आगे नहीं ले जा सकता है। उदाहरण के लिए, यह मापन का निष्कर्ष है कि किसी देश में संसदीय लोकतन्त्र सफल है, अवश्य ही किसी अन्य संसदीय लोकतन्त्र के बारे में सामान्यीकरण नहीं निकाले जा सकते हैं। इससे यह तो बताया जा सकता है कि संसदीय लोकतन्त्र ऐसा है पर इसके बारे में यह स्पष्ट नहीं किया जा सकता कि ऐसा क्यों है? इसलिए कालबर्ग की परिभाषा, कि तुलनात्मक पद्धति मापन का एक रूप है, सही नहीं माना जा सकता है।

लासवेल व आमण्ड द्वारा इसे वैज्ञानिक पद्धति ही मान लेना भी ठीक नहीं है। वैज्ञानिक पद्धति तो एक मनोवृत्ति है। यह व्यवस्थित पर्यवेक्षण, वर्गीकरण और आंकड़ों की व्यवस्था है जिसमें तुलना भी होती हो यह आवश्यक नहीं है। जैसे, किसी देश की व्यवस्थापिका का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन सम्भव नहीं है। इस पद्धति के द्वारा अध्ययन तभी होगा जब किसी अन्य देश की व्यवस्थापिका से इसकी तुलना की जाए। अत: तुलनात्मक पद्धति व वैज्ञानिक पद्धति को एक ही नहीं माना जा सकता है।

नोट

नोट्स तुलनात्मक राजनीति में तुलनात्मक पद्धति आधारभूत है। तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राजनीतिक संस्थाओं की कार्यविधि व राजनीतिक व्यवहार की महत्वपूर्ण निरन्तरताओं, समानताओं और असमानताओं से होने के कारण, इस पद्धति के द्वारा ही यह निरन्तरताएँ, समानताएँ और असमानताएँ समझी व खोजी जा सकती हैं। यही कारण है कि कई बार तुलनात्मक राजनीति और तुलनात्मक पद्धति को समान-अर्थी (synonyms) या एक-दूसरे का पर्याय मान लिया जाता है। यह वास्तव में एक-दूसरे का पर्याय नहीं है।

निष्कर्ष में यही कहा जा सकता है कि तुलनात्मक पद्धति किसी राजनीतिक व्यवस्था, संस्था, प्रक्रिया व राजनीतिक व्यवहार से सम्बन्धित दो या अधिक परिवर्त्यों में परस्पर आनुभविक सम्बन्ध स्थापित करने की ऐसी विधि है जिसमें तुलना की सभी इकाईयों से सम्बंधित अन्य सभी परिवर्त्यों को स्थिर रखा जाता है। जैसे, किसी निर्वाचन क्षेत्र में जाति व मतदान आचरण (voting behaviour) का सम्बन्ध मालूम करने के लिए अन्य निर्वाचन क्षेत्रों में मतदान आचरण से इसकी तुलना की जाएगी। यहां जाति के अलावा सभी निर्वाचन क्षेत्रों में बाकी सब बातें समान मानकर चला जाएगा अर्थात जाति व मत-व्यवहार के अलावा सभी परिवर्त्य स्थिर माने जाएंगे। उदाहरण के लिए सभी निर्वाचन क्षेत्रों में बाकी सब बातें समान मानकर चले जाएंगे। उदाहरण के लिए सभी निर्वाचन क्षेत्र ग्रामीण होंगे, सभी में एक सी शिक्षा होगी, सभी में मतदाताओं की आर्थिक सम्पन्नता भी समान होगी। इसी प्रकार शिक्षा, धर्म, भाषा इत्यादि परिवर्त्यों का मत व्यवहार से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है और परस्पर अनेक निर्वाचित क्षेत्रों में इन सम्बन्धों की तुलना करके मत व्यवहार के सम्बन्ध में सामान्यीकरण तक पहुंचा जा सकता है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तुलनात्मक पद्धति की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं–

(1) यह निश्चित रूप से एक पद्धति है। (2) यह वैज्ञानिक पद्धतियों में एक है, स्वयं वैज्ञानिक पद्धति नहीं है। (3) यह परिवर्त्यों के बीच आनुभविक सम्बन्ध-सूत्रता की खोज करने की विधि है। (4) यह तुलनात्मक विश्लेषण की विधि है, प्रविधि प्रक्रिया या तुलना का दृष्टिकोण नहीं है।

तुलनात्मक पद्धति के अर्थ व परिभाषा से यह स्पष्ट है कि तुलनात्मक राजनीति में इस पद्धति का विशेष महत्त्व ही नहीं है बल्कि विशेष अर्थ भी है। इस पद्धति की प्रकृति के विवेचन से यह और स्पष्ट हो जाएगा।

2.2 तुलनात्मक पद्धति की प्रकृति (The Nature of Comparative Method)

तुलनात्मक पद्धति की प्रकृति का स्पष्टीकरण इसके प्रयोग की पूर्व शर्तों के विवेचन द्वारा किया जा सकता है। यह इस अध्याय के प्रारम्भ में ही देखा जा सकता है कि तुलनात्मक पद्धति किसी भी एक वस्तु की किसी अन्य वस्तु से तुलना करना नहीं है। यह सर्जनात्मक प्रक्रिया है। इसका तुलनाओं में प्रयोग तभी किया जा सकता है जबकि तुलना की इकाइयों में कुछ लक्षण अनिवार्यत: विद्यमान हों अर्थात तुलनात्मक पद्धति की तुलना करने की कुछ पूर्व शर्तें हैं। संक्षेप में यह पूर्व शर्तें इस प्रकार हैं-

तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग की पूर्व शर्तें: (Pre-requisites of Comparative Method)

तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग की कुछ विशिष्ट पूर्व शर्तें हैं। इनके पूरा हुए बिना तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग से की गई तुलनाएँ सामान्यीकरण की अवस्था तक नहीं ले जा सकती है। वास्तव में, यह वे विशिष्ट शर्तें हैं जिनसे तुलनात्मक अध्ययनों को अर्थ-पूर्ण बनाने में सहायता मिलती है। इन शर्तों की पूर्ति के अभाव में भी तुलनात्मक विश्लेषण तो किया जा सकता है। पर तुलना की इकाइयों के बारे में उपयोगी निष्कर्ष निकालना सम्भव नहीं होता है। जैसे किसी देश की सर्वोच्च न्यायालय की एक गांव की न्याय पंचायत से तुलना करने पर भी तुलना की उन दोनों इकाइयों में किसी के बारे में भी कोई सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकेगा। यहां इन इकाइयों में प्रत्ययी अंतर होने के कारण तुलना ही निरर्थक होगी। अत: तुलनात्मक पद्धति का किसी भी इकाई की किसी भी अन्य

नोट

इकाई से तुलना करने में उपयोग सार्थक नहीं होता है। इसकी सार्थकता के लिए कुछ पूर्व शर्तों का पूरा होना आवश्यक है। यह विशिष्ट पूर्व शर्तें निम्नलिखित हैं-

(क) तुलना की इकाई चयन के कारक के रूप में प्रत्ययी ढांचा या विचारबन्ध (Conceptual framework as a factor in unit selection)— तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग में तुलना की इकाइयों का प्रत्ययी ढांचा एक-सा होना आवश्यक है। एक-से प्रत्ययी ढांचे से यहां यह तात्पर्य है कि सभी इकाइयाँ एक ही प्रत्यय से सम्बन्धित हों। उदाहरण के लिए, भारत की संसद की तुलना, ब्रिटेन की संसद से करने पर, तुलना की दोनों इकाइयाँ-भारत व ब्रिटेन की संसदें, समान प्रत्ययी ढांचे वाली इकाइयाँ कही जाएंगी। यहाँ यह ध्यान रखना है कि तुलना की इकाइयों का एक-सा प्रत्ययी ढांचा दोनों की एकरूपता या समानता का संकेतक नहीं है। इस उदाहरण में दोनों की संसदों में विभिन्नता और विचित्रता होने पर भी प्रत्यय की दृष्टि से दोनों का विचारबन्ध एक समान है। अर्थात दोनों ही राष्ट्रीय संसद हैं, पर अगर राजस्थान की विधान सभा की अमरीका की कांग्रेस (व्यवस्थापिका) से तुलना की जाए तो दोनों इकाइयों का प्रत्ययी ढांचा अलग-अलग हो जाएगा और तुलना तो की जा सकेगी, पर यह सर्जनात्मक नहीं हो सकेगी। यहां राजस्थान की विधान सभा व अमरीका की कांग्रेस प्रत्ययी ढांचे की समानता नहीं रखती है। इसलिए इन दोनों की तुलना तो हो सकेगी तथा कुछ निष्कर्ष भी निकालना सम्भव होगा पर उससे आगे इस तुलना के आधार पर, इन दोनों इकाईयों में से किसी के बारे में भी सामान्य सिद्धान्त नहीं बनाए जा सकेंगे और न ही दोनों के बारे में कोई स्पष्टीकरण देना सम्भव होगा। अत: तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग के लिए तुलना की इकाई के चुनाव में एक-सा-प्रत्ययी ढांचा होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी होता है।

(ख) अन्वेषण के केन्द्र के रूप में तुल्य प्रत्ययी विषय (Comparable conceptual issue as focus of enquiry)— तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग की एक पूर्व शर्त यह भी है कि अन्वेषण के केन्द्र के रूप में तुलना योग्य व समान प्रत्ययों के विषय ही तुलनात्मक अध्ययनों के लिए चुने जाएँ अन्यथा अध्ययन के सम्बन्ध में परिकल्पना करना ही कठिन हो जाएगा। समान प्रत्ययी विषय से तुलना की विषय-वस्तु की एकरूपता का अर्थ नहीं है बल्कि विषय वस्तुओं में मोटी समानता से है। इससे शोध कार्य में दिशाई एकता (directional unity) रहेगी और अर्थपूर्ण तुलनात्मक विश्लेषण सम्भव हो सकेगा।

(ग) तुलना की प्रत्ययी इकाइयों की परिभाषितता (Definationally conceptual units of comparison)— तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग में केवल ऐसी ही प्रत्ययी इकाइयों का चयन करना चाहिए जिनकी परिभाषा की जा सके। इकाइयों के चुनाव में यह ध्यान रखना जरूरी है कि उनसे सम्बंधित प्रत्यय समय, स्थान और संस्कृति के बन्धनों से मुक्त हों तथा सभी अवस्थाओं व परिस्थितियों में लागू होने वाले हों। इससे केवल यही तात्पर्य है कि प्रत्ययी इकाइयाँ ऐसी हों जिनकी मान्य परिभाषा हो। जैसे राजनीतिक व्यवस्था राजनीतिक विकास या राजनीतिक समाजीकरण की परिभाषा करना सम्भव है। तुलना की इकाइयों से सम्बन्धित प्रत्यय ऐसे नहीं होने चाहिए कि या तो उनकी परिभाषा ही नहीं की जा सके और अगर उनको परिभाषित करना सम्भव हो तो भी हर शोधकर्ता की परिभाषा, हर दूसरे शोधकर्ता की परिभाषा से भिन्न हो। 'समाजवाद' व लोकतन्त्र' आज ऐसे ही प्रत्यय बन गए लगते हैं। अत: तुलना में ऐसे ही प्रत्ययों का प्रयोग किया जाए जिनकी परिभाषा की जा सके तथा जो विचारधारा, स्थान और मूल्यों के बन्धनों से मुक्त हो। ऐसा होने पर ही तुलनात्मक विश्लेषण अर्थपूर्ण निष्कर्षों तक जा सकेगा।

(घ) शोध के केन्द्र की सुनिश्चितता (Definiteness of the focus of enquiry)— तुलनात्मक विश्लेषणों में तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग उपयोगी बनाने के लिए अध्ययन का सुनिश्चित ध्येय या मन्तव्य होना चाहिए। इसे निरर्थक तथ्यों की तुलना से बचना सम्भव होता है। अगर शोध के केन्द्र की सुनिश्चितता नहीं होगी तो अनावश्यक आंकड़ों के संकलन का खतरा रहेगा। सुनिश्चित उद्देश्य से अध्ययन की इकाइयों के बारे में परिकल्पना करना भी सरल हो जाता है।

(च) प्रत्ययी इकाई के कम से कम उदाहरणों की अनिवार्यता (Necessity of atleast two cases of conceptual units)— तुलना करने का तात्पर्य ही यह है कि कम से कम दो उदाहरण तो उपलब्ध हों। अगर दो या दो से अधिक उदाहरण नहीं होंगे तो तुलना सम्भव ही नहीं होगी। जहाँ केवल एक ही घटना या उदाहरण है वहां तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

नोट

उपरोक्त पूर्व शर्तें इस पद्धति के उपयोग में अत्यधिक-महत्व रखती है। तुलनाओं को सृजनात्मक बनाने के लिए इन शर्तों की आवश्यकता स्वत: स्पष्ट है। इनमें से एक का भी अभाव अन्य शर्तों की पूर्ति को असम्भव बना देता है। अत: यह कहा जा सकता है कि तुलनाओं को अर्थपूर्ण बनाने के लिए तुलनात्मक पद्धति की यह शर्तें पूरी होनी ही चाहिए अन्यथा तुलनाएँ केवल यान्त्रिकी बन कर रह जाएँगी।

तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग की पूर्व शर्तों के विवेचन से इस पद्धति की प्रकृति का स्पष्टीकरण हो जाता है। इससे यह भी समझ में आ जाता है कि किसी भी प्रकार की इकाइयों की परस्पर तुलना करना तुलनात्मक पद्धति का अनुसरण नहीं कहा जा सकता है। इन शर्तों के विवेचन के बाद उन चरणों का उल्लेख करना आवश्यक है जो इस पद्धति के प्रत्ययों में प्रयुक्त होते हैं यह संक्षेप में निम्नलिखित हैं-

तुलनात्मक पद्धति का परिचालनात्मक विचार (Operational View of Comparative method)

तुलनात्मक पद्धति की पूर्व शर्तों के विवेचन से यह संकेत मिलता है कि इस पद्धति का प्रयोग विशिष्ट प्रकार से ही हो सकता है। इसके प्रयोग के कुछ निश्चित चरण हैं जिनका अनुगमन करते हुए ही तुलनाएँ सृजनात्मक बन पाती हैं। सामान्यतया इस पद्धति के प्रयोग के निम्नलिखित चरणों का पालन होने पर ही यह पद्धति क्रियात्मक रूप ले सकती है।

(क) प्रत्ययी ढांचे के आधार पर तुलना की इकाइयों का चयन (Selection of units of comparison on the basis of conceptual framework) – यह पहले ही देखा जा चुका है कि तुलना की इकाइयों को चुनाव करते समय प्रत्ययी ढांचे का आधार क्यों लिया जाना चाहिए। यहाँ इतना ही याद रखना पर्याप्त रहेगा कि अगर तुलना की इकाइयों का आधार, एक ही प्रकार का प्रत्यय नहीं रहा तो तुलनाएँ सामान्य निष्कर्ष निकालने में सहायक नहीं हो सकेंगी। उदाहरण के लिए किसी देश की कार्यपालिका की अन्य देश की न्यायपालिका से तुलना करना दो भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रत्ययों के कारण, संभव होते हुए भी उपयोगी नहीं होगा। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि वैसे तो इस पद्धति के लिए दो ही उदाहरण होने पर भी तुलना की जा सकती है पर निष्कर्षों को सामान्यीकरण का रूप देने के लिए जितने अधिक उदाहरण होंगे उतनी ही परिशुद्धता बढ़ती जाएगी। उदाहरण के लिए, अगर संसदीय शासन व्यवस्था और दलीय व्यवस्था की प्रकृति का परस्पर सम्बन्ध जानना हो तो संसदीय शासन व्यवस्थाओं के अनेक उदाहरण होने पर शुद्धतायुक्त निष्कर्ष निकालने में सहूलियत रहेगी। उदाहरणों की अधिकता तुलना को व्यापकतम बनाने का अवसर प्रदान करती है। इसलिए प्रत्ययी इकाइयों का अध्ययन उतना ही श्रेष्ठतर होगा जितनी कि उदाहरणों की संख्या, जिन्हें तुलना में सम्मिलित किया गया है।

(ख) तुलना की इकाइयों का वर्गीकरण (Classfication of the units of comparison) – तुलना के लिए चुनी गई प्रत्ययी इकाइयों का वर्गीकरण करके ही तुलनात्मकता की अवस्था में पहुँचा जा सकता है। वर्गीकरण से तुलना का क्षेत्र व इकाइयों के वर्ग का सीमांकन हो जाता है। इससे तुलना का क्षेत्र सुनिश्चित व सुस्पष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिए, अगर 50 राजनीतिक व्यवस्थाएँ तुलनात्मक अध्ययन में सम्मिलित की गई हों तो इनकी सम्भावित परिकल्पना को ध्यान में रखते हुए वर्गीकरण करना उपयोगी रहता है। अगर परिकल्पना लोकतन्त्र के किसी पहलू से सम्बन्धित है और केवल लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं की तुलना ही करनी हो तब इन 50 राजनीतिक व्यवस्थाओं का दो वर्गों में विभक्त होना आवश्यक है। एक वर्ग लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं का तथा दूसरा निरंकुश व्यवस्थाओं का करना होगा। वर्गीकरण से परिकल्पना करना सरल हो जाता है तथा व्यर्थ के आंकड़ों के संकलन से बचा जा सकता है।

(ग) तुलना की सभी इकाइयों के सम्बन्ध में परिकल्पनात्मक प्रस्थापनाओं की स्थापना (Formulation of hypothetical propositions about all the units under comparison) – परिकल्पनात्मक प्रस्थापनाओं की स्थापना को लेकर विवाद है कि यह इकाई के चयन के पहले होनी चाहिए या उसके बाद में। कुछ लोगों का विचार है कि इनकी स्थापना पहले होती है तथा इनको ध्यान में रखकर ही अध्ययन की इकाइयों का चयन किया जा सकता है। दूसरे वर्ग के लोगों का कहना है कि परिकल्पना बिना आधार के नहीं की जा सकती है। इसलिए इकाई का चयन पहले होना चाहिए। सामान्यतया दूसरा विचार ही मान्य है। क्योंकि इकाइयों के चयन के बाद प्रस्थापनाओं की स्थापना में अधिक छूट मिल जाती है। चुनी गई इकाइयों को लेकर हर सम्भव परिकल्पना की जा सकती है और उनमें से एक या कुछ या सभी की तुलनात्मक ढंग से परख की जा सकती है।

नोट

(घ) तुलना की हर इकाई को लेकर परिकल्पनात्मक प्रस्थापना की वैधता की परख (Testing the validity of hypothetical proposition about each instace of comparison) - परिकल्पनात्मक प्रस्थापनाओं की वैधता की परख इकाइयों से सम्बंधित आंकड़ों के संकलन के द्वारा की जाती है। सभी आवश्यक आंकड़ों का, आंकड़े एकत्रित करने की विविध विधियों में से कुछ का या अनेक का प्रयोग करके, संकलन करके तुलना की हर इकाई के सम्बन्ध में प्रस्थापनाओं की वैधता परखी जाती है। प्रस्थापनाओं की वैधता की यह परख आंकड़ों की परस्पर तुलना करके की जाती है।

(ङ) परिणामों के अनुसार प्रस्थापना का सत्यापन त्याग अथवा परिमार्जन-संशोधन करना (Confirming, abandoning or refining the proposition according to results) – प्रस्थापनाओं को आंकड़ों द्वारा परख करके सत्यापन, त्याग या परिमार्जन किया जाता है। अगर संकलित आंकड़े प्रस्थापना की पुष्टि करते हों तो प्रस्थापना स्थापित हो जाती है। विपरीत आंकड़े होने पर इसका त्याग या परिमार्जन करके उसको आंकड़ों के अनुसार संशोधित कर लिया जाता है।

(च) अमूर्तीकरण या सिद्धान्त निर्माण (Abstraction or theory building) – जब एक अध्ययन के सामान्य निष्कर्ष प्राप्त हो जाते हैं तो उनकी तुलना अन्य अध्ययनों के निष्कर्षों से की जाती है और अगर अनेक उदाहरणों में एक ही प्रकार के निष्कर्ष निकलते हैं तो इस आधार पर सामान्यीकरण किए जा सकते हैं। इन सामान्यीकरणों के द्वारा सिद्धान्त निर्माण में सहायता मिलती है। जब अनेक प्रकार की अवस्थाओं, व्यवस्थाओं तथा भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में भी तुलनात्मक विश्लेषण के निष्कर्ष एक से पाए जाते हों तो सिद्धान्त बन जाते हैं जो समय, स्थान और विचारधाराओं के बन्धनों से मुक्त और हर राजनीतिक व्यवस्था में खरे उतरते हैं। अगर तुलनात्मक विश्लेषण व्यापक पैमाने पर अनेक विविधता वाली परिस्थितियों में कार्यरत रहने वाली इकाइयों को लेकर किए गए हों तो विश्वव्यापी सिद्धान्त बनाए जा सकते हैं, अन्यथा मध्य-स्तरीय (middle-range) या निम्न-स्तरीय (low-levle) सिद्धान्त बन पाते हैं।

तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग में सामान्यतया उपरोक्त चरणों के अनुसार तुलनात्मक विश्लेषण किया जाता है। एक उदाहरण के द्वारा इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है। मान लिया जाए कि तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग से संसदीय प्रणाली तथा दलीय व्यवस्था के परस्पर सम्बन्ध का अध्ययन करना है। तब यह आवश्यक है कि ऐसे अध्ययन से सम्बंधित सभी इकाइयों के द्वारा इस पद्धति की सभी पूर्व शर्तें पूरी होनी चाहिए। यहाँ तुलना की प्रत्ययी इकाई संसदीय प्रणाली से सम्बंधित है जिसको परिभाषित किया जा सकता है तथा दलीय व्यवस्था से इसका सम्बन्ध शोध का केन्द्र सुनिश्चित कर देता है। इसके बाद यह पद्धति तभी प्रयुक्त हो सकती है जब संसदीय प्रणाली के अनेक उदाहरण हों। यह विभिन्न व्यवस्थाओं का, जो अनेक हो सकती है, संसदीय और अध्यक्षात्मक व्यवस्थाओं में वर्गीकरण करके किया जाता है। अगर इस वर्गीकरण में केवल एक ही उदाहरण ऐसा है जहाँ पर संसदीय प्रणाली है तब तुलनात्मक पद्धति का इस अध्ययन में प्रयोग नहीं हो सकता। मान लें कि इस अध्ययन में अनेक संसदीय प्रणालियों के उदाहरण हैं। इसके बाद परिकल्पनात्मक प्रस्थापना या प्रस्थापनाएँ करनी होती हैं। जैसे इस उदाहरण में यह प्रस्थापना की जा सकती है कि संसदीय प्रणाली वहीं सफल होती है जहां द्विदलीय व्यवस्था हो। इस प्रस्थापना के बाद, हर देश की संसदीय प्रणाली की सफलता के संकेतक, (indicator) जो पहले ही निर्धारित किए हुए होते हैं, आंकड़ों के रूप में संकलित किए जाते हैं तथा इन्हें विभिन्न संसदीय प्रणालियों- एकदलीय व्यवस्था, एकदलीय प्रधान व्यवस्था (one party dominance system), द्विदलीय व्यवस्था और बहुदलीय व्यवस्था वाली संसदीय प्रणालियों के संबंध में प्रस्थापना की वैधता को परख के लिए प्रयोग किया जाता है। जैसे उदाहरण में यह देखा जाएगा कि संसदीय लोकतंत्र जहाँ-जहाँ सफल है वहाँ कौन-सी दलीय व्यवस्था है अगर तुलनात्मक आंकड़े यह संकेत दें कि हर सफल संसदीय लोकतंत्र में द्विदलीय व्यवस्था है तब प्रस्थापना की सत्यता की पुष्टि हो जाएगी और यह सामान्यीकरण किया जा सकेगा कि संसदीय लोकतन्त्र की सफलता के लिए द्विदलीय व्यवस्था आवश्यक है। परन्तु अगर आंकड़े यह स्पष्ट करें कि हर सफल संसदीय प्रणाली में बहुदलीय व्यवस्थाएँ पाई जाती हैं तो ऐसी अवस्था में प्रस्थापना का सत्यापन नहीं हो सकता और इसका संशोधन करना आवश्यक होगा। यदि सभी भिन्न उदाहरणों में आंकड़े यह स्पष्ट करें कि हर उदाहरण में संसदीय लोकतंत्र सफल है अर्थात, सभी प्रकार के दलीय व्यवस्थाओं में संसदीय लोकतंत्र सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है तो ऐसी अवस्था में परिकल्पनात्मक प्रस्थापना का त्याग करना होगा और यह सामान्यीकरण बनाया जा सकेगा कि संसदीय लोकतन्त्र की सफलता या असफलता का दलीय व्यवस्था की प्रकृति से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब अनेक उदाहरण, कई प्रकार की परिस्थितियों व अलग-अलग समय में अध्ययन के लिए लिये जाएँ और हर समय सामान्यीकरण एक ही प्रकार के हों तो इनके द्वारा सिद्धांत निर्माण हो सकता है अर्थात यह सिद्धान्त हर परिस्थिति, हर प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था व दलों की

नोट

अवस्था में हर देश की संसदीय प्रणाली पर लागू किया जा सकेगा। इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि तुलनात्मक पद्धति को सृजनात्मक प्रक्रिया के रूप में तभी प्रयुक्त किया जा सकता है जब कुछ निश्चित शर्तें पूरी हों और कुछ विशिष्ट चरणों का अनुसरण किया जाए।

उपरोक्त विवेचन से इस पद्धति की प्रकृति का स्पष्टीकरण हो जाता है। इससे यह भी समझ में आ जाता है कि किसी प्रकार की इकाइयों की, किसी प्रकार से तुलना करना तुलनातमक पद्धति का प्रयोग नहीं कहा जा सकता है। इसकी प्रकृति के इस वर्णन से इस पद्धति के विषय-क्षेत्र का संकेत भी मिलता है।

तुलनात्मक पद्धति की उपयोगिता (Utility of Comparative Method)

राजनीतिक अध्ययनों व विशेषकर तुलनात्मक राजनीति में तुलनात्मक पद्धति की बहुत उपयोगिता है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद राजनीतिक व्यवस्था की तुलनाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया है। अब राजनीतिक व्यवस्था को विभिन्न परस्पर विरोधी दावों और मांगों को स्वीकृत निर्णयों में परिवर्तित करने की व्यवस्था कहा जाने लगा है। इस प्रकार के निर्णयों तक पहुँचने में बहुरूपी सामाजिक समूहों, दलों, संघर्षों, हित-संगठनों और क्षेत्रों के परस्पर विरोधी विचारों में सामंजस्य स्थापित करना होता है एक राजनीतिक व्यवस्था में एक तरफ तो कार्यपालिका, व्यवस्थापिका, न्यायपालिका व नौकरशाही के रूप में सरकारी संरचनाएँ (structure) होती हैं तथा दूसरी तरफ सामाजिक एवं आर्थिक प्रक्रिया से सम्बन्धित समूह होते हैं। इन दोनों की संयोजन-कड़ी समाज के सदस्यों के वे विश्वास और मूल्य होते हैं जो वे राजनीतिक व्यवस्था के बारे में रखते हैं। विभिन्न सरकारी अंगों-आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक समूहों और विचारधाराओं के बीच अनवरत अनंत-क्रियाएँ होती रहती हैं। इन्हीं अनंत-क्रियाओं के आधार पर राजनीति की गत्यात्मक शक्ति का निर्माण होता है और यही शक्ति व्यवस्था में निर्णय की स्थिति लाती है। इन सभी में स्थायित्व के साथ ही साथ लगातार परिवर्तन और उथल-पुथल होते रहते हैं। यह एक कुशल और प्रभावशील राजनीतिक व्यवस्था नहीं है जो परिवर्तनों और स्थायित्व के बीच संतुलन बनाए रखे। दूसरे शब्दों में राजनीतिक व्यवस्था की प्रभावशीलता की कसौटी इस बात में निहित है कि वह सम्भावित परिवर्तनों और वर्तमान स्थायित्व के बीच संतुलन रखने में कहाँ तक सफल होती है। तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग से वर्तमान में राजनीतिक व्यवस्थाओं की ऐसी प्रभावशीलता या इसके अभाव के कारकों को समझाने व समझने में सहायता मिलती है इसलिए तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग महत्त्वपूर्ण बन गया है। क्योंकि, एक राजनीतिक व्यवस्था की अन्य राजनीतिक व्यवस्था से तुलना करते ही दोनों व्यवस्थाओं में परिवर्तन या जड़ता के कारकों का संकेत मिलने लगता है। अत: तुलनात्मक पद्धति, राजनीतिक व्यवहार की गहराई तक पहुँचने के लिए आवश्यक है। तुलनाओं के माध्यम से ही राजनीतिक समझ बढ़ती है। संक्षेप में तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग की उपयोगिता को निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट कर सकते हैं-

(1) राजनीतिक व्यवहार को समझने में सहायक है।

(2) राजनीति को वैज्ञानिक अध्ययन बनाने में सहायक है।

(3) राजनीति में सिद्धान्त निर्माण करने में सहायक है।

(4) प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तों की पुन:प्रामाणिकता सिद्ध करने में सहायक है।

अब तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग घटना-प्रवाहों (trends) के बारे में विस्तृत व व्यापक भविष्यवाणियाँ करने की अवस्था तक पहुँचने के लिए भी किया जाने लगा है। अब दलीय व्यवस्थाओं या विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं के राजनीतिक प्रतिमानों पर प्रभाव की तुलना, राजनीतिक व्यवस्थाओं में अस्थिरता की समस्या या श्रेष्ठ राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना के लक्ष्य से की जाने लगी है, जिससे सरकार व समाज को सम्भावित खतरों से आगाह किया जा सके। इसमें तुलना ही आधारभूत है। तुलना करके ही ऐसी चेतावनियाँ दी जा सकती हैं। इस तरह तुलनात्मक पद्धति की तुलनात्मक राजनीति में ही नहीं, सभी सामाजिक विज्ञानों में उपयोगिता बढ़ती जा रही है।

नोट

क्या आप जानते हैं अरस्तू ने राजनीतिक स्थायित्व व क्रान्तियों के कारणों को समझने के लिए ही यूनान के नगर-राज्यों के 158 संविधानों की तुलना की थी। इसीलिए अरस्तू को तुलनात्मक पद्धति का प्रवर्तक कहा जाता है।

तुलनात्मक पद्धति की समस्याएँ (Problems of Comparative Method)

राजनीतिक व्यवहार से संबंधित तुलनात्मक विश्लेषणों में तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग प्रमुखतया दो कारणों से हो जाता है। एक तो पृष्ठभूमि परिवर्त्यों (back ground variables) की संख्या की समस्या रहती है तथा दूसरी समस्या एक से प्रत्ययी ढांचे के आधार पर ही उदाहरणों के चयन के कारण केसेज (cases) की संख्या में बहुत कमी की है। राजनीतिक जीवन में करोड़ों व्यक्तियों की गतिविधियाँ सम्मिलित रहती हैं। यह गतिविधियाँ व उन सब व्यक्तियों का व्यवहार प्रतिमान अनेक तत्वों से प्रभावित होता है। आर्थिक स्थितियों से लेकर जलवायु तक व भौगोलिक विशेषताओं से ऐतिहासिक दुर्घटनाओं तक का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव शासकों व सरकारों के व्यवहार पर पड़ता है। तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग में इन परिवर्त्यों की समस्या अत्यधिक जटिल है क्योंकि राजनीतिक व्यवहार, हर स्तर पर हर क्षण इनसे प्रभावित होता रहता है। इसलिए तुलनाओं को यथार्थवादी बनाने के लिए इन पृष्ठभूमि परिवर्त्यों की न केवल जानकारी ही आवश्यक है वरन् इनकी पहचान भी जरूरी है। यह परिवर्त्यों की असंख्यता, जटिलता, इनके माप की कठिनाई इत्यादि इनकी जानकारी सम्भव ही नहीं होने देती है। दूसरी कठिनाई उदाहरणों की संख्या की है। तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग के लिए अनेक नहीं तो भी काफी उदाहरण आवश्यक है। इन समस्याओं का उन्मूलन तो सम्भव है ही नहीं। परन्तु इनसे बचने के लिए सामान्यत: दो उपाय किए जाते हैं। एक तो तुलनात्मक विश्लेषण को तुलनात्मक स्थितियों पर ही केन्द्रित किया जाता तथा दूसरा, तुलनात्मक विश्लेषण को प्रमुख परिवर्त्यों पर आधारित रखा जाए। इससे उपरोक्त समस्याओं का आंशिक रूप से समाधान हो जाएगा तथा तुलनात्मक विश्लेषण करने में सरलता रहेगी। तुलनात्मक पद्धति के अर्थ, प्रकृति तथा क्षेत्र के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि यह पद्धति राजनीतिक अध्ययनों में अधिकाधिक प्रयुक्त होगी। इस पद्धति की वैज्ञानिक, प्रयोगात्मक तथा सांख्यिकी विधियों से श्रेष्ठता के कारण तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में इसका उपयोग बढ़ता जा रहा है।

2.3 तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के परम्परागत उपागम (Traditional Approach to the Study of Comparative Politics)

परम्परागत उपागम - राजनीति के मूल्य-भारित अध्ययन पर बल

राजनीति के अध्ययन के उपागमों को मोटे तौर पर दो वर्गों में बांटा जा सकता है-मानपरक (normatice) और व्यावहारपरक (empirical) मानपरक उपागम को मूल्य-मुक्त (value free) के रूप में जाना जाता है। दूसरे शब्दों में, जहाँ पहले की विशेषता नियामकता है दूसरे की विशेषता व्यवहारवाद है। अत: इस बारे में हमारे वर्गीकरण का आधार तथ्य-मूल्य (fact value) सम्बन्ध हैं। इसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि जबकि परम्परागत उपागमों का झुकाव 'मूल्यों' की ओर होता है, दूसरा उपागम 'तथ्यों' का सहारा लेता है। इसका परिणाम तथ्य-मूल्य द्वन्द्व (dichotomy) निर्धारक कारक बन जाता है। परम्परागत उपागमों का स्वरूप ऐतिहासिक, विवरणात्मक और आदेशात्मक है जिसमें मूल्यों और लक्ष्यों के लिये प्रमुख स्थान है। उनकी विभिन्न किस्मों की चर्चा नीचे की जा रही है।

1. दार्शनिक उपागम: राजनीति के अध्ययन के लिए सबसे पुराना उपागम दार्शनिक (philosophical appraoch) है जिसे आचारशास्त्रीय उपागम के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ राज्य, सरकार और मानव का राजनीतिक सत्ता के रूप में अध्ययन कुछ उद्देश्यों, नैतिक शिक्षाओं, सत्यों या उच्च सिद्धातों के अनुसरण के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है जो समस्त ज्ञान और वास्तविकता में अंतर्निहित होता है। इस क्षेत्र में राजनीति का अध्ययन मननशील स्वरूप

नोट

धारण कर लेता है, क्योंकि दार्शनिक शब्द का सम्बन्ध ही चिंतन से है। दार्शनिक विश्लेषण किसी विषय के स्वरूप के विचार को स्पष्ट करने और उसके साधनों एवं साध्यों के अध्ययन करने का प्रयास है। इसे यदि और अधिक सामान्य शब्दों में प्रस्तुत किया जाये तो यह कहा जा सकता है कि जो व्यक्ति किसी विषय के प्रति दार्शनिक उपागम को अपनाता है, उसका उद्देश्य भाषा स्पष्टता को बढ़ाना और भाषायी अस्पष्टता को कम करना होता है। वह यह मान लेता है कि विवरण में इस्तेमाल की गई भाषा वास्तविकता की संकल्पनाओं को परिलक्षित करती है और वह वास्तविकता की संकल्पनाओं को यथासम्भव अधिक से अधिक स्पष्ट, संगत, सहायक और सुसंगत बनाना चाहता है। वह चिंत्तन और विचार अभिव्यक्ति को प्रभावित और उसका मार्गदर्शन करना चाहता है जिससे इस संभावना को अधिक से अधिक व्यापक किया जा सके कि वास्तविकता का चुना हुआ पक्ष (राजनीति) बोधगम्य बन जाए।

इसी कारण, दार्शनिक और आचारशास्त्रीय उपागम का समर्थन करने वाले लेखक और विचारक शासकों और राजनीतिक समुदाय के सदस्यों को यह परामर्श देना चाहते हैं कि वे किन्हीं उच्च लक्ष्यों का अनुसरण करें। इसीलिए, प्लेटो, मोर, बेकन, हैरिंगटन, रूसो, कांट, हीगल, ग्रीन, बोसांके, नैटिलशिप, लिडसे और लियो स्ट्रास के महान ग्रन्थों में राजनीति के अध्ययन को अमूर्त्तता के बहुत उच्च स्तर तक उठाया गया है और साथ ही उनमें मूल्यों की प्रणाली को आदर्श राजनीतिक प्रणाली के कुछ उच्च नियमों के साथ जोड़ दिया गया है। यहां मानपरकता का प्रभुत्वशाली स्थान है। अरस्तु, मैकियावेली, बोदां, हाब्स, लॉक और मान्टेस्क्यू जैसे लेखकों के प्रमुख ग्रंथों में जो व्यवहारवाद पाया जाता है वह या तो राजनीति के अध्ययन को आचारशास्त्र या इतिहास या मनोविज्ञान या विधिशास्त्र के अध्ययन के साथ समेकित करता प्रतीत होता है ताकि सुव्यवस्थित राजनीतिक समुदाय की तस्वीर को पेश करने का प्रयास किया जा सके।

दार्शनिक उपागम की इस आधार पर आलोचना की जाती है कि यह चिंतनात्मक और अमूर्त है। यह कहा जाता है कि यह यथार्थ की दुनिया से बहुत दूर ले जाता है। इस पर परिकल्पनात्मक होने का दोष लगाया जाता है। कांट और हीगल के हाथों यह राज्य को रहस्यात्मक ऊँचाइयों तक ले जाता है। अत: राजनीति आचारशास्त्र या दर्शन के हाथों में कठपुतली बन जाती है। यथार्थ पर वस्तुओं के आदर्श रूप का प्रभुत्व हावी हो जाता है। बहरहाल, ऐसे उपागम के लियो स्ट्रास जैसे महान समर्थक इस बात की पुष्टि करते हैं कि मूल्य राजनीतिक दर्शन के अभिन्न भाग हैं और उन्हें राजनीति के अध्ययन से बाहर नहीं रखा जा सकता, ''यदि यह निदेशकता स्पष्ट हो जाती है और लोग अच्छे जीवन और अच्छे समाज को प्राप्त करने के ज्ञान को प्राप्त करने के लक्ष्य को स्पष्ट कर लेते हैं, तो राजनीतिक दर्शन का उदय होता है।''

टास्क तुलनात्मक राजनीति में दार्शनिक उपागम से आप क्या समझते हैं?

2. ऐतिहासिक उपागम : इस उपागम का विशिष्ट लक्षण अतीत या काल की चुनी हुई अवधि तथा किसी विशेष चरण के भीतर चुनी घटनाओं के क्रम पर बल है ताकि इस बात की व्याख्या की जा सके कि कौन सी संस्थाएँ चली आ रही हैं, और वे क्या काम कर रही हैं, यह प्राय: इस ज्ञान की खातिर होता है कि वे क्या रही हैं, वे अस्तित्व में किस प्रकार आई, वे क्या हैं, और अपने विश्लेषण के सम्बन्ध में उनका क्या स्थान है। यहाँ इस बात का भी उल्लेख किया जाना चाहिये कि अध्येयता इतिहास को आनुवंशिक प्रक्रिया समझता है– इस बात का अध्ययन कि मानव कैसे अस्तित्व में आया, वह कभी क्या था, और अब क्या है। इस दृष्टि से राजनीति का अध्ययन उसे इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वह ऐतिहासिक सातत्य और परिवर्तन में व्यक्तिगत प्रेरणाओं, कार्यों, उपलब्धियों, असफलताओं और प्रासांगिकताओं को देखे।"

ऐतिहासिक उपागम इस धारणा पर टिका है कि राजनीतिक सिद्धांत का भण्डार सामाजिक–आर्थिक संकट तथा उनके द्वारा महान चिंतकों के मनों पर छोड़ी गई प्रतिक्रियाओं में से आता है। इसलिए, ऐतिहासिक साक्ष्य का अपना ही महत्व है। प्राचीन यूनान की परिस्थितियों ने प्लेटो और अरस्तु को और इसी प्रकार सत्रहवीं शताब्दी के इग्लैंड ने हाब्स और लॉक को जन्म दिया, उन्नीसवीं शताब्दी की पूंजीवादी प्रणाली ने मार्क्स और मिल को जन्म दिया। जाहिर

नोट

है कि राजनीतिक सिद्धांत को समझने के लिए समय, स्थान और परिस्थितियों को समझना आवश्यक है जिसमें उसका विकास हुआ है। राजनीतिक दार्शनिक अपने युग की राजनीति में वास्तव में चाहे भाग न ले, लेकिन वह उससे प्रभावित होता है और वह अपने दांव पर इसको बहुत अधिक प्रभावित करने का प्रयास भी करता है। सैवाइन जब यह कहते हैं कि सभी महान राजनीतिक सिद्धांत राजनीतिक और सामाजिक संकटों के अन्तरालों में से निकलते हैं, तो वह इसी तथ्य पर बल दे रहे होते हैं।

बहरहाल, इस स्थल पर इस बात का अवश्य ही उल्लेख कर दिया जाना चाहिए कि अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के प्रति ऐतिहासिक उपागम की भिन्नता अध्येयता द्वारा अपनाए गये चुनाव प्रचार पर निर्भर करती है। यदि रोमनों को बढ़ा-चढ़ाकर बताने में मैकियावेली ने इतिहास का उपयोग किया और इस प्रकार उसने रोम के गौरव की स्थापना करने के लिए अपने लोगों के कारनामों का आवाहन किया, तो ओकेशाट इसे अनुदारवाद की प्रवृत्ति के साथ सम्बंधित करते हैं। यह उसके द्वारा राजनीति को ऐसे बहुत से लोगों की सामान्य व्यवस्थाओं की गतिविधि समझने में निहित है, जो उसकी व्यवस्थाओं की ओर ध्यान देने की समान मान्यता के कारण एक समुदाय का निर्माण करता है अर्थात, राजनीतिक गतिविधि मुख्य रूप से न तो त्वरित इच्छाओं से पैदा होती है और न सामान्य सिद्धांतों से, बल्कि वह तो स्वयं व्यवहार की मौजूदा परम्पराओं में से उत्पन्न होती है। जैसा उन्होंने कहा है, किसी भी पीढ़ी में यहाँ तक कि सबसे अधिक क्रांतिकारी पीढ़ी में भी, जिन व्यवस्थाओं को उपयोग में लाया जाता है, उनकी संख्या हमेशा उनसे अधिक होती है, जिन्हें मान्यता की आवश्यकता होती है और उनके मुकाबले में जिनमें संशोधन किया जाता है उनकी संख्या कम होती है जिन्हें उपयोग के लिए तैयार किया जाता है। नए का समानुपात सारे में नगण्य हुआ करता है। फिर हम जिसे समझने का प्रयास कर रहे हैं वह राजनीतिक परम्परा या व्यवहार की एक ठोस विधि है और इसी कारण यह उपयुक्त है कि शैक्षिक स्तर पर, राजनीति का अध्ययन ऐतिहासिक अध्ययन होना चाहिये।

ऐतिहासिक उपागम की कुछ कमजोरियाँ है। उदाहरण के लिए, जैसा जेम्स ब्राइस ने कहा है यह अक्सर सतही समानताओं से भारित होता है। इस नाते ऐतिहासिक समानांतर कुछ हद तक ज्ञानवर्द्धक हो सकते हैं, लेकिन अधिकांश स्थितियों में वे पथभ्रष्ट करने वाले भी होते हैं। इसी प्रकार, प्रो. अर्नेस्ट बारकर का मत है कई धराएं हैं- कुछ जो अचानक रुक जाती हैं, कुछ जो वापस मुड़ती हैं, जो एक दूसरे को काटती हैं और हम ऐसे मुख्य मार्ग के बारे में भी सोच सकते हैं जिस पर बहुत से रास्तों का जंजाल है। अर्थात् इस उपागम का समर्थक अध्येयता ऐतिहासिक आंकड़ों का इस्तेमाल करने में अपनी पसन्द के विशेष रास्ते का अनुसरण और बाद में अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत कर सकता है यहाँ तक कि अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं की अवहेलना कर दी जाती है। यह भी संभव है कि इस उपागम का उपयोग करते हुए वह अपनी भावनाओं और पक्षपातों से काम ले जैसा हम मैकियावलि और ओकशॉट की स्थितियों में पाते हैं।

फिर भी इसके ऐतिहासिक विकास और वृद्धि के सन्दर्भ में राजनीतिक सिद्धांत के अध्ययन का मूल्य इतनी आसानी से कम नहीं किया जा सकता। जी. एच. सेबाइन, आर. जी. मैटल, डब्ल्यू. ए. डनिंग, सी. सी. मैक्सी टी. आइ. कुक, आर. जी. कारलाइल, जी. ई. जी. कैटलिन सी. ई. वाहां, आदि जैसों के ग्रन्थों का अपना ही महत्व है। प्राचीन काल में प्लेटो और अरस्तु से लेकर मध्य युग में सेन्ट अगस्ताइन, सेन्ट टामस और मार्सीगिलयों तक और आधुनिक युग में मैकियावेली, बोहिन हाब्स, लॉक, रूसो, हीगल, मिल, मार्क्स और लास्की जैसे महान राजनीतिक चिन्तकों के आशय को समझने के लिए ऐसे उपागम की अपनी ही उपयोगिता है। यदि राजनीतिक सिद्धांत का सम्मान योग्य और सार्वभौमिक स्वरूप है तो इसके कारण इस पुष्टि में ढूंढे जाने चाहियें कि इसकी ऐतिहासिक परम्पराओं में निहित हैं।

3. सांस्थानिक उपागम :- यहाँ राजनीति का अध्ययनकर्त्ता व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे राजनीतिक संगठनों की औपचारिक संरचना के अध्ययन पर बल देता है। इस प्रवृत्ति को प्राचीन काल के अरस्तू से पोलीबियस तक और आधुनिक युग में ब्राइस और फाइनर जैसे कई राज्य वैज्ञानिकों की रचनाओं में खोजा जा सकता है। बहरहाल, आधुनिक लेखकों के बारे में जो बात सबसे अधिक विचित्र है, वह यह है कि वे राजनीतिक व्यवस्था

नोट

की संरचनाओं में दल प्रणाली को भी चतुर्थ वर्ग के रूप में शामिल करते हैं, जबकि वैन्टले (bentely) लॉथम (Latham) और वी. ओ. की. जूनियर (V.O. Key. Jr.) जैसे समसामयिक लेखक एक कदम और आगे जाकर असंख्य हित समूहों को भी इसमें शामिल कर लेते हैं जो किसी राजनीतिक व्यवस्था की अवसंरचना हैं। यही कारण है कि यह उपागम संरचनात्मक उपागम (structural approach) के नाम से जाना जाता है।

सांस्थानिक या संरचनात्मक उपागम को कई अमरीकी और अंग्रेज लेखकों की रचनाओं में देखा जा सकता है। हम वाल्टर बेगहाट, एफ. ए. आग, डब्लयू. बी. मुनरो, हर्मेन फाइनर, एच. जे. लास्की, रिचर्ड न्यूजडाट, सी. एफ. स्ट्रांग, बनार्ड क्रिक, जेम्स ब्राइस हेराल्ड जिंक, मौरिस डुबेजर और जियोवानी सारटोरी के ग्रन्थों की ओर निर्देश कर सकते हैं। उनकी रचनाओं की सबसे अधिक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि राजनीति का अध्ययन राजनीतिक व्यवस्था के औपचारिक, एवं सांस्थानिक संरचनाओं तक समिति हो गया है। साथ ही, इन निष्कर्षों की पुष्टि के लिए पश्चिम के कुछ उन्नत देशों की मुख्य शासकीय प्रणालियों को तुलनात्मक अध्ययन का विषय बनाया गया है।

बहुत अधिक संकीर्ण होने के कारण इस उपागम की आलोचना की गई है। इसमें उन व्यक्तियों की भूमिका की उपेक्षा की गई है जो राजनीतिक व्यवस्था की औपचारिक व अनौपचारिक संरचनाओं एवं उपसंरचनाओं का निर्माण एवं उन्हें परिचालित करते हैं। यही कारण है कि व्यवहारात्मक उपागम इस उपागम की महत्ता पर छा गया है। एक और कठिनाई यह है कि सांस्थानिक उपागम का आशय और परास अध्ययनकर्त्ता के विचारों के साथ-साथ भिन्न-भिन्न होता जा रहा है। जिन्होंने सरकार संस्थाओं, पदों और अभिकरणों की कल्पना की है वे उसी के अनुसार सरकार के बारे में बताते है और लिखते हैं, उनके बनाए हुए संगठनात्मक चार्ट उसी का सुझाव देते हैं। अन्त में इस बात का भी उल्लेख किया जाना चाहिये कि "इस उपागम के अध्ययनकर्त्ता अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की भी अनदेखी करते हैं क्योंकि बहुत समय तक राज्य या सरकार जैसी कोई संस्थाएँ नहीं थीं, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य-वैज्ञानिकों के लिए इस क्षेत्र में ऐसा कुछ नहीं मिलता जिसके बारे में चर्चा की जा सके।'

4. कानूनी उपागम : अन्त में, परम्परागत उपागमों के क्षेत्र में हम कानूनी या न्यायिक उपागम का उल्लेख कर सकते हैं इसके अन्तर्गत राजनीति का अध्ययन कानूनी प्रक्रियाओं और संस्थाओं के साथ घुल मिल गया है। कानून और न्याय के विषयों को न्यायशास्त्र के मामले ही नहीं समझा जाता बल्कि राज्य वैज्ञानिक राज्य को प्रभावी और साम्यपूर्ण कानून और व्यवस्था को बनाए रखने वाला समझते हैं। अत: न्यायिक संस्थाओं के संगठन, अधिकार क्षेत्र और स्वतंत्रता से सम्बंधित मामले राज्य वैज्ञानिक का एक आवश्यक विषय बन जाते हैं। प्राचीन काल में विश्लेषणात्मक न्यायशास्त्री सिसेरो (Cicero) से लेकर आधुनिक काल के डाइसी (Dicey) तक ने राज्य को प्रमुख रूप से एक निगम या न्यायिक व्यक्ति समझा है और इस प्रकार, इस उपागम में राज्य को प्रमुख रूप से कानून बनाने और उसे लागू करने वाला संगठन कहा गया है।

इस सन्दर्भ में हम प्रारंभिक आधुनिक युग के जीन बोडिन, ह्यूगो ग्रोशियस और टामस हाब्स की रचनाओं का उल्लेख कर सकते हैं, जिन्होंने प्रभुसत्ता (servereignty) के सिद्धांत का प्रवर्तन किया था। हाब्स की प्रणाली में, राज्यपक्ष उच्चतम कानूनी प्राधिकारी है और उसका आदेश ही कानून है जिसका पालन या तो सजा से बचने या भयानक प्राकृतिक अवस्था को दूर रखने के लिए किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में बैथम, जॉन आरिटन, सेविग्नी, सर हेनरी मैन और ए. वी. डाइसी की रचनाओं की ओर भी निर्देश किया जा सकता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि राजनीति के अध्ययन को अभिन्न रूप से कानूनी प्रक्रियाओं से जोड़ दिया गया है और स्वतंत्रता व समानता की सामंजस्यपूर्ण स्थिति को विधिशासन (rule of law) के शानदार नाम से जाना जाता है।

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन पर लागू किया गया वह कानूनी उपागम इस कल्पना पर स्थित है कि कानून में वह व्यवस्था की जाती है कि किसी विशेष अवस्था में क्या कार्यवाही की जाए और वह भी व्यवस्था की जाती है कि किन परिस्थितियों में ऐसी कार्यवाही की जाती है, साथ ही इसमें अनुमेय कार्यवाही की सीमाओं का निर्धारण भी किया जाता है। इसमें इस तथ्य पर भी बल दिया गया है कि जहाँ नागरिक कानूनों का पालन करने वाले हैं वहाँ

नोट

लोगों के राजनीतिक व्यवहार से सम्बंधित पूर्वानुमान करने में कानून का ज्ञान बहुत महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान करता है। इस उपागम का जेलेनिक जैसा एक विशिष्ट अध्येयता हमें परामर्श देता है कि संगठित समाज को मात्र सामाजिक या राजनीतिक परिघटना ही नहीं बल्कि उसे सार्वजनिक कानून, अधिकारों और कर्तव्यों का समुच्चय समझा जाए जिसकी नींव विशुद्ध तर्क और कारण पर डाली गई है। इसका आशय यह है कि वृद्धि और विकास के जीव के रूप में विधितर और सामाजिक शक्तियों के विचार को समझे बिना, राज्य को नहीं समझा जा सकता जो इस विचार की पृष्ठभूमि में निहित है और इस कारण वे इसकी बहुत सी क्रियाओं और आपसी प्रतिक्रियाओं के लिए जिम्मेदार हैं। बहरहाल, यहाँ इस बात का अवश्य ही उल्लेख किया जाना चाहिए कि इस उपागम के परिप्रेक्ष्य बहुत ही संकीर्ण है। कानून के अधीन सार्वजनिक जीवन का एक ही पक्ष आता है और इसी कारण इसके अन्तर्गत राजनीतिक कार्यों का पूर्ण व्यवहार नहीं आ सकता। जैसे आदर्शवादियों की इस आधार पर आलोचना की जा सकती है कि राज्य एक नैतिक सत्ता के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं, विश्लेषणात्मक न्यायवादियों द्वारा भी यह गलती की जाती है कि वे हर राजनीतिक प्रणाली के हर पक्ष को एक न्यायिक सत्ता का रूप प्रदान कर देते हैं। कानून की अन्तर्वस्तु का विधायी शक्ति के माध्यम से निर्धारण करना राजनीतिक कार्य हैं सामान्यतया इसकी व्याख्या विधिक उपागम के अतिरिक्त किसी अन्य उपागम के आधार पर होनी चाहिए।

जैसी ऊपर चर्चा की गई है परम्परागत उपागमों की चार मुख्य किस्में हैं। उनका उल्लेखनीय लक्ष्य यह है कि उनमें मूल्य-भारित प्रणाली का प्रभुत्व है। नियामकतावाद उन्हें विचित्र और विशिष्ट लक्षण प्रदान करता है। इसके परिणामस्वरूप, राजनीतिक सिद्धांत को मूर्त, काल्पनिक, चिंतनात्मक और यहाँ तक कि दार्शनिक कहा जाता है। विशेषत: नियामकतावाद उल्लेखनीय चर्चा पर बल देता है यह राजनीतिक आचरण के नैतिक मानदण्ड की स्थापना करना चाहता है

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the Blanks) –

1. राजनीति के अध्ययन के लिए सबसे पुराना उपागम ..... है।
2. ..... इस धारणा पर टिका है कि राजनीतिक सिद्धांत का भण्डार, सामाजिक-आर्थिक संकट तथा उनके द्वारा महान चिन्तकों के मनों पर छोड़ी गई प्रतिक्रियाओं में से आता है।
3. ..... को कई अमरीकी और अंग्रेज लेखकों की रचनाओं में देखा जा सकता है।
4. राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन पर ..... लागू किया जाता है।
5. राज्य को प्रमुख रूप से कानून बनाने और उसे लागू करने वाला संगठन ..... में कहा गया है।

2.4 सारांश (Summary)

- तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग राजनीतिशास्त्र के अध्ययन में राजनीतिशास्त्र के जनक अरस्तू के समय से होता आया है। सिसेरो, पोलीबियस टेसीटस, मैकियावेली, मोन्टेस्क्यू, टाक्कविल, बेजहाट, सर हेनरी मेन तथा ब्राइस इत्यादि अनेक राजनीतिक दार्शनिकों व राजनीतिशास्त्रियों ने अपने अध्ययनों में इस पद्धति का उपयोग किया है। इस पद्धति के प्रयोग से अध्ययनकर्ता, विभिन्न राज्यों, उनके संगठनों, उनकी नीतियों एवं कार्यकलापों का तुलनात्मक अध्ययन करता है और इस प्रकार की तुलनाओं के आधार पर राजनीतिक निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करता है।
- तुलनात्मक राजनीति में तो तुलनात्मक पद्धति आधारभूत है। तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राजनीतिक संस्थाओं की कार्यविधि व राजनीतिक व्यवहार की महत्वपूर्ण निरन्तरताओं, समानताओं और असमानताओं से होने के कारण, इस पद्धति के द्वारा ही यह निरन्तरताएँ, समानताएँ और असमानताएँ समझी व खोजी जा सकती है। यही कारण है कि कई बार तुलनात्मक राजनीति और तुलनात्मक पद्धति को समान-अर्थी (synonyms) या एक-दूसरे का पर्याय मान लिया जाता है।

नोट

- राजनीतिक अध्ययनों व विशेषकर तुलनात्मक राजनीति में तुलनात्मक पद्धति की बहुत उपयोगिता है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद राजनीतिक व्यवस्था की तुलनाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया है। अब राजनीतिक व्यवस्था को विभिन्न परस्पर विरोधी दावों और मांगों को स्वीकृत निर्णयों में परिवर्तित करने की व्यवस्था कहा जाने लगा है।
- संक्षेप में तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग की उपयोगिता को निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट कर सकते हैं-
  (1) राजनीतिक व्यवहार को समझने में सहायक है।
  (2) राजनीति को वैज्ञानिक अध्ययन बनाने में सहायक है।
  (3) राजनीति में सिद्धान्त निर्माण करने में सहायक है।
  (4) प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तों की पुनः प्रामाणिकता सिद्ध करने में सहायक है।
- राजनीति के अध्ययन के उपागमों को मोटे तौर पर दो वर्गों में बांटा जा सकता है-मानपरक (normatice) और व्यावहावरक (empirical) मानपरक उपागम को मूल्य-मुक्त (value free) के रूप में जाना जाता है। दूसरे शब्दों में, यहाँ पहले की विशेषता नियामकता है दूसरे की विशेषता व्यवहारवाद है।
- राजनीति के अध्ययन के लिए सबसे पुराना उपागम दर्शनिक (philosophical appraoch) है जिसे आचारशास्त्रीय उपागम के नाम से भी जाना जाता है। यहां राज्य, सरकार और मानव का राजनीतिक सत्ता के रूप में अध्ययन कुछ उद्देश्यों, नैतिक शिक्षाओं, सत्यों या उच्च सिद्धातों के अनुसरण के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है जो समस्त ज्ञान और वास्तविकता में अंतर्निहित होता है। इस क्षेत्र में राजनीति का अध्ययन मननशील स्वरूप धारण कर लेता है, क्योंकि दार्शनिक शब्द का सम्बन्ध ही चिंतन से है।
- इसी कारण, दार्शनिक और आचारशास्त्रीय उपागम का समर्थन करने वाले लेखक और विचारक शासकों और राजनीतिक समुदाय के सदस्यों को यह परामर्श देना चाहते हैं कि वे उन्हीं उच्च लक्ष्यों का अनुसरण करें।
- दार्शनिक उपागम की इस आधार पर आलोचना की जाती है कि यह चितंनात्मक और अमूर्त है। यह कहा जाता है कि यह यथार्थ की दुनिया से बहुत दूर ले जाता है। इस पर परिकल्पनात्मक होने का दोष लगाया जाता है। कांट और हीगल के हाथों यह राज्य को रहस्यात्मक ऊँचाइयों तक ले जाता है।
- इस उपागम का विशिष्ट लक्षण अतीत या काल की चुनी हुई अवधि तथा किसी विशेष चरण के भीतर चुनी घटनाओं के क्रम पर बल है ताकि इस बात की व्याख्या की जा सके कि कौन सी संस्थाएँ चली आ रही हैं, और वे क्या काम कर रही हैं, यह प्रायः इस ज्ञान की खातिर होता है कि वे क्या रही हैं, वे अस्तित्त्व में किस प्रकार आई, वे क्या हैं, और अपने विश्लेषण के सम्बन्ध में उनका क्या स्थान है।
- ऐतिहासिक उपागम इस धारणा पर टिका है कि राजनीतिक सिद्धांत का भण्डार सामाजिक-आर्थिक संकट तथा उनके द्वारा महान चिंतकों के मनों पर छोड़ी गई प्रतिक्रियाओं में से आता है। इसलिए, ऐतिहासिक साक्ष्य का अपना ही महत्व है। प्राचीन यूनान की परिस्थितियों ने प्लेटो और अरस्तु को और इसी प्रकार सत्रहवीं शताब्दी के इग्लैंड ने हाब्स और लॉक को जन्म दिया, उन्नीसवीं शताब्दी की पूंजीवादी प्रणाली ने मार्क्स और मिल को जन्म दिया।
- ऐतिहासिक उपागम की कुछ कमजोरियाँ हैं। उदाहरण के लिए, जैसा जेम्स ब्राइस ने कहा है यह अक्सर सतही समानताओं से भारित होता है। इस नाते ऐतिहासिक समानताएँ कुछ हद तक ज्ञानवर्द्धक हो सकते हैं, लेकिन अधिकांश स्थितियों में वे पथभ्रष्ट करने वाले भी होते हैं।
- यहाँ राजनीति का अध्ययनकर्त्ता व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे राजनीतिक संगठनों की औपचारिक संरचना के अध्ययन पर बल देता है। इस प्रवृत्ति को प्राचीन काल के अरस्तू से पोलीबियस तक और आधुनिक युग में ब्राइस और फाइनर जैसे कई राज्य वैज्ञानिकों की रचनाओं में खोजा जा सकता है।
- सांस्थानिक या संरचनात्मक उपागम को कई अमरीकी और अंग्रेज लेखकों की रचनाओं में देखा जा सकता है। हम वाल्टर बेगहाट, एफ. ए. आग, डब्ल्यू. बी. मुनरो, हर्मेन फाइनर, एच. जे. लास्की, रिचर्ड न्यूजडाट,

नोट

सी. एफ. स्ट्रांग, बनार्ड क्रिक, जेम्स ब्राइस हेराल्ड जिंक, मौरिस डुबेजर और जियोवानी सारटोरी के ग्रन्थों की ओर निर्देश कर सकते है। उनकी रचनाओं की सबसे अधिक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि राजनीति का अध्ययन राजनीतिक व्यवस्था के औपचारिक एवं सांस्थानिक संरचनाओं तक सीमित हो गया है।

- बहुत अधिक संकीर्ण होने के कारण इस उपागम की आलोचना की गई है। इसमें उन व्यक्तियों की भूमिका की उपेक्षा की गई है जो राजनीतिक व्यवस्था की औपचारिक व अनौपचारिक संरचनाओं एवं उपसंरचनाओं का निर्माण एवं उन्हें परिचालित करते हैं।
- अन्त में, परम्परागत उपागमों के क्षेत्र में हम कानूनी या न्यायिक उपागम का उल्लेख कर सकते हैं। इसके अन्तर्गत राजनीति का अध्ययन कानूनी प्रक्रियाओं और संस्थाओं के साथ घुल मिल गया है। कानून और न्याय के विषयों को न्यायशास्त्र के मामले में ही नहीं समझा जाता बल्कि राज्य वैज्ञानिक राज्य को प्रभावी और साम्यपूर्ण कानून और व्यवस्था को बनाए रखने वाला समझते हैं।
- परम्परागत उपागमों की चार मुख्य किस्में हैं। उनका उल्लेखनीय लक्ष्य यह है कि उनमें मूल्य-भारित प्रणाली का प्रभुत्व है। नियामकतावाद उन्हें विचित्र और विशिष्ट लक्षण प्रदान करता है। इसके परिणाम स्वरूप, राजनीतिक सिद्धांत को मूर्त, काल्पनिक, चिंतनात्मक और यहाँ तक कि दार्शनिक कहा जाता है।

2.5 शब्दकोश (Keywords)

सुव्यक्त : सरलता से व्यक्त करने वाला।

अव्यक्त : जिसको व्यक्त न किया जा सके।

विकृत : जिसका मूल स्वरूप बिगड़ कर खराब हो गया है।

2.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. तुलनात्मक पद्धति और राजनीति के पारस्परिक सम्बंधों का विवेचन कीजिए।
2. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के परम्परागत उपागमों का विश्लेषणात्मक विवेचन कीजिए।
3. तुलनात्मक पद्धति की प्रकृति की व्याख्या कीजिए।

स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. दार्शनिक उपागम 2. ऐतिहासिक उपागम 3. संस्थानिक उपागम 4. कानूनी उपागम
5. कानूनी उपागम

2.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *तुलनात्मक शासन एवं राजनीति*–डॉ. बीरकेश्वर प्रसाद सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन (पी. एण्ड डी.) 24, दरियागंज, अंसारी रोड, दिल्ली।
2. *तुलनात्मक राजनीति*–जे.सी. जौहरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि., दिल्ली।
3. *तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ*–सी.बी. गेना, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड, दिल्ली।
4. *तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा*– ओम प्रकाश गाबा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।

नोट

इकाई–3: संविधान और संविधानवाद (Constitution and Constitutionalism)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

3.1 संविधान का अर्थ और विकास (Meaning and Development of Constitution)

3.2 संविधानवाद की अवधारणाएँ: उदारवादी और मार्क्सवादी धारणा (Concepts of constitutionalism : Liberal and Marxist notions)

3.3 सारांश (Summary)

3.4 शब्दकोश (Keywords)

3.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

3.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- संविधान और संविधानवाद के अर्थ और उनकी अवधारणाओं की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मानव समाज में 'राजनीतिक शक्ति' का प्रादुर्भाव कब और किन परिस्थितियों में हुआ यह अभी तक कल्पना का ही विषय है? मानव ने कब अपने आपको 'राजनीतिक शक्ति' के अधीन किया, इस बारे में निश्चित रूप से आज भी कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु जब से प्रारम्भिक समाज का उदय हुआ, शायद तभी से ही 'राजनीतिक शक्ति' को जन्म देने वाली परिस्थितियाँ प्रस्तुत हुईं। सम्भवतया इसी शक्ति के प्रयोग से आदिकालीन मानव समाज में कुछ व्यवस्था व स्थिरता की स्थापना हुई। इसलिये 'राजनीतिक शक्ति' का हर समाज में आरम्भ से ही महत्त्व माना जा सकता है। परन्तु ज्यों-ज्यों मनुष्य में सामाजिकता बढ़ती गई और संगठित जीवन का महत्त्व व उपयोगिता स्पष्ट होने लगी, त्यों-त्यों व्यवस्थित जीवन को व्यावहारिक बनाने वाली 'राजनीतिक शक्ति' में अवपीड़न व बाध्यता का तत्त्व समाविष्ट होता गया। यह यहाँ तक बढ़ा कि वर्तमान में इस शक्ति द्वारा अन्य सभी प्रकार की शक्तियों (आर्थिक, सामाजिक व सैनिक) पर न केवल नियंत्रण ही रखा जाता है, अपितु उनकी सीमाओं का निर्धारण भी होता है।

'राजनीतिक शक्ति' में यह बाध्यता व अनिवार्यता का तत्त्व इसके उपयोग और दुरुपयोग के क्षेत्र को व्यापकतम बना देता है। इसकी सर्वोपरिता इसमें दुरुपयोग की और भी सम्भावनाएँ निहित कर देती है। राज्य, जो इस शक्ति का प्रतीक है, कहीं अपने आप में साध्य न बन जाए, तथा राज्य की शक्ति को व्यवहार में प्रयुक्त करने वाली सरकार या शासक, स्वेच्छाचारी बनकर उन सब उद्देश्यों व लक्ष्यों की अवहेलना न करें, जिनकी प्राप्ति के लिए, मनुष्य ने राजनीतिक सत्ता की सृष्टि की तथा अराजक अस्तव्यवस्तता की बोझिल जंजीरों से बचने के लिए राजनीतिक शक्ति के अवपीड़क (coercive) बन्धन स्वीकार किये, यह आवश्यक है कि सरकार और शासकों को नियंत्रित व सीमित रखा जाए। कोई

नोट

भी शासक जो व्यवस्था की स्थापना के लिए बाध्यकारी शक्ति से युक्त हो, वह इसी शक्ति के प्रयोग से व्यक्ति की स्वतन्त्रता आधारभूत होती है। इसकी समाप्ति मानव को कुंठित करती है। इसलिये, एक तरफ तो मनुष्य ने राजनीतिक शक्ति की सर्वोपरिता स्वीकार की तथा दूसरी तरफ, उस पर प्रभावशाली नियंत्रणों की व्यवस्था भी की जिससे शासक, व्यक्ति की स्वतन्त्रता की व्यवस्था व सुरक्षा के लिए आगे बढ़ सकें और साथ ही इसके हनन के प्रलोभन से रोका जा सके। यही कारण है कि प्राचीन काल से ही शासकों को विधियों, प्रक्रियात्मक सुरक्षाओं व संतुलनात्मक शक्तियों के माध्यम से नियंत्रित और प्रतिबन्धित किया जाता रहा है।

संविधानवाद का अर्थ, आधार, तत्त्व व विभिन्न अवधारणाओं को समझने से पहले, यह आवश्यक है कि संविधान व संवैधानिक सरकार का अर्थ स्पष्ट किया जाय, क्योंकि संविधानवाद का अर्थ, संविधान व संवैधानिक सरकार के अर्थ के संदर्भ में ही स्पष्ट हो सकता है। वास्तव में संविधान व संवैधानिक सरकार, संविधानवाद की पूर्वगामी परिस्थितियाँ हैं। संविधानवाद केवल उसी राजनीतिक व्यवस्था में सम्भव है, जहाँ संविधान हो और इस संविधान द्वारा राजनीतिक शक्ति के प्रयोगकर्ताओं की न केवल भूमिका निर्धारित की जाए अपितु इस भूमिका की व्यवहारिकता की व्यवस्था भी की जाए, अर्थात सरकार, संविधान की व्यवस्था के अनुरूप ही संचालित हो और इसे व्यवहार में सम्भव बनाने के लिए संवैधानिक नियंत्रणों व प्रतिबन्धों की प्रभावशाली व्यवस्था हो। यह नियंत्रण व्यवस्था कैसे और किन-किन प्रक्रियाओं व संरचनाओं से हो, इसका विवेचन करने से पूर्व, संविधान, संवैधानिक सरकार और संविधानवाद का अर्थ समझ लेना आवश्यक है।

3.1 संविधान का अर्थ और विकास (Meaning and Development of Constitution)

प्रत्येक राज्य के लिए संविधान का होना आवश्यक है। संविधान के बिना किसी भी राज्य का शासन चलना अत्यन्त कठिन है। इतिहास के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक राज्य में शासन को चलाने के लिए कुछ न कुछ नियम सदा से किसी न किसी रूप में अवश्य रहे हैं। प्रत्येक राज्य में, चाहे वह लोकतांत्रिक हो या अधिनायकवादी, कुछ ऐसे नियमों का स्वीकार किया जाना आवश्यक है जो राज्य की राजनीतिक संस्थाओं व शासकों की भूमिका को निर्धारित व सुनिश्चित कर, अराजकता से समाज को मुक्त रख सके। यहाँ तक कि अत्यधिक निरंकुश व स्वेच्छचारी राज्यों में भी कुछ नियमों का पाया जाना नितान्त आवश्यक है। सरकारें चाहे निरंकुश हों अथवा लोकतन्त्रात्मक, उनके संचालन के लिए कुछ सिद्धान्तों अथवा नियमों का होना। सदैव सहायक होता है। चूंकि प्रत्येक संविधान में सरकार के विभिन्न अंगों तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन होता है। अत: इन सम्बन्धों का वर्णन करने वाले नियमों की विद्यमानता से सरकार के विभिन्न अंग एक दूसरे के सहयोग से कुशलतापूर्वक कार्य कर सकते हैं और उनमें संघर्ष या विरोध की सम्भावनाएँ भी कम हो जाती हैं। संविधान में नागरिकों के अधिकारों का भी वर्णन होता है। यह वर्णन ही इनकी सुरक्षा व्यवस्था है। इस प्रकार संविधान के द्वारा किसी भी राज्य का आधारभूत ढांचा संस्थागत रूप में खड़ा किया जाता है, जिससे हर व्यक्ति, संस्था व समूह की भूमिका सुनिश्चित हो जाती है।

सामान्यतया यह समझा जाता है कि संविधान एक ऐसा आलेख (document) ही होता है जो निश्चित समय में निर्मित व स्वीकृत हो, पर यह संविधान का सही व ठीक अर्थ नहीं है। संविधान का आलेख, अर्थात् लिखित रूप में होना आवश्यक नहीं, किसी भी राज्य में परम्परागत नियमों की ऐसी व्यवस्था हो सकती है, जिनको विधिवत कभी लिखा नहीं गया फिर भी जो शासकों व नागरिकों के दिल-दिमाग में इतनी गहराई से जमे हों कि इससे सरकार पर न केवल प्रभावशाली नियंत्रण रहता हो अपितु सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था में हर एक की भूमिका निर्धारित रहती हो। ऐसे राजनीतिक समाज में यह परम्परागत नियम ही संविधान कहलाते हैं।

"संविधान नियमों का वह संग्रह है जो उन उद्देश्यों की प्राप्ति कराता है जिनके लिए शासन शक्ति प्रवर्तित की

नोट

जाती है और जो शासन के उन विविध अंगों की सृष्टि करता है जिनके माध्यम से सरकार अपनी शक्ति का प्रयोग करती है।

नोट्स संविधान उन समस्त लिखित और अलिखित (परम्पराएँ) नियमों और कानूनों का समूह है जिनके आधार पर किसी भी देश की शासन व्यवस्था संगठित की जाती है तथा उन सिद्धान्तों का निर्धारण होता है जिनके अनुसार वे शक्तियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं।

परन्तु कई राजनीतिक व्यवस्थाओं में, अनेक बार ऐसा देखा जाता है कि संविधान में व्यवस्था कुछ और व्यवहार में सरकार कुछ और करती है। ऐसी अवस्था में संविधान के अध्ययन से शासन तन्त्र के द्वारा राजनीतिक शक्तियों के प्रयोग के बारे में कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। इसलिये संविधान का अर्थ समझते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि औपचारिक ढांचा क्या व्यवस्था करता है तथा व्यवहार में शासन किस प्रकार संचालित होता है? जब संविधान के अनुरूप राजनीतिक शक्तियों का प्रयोग नहीं होता हो तो ऐसे संविधान को 'औपचारिक' संविधान कहेंगे। ऐसा संविधान विशेष रूप से तथा स्पष्टतया विधियों, अधिनियमों व घोषणापत्रों में वर्णित होता है और सिद्धान्त में ही राजनीतिक व्यवस्था का संगठन कहा जा सकता है। दूसरी तरफ, व्यवहार में विधि और 'औपचारिक' संविधान के प्रतिकूल राजनीतिक शक्तियों का प्रयोग होता हो तो ऐसा राजनीतिक आचार 'प्रभावी' संविधान कहा जाता है। यह शासन के वास्तविक संचालन से सम्बद्ध होता है। इस प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था में शासकों का व्यवहार, महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मामलों में, संविधान द्वारा निर्धारित प्रक्रिया व विधि के अनुरूप नहीं होता है। जैसे 'औपचारिक' संविधान के अनुसार ब्रिटेन में राजतन्त्र है, परन्तु राजनीतिक शक्तियों का व्यवहार में वास्तविक 'प्रयोग इसे संसदीय लोकतन्त्र की श्रेणी में ला देता है। सोवियत रूस में शासन का संचालन 'औपचारिक' व 'प्रभावी' संविधानों के अन्तर को और भी स्पष्ट करता है। औपचारिक दृष्टि से रूस का संविधान श्रेष्ठतम संसदीय लोकतन्त्र व संघात्मक शासन की स्थापना करता है। परन्तु व्यवहार में यहाँ शासन संविधान की धाराओं के अनुरूप न होकर साम्यवादी दल के आदेशों के अनुसार चलता है। इस दल की व्यवहार में निरंकुशता व एकाधिकार 'औपचारिक' संविधान में वर्णित राजनीतिक शक्ति की संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार शासन-संचालन सजीव नहीं होने देता। यहाँ सम्पूर्ण शासन तन्त्र, साम्यवादी दल के आदेशों के अनुसार संचालित होता है, संविधान में उपबन्धित व्यवस्थाओं के अनुसार नहीं। यह 'औपचारिक' व 'प्रभावी' संविधानों के अन्तर को ही स्पष्ट नहीं करता, अपितु यह भी संकेत देता है कि दोनों में किसी प्रकार का साम्य भी नहीं होता है। विकासशील राज्यों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। नवोदित स्वतन्त्र राजनीतिक व्यवस्थाओं में राजनीतिक अनुभव के अभाव में, शीघ्रता से अपनाए गए संविधानों का तेजी से बदलती परिस्थितियों और नई-नई आवश्यकताओं के अनुरूप न बन सकने के कारण, इन संविधानों की उपेक्षा कर राजनीतिक नेताओं का आचरण व्यवहार में भिन्न प्रकार का होता रहता है। इन देशों में अक्सर आर्थिक विकास की मजबूरियों व मूलभूत राजनीतिक प्रश्नों पर सहमति के अभाव में विकास व एकता की व्यवस्था करने के लिए कुछ नेता राजनीतिक शक्ति के एक मात्र उपयोगकर्ता बनते रहे हैं। ऐसी अवस्था में शासन व्यवस्था 'औपचारिक' संविधान के अनुरूप नहीं रह जाती है और 'प्रभावी' संविधान 'औपचारिक' संविधान से भिन्न हो जाता है।

अत: संविधान का अर्थ समझते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि 'औपचारिक संविधान' क्या व्यवस्था करता है तथा व्यवहार में यह किस सीमा तक राजनीतिक आचरण का आधार बना रहता है? संविधान राजनीतिक व्यवस्था का चरित्र या प्रकृति स्पष्ट करता है, क्योंकि संविधान राज्य के लिए ठीक वैसा ही है जैसा व्यक्ति के लिए चरित्र! यह न केवल 'राजनीतिक खेल' का आधार प्रस्तुत करता है अपितु विभिन्न राजनीतिक विचारों व मांगों में सामंजस्य की अभिव्यक्ति भी करता है। किसी राजनीतिक व्यवस्था की वास्तविक प्रकृति को समझने के लिए संविधान के इस ढांचे व तत्त्व (substance) सिद्धान्त व व्यवहार, दोनों को समझना आवश्यक है, क्योंकि संविधानवाद वहीं सम्भव है

नोट

जहाँ संविधान के ढांचे व तत्त्वों में साम्य हो अर्थात संवैधानिक सरकार हो। हर राज्य में संविधान तो अनिवार्यत: होता है पर संवैधानिक सरकार भी हो यह आवश्यक नहीं है। संवैधानिक सरकार न होने पर संविधानवाद की व्यवस्था व्यावहारिक नहीं हो सकती। इसलिए संविधानवाद का अर्थ समझने के लिए न केवल संविधान का अर्थ स्पष्ट करना ही काफी होगा अपितु इसका मूल आधार, संवैधानिक सरकार का विवेचन भी अनिवार्य है। संक्षेप में संवैधानिक सरकार का विवेचन इस प्रकार है।

संवैधानिक सरकार अर्थ (The Meaning of Constitutional Government)

सामान्यतया ऐसा समझा जाता है कि जिस राज्य में संविधान हो वहाँ संवैधानिक सरकार भी होती है, परन्तु वास्तव में यह सही नहीं है। हर राज्य में किसी न किसी प्रकार का संविधान तो अनिवार्यत: होता है, पर हर ऐसे राज्य में संवैधानिक सरकार भी हो यह जरूरी नहीं है। संवैधानिक सरकार से सीमित अर्थ-बोधन होता है, क्योंकि संवैधानिक सरकार वह सरकार ही होती है जो संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार संगठित, सीमित और नियंत्रित हो, तथा व्यक्ति विशेष की इच्छाओं के स्थान पर, केवल विधि के अनुरूप ही संचालित होती हो। हिटलर व स्तालिन के समय में जर्मनी व रूस में संविधान तो थे पर संवैधानिक सरकारें भी थी ऐसा नहीं कहा जा सकता। इनमें राजनीतिक आचरण का आधार संविधान नहीं होकर, व्यक्ति या दल की महत्त्वाकांक्षाएँ ही कही जा सकती हैं। अत: राज्य में केवल संविधान का होना मात्र सरकार को संवैधानिक नहीं बनाता है। केवल वह सरकार ही संवैधानिक सरकार कही जायेगी जो संविधान पर आधारित हो, संविधान द्वारा सीमित और नियंत्रित हो व स्वेच्छापूर्वकता के स्थान पर केवल विधि के अनुरूप ही संचालित होती हो। संक्षेप में संवैधानिक सरकार विधि राजनीतिक व्यवस्था में ही संविधानवाद सम्भव है, क्योंकि संविधानवाद उन मान्यताओं, आस्थाओं और मानव मूल्यों का नाम है जिसका संविधान में वर्णन व समर्थन होता है और जिनकी उपलब्धि व सुरक्षा हेतु राजनीतिक शक्ति पर प्रभावशाली नियंत्रणों व रोकों (restraints) की व्यवस्था होती है। संविधान व संवैधानिक सरकार के उपरोक्त विवेचन के संदर्भ में संविधाानवाद का अर्थ समझना सरल सा हो जाता है।

संविधानवाद का अर्थ (The Meaning of Constitutionalism)

संविधानवाद उन विचारों व सिद्धान्तों की ओर संकेत करता है, जो उस संविधान का विवरण व समर्थन करते हैं, जिनके माध्यम से राजनीतिक शक्ति पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित किया जा सके। यह संविधान पर आधारित विचारधारा है, जिसका मूल अर्थ यही है कि शासन संविधान में लिखित नियमों व विधियों के अनुसार ही संचालित हो व उस पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित रहे, जिससे वे मूल्य व राजनीतिक आदर्श सुरक्षित रहें जिनके लिए समाज राज्य के बंधन स्वीकार करता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि संविधान के नियमों के अनुसार शासन संचालन मात्र ही संविधानवाद है। ऐसा तो किसी निरंकुश शासन में भी हो सकता है। एक तानाशाह अपनी इच्छा के अनुसार संविधान बनाकर, जनता की इच्छाओं और आकांक्षाओं की अवहेलना करता हुआ उन पर यह संविधान बलपूर्वक लागू कर सकता है। ऐसे संविधान में जनता के आदर्शों व मूल्यों का समावेश नहीं होता है, और इस कारण यह व्यवस्था संविधानवाद का विलोम ही होगी। अत: संविधानवाद संविधान के नियमों के अनुरूप शासन संचालन से अधिक है। इसका अर्थ है, निरंकुश शासन के विपरीत नियमानुकूल शासन, जिसमें मनुष्य की आधारभूत मान्यताओं, आस्थाओं और मूल्यों की व्यवहार में उपलब्धि सम्भव हो। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि संविधानवाद शासन की वह पद्धति है जिसमें शासन जनता की आस्थाओं, मूल्यों व आदर्शों को परिलक्षित करने वाले संविधान के नियमों व सिद्धातों के आधार पर ही किया जाए व ऐसे संविधान के माध्यम से ही शासकों को प्रतिबंधित व सीमित रखा जाए जिससे राजनीतिक व्यवस्था की मूल व्यवस्थाएँ सुरक्षित रहें और व्यवहार में हर व्यक्ति को उपलब्ध हो सकें।

कुछ विचारक शासन को सीमित व नियंत्रित करने के लिए तथा मानव मूल्यों की सुरक्षा सम्भव बनाने के लिए शक्ति विभाजन को अधिक महत्त्व देते हैं व उसे संविधानवाद का मूल आधार मानते हैं। उनकी मान्यता है कि संविधानवाद राजनीतिक शक्तियों का विभाजन कर सरकार के कार्यों पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित करना है। अत: संविधानवाद तभी संभव है जब किसी राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति विभाजन के द्वारा सरकारी कार्यों पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित किया जा सके।

नोट

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि संविधान व संविधानवाद एक दूसरे के पर्यायवाची नहीं हैं। इससे यह भी स्पष्ट है कि जहाँ संविधान है वहाँ संविधानवाद आवश्यक रूप से पाया जाता हो यह जरूरी नहीं है। संविधान के माध्यम से तो हम किसी भी देश की राजनीतिक व्यवस्था, अर्थात सरकार के स्वरूप, उसकी शक्तियों व नागरिकों और सरकार के सम्बन्धों से सम्बन्धित सिद्धान्तों व नियमों का संकेत पाते हैं जबकि संविधानवाद एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें संविधान के माध्यम से ही सरकार की शक्तियों पर शक्ति वितरण द्वारा प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित किया जाता है जिससे वह आकांक्षाएँ व मूल्य सुरक्षित रहें जिनकी उपलब्धि के साधन के रूप में संविधान को अपनाया व समर्थित किया गया व आज भी समर्थन दिया जाता है।

इस प्रकार, पिनोक व स्मिथ के शब्दों में, "संविधानवाद केवल प्रक्रिया या तथ्य (substance) का नाम ही नहीं है अपितु राजनीतिक सत्ता के सुविस्तृत समूहों, दलों व वर्गों पर प्रभावशाली नियंत्रणों, अमूर्त तथा व्यापक प्रतिनिधात्मक मूल्यों, प्रतीकों, अतीतकालीन परम्पराओं और भावी महत्वाकांक्षाओं से सम्बद्ध भी है।" मनुष्य उत्तरोत्तर व सर्वांगीण विकास की आकांक्षा रखता है, और इसकी व्यवस्था करने के लिए हमेशा से प्रयत्नशील रहा है। यह बहुमुखी विकास की व्यवस्था, आधुनिक राज्यों में संविधान के माध्यम से सम्भव बनाती है। पर शासक संविधान की अवहेलना कर, विकास के लक्ष्य और आदर्श समाप्त ही नहीं कर दें, इसलिए समाज, राजनीतिक सत्ता को संगठित ही नहीं, उसे नियंत्रित, प्रतिबन्धित व सीमित रखने के साधन भी जुटाता है। मानव समाज की मान्यताओं व आदर्शों की उपलब्धि हेतु किसी राजनीतिक व्यवस्था में सुरक्षात्मक नियंत्रण व्यवस्था ही संविधानवाद है। कार्ल जे. फ्रेड्रिक ने ठीक ही कहा है कि, "व्यवस्थित परिवर्तन की जटिल प्रक्रियात्मक व्यवस्था ही संविधानवाद है।" इस परिवर्तन को सरकार व नागरिक ही सम्भव बनाते हैं। विलियम जी. ऐन्ड्रूज के अनुसार, संविधानवाद इन दो प्रकार के, सरकार व नागरिक, तथा एक सरकारी सत्ता के दूसरी सरकारी सत्ता से, सम्बन्धों का संचालन मात्र है। अर्थात संविधानवाद सरकार व नागरिक तथा एक सरकारी सत्ता के दूसरी सरकारी सत्ता से सम्बन्धों की ठोस व्यवस्था है जिससे यह सभी लक्ष्ययुक्त व्यवस्थित परिवर्तन सम्भव बने और राजनीतिक व्यवस्था विशेष में, मानव आदर्शों, राजनीतिक मूल्यों व आस्थाओं को व्यावहारिकता प्रदान होती रहे।

संविधानवाद और संविधान के अर्थ से स्पष्ट है कि इन दोनों में काफी अन्तर है। इनका अन्तर समझना जरूरी है, अन्यथा संवैधानिक व्यवस्था मात्र को संविधानवाद समझने का भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक है। अत: इनमें अन्तर करना आवश्यक है।

क्या आप जानते हैं "संविधानवाद उस निष्ठा का नाम है जो मनुष्य संविधान में निहित शक्ति में रखता है जिससे सरकार व्यवस्थित बनी रहती है।" अर्थात वह निष्ठा व आस्था की शक्ति जिसमें सुसंगठित राजनीतिक सत्ता नियंत्रित रहती है, 'संविधानवाद' है।

संविधान व संविधानवाद में अन्तर (Difference Between Constitution and Constitutionalism)

संविधान, संविधानवाद की अभिव्यक्ति करता है। इसी पर संविधानवाद आधारित होता है। अत: दोनों में अन्तर की विभाजक रेखा खींचना व्यावहारिक रूप में कठिन है। परन्तु दोनों का अन्तर समझना आवश्यक है, क्योंकि दोनों का अन्तर करने पर ही उन परिस्थितियों को पहचाना जा सकता है, जो संविधान और संविधानवाद की अलग-अलग दिशाओं का संकेत करती है। जैसे क्रांतियों द्वारा बलपूर्वक स्थापित सैनिक तानाशाही व्यवस्थाओं में संविधान व संविधानवाद के अन्तर के संदर्भ में ही स्पष्ट हो सकती है। इसलिए दोनों का अन्तर स्पष्ट समझ लेना चाहिए। संक्षेप में इन दोनों के अन्तर का विवेचन इस प्रकार है :-

(क) परिभाषा की दृष्टि से संविधानवाद विचारधारा का प्रतीक है। इसमें राष्ट्र के मूल्य, विश्वास व राजनीतिक आदर्श आते हैं, जिनसे मिलकर विचारधारा बनती है, और उस विचारधारा (Ideology) का प्रतीक संविधानवाद कहलाता

नोट

है। संविधान संगठन का प्रतीक है। यह उन सिद्धान्तों का संकलन कहा जा सकता है जिनके अनुसार सरकार की शक्तियों व शासितों के अधिकारी के मध्य सम्बन्धों का समायोजन किया जाता है। इससे सरकार, व्यक्ति व समाज के संगठनों के आपसी सम्बन्धों का बोध होता है। इनमें पारस्परिकता व पूरकता का सम्बन्ध है। साम्य, समाज में व्यवस्था, स्थायित्व व प्रगतिशीलता का सूचक है। दोनों में साम्य न रहने पर, अर्थात दोनों की दिशाओं का अलग-अलग होना क्रांति की पृष्ठभूमि तैयार करता है।

इस प्रकार सी. एफ. स्ट्रोंग के शब्दों में, "संविधान उन सिद्धान्तों का समूह है जिनके अनुसार राज्य के अधिकार, नागरिकों के अधिकारों, नागरिकों, और दोनों के संबंधों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है।" वास्तव में संविधान जहाँ एक तरफ सरकार पर नियमित नियंत्रण रखता है, वहाँ यह दूसरी तरफ, समाज में एकता लाने वाली शक्ति के प्रतीक के रूप में भी कार्य करता है। फाइनर ने इसलिए ही संविधान को किसी राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति सम्बन्धों की आत्मकथा' बतलाया है। राजनीतिक प्रक्रिया के रूप में संविधान न्यायोचित खेल की गारंटी करने वाले नियमों को कहा गया है। संविधानवाद उन विचारों और सिद्धान्तों की ओर संकेत करता है जो संविधान का विवरण और समर्थन करते हैं तथा जिनके माध्यम से राजनीतिक शक्ति पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित करना सम्भव होता है। कौरी तथा अब्राहम के शब्दों में, "स्थापित संविधान के निर्देशों के अनुरूप शासन को संविधानवाद माना जाता है।"

(ख) उत्पत्ति की दृष्टि से भी दोनों में अन्तर है। संविधानवाद हमेशा ही विकास का परिणाम रहा है। हर देश के मूल्य, विश्वास व आदर्शों का विकास शताब्दियों के आवरण में तथा समय की परिधि में धीरे-धीरे होता है। परम्परागत, संस्थागत व मानव सम्बन्धी तत्त्वों से राष्ट्रों के विश्वास व आदर्श विकसित होते रहते हैं, और जनसाधारण के जीवन में इतने घुल-मिल जाते हैं कि इनकी प्राप्ति और रक्षा हेतु समाज बड़े से बड़ा बलिदान करने के लिए तैयार रहता है। संविधान, केवल ब्रिटेन के संविधान को छोड़कर, साधारणतया निर्मित होते हैं तथा बाद में परम्पराओं के माध्यम से संविधानवाद की आवश्यकताओं के अनुरूप स्वत: बदलते-ढलते जाते हैं। स्वत: नहीं बदलते, पर औपचारिक संशोधनों से संविधानों को संविधानवाद के अनुरूप बनाए रखा जाता है। इस प्रकार, उत्पत्ति की दृष्टि से संविधान सुनिश्चित प्रयत्नों से निश्चित अवधि में निर्मित होते हैं, जबकि संविधानवाद, राष्ट्र में मूल्यों की व्यवस्था ही होने के कारण, लम्बी अवधि में विकसित होता है।

(ग) संविधान व संविधानवाद में प्रकृति में भी मौलिक अन्तर है। संविधानवाद में प्रधानता किसी राजनीतिक समाज के लक्ष्यों और उद्देश्यों की होती है। अन्तत: हर समाज एक गन्तव्य की प्राप्ति का लक्ष्य रखता है, और गन्तव्यों की प्राप्ति की व्यवस्था ही संविधानवाद का मूल है जबकि संविधान प्रमुखतया उन गन्तव्यों तक पहुँचने के साधनों की सुव्यवस्था है। यह संविधानवाद के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु साधन जुटाने का नाम है। अत: संविधानवाद साध्य-प्रधान और संविधान-प्रधान धारणा है।

(घ) संविधानवाद अन्तर्भूतकारी (inclusive) तथा संविधान अपवर्जक (exclusive) धारणा है। संविधानवाद कई देशों का एक-सा हो सकता है। एक राष्ट्र के मूल्य, विश्वास, व राजनीतिक आदर्श व संस्कृति के प्रति अन्य देश भी निष्ठा रख सकता है। संस्कृति, मूल्य, विश्वास व राजनीतिक आदर्श कई देशों के एक-से हो सकते हैं। अत: यह नहीं समझना चाहिए कि हर देश का अपना अलग मौलिक संविधानवाद होता है। आंग्ल-अमरीकन जिसे पाश्चात्य संस्कृति कहते हैं, इन राष्ट्रों के संविधानवाद में समानता का संकेत करती है। साम्यवादी जगत में भी कई देशों में राजनीतिक मूल्यों व आदर्शों का एक-सा होना, संविधानवाद की एकरूपता परिलक्षित करता है परन्तु अनेक राष्ट्रों में संविधानवाद की समानता में प्रकार का तो नहीं पर मात्रा का अन्तर अवश्य हो सकता है। पाश्चात्य राष्ट्रों में फ्रांस व जर्मनी तथा साम्यवादी जगत में चीन व अलबानिया इस मात्रात्मक अन्तर का उदाहरण दिखाई देते है। विकासशील देशों में यह अन्तर अधिक पाया जाता है, क्योंकि इन राष्ट्रों में, राष्ट्रीय अहं (national ego) बनाने के लिए मौलिक जीवन दर्शन की खोज इनको अधिक भिन्नता से युक्त बना देती है। इन देशों की संस्कृति में भिन्नता का पुट अधिक पाया जाता है, और यह भी संविधानवाद में मात्रात्मक अन्तर का आधार बन जाता है। इससे स्पष्ट है कि संविधानवाद व्यापक धारणा है, और अनेक राष्ट्रों में समान रूप से पाई जा सकती है।

नोट

संविधान हर देश का अलग होता है। यद्यपि संविधानवाद की कई देशों में समानता संविधानों को भी समानता का ऊपरी आवरण पहना देती है, पर इसके बावजूद संविधान भिन्नता अधिक रखते हैं। विभिन्न राज्यों के संविधानों में मात्रा और प्रकार दोनों ही का अन्तर देखने को मिलता है। संविधान, प्रमुखतया साधनों की व्यवस्था होने के कारण एक से साध्यों को भी राज्य विशेष की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण अलग-अलग प्रकार के साधनों से प्राप्त करने का प्रावधान मात्र होते हैं और इससे हर देश का संविधान भिन्न हो जाता है। इस प्रकार, संविधान से सीमित धारणा का बोध होता है। यह राज्य विशेष का ही रहता है। कई राज्यों का एक-सा नहीं बन सकता है। जिस प्रकार हर मनुष्य का शरीर अलग-अलग होता है ठीक इसी प्रकार हर राज्य का संविधान अलग व विशिष्ट होता है। पर हर मनुष्य में प्राण आत्मा मोटे रूप में समान ही होती है। इसी तरह अनेक राज्यों में संविधानवाद की समानता भी दिखाई देती है।

(ङ) संविधान व संविधानवाद का अन्तर औचित्य या वैधता (legitimacy) के आधार पर भी किया जाता है। संविधानवाद में आदर्शों के औचित्य का प्रतिपादन मुख्यत: विचारधारा (Ideology) के आधार पर होता है जबकि संविधान की वैध्यता विधि या कानून के आधार पर ठहराई जाती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संविधान और संविधानवाद में गहरा सम्बन्ध होते हुए भी दोनों में आधारभूत अन्तर होता है। यह अन्तर ही यह स्पष्ट करता है कि कभी-कभी राज्यों में इन दानों की दिशाएँ भिन्न-भिन्न क्यों हो जाती हैं? और इस दिशा भिन्नता का क्या परिणाम हो सकता है? इस वर्णन से एक बात और स्पष्ट होती है कि किसी राज्य में संविधानवाद कुछ आधारभूत मतैक्यों (consensus) के होने पर ही सम्भव है, क्योंकि सरकार, नागरिक तथा विभिन्न सरकारी सत्ताओं में सामंजस्य, सहयोग तथा पारस्परिकता इन आधारों की अनुपस्थिति में अर्थपूर्ण नहीं बन सकती। अत: संविधानवाद के इन मूल आधारों को संक्षेप में समझना आवश्यक है, क्योंकि इन्हीं की नींव पर संविधानवाद का भवन खड़ा रहता है।

टास्क संवैधानिक सरकार का क्या अर्थ है?

संविधानवाद के आधार (Foundations of constitutionalism)

सामान्यतया सभी सरकारें उनका विरोध करने वाले का दमन, हर राज्य में शक्ति के प्रयोग से ही करती है। परन्तु सरकारों को शक्ति का प्रयोग कभी-कभी ही करना होता है। साधारणत: हर राजनीतिक समाज में इतना व्यापक व ठोस ऐक्य होता है कि सरकार को शक्ति के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती और जनता सरकार के आदर्शों का स्वत: पालन करती रहती है। यह मतैक्य की परिस्थिति संविधानवाद की आवश्यक शर्त है। यह मतैक्य, पूर्ण विरोध व पूर्ण सहमति के दो ध्रुवों को जोड़ने वाली निरंतर रेखा पर किसी स्थान पर होता है, जो चित्र 3.1 से और भी स्पष्ट हो जाता है।

सरकार का विरोध-समर्थन निरन्तर

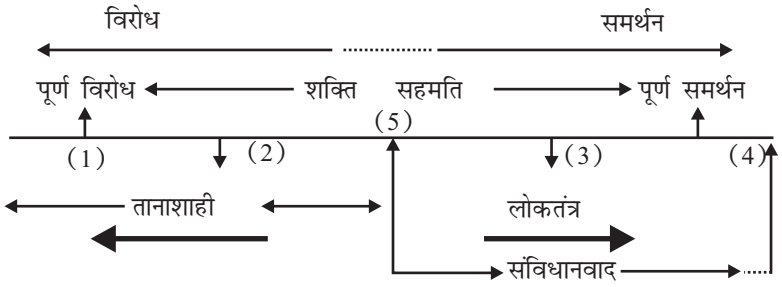

चित्र 3.1 शासक-शासितों का सम्बन्ध चित्रण

चित्र 3.1 में शासक-शासितों के सम्बन्धों को समझाने का प्रयास किया गया है। सरकार के विरोध-समर्थन निरन्तर

नोट

पर पहली व चौथी अवस्थाएं केवल काल्पनिक ही हैं, क्योंकि किसी राजनीतिक समाज में शासकों का पूर्ण विरोध क्रांति की अवस्था को छोड़कर नहीं होता है। इसी प्रकार शासकों के हर आदेश का, हर आदमी, हर परिस्थिति में पालन करता हो यह भी परम-आदर्श अवस्था ही होगी। इन दो ध्रुवों के बीच किसी न किसी स्थान पर सभी राजनीतिक व्यवस्थाएँ अंकित की जा सकती हैं। पूर्ण विरोध व पूर्ण समर्थन के दो ध्रुवों के बीच एक अव्याख्यायित सी ऐसी अवस्था भी होती है जो चित्र में पांच पर अंकित मानी गई है, जिसके बाई तरफ की राजनीतिक व्यवस्थाओं को निरंकुश (बिन्दु दो) तथा दाहिनी तरफ की राजनीतिक व्यवस्थाओं को लोकतांत्रिक (बिन्दु तीन) कहा जा सकता है। संविधानवाद की उपस्थिति केवल लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं में ही सम्भव है। राजनीतिक व्यवस्थाओं की यह वह अवस्था है जिसमें समाज में इतना व्यापक व ठोस ऐक्य होता है कि सरकार को शक्ति का प्रयोग कभी-कभी व विशिष्ट परिस्थितियों में ही करना होता है और सामान्य समय में सरकार को शक्ति के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। यह मतैक्य की परिस्थिति, संविधानवाद की आधारभूत व आवश्यक शर्त है। यह ऐक्य जितना ही पूर्ण सहमति या समर्थन के ध्रुव के समीप होगा उतनी ही संविधानवाद में ठोसता व व्यावहारिकता होगी। विलियम जी. ऐन्ड्रूज ने यह चार प्रकार माना है।

(क) संस्थाओं के ढांचे और प्रक्रिया पर मतैक्य (consensus on the form of institutions and procedures) – ऐन्ड्रूज की मान्यता है कि राजनीतिक संस्थाओं के ढांचे और प्रक्रियाओं पर मतैक्य संवैधानिक सरकार के लिए विशेष महत्त्व रखता अगर नागरिकों की बड़ी संख्या वह अनुभव करती हो कि सरकार का तन्त्र उनके अहित में, अन्यायपूर्ण ढंग से संचालित होता है, तो वे सामाजिक संघर्षों के समाधान की व अपने आदर्शों की प्राप्ति की, सरकारी व्यवस्था स्वीकार नहीं करेंगे। इससे सरकारी सत्ता क्षीण होगी और सरकार को जनता का समर्थन नहीं, विरोध मिलेगा। इसलिए संस्थाओं के ढांचे और प्रक्रियाओं पर नागरिकों में सामान्य ऐक्य आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। सरकारी व्यवस्था के प्रति असन्तोष की स्थिति संविधानवाद के अनुकूल नहीं होगी। संविधानवाद के लिए यह आवश्यक है कि संस्थाओं की प्रकृति पर जनता में मोटी सहमति हो। इस सामान्य सहमति के अभाव में संविधान तथा संविधानवाद में साम्य नहीं रहेगा और संविधान, संविधानवाद की सुरक्षा का साधक नहीं रहकर उसमें बाधक बन जाएगा और क्रांति का मार्ग प्रशस्त करेगा। इसलिए संविधान तथा संविधानवाद में साम्य बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि संस्थाओं और प्रक्रियाओं पर राजनीतिक समाज के नागरिकों में मतैक्य हो।

(ख) सरकार के आधार के रूप में विधि-शासन की आवश्यकता पर सहमति (Agreement on the desirability of the rule of law as basis of government) – संविधानवाद का दूसरा महत्त्वपूर्ण आधार शासन संचालन के नियमों पर सहमति से सम्बद्ध है। राजनीतिक समाज के नागरिकों में इस बात पर भी सहमति आवश्यक है कि सरकार के संचालन का आधार विधि का शासन ही हो। यद्यपि कुछ असामान्य परिस्थितियों में समाज में इसके प्रतिकूल मतैक्य भी हो सकता है। जैसे देश में संकट के समय में ऐसा नेता उभर सकता है, जिसमें ऐसी योग्य और अनोखी सूझबूझ हो सकती है कि जनसमुदाय उसको संविधानवाद के बन्धनों से मुक्त होने दे। जर्मनीवासियों ने 1933 में हिटलर के लिए और फ्रांसवासियों ने 1958 में चार्ल्स डिगॉल के समय में ऐसा किया, यद्यपि फ्रांस में संविधानवाद के ढांचे की औपचारिकता बनी रही थी। परन्तु यह तभी होता है जब अधिकांश जनसमुदाय की आस्था संकट विशेष का सामना करने के लिए संविधान द्वारा व्यवस्थित प्रक्रियाओं से उठ जाए। ऐसी अवस्था में समाज, राज्य के सम्पूर्ण साधनों को जुटाने के लिए संविधान के नियन्त्रणों व निर्देशों की अवहेलना होने के लिए सहमत ही नहीं हो जाता, अपितु ऐसा करने के लिए सरकार पर दबाव तक डालता है। ऐसा गृह युद्ध के समय अमरीका में हुआ तथा विगत महायुद्ध के समय ब्रिटेन में किया गया पर यह संविधानवाद का अन्त करना नहीं, उस पर सम्भावित खतरे से उसे बचाने की सुरक्षा व्यवस्था है। यह संकट के साथ ही समाप्त हो जाती है। अत: यह विशिष्ट परिस्थितियों व संकट की बात हुई। सामान्यतया, सरकार का संचालन व निर्देशन का आधार विधि ही हो इस पर सहमति की अवस्था में ही संविधानवाद सम्भव है।

नोट

(ग) समाज के सामान्य उद्देश्यों पर सहमति (Agreement on the general goals of the society) – संविधानवाद के विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि राजनीतिक समाज के नागरिकों में समाज के सामान्य उद्देश्यों पर सहमति पाई जाए। परन्तु संविधानवाद के पूर्व-वर्णित आधारों जितना महत्त्वपूर्ण आधार यह नहीं है, क्योंकि जब संस्थाओं की प्रकृति व प्रक्रियाओं पर सहमति हो तब समाज के लक्ष्यों व गन्तव्यों का संशोधन व पुन: निर्धारण बातचीत व समझौते द्वारा किया जाना सम्भव है। परन्तु फिर भी, समाज के सामान्य उद्देश्यों पर रजामन्दी का अभाव राजनीतिक व्यवस्था में ऐसे तनाव, खिंचाव व दबाव उत्पन्न कर सकता है कि इससे दूसरे क्षेत्रों का मतैक्य खतरे में पड़कर, सम्पूर्ण संवैधानिक तन्त्र को चौपट करने का सूत्रपात कर सकता है। इस प्रकार, समाज के सामान्य उद्देश्यों पर सहमति न होने की परिस्थिति, सम्पूर्ण संवैधानिक ढांचे को अस्तव्यस्त कर सकती है। इसलिए ही विलियम जी॰ ऐन्ड्रूज की मान्यता है कि, "उद्देश्यों पर सहमति तथा समान राजनीतिक दर्शन में आस्था संविधानवाद में ठोसता लाने के लिए आवश्यक है।"

(घ) गौण लक्ष्यों व विशिष्ट नीति-प्रश्नों पर सहमति (Concurrence in lesser goals and on psecific policy questions) – गौण लक्ष्यों तथा विशिष्ट नीति- प्रश्नों पर सहमति को संविधानवाद का मूल आधार माना जाए या नहीं इस पर लोगों में मतभेद है। यदि यह संविधानवाद के लिए अनिवार्य आधार न भी माना जाए तो भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि संविधानवाद की व्यवहार में उपलब्धि के लिए यह जरूरी है कि गौण उद्देश्यों व विशिष्ट नीति-प्रश्नों पर भी समाज में सहमति हो। क्योंकि इन पर असहमति, वह प्रारम्भिक दशा है जो संविधानवाद के भवन को धराशायी करने की पृष्ठभूमि तैयार करती है। विशिष्ट नीति-प्रश्नों पर असहमति से असन्तोष की वह स्थिति उत्पन्न हो सकती है जो सहमति के अन्य क्षेत्रों में भी तनाव, सन्देह और विरोध के बीज बो दे, जिससे संविधानवाद के सम्पूर्ण भवन में दरारें पड़ने लगें, जो अन्तत: उसको कमजोर कर धराशायी करने का कारण बन जाएं। इसलिए अगर यह मान भी लिया जाए कि यह संविधानवाद का अत्यन्त आवश्यक आधार नहीं है, फिर भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि इससे संविधानवाद रूपी भवन की सीमेन्ट में ठोसता आती है और राजनीतिक ढांचा हल्के-फुल्के तनावों से हिल नहीं पाता।

संविधानवाद के उपरोक्त चारों आधार किसी भी राज्य में इसकी व्यावहारिक उपलब्धि की आवश्यक शर्त है। अगर किसी राजनीतिक व्यवस्था में ये आधार उपस्थित न हों तो संविधानवाद की व्यवस्था अधिक दिन स्थायी नहीं रह सकती है। दीर्घकालीन व सदियों से स्थापित संविधानवाद भी इन आधारों के अभाव में समाप्त हो जाता है। समाज में इन चारों आधारों पर असहमति ठोस संविधानवाद की भी समाप्ति का कारण बन जाती है इसलिए इनका संविधानवादी व्यवस्था में आधारभूत योगदान है।

संविधानवाद का अर्थ और आधार समझने के पश्चात इसके विभिन्न तत्त्वों को समझना जरूरी है। संविधान में इन तत्त्वों का निहित होना या नहीं होना ही संविधान द्वारा स्थापित सरकार को संवैधानिक या असंवैधानिक बनाता है और यह संविधानवाद की अभिव्यक्ति होती है या नहीं, इसका निर्णायक बनता है।

संविधानवाद के तत्त्व (Elements of Constitutionalism)

पिनोक व स्मिथ ने अपनी पुस्तक **पोलिटिकल सायंस : ऐन इन्ट्रोडक्शन** में संविधानवाद के चार तत्त्वों का उल्लेख किया है। इनकी मान्यता है कि किसी देश में संविधानवाद की व्यवहारिकता के लिए उसके संविधान में इन तत्त्वों का होना या किसी राज्य के संविधान में इनका न पाया जाना इस बात का सूचक है कि ऐसी राजनीतिक व्यवस्था में संविधान के होते हुए भी संविधान द्वारा संविधानवाद का प्रकाशन व व्यवहारीकरण नहीं होता है तथा यह अवस्था संविधान व संविधानवाद में न केवल असाम्य का संकेत है अपितु दोनों की भिन्न-भिन्न दिशाओं की सूचक है, जो अनतत: संविधान को संविधानवाद के अनुरूप बनाने के लिए जनक्रांति की पृष्ठभूमि तैयार करता है।

अत: संविधानवाद के तत्त्वों के संदर्भ में ही यह समझना सम्भव है कि किसी राजनीतिक व्यवस्था में संविधान, संविधानवाद का प्रतीक व प्रतिबिम्बक है अथवा नहीं । अगर किसी राज्य के संविधान में संविधानवाद के इन तत्त्वों का समावेश नहीं होता है तो वह संविधान, संविधानवाद की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं रहता है, और ऐसी राजनीतिक व्यवस्था में संविधान केवल औपचारिक रूप में ही रहता है तथा देश की वास्तविक शासन व्यवस्था का स्थापक नहीं

नोट

होता है। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं संविधान में संविधानवाद के तत्त्व तो निहित होते हैं परन्तु व्यवहार में संविधान प्रभावी नहीं होता, अपितु औपचारिक ही रहता है। ऐसी अवस्थाओं में राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना व संचालन संविधान के अनुरूप नहीं होकर, उससे भिन्न प्रकार से होता है। इस अन्तर को संविधानवाद के तत्त्वों के संदर्भ में सही समझा जा सकता है।

(क) संविधान अपरिहार्य संस्थाओं की अभिव्यक्ति (The constitution as an embodiment of essential institutions)– सामान्यतया, सभी लिखित संविधानों में सरकार के प्रमुख पदाधिकारियों, उसके विभिन्न अंगों, उनकी शक्तियों और उन पर लगी सीमाओं का उल्लेख होता है। जहाँ लिखित संविधान नहीं होता है और अगर वह संवैधानिक राज्य है, तो ऐसे राज्य में प्रमुख सरकारी संस्थाओं की स्थापना व उनकी शक्तियों व सीमाओं का निश्चय ऐतिहासिकता से होता है। संविधान चाहे लिखित हो या विकसित व अलिखित, उसमें व्यवस्थापिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका के संगठन, कार्यों व उनके पारस्परिक सम्बन्धों की स्पष्ट व्यवस्था, संविधानवाद की अभिव्यक्ति के लिए अनिवार्य है। संविधान में सरकार के विभिन्न स्तरों व अंगों की शक्तियों की व्याख्या ही नहीं हो वरन् उनके पारस्परिक सम्बन्धों का, उन पर लगी सीमाओं और उनकी कार्यविधि का स्पष्ट उल्लेख भी होना चाहिए, अन्यथा संविधान, संविधानवाद की अभिव्यक्ति का साधन नहीं बन सकता। वर्तमान राज्यों में संविधान की सजीवता का मापदण्ड ही यह है कि संविधान कहाँ तक सरकार की आधारभूत संस्थाओं– व्यवस्थापिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका तथा राजनीतिक दलों, समूहों एवं प्रशासकीय सेवाओं की समुचित व्यवस्था व स्थापना करता है। अगर किसी संविधान द्वारा आधारभूत राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना व उनकी शक्तियों की स्पष्ट व्याख्या नहीं होती है तो ऐसी व्यवस्था में संविधानवाद सम्भव नहीं होता है। ऐसे राज्यों में राजनीतिक शक्तियों के प्रयोगकर्त्ता अपने अधिकारक्षेत्र में इच्छानुसार वृद्धि करके शासन शक्तियों के दुरुपयोग का अवसर प्राप्त कर लेते हैं। इसलिये संविधान में आधारभूत संस्थाओं की स्पष्ट व्यवस्था, संविधानवाद का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

(ख) संविधान राजनीतिक शक्ति का प्रतिबन्धक (The Constitution as restraint upon political power)– पिनोक व स्मिथ तो प्रतिबंधों को संविधानवाद का मूल मन्त्र मानते हैं। हर राज्य में सरकार संवैधानिक बनाए रखने के लिए, उसका किसी न किसी प्रकार नियंत्रण व्यवस्था के अधीन होना आवश्यक है वैसे तो संविधान द्वारा सरकार के तंत्र की स्थापना मात्र ही शक्ति की नियंत्रक व्यवस्था बन जाती है, फिर भी संविधान स्पष्ट रूप से सरकार की शक्तियों का सीमांकन भी करे यह आवश्यक है। इससे सरकारी क्रिया सुनिश्चित हो जाती है जिससे शासित, शासकों के स्वेच्छाचारी कृत्यों से बचे रहें, और शासन केवल विधि ही के अनुरूप संचालित होता रहे। इसके लिए हर लोकतान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्था के संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान किये जाते हैं, जो सरकार को हर समय व हर कदम पर नियंत्रित, प्रतिबन्धित करते हुए अपने अधिकार क्षेत्र में सीमित रखते हैं और संविधान का व्यवहार में किसी भी अधिकारी द्वारा उल्लंघन नहीं किया जाता है। साधारणतया, हर लोकतान्त्रिक राज्य में कुछ न कुछ नियंत्रण शासकों पर लगाए जाते हैं। मोटे तौर पर यह नियंत्रण है– (1) विधि के शासन की स्थापना, (2) मौलिक अधिकारों की व्यवस्था, (3) राज्य की शक्तियों के विभाजन, पृथक्करण व विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था, तथा (4) सामाजिक बहुलवाद की परिस्थितियों को बनाए रखने की व्यवस्था।

इन नियंत्रण व्यवस्थाओं के माध्यम से सरकार व नागरिक, दोनों ही अपने अधिकार व कार्य क्षेत्र में सीमित रहने के लिए बाध्य हो जाते हैं। एक द्वारा अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण स्वत: ही दूसरे द्वारा इन नियंत्रणों के माध्यम से अवरोधित कर दिया जाता है। ऐसी व्यवस्था में, संविधान समाज के आदर्शों, आस्थाओं और राजनीतिक मूल्यों की प्राप्ति का साधन बना रहता है। अगर किसी राज्य में संविधान द्वारा ऐसे प्रतिबन्ध स्थापित नहीं किये जाते हैं तो यह संविधान राजनीतिक आचरण का निदेशक व नियंत्रककर्ता नहीं रह पाता है। ऐसी नियंत्रक मुक्त राजनीतिक व्यवस्था में शासक स्वेच्छा से सब कुछ कर सकते हैं और जिस राज्य में शासक उन्मुक्त होकर सब कुछ कर सकें, वहाँ संविधानवाद सम्भव नहीं हो सकता है। इसलिये संविधान का राजनीतिक शक्ति का प्रतिबन्धक होना संविधानवाद का आधारभूत तत्त्व है।

(ग) संविधान विकास का निदेशक (The constitution as the director of development)– संविधान, एक प्रभावी राजनीतिक शक्ति केवल वर्तमान में ही न हो अपितु सुदूर भविष्य में भी प्रभावी राजनीतिक शक्ति बना रहे।

नोट

इसके पीछे आवश्यक है कि संविधान राजनीतिक संघर्ष का प्रभावशाली ढंग से सीमांकन व ढांचा स्थापित करे और भावी प्रगति के लिए विकास सक्षम योजना प्रस्तुत करें। समय, परिस्थितियों और आवश्यकताओं में परिवर्तन के साथ ही सामाजिक मान्यताओं, मूल्यों व आदर्शों में हेर-फेर भी होता रहता है। कालचक्र मु गुजरता हुआ समाज, नये, परिष्कृत और संवर्द्धित गन्तव्यों को प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित करता जाता है। इन नवीन आस्थाओं की व्यवहार में प्राप्ति की योजना हर संविधान में सन्निहित होनी चाहिए, जिससे संविधान समाज को दिशात्मक सुस्पष्टता से युक्त रख सके। अगर किसी राज्य का संविधान ऐसी व्यवस्था नहीं रखता है तो परिवर्तित व अप्रत्याशित परिस्थितियों में वह समाज की बदलती हुई मान्यताओं का प्रतीक नहीं रह जाएगा। नये आर्थिक विकासों और समाज के नये समूहों की भी राजनीतिक प्रभाव तक पहुंच होती रहे। इन समूहों की राजनीतिक शक्ति तक पहुंच तभी हो सकती है जब संविधान में ऐसी व्यवस्था हो कि, जिनका समर्थन समाप्त हो जाए तो उन्हें स्थान लेने दें, जो अब तक सत्ता परिधि से बाहर थे। इसके लिए यह आवश्यक है कि संविधान भविष्य के सम्भावित विकासों का श्रेष्ठतम साधन नहीं बनता वह शीघ्र ही समाज की आधारभूत मान्यताओं से विलग होता जाता है। ऐसा संविधान समाज की आकांक्षाओं की प्राप्ति का साधन न रहकर उसका बाधक बन जाता है। यह अवस्था संविधानवाद की समाप्ति का प्रारम्भ है। संविधान की गतिहीनता का सूचक हैं यह समाज को अनावश्यक जकड़नों में बांधकर प्रगति के पथ पर जड़ता लाता है और वह संविधानवाद का गला घोंटता है। इसलिए संविधान का विकास के निदेशक के रूप में होना संविधानवाद की व्यवहारिकता हर समय बनाए रखने के लिए अनिवार्य है। यह संविधानवाद में सजीवता व गत्यात्मकता लाने वाला तत्त्व है जो समय परिवर्तन के साथ आए समाज के मूल्यों में परिवर्तन के अनुकूल सम्पूर्ण संवैधानिक व्यवस्था को ढालने की स्वत: ही व्यवस्था बन जाता है।

(घ) संविधान राजनीतिक शक्ति का संगठक (The constitution as an organiser of political authroity) – संविधान केवल सरकार की सीमाओं की स्थापना ही नहीं करता अपितु सरकार की विभिन्न संस्थाओं में शक्तियों का क्षैतीजीय व लम्बात्मक वितरण भी करता है। संविधान यह व्यवस्था भी करता है कि सरकार के कार्य अधिकार युक्त रहें, और स्वयं सरकार भी वैध्य (legitimate) रहे। अगर कोई संविधान सरकार के कार्यों को अधिकार युक्त व स्वयं सरकार को वैध्य नहीं बनाता तो ऐसी सरकार व संविधान अधिक दिन तक स्थाई नहीं रह सकते हैं तथा, ऐसी राजनीतिक व्यवस्था में संविधानवाद राजनीतिक शक्ति का संगठक नहीं रहता। इससे स्पष्ट है कि संविधान द्वारा हर राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक शक्ति का संगठन होना आवश्यक है, क्योंकि संविधावाद की अभिव्यक्ति संविधान द्वारा व इसकी व्यवहार में प्राप्ति सरकार द्वारा ही सम्भव है।

कोई भी संविधान राजनीतिक शक्ति का संगठक उसी अवस्था में रहता है जबकि संविधान द्वारा यह व्यवस्था हो कि सरकार के कार्य अधिकार-युक्त रहें, तथा सरकार स्वयं वैध्य रहे। संविधान सरकार को अधिकारयुक्त उसी अवस्था में बना सकता है जब यह सरकार के प्रतिष्ठित आधारों तथा सहमतियुक्त प्रक्रियाओं का विवेचक व प्रतीक हो। ऐसा न होने पर राजनीतिक समाज परस्पर विरोधी दावों से उत्पन्न कर, सरकार की शक्ति को क्षीण करता हैं जब कभी संविधान समाज के मूलभूत मूल्यों के मतैक्य पर आधारित हो, इस प्रकार के मतैक्य का प्रतीक रहे और ऐसे मतैक्य का पोषक बने तो सरकार अधिकार युक्त बनती है। ऐसी संवैधानिक व्यवस्था पर आधारित सरकार का विरोध नहीं होता है। समाज, संविधान व सरकार में पारस्परिकता, सहयोग व अनुकूलता रहती है। सरकार के कार्य अधिकृत (authoritative) रहते हैं तथा संविधान जन-मानस में व जनता के दिलों में समाई मान्यताओं को प्रतिबिम्बित करता है। इसका यह अर्थ भी नहीं है कि सरकार अधिकार-युक्त बनी रहने के लिए मूलभूत मसलों पर जनता के मतैकय की अभिव्यक्ति मात्र ही करती रहे, वरन् सरकार को इससे अधिक भी कुछ करना होता है। सरकार को ऐसी कार्य-शैली की स्थापना करनी होती है जिससे इसके प्रति विश्वास जागृत हो और लोगों में इसके प्रति निष्ठा व राजभक्ति बनी रहे। सरकार को इस प्रकार कार्यरत रहना चाहिए जिससे इसकी क्रियाओं व कार्य-कलापों द्वारा संविधान में निहित धारणाओं व मूल्यों को प्रभावशाली व प्रतीकात्मक (symbolic) रहती है, अपितु सरकार की अधिकारयुक्तता व्यवहारिक भी बनती है। यह तभी सम्भव होता है जब सरकार का संगठक संविधान, केवल मान्य सिद्धान्तों का सामान्य विवेचन ही नहीं करे, अपितु सरकार की वास्तविक कार्य-प्रणाली की सुस्पष्ट व्याख्या व व्यवस्था भी करे। साथ ही

नोट

संविधान सरकार से सम्बद्ध प्रतिमानों, मूल्यों व प्रिय अवधारणाओं का प्रभावी प्रतीक भी बने जिससे लोगों के दिल और दिमाग में सरकार के प्रति निष्ठा में विद्यमान रहती है। केवल वही सरकार अन्ततः वैध बन सकती है जो जनसाधारण की निष्ठा व विश्वास प्राप्त रखते हुए संचालित होती है।

अगर सरकार अधिकारयुक्त व वैधतापूर्ण नहीं रहती तो संविधान न राजनीतिक शक्ति का संगठक रहे और न ही ऐसी व्यवस्था में संविधानवाद सजीव होगा इसलिए संविधानवाद के आवश्यक तत्त्व के रूप में संविधान का राजनीतिक शक्ति का संगठक रहना अनिवार्य है जिससे सरकार वैध रहे और संविधानवाद, अभिव्यक्ति वह व्यावहारिक रूप में राजनीतिक समाज में व्याप्त रहे।

निष्कर्ष रूप में यह कहना उचित होगा कि संविधानवाद के उपरोक्त वर्णित चारों तत्त्व संविधान में निहित होने चाहिए। अगर किसी राज्य के संविधान में संविधानवाद के इन तत्त्वों का समावेश नहीं होता तो वह संविधान संविधानवाद सम्भव नहीं हो सकता।

संविधानवाद के अर्थ, आधार व तत्त्वों के विवेचन से स्पष्ट है कि संविधानवाद की कुछ विशेषताएँ होती हैं यद्यपि हर राजनीतिक व्यवस्था में अनुपमता व विचित्रता विद्यमान होती है, और इससे संविधान का भी विशिष्ट होना अनिवार्य हो जाता है। संविधान का अनोखापन, संविधानवाद में भी विशिष्टता ला देता हो ऐसा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि संविधानवाद तो राजनीतिक समाज के मूल्यों, मान्यताओं और आस्थाओं को संरक्षण प्रदान करने की नियंत्रण व्यवस्था है। इसलिए संविधानवाद अन्तरभूतकारी धारणा है, जो ऐसी विशेषताओं से युक्त दिखाई देता है, जो कम या अधिक मात्रा में हर राजनीतिक समाज में व्याप्त संविधानवाद में पाई जाती है।

संविधानवाद की सामान्य विशेषताएँ (General Characteristics of Constitutionalsim)

संविधानवाद किसी भी देश या समाज विशेष का हो उसकी कुछ सामान्य विशिष्टताएँ होती हैं, जो कम या अधिक मात्रा में हर संविधानवाद में परिलक्षित होती हैं। संविधानवाद की धारणा को और अधिक अच्छी तरह समझने के लिए यह उपयुक्त होगा कि उसकी कुछ कतिपय सामान्य विशेषताओं को भी देख लिया जाए।

(क) संविधानवाद मूल्य-सम्बद्ध अवधारणा है (Constitutionalism is a value based concept)– संविधानवाद का सम्बन्ध राष्ट्र के जीवन दर्शन से है। यह उन मूल्यों, विश्वासों व राजनीतिक आदर्शों की ओर संकेत करता है जो राष्ट्र के हर नागरिक को प्रिय है। जो हर राष्ट्र का जीवन आधार होते हैं। यह संवैधानिक दर्शन, राजनीतिक समाज को अभिजनों (elites) द्वारा प्रदान किया जाता है परन्तु यह दर्शन अभिजनों तक ही सीमित नहीं रहता है। समाज का विचारशील वर्ग इसे जनता तक पहुँचाता है, और समाज स्वीकार कर इसे न केवल बल प्रदान करता है, वरन इसे सही अर्थों में 'राष्ट्र-दर्शन' बनाता है। पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि संविधानवाद के मूल्यों में देश की परम्पराओं, परिस्थितियों, आवश्यकताओं व समस्याओं का कोई योग नहीं होता है। केवल अभिजन ही समाज को मूल्य नहीं प्रदान करते हैं, क्योंकि बुद्धिजीवी स्वयं वातावरण के शिशु होते हैं। उनके द्वारा प्रदत्त मूल्यों पर वातावरण की छाप होती है। इस प्रकार संविधानवाद हर देश में एक नहीं अनेक स्रोतों से निर्मित मूल्यों से युक्त धारणा हैं यह वे मूल्य हैं जो समाज को प्रिय है, और जिनकी रक्षा, प्राप्ति और आवश्यक प्रगति के लिए समाज बड़े से बड़ा बलिदान करने के लिए तत्पर रहता है। इन्हीं से युक्त धारणा संविधानवाद कहलाती है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि हर संविधानवाद का सम्बन्ध मूल्यों से है और इसलिए ही यह मूल्य-सम्बद्ध अवधारणा कही जाती है।

(ख) संविधानवाद संस्कृति सम्बद्ध अवधारणा है (Constitituionalism is a culture-bound concept)– किसी भी राजनीतिक समाज के मूल्यों का विकास व निर्माण शून्य में नहीं होता है ये समाज की संस्कृति से सम्बद्ध होते हैं हर देश के आदर्श मूल्य व विचारधाराएँ उस देश की संस्कृति की ही उपज होती है, और संस्कृति से ही गठबन्धित रहते हैं। वह समय, स्थान व जनता के साथ बंधे होते हैं। संविधानवाद इन्हीं पर आधारित कहा जा सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि संविधानवाद की धारणा हर जगह व स्थान विशेष की संस्कृति से सम्बद्ध पाई जाती है। संविधानवाद का संस्कृति-सम्बद्ध होना इसमें वास्तविकता लाता है और इसे अर्थयुक्त बनाता है। वर्तमान युग में कई

नोट

राजनीतिक समाज इतने विशाल होते हैं कि उनमें संस्कृतियों की विविधता और भिन्नता पाई जाती है। ऐसे राष्ट्रों में संविधानवाद इन विभिन्न संस्कृतियों के समन्वय का सूचक है। उनमें संघर्ष तथा विरोध के स्थान पर सहयोग और सामंजस्य की व्यवस्था संविधानवाद द्वारा ही होती है। यह एक राज्य की सभी संस्कृतियों के विकास व सुरक्षा की सबसे अधिक सुव्यवस्था है, क्योंकि संविधानवाद इन सभी संस्कृतियों से सम्बद्ध होता है व इनसे समृद्ध और शक्तियुक्त बनता है। अत: यह कहा जाना चाहिए कि संविधानवाद का ताना-बाना हर देश की संस्कृति से गुंथा रहता है।

(ग) संविधानवाद गत्यात्मक अवधारणा है (Constitutionalism is a dynamic Concept)– संविधानवाद गतिहीन धारणा नहीं है पर इसका यह अर्थ भी नहीं कि संविधानवाद में स्थिरता नहीं होती है। संविधानवाद में यही सबसे विशिष्ट बात है कि इसमें स्थायित्व के साथ ही साथ गत्यात्मकता भी पाई जाती है यही कारण है कि यह प्रगति में बाधक नहीं, प्रगति का साधक बना रहता है। विकास के लिए स्थायित्व भी अति आवश्यक है, अन्यथा विकास की दिशाओं में क्रम नहीं रहेगा। अत: संविधानवाद की धारणा स्थिरता-युक्त गत्यात्मकता का सूचक है। इसकी गतिशील प्रकृति अति-आवश्यक है, क्योंकि समय परिवर्तन के साथ मूल्यों में परिवर्तन आता है, तथा संस्कृति विकसित होती है। इसी से संविधानवाद गत्यात्मकता प्राप्त करता है। इससे स्पष्ट है कि संविधानवाद गत्यात्मक अवधारणा है यहाँ यह भी समझना जरूरी है कि संविधानवाद किसी समाज के उन मूल्यों व आस्थाओं का, जो जनता को एक समय विशेष में प्रिय है, प्रतीक मात्र ही नहीं है यह नये मूल्यों की स्थापना व प्राप्ति का माध्यम भी है। यह समाज के वर्तमान में प्रिय मूल्यों के साथ ही उसकी भविष्य की आकांक्षाओं का प्रतीक भी होता है। इससे यह गत्यात्मक अवधारणा बन जाता है। इसलिए कार्ल जे. फ्रेड्रिक ने संविधानवाद को विकास की प्रक्रिया कहा है।

(घ) संविधानवाद समभागी अवधारणा है (Constitutionalism is a shared concept)– एक राष्ट्र के मूल्य, विश्वास एवं राजनीतिक आदर्श व संस्कृति के प्रति अन्य देशों में भी निष्ठा हो सकती है। अत: कई देशों के राजनीतिक आदर्श, आस्थाएँ व मान्याएँ समान हो सकते हैं। ऐसे देशों में संविधानवाद आधारभूत समानताएँ रखता है। जैसे पाश्चात्य संस्कृति वाले देशों में संविधानवाद में समानता पाई जाती है। इस प्रकार की समानता में प्रकार का अन्तर नहीं होता यद्यपि मात्रा का अन्तर हर देश के संविधानवाद में दिखलाई देता है। यह अन्तर साम्यवादी देशों में भी पाया जाता है, पर यहाँ भी अन्तर केवल मात्रा का ही होता है प्रकार का नहीं होता। इससे स्पष्ट है कि हर देश का अपना अलग मौलिक संविधानवाद नहीं होता है। विकासशील लोकतान्त्रिक देशों में, यद्यपि असमानताएँ अधिक होती हैं तथा हर देश अपना अलग राष्ट्रीय अहं (national ego) बनाने के लिए मौलिक जीवन दर्शन की स्थापना का प्रयत्न करता है, और इन देशों में संस्कृति में भी भिन्नता का अधिक पुट होता है, फिर भी इन देशों में मोटे रूप से संविधानवाद एक-सा ही कहा जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि संविधानवाद समभागी धारणा है।

(ङ) संविधानवाद प्रधानत: साध्य मूलक अवधारणा है (Constitutionalism is predominantly an ends concept)– संविधानवाद प्रधानत: साध्यों से सम्बन्धित विचार है परन्तु साध्य मूलक विचार पूर्णतया साधनों की अवहेलना नहीं कर सकता। अत: इनमें भी अंतर प्रकार नहीं केवल मात्रा का रह जाता है। वैसे भी साधनों व साध्यों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। फिर भी संविधानवाद से प्रमुखतया लक्ष्यों का ही संकेत मिला है। जब हम यह कहते हैं कि संविधानवाद साध्य-प्रधान विचार है तो उसका अर्थ उन आदर्शों से है जिन्हें समाज साध्य के रूप में अंगीकार करता है। इस प्रकार संविधानवार का साध्यों की ओर प्रमुख संकेत होता है और साधनों की ओर गौण संकेत ही होता है।

(च) संविधानवाद सामान्यतया संविधानजन्य अवधारणा है (Constitutionalism is generally a constitution based concept)– साधारण परिस्थितियों में हर देश की मूलभूत आस्थाओं का उस देश के संविधान में ही उल्लेख होता है पर कई बार ऐसा भी होता है कि संविधानवाद के आदर्शों का प्रतिबिम्ब संविधान में नहीं मिलता है। दोनों में, अर्थात् संविधान व संविधानवाद में, साम्य नहीं होता है। दोनों की, ऐसी अवस्था में, अलग-अलग दिशाएँ होतीं है। यह अवस्था देश में शासकों व शासितों की राजनीतिक मान्यताओं में विरोध और मतभेद का संकेत करती है। इस अवस्था में राजनीतिक उथल-पुथल अवश्यंभावी बन जाती है। यह राजनीतिक संकट का संकेत है, परन्तु यह तो असाधारण परिस्थितियों में ही होता है। सामान्य परिस्थितियों में हर लोकतांत्रिक राजनीतिक समाज के मूल्यों व गन्तव्यों का संविधान

नोट

में स्पष्ट उल्लेख किया जाता है, परन्तु यह तो असाधारण परिस्थितियों में ही होता है। सामान्य परिस्थितियों में हर लोकतांत्रिक राजनीतिक समाज के मूल्यों व गन्तव्यों का संविधान में स्पष्ट उल्लेख किया जाता है। ऐसे संविधान पर ही संविधानवाद आधारित रहता है। यही उन संस्थागत प्रक्रियाओं का संगठन व स्थापना करते हैं जिनसे संविधानवाद व्यावहारिक व वास्तविक बनता है। अत: संविधान, संविधानवाद के लिए वह आधारशिला प्रस्तुत करता है जिसमें संविधान की नींव ठोसता से जमी रह सकती है।

हर संविधानवाद में यह सामान्य विशिष्टताएँ विद्यमान होती हैं। यह विशेषताएँ हर देश में कम या अधिक मात्रा में संविधानवाद के आधार के रूप में पाई जाती हैं। एक संविधानवाद से दूसरे संविधानवाद में इन विशिष्टताओं में भिन्नता केवल मात्रा की ही होती है, प्रकार की नहीं होती।

संविधानवाद के अर्थ, आधार, तत्त्वों व सामान्य विशेषताओं की जानकारी के बाद इसकी विभिन्न अवधारणाओं की जानकारी आवश्यक है, कुछ राज्यों में संविधानवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता, राजनीतिक समानता, सामाजिक व राजनीतिक न्याय तथा लोक कल्याण की साधना का आदर्श रखता है, तो कुछ राज्यों में आर्थिक समानता और समाज के एक ही गन्तव्य में आस्था आधारभूत मूल्य माना जाता है। इनकी प्राप्ति के लिए अपनाए गये साधन भी अलग-अलग राज्यों में, अलग-अलग प्रकार के होते हैं।

3.2 संविधानवाद की अवधारणाएँ: उदारवादी और मार्क्सवादी धारणा (Concept of Constitutionalism: Liberal and Marxist Notions)

पिनोक व स्मिथ, कार्ल जे. फ्रैड्रिक और कुछ अन्य पाश्चात्य विचारकों की मान्यता है कि संविधानवाद की केवल एक ही धारणा है। उनके अनुसार उदार लोकतंत्रों की अवधारणा ही संविधानवाद की सही व्याख्या होती है, परन्तु यह मान्यता ठीक नहीं है। अगर संविधानवाद, राजनीतिक समाज के आदर्शों, राजनीतिक मान्यताओं और मूल्यों का, जो किसी राष्ट्र का आधार है, और जिन्हें राष्ट्र व्यवहार में प्राप्ति का लक्ष्य रखता है, का ही बोध कराता है। तब यह आदर्श तथा इन आदर्शों की प्राप्ति के लिए प्रयोग में आने वाले साधन, अलग-अलग प्रकार का होना स्वाभाविक है। इनकी भिन्नता व इनकी प्राप्ति के लिए अपनाए जाने वाले साधनों की भिन्नता के आधार पर संविधानवाद की भिन्नता स्पष्ट की जा सकती है। मोटे तौर पर उद्देश्यों व उद्देश्यों की प्राप्ति के साधनों के आधार पर संविधानवाद की तीन अवधारणाएँ हो सकती हैं।– (1) उदार लोकतंत्रों की धारणा, (2) साम्यवादी या समाजवादी लोकतंत्रों की धारणा, तथा (3) नवोदित या विकासशील लोकतन्त्रों की धारणा।

उदारवादी धारणा (Liberal Notions)

उदार लोकतन्त्रों की अवधारणाओं को पाश्चात्य संविधानवाद भी कहा जाता है। इसकी मुख्य विशेषता व्यक्ति की स्वतंत्रता की साधना है। व्यक्ति की स्वतंत्रता के अलावा, राजनीतिक समानता, सामाजिक व आर्थिक न्याय तथा लोककल्याण की साधना पाश्चात्य संविधानवाद के आधारभूत साध्य है। यह सामाजिक व आर्थिक समानता व स्वतन्त्रता पर बल नहीं देता है। स्वतंत्रता और समानता के सामाजिक व आर्थिक पहलुओं पाश्चात्य संविधानवाद के साध्यों में अभाव ही इसको साम्यवादी अवधारणा से अलग धारणा बनाता है। साम्यवादी धारणा में यह मूल्य प्रधानता रखते हैं परन्तु पाश्चात्य अवधारणा में तो व्यक्ति की स्वतन्त्रता को मौलिक मूल्य माना जाता है और इसलिये ही पाश्चात्य संविधानवाद को 'उदारवाद का दर्शन' भी कहा जाता है।

पाश्चात्य अवधारणा में संविधानवाद के आधारभूत साध्यों की व्यावहारिकता के लिए सरकार की शक्तियों को विभाजित करके राजनीतिक क्रिया को प्रभावशाली ढंग से प्रतिबन्धित व नियन्त्रित करने की व्यवस्थाएँ की जाती हैं, जिससे सरकार का कोई भी अंग, राजनीतिक शक्ति का दुरुपयोग नहीं कर सके, व राष्ट्र के राजनीतिक मूल्य सुरक्षित व स्थायी बने रह सकें। पिनोक व स्मिथ तो "पाश्चात्य संविधानवाद का अन्तर्भाग (core) प्रतिबन्धों की व्यवस्था" को ही मानते हैं। इन प्रतिबन्धों की स्थापना उदार लोकतांत्रिक राज्यों में राजनीतिक शक्ति का संस्थाकरण करके की जाती है, अर्थात राजनीतिक शक्ति व्यक्तियों के स्थान पर संस्थाओं में निहित की जाती है पश्चिमी समाजों की यह मान्यता है कि शक्ति,

नोट

व्यक्ति के स्थान पर संस्थाओं में निहित होने से उसका प्रयोग किसी व्यक्ति विशेष की इच्छा से न होकर संस्थागत विधियों व प्रक्रियाओं द्वारा होगा तथा शक्ति का विधि के अनुरूप प्रयोग, इसके दुरुपयोग की प्रभावशाली बचाव व्यवस्था बन जाएगी। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि उदार लोकतन्त्रों में संविधानवाद का प्रमुख आधार संस्थागत व प्रक्रियात्मक प्रतिबन्धों से नियंत्रित सरकार है। यह प्रतिबन्ध ही राजनीतिक शक्ति द्वारा व्यक्ति की स्वतंत्रता के हनन से बचाव व्यवस्था करते हैं। इसलिये पाश्चात्य संविधानवाद में राजनीतिक शक्ति पर सुनिश्चित नियत्रण व्यवस्था ही मूल तत्त्व है। पाश्चात्य संविधानवाद में साध्य तत्त्व 'व्यक्ति की स्वतंत्रता' और साधन तत्त्व 'सरकार' है। उदार लोकतंत्रो में संविधानवाद को व्यक्ति की स्वतंत्रता की धुरी के इर्द–गिर्द घूमता हुआ कहा जाय तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। संविधानवाद की इस अवधारणा के कुछ विशिष्ट आधार हैं।

साम्यवादी अथवा मार्क्सवादी धारणा (Socialist or Marxist Notions)

राजनीति शक्ति के दुरुपयोग को रोकने के लिए सरकार पर नियंत्रण की व्यवस्थाएँ, संविधानवाद की पाश्चात्य अवधारणा का मूल है। इस तथ्य को साम्यवादी राज्य भी स्वीकार करते हैं, पर नियंत्रणों के लिए उनकी संस्थात्मक व्यवस्थाएँ संवैधानिक आधार नहीं रखती हैं। इस अवधारणा में नियंत्रण व्यवस्थाओं की भिन्नता को समझने के लिए यह समझना आवश्यक है कि साम्यवादी सरकार तथा राजनीतिक शक्ति से क्या तात्पर्य लेते हैं। साम्यवाद की सरकार व शक्ति की अलग धारणा ही, साम्यवादी अवधारणा को, संविधानवाद की पाश्चात्य अवधारणा से भिन्न बनाती है।

साम्यवादी 'सरकार' को पूंजीपतियों के हाथ की कठपुतली मानते हैं, जो 'धनिक वर्ग' की गरीब वर्गों से रक्षा का ही कार्य करती है। उनके अनुसार राजनीतिक शक्ति का आधार आर्थिक शक्ति है जिनके हाथ में आर्थिक शक्ति होगी उसी के हाथ में राजनीतिक शक्ति भी आ जाएगी। इसलिये पूंजीपति ही राजनीतिक शक्ति के धारक व संचालक होते हैं। उत्पादन के प्रमुख साधन व आर्थिक शक्ति, पूंजीवादी व्यवस्था में केवल कुछ लोगों के हाथ में रहती है, जो इसका प्रयोग अपने ही हितों की रक्षा और सम्मान की वृद्धि में करते हैं। अत: साम्यवादी यह मानते हैं कि पाश्चात्य देशों में राजनीतिक शक्तियों का प्रयोग तथा मौलिक अधिकारों के रूप में उपलब्ध सुविधाओं का उपयोग, जनसाधारण नहीं, केवल धनिक वर्ग ही करता है। यह संविधानवाद की, पाश्चात्य जगत में औपचारिकता मात्र का सूचक है, क्योंकि आर्थिक शक्ति युक्त वर्ग, सम्पूर्ण राजनीतिक तन्त्र का संचालक व नियंत्रक होता है। राजनीतिक शक्ति वास्तव में इसी वर्ग के अधीन रहती है। इसलिये पाश्चात्य संविधानवादी राज्यों में राजनीतिक शक्ति पर नियंत्रण व्यवस्थाएँ खोखली होती हैं।

साम्यवादी, इस कारण ऐसी नियंत्रण व्यवस्थाओं व संस्थाओं की स्थापना करते हैं जिससे आर्थिक शक्ति कुछ वर्गों के स्थान पर सब व्यक्तियों के हाथ में रहे। उनकी धारणा है कि, अगर आर्थिक शक्ति महत्त्वपूर्ण समाज में निहित होगी तो राजनीतिक शक्ति भी सम्पूर्ण समाज के नियंत्रण में आ जाएगी। साम्यवादियों के अनुसार आर्थिक शक्ति, अन्य सभी प्रकार की शक्तियों से सर्वोपरि होती है तथा राजनीतिक शक्ति के सम्पूर्ण संस्थागत व प्रक्रियात्मक साधन इसी के अधीन रहते हैं। संविधानवाद की व्यावहारिकता तभी सम्भव हो सकती है जब नियंत्रण आर्थिक शक्ति पर लगे हों। उनके अनुसार आर्थिक शक्ति पर नियंत्रण स्वत: ही राजनीतिक शक्ति को भी नियंत्रित कर देते हैं। अत: संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा का स्पष्टीकरण साम्यवाद की आधारभूत मान्यताओं के संदर्भ में ही किया जा सकता है। यह मान्यताएँ निम्नलिखित हैं – (1) सामाजिक जीवन में शक्ति के आर्थिक पहलू की सर्वोच्चता (2) समाज में आर्थिक शक्ति से सम्पन्न वर्ग का प्रभुत्त्व और (3) राजनीतिक शक्ति का आर्थिक शक्ति के अधीन होना।

(1) साम्यवादियों की मान्यता है कि सामाजिक जीवन में शक्ति के आर्थिक पहलू की सर्वोपरिता ही महत्त्वपूर्ण होती है। इससे मनुष्य का सम्पूर्ण सामाजिक जीवन संचालित होता है तथा जिस वर्ग के हाथ में आर्थिक शक्ति होती है वह वर्ग अन्य वर्गों पर आधिपत्य जमाकर, उन्हें अपने लिए कार्य करने को बाध्य करता है। यह अवस्था वर्ग–संघर्ष व शोषण का आधार बनती है। साम्यवादियों को पाश्चात्य समाज की भांति आर्थिक शक्ति पर कुछ व्यक्तियों का नियंत्रण स्वीकार नहीं है। उनके अनुसार यह शक्ति सब व्यक्तियों के हाथ में रहनी चाहिये जिससे वर्ग–संघर्ष, शोषण इत्यादि की परिस्थितियाँ उत्पन्न न हों।

(2) आर्थिक शक्ति की सर्वोपरिता का तर्कसंगत परिणाम आर्थिक शक्ति–युक्त वर्ग का प्रभुत्व की अवस्था में होना

नोट

है। यह राजनीतिक शक्ति की गौणता का सूचक है। अत: व्यवहार में राजनीतिक शक्ति प्रभुतायुक्त नहीं रहती है। व्यवहार में सम्पूर्ण समाज आर्थिक शक्ति के निर्देशन में चलने के लिए बाध्य हो जाता है, और आर्थिक शक्ति सम्पूर्ण समाज पर छाई सी रहती है।

(3) आर्थिक शक्ति की सर्वोपरिता तथा समाज में इससे सम्पन्न वर्ग का प्रभुत्व, राजनीतिक शक्ति को भी इसके अधीन बना देता है। समाज में विद्यमान सभी संस्थाएँ आर्थिक शक्ति के समक्ष नतमस्तक रहती हैं। अत: नियंत्रण राजनीतिक शक्ति पर नहीं, बल्कि आर्थिक शक्ति पर लगाए जाने चाहिए। यही कारण है कि साम्यवादी सरकार को, सामाजिक व्यवस्था में विशेष महत्ता प्रदान नहीं करते और इसे आर्थिक शक्ति-युक्त वर्ग के हाथ की कठपुतली मानते हैं।

साम्यवाद की प्रमुख धारणाओं के विवेचन से स्पष्ट है कि साम्यवादी राजनीतिक शक्ति के नियंत्रण के स्थान पर आर्थिक शक्ति के नियंत्रण को परमावश्यक मानते हैं। इसलिये इनके नियंत्रणों की व्यवस्था व साधन पाश्चात्य राजनीतिक समाजों में व्यवस्थित नियंत्रणों से भिन्न प्रकार के हैं। साम्यवादी समाजों में प्रतिबन्धों व नियंत्रणों की संस्थात्मक व्यवस्था का मुख्य लक्ष्य आर्थिक शक्ति को सार्वजनिक सत्ता के आधिपत्य में रखना है। आर्थिक शक्ति को सार्वजनिक सत्ता के अधीन बनाने के लिए साम्यवादी समाजों में प्राय: इन संस्थागत व्यवस्थाओं को प्रमुखता दी जाती है– (अ) उत्पादन तथा वितरण के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व (ब) सम्पत्ति का समान वितरण और (स) साम्यवादी दल का एकाधिकार।

(अ) साम्यवादी विचारधारा की आधारभूत मान्यता है कि उत्पादन व वितरण के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व आर्थिक शक्ति को अन्तत: कुछ व्यक्तियों में केन्द्रित कर देता है। आर्थिक शक्ति के इस प्रकार के केन्द्रण से वर्ग-संघर्ष उत्पन्न होता है। इससे आर्थिक शक्ति-युक्त वर्ग, इस शक्ति से रहित वर्ग का दमन व शोषण करने लगता है। राजनीतिक शक्ति भी इन्हीं के हाथों में केन्द्रित होने के कारण, समाज के बहुसंख्यक नागरिक अपनी राजनीतिक मान्यताओं, आदर्शों व मूल्यों के स्थान पर पूंजीपतियों द्वारा आरोपित आदर्शों व मूल्यों को मानने व अपनाने के लिए बाध्य हो जाते हैं। ऐसी सामाजिक अवस्था को साम्यवादी, संविधान की सही अभिव्यक्ति नहीं मानते हैं। इसलिये उनका कहना है कि संविधानवाद को वास्तव में व्यावहारिक बनाने के लिए, संविधानवाद की मान्यताओं के प्रकाशन के रास्ते में आने वाली रुकावटें दूर की जानी चाहिए। उनकी धारणा है कि यह रुकावटें उत्पादन व वितरण के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व की व्यवस्था करने पर ही दूर हो सकती हैं। अत: साम्यवाद की मान्यता में संविधानवाद के मूल लक्ष्य व साध्य तब तक व्यावहारिक नहीं बन सकते जब तक उत्पादन व वितरण के साधनों का स्वामित्व सम्पूर्ण समाज में निहित नहीं हो। उत्पादन व वितरण के साधनों का सामाजिक स्वामित्व शक्ति के आधारों को सामाजिक रूप दे देते हैं जिससे सम्पूर्ण समाज शक्ति के दुरुपयोग से बचाव की व्यवस्था बन जाता है।

(ब) उत्पादन व वितरण के साधनों का सामाजिक स्वामित्व सम्पत्ति के समाज वितरण की व्यवस्था अनिवार्य बना देता है। सम्पत्ति का बराबर वितरण होने से, सम्पत्ति संघर्ष का कारण नहीं बनती है, और समाज में असमानता को जन्म नहीं दे पाती आर्थिक साधनों का सम्पूर्ण समाज में विद्यमान होना, समाज को उन बन्धनों से मुक्त करता है, जो संविधान की मान्यताओं की उपलब्धि में रुकावटें डालते हैं। आर्थिक दृष्टि से ऐसे समानता वाले समाज में ही संविधानवाद व्यावहारिक बनता है।

(स) आर्थिक समानता वाले समाज में कोई वर्ग-विभेद या अलग-अलग हित नहीं होते हैं और इसलिये वर्गों के विशिष्ट हितों का प्रतिनिधित्व व सुरक्षा करने के लिए अनेक राजनीतिक दल बनने की परिस्थितियाँ नहीं होती हैं। वर्ग-विहीन समाज में राजनीतिक दलों की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। यही कारण है कि साम्यवाद राजनीतिक दलों की अनेकता को स्वीकार नहीं करता। परन्तु साम्यवादी समाज के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समाज का नेतृत्व व निर्देशन होना आवश्यक है जिससे समाज के सम्पूर्ण साधनों व शक्तियों में समन्वय रखा जा सके और साध्यों की पूर्ति की सुव्यवस्था की जा सके। इसके लिए एक ही राजनीतिक दल की आवश्यकता होती है जिसे राजनीतिक शक्तियों के प्रयोग, निर्देशन व नियंत्रण का एकाधिकार प्राप्त हो। साम्यवादी दल की स्थापना व उसका ही एकाधिकार साम्यवादी समाजों का एक प्रमुख लक्षण है। नागरिक व समाज तथा सरकार में उद्देश्यों व लक्ष्यों का कोई विरोध या भिन्न दिशा न होने के कारण, ऐसे ही उद्देश्य-लक्ष्य रखने वाला साम्यवादी दल, इन सबका सच्चा प्रतिनिधित्व करता है और सबके हित में राजनीतिक शक्तियों का प्रयोग सम्भव बनाता है। ऐसा राजनीतिक दल, शोषण व दमन का प्रतीक नहीं होता

नोट

है, वरन् सार्वजनिक हित की साधना का साधन रहता है। इस प्रकार, साम्यवादी समाज व्यवस्था में वर्ग-भेद न होने के कारण दल-भेद भी नहीं होता है। समाज का एक ही वर्ग होता है- किसानों व मजदूरों का वर्ग और इसका निर्देशक एक ही दल-साम्यवादी दल है।

स्पष्ट है कि संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा में समाज के मूल्यों, राजनीतिक आदर्शों व आस्थाओं की प्राप्ति के साधन, पाश्चात्य संविधान की अवधारणा से न केवल भिन्न प्रकार के हैं, अपितु उन आधारभूत कारणों का, जिनसे समाज में असमानता का उद्भव होता है, अंत करने वाले भी हैं। साम्यवादियों की मान्यता है कि संविधानवाद को वास्तविकता के पुट से युक्त करने के लिए ऊपर ही ऊपर की गई नियंत्रण व्यवस्थाएँ प्रभावशाली नहीं हो सकतीं। इनके लिए ऊपरी रूकावटों को दूर करने के स्थान पर आधारभूत व्यवस्था में ही परिवर्तन अनिवार्य है। उनके अनुसार उत्पादन व वितरण के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व व सम्पत्ति का समान वितरण ऐसी आधारभूत व्यवस्थाएँ हैं जो राजनीतिक शक्ति के दुरुपयोग को प्रभावशाली ढंग से रोकती है, और संविधानवाद के आदर्शो को व्यवहार में कुछ लोगों को नहीं, सब नागरिकों को उपलब्ध कराती है। इसके अलावा भी, साम्यवादी जगत में उन सभी औपचारिक संस्थाओं को, जो पाश्चात्य संविधानवादी व्यवस्था वाले समाजों में, राजनीतिक शक्ति पर नियंत्रण स्थापना के लिए व्यवस्थित की जाती है, संविधान में अपनाया गया है। जैसे संविधान को लिखित, अचल व सर्वोच्च बनाया जाता है। राजनीतिक शक्तियों का विभाजन व पृथक्करण पाया जाता है। नागरिकों को मौलिक अधिकार व कर्तव्य संविधान द्वारा प्रदान किये जाते हैं, और सरकार का लगातार उत्तरदायित्व रहे इसके लिए संस्थागत व्यवस्था की जाती है। इतना ही नहीं, 'विधि के शासन' का दिखावा भी कानूनी दृष्टि से सुस्थापित किया जाता है। यह संवैधानिक व्यवस्थाएँ, राजनीतिक शक्ति पर प्रभावशाली नियंत्रण लगाकर उसके दुरुपयोग पर अंकुश का काम करने वाली हैं। इसलिये यह कहा जाता है कि साम्यवादी राज्यों में ही वास्तविक लोकतंत्र है तथा संविधानवाद की व्यावहारिकता की ठोस व्यवस्था है। विलियम जी. ऐन्ड्रूज लिखते हैं कि "प्रक्रियात्मक संविधानवाद की दृष्टि से रूस का संविधान, उन सभी संसदीय संस्थाओं की, जो पाश्चात्य देशों में प्रचलित हैं, स्थापना करता है, और उनके आपसी सम्बन्धों को भी ठीक इसी तरह मर्यादित करता है। संविधान में कई ऐसी व्यवस्थाएँ हैं जो पाश्चात्य के अनुरूप ही शक्ति नियंत्रण के मानक व प्रक्रियात्मक नियमितताएँ स्थापित करती हैं। रूस के संविधान मे नागरिकों के मौलिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं की सुव्यवस्थित रक्षा व्यवस्था है, विभित्र शासन सत्ताओं के पारस्परिक सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या है, तथा सार्वजनिक नीति के निर्धारण व क्रियान्वयन का प्रक्रियात्मक अनुबन्ध है। इन सब बातों में यह पाश्चात्य् लोकतांत्रिक संविधानों से बिल्कुल भी भिन्न नहीं है।"

रूस तथा अन्य साम्यवादी संविधानों में पाई जाने वाली सभी संस्थात्मक व्यवस्याएँ संविधानवाद की स्थापना करती हुई दिखाई देती हैं। परन्तु वास्तव में, सोवियत रूस में संविधानवाद का अनुसरण नहीं होता है। रूस में राजनीतिक शक्ति के धारकों पर संवैधानिक नियंत्रणों की सभी संस्थात्मक व्यवस्थाएँ केवल 'औपचारिकता' मात्र हैं। रूस में नेताओं पर प्रभावशाली नियंत्रण संवैधानिक नहीं हैं। वहां नियंत्रणों की वास्तविक प्रक्रियाएँ संविधान द्वारा स्थापित व्यवस्थाओं से सर्वथा भिन्न हैं। विलियम जी. ऐन्ड्रूज ने ठीक ही लिखा है 'स्वयं संविधान में ही अनेक ऐसी धाराएँ हैं जिससे दल को, संवैधानिक आधार व संविधान द्वारा एकाधिकार प्राप्त हैं। इसने शासन नीति का सार्वजनिक नियंत्रण, संवैधानिक प्रक्रियाओं के माध्यम से भी दल में निहित हो जाता हैं। साम्यवादी दल ही सामाजिक स्वतंत्रताओं के उद्देश्यों की व्याख्या करता है और उनकी उपलब्धि के साधन जुटाता है।" अत: संविधान सरकार पर प्रभावी, नियंत्रणों की स्थापना की व्यवस्था नहीं करता है। संविधान में उल्लिखित नियंत्रण की संस्थागत व्यवस्थाएँ साम्यवादी दल की सर्वोपरिता तथा अंकुश के कारण केवल 'औपचारिकता' रह जाती है। यह सब संविधानवाद के विचार से बेमेल पड़ती है। इसलिये निष्कर्षत: विलियम जी. ऐन्ड्रूज का यह कहना सत्य लगता है कि "रूस का संविधान ही, संविधानवाद की अवधारणा के अनुरूप नहीं है।" जी. मेयर ने तो इसे "संविधान के विचार का ही तीक्ष्ण निषेध" बताया है।

साम्यवादी दल रूस में निर्णय लेने वाला संगठन है, जो सम्पूर्ण समाज के लिए न केवल मूलभूत नीतियों का निर्धारण करता है, अपितु समाज के लक्ष्यों की व्याख्या भी करता है। दल ही उन प्रक्रियाओं व संरचनाओं का निर्णायक है, जिनसे समाज के साध्यों की प्राप्ति तथा नीतियों का संचालन किया जाता है। ऐल्फ्रेड जी. मेयर ने ठीक ही

नोट

लिखा है कि ''साम्यवादी दल ही सरकार, प्रशासन तथा समाज के सम्पूर्ण संस्थात्मक जीवन को संगठित व पुनः संगठित करता है।'' यह सब कार्य साम्यवादी दल सर्वोच्च रूप में करता है। यह उन सभी संस्थाओं के प्रतिबन्धों से भी मुक्त रहता है, जो संविधान द्वारा स्थापित होती हैं। रूस में सम्पूर्ण राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक सत्ता का स्त्रोत साम्यवादी दल ही है। यही राजनीतिक नेताओं को शक्ति देता और उनसे छीनता है तथा 'राजनीतिक खेल' के नियमों का निर्धारण व उनमें परिवर्तन करता है। मेयर का तो यहाँ तक कहना है कि 'साम्यवादी दल सम्प्रभु के समान व्यवहार करता है, अपनी इच्छा से यह नेताओं को किराए पर रखता और हटाता है।' निष्कर्ष रूप में मेयर के शब्दों में ही कहा जा सकता है कि ''रूस का सम्पूर्ण संविधान एक धोखा है, यब क्रियान्वित नहीं होता है, और इससे राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति का सही चित्रण भी नहीं होता है।'' रूस का वास्तविक संविधान तो अलिखित व अदृश्य ही रहता है। अंत में यही कहा जा सकता है कि रूस का संविधान तो संविधानवाद का ही निषेध है, क्योंकि संविधानवाद तो 'राजनीतिक समाज में ही सम्भव हो सकता है। रूस का साम्यवादी दल, उसका प्रभुत्व व एकाधिकार इस सबकी स्थापना का मार्ग अवरुद्ध करके संविधानवाद को असम्भव बना देता है।

विकासशील लोकतन्त्रों की अवधारणा (The Concept of Developing Democretic Nations)

विकासशील देशों में संविधानवाद अभी तक अस्थायित्व के दौर से गुजर रहा है। इन देशों में राजनीतिक प्रक्रियाएँ संक्रमण की अवस्था में होने के कारण, संविधानवाद के आधार सुनिश्चित नहीं हो पाए हैं। विकासशील लोकतान्त्रिक समाजों में संविधानवाद की विशेषताओं का उल्लेख करने से पहले, उन विशिष्ट समस्याओं का विवेचन करना आवश्यक है, जिनसे संविधानवाद की अवधारणा, पाश्चात्य व साम्यवादी अवधारणाओं से भिन्न बनती है। इन देशों की समस्याएँ इतनी विविध और इतनी अधिक हैं, कि इन सबकी सूची बनाना अत्यन्त कठिन हैं। परन्तु मोटे तौर पर सभी विकासशील राजनीतिक व्यवस्थाओं में न्यूनाधिक मात्रा में कुछ समस्याएँ व्याप्त हैं। इनका संक्षिप्त विवेचन करके ही संविधानवाद की इन अवधारणाओं की विशेषताओं को समझा जा सकता है। हर नवोदित राजनीतिक समाज में निम्न समस्याएँ पाई जाती हैं-(1) राजनीतिक स्थायित्व की समस्या; (2) आर्थिक विकास की समस्या; (3) सुरक्षा की खोज; (4) राजनीतिक सत्ता की वैधता की समस्या; (5) सामाजिक-सांस्कृतिक साम्य का लक्ष्य; (6) आधुनिकीकरण में रुकावटों की समस्या; (7) राजनीतिक संरचना-विकल्पों के चुनाव की समस्या; और (8) अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा व अभिज्ञान की तलाश।

(1) अधिकांश विकासशील राज्य, साम्राज्यवादी शक्तियों के दमन व शोषण के शिकार रहे हैं। इन राज्यों में स्वतंत्रता की प्राप्ति के अनेक मार्ग रहे हैं। कहीं पर सत्ता का हस्तांतरण लम्बे राष्ट्रीय आंदोलन के बाद हुआ तो कहीं अचानक ही शांतिपूर्वक ढंग से सत्ता हस्तांतरित कर दी गई। भारत पहले का तथा श्रीलंका दूसरे का उदाहरण कहे जा सकते हैं। कुछ राज्यों में सशस्त्र संघर्ष व सैनिक आन्दोलनों के परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता मिली जैसे इन्डोनेशिया व अल्जीरिया में हुआ। अनेक ऐसे राज्य भी हैं जहां क्रांतियों द्वारा सेना ने सत्ता हथिया ली थी। अतीतकालीन अनुभवों की भिन्नता तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के मार्गों में आई अड़चनों की विविधताओं के कारण सभी नवोदित राज्यों में पेचीदगियां उत्पन्न हो गईं तथा प्रारम्भ से ही राजनीतिक सत्ता की छीना-झपटी के कारण नवोदित राज्यों में से अधिकांश, राजनीतिक अस्थायित्व से ग्रस्त हो गये। 'राजनीतिक खेल' के आधारभूत नियमों पर मतैक्य का अभाव, राजनीतिक दलों की अनेकता व जनता के असंतोष के कारण इन राज्यों में राजनीतिक अस्थायित्व व्याप्त हो गया। इससे इनमें संविधानवाद के चिरस्थायी मूल्य जन्म ही नहीं ले पाते हैं।

(2) आर्थिक विकास की समस्या, राजनीतिक अस्थायित्व की अवस्था में और भी जटिल बन जाती है। एक तरफ जनता उन्नत स्तर के लिए हर प्रकार की मांग करती है, तो दूसरी तरफ, तकनीकी व वैज्ञानिक जानकारी के अभाव में देश के साधनों का समुचित उपयोग नहीं हो पाता हैं। इससे जनता में असन्तोष उत्पन्न होता है, जो सरकारों को बार-बार बदलकर संविधानवादी आधारों को ही धराशायी कर देता है।

(3) नवोदित राजनीतिक समाजों में अधिकांशतः बहुल समाज है। अनेक धर्म, संस्कृतियाँ व राष्ट्रीयताएँ होने के कारण राजनीतिक व्यवस्था पर परस्पर विरोधी दबाव पड़ते रहते हैं जिससे समाज में तनाव की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं।

नोट

इस कारण सरकारों पर आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण दायित्व इतना अधिक बोझ बन जाता है कि बहुत से राज्यों में सरकारें इसकी व्यवस्था में ही उलझी रह जाती हैं। बाहरी आक्रमण के खतरे भी कम नहीं रहते हैं। कई बार आंतरिक सुरक्षा में जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिए देशों द्वारा पड़ोसी राज्यों पर आक्रमण तक किये गये हैं। इस तरह, अनेक विकासशील राज्यों में सरकारें सुरक्षा की व्यवस्था में ही लगी रह जाती दिखाई देती हैं तथा समाज के विशेष गन्तव्यों, लक्ष्यों या मान्यताओं की व्यवस्था सुरक्षा के प्रश्न के सामने गौणतर की रह जाती हैं। अत: संविधानवाद की संस्थात्मक व्यवस्थाओं को मजबूत बनाने या उनके लिए समाज में मतैक्य स्थापित करने के न अवसर रहते हैं और न ही साधन जुट पाते हैं।

(4) समाज के अधिकांश लोगों द्वारा यह महसूस किया जाना कि शासन की प्रक्रियाएँ व व्यवस्थाएँ उचित हैं, सरकार को वैध बनाता है। आज भी विकासशील समाजों में, शासनकर्त्ताओं को अपनी सत्ता की वैधता में आशंकाएँ ही अधिक दिखाई देती हैं। स्वतंत्र या निष्पक्ष चुनाव या तो होते नहीं और अगर होते हैं तो इनके परिणामों को हारने वाले वर्ग या दल सहजत: स्वीकार नहीं करते। इससे सरकार की सत्ता क्षीण पड़ती है और सरकारें समाज के मूल्यों को क्रियान्वित करने का साधन नहीं बन पाती हैं।

(5) विकासशील राज्यों में व्याप्त बहुलता के कारण यह समाज, संघर्षरत समाज हो जाते हैं। समाज का हर वर्ग, हर सांस्कृतिक समूह राजनीतिक सत्ता प्राप्ति की हर सम्भव कोशिश करता है। सत्ता प्राप्त समूह अन्य समूहों को उभरने से रोकने में राजनीतिक शक्ति तक प्रयोग करने लगता है जिससे आपसी कटुता बढ़ती रहती है और एक सांस्कृतिक समूह अन्य सांस्कृतिक समूह के विरोध में खड़ा दिखाई देता है। ऐसी अवस्था में समाज एक से मूल्यों में विश्वास रख सके ऐसा असम्भव नहीं तो कम से कम कठिन अवश्य हो जाता है।

(6) आधुनिकीकरण की समस्या नवोदित समाजों की सबसे विषम समस्या है। ऐसे समाज दो भागों में विभक्त दिखाई देते हैं। एक वर्ग परम्परावादियों का तथा दूसरा वर्ग अभिजनों व आधुनिकीकरण में आस्था रखने वालों का बन जाता है। वार्ड तथा मैक्रीडिस ने लिखा है कि ''परम्परागतता वाले लोग व आधुनिकीकरण करने वाले अभिजन वैचारिक पर पहुंचने में असमर्थ हैं।'' इस कारण करीब-करीब सभी विकासशील देशों में संघर्ष व अराजकता की सम्भावनाएँ अधिक हैं। यहां प्राचीन और नवीन मूल्यों में अभी भी संघर्ष, अनिश्चितता व भ्रम व्याप्त है, जो संविधानवाद के रास्ते की सबसे सशक्त रूकावट है।

(7) नवोदित राजनीतिक समाजों के सामने राजनीतिक संरचना-विकल्पों के चुनाव की समस्या बहुत गम्भीर है। आधुनिकीकरण, स्थायित्व, सुरक्षा व प्रतिष्ठा की समस्याओं के प्रति शीघ्र समाधान के लिए वे किस प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं को अपनाएं? इसके लिए लोकतान्त्रिक व निरंकुश तथा पूंजीवादी व साम्यवादी प्रतिमान पहले से ही मार्गदर्शन व आकर्षण प्रस्तुत करते हैं। अतीत का अनुभव, लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं को अपनाने के लिए प्रेरित करता है, तो दूसरी तरफ विकास, ठोसता व एकता की आवश्यकताएँ किसी प्रकार की निर्देशित या निरंकुश व्यवस्था अपनाने के लिए दबाव डालता है। इस प्रकार की अवस्था में विकासशील राज्य इन विविध विकल्पों में से किसी एक का चुनाव भी कर लेते हैं तो बाद में उनको त्यागने और नई संस्थात्मक व्यवस्था अपनाने के लिए मजबूर करते हैं। इस कारण कुछ अनुवादों को छोड़कर, सभी विकासशील राजनीतिक समाज, राजनीतिक संरचनाओं पर अंतिम रूप से फैसला कर पाये हों ऐसा नहीं कहा जा सकता । राजनीतिक विकास के संस्थात्मक मार्गों का अनिश्चय, इन देशों में संविधानवाद की स्थिति को स्पष्ट ही नहीं होने देता है।

(8) अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा व अपने राष्ट्रीय अभिज्ञान की तलाश में, विकासशील राज्य हर सम्भव प्रयत्न करते पाए गए हैं। इसके लिए, दो परस्पर विरोधी गुटों में से किसी में सम्मिलित होने के जबरदस्त दबावों से बचना और भारत द्वारा अपनाए गए असंलग्नता के मार्ग का लक्षण कई कारणों से सम्भव नहीं लगता। एक तरफ राष्ट्रीय अहं को प्रकाशन देने का प्रमुख लक्ष्य है तो दूसरी तरफ आंतरिक आवश्यकताओं के दबाव से इसको ताक में रखकर किसी 'गुट' विशेष से गठबन्धन की मजबूरियां हैं। ऐसी अवस्था में समाज के सुनिश्चित मूल्य दबकर ही रह जाते हैं।

विकासशील लोकतन्त्रों की विशेष समस्याएँ तथा आवश्यकताएँ, संविधानवाद की अवधारणा को अस्पष्ट व अनिश्चितता

नोट

की अवस्था में ला देती हैं। इन देशों में व्याप्त विभिन्न भाषाओं, धर्मों, सम्प्रदायों और विचारधाराओं में समन्वय का अभाव, उचित सुदृढ़ संविधानवाद का आधार स्थापित नहीं होने देता है। फिर भी संविधानवाद की धारणा के कुछ लक्षण स्पष्ट परिलक्षित होने लगे हैं। संक्षेप में यह निम्न हैं-(1) संविधानवाद निर्माण की अवस्था में है। (2) संविधानवाद मिश्रित प्रकृति रखता है। (3) संविधानवाद प्रवाह के दौर में है। (4) संविधानवाद दिशा रहित चरण में है।

(1) विकासशील राजनीतिक समाज में विकास की परिस्थितियां ही नहीं पाई जाती है। समाज में अनेक बातों पर मतैक्य का अभाव पाया जाता हैं। यहां तक कि राजनीतिक संस्थाओं की संरचनाओं और प्रक्रियाओं पर भी मतैक्य नहीं हो पाता है। इसलिये अधिकांश विकासशील निर्माण की अवस्था में कहा जा सकता है।

(2) नवोदित राज्यों में संविधानवाद मिश्रित प्रकृति का है। कुछ देश पाश्चात्य व सोवियत विचारधाराओं को मिलाने का प्रयत्न कर रहे हैं। वह स्वतंत्रता, समानता, न्याय व समाजवाद को एक साथ ही स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। आंतरिक परिस्थितियां व आवश्यकताएँ, संविधानवाद की पाश्चात्य अवधारणाओं के मौलिक तत्त्वों को अनिवार्यत: अपनाने का दबाव डालती हैं। जैसे स्वतंत्रता के साथ ही आर्थिक समानता लाने के लिए सम्पत्ति पर अधिकाधिक संवैधानिक नियंत्रण का प्रयत्न संविधानवाद को मिश्रित रूप प्रदान करता है। संविधान प्रतिबन्धक का कार्य भी करता है और नियंत्रणों से मुक्ति भी दिलाने के संस्थागत प्रावधानों से भरपूर रहता है। इस दृष्टि से भारत में मौलिक अधिकारों की व्यवस्था तथा उन पर उचित प्रतिबन्धों की संविधान में ही व्यवस्था, मिश्रितता की संकेतक है।

(3) विकासशील राज्यों में संविधानवाद प्रवाह के दौर में है। यह स्थिरता प्राप्त नहीं कर पाया है। राजनीतिक विकास के मार्ग में जब लम्बी अवधि का स्थायित्व यह भ्रम उत्पन्न करता है कि संविधानवादी मूल्य सुनिश्चय की अवस्था में आ गये हैं। परन्तु अचानक उत्पन्न स्थितियां, समाजों के विकास-पथ में परिवर्तन करके, संविधानवाद को प्रवाह की अवस्था में धकेलती दिखाई देती हैं।

(4) उपरोक्त तीन विशेषताओं के वर्णन से स्पष्ट है कि विकासशील राजनीतिक समाजों में संविधानवाद दिशा रहित चरण में है। इन समाजों में कभी उदार लोकतन्त्रों का आदर्श आकर्षक बन जाता है तो कभी साम्यवादी विचारों में निष्ठा दृढ़ होने लगती है। कुछ राज्य नवीन आदर्श खोजते पाए जाते हैं । राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण, विकासशील राज्यों में संविधानवाद की दिशाओं में जब-तब परिवर्तन, एक तरह से दिशा-शून्यता ही लगता है। संविधानवाद के आधारों का अभाव व मूल्यों की अनिश्चितता संविधानवाद की सुस्पष्ट दिशा निर्धारण में बाधक है। इसलिए विकासशील राज्यों में संविधानवाद तब तक दिशायुक्त नहीं बन सकता, जब तक संविधानवाद के आधारों की सुस्थिर पृष्ठभूमि प्रस्तुत नहीं हो जाती।

संविधानवाद की इन विशेषताओं के वर्णन से स्पष्ट है कि संविधानवाद की विकासशील राज्यों की अवधारणा में साध्य तो, पाश्चात्य अवधारणा के समान, स्वतंत्रता, राजनीतिक समानता, सामाजिक व आर्थिक न्याय तथा लोक कल्याण की साधना के ही हैं। सरकार की प्रतिबन्धता व अनेक क्षेत्रों में कार्य के लिए बहुत कुछ स्वतंत्रता तथा संविधान की औपचारिकता, इसे साम्यवादी अवधारणा की संस्थागत व्यवस्थाओं को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना ही है। निष्कर्ष में, हावर्ड रीगिन्स के कथन का उल्लेख करना विकासशील राज्यों के संविधानवाद का सही चित्रण करता है। रीगिन्स ने लिखा है कि ''राज्य नये हैं और राजनीतिक खेल के नियम प्रवाब में हैं इसलिए संविधानवाद अभी तक सुस्थिर नहीं हो सका है। यहाँ वार्ड तथा मैक्रडिस का यह कहना कि ''विकासशील संविधानवाद के लिए पाश्चात्य संविधानवाद की सीमित सरकार की परम्परा, व्यक्तिगत व समूह अधिकार और राजनीतिक प्रबन्धों की स्थापना प्रतिमान व अनुकरणीय उदारहण है। ठीक नहीं लगता है, क्योंकि इन राज्यों में साम्यवादी मूल्यों व संस्थागत व्यवस्थाओं के प्रति आस्था भी बलवती बनती जा रही है। अंत में यही कहा जा सकता है कि विकासशील राज्यों में संविधानवाद की सुस्थिरता लम्बी अवधि के बाद ही आ पाएगी।

संविधानवाद की विभिन्न अवधारणाओं के विवेचन से स्पष्ट है कि ''संविधानवाद का चिरस्थायी मूल्य चाहे वह पाश्चात्य हो या साम्यवाद, विकसित देशों का हो या विकासशील देशों का, पूर्णतया स्थापित हो अथवा स्थापना के प्रयत्न तक सीमित रहा हो, उसकी प्राप्ति की प्रक्रियाओं व संस्थात्मक व्यवस्थाओं के साधनों से कहीं दूर पाया जाता है। यह सामाजिक व्यवस्था के उन नैतिक उद्देश्यों में, जिनकी यह रक्षा करता है, विचार-धाराओं के उन मूल्यों में, जो इसे

नोट

प्रिय हैं तथा शासकों के उस दृश्य में, जिसे यह स्थायित्व प्रदान करता है, पाया जाता है। इसलिए संविधानवाद का मूल्यांकन, बहुप्रचलित नियंत्रण प्रक्रियाओं के आधार पर नहीं किया जाना चाहिये। इन नियंत्रण प्रक्रियाओं को प्रभावहीनता व प्रभावयुक्तता का विवाद भी निरर्थक है। संविधानवाद का मूल्यांकन करते समय यह देखना चाहिए कि समाज के नैतिक मूल्य क्या हैं? विकास के किस मार्ग व विचारधारा में समाज की आस्था है? विकास करने का दायित्व लेने वाले नेताओं में क्या गुण हैं? यही संदर्भ, संविधानवाद की वास्तविकताओं को परिलक्षित करता है, क्योंकि अन्ततः संविधानवाद व्यवस्थित समाज में व्यवस्थित परिवर्तन की प्रक्रियात्मक सुव्यवस्था ही तो है।

उपरोक्त निष्कर्ष के संदर्भ में ही तुलनात्मक राजनीति के विद्यार्थी को पाश्चात्य, साम्यवादी व विकासशील समाजों के संविधानवाद का अध्ययन व मूल्यांकन करना है। प्रक्रियाओं द्वारा स्थापित नियंत्रण व्यवस्था, संविधान व संस्थाओं द्वारा आदर्शों व आस्थाओं का गुणगान, संविधानवाद का दिखावा प्रस्तुत करते हैं या समाज के वास्तविक नैतिक मूल्यों की स्थापना व प्राप्ति का साधन जुटाते हैं। यही अन्तर समझना, संविधानवाद का सही अर्थ व किसी राजनीतिक व्यवस्था में इसकी यथार्थता को समझना है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the Blanks)–

1. उदारवादी धारणा में ..... व ..... न्याय का आधार बहुत महत्वपूर्ण है।
2. लोक कल्याण की साधना का लक्ष्य ..... के उदय के साथ ही विकसित हुआ है।
3. लोकतांत्रिक ढंग से गठित समाज ..... समाज होता है।
4. साम्यवादी ..... को पूँजीपतियों के हाथ की कठपुतली मानते हैं।
5. साम्यवादियों की मान्यता है कि सामाजिक जीवन में शक्ति के आर्थिक पहलू की ..... ही महत्वपूर्ण होती है।

3.3 सारांश (Summary)

- सरकार चाहे निरंकुश हों अथवा लोकतन्त्रात्मक, उनके संचालन के लिए कुछ सिद्धान्तों अथवा नियमों का होना सदैव सहायक होता है। चूंकि प्रत्येक संविधान में सरकार के विभिन्न अंगों तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन होता है। अतः इन सम्बन्धों का वर्णन करने वाले नियमों की विद्यमानता से सरकार के विभिन्न अंग एक दूसरे के सहयोग से कुशलतापूर्वक कार्य कर सकते हैं और उनमें संघर्ष या विरोध की सम्भावनाएँ भी कम हो जाती हैं। संविधान में नागरिकों के अधिकारों का भी वर्णन होता है। यह वर्णन ही इनके सुरक्षा व्यवसाय है, क्योंकि यह सरकार की पहुंच से इस प्रकार पैने बन जाते हैं। इस प्रकार संविधान के द्वारा किसी भी राज्य का आधारभूत ढांचा संस्थागत रूप में खड़ा किया जाता है, जिससे हर व्यक्ति, संस्था व समूह की भूमिका सुनिश्चित हो जाती है।
- "संविधान नियमों का वह संग्रह है जो उन उद्देश्यों की प्राप्ति कराता है जिनके लिए शासन शक्ति प्रवर्तित की जाती है और जो शासन के उन विविध अंगों की सृष्टि करता है जिनके माध्यम से सरकार अपनी शक्ति का प्रयोग करती है।
- अतः संविधान का अर्थ समझते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि 'औपचारिक संविधान' क्या व्यवस्था करता है तथा व्यवहार में यह किस सीमा तक राजनीतिक आचरण का आधार बना रहता है? संविधान राजनीतिक व्यवस्था का चरित्र या प्रकृति स्पष्ट करता है, क्योंकि संविधान राज्य के लिए ठीक वैसा ही है जैसा व्यक्ति के लिए चरित्र! यह न केवल 'राजनीतिक खेल' का आधार प्रस्तुत करता है अपितु विभिन्न राजनीतिक विचारों व मांगों में सामंजस्य की अभिव्यक्ति भी करता है। किसी राजनीतिक व्यवस्था की वास्तविक प्रकृति को समझने के लिए संविधान के इस ढांचे व तत्त्व (substance) सिद्धान्त व व्यवहार, दोनों को समझना आवश्यक है, क्योंकि संविधानवाद वहीं सम्भव है जहाँ संविधान के ढांचे व तत्त्वों में साम्य हो अर्थात संवैधानिक सरकार हो।

नोट

- हर राज्य में किसी न किसी प्रकार का संविधान तो अनिवार्यत: होता है, पर हर ऐसे राज्य में संवैधानिक सरकार हो यह भी जरूरी नहीं है। संवैधानिक सरकार से सीमित अर्थबोधन होता है, क्योंकि संवैधानिक सरकार वह सरकार ही होती है जो संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार संगठित, सीमित और नियंत्रित हो तथा व्यक्ति विशेष की इच्छाओं के स्थान पर, केवल विधि के अनुरूप ही संचालित होती हो। हिटलर व स्तालिन के समय में जर्मनी व रूस में संविधान तो थे पर संवैधानिक सरकारें भी थी ऐसा नहीं कहा जा सकता।
- केवल वह सरकार ही संवैधानिक सरकार कही जायेगी जो संविधान पर आधारित हो, संविधान द्वारा सीमित और नियंत्रित हो व स्वेच्छापूर्वकता के स्थान पर केवल विधि के अनुरूप ही संचालित होती हो। संक्षेप में संवैधानिक सरकार विधि राजनीतिक व्यवस्था में ही संविधानवाद सम्भव है, क्योंकि संविधानवाद उन मान्यताओं, आस्थाओं और मानव मूल्यों का नाम है जिसका संविधान में वर्णन व समर्थन होता है और जिनकी उपलब्धि व सुरक्षा हेतु राजनीतिक शक्ति पर प्रभावशाली नियंत्रणों व रोकों (restraints) की व्यवस्था होती है।
- संविधानवाद उन विचारों व सिद्धान्तों की ओर संकेत करता है, जो उस संविधान का विवरण व समर्थन करते हैं, जिनके माध्यम से राजनीतिक शक्ति पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित किया जा सके।
- संविधानवाद शासन की वह पद्धति है जिसमें शासन जनता की आस्थाओं, मूल्यों व आदर्शों को परिलक्षित करने वाले संविधान के नियमों व सिद्धांतों के आधार पर ही किया जाए व ऐसे संविधान के माध्यम से ही शासकों को प्रतिबंधित व सीमित रखा जाए जिससे राजनीतिक व्यवस्था की मूल व्यवस्थाएँ सुरक्षित रहें और व्यवहार में हर व्यक्ति को उपलब्ध हो सकें।
- "संविधानवाद उस निष्ठा का नाम है जो मनुष्य संविधान में निहित शक्ति में रखते है जिससे सरकार व्यवस्थित बनी रहती है।" अर्थात वह निष्ठा व आस्था की शक्ति जिसमें सुसंगठित राजनीतिक सत्ता नियंत्रित रहती है, 'संविधानवाद' है।
- कुछ विचारक शासन को सीमित व नियंत्रित करने के लिए तथा मानव मूल्यों की सुरक्षा सम्भव बनाने के लिए शक्ति विभाजन को अधिक महत्त्व देते हैं व उसे संविधानवाद का मूल आधार मानते हैं। उनकी मान्यता है कि संविधानवाद राजनीतिक शक्तियों का विभाजन कर सरकार के कार्यों पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित करना है। अत: संविधानवाद तभी संभव है जब किसी राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति विभाजन के द्वारा सरकारी कार्यों पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित किया जा सके।
- इससे यह भी स्पष्ट है कि जहाँ संविधान है वहाँ संविधानवाद आवश्यक रूप से पाया जाता हो यह जरूरी नहीं है। संविधान के माध्यम से तो हम किसी भी देश की राजनीतिक व्यवस्था, अर्थात सरकार के स्वरूप, उसकी शक्तियों व नागरिकों और सरकार के सम्बन्धों से सम्बन्धित सिद्धान्तों व नियमों का संकेत पाते हैं जबकि संविधानवाद एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें संविधान के माध्यम से ही सरकार की शक्तियों पर शक्ति वितरण द्वारा प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित किया जाता है।
- परिभाषा की दृष्टि से संविधानवाद विचारधारा का प्रतीक है। इसमें राष्ट्र के मूल्य, विश्वास व राजनीतिक आदर्श आते हैं, जिनसे मिलकर विचारधारा बनती है, और उस विचारधारा (Ideology) का प्रतीक संविधानवाद कहलाता है। संविधान संगठन का प्रतीक है। यह उन सिद्धान्तों का संकलन कहा जा सकता है जिनके अनुसार सरकार की शक्तियों व शासितों के अधिकारी के मध्य सम्बन्धों का समायोजन किया जाता है।
- उत्पत्ति की दृष्टि से भी दोनों में अन्तर है। संविधानवाद हमेशा ही विकास का परिणाम रहा है। हर देश के मूल्य, विश्वास व आदर्शों का विकास शताब्दियों के आवरण में तथा समय की परिधि में धीरे-धीरे होता है। परम्परागत, संस्थागत व मानव सम्बन्धी तत्त्वों से राष्ट्रों के विश्वास व आदर्श विकसित होते रहते हैं, और जनसाधारण के जीवन में इतने घुल-मिल जाते हैं कि इनकी प्राप्ति और रक्षा हेतु समाज बड़े से बड़ा बलिदान करने के लिए तैयार रहता है। संविधान, केवल ब्रिटेन के संविधान को छोड़कर, साधारणतया निर्मित होते हैं तथा बाद में परम्पराओं के माध्यम से संविधानवाद की आवश्यकताओं के अनुरूप स्वत: बदलते-ढलते जाते हैं।

नोट

- संविधान व संविधानवाद में प्रकृति का भी मौलिक अन्तर है। संविधानवाद में प्रधानता किसी राजनीतिक समाज के लक्ष्यों और उद्देश्यों की होती है। अन्ततः हर समाज एक गन्तव्य की प्राप्ति का लक्ष्य रखता है, और गन्तव्यों की प्राप्ति की व्यवस्था ही संविधानवाद का मूल है जबकि संविधान प्रमुखतया उन गन्तव्यों तक पहुँचने के साधनों की सुव्यवस्था है। यह संविधानवाद के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु साधन जुटाने का नाम है। अतः संविधानवाद साध्य-प्रधान और संविधान-प्रधान धारणा है।
- संविधानवाद का सम्बन्ध राष्ट्र के जीवन दर्शन से है। यह उन मूल्यों, विश्वासों व राजनीतिक आदर्शों की ओर संकेत करता है जो राष्ट्र के हर नागरिक को प्रिय है। जो हर राष्ट्र का जीवन आधार होते हैं। यह संवैधानिक दर्शन, राजनीतिक समाज को अभिजनों (Elites) द्वारा प्रदान किया जाता है। परन्तु यह दर्शन अभिजनों तक ही सीमित नहीं रहता है। समाज का विचारशील वर्ग इसे जनता तक पहुंचाता है, और समाज इसे स्वीकार कर न केवल बल प्रदान करता है, वरन् इसे सही अर्थों में 'राष्ट्र-दर्शन' बनाता है।
- संविधानवाद गतिहीन धारणा नहीं है पर इसका यह अर्थ भी नहीं कि संविधानवाद में स्थिरता नहीं होती है। संविधानवाद में यही सबसे विशिष्ट बात है कि इसमें स्थायित्व के साथ ही साथ गत्यात्मकता भी पाई जाती हैं यही कारण है कि यह प्रगति में बाधक नहीं, प्रगति का साधक बना रहता है।
- संविधानवाद प्रधानतः साध्यों से सम्बन्धित विचार है। परन्तु साध्य मूलक विचार पूर्णतया साधनों की अवहेलना नहीं कर सकता। अतः इनमें भी अंतर प्रकार का नहीं केवल मात्रा का रह जाता है। वैसे भी साधनों व साध्यों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। फिर भी संविधानवाद से प्रमुखतया लक्ष्यों का ही संकेत मिलता है। जब हम यह कहते हैं कि संविधानवाद से प्रमुखतया लक्ष्यों का ही संकेत मिलता है।
- उदार लोकतन्त्रों की अवधारणाओं को पाश्चात्य संविधानवाद भी कहा जाता है। इसकी मुख्य विशेषता व्यक्ति की स्वतंत्रता की साधना है। व्यक्ति की स्वतंत्रता के अलावा, राजनीतिक समानता, सामाजिक व आर्थिक न्याय तथा लोककल्याण की साधना पाश्चात्य संविधानवाद के आधारभूत साध्य हैं। यह सामाजिक व आर्थिक समानता व स्वतन्त्रता पर बदल नहीं देता है। स्वतंत्रता और समानता के सामाजिक व आर्थिक पहलुओं पाश्चात्य संविधानवाद के साध्यों में अभाव ही इसको साम्यवादी अवधारणा से अलग धारणा बनाता है।
- साम्यवाद की सरकार व शक्ति की अलग धारणा ही, साम्यवादी अवधारणा को, संविधानवाद की पाश्चात्य अवधारणा से भिन्न बनाती है।
- साम्यवादी 'सरकार' को पूंजीपतियों के हाथ की कठपुतली मानते हैं, जो 'धनिक वर्ग' की गरीब वर्गों से रक्षा का ही कार्य करती है। उनके अनुसार राजनीतिक शक्ति का आधार आर्थिक शक्ति है जिनके हाथ में आर्थिक शक्ति होगी उसी के हाथ में राजनीतिक शक्ति भी आ जाएगी। इसलिये पूंजीपति ही राजनीतिक शक्ति के धारक व संचालक होते हैं।
- साम्यवादियों की मान्यता है कि सामाजिक जीवन में शक्ति के आर्थिक पहलू की सर्वोपरिता ही महत्त्वपूर्ण होती है। इससे मनुष्य का सम्पूर्ण सामाजिक जीवन संचालित होता है तथा जिस वर्ग के हाथ में आर्थिक शक्ति होती है वह वर्ग अन्य वर्गों पर आधिपत्य जमाकर, उन्हें अपने लिए कार्य करने को बाध्य करता है। यह अवस्था वर्ग-संघर्ष व शोषण का आधार बनती है।
- आर्थिक शक्ति की सर्वोपरिता का तर्कसंगत परिणाम आर्थिक शक्तियुक्त वर्ग का प्रभुत्व की अवस्था में होना है। यह राजनीतिक शक्ति की गौणता का सूचक है।
- आर्थिक शक्ति की सर्वोपरिता तथा समाज में इससे सम्पन्न वर्ग का प्रभुत्व, राजनीतिक शक्ति को भी इसके अधीन बना देता है। समाज में विद्यमान सभी संस्थाएँ आर्थिक शक्ति के समक्ष नतमस्तक रहती हैं। अतः नियंत्रण राजनीतिक शक्ति पर नहीं, बल्कि आर्थिक शक्ति पर लगाए जाने चाहिए।
- साम्यवादी विचारधारा की आधारभूत मान्यता है कि उत्पादन व वितरण के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व आर्थिक शक्ति को अन्ततः कुछ व्यक्तियों में केन्द्रित कर देता है। आर्थिक शक्ति के इस प्रकार के केन्द्रण से वर्ग-संघर्ष उत्पन्न होता है। इससे आर्थिक शक्ति-युक्त वर्ग, इस शक्ति से रहित वर्ग का दमन व शोषण करने लगता है।

नोट

- आर्थिक समानता वाले समाज में कोई वर्ग या अलग-अलग हित नहीं होते हैं और इसलिये वर्गों के विशिष्ट हितों का प्रतिनिधित्व व सुरक्षा करने के लिए अनेक राजनीतिक दल बनने की परिस्थितियां नहीं होती हैं। वर्ग-विहीन समाज में राजनीतिक दलों की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। यही कारण है कि साम्यवाद राजनीतिक दलों की अनेकता को स्वीकार नहीं करता परन्तु साम्यवादी समाज के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समाज का नेतृत्व व निर्देशन होना आवश्यक है। जिससे समाज के सम्पूर्ण साधनों व शक्तियों में समन्वय रखा जा सके और साध्यों की पूर्ति की सुव्यवस्था की जा सके।
- स्पष्ट है कि संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा में समाज के मूल्यों, राजनीतिक आदर्शों व आस्थाओं की प्राप्ति के साधन, पाश्चात्य संविधान की अवधारणा से न केवल भिन्न प्रकार के हैं, अपितु उन आधारभूत कारणों का, जिनसे समाज में असमानता का उद्‌भव होता है, अन्त करने वाले भी हैं।

3.4 शब्दकोश (Keywords)

सर्वोपरिता : प्रमुखता, सर्वश्रेष्ठता

अवपीड़न : प्रताड़ित करना, शोषण करना, उत्पीड़न करना

समाविष्ट : सम्मिलित करना

3.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. संविधानवाद से आप क्या समझते हैं? व्याख्या कीजिए।
2. संविधानवाद की मुख्य अवधारणाओं का वर्णन कीजिए।
3. संविधानवाद के उदारवादी दृष्टिकोण का विश्लेषणात्मक विवेचन कीजिए।
4. संविधानवाद के उदारवादी एवं साम्यवादी अवधारणाओं में मूलभूत क्या विभिन्नताएँ पायी जाती हैं? वर्णन कीजिए।

स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. सामाजिक व आर्थिक
2. लोकतंत्रों
3. खुला
4. सरकार
5. सर्वोपरिता

3.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *तुलनात्मक शासन एवं राजनीति*–डॉ. बीरकेश्वर प्रसाद सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन (पी. एण्ड डी.) 24, दरियागंज, अंसारी रोड, दिल्ली।
2. *तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ*–सी.बी. गेना, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड, दिल्ली।
3. *तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा*– ओम प्रकाश गाबा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।
4. *तुलनात्मक राजनीति*–जे.सी. जौहरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि., दिल्ली।

नोट

इकाई–4: राजनीतिक संस्कृति (Political Culture)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

4.1 राजनीतिक संस्कृति का अर्थ एवं त्रिस्तरीय मूल्याँकन (Meaning and Mapping; the Three Levels of Political Culture)

4.2 समकालीन राजनीतिक संस्कृतियों की प्रवृत्ति (Trends in Contemporary Political Culture)

4.3 सारांश (Summary)

4.4 शब्दकोश (Keywords)

4.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

4.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- राजनीतिक संस्कृति के अर्थ और त्रिस्तरीय मूल्याँकन को समझने एवं समकालीन राजनीतिक प्रवृत्तियों की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

राजनीतिक संस्कृति (Poltical Culture) की संकल्पना का अध्ययन राजनीतिक विकास के विषय के सामाजिक वैज्ञानिक पहलुओं का परीक्षण करना है। जब के कुछ अमरीकी लेखकों, जैके उलम (Ulam), बीर (Beer) आमंड (Almond) ने इस शब्द को लोकप्रियता प्रदान की है, यह राजनीतिक व्यवस्थायों के आकारिकीय अध्ययन (Morphological study) के लिए एक महत्वपूर्ण कसौटी बन गया है। इसने समाज सिद्धांत शास्त्रियों को इस बात का आग्रह करने के लिए प्रभावित किया है कि एक राजनीतिक व्यवस्था दूसरी राजनीतिक व्यवस्था के न केवल संरचना की दृष्टि के बल्कि अपनी राजनीतिक संस्कृति की दृष्टि के भी भिन्न है जिसमें यह स्थित होती है। इसी तथ्य के कारण संसदीय शासन प्रणाली ब्रिटेन जैके देश में अच्छी तरह के कार्य कर सकी है, लेकिन तीसरी दुनिया के कई पिछड़े देशों में इसको उतनी सफलता नहीं मिल सकी है। अत: अब यह एहसास जोर पकड़ता जा रहा है कि जो अभिवृत्तियाँ (Attitudes), संवेदनाएँ (sentiments) और संज्ञान (cognitions) किसी समाज में राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित कर उसका संचालन करती हैं, वे आकस्मिक भीड़ ही नहीं बल्कि वे उन संगत प्रतिमानों का प्रतिनिधित्व करती है जो एक दूसरे के उपयुक्त हो सकते हैं और एक दूसरे को प्रतिबलित करने वाले हैं; किसी समुदाय विशेष में एक सीमित और विशिष्ट राजनीतिक संस्कृति होती है जो राजनीतिक प्रक्रिया को सार्थकता, पूर्वानुमानता और आकार प्रदान करती है; हरेक व्यक्ति को अपने ऐतिहासिक संदर्भ में अपनी जनता और अपने समाज के बारे में जानकारी एवं भावनाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करके उके अपने व्यक्तित्व का अंग बना लेना चाहिए।''

नोट

4.1 राजनीतिक संस्कृति का अर्थ एवं त्रिस्तरीय मूल्याँकन (Meaning and Mapping; the three Levels of Political Culture)

राजनीतिक संस्कृति सामान्य सांस्कृतिक व्यवस्था का भाग है, किन्तु यह इसके कुछ स्वायत्तता भी रखती है। सामान्य संस्कृति की तरह ही राजनीतिक संस्कृति भी राजनीतिक समाजीकरण के माध्यम के संप्रेषित या हस्तांतरित होती है। इस तरह, यह सीखा हुआ राजनीतिक व्यवहार है जो व्यक्तियों या समूहों में सामाजिक परिवर्तन या सांस्कृतिक संघर्ष की चुनौतियों या नई परिस्थितियों के अनुकूल बनने की प्रक्रिया में उत्पन्न या निर्मित हो सकता है। राजनीतिक संस्कृति का अर्थ करते हुए ल्यूशियन पाई ने अपने एक निबन्ध 'पोलिटिकल कल्चर एण्ड पोलिटिकल डेवेलपमेन्ट' जो इसके और वर्बा द्वारा सम्पादित पुस्तक जिसका नाम भी पोलिटिकल कल्चर एण्ड पोलिटिकल डेवेलपमेन्ट है, में लिखा है कि ''राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा बतलाती है कि किसी समाज की परम्पराएँ, उसकी सार्वजनिक संस्थाओं की आत्मा, उसके नागरिकों की आकांक्षाएँ और उनका सामूहिक विवेक और उसके नेताओं के तरीके और कार्यशील होने के साधन व नियम आदि केवल ऐतिहासिक अनुभव की उट-पटांग उपज नहीं हैं, बल्कि ये सब एक अर्थपूर्ण व्यवस्था के अंग हैं और सम्पूर्ण सम्बन्धों का एक बोधगम्य तथा स्पष्ट प्रतिमान उपस्थित करते हैं। व्यक्ति के लिए राजनीतिक संस्कृति प्रभावशील राजनीतिक व्यवहार की दिशा में मार्ग-निर्देशन करती है और समाज के लिए यह उन मूल्यों तथा विवेकपूर्ण विचारों की व्यवस्थित रूप-रचना प्रदान करती है जो कि संस्थाओं और संगठनों की गतिविधियों में संगति बैठाते हैं।''

ल्यूशियन पाई का अभिमत है कि ''एक राजनीतिक संस्कृति एक राजनीतिक व्यवस्था के सामूहिक इतिहास की भी उपज है और उन व्यक्तियों के जीवन-इतिहासों की भी उपज है जिन्होंने हाल ही में इस व्यवस्था को बनाया है। इस प्रकार, राजनीतिक संस्कृति की जड़ें सार्वजनिक घटनाओं और व्यक्तिगत अनुभवों में समान रूप के निहित रहती हैं। राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा के राजनीति विज्ञान में व्यवहारवादी दृष्टिकोण के क्षेत्र में, व्यक्ति के राजनीतिक व्यवहार की मनोवैज्ञानिक व्याख्याओं पर आधारित व्यष्टि-विश्लेषण (macro-analysis) के बीच की खाई को पाटा गया है। इस प्रकार, राजनीतिक संस्कृति मनोवैज्ञानिक और समाज-शास्त्री अध्ययन दृष्टिकोणों में समन्वय करके इनकी तकनीकों में आधुनिक प्रगतियों को गतिशील राजनीतिक विश्लेषण के लिए प्रयोग करने का माध्यम प्रस्तुत करती है।

उपरोक्त विवेचन के स्पष्ट है कि राजनीतिक संस्कृति एक आधुनिक अवधारणा है। यह राष्ट्रीय राजनीतिक मनोविज्ञान तथा लोगों के आधारभूत मूल्यों के सम्बन्धित ज्ञान को अधिक व्यवस्थित रूप में रखने का प्रयास करती है। इसके स्पष्ट है कि राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा प्रमुखतया राजनीतिक है। नेताओं और नागरिकों के राजनीतिक अभिमुखीकरणों के सम्बन्धित होने के कारण, राजनीतिक संस्कृति 'राजनीति-शैली' अथवा 'प्रचालन-संहिता' (Operational code) आदि अवधारणाओं के, जो कि विशिष्ट वर्ग के व्यवहार पर प्रकाश डालती है, अधिक उपयुक्त और इन अवधारणाओं के अधिक गहरा अर्थ रखती है। इसी तरह यह 'जनमत' और राष्ट्रीय चरित्र जैसी अवधारणाओं की तुलना में अधिक सीमित और नियोजित तथा आनुभविक विश्लेषण योग्य है।

राजनीतिक संस्कृति के सामान्य अर्थ के बाद इसकी परिभाषा करना सरल हो जाता है। यहाँ हम कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ दे रहे हैं जिसके इसका अर्थ और प्रकृति भी स्पष्ट हो सके। 'राजनीतिक संस्कृति' शब्द का, जिस अर्थ में इके आजकल समझा जाता है, सर्वप्रथम आमन्ड ने ही अपने एक निबन्ध कम्पेरेटिव पोलिटिकल सिस्टम्स में 1956 में किया था इसलिए हम आमन्ड द्वारा दी गई परिभाषा ही पहले दे रहे हैं।

क्या आप जानते हैं राजनीतिक संस्कृति एक सुनिश्चित तथा आनुभविक परीक्षण योग्य तथ्यों के सम्बद्ध अवधारणा है।

नोट

आमन्ड और पावेल ने इसकी परिभाषा करते हुए लिखा है : 'राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक व्यवस्था के सदस्यों की राजनीति के प्रति वैयक्तिक अभिवृत्तियों व अभिमुखीकरणों का प्रतिमान है।'' इन्होंने इस परिभाषा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि राजनीतिक संस्कृति व्यक्तिनिष्ठ क्षेत्र है जो राजनीतिक क्रिया के मूल में होता है और इसको अर्थ प्रदान करता है।

सिडनी वर्बा ने राजनीतिक संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए इसकी व्यापक परिभाषा दी है। उसके अनुसार ''राजनीतिक संस्कृति में आनुभविक विश्वासों, अभिव्यक्तात्मक प्रतीकों और मूल्यों की वह व्यवस्था सन्निहित है जो उस परिस्थिति अथवा दशा को परिभाषित करती है जिसमें राजनीतिक क्रिया सम्पन्न होती।'' इस प्रकार वर्बा ने राजनीतिक संस्कृति को राजनीतिक व्यवस्था तथा उसके अवयवों एवं व्यवस्था में शक्ति के व्यक्तिगत-कार्यों के प्रति विशिष्ट राजनीतिक अभिमुखीकरणों तथा अभिवृत्तियों का संयुक्त रूप कहा है।

ल्यूशियन पाई के अनुसार ''राजनीतिक संस्कृति अभिवृत्तियों, विश्वासों तथा मनोभावों का ऐसा पुंज है जो राजनीतिक क्रिया को अर्थ एवं व्यवस्था प्रदान करता है तथा राजनीतिक व्यवस्था को नियन्त्रित करने वाली अंतर्निहित पूर्व धारणाओं तथा नियमों को बनाता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के स्पष्ट है कि राजनीतिक संस्कृति व्यवस्था में राजनीति के प्रति वैयक्तिक अभिवृत्तियों और अभिमुखीकरणों का प्रतिमान है, अर्थात राजनीतिक व्यवस्था तथा राजनीतिक मुद्दों के सम्बन्धित सामाजिक दृष्टिकोणों, विश्वासों और मूल्यों के राजनीतिक संस्कृति का निर्माण होता है। कई बार यह हो सकता है कि ये अभिवृत्तियाँ सचेतन रूप के धारित न हों और राजनीतिक व्यवस्था में किसी व्यक्ति या गुट के सम्बन्धों में ये निहित हों। इस तरह, इसका बहुत ही सरल अर्थ लें तो राजनीतिक संस्कृति, राजनीति के प्रति लोगों की धरणाएँ हैं, अर्थात कहाँ तक नागरिक यह महसूस करते हैं कि वे निर्णयकारी प्रक्रिया (decision making process) में भाग लेकर उके प्रभावित कर सकते हैं, के भाव के संबन्धित अभिवृत्ति है।

राजनीतिक संस्कृति के अर्थ और परिभाषा के यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक संस्कृति में केवल उन समीक्षात्मक, किन्तु व्यापक रूप के प्रचलित विश्वासों और मनोभावों को ही लिया जाता है जो अभिमुखीकरण के उन विशिष्ट प्रतिमानों का निर्माण कर सकें जो कि राजनीतिक प्रक्रिया को व्यवस्था और स्वरूप प्रदान करते हैं। सारांश रूप में राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक क्षेत्र को उसी प्रकार संरचना और अर्थ प्रदान करती है जिस प्रकार संस्कृति (General culture) सामाजिक जीवन को मेल और एकीकरण प्रदान करती है। अत: राजनीतिक संस्कृति एक निश्चित और सीमित अवधारणा है जो सामान्य संस्कृति के सम्बन्धित और प्रभावित रहते हुए भी उसके कुछ स्वायत्तता रखती है। इस प्रकार यह राजनीति के प्रति लोगों की धारणाओं और अभिवृत्तियों का नाम है।

राजनीतिक संस्कृति की विशेषताएँ और लक्ष्य (The Characteristics and Features of Political Culture)

राजनीतिक संस्कृति एक राजनीतिक व्यवस्था के दूसरी राजनीतिक व्यवस्था में मात्रात्मक अन्तर रख सकती है। साधारणत: एक राजनीतिक समाज की राजनीतिक संस्कृति दूसरे राजनीतिक समाज की राजनीतिक संस्कृति के मात्रा की दृष्टि के पर्याप्त भिन्न ही होती है। यह समाज में विद्यमान विश्वास या अविश्वास की मात्रा, समानता या पदानुक्रम पर दिए जाने वाले जोर, स्वतन्त्रता या बाध्यकारिता की शक्ति को सहन करने को दिए जाने वाले जोर, स्वतन्त्रता या बाध्यकारिता की शक्ति को सहन करने को दिए जाने वाले महत्त्व और व्यक्तियों के सम्पूर्ण राष्ट्र या छोटे-छोटे समूहों इत्यादि के प्रति निष्ठा की मात्रा पर निर्भर करने के कारण, हर राजनीतिक समाज में मात्रात्मक अन्तरों के युक्त होती है। किन्तु विभिन्न राजनीतिक समाजों की राजनीतिक संस्कृति में प्रकार के अन्तर नहीं होते हैं। चाहे कैसी ही राजनीतिक व्यवस्था हो उसके राजनीतिक संस्कृति में और दूसरी, उसके भिन्न प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था की संस्कृति में, मात्रा के गहरे अन्तर हो सकते हैं किन्तु उनमें प्रकार के अन्तर नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए, स्वेच्छाचारी शासन व्यवस्था में राजनीतिक संस्कृति, लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं की राजनीतिक संस्कृति के सर्वाधिक मात्रात्मक अन्तर रखती है। एक ही राजनीतिक समाज में अनेक उप-संस्कृति भी मौजूद हो सकती है

नोट

जो एक दूसरे के सामंजस्य या विरोध रखने की स्थिति में हो सकती है। इस सबके यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक संस्कृति के कुछ लक्षण ऐके होते हैं जिनके हर राजनीतिक व्यवस्था की संस्कृति में भिन्नता पाई जाती है। परन्तु अवधारणा की दृष्टि के हर देश की राजनीतिक संस्कृति में कुछ विशेषताएँ अवश्य देखने को मिलेंगी। इनमें के तीन विशेषताओं को प्रमुख माना जाता है। यह विशेषताएँ (क) आनुभविक आस्थाओं या विश्वासों, (ख) मूल्य अभिरुचियों, और (ग) प्रभावी अनुक्रियाओं की हैं।

राजनीतिक संस्कृति का त्रि-स्तरीय मूल्याँकन (Three levels mapping of Political Culture)

आमंड अधीनस्थ-सहभागियों के आधार पर राजनीतिक संस्कृतियों और साथ ही विभिन्न राजनीतिक संस्कृतियों के आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत करते हैं। राजनीतिक संस्कृतियों के वर्गीकरण में बुनियादी कसौटी अधीनस्थों और सहभागियों की भूमिका पर बल देना है। राजनीतिक व्यवस्था के प्रति अभिविन्यस्त है और अपने जीवन पर इनके आगतों और निर्गतों के प्रभाव जैके कल्याण सम्बन्धी हित लाभ, कानून आदि के परिचित हैं, लेकिन उन्हें आगत संरचनाओं में भागीदार होने के लिए अभिमुख नहीं किया जाता है हो सकता है अथवा सहभागी या भागीदार (वे व्यक्ति जिन्हें आगत संरचनाओं और प्रक्रियाओं के प्रति अभिविन्यस्त किया जाता है और जिन्हें निर्णय और मांगों की अभिव्यक्ति में लगाया जाता है, या जो अपने बारे में यह समझते हैं कि वे इन कार्यों में लगे हुए हैं), हो सकते हैं। आमंड आगे कहते हैं कि राजनीति के प्रति अभिविन्यास में व्यक्ति के राजनीतिक अभिनेता के रूप में उसके अपने बारे में विचार शामिल है।

राजनीतिक संस्कृति और राजनीतिक व्यवस्था का आकारिकीय चित्रण
आमंड का विश्लेषण

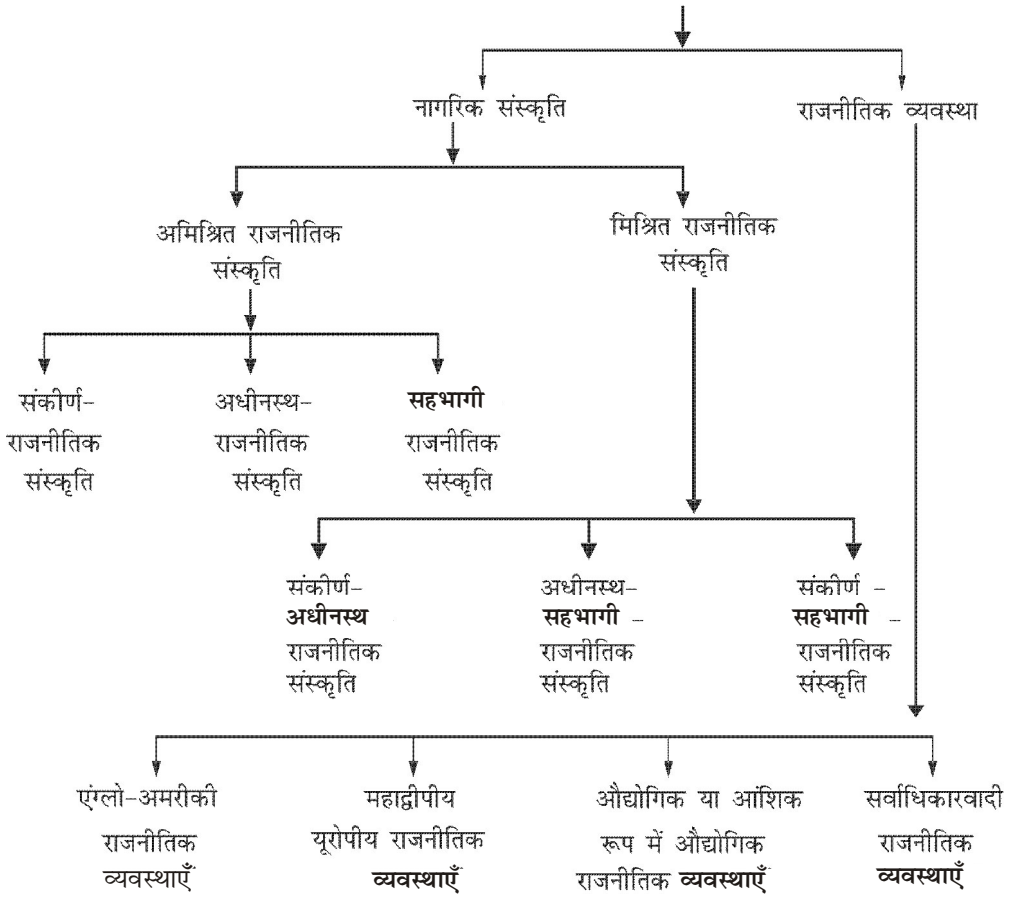

नोट

इस दृष्टिकोण के आमंड राजनीतिक संस्कृति का त्रिपक्षी विभाजन प्रस्तुत करते हैं जिके संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

1. **संकीर्ण राजनीतिक संस्कृति (Parochial Political Culture):** यह सीधे सादे परम्परागत समाजों में विद्यमान होती है जहाँ बहुत ही कम विशेषीकरण होता है और जहाँ अभिनेताओं की राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक भूमिकाओं का एक साथ निर्वाह करना पड़ता है। यहाँ हम किसी कबीले के सरदार के रूप में अविभिन्न भूमिका संरचना का प्रतिमान देखते हैं जो एक साथ प्रशासक, पादरी या पुरोहित के कार्यों के अलावा आर्थिक कार्यों को संपन्न करता है किन्तु उसके अधीन रहने वाले लोग राजनीतिक व्यवस्था के बारे में कोई ऐसी जागरूकता प्रदर्शित नहीं करते यद्यपि पूरे समुदाय के बारे में उनमें जागरूकता हो सकती है। हो सकता है कि विकास के कारण कुछ व्यक्तियों को केन्द्रीय राजनीतिक प्राधिकरण के अस्तित्व के बारे में अवश्य पता चल जाए लेकिन सफल व्यवस्था के बारे में उनकी भावनाओं ''का मूल्याँकन स्पष्ट रूप में उनके सामने नहीं आया है, जिसके उनके लिए मानकों की स्थापना की जा सके तथा जिसमें व्यवस्था के साथ उनके सम्बन्धों का विनियमन किया जा सके।

2. **अधीनस्थ-राजनीतिक संस्कृति (Subject-Political Culture):** यह वहाँ विद्यमान होती है जहाँ सम्पूर्ण व्यवस्था के प्रति और विशिष्ट रूप में इसके निर्गत पहलुओं के बारे में अभिविन्यास की बहुत ऊँची आवृत्ति होती है। यह अधीनस्थ या आश्रित उपनिवेशों में देखी जा सकती है जहाँ लोग अपनी राजनीतिक व्यवस्था के प्रति या तो गर्व महसूस करते है अथवा शत्रुता। अर्थात् वे अपने शासकों के निर्णयों को औचित्यपूर्ण मान कर उन्हें स्वीकार कर लेते हैं या अपने आत्म-निर्णय के अधिकार के नाम पर उनके खिलाफ संघर्ष करते हैं। यह दूसरी बात है कि आमंड लोगों को राजनीतिक व्यवस्था की अन्ध अस्वीकृति को औचित्यपूर्ण समझने पर कुछ अधिक बल देते हैं और वह उनकी शत्रुता सम्बन्धी भाग की अवहेलना कर देते हैं जिनके परिणामस्वरूप ऐके आन्दोलन होते हैं जो निर्णय-निर्माताओं के बनाए कानूनों को 'काले कानून' कहकर उनके प्राधिकार का खण्डन करते हैं और पूर्ण स्वराज्य की मांग करते हैं।

3. **सहभागी-राजनीतिक संस्कृति (Participant-Political Culture):** यह उन अत्यधिक विकसित समाजों में होती है जहाँ लोग अपने आपको दल के सक्रिय सदस्य मानकर राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय ढंग के भाग लेते हैं। वे अधिकारों और कर्तव्यों के बारे में अच्छी तरह के परिचित होते हैं। ''हर ज्ञतर पर व्यवस्था का मूल्याँकन और उसकी आलोचना की जाती है और आम तौर पर इके विवेकपूर्ण समझकर स्वीकार किया जाता है कि राजनीतिक क्रियाकलाप को समाज के भीतर व्यक्तियों और वर्गों की घनिष्ठ संवीक्षा के अधीन होना चाहिए। बहरहाल, आमंड इस बात को स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि क्योंकि राजनीतिक संस्कृतियाँ राजनीतिक दृष्टि के अधिक सजातीय होती है, इसलिए व्यक्तियों के बारे में यह नहीं समझना चाहिए कि वे राजनीतिक कार्यों के प्रति समान ढंग के अभिमुख हैं।

इसके अलावा, आमंड दो और चरों की ओर संकेत करते हैं जिनके बारे में ध्यान रखा जाना चाहिए। एक, अमिश्रित राजनीतिक संस्कृति की सभी किस्मों के अलावा, आमंड व्यवस्थित रूप में मिश्रित किस्म की राजनीतिक संस्कृति की ओर भी निर्देश करते हैं। यहाँ वह उन स्थितियों का निरूपण करते हैं जहाँ अभिविन्यासों के एक के अधिक प्रतिमानों का उल्लेखनीय अनुपात उपलब्ध है। इस प्रकार, वह तीन किस्मों का निर्धारण करते हैं: (1) संकीर्ण-अधीनस्थ-सहभागी राजनीतिक संस्कृति (parochial-subject-political culture), (2) प्रधीनस्थ-सहभागी-राजनीतिक संस्कृति (subject-participant-political culture), (3) संकीर्ण-सहभागी-राजनीतिक संस्कृति (parochial-participant-political culture) और नागरिक संस्कृति (civic culture)। दूसरे, राजनीतिक संस्कृतियाँ और राजनीतिक संरचनाएँ कभी स्थायी या स्थैतिक नहीं होती हैं तथा तीव्र वैज्ञानिक व प्रौद्योगिक परिवर्तनों के कारण सर्वसमता एवं सर्व-असमता की प्रक्रिया समय के साथ चलती रहती है। अपने अपको पूर्ण करने के लिए सर्वसमता की ओर या इसके दूर संचलन की प्रवृत्ति अपरिहार्य नहीं है। सम्भव है कि सर्वसमता के थोड़ा पहले संस्कृति के प्रतिमान किसी स्थान पर स्थिर हो जाए, अर्थात् ऐके स्थान पर जहाँ राजनीतिक व्यवस्था के बारे में व्यक्तियों की ठीक जानकारी होती है उके वे बर्दाशत भी करना चाहते हैं लेकिन

नोट

उसके संबन्धित होने की उनमें कोई इच्छा नहीं होती, और उसके बारे में उनकी कोई सकारात्मक और अनुकूल भावना भी नहीं होती। इसके विकल्प के रूप में, एक ऐके विकास प्रतिमान की स्थापना की जा सकती है जो उनमें सर्वसमता ला नहीं सकता अपितु, इस दशा के बहुत ही निकट पहुँचा देता है। विकास के इस प्रतिमान के, विशेष रूप में, ऐके समाजों में प्रकट होने की संभावना होती है जिनमें व्यक्तियों का आगत प्रक्रिया के लिए सकारात्मक रूप में अभिविन्यास होता है, अर्थात् ऐसी स्थितियों में, जिसमें लोगों की इच्छा अपने आपको अनुभव करा सकती है, या जहाँ, कम के कम लोगों की राय राजनीतिक दृष्टि के काफी प्रभावशाली हो जाती है जब प्रतिस्पर्धी नेताओं द्वारा ऐसा आवाहन किया जाता है।

4.2 समकालीन राजनीतिक संस्कृतियों की प्रवृत्ति (Trends in contemporary Political Culture)

आमंड राजनीतिक व्यवस्थाओं का प्रारूपात्मक चित्रण प्रस्तुत करते हैं जिके इस प्रकार, संक्षेप में, वर्णित किया जा सकता है:

एँग्लो-अमरीकी व्यवस्थाएँ– उन्नत पश्चिमी देशों जैके ब्रिटेन और अमरीका में मौजूद् यह पहली किस्म है जिसके मुख्य लक्षणों का इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है :

(क) इन व्यवस्थाओं की विशेषता बहुमूल्यधारी राजनीतिक संस्कृतियाँ हैं जो सजातीय अर्थ में सजातीय और सातत्वपूर्ण है कि उन्हें प्राप्त करने के बारे में राजनीतिक साध्यों और साधनों के बारे में आम सहमति पाई जाती है।

(ख) राजनीति एक खेल की तरह है जिसमें कई खिलाड़ी भाग लेते हैं, यद्यपि वे एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी होते हैं, वे अपनी भूमिका अदा करते हैं, लेकिन वे अपने अन्तरों को इतना अधिक नहीं बढ़ा लेते जिसके खेल का माहौल ही लड़ाई के मैदान का माहौल हो जाए।

(ग) राजनीति बाजार की तरह लगती है जिस जगह पर निर्णय-निर्माता मत प्राप्त करने एवं अपने लिए लोगों का समर्थन प्राप्त करने के लिए नियमों के रूप में अपना मंतव्य प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार, शासकों व शासितों, निर्वाचकों व निर्वाचितों और नेताओं व उनके अनुयायिओं के बीच सौदेबाजी की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है।

(घ) समाज की बहुलवादी स्वप्य होता है जिसमें कई दक्ष और हितबद्ध समूह इसलिए कार्यरत रहते हैं कि अपने-अपने हितों की अनुक्रिया में निर्णय-निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित कर सकें।

(ङ) यहाँ सत्ता और प्रभाव का विवरण होता है। इसलिए वहाँ नियंत्रण और सन्तुलन का पूर्ण और सुचारू ढंग के कार्य करने वाली व्यवस्था पाई जाती है। विधि संस्थाओं पर जन-संचार और सार्वजनिक शिक्षा के माध्यमों के नियन्त्रण रखा जाता है जिसके सत्तावादी शासन की सम्भावनाएँ कम या समाप्त कर दी जाती हैं; और

(च) अन्त में, यहाँ विभिन्न भूमिकाओं का स्थायित्व होता है। अलग-अलग संस्थाएँ अपने अलग-अलग कार्य करती हैं वे अन्य संस्थाओं के कार्य भी कर सकती हैं जिसके परिणामस्वरूप प्रशासक एक स्थिति में विधायक और दूसरी में न्याय-निर्णायक बन जाते हैं; अथवा नौकरशाह एक लिहाज के विधायक और दूसरे लिहाज के न्याय-निर्णायक हो जाते हैं, और इसी तरह इनकी भूमिकाओं में परिवर्तन होता रहता है।

यूरोपीय महाद्वीप की राजनीतिक व्यवस्थाएँ : यह दूसरी किस्म है जो फ्रांस, इटली, स्वीडन, नार्वे आदि यूरोप के कम विकसित पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों में कार्यरत है। इसके मुख्य लक्षणों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है।

(क) जहाँ समाज के विभिन्न वर्ग सांस्कृतिक विकास के विभिन्न प्रतिमानों की स्थापना करते हैं, वहाँ राजनीतिक संस्कृतिक खंडित हो जाती है, क्योंकि कई वर्ग अन्य वर्गों की अपेक्षा अधिक विकसित होते हैं। इसी कारण, राजनीति संस्कृति के साथ कई राजनीतिक उपसंस्कृतियों का एक सिलसिला बन जाता है जो या तो वैज्ञानिक

नोट

और प्रौद्योगिक नवोन्मेशों के प्रभावित होता है जो अब तक एक आश्रित देश के लोग थे। ऐसी संस्कृति का अधिकांश अतीत सामंतवादी युग के होता है और वह उपर्युक्त वर्ग के देशों के उच्चतर मूल्यों का अनुसरण करने का प्रयास करता है।

(ख) हरेक राजनीतिक उपसंस्कृति भूमिकाओं की अलग उपव्यवस्था का विकास कर लेती है जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न संस्कृतियाँ सम्पूर्ण व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु बन जाती है। अत: विधि-संस्थानगत ढाँचे का अध्ययन करने के पश्चात् यह भी आवश्यक है कि इसकी अवसंरचना पर एक नजर डाली जाए।

(ग) राजनीतिक सौदेबाजी की प्रक्रिया वास्तव में विद्यमान नहीं होती। इसके ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है जिसमें राजनीति एक खिलवाड़ बन जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि कई उपसंस्कृतियाँ आपस में युद्धरत हो जाती हैं अथवा एक दूसरे की अपेक्षा अपने को वरिष्ठ समझती है और इस प्रकार अपने मानकों को अन्य उप-संस्कृतियों के मानकों पर आरोपित करने का प्रयास करती है। इस प्रकार, सौदेबाजी की बजाए यहाँ शक्ति के लिए विभिन्न प्रतियोगी गुटों में युद्ध होने लगता है।

औद्योगीकरण के पूर्व की या आंशिक रूप में औद्योगीकृत राजनीतिक व्यवस्थाएँ : इस वर्ग में उन देशों की बहुत बड़ी संख्या आती है जो लम्बे अरके तक उप-निवेशी आधिपत्य में रहने के बाद अब स्वतन्त्र रूप में सामने आए हैं। ऐसी राजनीतिक व्यवस्था में शासक की राजनीतिक संस्कृति को शासितों की राजनीतिक संस्कृति पर आरोपित कर दिया जाता है। इसकी मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं।

(क) स्वामियों की राजनीतिक संस्कृति को अधीनस्थ (प्रजा) की राजनीतिक संस्कृति पर आरोपित कर दिया जाता है। इसके परिणामस्वरूप, शासित लोगों की राजनीतिक संस्कृति समाप्त हो जाती है और शासकों की राजनीतिक संस्कृति, जिके हर हालत में वरिष्ठ समझा जाता है, को उसके स्थान पर आरोपित कर दिया जाता है।

(ख) नेतागण पुराने और नए के बीच सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश कर सकते हैं और इस प्रकार उसमें ऐसी विशेषताओं का विकास कर सकते हैं कि इस व्यवस्था को औचित्यपूर्णता का नया स्रोत मिल सके। बहरहाल, इस बात की सम्भावना होती है कि हिंसा भड़क उठे और अगर चमत्कारी नेताओं का कच्चा चिट्ठा खोल दिया जाए या उनके स्थान पर उसी प्रकार के और नेतागण आ जाएँ तो उसके सारी व्यवस्था ही अस्थायी हो जाती है।

(ग) भूमिकाओं की एक ही संरचना के भीतर यहाँ दो या इसके भी अधिक राजनीतिक संस्कृतियाँ कार्यरत हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, विशेष परम्पराओं का सम्मान एवं पश्चिमी लोकतंत्र के तरीकों का अनुसरण करते हुए एक विशेष परिवार अथवा विशेष जाति सत्तारूढ़ रह सकती है।

सर्वाधिकारवादी राजनीतिक व्यवस्थाएँ : अन्त में, आमंड सोवियत संघ अथवा चीन जैके सर्वाधिकारवादी देश की स्थिति पर विचार करते हैं। इन व्यवस्थाओं की निम्नलिखित विशेषताएँ हो सकती हैं।

(क) इनकी औचित्यपूर्णता की स्वीकार्यता को कृत्रिम तरीके के तैयार किया जाता है। प्राधिकार के प्रति विशिष्ट अर्थविन्यास अनुरूपता और उदासीनता का मिश्रण होता है जिके केन्द्रीय नियन्त्रण या संचार साधनों और हिंसात्मक अभिकरणों द्वारा उत्पन्न किया जाता है।

(ख) जोरजबरदस्ती प्राधिकार के उपयोग का सबके बड़ा साधन हो जाता है। सभी संगठनों के चारों ओर जोरजबरदस्ती का वातावरण छाया होता है जिके एक सर्वशक्तिमान राज्य तैयार करता है; और

(ग) शक्ति का सर्वकेन्द्रण होता है जो प्राधिकार के विवरण के सिद्धांत को नकारता है। सत्तारूढ़ व्यक्ति नौकरशाही, पुलिस और केना के समर्थन पर निर्भर रहते हैं।

राजनीतिक संस्कृति में "न केवल राजनीति के प्रति आवृत्तियाँ, राजनीतिक मूल्य, विचारधाराएँ, राष्ट्रीय चरित्र और सांस्कृतिक आचारतत्व शामिल हैं, बल्कि उसमें राजनीति की शैली, विधियाँ और सारवान रूप भी आते हैं।" इसी कारण, राजनीतिक संस्कृति की अलग-अलग किस्मों की खोज की जा सकती है। देश के राजनीतिक जीवन में केना की भूमिका की ओर विशेष ध्यान देते हुए प्रो. फाइनर ने राजनीतिक संस्कृति के तीन चरों का सुझाव दिया है।

नोट

1. **परिपक्व राजनीतिक संस्कृति :** जिस रूप में यह ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया और नीदरलैंड्स में उपलब्ध है, उसके पता चलता है कि राजनीतिक सर्वसम्मति और इसके संगठन की मात्रा बहुत ऊंची है; इस बात की आवश्यकता बहुत कम होती है कि सरकार सशस्त्र केनाओं के समर्थन पर निर्भर रहे; और इस परिस्थिति के बहुत देर तक अभ्यस्त होने के कारण न केवल जनता ने, बल्कि सशस्त्र केनाओं ने भी असैनिक सत्ता की सर्वोच्चता के सिद्धांत में पूर्ण विश्वास करना आरम्भ कर दिया है।
2. **विकसित राजनीतिक संस्कृति :** यह ऐके समाज की ओर निर्देश करती है जहाँ जनता सुसंगठित है, लेकिन समय-समय पर यह या तो इसकी संस्थाओं और प्रक्रियाओं की औचित्यपूर्णता पर या जो इनके कारण पदों पर आसीन व्यक्ति होते हैं, विचारात्मक दृष्टि के बंट जाते हैं। हम देखते हैं कि सैनिक दबावों के कारण असैनिक सरकारों को या तो खतरा बना रहता है या कई बार उन्हें नुकसान भी पहुँचाया जाता है और जनसाधरण को या तो शस्त्रों की ताकत के खामोश कर दिया जाता है या वे राजनीतिक दृष्टि के बहिष्कृत समझे जाने में सुख समझते हैं। मिस्र, अलजीरिया और क्यूबा जैके देशों को इस वर्ग में रखा जा सकता है।
3. **निम्न राजनीतिक संस्कृति :** यह उन देशों में पाई जाती है जहाँ की जनता संकीर्णमना और अल्पगठित होती है और शासन अथवा सत्तारूढ़ व्यक्तियों के औचित्य पर विभक्त होती है। ऐके देशों में जनमत इनता अधिक कमजोर और बंटा हुआ होता है कि जनता प्राधिकारवादियों के नियमों के प्रति कोई विरोध प्रदर्शित नहीं कर सकती। इस वर्ग में दक्षिण वियतनाम, सीरिया, बर्मा और इन्डोनेशिया जैके देश रखे जा सकते हैं।

राजनीतिक संस्कृति का स्वरूप और उप-संस्कृति (The Nature of Political culture and Sub-cultures)

सामान्यतया यह धारणा प्रचलित है कि स्थिर और विकसित सामाजों में राजनीतिक संस्कृति समरूप होती है। वास्तव में यह धारणा भ्रांतिपूर्ण है। ऐके देशों में भी विभिन्न गुट पाए जाते हैं। जहाँ एक गुट तथा अन्य गुटों में भेद स्पष्ट उभर आते हैं, वहां राजनीतिक-उप-संस्कृति का मौजूद होना माना जा सकता है। उप-संस्कृति पूर्णतया पृथक अभिवृत्तियों, विश्वासों तथा मूल्यों का समूह नहीं होती है बल्कि ऐके दृष्टिकोणों का समूह होती है जिनके कुछ तत्त्व दूसरी उप-संस्कृतियों में मौजूद रहते हैं। इस तरह भारत में दक्षिण के राज्य विशेषकर तमिलनाडु में तमिल लोगों की यह मान्यता है कि उनकी अपनी पृथक संस्कृति है। इस संस्कृति को उप-संस्कृति कहा जा सकता है और एक ही राजनीतिक संस्कृति में ऐसी अनेक उप-संस्कृतियाँ हो सकती हैं। अमरीका में नीग्रो लोग भी ऐसी ही अपनी पृथक संस्कृति मानते हैं। किसी देश में अनेक उप-संस्कृतियों का होना विभाजनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करे यह आवश्यक नहीं है। वास्तव में अधिकांश राजनीतिक संस्कृतियाँ विषम रूप ही में रहती हैं। ल्यूशियन पाई ने ठीक कहा है कि किसी भी समाज में एक सी राजनीतिक संस्कृति नहीं पाई जाती है।

ऐसा हो सकता है कि किसी राजनीतिक समाज में कोई भी उप-संस्कृति नहीं हो। आधुनिक विश्व में अनेक बहुत छोटे-छोटे राज्य हैं, जिनमें उप-संस्कृतियों की परिस्थितियाँ ही नहीं होती हैं। फिर भी हर राजनीतिक व्यवस्था में, चाहे वह छोटी हो या बड़ी शासकों की संस्कृति और जनसाधारण की संस्कृति में एक आधारभूत अन्तर पाया जाता है। जिन लोगों के हाथ में सत्ता नहीं होती है। इस आधार पर दो प्रकार की उप-संस्कृतियाँ– (क) अभिजनों की उप-संस्कृति (elite sub-culture) और (ख) जन-साधारण की उप-संस्कृति (mass sub-culture) के नाम के जानी जाती हैं।

अधिकांश विचारक इस विभाजन को किसी न किसी रूप में स्वीकार करते हैं, किन्तु सभी इन दोनों संस्कृतियों पर समान रूप के बल नहीं देते हैं। विकसित राज्यों में अगर वे लोकतांत्रिक प्रकार के हैं तो इन दोनों उप-संस्कृतियों में अन्तरों की खाई अधिक गहरी नहीं होती है। परन्तु विकासशील राज्यों में ये दोनों उप-संस्कृतियाँ विपरीत दिशा में जाती देखी जा सकती हैं। भारत का ही उदाहरण लें तो यह स्पष्ट देखने को मिलेगा कि वहां अभिजन वर्ग की संस्कृति आम जनता की संस्कृति के बहुत भिन्नता रखने लग गई थी। संविधान का 1976 का 42वां संशोधन इन दोनों उप-संस्कृतियों के बीच तेजी के बढ़ती हुई दरार को पाटने का प्रयत्न कहा जा सकता है। विकासशील राज्यों में अनेक राजनीतिक समस्याएँ केवल इस कारण ही उत्पन्न हो रही हैं कि अभिजन अपनी संस्कृति के अलगपन को बनाए रखना चाहते हैं, अर्थात् सत्ता के चिपके रहना चाहते हैं।

नोट

एलेन बाल ने राजनीतिक संस्कृति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "क्या समाज के सदस्य राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाते हैं और सरकारी सक्रियता के लाभ प्राप्त करने की आशा रखते हैं अथवा क्या कोई ऐसा मूक एवं निष्क्रिय संबन्ध है जिसके व्यक्ति सरकार की सक्रियता के बारे में बहुत थोड़ा जानते हैं और निर्णयकारी प्रक्रिया में भाग लेने की आशा नहीं रखते, इसके अनुसार राजनीतिक संस्कृतियों का वर्गीकरण किया जा सकता है। आमन्ड तथा वर्बा ने राजनीतिक संस्कृतियों के अपने तुलनात्मक अध्ययन में इन्हें सहभागी राजनीतिक संस्कृतियाँ (participating political culture) तथा आत्म–सापेक्ष राजनीतिक संस्कृतियाँ (subject political culture) कहकर परिभाषित किया है। वैके इन्होंने राजनीतिक संस्कृति को– (क) क्षेत्रीय (ख) आत्म–सापेक्ष और (ग) सहभागी कहकर इनके तीन शुद्ध प्रकारों को भी परिभाषित किया है। उनका मत है कि अधिकांश समाजों में यह विविध संस्कृतियाँ मिश्रित रूप में ही पाई जाती हैं। इनके अनुसार किसी राजनीतिक समाज में विशिष्ट मूल्यों तथा अभिवृत्तियों पर कितना बल दिया गया है इसके आधार पर सम्पूर्ण सांस्कृतिक प्रतिरूप के बारे में जाना जा सकता है।

विकासशील राज्यों में अधिकांशत: परम्परागत और आधुनिक संस्कृतियों का मिश्रण पाया जाता है। किन्तु इन देशों की राजनीतिक संस्कृतियों का यह लक्षण इके ब्रिटेन की राजनीतिक संस्कृति के अनुरूप नहीं बना पाता। वहां संस्कृति में एकता व सामंजस्य है जबकि विकासशील राज्यों में परम्परागत संस्कृति का सम्बन्ध जनसाधरण के है और आधुनिक संस्कृति का सम्बन्ध अभिजनों शासकों के है। इन देशों में इन दोनों में संघर्ष, दिशा–विरोध और असंगति के कारण यह राजनीतिक व्यवस्थाओं को तोड़ने की शक्ति बन गई है।

नोट्स संस्कृतियों को परम्परागतता और आधुनिकता के रूप में भी देखा जाता है। ब्रिटिश राजनीतिक संस्कृति, परम्परा तथा आधुनिकता का मिश्रण है।

संस्कृतियों में बाकी के अन्तर विशेष नहीं माने गये हैं। इनके अन्य वर्गीकरण में कोई तथ्यात्मक अन्तर नहीं है। किन्तु अधिकतर देशों में अभिजनों और सर्वसाधारण की उप–संस्कृतियाँ उत्तरोत्तर पृथक और विशिष्ट लक्षणों के युक्त होती जा रही हैं। इस कारण, इनके पृथक–पृथक अध्ययनों तक की बात कही जाने लगी है। ल्यूशियन पाई ने लिखा है, कि "दोनों प्रकार की संस्कृतियों के अध्ययन के तरीके भी भिन्न हैं। अभिजनों की राजनीतिक संस्कृति का समुचित अध्ययन करने के लिए हमें विचारधाराओं की व्याख्या करनी होगी, कार्य संचालन संहिताओं की विशिष्टताओं को आंकना होगा और उच्च–स्तरीय राजनीतिक संस्कृतियों का अध्ययन जनमत को मापने के आधुनिक तरीकों और सर्वेक्षणशोध की उन्नत तकनीकों का विकास करना होगा। इन दोनों ही प्रकार की संस्कृतियों का, जो राजनीतिक संस्कृति के भागों के रूप में सभी समाजों में देखने को मिलती है, काफी महत्त्व है इन दोनों में के जो उप–संस्कृति अधिक बलवती है उसी पर राजनीतिक संस्कृति की प्रकृति निर्भर करती है। ज्यों–ज्यों जनता में राजनीतिक चेतना आती जाती है त्यों–त्यों जन उप–संस्कृति अभिजनी उप–संस्कृति के लक्षणों के युक्त होने लगती है, जैसा कि माइरन वीनर ने भारत के संदर्भ में लिखा है कि "यहाँ राजनीतिक प्रक्रिया में बहुसंख्यक जन–समुदाय की संस्कृति की आधुनिक विशेषताओं को वह ग्रहण कर लेगी और इस प्रकार वह भारत के विशिष्ट वर्ग की संस्कृति भारत में पृथक बनी रहेगी, शायद निकट भविष्य में व्यावहारिक नहीं रहेगा। अगर भारत अपने राजनीतिक संरचनात्मक ढांचे को पाश्चात्य जगत की मूल्य–व्यवस्था पर ही आधारित रखने के बजाय समाजवादी मूल्य–व्यवस्था अपनाकर राजनीतिक विकास के मार्ग पर आगे बढ़ता है तो यह दो प्रकार की उप–संस्कृतियाँ अधिक समय तक पृथक–पृथक नहीं रह पाएँगी। भारत के संविधान में किया गया 42वां संशोधन इस प्रवृत्ति का महत्त्वपूर्ण प्रेरक बन सकेगा ऐसी सम्भावनाएँ हैं।

राजनीतिक संस्कृति की प्रकृति और उप–संस्कृतियों के विवेचन के यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक संस्कृति में कई उप–संस्कृतियाँ हो सकती हैं। इन उप–संस्कृतियों में साम्य या विषमता हो सकती है। किन्तु, इस सन्दर्भ में कुछ बातें विशेष रूप के ध्यान देने की हैं जो संक्षेप में इस प्रकार हैं–(क) राजनीतिक दृष्टि के विकसित समाजों में राजनीतिक समरूपता हो यह आवश्यक नहीं है। समान्यतया सभी समाजों में राजनीतिक संस्कृति समरूप नहीं होती है। अमरीका

नोट

में नीग्रो और अन्य गोरे लोगों की उप-संस्कृतियाँ भिन्न-भिन्न हैं। (ख) राजनीतिक संस्कृति सामान्यतया अनेक उप-राजनीतिक संस्कृतियों का मिश्रण ही होती है। (ग) राजनीतिक संस्कृतियों में उप-संस्कृतियों का मिश्रण साम्यता या विषमता या विरोध दोनों में के किसी भी प्रकार का रूप रख सकता है। (घ) उप-संस्कृतियों में विरोध राजनीतिक विकास में सहायक और उसका प्रेरक होता है। और (च) राजनीतिक संस्कृति एक राजनीतिक व्यवस्था के दूसरी राजनीतिक व्यवस्था में तत्त्व की दृष्टि के भिन्नता नहीं रखती है। यह अन्तर केवल मात्रात्मक ही होते हैं।

राजनीतिक संस्कृति के आधार (The Foundations of Political Culture)

किसी राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक संस्कृति की विशेष प्रकृति किस प्रकार बनती है, इस पर ध्यान देना आवश्यक है। राजनीतिक संस्कृति कहीं समरूप देखने को मिलता है तो कहीं यह विविध रूप वाली होती है। इसके यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण बन जाता है कि राजनीतिक संस्कृतियों के ऐके कोन के आधार हैं जिनके उनकी प्रकृति का निर्धारण होता है। चाहे राजनीतिक संस्कृति विविध रूप वाली या समरूप प्रकृति के युक्त हो, वह कई परस्पर संबन्धित कारकों को जन्म देती है। इनमें के कुछ प्रमुख कारकों या आधारों का यहाँ उल्लेख करना प्रांसगिक होगा।

(क) ऐतिहासिक आधार (Historical Foundations) – राजनीतिक विकास के विवेचन में हम यह चर्चा कर चुके हैं कि किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के लिए अतीत के पूर्णतया नाता तोड़ लेना सम्भव नहीं है। सोवियत रूस तथा चीन जैके साम्यवादी राज्य अपनी सम्पूर्ण राज्य शक्ति के प्रयोग के बावजूद अतीत के प्रभावों के अपने समाजों को उन्मुक्त नहीं कर पाये हैं। अत: राजनीतिक संस्कृति की प्रकृति को विशेष रंग प्रदान करने वाला प्रमुख आधार, संबन्धित राजनीतिक व्यवस्था का इतिहास या अतीत कहा जा सकता है। ब्रिटेन और फ्रांस के उदाहरण लेकर एलेन बाल ने इस तथ्य को समझाने का प्रयास किया है। ब्रिटेन में राजनीतिक निरन्तरता, वहां पुराने मूल्यों को नये दृष्टिकोणों में विलय होने देने की सहज प्रक्रिया के ही बनी रही है। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन हिंसात्मक आंतरिक कलह या विदेशी शक्ति के प्रभुत्व के भी मुक्त रहने के कारण राजनीतिक संस्कृति की निरन्तरता बनाए रखने में सफल रहा है। "ऐतिहासिक विकास की दृष्टि के फ्रांस इसके सर्वथा भिन्न उदाहरण प्रस्तुत करता है। 1789 की क्रांति ने उस समय मौजूद राजनीतिक संरचनाओं को एक झटके के उखाड़ फेंका और हम कह सकते हैं कि उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों के राजनीतिक संघर्ष एवं प्रतिद्वंदी आंदोलन अधिकांश में उस क्रांतिकारी उथल-पुथल के निर्मित अभिवृत्तियों, मूल्यों तथा विश्वासों द्वारा निश्चित किए गये।" फ्रांस में इस प्रकार के विशेष इतिहास के कारण आज भी राजनीतिक संस्कृति में उप-संस्कृतियाँ संघर्षशील रूप धारण किये हुए हैं। वहां 1789 के बाद सोलह बार संविधान बनाए गए, किन्तु सांस्कृतिक साम्य अभी भी स्थापित नहीं हो पाया है। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ने फ्रांस में राजनीतिक संस्कृति को ऐसी विलक्षणता प्रदान कर दी कि सरकारों के अस्थायित्व की लाइलाज बीमारी के फ्रांस 1958 तक ग्रस्त रहा। केवल 1946 के 1958 तक के अन्तराल में 245 बार मंत्रिमण्डल बदले और पांचवें गणतंत्र के 1958 के संविधान में कुछ अपरम्परागत व्यवस्थाओं के उपरान्त भी राजनीतिक संस्कृति के संघर्ष राजनीतिक व्यवस्था के मंच पर जब तब प्रकट होते रहते हैं।

"अफ्रीका और एशिया के कई नये राज्यों पर यूरोपीय औपनिवेशिक प्रभुत्व का प्रभाव वह महत्त्वपूर्ण कारक है जो हमें इन राज्यों की राजनीतिक संस्कृति के कुछ पहलुओं के बारे में ज्ञान प्रदान करता है। इस औपनिवेशिक प्रभाव के विस्तार के विषय में विवाद है, किन्तु उदाहरण के लिए, ब्रिटिश तथा फ्रांसीसी नियंत्रण के उत्पन्न भिन्न-भिन्न प्रभावों को पहचाना जा सकता है।" भारत तथा अल्जीरिया के अतीत के संदर्भ में दोनों देशों में राजनीतिक संस्कृतियों की भिन्नताओं को समझा जा सकता है।

केवल औपनिवेशिक अतीत ही के अराजनीतिक संस्कृति को नहीं समझा जा सकता। भारत और श्रीलंका दोनों ही ब्रिटेन के उपनिवेश थे, किन्तु भारत में लम्बा राष्ट्रीय आंदोलन संघर्ष के रूप में चलता रहा तब उके स्वतन्त्रता मिली; जबकि श्रीलंका में एक दिन अचानक ही (4 फरवरी 1948 को) लोग स्वतन्त्र कर दिए गए। यहाँ किसी प्रकार का राष्ट्रीय आंदोलन नहीं चलाया गया। इस कारण, दोनों देशों की राजनीतिक संस्कृतियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की बन गई हैं। इसके यही निष्कर्ष निकलता है कि किसी भी देश की राजनीतिक संस्कृति का महत्त्वपूर्ण आधार उसका इतिहास होता है। विकासशील राज्यों में सांस्कृतिक विविधताएँ इसी आधार पर समझी जा सकती हैं।

नोट

(ख) भौगोलिक आधार (Geographical foundations)– ऐतिहासिक विकास के अतिरिक्त राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में सहायक दूसरा महत्त्वपूर्ण कारक भूगोल है। "ब्रिटेन द्वीप है और इस द्वीपीय अलगाव ने ब्रिटेन को विदेशी आक्रमणों के सुरक्षित रखा था। विकासशील संयुक्त राज्य अमरीका के असीम सीमान्त के विषय में कहा जाता है कि उसने संजाती भिन्नताओं के बावजूद स्वतन्त्र समतावादी राजनीतिक मूल्यों की रचना की, परन्तु उसके पास प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता भी थी और शत्रु पड़ोसियों के वह सुरक्षित था। पश्चिम जर्मनी के निवासियों के बारे में कहा जाता है कि वे संघीय गणतन्त्र की मौजूदा राजनीतिक संरचनाओं को लिए स्वीकार करते हैं, क्योंकि भौगोलिक दृष्टि के वे रूस तथा अमरीका द्वारा निर्देशित अन्तर्राष्ट्रीय गठबन्धनों के मध्य स्थित हैं। वे जानते हैं कि पश्चिम जर्मनी की राजनीति में किसी भी प्रकार की अस्थिरता का परिणाम अन्तर्राष्ट्रीय तनाव की वृद्धि होगी।"

भारतीय उप-महाद्वीप की भौगोलिक स्थिति के राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में भौगोलिक कारक के प्रभाव को अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। भारत के विभाजन के बाद पाकिस्तान के दो भागों की भौगोलिक दूरी इनको अन्ततः पृथक राज्य बनाकर रही, क्योंकि इन दोनों भागों की राजनीतिक संस्कृति इतनी विरोधी बन गई थी कि किसी प्रकार का भी प्रयत्न यहाँ तक कि भारत का भय और धार्मिक एकता-सूत्र भी इनकी राजनीतिक संस्कृतियों को साम्य की अवस्था में नहीं ला सका। नेपाल की विशेष भौगोलिक स्थिति ने ऐसी राजनीतिक संस्कृति बना दी कि भारत में सम्पर्को व भारत में लोकतांत्रिक प्रवृत्तियों का कुछ क्षणिक प्रभाव ही रहा है। राजनीतिक व्यवस्था संस्कृति के दबावों के कारण पुनः उसी ढर्रे पर चल निकली। अतः किसी देश की राजनीतिक संस्कृति का भूगोल भी महत्त्वपूर्ण नियामक कारक बन जाता है।

(ग) सामाजिक-आर्थिक संरचना का आधार (The foundation of socio-economic structures)– राजनीतिक संस्कृति की प्रकृति में, जो ऐतिहासिक और भौगोलिक कारणों के विशेष प्रकार की बन जाती है, परिवर्तन लाने या उसको उसी रूप में बनाए रखने के लिए समाज विशेष की सामाजिक-आर्थिक संरचना ही अधिक उत्तरदायी होती है। मुख्य रूप के शहरी और औद्योगिक समाज अधिक सोशलिस्ट या जटिल समाज होता है जहाँ तीव्र संचार साधनों को बढ़ावा मिलता है। ऐके समाज में शैक्षिक स्तर उच्चतर होते हैं, गुटों और समूहों की संख्या में वृद्धि हो जाती है और निर्णयकारी प्रक्रिया में भाग लेने वालों की संख्या अनिवार्यतः अधिक व्यापक होती है। ग्रामीण समाज परिवर्तन तथा अभिनवीकरण के प्रति उन्मुख नहीं होते और जिन राज्यों की जनसंख्या का अधिकांश किसान वर्ग होता है, वे अधिक अनुदार होते हैं, तथा इन लक्षणों वाले समाज का लोगों की राजनीतिक अभिवृत्तियों तथा मूल्यों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। किसी प्रदेश विशेष के विपरीत सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रति निष्ठा औद्योगिक समाज का लक्षण है यद्यपि ऐसा हमेशा नहीं होता है फिर भी यह सामान्यतया देखने में आता है किन्तु साधारणतया जिन समाजों में जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि करता है, वहाँ लोगों की अनुदार अभिवृत्तियों के साथ सरकारी गतिविधियों के प्रति मनमुटाव तथा उसके क्षेत्र के बारे में अज्ञान जुड़ जाते हैं। ऐके समाजों में केन्द्रीय प्रशासन जो कुछ करता है उसी का महत्त्व होता है और शासन की नीतियाँ कैके बदली या प्रभावीं की जाती हैं, उसके बारे में कम जानकारी होती है।

राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में आर्थिक संरचना के भी अधिक महत्त्व सामाजिक संरचना का होता है। समाज में बहुलता और विविधता वाले वर्गों का होना राजनीतिक संस्कृति में अनेक उप-संस्कृतियाँ स्थापित कर देता है, जिनमें समरूपता या विषमता के लक्षण सम्पूर्ण राजनीतिक संस्कृति पर निर्णयकारी ढंग के प्रभाव डालते हैं। अगर समाज भाषा, धर्म, जातीयता, संजातीयता और अतीत के पृथक-पृथक अनुभवों के कारण पृथकता की प्रवृत्तियाँ रखता है तो राजनीतिक संस्कृति पर इन लक्षणों के दबाव पड़े बिना नहीं रह सकते हैं। 1947 के पहले भारत दो प्रकार का था। एक ब्रिटिश भारत और दूसरा भारतीय भारत (जहाँ राजा महाराजाओं का शासन था) था। स्वतन्त्रता के बाद 1956 के राज्यों के पुनर्गठन के बावजूद अभी कुछ देशी रियासतों वाले प्रदेशों में ऐसी उप-संस्कृतियों को समाप्त करना सम्भव नहीं हुआ है। इसके अलावा भी भारत में अनेक उप-संस्कृतियों को समाप्त करना सम्भव

नोट

नहीं हुआ है। इसके अलावा भी भारत में अनेक उप-संस्कृतियाँ और विशेषकर दक्षिण के लोगों की उप-संस्कृति जिके वे उप-राष्ट्रीयता तक कहते हैं, भारत की राजनीतिक संस्कृति में अनेक बार तनाव व संकट के क्षण लाने में सफल रही है। विकासशील राज्यों में राजनीतिक व्यवस्थाओं की उथल-पुथल, इसी प्रकार की उप-संस्कृतियों की विद्यमानता के, एक राजनीतिक संस्कृति के विकसित न हो सकने के कारण होती रही है।

(घ) समाज की सामान्य संस्कृति का आधार (The foundations of general culture of society) – राजनीतिक संस्कृति का पोषण सामान्य संस्कृति के ही होता है। राजनीतिक संस्कृति समाज की संस्कृति के सम्बन्धित, उस पर आश्रित और कभी-कभी पूर्णतया आधारित हो जाती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि राजनीतिक संस्कृति का, संस्कृति के कोई पृथकता या उसकी स्वायत्तता नहीं होती है। राजनीतिक संस्कृति के अर्थ में हम यह देख चुके हैं कि राजनीतिक संस्कृति समाज की संस्कृति का भाग होते हुए भी उसके स्वायत्तता रखती है। अत: राजनीतिक संस्कृति का मौलिक और स्थायी आधार समाज की सामान्य प्रकृति ही कही जा सकती है।

अधिकांश विकासशील राज्यों में राजनीतिक गड़बड़ी का प्रमुख कारण यही है कि उनमें सामान्य संस्कृति के विपरीत आधुनिक राजनीतिक संस्कृति ऊपर के लाद दी गई जो समाज के द्वारा पोषण प्राप्त न कर पाने के कारण प्रभावी नहीं रह सकी है। इसके विकासशील राज्यों में राजनीतिक व्यवहार के सुनिश्चित प्रतिमान विकसित नहीं हो पाए और इन देशों में राजनीतिक अस्थायित्व और क्रांतियों का बोलबाला रहने लगा।

(च) विचारधाराओं का आधार (The ideological fundation) – वर्तमान शताब्दी विचारधाराओं की शताब्दी है। 1848 के पहले विभिन्न विचारधराएँ तो थीं पर उनमें पारस्परिक विरोध की स्थिति नहीं थी। किन्तु साम्यवादी घोषणापत्र के 1848 में प्रकाशन और 1917 में सोवियत रूप में साम्यवाद की स्थापना, इटली और जर्मनी में दो विश्व युद्धों के बीच के अन्तराल में फासिज्म और नाजिज्म का प्रभुत्व, अनेक विरोधी विचारधाराओं को टकराव की स्थिति में ला देता है। गुट निरपेक्ष राज्यों का समाजवादी नारा और पूंजीवाद और साम्यवाद का विश्व मंच पर हर जगह टकराव, माओवाद का चीन में प्रचार राजनीतिक संस्कृतियों के सृजन की नई शक्ति बन गया है। आज अनेक देशों में सैनिक बल के प्रयोग के पूरे समाज में जबरदस्ती नई राजनीतिक संस्कृतियाँ आरोपित की जा रही हैं जो अगर एक पीढ़ी तक बनी रह सकी तो स्थायित्व प्राप्त कर लेगी। अत: विचारधारा, राजनीतिक संस्कृति का आधुनिकतम कारक बन गई है। विकासशील राज्यों में अब विचारधाराओं के स्थान पर विचारधाराओं के अनुकूल राजनीतिक संस्कृतियों का प्रत्यारोपण किया जाने लगा है। इस तरह, विचारधारा भी राजनीतिक संस्कृति का आधार बन गई है।

राजनीतिक संस्कृति की उत्पत्ति के कारक या आधार एक नहीं अनेक है। जिन कारकों का हमने ऊपर उल्लेख किया है वे ही इसके आधार हों ऐसा निष्कर्ष नहीं निकालना है। आधुनिक समय के जटिल समाजों में व्यक्ति के राजनीतिक विश्वास इतने स्त्रोतों के प्रभावित और निर्मित होते हैं कि सबकी सूची बना सकना सम्भव ही नहीं दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, धर्म आज भी राजनीतिक क्रिया के बारे में लोगों के विश्वासों को बनाने में आधारभूत हैं। भारत के गणतंत्र बनने के बाद के पांच राष्ट्रपतियों में के दो का मुसलमान होना मात्र भारतीय मुसलमानों की राजनीतिक आस्थाओं में परिवर्तन का कारक माना जा सकता है। अत: राजनीतिक संस्कृति के अनेक आधार व कारक हैं जिनमें के उपरोक्त को हमने प्रमुख मानकर इस विवेचन में सम्मिलित किया है।

राजनीतिक संस्कृति और संस्कृति (Political Culture and Culture) –

वर्बा ने लिखा है कि 'राजनीतिक संस्कृति और समाज की अपेक्षाकृत अधिक सामान्य सांस्कृतिक व्यवस्था के बीच अन्तर विश्लेषणात्मक है। राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति का एक अभिन्न पहलू है।" राजनीतिक संस्कृति में व्यक्ति के राजनीतिक विश्वासों को प्रमुखता प्राप्त रहती है, जबकि सामान्य संस्कृति में मानव के सभी विश्वासों को सम्मिलित किया जाता है। हम ऊपर इस बात का वर्णन कर चुके हैं कि किसी समाज की सामान्य संस्कृति के द्वारा राजनीतिक संस्कृति का निर्धारण और पोषण होता है। संस्कृति के आधारभूत विश्वास और मूल्य आदर्श ही सामान्यतया राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में मुख्य भूमिका अदा करते हैं। हर व्यक्ति की राजनीति के बारे में आस्थाएँ, मान्याएँ और विश्वास

नोट

उसके अन्य विश्वासों, आस्थाओं और मान्याताओं द्वारा ही निर्धारित होते हैं। व्यक्ति के ऐके सामान्य विश्वासों को ही समाज की सामान्य संस्कृति कहा जाता है।

राजनीतिक संस्थाओं व प्रक्रियाओं के बारे में व्यक्ति, राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया में अपने विश्वास बनाता है। यह समाजीकरण बहुत कुछ समाज की सांस्कृतिक व्यवस्था के द्वारा प्रेरित या सीमित होता है। इसके और भी अभिकरण हैं, किन्तु उसमें के प्रमुख का सम्बन्ध समाज की सामान्य संस्कृति के ही है। अत: राजनीतिक आस्थाएँ, सामान्य संस्कृति में मान्य मूल्यों और आस्थाओं के द्वारा ही प्रेरित और निर्मित होती है। उदाहरण के लिए, अपने सामान्य जीवन में एक व्यक्ति की प्रवृत्ति दूसरों पर आधिपत्य जमाने की है तो उसका राजनीतिक जीवन भी इसी तरह की प्रवृत्ति के सक्रिय होगा। इसके उसकी राजनीतिक आस्थाएँ भी इसके अनुरूप हो जाएँगी। अत: सामान्य संस्कृति के मूल्यों और विश्वासों के राजनीतिक संस्कृति अप्रभावित नहीं रह सकती। मानव प्रकृति के सम्बन्ध में व्यक्ति के दृष्टिकोण का राजनीतिक अभिनेताओं के प्रति उसके दृष्टिकोण के निकट का सम्बन्ध होता है।

सामान्य संस्कृति और राजनीतिक संस्कृति के इस वर्णन के यह नहीं समझना है कि सामान्य संस्कृति ही राजनीतिक संस्कृति को आधार, पोषण और रूप प्रदान करती है। वैके इन दोनों में सम्बन्ध ही नहीं पारस्परिकता भी रहती है। कई समाज में राजनीतिक संस्कृति का समाज की सामान्य संस्कृति पर भी निर्णयकारी प्रभाव देखा गया है। अनेक स्वेच्छाचारी और सर्वाधिकारी शासन व्यवस्थाओं में स्वतन्त्र रूप के राजनीतिक संस्कृति का सृजन करके उके समाजों पर प्रतिरोपित कर दिया गया है जिसके न केवल यह नवीन राजनीतिक संस्कृति, व्यक्ति की मूल्य व्यवस्था बन गई, अपितु इसके सम्पूर्ण समाज में मूल्य व्यवस्था एवं आस्थाओं को बदलने की प्रेरणा ली गई, जिसके सामान्य संस्कृति का इस नई राजनीतिक संस्कृति के अनुरूप रूपान्तरण हो गया। सोवियत रूस में यही किया गया है। अत: यह नहीं समझना चाहिए कि राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति की एक ऐसी उप-संस्कृति है जो उसके ऊपर ही आश्रित रहती है। यह तो लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में भी नहीं होता है। सामान्य संस्कृति अगर परम्परागतवादी प्रकृति रखती है तब इसी राजनीतिक शक्ति के प्रयोग के बलपूर्वक आधुनिक बनाने के प्रयास किये जा सकते हैं। इस प्रकार के प्रयत्नों के राजनीतिक और सामाजिक दोनों ही प्रकार की संस्कृतियों में परिवर्तन लाने के प्रयास किये जा सकते हैं। हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन और माओ त्के-तुंग ने ऐके ही प्रयत्न किये जिससे वे उस कालावधि में अवश्य सफल भी रहे थे। केस्ट्रो, क्यूबा में शायद यही प्रयत्न कर रहा है।

अत: राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति का अभिन्न भाग होते हुए भी उसके बहुत कुछ स्वायत्तता रखती है। इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है और दोनों एक दूसरे को कम या अधिक मात्रा में प्रभावित करती रहती हैं। सामान्य संस्कृति व्यापक अवधारणा है, जबकि राजनीतिक संस्कृति बहुत सीमित अवधारणा है। प्रथम में व्यक्ति की सम्पूर्ण मूल्य व्यवस्था, आस्थायें और विश्वास सम्मिलित होते हैं जबकि, दूसरी में, व्यक्ति के केवल राजनीतिक क्रिया के या राजनीतिक वस्तुओं के सम्बन्धित मूल्य, आस्थायें और विश्वास आते हैं। जिस प्रकार राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था की एक विशेष उप-व्यवस्था है ठीक उसी प्रकार, राजनीतिक संस्कृति भी सामान्य संस्कृति की उप-संस्कृति है। इन दोनों में पारस्परिकता है, किन्तु इस पारस्परिकता का कोई निश्चित प्रतिमान नहीं होता है। यह पारस्परिकता अनेक बातों पर निर्भर करती है। राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति के अलावा सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाओं के द्वारा भी इसका निश्चय होता है।

टास्क राजनीतिक संस्कृति और संस्कृति में क्या अन्तर है?

राजनीतिक संस्कृति का विकास (Development of Politicial Culture)

राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा के यह अर्थ नहीं लेना है कि यह स्थैतिक और स्थिर रहती है। इसमें बराबर परिवर्तन होते रहते हैं। राजनीतिक विकास, राजनीतिक संस्कृति के परिवर्तनों का ही परिणाम हो सकता है। एलेन बाल ने राजनीतिक संस्कृति के विकास के संबन्ध में ठीक ही लिखा है कि "राजनीतिक संस्कृति अपरिवर्तनीय नहीं होती, किन्तु

नोट

वह राजनीतिक व्यवस्था के अन्दर ही जन्म लेने वाले अथवा बाहर के लादे गये (अधिरोपित) या आयातित विचारों के प्रति सजग होती है।" राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक व्यवस्थाओं में आने वाले झंझावातों में डांवाडोल होती संस्थाओं को शक्ति प्रदान करके राजनीतिक स्थायित्व को बनाये रखने में सहायक होती है। इस प्रकार राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक व्यवस्थाओं के पांव उखड़ने के बचाव की व्यवस्था करती है। उदाहरण के लिए, "जापान की 1945 में हुई पराजय, 1952 तक विदेशियों का कब्जा तथा 1946 में अमरीकियों द्वारा उदारवादी प्रजातंत्रीय संविधान के अधिरोपण ने उस पर जबरदस्त असर डालकर उके और भी बदलने के लिए बाध्य किया। परिणाम यह हुआ है कि आज यहाँ परम्परागत जीवन मूल्य और आधुनिकीकरण करने वाले पश्चिमी लक्षण एक साथ ही मौजूद है। यह पूरी तरह राजनीतिक स्थिरता का स्रोत प्रदान करता है।" इसके स्पष्ट है कि राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक व्यवस्था में आने वाले बदलावों को संभव बनाते हुए भी व्यवस्था को बनाये रखने का माध्यम प्रस्तुत करती है। राजनीतिक संस्कृति का संबन्ध मनुष्यों की सम्पूर्ण राजनीतिक आस्थाओं के होता है और इसके द्वारा ही समाज में आने वाले तूफानों के मुकाबला करना सम्भव होता है।

यह राजनीतिक संस्कृति की शक्ति और उसकी गत्यात्मकता का पक्ष कहा जा सकता है। राजनीतिक संस्कृति समाज को बांधने और विकास मार्ग पर बढ़ाने वाली शक्ति के रूप में ही काम करती है ऐसा हमेशा ही नहीं होता है। यह कभी-कभी विकास को अवरोधित भी करती है। सामान्यतया इसमें परिवर्तन, अनुकूलन और समय की मांगों के अनुसार विकास भी होते रहते हैं। यह देश के अन्दर और देश के बाहर होने वाले सभी परिवर्तनों के प्रति सचेत ओर सजग होती है। इनमें अनावश्यक जड़ता नहीं होती। इसमें लचीलापन और उपयोगी परिवर्तनों के अनुसार ढलने और बदलने की क्षमता होती है। उदाहरण के लिए, 1947 के पहले भारत में देशी रियासतों और ब्रिटिश भारत में अनेक प्रकार की विचित्र राजनीतिक संस्कृतियाँ तत्कालीन राजनीतिक इकाइयों के इर्द-गिर्द पाई जाती थी, किन्तु स्वतंत्रता के बाद इन सबमें परिवर्तन ही नहीं आया, अपितु समन्वय स्थापित होकर एक राष्ट्रीय राजनीतिक संस्कृति की रचना होने लगी है। इसके स्पष्ट है कि राजनीतिक संस्कृति में परिवर्तन की क्षमताएँ विद्यमान रहती है।

देश में होने वाले औद्योगीकरण, मूल्यों तथा अभिवृत्तियों के परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण कारक होते हैं। अप्रवासियों का भारी संख्या में आगमन, युद्ध और विशेष रूप में बड़े युद्ध में पराजय, क्रांति इत्यादि सभी कारक राजनीतिक मूल्यों और विश्वासों में परिवर्तन ला देते हैं और इन परिवर्तनों के कारण राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव पड़ने लगते हैं। मौजूदा मूल्य-संरचना में नये मूल्यों के विलय होने की सापेक्ष सफलता अथवा असफलता पर राजनीतिक व्यवस्था की स्थिरता आधारित होती है और यह बहुत कुछ राजनीतिक संस्कृति में परिवर्तन या अधिक क्रांतिकारी मूल्यों को आत्मसात् करने की क्षमता पर निर्भर करता है।

राजनीतिक संस्कृति को एक पीढ़ी के दूसरी पीढ़ी तक प्रभावोत्पादक ढंग के पहुंचाने के माध्यमों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक समाजीकरण है। इसके राजनीतिक संस्कृति न केवल एक पीढ़ी के दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है, अपितु संस्कृति में सजीवता बनी रहती है। आमन्ड और वर्बा ने राजनीतिक समाजीकरण की राजनीतिक संस्कृति को बदलने और बनाए रखने में भूमिका का उल्लेख करते हुए ठीक ही लिखा है कि "राजनीतिक समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनीतिक संस्कृतियों को बनाये रखा या परिवर्तित किया जाता है।" इस प्रकार "राजनीतिक व्यवस्था के सम्बन्ध में कुछ धारणाओं का होना और उनका विकास तथा व्यवस्था के सम्बन्धित विश्वास ही राजनीतिक समाजीकरण है।" जो सही अर्थों में राजनीतिक संस्कृति के निर्माण की प्रेरक शक्ति कहा जा सकता है। अत: राजनीतिक संस्कृति के विकास में राजनीति समाजीकरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। यह प्रक्रिया राष्ट्र के प्रति निष्ठा तथा विशिष्ट मूल्यों को पनपाने में सहायता देती है और यह राजनीतिक व्यवस्था के लिए समर्थन या उसके दुराव में वृद्धि कर सकती है। समूहों तथा व्यक्तियों के किस अंश का राजनीतिक जीवन में भाग लेने की आशा की जाती है, इस पर इस प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। राजनीतिक समाजीकरण केवल उन बचपन के वर्षों तक ही सीमित नहीं है, जब बालक पर शीघ्र प्रभाव पड़ते हैं और उसके सीखने का काल होता है। सही अर्थों में तो यह प्रक्रिया जीवन भर चलती रहती है, किन्तु बचपन के काल के वयस्कता तक इसका प्रभाव पड़ते हैं और उसके सीखने का काल होता है। सही अर्थों में तो यह प्रक्रिया जीवन भर चलती रहती है, किन्तु बचपन के काल के वयस्कता तक इसका प्रभाव गहरा रहता है और बाद में इसमें शिथिलता आ जाती है। राजनीतिक समाजीकरण के द्वारा राजनीतिक संस्कृति का विकास होता है और इसमें कई अभिकरण अलग-अलग

नोट

समय में अपनी भूमिका निभाते हैं। परिवार, शिक्षण संस्थाएँ, स्वयंकेवक समूह, जन सम्पर्क माध्यम, सरकार और राजनीतिक व्यवस्था के होने वाले सम्पर्क इत्यादि के द्वारा व्यक्ति का राजनीतिक समाजीकरण होता है जो राजनीतिक संस्कृति के विकास में सहायक होता है।

राजनीतिक संस्कृति उपागम की तुलनात्मक राजनीति में उपयोगिता (The Utility of Political Culture Approach in Comparative Politics)

तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा की सामान्य उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए सिडनी वर्बा ने लिखा है कि "आधुनिक शताब्दी में राजनीतिक जगत और राजनीतिक अध्ययन क्षेत्र दोनों ही में तीन परिवर्तन हुए हैं। नये राष्ट्रों का उदय हुआ है, पुराने में परिवर्तन हुए हैं और इससे ऐसी समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं जो राजनीति शास्त्र के विद्वानों तथा वर्तमान संस्थाओं की क्षमताओं को एक चुनौती है।" ऐसी चुनौती का सामना करने की क्षमताओं का ज्ञान राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा के आधार पर ही किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, नये राष्ट्रों के उदय ने यह प्रश्न प्रमुख बना दिए हैं कि एक स्थायी राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण कैके किया जाए ताकि वह अपने अन्दर उठने वाली मांगों का सफलतापूर्वक सामना करने की सामर्थ्य प्राप्त कर सके। राजनीतिक व्यवस्थाओं को तेजी के बदलती परिस्थितियों के अनुकूलित कैके रखा जाए? कुछ राष्ट्र सफल तो कुछ असफल क्यों हो जाते हैं? राष्ट्र किस प्रकार बदलते हैं? किस प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था को किस दिशा में विकसित किया जा सकता है? उदाहरण के लिए, हम यह जानना चाहते हैं कि भारत और पाकिस्तान में राजनीतिक विकास की दिशाएँ अलग-अलग क्यों हो गईं? बंगलादेश में लोकतन्त्र जमने के पहले ही क्यों उखड़ गया? बर्मा में लोकतन्त्र को पुनः स्थापित करने के लिए जनरल ने बिन (राष्ट्रपति) द्वारा यू-नू को दिया गया अवसर क्यों सफल नहीं हो सका? विकासशील देशों में राजनीतिक दल, शासन संचालन के प्रभावी अभिकरण क्यों नहीं बन गए हैं? क्यों श्रीलंका में हर आम चुनाव में सत्ताधारी दल पराजित हो जाता है जबकि भारत में ऐसा नहीं होता है?

ऐके ही प्रश्नों और समस्याओं के समाधान पर विचार करने के लिए राजनीतिक संस्कृति उपागम का उपयोग करके 'राजनीतिक संस्कृति' के सम्बन्धित परिवर्तनों के आधार पर स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाने लगा है। वर्बा का अभिमत है कि "किसी भी समाज की राजनीतिक संस्कृति में उसके आनुभविक विश्वासों की व्यवस्था, अभिव्यक्त होने वाले प्रतीक और वे मूल्य जो कि उस स्थिति को परिभाषित करते हैं जिसमें राजनीतिक गतिविधियाँ होती हैं, सन्निहित होते हैं।" इस कारण, राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा पर बल देने के अनेक प्रश्नों और राजनीतिक मुद्दों को समझना सम्भव है। वर्बा ने सांस्कृतिक पहलू पर विशेष ध्यान देने के दो कारण माने हैं। पहला तो यह कि यद्यपि राजनीतिक व्यवस्थाएँ किसी राजनीतिक व्यवस्था के औपचारिक और अनौपचारिक पहलुओं के साथ ही राजनीतिक संस्कृति के जटिल ताने-बाने का प्रतिनिधित्व करती है, तथापि अध्ययनकर्ता के पास जो सीमित साधन उपलब्ध हैं उनके आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं की सम्पूर्णता का एकबारगी ही अध्ययन नहीं किया जा सकता है। दूसरे यह कि किसी भी समाज की राजनीतिक संस्कृति वहां की राजनीतिक व्यवस्था का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पहलू है।" इस कारण, राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा के माध्यम के राजनीतिक व्यवस्था के सम्बन्धित ऐके पक्षों का अध्ययन किया जा सकता है जो सम्पूर्ण व्यवस्था के संचालन में मौलिक प्रभाव रखते हैं। इस तरह, इसकी उपयोगिता कई तथ्यों के स्पष्ट की जा सकती है।

पीटर मर्कल ने अपनी पुस्तक **माडर्न कम्पेरेटिव पोलिटिक्स** में राजनीतिक संस्कृति उपागम की अन्य अध्ययन उपागमों के अधिक लाभप्रदता मानी है। उसके अनुसार राजनीतिक संस्कृति उपागम पर आधारित राजनीतिक अध्ययनों में निम्नलिखित गुण आ जाते हैं, अर्थात् अध्ययन उपागम के कुछ ऐके लाभ हैं जो तुलनात्मक राजनीति के अन्य उपागमों में नहीं पाए जाते। पीटर मर्कल ने इस उपागम के तीन लाभों को मौलिक माना है। संक्षेप में यह इस प्रकार हैं–

(1) राजनीतिक संस्कृति का आनुभविक सत्यापन या जांच सम्भव है। इसका तात्पर्य यह है कि राजनीतिक संस्कृति के संकेतकों (indicators) को कभी भी जांचा या परखा जा सकता है। मर्कल की मान्यता है कि इस अवधारणा के सम्बन्धित आस्थाओं, विश्वासों का माप और उस माप का आनुभविक सत्यापन या परख करना सम्भव है जबकि राजनीतिक व्यवस्था, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक, राजनीतिक विकास या राजनीतिक आधुनिकीकरण के संकेतकों को मापना या जांचना इतना सरल नहीं है।

नोट

(2) राजनीतिक संस्कृति पर आधारित शोध के, लोकप्रिय व जनता की 'सत्ता' 'स्वतन्त्रता' या 'अभिज्ञान' की धारणाओं में एक कालावधि में आने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट रूप के इंगित किया जा सकता है। मर्कल मानते हैं कि किसी देश की राजनीतिक संस्कृति आवश्यक रूप के कोई विशेष स्थायित्व वाली नहीं होती है। उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। इसकी भावी दिशा का संकेत होना सम्भव है। इसके संस्कृतियों और उप-संस्कृतियों के अन्तर भी स्पष्ट हो जाते हैं।

(3) इसके प्रति-राष्ट्रीय तुलनाएँ जो अब तक मुख्यतया प्रकारात्मक (inqualitative term) आधार पर की जाती रही थी वे अब तटस्थ (neutral) और परिमाणात्मक (quantitative) आधार पर की जा सकती है। क्योंकि राजनीतिक संस्कृति के संकेतक मापनीयता (measurability) के योग्य होते हैं।

(4) राजनीतिक संस्कृति विविध व पृथक-पृथक प्रत्ययों को राजनीतिक व्यवस्था की अपनी अवधारणा में एकीकृत करने का अवसर प्रदान करती है।

इन कारणों के पीटर मर्कल राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा पर आधारित अध्ययनों को अधिक ठीक मानते हैं।

एस.पी. वर्मा ने अपनी पुस्तक **मॉडर्न पोलिटिकल थ्योरी** में राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा की आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त के विकास में अत्यधिक व महत्त्वपूर्ण देन मानी है। उनके अनुसार राजनीतिक संस्कृति के प्रत्यय के आधार पर किए गए अध्ययनों में अनेक गुण परिलक्षित होते हैं, जिनका हम संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं।

(क) गत्यात्मक सांस्कृतिक इकाई के रूप में सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित किया (Focussed attention on the total political system as a dynamic cultural entity) – एस.पी. वर्मा का अभिमत है कि राजनीतिक संस्कृति के प्रत्यय के राजनीतिक समुदाय या समाज पर एक गत्यात्मक सामूहित सत्ता के रूप में अध्ययन करने के लिए आकर्षित हुआ है। इसके व्यक्ति के स्थान पर सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था अध्ययन का केन्द्र बना है। उनका कहना है कि व्यवहारवादी क्रांति के साथ ही राजनीति विज्ञान के विद्वानों का अध्ययन अधिकाधिक वैयक्तिक राजनीतिक व्यवहार पर केन्द्रित होने लगा था और राजनीति विज्ञान तेजी के मनोविज्ञान के साथ अभिज्ञानित होने लगा था। यहाँ तक कि व्यवस्था दृष्टिकोण के विकास के बाद भी राजनीतिक विश्लेषण एक घटना या एक निर्णय को इकाई के रूप में ध्यान व अध्ययन का केन्द्र बना रहा था। यह इकाई निर्णयकर्ता, नेता, मतदाता या मत धारक के रूप में राजनीतिक विश्लेषण का केन्द्र बन रही थी। किन्तु राजनीतिक संस्कृति के प्रत्यय के सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था, अध्ययन विश्लेषण की इकाई बन गई।

(ख) व्यष्टि और समष्टि उपागमों को संयुक्त किया (combined Mirco and macro approches) – राजनीतिक संस्कृति दृष्टिकोण के इस बात पर बल देने के, कि सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन व निरंतरता की गत्यात्मकताओं का अध्ययन किया जाए, व्यष्टि और समष्टि अध्ययनों को मिलाना आवश्यक हो गया। इस प्रकार, राजनीतिक संस्कृति दृष्टिकोण, व्यष्टि और समष्टि उपागमों को संयुक्त करने पर जोर देने के कारण राजनीति-शास्त्र को और अधिक पूर्ण सामाजिक विज्ञान बनाने में सहायक रहा है।

(ग) राजनीति-शास्त्र का विषय-क्षेत्र विस्तृत करने में सहायक (Helped the process of broadening the scope of political science) – राजनीतिक संस्कृति में, प्रमुखतया राजनीतिक समाजीकरण का अध्ययन करना होता है। राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रियाओं में न केवल राजनीतिक तत्त्व ही सम्मिलित रहते हैं, अपितु जीवन में अराजनीतिक आयाम, जैके सामाजिक और आर्थिक प्राचल (parameter) या तत्त्व भी सम्मिलित होते हैं। इस कारण, राजनीतिक संस्कृति उपागम ने राजनीति-शास्त्रियों को उन सामाजिक और आर्थिक कारकों का भी अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया, जिनके किसी दिशा की राजनीतिक संस्कृति का रूप निर्धारित होता है।

(घ) व्यवहार के बुद्धिसंगत और अविवेकी नियामकों के अध्ययनों को संयुक्त किया (combined the study of rational and irrational determinants of behaviours)– राजनीतिक संस्कृति दृष्टिकोण ने व्यक्तियों की क्रियाओं के बुद्धिसंगत कारकों के अध्ययन के साथ ही साथ व्यवहार के अधिक गुप्त अविवेकी नियामकों के अध्ययन को भी प्रोत्साहन दिया है। अब राष्ट्रीय चरित्र का प्रत्यय, जो कुल मिलाकर अपने में स्थैतिक था, और नये समाजों में राजनीतिक व्यवहार को समझने में अधिक सहायक नहीं रहा था उसके स्थान पर राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा

नोट

का उपयोग प्रचलन में हो गया। राजनीतिक संस्कृति दृष्टिकोण से इन समाजों में राजनीतिक व्यवहार पर अधिक अच्छा प्रकाश डालना ही सम्भव नहीं हुआ, अपितु यह आनुभविक शोध के आधार पर करना सम्भव बना।

(च) राजनीतिक विकास की विभिन्न दिशाओं के समझने में सहायक (Helped in understanding the different directions of political development)– राजनीतिक संस्कृति दृष्टिकोण ने यह समझने में भी सहायता की कि क्यों विभिन्न राजनीतिक समाज राजनीतिक विकास की विभिन्न दिशाओं में जाने लगे हैं? इसके यह भी स्पष्ट हुआ कि क्यों राजनीतिक व्यवस्थाएँ, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बन्धनों के बंधी होने पर भी राजनीतिक पतन की ओर अग्रसर होने लगती है।

अत: स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक संस्कृति किसी देश के राजनीतिक विकास को निरूपित करने में, कि क्यों कोई समाज लोकतान्त्रिक संस्थाओं को आसानी के अपना लेता है और अन्य समाज स्वेच्छाचारी विधियों या तरीकों को अधिक सहूलियत वाले मानता है, महत्त्वपूर्ण नियामक रहती है। इसके यह स्पष्ट है कि राजनीतिक संस्कृति का उपागम तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषणों में बहुत उपयोगी है। यह राजनीतिक आधुनिकीकरण के उपागम की कमियों की पूर्ति करने वाला उपागम भी माना जा सकता है।

राजनीतिक संस्कृति उपागम; एक आलोचनात्मक मूल्याँकन (Political Culture Approach; A Critical Appraisal)

तुलनात्मक राजनीति के राजनीतिक संस्कृति उपागम के उपरोक्त विवेचन के यह नहीं समझ लेना है कि इस दृष्टिकोण के राजनीतिक व्यवस्थाओं के बारे में सब प्रकार के स्पष्टीकरण देना सम्भव है किन्तु इसके राजनीतिक व्यवहार की गत्यात्मक शक्तियों को पहचानना सम्भव हुआ है। इसका अध्ययन हमें अनिवार्यत: राजनीतिक समाजीकरण के अध्ययन की ओर ले जाता है। इसके द्वारा हम उन अनुभवों को जानने की ओर प्रवृत्त होते हैं जिनके द्वारा राजनीतिक संस्कृति एक पीढ़ी के दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती है। साथ ही इस अवधारणा के हम उन परिस्थितियों का ज्ञान भी प्राप्त कर पाते हैं जिनके अंतर्गत राजनीतिक संस्कृतियाँ परिवर्तित होती हैं। इसके अध्ययन के हमें किसी राष्ट्र के राजनीतिक विकास पर एक नया दृष्टिकोण मिलता है।

किन्तु वर्बा ने राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा के बहुत अधिक अपेक्षाएँ रखने के प्रति सचेत करते हुए लिखा है कि "राजनीतिक जीवन के एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण पहलू पर ध्यान देना लाभदायक है, किन्तु यह राजनीतिक घटना के विश्लेषण और व्याख्या का केवल सभारम्भ ही है वास्तव में महत्त्वपूर्ण बात यह नहीं है कि हम राजनीतिक संस्कृति का अध्ययन करें बल्कि यह है कि हम इसका अध्ययन कैके करते हैं तथा राजनीति के ज्ञान में अभिवृद्धि के लिए इसका प्रयोग करते हैं तो यह राजनीतिक अन्त: क्रिया और राजनीतिक संस्थाओं के प्रतिरूपों के बारे में विश्वासों की व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं और यह बतलाती है कि राजनीतिक जगत में होने वाली घटनाओं तथा उन घटनाओं की प्रतिक्रिया में लोगों के व्यवहार के मध्य एक महत्त्वपूर्ण कड़ी का निर्माण करती है। यह इस बात का संकेत भी देती है कि लोग राजनीति में जो कुछ देखते हैं उसके विरुद्ध क्या मत प्रकट करते हैं और जो कुछ देखा है उसकी वे क्या व्याख्या करते हैं। इस प्रकार राजनीतिक संस्कृति इस बात को नियमित करती है कि राजनीतिक जगत में कौन क्या देखता है और उसकी कैके व्याख्या करता है?" वर्बा ने राजनीतिक संस्कृति की उपयोगिता के बारे में यह प्रस्थापित किया है कि राजनीतिक संस्कृति और राजनीतिक विश्वासों का घनिष्ठता का सम्बन्ध है। हम वर्बा के इस निष्कर्ष को स्वीकार करते हुए इसको इस प्रकार संशोधित करना अधिक उपयुक्त मानेंगे कि "राजनीतिक व्यवस्था की सक्रियता की विशिष्टता और राजनीतिक संस्कृति का अत्यधिक घनिष्ठता का संबन्ध है।"

राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा के विकास के ही राजनीतिक व्यवस्थाओं की वास्तविक प्रकृति, उनके अन्दर होने वाले विकासों और इन विकासों की सम्भावित दिशाओं को समझने में सहायता मिलने लगी है। किन्तु राजनीतिक संस्कृति के भी इतने आयाम और नियामक या परिवर्त्य हैं कि इसके आधार पर अध्ययन व तुलनाओं में विशेष सतर्कता और सावधानी बरतने की आवश्यकता है, अन्यथा यह अवधारणा भी राजनीति की गत्यात्मकताओं को समझने में विशेष सहायक नहीं होगी। राजनीतिक व्यवहार इतना जटिल होता है और इतने अधिक प्रभावों के नियमित

नोट

होता है कि इसको सामान्य ढंग के ही समझा जा सकता है। अत: राजनीतिक संस्कृति उपागम के यह अपेक्षा रखना कि यह राजनीति का कोई सामान्य सिद्धान्त बनाने की अवस्था में पहुंचा देगा, एक आत्यन्तिक (Extreme) निष्कर्ष होगा। ऐसा निष्कर्ष सही नहीं हो सकता। राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा ने राजनीतिक व्यवस्थाओं के अंशों व सम्पूर्णता, दोनों पर ध्यान केन्द्रित करने के उपकरण प्रदान करके, राजनीतिक समझ व राजनीतिक विकासों को समझने में पर्याप्त सहायता की है।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks)–

1. राजनीतिक संस्कृति का आनुभविक ..... सम्भव है।
2. राजनीतिक संस्कृति पर आधारित शोध के, लोकप्रिय व जनता की 'सत्ता स्वतंत्रता' या ..... की धारणाओं में एक कालावधि में आने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट रूप के इंगित किया जा सकता है।
3. राजनीतिक संस्कृति के संकेतक ..... के योग्य होते हैं।
4. राजनीतिक संस्कृति विविध..... को राजनीतिक व्यवस्था की अपनी अवधारणा में एकीकृत करने का अवसर प्रदान करती है।
5. राजनीतिक संस्कृति को एक पीढ़ी के दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने में ..... का बहुमूल्य योगदान होता है।

4.3 सारांश (Summary)

- राजनीतिक संस्कृति सामान्य सांस्कृतिक व्यवस्था का भाग है, किन्तु यह इसके कुछ स्वायत्तता भी रखती है। सामान्य संस्कृति की तरह ही राजनीतिक संस्कृति भी राजनीतिक समाजीकरण के माध्यम के संप्रेषित या हस्तांतरित होती है।
- राजनीतिक संस्कृति का अर्थ करते हुए ल्यूशियन पाई ने अपने एक निबन्ध 'पोलिटिकल कल्चर एण्ड पोलिटिकल डेवेलपमेन्ट' जो इसके और वर्बा द्वारा सम्पादित पुस्तक जिसका नाम भी पोलिटिकल कल्चर एण्ड पोलिटिकल डेवेलपमेन्ट है, में लिखा है कि ''राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा बतलाती है कि किसी समाज की परम्पराएँ, उसकी सार्वजनिक संस्थाओं की आत्मा, उसके नागरिकों की आकांक्षाएँ और उनका सामूहिक विवेक और उसके नेताओं के तरीके और कार्यशील होने के साधन व नियम आदि केवल ऐतिहासिक अनुभव की ऊटपटांग उपज नहीं है, बल्कि ये सब एक अर्थपूर्ण व्यवस्था के अंग हैं और सम्पूर्ण सम्बन्धों का एक बोधगम्य तथा स्पष्ट प्रतिमान उपस्थित करते हैं। व्यक्ति के लिए राजनीतिक संस्कृति प्रभावशील राजनीतिक व्यवहार की दिशा में मार्ग-निर्देशन करती है और समाज के लिए यह उन मूल्यों तथा विवेकपूर्ण विचारों की व्यवस्थित रूप-रचना प्रदान करती है जो कि संस्थाओं और संगठनों की गतिविधियों में संगति बैठाते हैं।''
- सारांश रूप में राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक क्षेत्र को उसी प्रकार संरचना और अर्थ प्रदान करती है जिस प्रकार संस्कृति सामाजिक जीवन को मेल और एकीकरण प्रदान करती है। अत: राजनीतिक संस्कृति एक निश्चित और सीमित अवधारणा है जो सामान्य संस्कृति के सम्बन्धित और प्रभावित रहते हुए भी उसके कुछ स्वायत्तता रखती है। संक्षेप में यह राजनीति के प्रति लोगों की धारणाओं और अभिवृत्तियों का नाम है।
- आमंड अधीनस्थ-सहभागियों के आधार पर राजनीतिक संस्कृतियों और साथ ही विभिन्न राजनीतिक संस्कृतियों के आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत करते हैं। राजनीतिक संस्कृतियों के वर्गीकरण में बुनियादी कसौटी अधीनस्थों और सहभागियों की भूमिका पर बल देना है। राजनीतिक व्यवस्था के प्रति अभिविन्यस्त है और अपने जीवन पर इनके आगतों और निर्गतों के प्रभाव जैके कल्याण सम्बन्धी हित लाभ, कानून आदि के परिचित है, लेकिन उन्हें आगत संरचनाओं में भागीदार होने के लिए अभिमुख नहीं किया जाता है अथवा

नोट

सहभागी या भागीदार (वे व्यक्ति जिन्हें आगत संरचनाओं और प्रक्रियाओं के प्रति अभिविन्यस्त किया जाता है और जिन्हें निर्णय और मांगों की अभिव्यक्ति में लगाया जाता है, या जो अपने बारे में यह समझते हैं कि वे इन कार्यों में लगे हुए हैं), हो सकते हैं।

- इसके अलावा, आमंड दो और चरों की ओर संकेत करते है जिनके बारे में ध्यान रखा जाना चाहिए। एक, अमिश्रित राजनीतिक संस्कृति की सभी किस्मों के अलावा, आमंड व्यवस्थित रूप में मिश्रित किस्म की राजनीतिक संस्कृति की ओर भी निर्देश करते हैं। यहाँ वह उन स्थितियों का निरूपण करते हैं जहाँ अभिविन्यासों के एक के अधिक प्रतिमानों का उल्लेखनीय अनुपात उपलब्ध है। इस प्रकार, वह तीन किस्मों का निर्धारण करते हैं: (1) संकीर्ण-अधीनस्थ-सहभागी राजनीतिक संस्कृति (2) प्रधीनस्थ-सहभागी-राजनीतिक संस्कृति (3) संकीर्ण-सहभागी-राजनीतिक संस्कृति और नागरिक संस्कृति।
- उप-संस्कृति पूर्णतया पृथक अभिवृत्तियों, विश्वासों तथा मूल्यों का समूह नहीं होती है बल्कि ऐके दृष्टिकोणों का समूह होती है जिनके कुछ तत्त्व दूसरी उप-संस्कृतियों में मौजूद रहते हैं। इस तरह भारत में दक्षिण के राज्य विशेषकर तमिलनाडु में तमिल लोगों की यह मान्यता है कि उनकी अपनी पृथक संस्कृति है। इस संस्कृति को उप-संस्कृति कहा जा सकता है और एक ही राजनीतिक संस्कृति में ऐसी अनेक उप-संस्कृतियाँ हो सकती हैं।
- भारत का ही उदाहरण लें तो यह स्पष्ट देखने को मिलेगा कि वहां अभिजन वर्ग की संस्कृति आम जनता की संस्कृति के बहुत भिन्नता रखने लग गई थी। संविधान का 1976 का 42वां संशोधन इन दोनों उप-संस्कृतियों के बीच तेजी के बढ़ती हुई दरार को पाटने का प्रयत्न कहा जा सकता है। विकासशील राज्यों में अनेक राजनीतिक समस्याएँ केवल इस कारण ही उत्पन्न हो रही है कि अभिजन अपनी संस्कृति के अलगपन को बनाए रखना चाहते हैं, अर्थात् सत्ता के चिपके रहना चाहते हैं।
- वर्बा ने लिखा है कि 'राजनीतिक संस्कृति और समाज की अपेक्षाकृति अधिक सामान्य सांस्कृतिक व्यवस्था के बीच अन्तर विश्लेषणात्मक है। राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति का एक अभिन्न पहलू है।"
- राजनीतिक संस्थाओं व प्रक्रियाओं के बारे में व्यक्ति, राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया में अपने विश्वास बनाता है। यह समाजीकरण बहुत कुछ समाज की सांस्कृतिक व्यवस्था के द्वारा प्रेरित या सीमित होता है। इसके और भी अभिकरण हैं, किन्तु उनमें के प्रमुख का सम्बन्ध समाज की सामान्य संस्कृति के ही है। अत: राजनीतिक आस्थाएँ, सामान्य संस्कृति में मान्य मूल्यों और आस्थाओं के द्वारा ही प्रेरित और निर्मित होती है।
- सामान्य संस्कृति अगर परम्परागतवादी प्रकृति रखती है तब इसी राजनीतिक शक्ति के प्रयोग के बलपूर्वक आधुनिक बनाने के प्रयास किये जा सकते हैं। इस प्रकार के प्रयत्नों के राजनीतिक और सामाजिक दोनों ही प्रकार की संस्कृतियों में परिवर्तन लाने के प्रयास किये जा सकते हैं। हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन और माओ त्के-तुंग ने ऐके ही प्रयत्न किये जिसमें वे उस कालावधि में अवश्य सफल भी रहे थे। केस्ट्रो, क्यूबा में शायद यही प्रयत्न कर रहा है।
- अत: राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति का अभिन्न भाग होते हुए भी उसके बहुत कुछ स्वायत्तता रखती है। इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है और दोनों एक दूसरे को कम या अधिक मात्रा में प्रभावित करती रहती है।
- राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा के यह अर्थ नहीं लेना है कि यह स्थैतिक और स्थिर रहती है। इसमें बराबर परिवर्तन होते रहते हैं। राजनीतिक विकास, राजनीतिक संस्कृति के परिवर्तनों का ही परिणाम हो सकता है।
- देश में होने वाले औद्योगीकरण, मूल्यों तथा अभिवृत्तियों के परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण कारक होते हैं। अप्रवासियों का भारी संख्या में आगमन, युद्ध और विशेष रूप में बड़े युद्ध में पराजय, क्रांति इत्यादि सभी कारक राजनीतिक मूल्यों और विश्वासों में परिवर्तन ला देते हैं और इन परिवर्तनों के कारण राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव पड़ने लगते हैं।
- राजनीतिक संस्कृति को एक पीढ़ी के दूसरी पीढ़ी तक प्रभावोत्पादक ढंग के पहुंचाने के माध्यमों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक समाजीकरण है। इसके राजनीतिक संस्कृति न केवल एक पीढ़ी के दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है, अपितु संस्कृति में सजीवता बनी रहती है।

नोट

- तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा की सामान्य उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए सिडनी वर्बा ने लिखा है कि "आधुनिक शताब्दी में राजनीतिक जगत और राजनीतिक अध्ययन क्षेत्र दोनों ही में तीन परिवर्तन हुए हैं। नये राष्ट्रों का उदय हुआ है, पुरानों में परिवर्तन हुए हैं और उनकी ऐसी समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं जो राजनीति शास्त्र के विद्वानों तथा वर्तमान संस्थाओं की क्षमताओं को एक चुनौती है।" ऐसी चुनौती का सामना करने की क्षमताओं का ज्ञान राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा के आधार पर ही किया जा सकता है।
- वर्बा ने सांस्कृतिक पहलू पर विशेष ध्यान देने के दो कारण माने हैं। पहला तो यह कि यद्यपि राजनीतिक व्यवस्थाएँ किसी राजनीतिक व्यवस्था के औपचारिक और अनौपचारिक पहलुओं के साथ ही राजनीतिक संस्कृति के जटिल ताने-बाने का प्रतिनिधित्व करती है, तथापि अध्ययनकर्ता के पास जो सीमित साधन उपलब्ध हैं उनके आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं की सम्पूर्णता का एकबारगी ही अध्ययन नहीं किया जा सकता है। दूसरे यह कि किसी भी समाज की राजनीतिक संस्कृति वहां की राजनीतिक व्यवस्था का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पहलू है।"

4.4 शब्दकोश (Keywords)

तटस्थ : किसी भी पक्ष को समर्थन न देना।

आत्यंतिक निष्कर्ष : अंतिम निष्कर्ष

4.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. राजनीतिक संस्कृति के आप क्या समझते हैं? इसके त्रिस्तरीय मूल्याँकन की व्याख्या कीजिए।
2. समकालीन राजनीतिक संस्कृतियों की प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिए।
3. राजनीतिक संस्कृति की उपयोगिकता पर प्रकाश डालिए।

उत्तर: स्व-मूल्याँकन (Answer: Self Assessment)

1. सत्यापन या जाँच
2. अभियान
3. मापनीयता (Measurability)
4. प्रत्ययों
5. राजनीतिक समाजीकरण

4.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *तुलनात्मक शासन एवं राजनीति*–डॉ. बीरकेश्वर प्रसाद सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन (पी. एण्ड डी.) 24, दरियागंज, अंसारी रोड, दिल्ली।
2. *तुलनात्मक राजनीति*–जे.सी. जौहरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि., दिल्ली।
3. *तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ*–सी.बी. गेना, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड, दिल्ली।
4. *तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा*– ओम प्रकाश गाबा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।

नोट

इकाई–5: राजनीतिक समाजीकरण (Political Socialisation)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

5.1 राजनीतिक समाजीकरण का अर्थ (Meaning of Political Socialisation)

5.2 राजनीतिक समाजीकरण के अभिकर्ता (Agents of Political Socialisation)

5.3 सारांश (Summary)

5.4 शब्दकोश (Keywords)

5.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

5.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- राजनीतिक समाजीकरण के अर्थ और अभिकर्ताओं की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

राजनीतिक विकास की संकल्पना के दो आयाम हैं–समाजवैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक। इन दोनों दिशाओं में आगामी अध्ययन के परिणामस्वरूप दो नई संकल्पनाओं का आर्विभाव हुआ है जो राजनीतिक विकास की संकल्पना की व्युत्पत्तियाँ (Political socialisation) है। अगर आधुनिकीकरण एक मन:स्थिति है और आनुभविक राजनीति के छात्र को ऐसा लगता है कि किसी राजनीतिक व्यवस्था को केवल उन्हीं लोगों द्वारा प्रभावी ढंग से संचालित किया जा सकता है जो आधुनिक दृष्टिकोण के सजीव और तर्कसंगत तत्वों के भागीदार होते हैं, तो राजनीतिक विकास का कार्य इस सीधी सादी आवश्यकता में मूर्तिमान हो जाता है कि लोगों की अभिवृत्तियों और भावनाओं को बदला जाए। इस दृष्टिकोण के अनुसार, यह तर्क कि विकास की प्रक्रिया को किस प्रकार सहज और सुविधाजनक बनाया जाए, अपेक्षाकृत सरल है : "आवश्यक संरचनाओं और निष्पादन परिवर्तनों को प्रस्तावित करो–यदि संभव हो तो अनुनय विनय से और अगर आवश्यक हो तो स्वेच्छा से–तो लोग कालांतर में अपने आप अपनी अभिवृत्तियों में परिवर्तन कर लेंगे। यह दिखाने के लिए एक साक्ष्य का उदाहरण दिया जा सकता है कि लोगों को एक बार जब विकसित संदर्भ में स्थित कर दिया जाए तो वे अपने मन और भावना को शीघ्र तदनुसार ढाल लेते हैं और इस प्रकार संक्रमणकालीन व्यक्तियों को मानसिक वस्तुस्थिति जैसे अस्पष्ट मामलों पर अधिक चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।"

5.1 राजनीतिक समाजीकरण का अर्थ (Meaning of Political Socialization)

एच. एच. हाइमन, जिन्होंने राजनीतिक समाजीकरण (Political Socialisation) पदबन्ध दिया, ने पीढ़ियों तक राजनीतिक मूल्यों के जारी रहने पर बल दिया है। ऐसी व्याख्या से सूत्र ग्रहण करते हुए लैसवेल ने कहा है कि राजनीतिक

नोट

समाजीकरण बिना किसी शंका के महत्व की कसौटी पर इस अर्थ में खरा उतरता है कि यह हर अतीत, वर्तमान और भावी राजनीतिक निकाय का महत्वपूर्ण लक्षण बना रहा है। हर स्थिर उप-संस्कृति एक समानान्तर प्रक्रिया में व्यस्त होती हैं, क्योंकि यह परिपक्वों और अपरिपक्वों द्वारा भाग लेने के बीच भेद करती है।"

राजनीतिक समाजीकरण "वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनीतिक संस्कृतियों का अनुरक्षण और उनमें परिवर्तन किया जाता है। इस कार्य के निष्पादन के माध्यम से व्यक्तियों को राजनीतिक संस्कृतियों में शामिल किया जाता है, तभी राजनीतिक वस्तुओं के प्रति उनके अभिविन्यास का निर्माण किया जाता है।" दूसरे शब्दों में, यह उस शिक्षण प्रक्रिया की ओर निर्देश करता है जिसके द्वारा सुसंचालित राजनीतिक व्यवस्था के लिए स्वीकार्य मानकों और व्यवहारों को एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक सम्प्रेषित किया जाता है। इस प्रकार, इस संकल्पना का उद्देश्य व्यक्तियों का इस तरीके से प्रशिक्षण और विकास करना है कि वे राजनीतिक समुदाय के सुकार्यकारी सदस्य बन सके। जाहिर है कि इसके अर्थ में विशिष्ट रूप में मनोवैज्ञानिक आयाम निहित है कि "यह संचलनशील राजनीतिक व्यवस्था के स्वीकार्य मानकों, अभिवृत्तियों और व्यवहार को क्रमिक ढंग से सीखना है।"

राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया सामान्यतया आकस्मिक अथवा अदृश्य रूप में कार्य करती है। इसका अर्थ यह है कि यह ऐसे शांत और सौम्य रूप में संचालित होती है कि लोगों को इसके संचालन की खबर भी नहीं होती। लोग इन मानकों को स्वीकार कर लेते हैं और वे इनके औचित्य के बारे में कोई आपत्ति नहीं उठाते। अत:, इस संकल्पना की विषय-वस्तु वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोग सक्रिय राजनीतिक मूल्यों को ग्रहण करते हैं जब वह स्पष्ट तरह से राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं।' इस प्रकार विचार करने पर राजनीतिक समाजीकरण के अंतर्गत जीवन की हरेक अवस्था में सभी, औपचारिक एवं अनौपचारिक, राजनीतिक प्रशिक्षण आ जाएँगे, फिर चाहे वह जानबूझकर हों अथवा आयोजित, और इसमें न केवल वह स्पष्ट राजनीतिक प्रशिक्षण शामिल होगा जो राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करता है (जैसे राजनीतिक दृष्टि से असम्बद्ध सामाजिक अभिवृत्तियों का ग्रहण करना) वरन् इसमें राजनीतिक दृष्टि से सम्बद्ध व्यक्तिगत विशेषताओं को ग्रहण करना भी शामिल होगा।"

क्या आप जानते हैं राजनीतिक समाजीकरण की संकल्पना में प्रधान बल एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक राजनीतिक मूल्यों के सम्प्रेषण पर दिया जाता है।

किसी सामाजिक अथवा राजनीतिक व्यवस्था की स्थिरता इस तथ्य के कारण इसके सदस्यों के राजनीतिक समाजीकरण पर निर्भर करती है कि एक अच्छा कार्यकारी नागरिक वह व्यक्ति होता है जो समाज के राजनीतिक मानकों को अंगीकार कर ले और उन्हें भावी पीढ़ियों को सम्प्रेषित करें। उदाहरण के लिए, एक स्थिर लोकतांत्रिक व्यवस्था, जैसे ब्रिटेन, अपने सदस्यों को प्रशिक्षित करके ऐसा अभ्यस्त बना देती है कि वे परिवर्तन करने के लिए सांविधानिक उपायों को स्वीकार कर ले, बजाय इसके कि वे इन मामलों को सड़कों पर ले जाएँ या हिंसात्मक उथल-पुथल की अवस्थाएँ पैदा करें। इस प्रकार, राजनीतिक समाजीकरण के अन्तर्गत वह सारी प्रक्रिया आ जाती है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति "जो विशाल व्यवहारात्मक क्षमताओं के साथ जन्म लेता है, उसे एक ऐसे व्यवहार का विकास करना कठिन पड़ता है जो कही अधिक संकीर्ण परास से प्रतिबन्धित कर दिया जाता है-जिसका क्षेत्र सामान्य होता है और उसे अपने वर्ग के छात्रों के अनुरूप में स्वीकार्य होता है।"

अगर इसे सामान्य शब्दों में कहा जाए तो राजनीतिक समाजीकरण एक ऐसा विचार है जो राजनीतिक स्थायित्व के लक्ष्य को प्राप्त करने की अपेक्षा करता है। इसका आधार यह है कि कोई राजनीतिक व्यवस्था तब तक सुचारु ढंग से कार्य नहीं कर सकती जब तक उसके साथ-साथ राजनीतिक मानकों और मूल्यों को अंगीकार करने की प्रक्रिया कार्यरत न हो। जैसा कि एक जीव (Organism) के संबंध में होता है, उसी प्रकार से राजनिकाय (politic body) में भी, अनुरक्षण और अतिजीविता के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं होती। और अतिजीविता (survival) का स्थायित्व के अतिरिक्त कोई और अभिप्राय नहीं है जैसा राबर्टा साइगेल (Roberta Sigel) ने कहा है, "राजनीतिक समाजीकरण

नोट

का उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों का प्रशिक्षण और विकास करना है जिससे वे राजनीतिक समाज के अच्छे कार्यकारी सदस्य बन सकें, क्योंकि एक राजनिकाय के बिना, जो संचालित राजनीतिक मूल्यों और राजनीतिक व्यवस्था के साथ सामंजस्य में है, सुचारु रूप में कार्य नहीं हो सकता और अन्तिम रूप में अतिजीविता राजनीतिक संगठन का उसी प्रकार से एक लक्ष्य है जिस प्रकार से एक जीव का।

राजनीतिक समाजीकरण व्यक्तियों के मन में मूल्यों, मानकों और अभिविन्यासों का विकास करता है जिससे उसमें राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विश्वास की भावना पैदा हो सके और वे अपने आपको अच्छे कार्यकारी नागरिक के रूप में बनाए रखें तथा अपने उत्तराधिकारियों के मन पर अमिट छाप छोड़ सकें। इस प्रकार, राजनीतिक समाजीकरण की परिभाषा उस "प्रक्रिया के रूप में की जाती है जिससे कोई व्यक्ति राजनीतिक व्यवस्था से परिचित होता है और जो राजनीतिक घटनाओं के प्रति उसकी प्रतिक्रिया का निर्धारण करता है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति पर समाज के और समाज पर व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक या सांस्कृतिक पर्यावरण के प्रभाव का परीक्षण किया जाए। सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं के बीच राजनीतिक समाजीकरण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कड़ी है, लेकिन अलग-अलग व्यवस्थाओं के अनुसार इसमें परिवर्तन आ सकता है। राजनीतिक दृष्टिकोण से एक प्रक्रिया के रूप में राजनीतिक समाजीकरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिससे व्यापक राजनीतिक व्यवस्था–राजनीतिक सहभागिता–में विभिन्न मात्राओं में लोग लिप्त हो सकते हैं।"

राजनीतिक समाजीकरण का विकास : खुले बनाम बंद समाजों का विषय: जो समाज अपने आपको बनाए रखना चाहता है या अपनी अतिजीविता के लिए अपने स्थायित्व पर बल देता है, उसका अपने युवकों के समाजीकरण में एक आवश्यक हित निहित होता है ताकि वे इस योग्य बनाए जाएँ कि वे स्वेच्छापूर्वक अपने सामाजिक जीवन के मूल्यों, अभिविन्यासों और मानकों को जारी रख सकें। एक नवजात शिशु जन्मजात सामाजीकृत जीव नहीं होता है; प्रशिक्षण पद्धति से ही उसे सामाजिक बनाया जाता है। साथ ही, इस प्रकार का "प्रशिक्षण समाज के मानकों के बारे में उपयुक्त ज्ञान प्राप्त करने तक ही समिति नहीं है, बल्कि इसके लिए इस बात की भी अपेक्षा होती है कि व्यक्ति उन मानकों को इस प्रकार अंगीकार कर लें कि वे उसे सही, न्यायपूर्ण और नैतिक प्रतीत हों। एक बार समाज के मानकों का अंगीकार कर लेने के बाद शायद उस व्यक्ति के लिए ऐसा कोई कठिन कार्य नहीं होगा कि वह उनके अनुकूल कार्य करें।" साथ ही, किशोरावस्था के साथ-साथ मानकों के अंगीकार करने की प्रक्रिया समाप्त नहीं हो जाती, इसके अंतर्गत युवा भी आते हैं और इसी कारण इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राजनीतिक दृष्टि से संगठित समाज की अनुरक्षण संबंधी वैसे ही आवश्यकताएँ हैं जिसमें युवकों को काफी उत्तरदायी भूमिका का निर्वाह करना है। इसलिए, हम दो अवस्थाओं पर मानकों के अंगीकरण की प्रक्रिया का अवलोकन करेंगे–बच्चों व किशोरों का समाजीकरण और युवाओं का समाजीकरण।

राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया उस काल से आरम्भ होती है जबकि बच्चा चारों ओर के व्यापक पर्यावरण के बारे में सजग होता है, विशेष स्थितियों के प्रति अनुक्रिया में अधिक प्रात्याक्षिक (perceptive) अनुभव करता है और अपने लिए एक ऐसे दृष्टिकोण का विकास कर लेता है जो अधिकाधिक संगत और सम्पूर्ण हो जाता है जबकि इससे पूर्व यह खंडित और सीमित होता है। इसी अवस्था पर बच्चों में सामान्य अभिविन्यास का प्राधिकार, आज्ञाकारिता, प्रतिरोध, सहयोग, आघात आदि के प्रति आविर्भाव होता है। बच्चा परिवार से जो कुछ ग्रहण करता है उसमें स्कूल के माध्यम से वृद्धि हो जाती है और वह राजनीतिक मूल्यों के प्रति अपनी प्रारंभिक मान्यताओं को पुष्ट करता है। ईस्टन और डेनिस बाल्यावस्था में राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया में निम्न अवस्थाओं का निर्धारण करते हैं– (1) विशेष व्यक्तियों के माध्यम से प्राधिकार को स्वीकार करना जैसे माता-पिता, पुलिसमैन और देश के राष्ट्रपति; (2) सरकारी और गैर-सरकारी प्राधिकरण के बीच अन्तर; (3) राष्ट्रीय विधायिका, न्यायपालिका और मतदान व्यवहार जैसी अवैयक्तिक राजनीतिक संस्थाओं से सम्बद्ध गतिविधियों में व्यस्त लोगों के बीच भेद जिससे राष्ट्रपति अथवा कांग्रेस (अमरीकी संसद) के सदस्य के रूप में विशेष व्यक्तियों के आदर्शीकृत बिम्बों का राष्ट्रपति पद और कांग्रेस से स्थानान्तरण हो जाए।

इस प्रकार, समाजीकरण की प्रक्रिया किशोरावस्था के बाद भी चलती रहती है। भावी राजनीतिक व्यवहार की मुख्य रूप-रेखाएँ "अच्छी प्रकार से प्रारम्भिक अवस्था में निर्धारित की जाती है, लेकिन इससे ऐसी अवस्था की अधिक सम्भावना

नोट

होती है जिसमें प्रारम्भिक राजनीतिक समाजीकरण और बाद के जीवन के पर्यावरणीय और आनुभविक प्रभावों के बीच अन्त:क्रिया होती है जो बाल्यावस्था पर समाजीकरण की प्रक्रिया के मार्ग में बाधा पहुँचाती है।" उदाहरण के लिए, मतदान व्यवहार के अध्ययन से पता चलता है कि 'मतों के युद्ध' के दौरान विधान मण्डल के सदस्यों को समाजीकरण का ज्ञान होता है और उसके वाद के विधायी व्यवहार का निर्धारण आंशिक रूप में उनके ज्ञान, मूल्यों और अभिवृत्तियों से होता है जो निर्वाचनों से पूर्व उनमें विद्यमान थीं और यह आंशिक रूप में विधायिका में विद्यमान नए पर्यावरण में उनके अपने अनुभवों से अथवा उनके प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं से प्रभावित होता।" निर्वाचन अध्ययनों ने दलीय प्राथमिकताओं और मतदाताओं की विशेषताओं के बीच सहसंबंध दिखाया है जो पर्यावरण और अनुभव से सम्बद्ध हैं।

नोट्स यदि बाल्यावस्था और किशोरावस्था में पर्यावरण और आनुभविक दबावों का निश्चित प्रभाव किसी व्यक्ति के जीवन पर पड़ता है, तो यह समझना नितान्त तर्कसंगत होगा कि व्यस्कता की अवस्था में इन प्रभावों का अपना ही महत्त्व है।

यद्यपि यह सच है कि प्रारम्भिक समाजीकरण के बाद ही समाजीकरण का शिलान्यास करता है, इसका निहितार्थ यही है कि बाद के समाजीकरण का प्रतिमान प्रारम्भिक समाजीकरण के प्रतिमान के अनुरूप हो। बाद के आनुभविक प्रमाणों का प्रभाव जीवन की प्रौढ़ावस्था में लोगों की अभिवृत्तियों और अभिविन्यासों में परिवर्तन ला देता है। "बाल्यावस्था और किशोरावस्था में जो ज्ञान, मूल्य और अभिवृत्तियां ग्रहण की जाती हैं उन्हें वयस्क जीवन के अनुभवों की पृष्ठभूमि में मापा जाएगा : अन्यथा ऐसा सुझाव देना स्थैतिक राजनीतिक व्यवहार का सुझाव देना होगा। यदि वयस्क समाजीकरण की प्रकिया बाल्यावस्था और किशोरावस्था की समाजीकरण की प्रकिया को प्रबलित करती है तो परिवर्तन की मात्रा आयु में वृद्धि के कारण रूढ़िवाद (conservatism) में वृद्धि के साथ सीमित होती जाती है, लेकिन वहाँ राजनीतिक व्यवहार में क्रांतिकारी परिवर्तन हो सकते है; इस प्रकार के विरोद्यों की जड़ें प्रारम्भिक राजनीतिक समाजीकरण में होती हैं, लेकिन यह बाद के समाजीकरण के अनुभवों के कारण भी हो सकता है।'

इससे पता चलता है कि राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत व्यक्ति का सारा जीवन आ जाता है। इसकी नींव व्यक्ति के जीवन की प्रारम्भिक अवस्थाओं में होती है, किन्हीं नए अनुभवों के कारण बाद की अवस्था में इसकी अधि-संरचना (super-structure) में तब्दीली आ सकती है। इस अवस्था पर सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि युवा साक्ष्यों का राजनीतिक समाजीकरण, आमंड और वर्बा के शब्दों में, बहुदिशिक प्रभावों को प्रवाहित करता है। इसका परिणाम यह है कि प्रौढ़ावस्था में व्यक्ति जो कुछ सीखते हैं, उसे अपने बच्चों को प्रारम्भिक अवस्था में ही सिखाने की कोशिश करते हैं। अमरीका का उदाहरण पेश करते हुए आमंड और वर्बा इस बात की ओर संकेत करते हैं कि देश में राजनीतिक लोकतन्त्र की प्रथा के कारण लोग "बाद में स्कूलों, बाजारों ओर गिरजाघरों में भी लोकतंत्र की माँग करने लगते हैं। क्योंकि आम तौर पर इस माँग को स्वीकार कर लिया जाता है, इसके परिणामस्वरूप स्कूली बच्चे, मजदूर और अन्य लोग चर्चाओं, वाद-विवादों और निर्णय-निर्माण प्रक्रियाओं में भाग लेना शुरू कर देते हैं। इन अनुभवों के आधार पर व्यक्ति ऐसी कुशलताओं में भाग लेना शुरू कर देते हैं। इन अनुभवों के आधार पर व्यक्ति ऐसी कुशलाओं का विकास कर लेता है जिससे वह राजनीतिक जीवन में भाग ले सकता है और इससे वह या तो राजनीतिक परिवर्तन ला सकता है अथवा उसे स्वीकार कर सकता है। इस प्रकार, यह समाजीकरण की प्रक्रिया न केवल समाज की राजनीतिक स्थिरता में बल्कि परिवर्तनों में भी योगदान देती है और उन दबावों को शान्त करती है जिनसें परिवर्तन सम्भव होते हैं।"

राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया में स्वत: ही पुन: समाजीकरण का मामला आ जाता है जो तब व्यक्तियों को नए वर्ग और स्थिति में शामिल किया जाता है जिसके लिए भूतपूर्व समाज में कोई भूमिका प्रतिमान नहीं थे। अधिकाँश औद्योगिकपूर्ण राजनीतिक प्रणालियों, जहाँ तेजी से सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं, को पुन: समाजीकरण

नोट

के भारी भरकम कार्यों से जूझना पड़ता है। सर्वाधिकारवादी राजनीतिक व्यवस्थाओं (यथा फासिस्ट इटली, नाज़ी जर्मनी और कम्यूनिस्ट सोवियत संघ) के साहित्य में इस विषय पर काफी अधिक ध्यान दिया गया है। एक और प्रकार का पुन: समाजीकरण तब होता है जब कोई समूह एक ऐसे व्यक्ति को ऐसी हैसियत में शामिल कर लेता है जिसके लिए यह अपने पहले के प्रशिक्षण के कारण तत्पर नहीं था। इस दिशा में सामाजिक संचालनीयता (social mobility) का जिक्र किया जा सकता है। केवल इन गौण और बीच की संस्थाओं की भूमिका को जब समझ लिया जाता है तब ही हम अधिक विश्वास के साथ इस बात की व्याख्या कर सकते हैं कि एक सुशिक्षित और सुप्रशिक्षित पीढ़ी एक स्थापित व्याख्या के विरूद्ध क्यों क्रांति करती है या क्राँतिकारी जापानी किशोर एक अनुदार व्यस्क क्यों बनता है।"

राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया के दो चरण हैं– (1) सजातीय (homogeneous) या सतत जिसका अभिप्राय यह है कि अपनी राजनीतिक व्यवस्था के प्रति पारस्परिक विश्वास के वातावरण में व्यक्ति एक दूसरे के साथ सहयोग करें, और (2) विजातीय (heterogeneous) अथवा असतत् जिसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति एक दूसरे के प्रति पारस्परिक अविश्वास, सन्देह और घृणा की भावना रखते हैं जिसके कारण वे अपनी राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विमुख अथवा उदासीन हो जाते हैं। इस प्रकार, सजातीय अथवा सतत राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया में राजनीतिक व्यवस्था इस बात की आशा कर सकती है कि उसे व्यक्तियों का विश्वसनीय सहयोग मिलेगा, इससे समस्त राजनीतिक जीवन के "विह्वल और विक्षुब्ध होने की संभावना होती है, जिसके परिणामस्वरूप निराशा होगी और क्राँतिकारी सामाजिक परिवर्तन की मांग की जाएगी।" जाहिर है, राजनीतिक व्यवस्था की स्थिरता के हित में यह आवश्यक है कि लोग अपनी जीवनशक्ति सजातीय पर्यावरण से ग्रहण करें।"

इस अवस्था पर इस बात की ओर संकेत किया जाना चाहिए कि, यद्यपि वास्तव में राजनीतिक समाजीकरण के लिए राजनीतिक स्थायित्व की अपेक्षा जाती है, इसे किसी सूरत में परिवर्तन-विरोधी संकल्पना नहीं समझा जाना चाहिए। निश्चितत: इसे इस अर्थ में एक अनुदार संकल्पना समझा जा सकता है कि यह ऐसे परिवर्तन का समर्थन करती है जो न क्रांतिकारी है न तीव्र। इसमें इस विषय पर बल दिया गया है कि जब परिवर्तन होना प्रकृति का नियम है तो उसे क्रमिक और शाँतिपूर्ण होना चाहिए। इस प्रकार, राजनीतिक समाजीकरण में इस बात पर बल दिया जाता है कि अगर कालान्तर में लोगों की अभिवृत्तियों, अभिविन्यासों और मूल्यों में परिवर्तन आता है, तो साथ ही राजनीतिक संस्कृति में एक परिवर्तन अवश्य आना चाहिए ताकि उस आकस्मिक परिवर्तन के खतरे से बचा जा सके जिससे राजनीतिक व्यवस्था का विनाश अथवा क्षय हो सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि राजनीतिक मूल्यों को आकार प्रदान करने की प्रक्रिया और परिवर्तन की प्रक्रिया एक दूसरे के अनुकूल होनी चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि शासकों को मुद्रा-स्फीति और युद्ध जैसी किसी प्रमुख घटना को रोकने के लिए सतर्क रहना चाहिए जिससे लोगों और उनकी अभिवृत्तियों में किसी प्रकार के क्रांतिकारी परिवर्तन न आने पाएँ। अत: सत्तारूढ़ व्यक्तियों का यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि वह देखें कि इन घटनाओं का दबाव ऐसे बिन्दु पर न पहुँचे जिससे वफादार व्यक्ति विद्रोही बन जाएँ, सहयोगी लोग आक्रामक बन जाएँ और दोस्त दुश्मन बन जाएँ इस ऐतिहासिक तथ्य के कारण कि अगर समाजीकरण की प्रकिया सहज और जिस राजनीतिक व्यवस्था का देश की राजनीतिक संस्कृति के साथ समायोजन अच्छी प्रकार से हो गया है, वह प्रभावी और सुचारु तरीके से कार्य कर सकेगा। इसके विपरीत, यदि राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया अतितीव्र हो गई है तो इसके कारण सब कुछ अस्तव्यस्त हो जाएगा।"

राजनीतिक समाजीकरण की प्रकिया काल और उस पर्यावरण के अनुसार अलग-अलग होती है जिसका यह अंग होती है और जिसमें इसका योगदान होता है। अत: इसका राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति और परिवर्तन की मात्रा एवं स्वभाव से गहरा संबंध है। "राज्य व्यवस्था जितनी स्थायी होगी, उतनी ही राजनीतिक समाजीकरण के मुख्य अभिकर्ताओ विशिष्ट होंगी। इसके विपरीत, असर्वाधिकारवादी राज्य व्यस्था में मुख्य अभिकर्ताओं की वृद्धि होंगी। राज्य व्यवस्था में क्रांति की मात्रा जितनी अधिक बुनियादी होगी, राजनीतिक समाजीकरण की अभिकर्ताएं उतनी ही अधिक शिक्षित होंगी।" बहरहाल, हमें इस परमोत्कर्ष तथ्य की अवहेलना नहीं करनी चाहिए कि राजनीतिक समाजीकरण की अभिकर्ताएं उतनी ही अधिक विशिष्ट होंगी।" किसी राजनीतिक व्यवस्था के अनुरक्षण और पुन: आवृत्ति से इसके

नोट

पूर्ण रूपांतर या पूर्ण क्षय तक राजनीतिक अभिविन्यास और व्यवहार प्रतिमानों की आवश्यकता है, वस्तुत: यह इस बात पर बल देने की कोशिश करता है कि स्थायी राजनीतिक व्यवस्था के लिए परीक्षण का विषय यह है कि समाजीकरण की अभिकर्ताएँ इतनी अधिक लचीली और अन्योन्याश्रित हों कि उनसे हिंसात्मक विक्षोभ के बिना परिवर्तन हो सकें।"

राजनीतिक अभिविन्यासों और व्यवहार प्रतिमानों के अर्जन करने के रूप में राजनीतिक समाजीकरण की बुनियादी प्रक्रिया अलोकतांत्रिक समाजों पर उतनी ही लागू की जा सकती है, जितनी लोकतांत्रिक समाजों पर, यद्यपि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अभिकर्ताओं की भूमिका या तंत्र की पद्धति पर जो बल दिया गया है वह अपनी किस्म और प्रभावशीलता में अलग-अलग हो सकता है। खुला समाज असहमति व्यक्त करने और विरोध प्रकट करने की आज्ञा देता है, उसका बहुलवादी स्वरूप होता है जिसमें बहुपक्षी राजनीतिक मानकों और मूल्यों की किस्मों को सिखाने के लिए विविध हितबद्ध समूह कार्यरत होते हैं। सर्वाधिकारवादी समाज की स्थिति इसके विपरीत होती है जहाँ सत्तारूढ़ व्यक्ति अपनी विचारधारा और राजनीतिक मूल्यों को सारी जनता पर आरोपित करने का प्रयास करते हैं ताकि पुरानी पीढ़ी को भी शिक्षित और नई पीढ़ी को पुन: शिक्षित किया जा सके। सर्वाधिकारवादी समाज "आधुनिक लोकतन्त्रों से इस अर्थ में भिन्न है कि दोनों में सदस्यों के राजनीतिक समाजीकरण के उपयोग पर नियन्त्रण की मात्रा में अन्तर होता है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सभी सरकारें सूचना के माध्यमों पर नियन्त्रण करके विभिन्न मात्राओं में अपने समाज के सदस्यों का समाजीकरण करना चाहती हैं, लेकिन सर्वाधिकारवादी समाज में यह नियन्त्रण सर्वव्यापक होता है।"

सर्वाधिकारवादी समाज वह है जो समाज के सभी पहलुओं पर अपना नियंत्रण रखता है और समाजीकरण पर सामान्यतया किन्तु राजनीतिक समाजीकरण पर विशेष ढंग से बल देता है। राज्य की विचारधारा "सभी कार्यों का सरकारी आधार बन जाती है और सभी कार्यकलाप उसके अन्तर्गत आ जाते हैं। राजनीतिक समाजीकरण को अपने सूत्रों को चुनने के लिए न तो छोड़ा जाता है; न ही ऐसे अनियंत्रित ज्ञान, मूल्यों और अभिवृत्तियों को पनपने दिया जाता है जो उस विचारधारा का विरोध करें या उसे नुकसान पहुंचायें। लोगों के मनों पर अधिकार करने का प्रयास किया जाता है और राज्य की विचारधारा के माध्यम से उसे मार्ग दर्शन कर राज्य की आवश्यकताओं के लिए इस्तेमाल किया जाता है।" यह एडोल्फ हिटलर जैसे महान सर्वाधिकारवादी नेताओं के वक्तव्यों से स्पष्ट है: "हमने महज छोटी अवस्था से ही युवकों में इस लोक समाज की भावना का आरंभ करने का उद्देश्य रखा हुआ है... और यह नया राज्य अपने अतिरिक्त अपने युवकों को किसी अन्य को नहीं देगा, युवकों को लेगा और उन्हें अपनी शिक्षा और लालन पोषण देगा।" इसी प्रकार, वी॰ आई॰ लेनिन ने कहा है: "शिक्षण संस्थाओं और युवकों के प्रशिक्षण को क्रांतिकारी ढंग से नए सिरे से ढालने पर ही हम यह सुनिश्चित कर पाएंगे कि युवा पीढ़ी के प्रयासों के परिणामस्वरूप समाज की रचना होगी जो पुराने समाज अर्थात साम्यवादी समाज से भिन्न होगी।"

अगर हम इस विषय की गहन परीक्षण करें तो हमारी यह आश्चर्यजनक धारणा बनती है कि लोकतांत्रिक और सर्वाधिकारवादी समाजों का ध्यान किए बिना राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया आवश्यक रूप में एक अनुदार संकल्पना है, क्योंकि इसका वास्तविक संबंध राजनीतिक व्यवस्था की अतिजीविता अनुरक्षण से है चाहे वह ब्रिटेन या अमरीका की तरह से स्वतन्त्र और खुला समाज हो, चाहे सोवियत संघ या चीन सरीखी इसकी विपरीत स्थिति हो, राजनीतिक समाजीकरण का कुल मिलाकर प्रभाव "यथास्थिति (status quo) को समर्थन प्रदान करने की दिशा में है, अथवा, कम से कम, मौजूदा राजनीतिक शासनों के मुख्य पक्षों का समर्थन करने की दिशा में है।" जैसा ग्रीन्स्टीन (Greenstein) ने कहा है : "स्थायी और अस्थाई दोनों प्रकार के समाजों में राजनीतिक समाजीकरण द्वारा विद्यमान प्रतिमानों को बनाए रखे जाने की संभावना है।"

टास्क सर्वाधिकारी समाज से आप क्या समझते हैं?

नोट

5.2 राजनीतिक समाजीकरण के अभिकर्ता (Agents of Political Socialisation)

यदि राजनीतिक समाजीकरण का संबंध लक्ष्यों की दिशा में व्यक्तियों के अभिविन्यास से है, तो अब हम उन अभिकर्ताओं (agents) की भूमिका का अवलोकन करेंगे जो मानकों के अंगीकरण (Norn-internalization) में अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं। ऐसी खोज करने में उन कारकों की भूमिका भी आ जाती है जिनका व्यक्ति के मन पर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव पड़ता है और इस प्रकार वे उसके व्यक्तित्व के निखार में योगदान करते हैं। यदि सीधे सादे शब्दों में कहा जाए तो इसका यह अर्थ है कि हम उन कारकों का, संक्षेप में, अध्ययन करें जो राजनीतिक मानकों और मूल्यों को अंगीकार करते हैं जिन्हें पहले के युगों के लोग नागरिक शिक्षा में पाठ, नागरिकता के लिए प्रशिक्षण, सत्तारूढ़ लोगों के व्यवहार और सामाजिक व राजनीतिक संस्थाओं की भूमिका कहा करते थे। इस प्रकार, इस वक्तव्य के यथार्थ का पता लगाने के लिए परिवार, स्कूल, चर्चों, समान लोगों के समूहों, जन-संपर्क साधनों और जन संबंधों की भूमिका का अवलोकन किया जाना चाहिए: क्योंकि व्यक्ति की राजनीतिक अभिवृत्तियां, अभिविन्यासों और मूल्यों को आदान प्रदान करने में सदैव व्यक्ति को प्रभावित किया जाता है, इसलिए यह समाजीकरण की प्रक्रिया उम्र भर चलती रहती है।" या जैसा कि बॉल ने कहा है: "राजनीतिक समाजीकरण ऐसी प्रक्रिया नहीं है जो बाल्यकाल के प्रभावग्रह योग्य वर्षों तक सीमित हो, बल्कि यह तो सारे वयस्क जीवन के दौरान चलती रहती है।"

सबसे पहले परिवार का स्थान आता है जिसे बच्चे के लिए "बाहर की दुनिया पर खुलने वाली पहली खिड़की कहना चाहिए; यह बच्चे का प्राधिकार के साथ पहला सम्पर्क है।" व्यक्ति के राजनीतिक व्यक्तित्व के निर्माण में परिवार का प्रमुख योगदान उस भूमिका से उत्पन्न होता है जिसे उसकी बुनियादी और अंतर्भूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मुख्य साधन और क्षेत्र समझा जा सकता है। इस प्रकार, बच्चा अपने माता-पिता के साथ अपना तादात्मय करना चाहता है और राजनीतिक व्यवस्था के प्रति उनके दृष्टिकोण को अपनाना चाहता है। पिता आदि- रूपीय प्राधिकार के प्रति बच्चे के विचारों का निर्माण करना चाहता है। जैसा के डेवज ने कहा है: "परिवार मानसिक रूप में नग्न शिशु को पूरी तरह से आभूषित व्यक्तित्व के रूप में रूपांतरित करने के मुख्य साधन प्रदान करता है। व्यक्ति का अधिकांश राजनीतिक व्यक्तित्त्व–एक सामान्य वयस्क नागरिक और प्रमुख राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में कार्य करने से–घर पर ही निर्धारित होता है और एक साधारण वयस्क नागरिक एवं एक राजनीतिक कर्ता-धर्ता के रूप में उभरने से कई वर्ष पूर्व ही ऐसा निर्धारण हो जाता है।" राबर्ट लेन ने सुझाव दिया है कि परिवार के माध्यम से तीन राजनीतिक विश्वासों की नींव का न्यास किया जा सकता है: (1) प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में मतारोपण (indoctrination), (2) एक विशेष सामाजिक संदर्भ में बच्चे को रखकर, और (3) बच्चे का व्यक्तित्व ढाल कर।

इसके बाद, प्राथमिक शिक्षा के केन्द्र के रूप में स्कूल का स्थान आता है। राजनीतिक व्यवहार की व्याख्या में शिक्षा को बहुत समय से एक महत्वपूर्ण चर समझा जाता रहा है और इस बात का प्रमाण दिया जा सकता है कि वह राजनीतिक समाजीकरण का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। आमंड और वर्बा ने इस बात की ओर संकेत किया है कि किसी व्यक्ति की शिक्षा जितनी व्यापक होगी उतना ही वह सरकार के प्रभाव के प्रति सजग होगा, राजनीति का अनुसरण कर पाएगा, अधिक से अधिक राजनीतिक जानकारी प्राप्त कर सकेगा, उसके राजनीतिक मामलों पर व्यापक मत होंगे, अधिक से अधिक राजनीतिक दृष्टि से जागरूक लोगों से अधिक से अधिक राजनीतिक चर्चाएं करेगा, वह राजनीतिक मामलों को प्रभावित करने की अधिक योग्यता अनुभव करेगा, वह स्वैच्छिक संगठनों में सदस्यता ग्रहण करेगा और इनमें सक्रिय रूप में भाग लेगा, अपने सामाजिक पर्यावरण में विश्वास व्यक्त करेगा और विश्वास की भावनाओं को प्रदर्शित करेगा। इस कारण पाठ्यक्रमों के चयन का अपना ही महत्व हो गया है। राजनीतिक दृष्टि से जागरूक लोग अपने हितों के अनुकूल पाठ्यक्रमों में संशोधन के लिए खूब संघर्ष करते हैं। इसी कारण, केरल में मुस्लिम लीग के नेताओं ने स्कूली पाठ्यपुस्तकों में से उन

नोट

अंशों को निकालने के लिए संघर्ष किया जिनमें स्वतंत्रता से पूर्व के युग में जवाहरलाल नेहरू ने लीग की साम्प्रदायिक और राष्ट्रविरोधी भूमिका के बारे में कहा था। इस बारे में उन्होंने इस बात की जोरदार मांग की है कि शिक्षा संस्थाओं में "काले लोगों के बारे में अध्ययन" के कार्यक्रमों को शामिल किया जाए।

इस दिशा में जिस बात का ज्यादा महत्व है, वह यह है कि राजनीतिक समाजीकरण की समस्या उस समय उत्पन्न होती है जब बच्चा अपने परिवार और प्राथमिक स्कूल के प्रारंभिक प्रभावों से उभर कर आगे आता है और उच्चतर कक्षाओं के जगत में पहुँचता है जिसे 'समान व्यक्तियों के गुट' या 'सम-समूह (peer groups) भी कहा जाता है और इस प्रकार वह अन्य प्रभावों के अधीन हो जाता है जो प्रारंभिक राजनीतिकरण को "प्रचलित और इसको क्षीण भी कर सकते हैं।" मार्टिन लेविन ने पता लगाया है कि व्यक्तियों में इस बात की प्रवृत्ति होती है कि 'समसमूह' में भी लोग 'बहुमत प्राप्त समूह' को अपना लेते हैं। बड़े छात्रों की अभिवृत्तियों पर अध्ययन पाठ्यक्रमों, वाद-विवादों, चर्चाओं और अन्य पाठ्येतर कार्यकलापों का निश्चित संदर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका होती है और वे राजनीतिक प्रबोध (poltical enlightenment) के प्रभावी साधन बन जाते हैं। इस तरह से शिक्षा शास्त्र का सामाजिक विज्ञानों से संबंध हो जाता है क्योंकि, जैसा कि सी॰ राइट मिल्स ने अपनी रचना 'द सोश्यालोजीकल इमेजीनेशन' (The Sociological Imagination) में कहा, "दोनों का उद्देश्य ऐसे लोगों और व्यक्तियों को तैयार करना है जो व्यक्तिगत और सामाजिक संबंधों के साथ रहने के योग्य हैं ओर उनकी पर्याप्त परिभाषाओं के अनुसार रह सकते है।"

मान-अंगीकरण (norm-internalization) की प्रक्रिया में न केवल परिवारों और शिक्षा केन्द्रों बल्कि सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। उदाहरण के लिए, धार्मिक संस्थाओं के महत्व को किसी भी तरह से हीन नहीं समझा जाना चाहिए। धार्मिक संस्थाओं का राजनीतिक अभिवृत्तियों पर प्रभाव जाहिर तौर पर कम होता है जब यह अन्य समाजकारी संस्थाओं को प्रबलित करती हैं, लेकिन बहुत से उदार-लोकतांत्रिक और सर्वाधिकारवादी यूरोपीय देशों पर रोमन कैथोलिक धर्म की भूमिका हमें इसके राज्य और शिक्षा दोनों के साथ विरोध के उदाहरण प्रस्तुत करती हैं शायद यह कई देशों में औरतो के राजनीतिक व्यवहार का दिग्दर्शन कराने में एक महत्वपूर्ण कारक है।" राष्ट्रीय एकीकरण के हेतु विशेषकर विकासशील देशों में युवा आंदोलनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। हमें राजनीतिक दलों की भूमिका का भी अवलोकन करना चाहिए जो अधिक विस्तृत होती है क्योंकि उन्हें (दलों को) व्यापक समर्थन प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। सरकार की कुल मिलाकर भूमिका को, विशेषतया सोवियत संघ और पश्चिमी जर्मनी में, अवश्य अच्छी प्रकार से देखा जाना चाहिए जहां राजनीतिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए स्वैच्छिक युवा वर्गों और संगठनों को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

हमें व्यक्ति के अनुभवों का भी परीक्षण करना चाहिए जिसे वह अपने रोजगार के दौरान ग्रहण करता है। जिस प्रकार एक नियोजक अपने कर्मचारियों के प्रति व्यवहार करता है उससे मानव प्रकृति के बारे में गहन अंतर्दृष्टि ग्रहण की जा सकती है। एक बच्चे के रूप में एक ऐसे परिवार में परवरिश पाकर, जिसका संचालन लोकतांत्रिक आधार पर किया जाता है और जिसमें एक दूसरे के प्रति सहयोग की भावना होती है, कोई व्यक्ति आक्रोश, यहां तक कि हिंसा, की भावना व्यक्त कर सकता है अगर वह देखता है कि उसका नियोजक नीच व्यवहार करता है। यहीं पर अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर प्रभुत्व की अभिवृत्ति का अधीनस्थ कर्मचारियों की अपने वरिष्ठ सहयोगियों के प्रति आदर और निर्मित औपचारिक संगठन, यथा क्लब और यूनियन, वे माध्यम बन जाते हैं जिनके जरिये राजनीतिक सूचना और विश्वासों का संचार होता है और सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया में किसी प्रकार से भाग लेना एवं किसी हड़ताल से सम्बद्ध होना नियोजकों और मजदूरों के लिए समान ढंग से शक्तिशाली समाजकारी अनुभव हो सकता है। हड़ताली मजदूर न केवल यह सीखता है कि वह अपने भाग्य के बारे में प्राधिकृत निर्णयों को आकार प्रदान कर सकता है, बल्कि उसे विशिष्ट कार्यकुशलताओं के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है जैसे प्रदर्शन और नशाबन्दी करना, जिसे बाद में राजनीतिक आंदोलनों में भाग लेने हेतु इस्तेमाल किया जा सकता है।

नोट

लैसवैल का वर्गों का समान समुच्चय

कारक	संस्थाएँ	प्रभाव
सत्ता	सरकार और कानून	महत्वपूर्ण निर्णयों के संबंध में समर्थन प्राप्त करना और समर्थन देना (प्राधिकृत प्रतिबद्धताएं लागू करने योग्य होंगी, यदि इन्हें चुनौती दी गई तो ऐसा करने वालों को कड़ी सजा दी जायेगी।
ज्ञान	जन–संपर्क के साधन और	समाचार या वैज्ञानिक सूचना देना या प्राप्त करना, वैज्ञानिक प्रकाशन।
सम्पदा	उद्योग, धन और साख	सेवाओं या संसाधनों को प्राप्त करना।
कल्याण	पोषण और चिकित्सा सेवा	सुरक्षा, स्वास्थ्य और सुख के अवसर प्राप्त करना और देना।
कुशलता	व्यवसाय, पेशे, कलाएं	निहित क्षमताओं को खोलने और पूर्ण करने के लिए अवसर प्राप्त करना और देना।
स्नेह	परिवार, बड़ी स्थितियाँ	प्रेम और निष्ठा के लिए अवसर प्राप्त करना और देना।
सम्मान	वर्ग, पद और जातियां	मान्यता के लिए अवसर प्राप्त करना और देना।
ईमानदारी	धार्मिक, आचारशास्त्रीय	दायित्वपूर्ण आचरण के नियमों को सुविधाजनक बनाने और लागू करने के लिए अवसर प्रदान करना या देना।

व्यक्ति के व्यक्तित्व के संज्ञानात्मक मानचित्र पर जनसंचार के माध्यमों का अपना ही प्रभाव होता है। समाचार पत्रों से रिपोर्टों को पढ़कर रेडियो वार्ताओं को सुनकर और टेलीविजन फिल्मों को देखकर लोग किन्ही मानकों और मूल्यों के लिए अपनी पसंद और नापसंद का विकास कर लेते हैं। इस प्रकार मुक्त जनसंचार के साधन–समाचार पत्र, रेडियो और टेलीविजन– व्यक्तियों के मन में विभित्र प्रकार के मूल्यों का विकास करते हैं; जनसंचार के साधनों की नियंत्रित व्यवस्था उनके विचारों को एक सूत्र में बांधने के लिए बहुत ही प्रभावशील भूमिका का विकास कर सकती हैं।

इसके अलावा हम राजनीतिक अभिविन्यासों के एक महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में 'प्रतीकों' ((symbols) की भूमिका का भी उल्लेख कर सकते हैं। मई दिवस परेड, आम चुनाव, बाजारों मे प्रदर्शन, राज्याभिषेक, राष्ट्रपतित्व का उद्घाटन, मार्क्स, लेनिन और गांधी की जयन्तियां, राष्ट्रीय खुशी के दिनों को मनाया जाना आदि जैसी घटनाएं लोगो की ऐतिहासिक निरन्तरता और उनकी एकता पर बल देती है। एक छोटा बच्चा न केवल इन सभी घटनाओं को देखता है वह अपने शासन के प्रभावी और मूल्यांकनकारी अभिविन्यास का भी विकास कर लेता है। बच्चों में वास्तविक ज्ञान से पहले इन मूल्यांकनों के धारकों के बारे में पार्टी संबंधों, अमरीकी राष्ट्रपति की वास्तविक शक्तियों और ब्रिटिश नरेश की राजनीतिक तटस्थता व नाममात्र की अध्यक्षता के बारे में सकारात्मक जानकारी आती है।

अंत में, हम राजनीतिक व्यवस्था के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क के प्रभाव पर आते हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि व्यक्तियों की अभिवृत्तियों और अभिविन्यासों को आकार प्रदान करने में सबसे प्रभावपूर्ण माध्यम यह हो सकता है कि उन्हें उस राजनीतिक व्यवस्था के साथ सीधे सम्पर्क में आने दिया जाए जिसके अधीन वे रहते हैं। "उस राजनीतिक व्यवस्था के बारे में, जिन्हें परिवार और स्कूल ने शामिल किया है, विचार कितना ही सकारात्मक क्यों न हो, जब किसी व्यक्ति की उसके दल द्वारा अवहेलना की जाती है, पुलिस द्वारा उसे धोखा दिया जाता है, रोटी के लिए लगी पंक्ति में होने पर भी उसे भूखा मरने दिया जाता है, और, अंत में, उसे फौज में जबरन भर्ती कर लिया जाता है, तो इस बात की सँभावना होती है कि अपनी राजनीतिक व्यवस्था के बारे में उसके विचार बदल जाएंगे। विशिष्ट सभ्रांत व्यक्तियों के साथ उसके प्रत्यक्षत: औपचारिक–अनौपचारिक संबंध आवश्यक रूप में एक शक्तिशाली यन्त्र हैं जो उस व्यवस्था के प्रति व्यक्तियों के अभिविन्यासों को आकार प्रदान करते हैं।"

आलोचनात्मक मूल्यांकन: राजनीतिक स्थायित्व और विकास को समझाने के लिए राजनीतिक समाजीकरण के

नोट

अध्ययन को अत्यधिक संभावनाशील उपागमों में से एक उपागम कहा जाता है। जिसने हालिया राजनीतिक वैज्ञानिकों, राजनीतिक समाज वैज्ञानिकों और राजनीतिक वैज्ञानिकों; विशेषकर अमरीकी, को प्रेरित किया है। उनकी इच्छा ऐसे कारकों को देखने की है जिन्होंने राजनीतिक व्यवस्था को रूपांतरित कर दिया है और जो विशेषकर विश्व के पिछड़े हुए और विकासशील देशों में अपनी भूमिका का निर्वाह करते रहे हैं। वस्तुत: जिस बात ने विद्वानों को इस दिशा में अपना योगदान प्रदान करने के लिए प्रेरित किया है वह उनकी ऐसे उपकरणों का विकास करने की उत्साहपूर्ण खोज है जिससे विद्यमान राजनीतिक व्यवस्थाओं को ऐसे रूप में परिवर्तित होने से बचाने का प्रयत्न किया जो स्वतन्त्र और खुले समाजों के जगत के विपरीत हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि राजनीतिक समाजीकरण की संकल्पना पर अनुदार होने का आरोप लगाया जाता है। क्योंकि राजनीतिक विकास की समस्त संकल्पना का उद्देश्य यथा तथ्य (status quo) की रक्षा करने और उसे बनाए रखना है, इसलिए राजनीतिक समाजीकरण की संकल्पना पर भी वही आरोप लगाए जा सकते हैं क्योंकि वह उसी की व्युत्पत्ति है।

इस प्रकार, राजनीतिक समाजीकरण संकल्पना न तो उन लोगों के उद्देश्यों को पूरा कर सकती है जो मार्क्सवाद-लेनिनवाद के अनुयायी हैं, न ही यह उन लोगों को पूर्णरूप में संतुष्ट कर सकती है जो वैज्ञानिक समाजवाद के विकल्प की खोज में लगे हुए हैं। मार्क्सवादी इस बात का खुलेआम एलान करते हैं कि दार्शनिकों ने अब तक विश्व की व्याख्या की है, समस्या यह है कि इसे किस प्रकार बदला जाए। इसी कारण, वे राजनीतिक समाजीकरण जैसी किसी भी संकल्पना को अस्वीकार कर देते हैं क्योंकि वह बुर्जुआ मन की चतुर देन है। इसमें विशेष तरह से उल्लेखनीय बात यह है कि राजनीतिक मनोवैज्ञानिकों का पूरा उपागम ही स्वतन्त्र विश्व के विद्वानों को संतुष्ट करने में असमर्थ रहा है क्योंकि उन्होंने अपने उन साथियों की तरह उसे पूर्णरूप में अस्वीकार नहीं किया है जो मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारों के अनुयायी हैं। अमरीकी राजनीतिक वैज्ञानिकों की नई पीढ़ी ने प्रतिमान चरों (pattern variables) और उनकी आनुभाविक विशिष्टताओं (empirical specifications) में कई दोष ढूंढे हैं केवल यही नहीं कि तीसरी दुनिया के विकासशील देशों पर बल्कि उनके अपने देशों पर भी इन्हें किस प्रकार लागू किया जाए जो मुद्रास्फीति, बेरोजगारी और युद्ध जैसी विषम समस्याओं में जकड़े हुए हैं और जो उनकी राजनीतिक व्यवस्थाओं की अतिजीविता के लिए गंभीर खतरा बने हुए हैं।

तीसरी दुनिया के देशों के राजनीतिक विकास के अध्ययन से पता चलता कि जिस प्रतिमान को महान अमरीकी लेखकों ने प्रस्तुत किया है, उस राजनीतिक समाजीकरण के नमूने को बहुत अधिक सेनाओं, बहुत अधिक सेवकतंत्रीय परजीविता, बहुत अधिक असमान और अपर्याप्त उत्पादन, योजनाओं के प्रदर्शन पर बहुत अधिक बल, विभिन्न समाजों के बीच विरोधों की अधिक अभिव्यक्ति करने, और संक्षेप में, संभ्रांतजनों के लिए बहुत अधिक राजनीतिक व जनसाधारण की नाकाफी सहभागिता में उपयोग में नहीं लाया जा सकता। शीघ्र नहीं बल्कि बहुत ही लम्बे अर्से के बाद पश्चिमी प्रतिमान को, विशेषकर कई तीसरे विश्व के नेताओं के मूल्यों लक्ष्यों के निरपेक्ष स्वरूप के सन्दर्भ में, अपर्याप्त समझा जाने लगा।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the Blanks) –

1. आमंड और वर्बा ने इस बात की ओर संकेत किया है कि किसी व्यक्ति की ..... जितनी व्यापक होगी वह राजनीतिक रूप में उतना ही जागरूक होगा।
2. जब बच्चा अपने परिवार और प्राथमिक स्कूल के प्रभावों से उभरकर आगे आता है और ..... के जगत में पहुँचता है उसे 'समान व्यक्तियों के गुट' या समसमूह (peer groups) भी कहा जाता है।
3. ..... की प्रक्रिया में न केवल परिवारों और शिक्षा केन्द्रों बल्कि सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका है।
4. राष्ट्रीय एकीकरण हेतु विशेषकर विकासशील देशों में ..... की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
5. व्यक्ति के व्यक्तित्व के ..... पर जनसंचार के माध्यमों का अपना ही प्रभाव होगा।

नोट

5.3 सारांश (Summary)

- राजनीतिक समाजीकरण "वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनीतिक संस्कृतियों का अनुरक्षण और उनमें परिवर्तन किया जाता है। इस कार्य के निष्पादन के माध्यम से व्यक्तियों को राजनीतिक संस्कृतियों में शामिल किया जाता है, तभी राजनीतिक वस्तुओं के प्रति उनके अभिविन्यास का निर्माण किया जाता है।" दूसरे शब्दों में, यह उस शिक्षण प्रक्रिया की ओर निर्देश करता है जिसके द्वारा सुसंचालित राजनीतिक व्यवस्था के लिए स्वीकार्य मानकों और व्यवहारों को एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक सम्प्रेषित किया जाता है। इस प्रकार, इस संकल्पना का उद्देश्य व्यक्तियों का इस तरीके से प्रशिक्षण और विकास करना है कि वे राजनीतिक समुदाय के सुकार्यकारी सदस्य बन सके। जाहिर है कि इसके अर्थ में विशिष्ट रूप में मनोवैज्ञानिक आयाम निहित है कि "यह संचालनशील राजनीतिक व्यवस्था के राजनीतिक व्यवस्था के स्वीकार्य मानकों, अभिवृत्तियों और व्यवहार को क्रमिक ढंग से सीखना है।"
- इस प्रकार विचार करने पर राजनीतिक समाजीकरण के अंतर्गत जीवन की हरेक अवस्था में सभी, औपचारिक एवं अनौपचारिक, राजनीतिक प्रशिक्षण आ जाएंगे, फिर चाहे वह जानबूझकर अथवा आयोजित, और इसमें न केवल वह स्पष्ट राजनीतिक प्रशिक्षण शामिल होगा जो राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करता है (जैसे राजनीतिक दृष्टि से असम्बद्ध सामाजिक अभिवृत्तियों का ग्रहण करना) वरन् इसमें राजनीतिक दृष्टि से सम्बद्ध व्यक्तिगत विशेषताओं को ग्रहण करना भी शामिल होगा।"
- अगर इसे सामान्य शब्दों में कहा जाए तो राजनीतिक समाजीकरण एक ऐसा विचार है जो राजनीतिक स्थायित्व के लक्ष्य को प्राप्त करने की अपेक्षा करता है। इसका आधार यह है कि कोई राजनीतिक व्यवस्था तब तक सुचारु ढंग से कार्य नहीं कर सकती जब तक उसके साथ-साथ राजनीतिक मानकों और मूल्यों को अंगीकार करने की प्रक्रिया कार्यरत न हो। जैसा कि एक जीव (organism) के संबंध में होता है, उसी प्रकार से राजनिकाय (politics body) में भी, अनुरक्षण और अतिजीविता के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं होती।
- जैसा राबर्टा साइगेल (Roberta Sigel) ने कहा है, "राजनीतिक समाजीकरण का उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों का प्रशिक्षण और विकास करना है जिससे वे राजनीतिक समाज के अच्छे कार्यकारी सदस्य बन सकें, क्योंकि एक राजनिकाय के बिना, जो संचालित राजनीतिक मूल्यों और राजनीतिक व्यवस्था के साथ सामंजस्य में है, सुचारु रूप में कार्य नहीं हो सकता। और अन्तिम रूप में अतिजीविता राजनीतिक संगठन का उसी प्रकार से एक लक्ष्य है जिस प्रकार से एक जीव का।
- इस प्रकार, राजनीतिक समाजीकरण की परिभाषा उस "प्रक्रिया के रूप में की जाती है जिससे कोई व्यक्ति राजनीतिक व्यवस्था से परिचित होता है और जो राजनीतिक घटनाओं के प्रति उसकी प्रतिक्रिया का निर्धारण करता है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति पर समाज के और समाज पर व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक या सांस्कृतिक पर्यावरण के प्रभाव का परीक्षण किया जाए।
- एक नवजात शिशु जन्मजात सामाजीकृत जीव नहीं होता है; प्रशिक्षण पद्धति से ही उसे सामाजिक बनाया जाता है। साथ ही, इस प्रकार का "प्रशिक्षण समाज के मानकों के बारे में उपयुक्त ज्ञान प्राप्त करने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसके लिए इस बात की भी अपेक्षा होती है कि व्यक्ति उन मानकों को इस प्रकार अंगीकार कर लें कि वे उसे सही, न्यायपूर्ण और नैतिक प्रतीत हों।
- राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया उस काल से आरम्भ होती है जबकि बच्चा चारों ओर के व्यापक पर्यावरण के बारे में सजग होता है, विशेष स्थितियों के प्रति अनुक्रिया में अधिक (perceptive) अनुभव करता है और अपने लिए एक ऐसे दृष्टिकोण का विकास कर लेता है जो अधिकाधिक संगत और सम्पूर्ण हो जाता है जबकि इससे पूर्व यह खंडित और सीमित होता है।
- इससे पता चलता है कि राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत व्यक्ति का सारा जीवन आ जाता है। इसकी नींव व्यक्ति के जीवन की प्रारम्भिक अवस्थाओं में होती है, उन्हीं नए अनुभवों के कारण बाद की अवस्था में इसकी अधि-संरचना (super-structure) में तब्दीली आ सकती है।

नोट

- राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया के दो चर हैं– (1) सजातीय (homogeneous) या सतत जिसका अभिप्राय यह है कि अपनी राजनीतिक व्यवस्था के प्रति पारस्परिक विश्वास के वातावरण में व्यक्ति एक दूसरे के साथ सहयोग करें, और (2) विजातीय (heterogeneous) अथवा असतत् जिसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति एक दूसरे के प्रति पारस्परिक अविश्वास, सन्देह और घृणा की भावना रखते हैं जिसके कारण वे अपनी राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विमुख अथवा उदासीन हो जाते हैं।
- इस अवस्था पर इस बात की ओर संकेत किया जाना चाहिए कि, यद्यपि वास्तव में राजनीतिक समाजीकरण के लिए राजनीतिक स्थायित्व की अपेक्षा की जाती है, इसे किसी सूरत में परिवर्तन-विरोधी संकल्पना नहीं समझा जाना चाहिए। निश्चितत: इसे इस अर्थ में एक अनुदार संकल्पना समझा जा सकता है कि यह ऐसे परिवर्तन का समर्थन करती है जो न क्रांतिकारी है न तीव्र। इसमें इस विषय पर बल दिया गया है कि जब परिवर्तन होना प्रकृति का नियम है तो उसे क्रमिक और शाँतिपूर्ण होना चाहिए।
- राजनीतिक समाजीकरण की प्रकिया काल और उस पर्यावरण के अनुसार अलग-अलग होती है जिसका यह अंग होती है और जिसमें इसका योगदान होता है। अत: इसका राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति और परिवर्तन की मात्रा एवं स्वभाव से गहरा संबंध है।
- सर्वाधिकारवादी समाज वह है जो समाज के सभी पहलुओं पर अपना नियंत्रण रखता है और समाजीकरण पर सामान्यतया किन्तु राजनीतिक समाजीकरण पर विशेष ढंग से बल देता है।
- यदि सीधे सादे शब्दों में कहा जाए तो इसका यह अर्थ है कि हम उन कारकों का, संक्षेप में अध्ययन करें जो राजनीतिक मानकों और मूल्यों को अंगीकार करते हैं जिन्हें पहले के युगों के लोग नागरिक शिक्षा में पाठ, नागरिकता के लिए प्रशिक्षण, सत्तारूढ़ लोगों के व्यवहार और सामाजिक व राजनीतिक संस्थाओं की भूमिका कहा करते थे। इस प्रकार, इस वक्तव्य के यथार्थ का पता लगाने के लिए परिवार, स्कूल, चर्चों, समान लोगों के समूहों, जन-संपर्क साधनों और जन संबंधों की भूमिका का अवलोकन किया जाना चाहिए: क्योंकि व्यक्ति की राजनीतिक अभिवृत्तियां, अभिविन्यासों और मूल्यों को आदान प्रदान करने में सदैव व्यक्ति को प्रभावित किया जाता है, इसलिए यह समाजीकरण की प्रक्रिया उम्र भर चलती रहती है।"
- इसके बाद, प्राथमिक शिक्षा के केन्द्र के रूप में स्कूल का स्थान आता है। राजनीतिक व्यवहार की व्याख्या में शिक्षा को बहुत समय से एक महत्वपूर्ण चर समझा जाता रहा है और इस बात का प्रमाण दिया जा सकता है कि वह राजनीतिक समाजीकरण का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है।
- इस दिशा में जिस बात का ज्यादा महत्व है वह यह है कि राजनीतिक समाजीकरण की समस्या उस समय उत्पन्न होती है जब बच्चा अपने परिवार और प्राथमिक स्कूल के प्रारंभिक प्रभावों से उभर कर आगे आता है और उच्चतर कक्षाओं के जगत में पहुँचता है जिसे 'समान व्यक्तियों का गुट' या 'सम समूह (peer groups) भी कहा जाता है।
- जैसा कि सी. राइट मिल्स ने अपनी रचना 'द सोश्यालोजीकल इमेजीनेशन' (The Sociological Imagination) में कहा, "दोनों का उद्देश्य ऐसे लोगों और व्यक्तियों को तैयार करना है जो व्यक्तिगत और सामाजिक संबंधों के साथ रहने के योग्य हैं और उनकी पर्याप्त परिभाषाओं के अनुसार रह सकते हैं।"
- हमें व्यक्ति के अनुभवों का भी परीक्षण करना चाहिए जिसे वह अपने रोजगार के दौरान ग्रहण करता है। जिस प्रकार एक नियोजक अपने कर्मचारियों के प्रति व्यवहार करता है उससे मानव प्रकृति के बारे में गहन अंतर्दृष्टि ग्रहण की जा सकती है।
- राजनीतिक स्थायित्व और विकास को समझाने के लिए राजनीतिक समाजीकरण के अध्ययन को अत्यधिक संभावनाशील उपागमों में से एक उपागम कहा जाता है, जिसने हालिया राजनीतिक वैज्ञानिकों, राजनीतिक समाज वैज्ञानिकों और राजनीतिक वैज्ञानिको; विशेषकर अमरीकियों, को प्रेरित किया है।
- वस्तुत: जिस बात ने विद्वानों को इस दिशा में अपना योगदान प्रदान करने के लिए प्रेरित किया है वह उनकी ऐसे उपकरणों का विकास करने की उत्साहपूर्ण खोज है जिससे विद्यमान राजनीतिक व्यवस्थाओं को ऐसे रूप में परिवर्तित होने से बचाया जा सके तो स्वतन्त्र और खुले समाजों के जगत के विपरीत हैं। इसका परिणाम यह

नोट

हुआ है कि राजनीतिक समाजीकरण की संकल्पना पर अनुदार होने का आरोप लगाया जाता है। क्योंकि राजनीतिक विकास की समस्त सकल्पना का उद्देश्य यथा तथ्य (status quo) की रक्षा करने और उसे बनाए रखना है, इसलिए राजनीतिक समाजीकरण की संकल्पना पर भी वही आरोप लगाए जा सकते हैं क्योंकि वह उसी की व्युत्पत्ति है।

- इस प्रकार, राजनीतिक समाजीकरण संकल्पना न तो उन लोगों के उद्देश्यों को पूरा कर सकती है जो मार्क्सवाद–लेनिनवाद के अनुयायी हैं, न ही यह उन लोगों को पूर्णरूप में संतुष्ट कर सकती है जो वैज्ञानिक समाजवाद के विकल्प की खोज में लगे हुए हैं।
- तीसरी दुनिया के देशों के राजनीतिक विकास के अध्ययन से पता चलता है कि जिस प्रतिमान को महान अमरीकी लेखकों ने प्रस्तुत किया है, उस राजनीतिक समाजीकरण के नमूने को बहुत अधिक सेनाओं, बहुत अधिक सेवकतन्त्रीय परजीविता, बहुत अधिक असमान और अपर्याप्त उत्पादन, योजनाओं के प्रदर्शन पर बहुत अधिक बल पर अवसंरचना की अवहेलना, विभिन्न समाजों के बीच विरोधों की अधिक अभिव्यक्ति करने, और संक्षेप में, संभ्रांतजनों के लिए बहुत अधिक राजनीतिक व जनसाधारण की नाकाफी सहभागिता में उपयोग में नहीं लाया जा सकता।

5.4 शब्दकोश (Keywords)

परजीविता : दूसरों पर निर्भर होकर जीना

संभ्रांतजन : कुलीन लोग

तादात्म्य : सामंजस्य स्थापित करना

5.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. राजनीतिक समाजीकरण से आप क्या समझते हैं? इसके निहितार्थों की व्याख्या कीजिए।
2. राजनीतिक समाजीकरण के विभिन्न कारकों की व्याख्या कीजिए।

उत्तर - स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. शिक्षा
2. उच्चतर शिक्षा
3. मान–अंगीकरण (Norm-Internalization)
4. युवा आंदोलनों
5. संज्ञानात्मक मानचित्र

5.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा*– ओम प्रकाश गाबा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।
2. *तुलनात्मक शासन एवं राजनीति*–डॉ. बीरकेश्वर प्रसाद सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन (पी. एण्ड डी.) 24, दरियागंज, अंसारी रोड, दिल्ली।
3. *तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ*–सी.बी. गेना, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड, दिल्ली।
4. *तुलनात्मक राजनीति*–जे.सी. जौहरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि., दिल्ली।

नोट

इकाई–6: सामाजिक-आर्थिक आधार और संविधान के मुख्य लक्षण (Socio-Economic Bases and Salient Features of the Constitution)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

6.1 यू. के., यू.एस.ए., रसिया, फ्रांस, चीन एवं स्विट्जरलैण्ड के संविधान का विकास (Constitutional Development of U.K., U.S.A, Russia, France, China and Switzerland)

6.2 यू.एस.ए. और स्विट्जरलैण्ड में संविधान संशोधन की प्रक्रिया (Amendment process in the Constitution of U.S.A and Switzerland)

6.3 यू.एस.ए. और स्विट्जरलैण्ड की संघीय व्यवस्था (Federal system of U.S.A. and Switzerland)

6.4 सारांश (Summary)

6.5 शब्दकोश (Keywords)

6.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

6.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- यू.के., यू.एस.ए., रसिया, फ्रांस, चीन एवं स्विट्जरलैण्ड के संवैधानिक विकास की व्याख्या करने में।
- यू.एस.ए. और स्विट्जरलैण्ड में संवैधानिक संशोधन प्रक्रिया का विवेचन करने में।
- यू.एस.ए. और स्विट्जरलैण्ड की संघीय व्यवस्था को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

तुलनात्मक राजनीति के परम्परागत और आधुनिक दृष्टिकोणों के अध्ययन से यह जानकारी प्राप्त हुई है कि इसका परम्परागत अध्ययन मुख्यत: संस्थागत, वैयक्तिक और वर्णनात्मक रहा है। बदले हुए माहौल में राजनीतिक प्रक्रियाओं की वास्तविकता को समझने में तथा सामान्य सिद्धांतों के निर्माण में इसकी उपयोगिता नहीं के बराबर सिद्ध हो चुकी थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की पेचीदा राजनीतिक व्यवस्थाओं को समझने के लिए नये उपागमों या दृष्टिकोणों की खोज जारी थी, जो वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग करके राजनीतिक प्रक्रिया की वास्तविकताओं को समझने में सहायक हो। विकासशील देशों के उदय ने भी तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन में ऐसी आवश्यकता को जरूरी बना दिया। इसी के फलस्वरूप तुलनात्मक राजनीति में नये दृष्टिकोणों का विकास हुआ जिनमें राजनीतिक व्यवस्था का महत्त्व सबसे अधिक माना जाता है।

राजनीतिक व्यवस्था संबंधी दृष्टिकोण ने तुलनात्मक राजनीति को न केवल वैज्ञानिक बनाया बल्कि राजनीतिक व्यवहार के विषय में निर्माण का मार्ग भी प्रशस्त किया। विश्व में तीसरी दुनिया के देशों के विकास और साम्यवादी शक्तियों के उदय ने राजनीतिक विचित्रता की गम्भीर स्थिति ला दी। इसी राजनीतिक वातावरण में राजनीतिक व्यवस्था दृष्टिकोण का जन्म हुआ।

नोट

राजनीतिक व्यवस्था राजनीतिक घटनाओं और उनसे सम्बन्धित तथ्यों के चुनाव का आधार प्रस्तुत करती है इस दृष्टिकोण की उत्पत्ति से यह उम्मीद की जाने लगी कि तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन अधिक शुद्ध और वैज्ञानिक होगा। इस प्रकार, राजनीतिक व्यवस्था का महत्त्व तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण में बढ़ जाता है।

राजनीतिक व्यवस्था संबंधी दृष्टिकोण तुलनात्मक राजनीति में नई अवधारणा पर आधारित दृष्टिकोण है। **डेविड ईस्टन** का विचार है कि राजनीतिक व्यवहार के विषय में आनुभविक (empirical) सिद्धांत का निर्माण तभी सम्भव है जब समाज में निर्णय लेने और उन्हें लागू करने में शामिल प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभावों को ध्यान में नहीं लाया जाये बल्कि अध्ययन की महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं में इसे शामिल किया जाये। इसमें कोई दो मत नहीं है कि राजनीतिक दलों के हित या दवाब समूहों, शासन संरचनाओं और राजनीतिक प्रक्रियाओं का अलग-अलग अध्ययन करके सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के विषय में यह सामान्यीकरण की स्थिति तक नहीं ले जा सकता है। इसलिए, सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था ही संरचना को समझने में उपयोगी मानी जाने लगी। इस संदर्भ में यह जानना जरूरी है कि राजनीतिक व्यवस्था संबंधी दृष्टिकोण की क्या आवश्यकता है?

आधुनिक युग में तुलनात्मक राजनीति की आवश्यकता इसलिए बढ़ गई है कि बदले हुए राजनीतिक माहौल में तुलनात्मक विश्लेषण की पुरानी अवधारणाएँ निरर्थक और अनुपयुक्त हो गई है। केवल राज्य सरकार के अध्ययन से ही राजनीतिक व्यवहार को नहीं समझा जा सकता। इसलिए, राजनीतिक व्यवस्था संबंधी दृष्टिकोण की आवश्यकता आधुनिक विद्वानों द्वारा महसूस की जाने लगी। पुनः केवल कानूनी-संस्थापक ढाँचों पर ही तुलनात्मक अध्ययन आधारित थे। अतः राजनीति की अराजनीतिक शक्तियों को शामिल करना जरूरी हो गया जिनसे राजकीय गतिविधियाँ संचालित और नियंत्रित होती है। इस प्रकार तुलनात्मक राजनीति में ऐसी अवधारणा की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी जो अपने अध्ययन में राजनीतिक, अराजनीतिक तत्त्वों को भी शामिल करें। राजनीतिक व्यवस्था ऐसी ही जरूरत की पूर्ति करती है।

6.1 यू.के., यू.एस.ए., रसिया, फ्रांस, चीन एवं स्विट्जरलैण्ड के संविधान का विकास (Constitutional Development of UK, USA, Russia, France, China and Switzerland)

ब्रिटिश संवैधानिक विकास की प्रकृति– ब्रिटिश संविधान क्रमिक विकास का परिणाम है। इसकी जड़ें सदियों पुराने इतिहास में जमी हुई हैं। **वुड्रो विल्सन** ने इसे ही व्यक्त करते हुए कहा है कि "ब्रिटिश संवैधानिक इतिहास की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसकी राजनीतिक संस्थाएँ, उसके विकासक्रम, जो प्राचीनतम शासन-प्रणाली के परिवर्तन तक एक है, से सम्बद्ध है।"

(i) **ऐंग्लो-सैक्सन युग**- इंग्लैंड का इतिहास केल्ट (Celts), रोमन (Romans) और सैक्सन (Saxons) जातियों के आगमन के साथ शुरू होता है। यद्यपि इनका शासन पाँचवी शताब्दी के आरंभ तक रहा फिर भी संविधान के विकास में इसका भी हाथ नहीं रहा। इसके बाद ऐंग्लो-सैक्सन सभ्यता का प्रारंभ होता है जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान अंग्रेजी सभ्यता तथा उसके संविधान की नींव पड़ी। कम-से-कम दो संस्थाएँ इस युग की बहुत बड़ी देन हैं–राजतंत्र और स्वायत्त-शासन। ऐंग्लो-सैक्सन स्वायत्त संस्थाओं की प्रमुख देन अँग्रेजो को शासन की कला में प्रवीण बनाना था। ब्लैकस्टोन (Blackstone) ने संविधान में प्रजातांत्रिक तत्त्वों की चर्चा करते हुए इन संस्थाओं को श्रद्धांजलि अर्पित की है और कहा है कि "इंग्लैंड की स्वतंत्रता उसकी स्वतंत्र स्वायत्त संस्थाओं की देन है। अपने पूर्वजों, सैक्सनों, के समय से ही अंग्रेजो ने नागरिकों के कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को सीखा है।"

(ii) **नार्मन-एन्जवीन युग**- ब्रिटिश संविधान के विकास का दूसरा और महत्त्वपूर्ण अध्याय 1066 ई. के नार्मन विजय से प्रारंभ होता है। वस्तुतः, यही संविधान का उद्गम-स्थल है। इस युग में सामाजिक और प्रशासनिक व्यवस्था का ऐसा रूप दिया गया जिसके फलस्वरूप राजा पूरे देश का शासक बन गया। कुल मिलाकर नार्मन युग में राजनीतिक व्यवस्था को काफी दृढ़ बनाया गया।

नोट

(iii) **ग्रेट कौंसिल और क्यूरिया रेजिस**- राजा की शक्ति इतनी बढ़ गयी कि शासनकार्य में बाहरी सहायता आवश्यक हो गयी। शासनसंचालन और नीति-निर्धारण में सहायता के लिए दो संस्थाओं का जन्म हुआ– बड़ी परिषद् (Great Council or Magnum Concilium) और छोटी परिषद् (Little council or Curia Regis) । ग्रेट कौंसिल सैक्सन युग की विटनाजेमूट उत्तराधिकार सभा थी। क्यूरिया रेजिस ग्रेट कौंसिल का छोटा रूप था। इसे ग्रेट कौंसिल का 'आंतरिक वृत्त' (inner circle) कहा जाता है। ग्रेट कौंसिल से ब्रिटिश संसद तथा क्यूरिया रेजिस से प्रिवी कौंसिल, एक्सचेकर तथा उच्च न्यायालयों का उदय हुआ। इस प्रकार, बीसवीं शताब्दी का इंग्लैंड 'नार्मन युग' का बहुत कुछ ऋणी है।

(iv) **मैग्नाकार्टा और उसका महत्त्व**- हेनरी द्वितीय ने शासन को सफलतापूर्वक चलाया और राजतंत्र को दृढ़ बनाया। लेकिन, उससे अयोग्य उत्तराधिकारियों– रिचर्ड प्रथम और जॉन की गलत नीतियों ने क्रांति की आग भड़का दी; समर्थकों ने उसका साथ छोड़ दिया। अन्त में, बैरोनी ने जॉन को अपनी शर्तों को मानने के लिए बाध्य किया। फलतः, उसे मैग्नाकार्टा (Magna Carta) जिसे 'माँग-राजपत्र (The Great Charter) कहते हैं, पर अपनी मंजूरी देना पड़ी। यह राजपत्र विश्व का नहीं तो कम-से-कम ग्रेट ब्रिटेन का सबसे महत्त्वपूर्ण लेख अवश्य है। उन्नीसवी शताब्दी में **बिशप बिलियम स्टब्स** (Bishop Wiliam Stubbs) ने कहा था कि ब्रिटिश संविधान का पूरा इतिहास इस महान राजपत्र की एक व्याख्या है।

संसद का उदय और निर्माण

(i) **संसद का प्रारंभ**- संसद का उत्पत्ति-काल एक विवादास्पद प्रश्न है। अधिकतर विद्वान इसकी शुरूआत नार्मन युग की 'वृहत् सभा' (Magum Concilum) में पाते हैं। यह वर्तमान लार्ड सभा की तरह पादरियों तथा कुलीनों के साथ थी, लेकिन धीरे-धीरे बाह्य और आंतरिक दिक्कतों का सामना करने के लिए तथा कर-प्राप्ति के उद्देश्य से राजा जनता के प्रतिनिधियों को भी आमंत्रित करने लगे। 1295 ई. में एडवर्ड प्रथम ने संसद की बैठक बुलायी। यह इतिहास में 'आदर्श संसद' (Model Parliament) के नाम से विख्यात है, क्योंकि 400 व्यक्तियों की इस सभा में प्रायः सभी प्रमुख वर्गों-बैरन, पादरी, नाईट तथा नगरों इत्यादि को प्रतिनिधित्व मिला। इसके पश्चात् ब्रिटिश शासन व्यवस्था का यह एक स्थायी और अनिवार्य अंग बन गयी। यह न तो किसी निश्चित योजना, निश्चित समय या जनता की माँग का परिणाम है, बल्कि यह ऐतिहासिक विकास का फल है।

(ii) **प्रतिनिधित्व का सिद्धांत**- शुरू से ही संसद का रूप अंशतः प्रतिनिध्यात्मक (representative) रहा है, क्योंकि नगरों और सामन्तों के प्रतिनिधि किसी-न-किसी रूप में चुने हुए होते थे। इंग्लैंड के लिए प्रतिनिधित्व का सिद्धांत कोई नया सिद्धांत नहीं था। अतः सच्ची प्रतिनिध्यात्मक सरकार की स्थापना वर्तमान काल में हुई। लेकिन इसकी नींव वृहत् सभा में काऊन्टी और बौरों को प्रतिनिधित्व देने के साथ पड़ चुकी थी। इसके उदय का कारण स्वतंत्रता या स्वशासन के प्रति प्रेम नहीं बल्कि राजाओं की कर प्राप्त करने की शक्ति थी।

(iii) **द्विसदनात्मक पद्धति**- विश्व के अधिकतर संविधानों में द्विसदनात्मक (bicameral) प्रथा को अपनाया गया है। यह पद्धति भी ब्रिटिश संविधान की ही देन है। समान हितों के कारण एक ओर उच्च कोटि के सामन्त और पादरी तथा दूसरी ओर निम्नकोटि के सामन्त और पौजन एक साथ मिल गये। दोनों समूहों की अलग-अलग बैठक होने लगी। प्रथम वर्ग के लोगों की सभा का नाम लार्ड सभा (House of Lords) तथा दूसरे वर्ग के लोगों की सभा का नाम लोक-सभा (House of Commons) पड़ा। इस प्रकार, द्विसदनीय संसद का प्रादुर्भाव हुआ और सौ वर्षों के अंतर्गत ही यह पद्धति ब्रिटिश शासन-व्यवस्था का अभिन्न अंग बन गयी।

(iv) **संसद की शक्ति**- संसद सम्बन्धी सबसे महत्त्वपूर्ण विकास उसकी शक्ति थी। धीरे-धीरे यह प्रथा बन गयी कि नये करों को लगाने के लिए संसद की स्वीकृति ली जाय। अन्ततः यह नियम बन गया कि प्रतिनिधियों की स्वीकृति के बिना कोई कर नहीं लगाया जा सकता-**"बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं।"** 1407 ई. में इस सिद्धांत ने एक नया रूप लिया, इस प्रकार आर्थिक आरंभण का अधिकार जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में आ गया। आर्थिक अधिकार के साथ-साथ कानून-निर्माण का अधिकार भी संसद के हाथों में आने लगा। इस विकास के परिणामस्वरूप, **ऑग** के शब्दों में, "एक समय का विनीत आवेदक सदा के लिए विधायक बन गया।"

नोट

संवैधानिक द्वन्द्व और पुनर्निर्माण

(i) **ट्यूडर काल और निरंकुशवाद**– पद्रहवीं सदी के अन्त तक संसद शक्तिशाली हो गयी थी और राजा कमजोर। आधुनिक संविधान की विभिन्न संस्थाओं की नींव पड़ चुकी थी। आनेवाला दिन उनके विकास और पुनर्गठन का इतिहास है। ट्यूडर राजाओं ने मनमाने ढंग से देश का शासन किया पूर्ण निरंकुश राज्य की स्थापना हो गयी। कुशल शासन और राजस्व पर अधिकार के कारण राजा के हाथ में सारा शासन–सूत्र चला आया। फिर भी, संसद की शक्ति और प्रतिष्ठा बढ़ती गयी।

(ii) **स्टुअर्ट काल और क्रांतियाँ**– 1603 ई॰ में जेम्स प्रथम, जिसे 'सबसे बुद्धिमान बेवकूफ' (wisest fool) कहा गया हैं, राजगद्दी पर बैठा। वह राजाओ के 'दैवी अधिकार' (Divine Rights of the Kings) के सिद्धांत में विश्वास करता था। इस सिद्धांत के अनुसार राजा पृथ्वी पर ईश्वर का एक दूत था जिसे असीमित और निरंकुश शक्ति प्राप्त थी। इस प्रकार, जेम्स ने ऐसे सिद्धांत का समर्थन किया जो सदियों पुरानी ब्रिटिश संवैधानिक विचारधारा के विपरीत था, लेकिन असंतोष की आग उसके समय में न भड़क सकी। इस आग की लपटों का सामना उसके पुत्र चार्ल्स प्रथम को करना पड़ा। चार्ल्स ने ससंद् को भंग किया, जबर्दस्ती कर वसूली कर 'अधिकार के आवेदन–पत्र' (Petition of Rights) का उल्लंघन किया। फलस्वरूप संसद और राजा में अनबन हुई। अन्ततः चार्ल्स को जान से हाथ धोना पड़ा। तदुपरांत संसद ने 1649 ई. में क्रामवेल के संरक्षण में 'प्रजातंत्र' (Republic of Commonwealth) की स्थापना की जो सिर्फ ग्यारह वर्षों तक रहा। 1660 ई॰ में राजतंत्र की पुनः स्थापना हुई। चार्ल्स द्वितीय गद्दी पर बैठा। फिर राजा और संसद का सम्बन्ध बिगड़ने लगा। चार्ल्स के शासन की एक महत्त्वपूर्ण घटना 1679 ई. का **हैबियस कॉरपस ऐक्ट** (Harbeas Corpus Act, 1679) था। चार्ल्स के बाद जेम्स द्वितीय राजगद्दी पर आया। चर्च के कारण संसद से उसकी लड़ाई छिड़ गयी। फलस्वरूप, 1688 ई॰ में 'गौरवपूर्ण क्रांति' (Glorious Revolution) हुई और स्टुअर्ट युग का अंत हो गया।

(iii) **संसद की सर्वोच्चता, अधिकार-पत्र और व्यवस्था-पत्र अधिनियम**– राजा की शक्ति को सीमित करने के उद्देश्य से संसद ने 1686 ई. में विख्यात अधिकार–पत्र (Bill of Rights) को पास किया। इसके द्वारा स्टुअर्ट काल में राजाओं द्वारा व्यवहृत गैर–कानूनी अधिकारों पर रोक लगा दी गयी। इसमें निम्नलिखित मुख्य बातें थी– सम्राट किसी विशेष न्यायालय अथवा आयोग की स्थापना नहीं कर सकता; शांति–काल में ससंद की अनुमति के बिना कहीं स्थायी सेना नहीं रखी जा सकती; जनता को सम्राट के सामने अपनी शिकायतों को रखने का अधिकार है; संसद के सदस्यों को भाषण तथा वाद–विवाद की पूर्ण स्वतंत्रता है; कोई कैथोलिक या कैथोलिक से विवाहित व्यक्ति सम्राट नहीं बन सकता। इस पत्र का विशेष संवैधानिक महत्त्व है, क्योंकि इसने 'गौरवपूर्ण क्रांति' तथा सतरहवीं शताब्दी के उदार आन्दोलन के परिणामों का संग्रह कर उन्हें संवैधानिक रूप दिया। इसके साथ ही संसद और राजा का झगड़ा समाप्त हो गया। संसद की सर्वोच्चता सदा के लिए स्थापित हो गयी; राजा उसके नियंत्रण में आ गया। इसी तथ्य की पुष्टि व्यवस्था–पत्र अधिनियम, 1701 (Act of Settlement) द्वारा हुई। एनी के बाद उत्तराधिकार हनोवर (hanover) घराने को दे दिया गया। फलतः राजा संसद द्वारा नियुक्त हो गया। भविष्य में संसद की सर्वोच्चता को किसी ने ललकारने का साहस नहीं किया। यह चिर सत्य हो गया।

क्या आप जानते हैं 1485 ई. में ट्यूडर (Tudor) वंश का राज प्रारंभ हुआ।

संवैधानिक विकास का अन्तिम चरणः 1689 के बाद

अधिकार–पत्र (1689 ई.) तक ब्रिटिश संवैधानिक इतिहास के विकास के बीजारोपण का युग था। उस समय तक संविधान के मौलिक तत्त्वों की नींव पड़ चुकी थी। इसी नींव पर संविधान का विशाल भवन खड़ा हुआ। 1689 ई. के बाद का युग इसी भवन–निर्माण की कहानी है।

नोट

(i) **राजा की शक्ति में ह्रास**– सत्तरहवीं सदी के अन्तिम दशक में बहुत–से बन्धनों के बावजूद राजा शक्तिशाली बना रहा। सिद्धांत में संसद की सर्वोच्चता मानी जा चुकी थी, लेकिन इसे व्यवहारिक रूप देने में कठिनाई हो रही थी। विलियम और मेरी की राजकीय नीतियों और कार्यों पर कड़ा नियंत्रण रहा। लेकिन, अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में सही समय ने पलटा खाया। सभी जार्ज विदेशी होने के कारण राज–कार्यों में कम दिलचस्पी लेते थे। अत: उनके साधारण अधिकार धीरे–धीरे उनके हाथ से निकलकर मंत्रियों और संसद के हाथ में आने लगे। राजा वास्तविक शासक न रहा, वह संवैधानिक प्रधान बन गया। वह सिर्फ राज्य करने लगा शासन नहीं। सभी उत्तराधिकारियों ने इस नियम का पालन किया।

(ii) **उत्तरदायी मंत्रिपरिषद**– अठारहवीं सदी के मध्य तक ऐसी संस्था का जन्म हुआ जो जनतंत्र का प्रमुख अंग बन गया। यह संस्था मंत्रिपरिषद् थी। धीरे–धीरे वास्तविक प्रशासकीय शक्ति संसद के प्रति उत्तरदायी एकदलीय मंत्रिपरिषद के हाथ में आ गयी। अन्त में, जनता की प्रतिनिधि सभा 'कॉमन सभा' के हाथ में देश की अन्तिम शक्ति आयी और मंत्रिमंडल उसके प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी हुआ।

(iii) **प्रधानमंत्री**– मंत्रिमंडल के सामूहिक उत्तरदायित्व की व्यावहारिक सफलता के लिए नेता की आवश्यकता थी, लेकिन बहुत दिनों तक किसी ने इस स्थान को ग्रहण नहीं किया। **वालपोल** ने सिद्धांत रूप में अपने को प्रथम या प्रधानमंत्री को कबूल नहीं किया, फिर भी संसद और मंत्रिमंडल में उसकी प्रधानता थी। बहुत दिनों तक इसकी यही स्थिति रही। 1937 ई. से बहुमत दल का नेता प्रधानमंत्री होने लगा।

(iv) **मंत्रिमंडल और मंत्रिमंडलीय पद्धति–** मंत्रिमंडलीय व्यवस्था (Cabinet System) ब्रिटिश संविधान की आधारशिला है। स्टुअर्ट काल में मंत्रिमंडल प्रारम्भिक रूप में था। 1696 ई. की 'Whig Junto' से मंत्रिमंडल की वास्तविक शुरूआत होती है।

वस्तुत:, वालपोल के नेतृत्व काल में मंत्रिमंडल की सभी विशेषताओं का उदय हो चुका था। मंत्रिमंडलात्मक उत्तरदायित्व के सिद्धांत का विकास भी उन्हीं दिनों हुआ। अट्ठारहवीं सदी के अंत तक मंत्रिमंडलीय व्यवस्था की सभी रूढ़ियाँ स्थापित हो गईं और उन्हें संवैधानिक मान्यता मिलने लगी।

(v) **लोकसभा का प्रजातंत्रीकरण**– संसद के सम्बन्ध में दो महत्त्वपूर्ण विकास हुए– (1) लोकसभा का प्रजातंत्रीकरण और (2) संसद में शक्ति का स्थान–परिवर्तन। 1832 ई. तक कॉमन सभा लार्ड सभा की तरह कुलीनतांत्रिक थी। इसका प्रतिनिध्यात्मक रूप नहीं के बराबर था, लेकिन जनता की माँग के कारण धीरे–धीरे मताधिकार का क्षेत्र बढ़ने लगा। मतदाताओं के बीच राजनीतिक शक्ति का अधिक न्यायिक बँटवारे के लिए संसदीय क्षेत्रों का पुनर्वितरण हुआ, चुनाव–प्रचार आदि के नियम निश्चित किये गये। 1918 ई. के जन–प्रतिनिधित्व अधिनियम (Representation of the People's Act. 1918) और पूरक समान मताधिकार के कानून ने इस क्रम को पूरा किया। आज कॉमन सभा विश्व के प्रजातान्त्रिक सदनों में एक है।

(vi) **संसद में शक्ति का स्थान–परिवर्तन**– संसद–सम्बन्धी दूसरा विकास कॉमन सभा की शक्ति का बढ़ना और लार्ड सभा की शक्ति में ह्रास था। 1911 ई. के संसद अधिनियम (Parliament Act, 1911) ने इनकी बची–खुची शक्ति को छीन लिया। आज वस्तुत: यह दूसरा सदन नहीं बल्कि एक दूसरे क्रम का सदन हो गया।

(vii) **राजनीतिक दलों का उदय**– प्रतिनिधि सरकार में राजनीतिक दल का उदय अवश्यम्भावी है। प्रथम प्रतिनिधि सरकार होने के कारण सर्वप्रथम इंग्लैंड में ही राजनीतिक दलों का जन्म हुआ। अट्ठारहवीं सदी तक किसी दल का उदय नहीं हो पाया था। क्रामवेल के समय में **'कैवेलियर्स'** (Cavaliars) और **'राउण्डहेड्स'** (Roundheads), चार्ल्स द्वितीय के राज्य–काल में **'कोर्ट'** (Court) और **'कंट्री'** (Country), 'स्टुअर्ट' युग के अन्त में **'पिटिशनर्स'** (Petitioners) और **'एभोरर्स'** (Abhorers) परस्पर–विरोधी गुट थे, राजनीतिक दल नहीं। निश्चित सिद्धांत, कार्यक्रम तथा पारस्परिक सहनशीलता राजनीतिक दल के लिए आवश्यक है जिनकी इन दलों में कमी थी। इन आधारों पर **'ह्विग** (Whing) **'टोरी'** (Tory) दलों को राजनीतिक दलों का प्रारंभिक रूप माना जा सकता है। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में मन्त्रिमण्डल पद्धति के विकास के साथ दलों का भी विकास हुआ। उदार दल और अनुदारवादी दल राजनीतिक व्यवस्था के केन्द्र बन गये। आजकल मजदूर दल और अनुदारवादी दल प्रमुख राजनीतिक दल हैं।

नोट

(viii) **अन्य संवैधानिक विकास**- स्टुअर्ट वंश के बाद अन्य राजनीतिक विकास हुए। 1707 ई. में इंग्लैंड का स्कॉटलैंड का संसदात्मक गठन हुआ। 1801 ई. में आयरलैंड भी उस संगठन के अन्तर्गत आ गया। ब्रिटिश साम्राज्य विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गया। स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं का पुनर्गठन तथा प्रजातन्त्रीकरण हुआ। न्याय, व्यवस्था और लोक सेवाओं में सुधार हुआ। सरकार के कार्यों के बढ़ने के कारण प्रशासकीय अंगो में वृद्धि हुई। इस प्रकार, ब्रिटिश संविधान में अनेक परिवर्तन हुए और आज भी हो रहे हैं विकास का क्रम रूका नहीं है, यह गतिशील है। **ऑग** और **जिंक** के शब्दों में, "युग-युग से उसमें विकास होता आ रहा है, यहाँ तक कि वर्तमान काल में भी।" लेकिन, संविधान की आत्मा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। यथाकाल व्यवस्था ब्रिटिश संविधान की प्रमुख विशेषता है।

अमेरिकी संविधान का विकास (Development of American Constitution)

प्रत्येक संविधान की जड़ अतीत के गर्भ में छिपी हुई है। अमरीकी संविधान भी इसका अपवाद नहीं है। अत: वर्तमान संविधान के समुचित ज्ञान के लिए उसका ऐतिहासिक ज्ञान आवश्यक है। अध्ययन की सुविधा के लिए संविधान के विकास को चार भागों में बाँटा जा सकता है– (1) उपनिवेशीकरण (Colonization), (2) स्वतन्त्रता (Independence), (3) राज्यमंडल (Confederation) और (4) संविधान (Constituion)।

उपनिवेशीकरण (Colonization)

देशान्तरवासियों का आगमन (Arrival of Immigrants)– सोहलवीं और सत्तरहवीं शताब्दी में राज्यों द्वारा विशेष धर्मों के अनुयायियों पर अत्याचार होता था। लोगों के धर्म और रस्म-रिवाज संकट में थे। अत:, उन लोगों को अपना देश छोड़कर नयी दुनिया की शरण लेनी पड़ी।

वर्णसंकर संस्कृति का जन्म (Birth of a hybrid culture)–विभिन्न देशवासियों के आगमन ने अमेरिका में एक वर्णसंकर संस्कृति को जन्म दिया। निष्क्रमणकारियों में अंग्रेजों का बाहुल्य था जिन्होनें अपनी भाषा, स्वतन्त्रता, स्वशासन की परम्पराओं आदि का बीजारोपण इस देश में किया। अन्य देशवासियों ने भी आंशिक रूप में इस नयी सभ्यता पर प्रभाव डाला। फलत:, एक मिश्रित संस्कृति का जन्म हुआ जो मूलत: अंग्रेजी थी, पर साथ-साथ अन्य संस्कृतियों से भी प्रभावित थी।

उपनिवेशों में स्थानीय शासन (Local Governments)– अमरीकी उपनिवेशों की अन्य प्रमुख स्थायी विशेषता स्थानीय संस्थाएँ थीं। आधुनिक काल की स्थानीय संस्थाओं का यहीं से प्रारम्भ होता है। न्यू इंगलैंड की प्रमुख देन शहरों में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र था। दक्षिण में काउन्टियों का विकास हुआ जो स्थानीय की उपर्युक्त इकाइयाँ सिद्ध हुईं, मध्य के उपनिवेशों में स्थानीय शासन, देहाती इकाइयों की नींव पड़ी और दक्षिण में बड़े-बड़े शहरों के शासन-काल की शुरूआत हुई।

स्वतन्त्रता (Independence)– 'जेम्स टाउन की स्थापना और स्वतंत्रता की घोषणा' के बीच 169 वर्ष बीत गए, लेकिन उपनिवेशवासियों ने कभी स्वाधीनता की माँग नहीं की। इस बीच सिर्फ छोटे-छोटे स्थानीय और व्यक्तिगत झगड़े होते रहे, लेकिन धीरे-धीरे शासन के भ्रष्टाचार तथा शोषण के कारण असन्तोष की आग भड़कने लगी। स्वतन्त्रता-संग्राम का कारण अधिकतर सैद्धांतिक था। ये उपनिवेश ब्रिटिश सम्राट् की सत्ता को स्वीकार करते थे, परन्तु उसमें ब्रिटिश संसद का हस्तक्षेप नहीं था। जब अर्थाभाव के कारण सभी वर्गों पर अधिक कर लगाया जाने लगा तथा व्यापार और प्रशासन सम्बन्धी कठोर नियम बनाये गये तो उपनिवेशों में तीव्र रोष व्याप्त हो गया। उपनिवेशों का कहना था कि "बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं लगाना चाहिए।" वे ब्रिटिश सरकार द्वारा कर लगाये जाने के विरोधी थे।

महाद्वीपीय काँग्रेस एवं स्वतन्त्रता की घोषणा- मेसाचुसेट्स के निवासियों ने क्रांति का नेतृत्व किया। उनके प्रयास के फलस्वरूप 1774 ई॰ में बारह उपनिवेशों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन फिलाडेल्फिया नगर में हुआ जिसे 'प्रथम महाद्वीपीय काँग्रेस' (The First Continental Congress) कहा जाता है। काँग्रेस ने अधिकारों की घोषणा की, कष्टों को दूर करने की प्रतिज्ञा की और 'महाद्वीपीय संगठन' (continental Association) की स्थापना की गयी जिससे विद्रोह का संगठन हो सके। अगले वर्ष भी सम्मेलन आमंत्रित करने का निश्चय किया गया। तदनुरूप 1775ई॰ में द्वितीय महाद्वीपीय काँग्रेस (The Second Continental congress) की बैठक हुई। जॉर्जिया के शामिल होने से इस बार कुल

नोट

राष्ट्रों की संख्या तेरह हो गयी पहले काँग्रेस की तरह इसमें अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित जनता के ही प्रतिनिधि थे। इस काँग्रेस का विशेष महत्त्व इसलिए है कि मार्च 1781 ई. तक यह 'संयुक्त उपनिवेशों की सरकार के आधिकारिक अंग' (Official Organ) के रूप में कार्य करती रही। इस प्रकार यह अमेरिका की प्रथम राष्ट्रीय सरकार थी।

इस राष्ट्र को औपचारिक रूप से जन्म देने और काँग्रेस को अधिकार-सम्पन्न बनाने के लिए जून, 1776 ई. में तृतीय महाद्वीपीय काँग्रेस (Third Continental Congress) की बैठक हुई। टॉमस जैफर्सन के नेतृत्व में स्वतन्त्रता का घोषणा-पत्र प्रस्तुत करने के लिए एक पाँच-सदस्यी समिति नियुक्त की गयी। जैफर्सन द्वारा प्रस्तुत स्वतंत्रता घोषणा-पत्र (Declaration of Independence) को 4 जुलाई, 1776 को महाद्वीपीय काँग्रेस ने स्वीकार कर लिया। उस समय से उक्त तिथि को अमेरिका का राष्ट्रीय दिवस मान लिया गया है। यह घोषणा-पत्र स्वतंत्र सरकार के समर्थन में लिखा गया था और जीवन, स्वतंत्रता एवं समानता के मानवीय अधिकारों को उजागर करता था।

यह घोषणा-पत्र लॉक के विचारों से काफी प्रभावित था। इसने इंग्लैंड के निरंकुश शासन के विरूद्ध उपनिवेशों के युद्ध को न्यायोचित ठहराया और सीमित तथा स्वेच्छानुसार संगठित सरकार (government by the consent of people) के सिद्धांतो को प्रतिपादित किया। इसने मानव-स्वतन्त्रता के उन नवीन सिद्धांतो की नींव डाली जो आगे चलकर समस्त विश्व के लिए प्रेरणा-शक्ति सिद्ध हुए। इस घोषणा का आधार कोई विशिष्ट शिकायतें नहीं बल्कि मानव-स्वतन्त्रता के कतिपय मूल तत्त्व थे।

ग्रेट ब्रिटेन और अमरीकी उपनिवेशों में छः वर्षों तक युद्ध चला। ब्रिटिश सरकार ने उपनिवेशों द्वारा विद्रोह को कुचलने का प्रयत्न किया, लेकिन असफल रही। अन्त में, 19 अक्टूबर, 1781 को ब्रिटिश सेनापति कार्नवालिस की पराजय हुई और उपनिवेशों की जीत। ब्रिटिश लोकसभा ने युद्ध समाप्त करने के लिए मतदान किया और लॉर्ड नॉर्थ की सरकार ने अपना त्याग-पत्र दे दिया। सम्राट् जॉर्ज तृतीय ने नयी सरकार संगठित की जिसने अमेरिका की स्वतंत्रता को मान्यता दे दी। 1783 ई. में ब्रिटेन और अमेरिका के बीच सन्धि सम्पन्न हो गयी।

राज्यमण्डल (Confederation)– राज्यमण्डल की स्थिति अमरीकी संविधान के विकास में एक प्रमुख कदम था। यद्यपि 1 मार्च, 1781 में यह योजना सफल हुई, किन्तु इसके पूर्व भी इसके लिए कई बार प्रयास किये गये थे।

राज्यमंडल की स्थापना- इस प्रकार, राज्यमण्डल सम्बन्धी अनेक योजनाएँ सिर्फ काल्पनिक बनी रहीं महाद्वीपीय काँग्रेस के कार्य का भी कोई कानूनी आधार नहीं था। वह केवल अल्पकालीन प्रबन्ध था। अतः काँग्रेस की एक समिति को राज्यमण्डल का प्रारूप तैयार करने का भार सौंपा गया। 17 नवम्बर, 1777 ई. में काँग्रेस ने प्रारूप को अपनाया। फिर उसे विभिन्न राज्यों के पास अनुसमर्थन के लिए भेजा गया और उनके द्वारा अनुसमर्थित होने पर 1 मार्च, 1781 ई. से उसे प्रभावी घोषित किया गया। राज्यमण्डल के अनुच्छेद (Articles of Confederation) ही संयुक्त-राज्य अमेरिका का प्रथम संविधान था।

राज्यमंडल की प्रकृति– राज्यमण्डल 13 उपनिवेशों का एक स्थायी संघ था। एक तरफ राज्यों ने सभी राज्यों की सुरक्षा, स्वतन्त्रताओं की रक्षा और पारस्परिक सामान्य हित के उद्देश्यों से आपस में संगठन स्थापित किया और दूसरी ओर अपनी सार्वभौमिकता, स्वतन्त्रता और उन क्षेत्रों तथा अधिकारों, जो संयुक्त राज्य को नहीं दिया गया था, को बचाये रखा। शासन-यंत्र का प्रधान गिनती में कम थे, काँगेस ही सरकार का एकमात्र अंग थी। कार्यपालिका की भी व्यवस्था नहीं थी। लेकिन काँग्रेस कर्मचारियों की नियुक्ति कर सकती थी, पृथक् न्यायपालिका भी नहीं थी। काँग्रेस एक संसदीय संस्था थी। इसमें अन्तर्निहित शक्ति नहीं थी, बल्कि इसकी शक्तियाँ प्रदत्त थीं। इसे युद्ध घोषित करने, सन्धि करने, वैदेशिक नीति का संचालन करने, राज्यों के अनुपात में कर और सेवा लेने, राज्यों के पारस्परिक झगड़ों का फैसला करने और प्रशासन के अधिकारियों की नियुक्ति करने का अधिकार था। संघ-शासन के बदले राज्यों का भी अपना कुछ कर्त्तव्य था, जैसे–काँग्रेस की आज्ञा को मानना, दूसरे राज्य के नागरिकों को पूर्ण अधिकार देना, काँग्रेस द्वारा आपसी झगड़ों का निबटारा करवाना आदि।

नोट

नोट्स नयी दुनिया का इतिहास आधुनिक युग का इतिहास है। 1499 ई. में कोलम्बस ने इसके पश्चिमी तटों का अन्वेषण किया और कैबट (Cabot) ने पूर्वी तट का। इसलिए नई भूमिका की खोज में यूरोपीय देशान्तरवासियों की बाढ़-सी आ गयी।

संविधान (Constitution): फिलाडेल्फिया सम्मेलन में केन्द्रीय सरकार की कमजोर स्थिति के कारण राज्य उसकी अवहेलना करने लगे तथा सभी कोने में असन्तोष की भावना तीव्र हो गयी। अत: राज्यमण्डल के अनुच्छेद दुहराने के लिए आन्दोलन शुरू हुआ। **अलेक्जेंड्रिया** (Alexandria) में **मेरीलैंड** और **वर्जिनिया** ने 1785 ई. में सम्मेलन बुलाया जिसका उद्देश्य था, दोनों राज्यों के बीच व्यापार संचालन करना। दूसरे वर्ष (1786 ई.) में वर्जिनिया ने **अनापोलिस** में सम्पूर्ण राष्ट्र के व्यापार के संचालन के लिए दूसरे सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें सिर्फ पाँच राज्यों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन ने यह प्रस्तावित किया कि अगले वर्ष फिलाडेल्फिया में सभी राज्यों का एक सम्मेलन बुलाया जाय जिसमें राज्यमण्डल के अनुच्छेदों में आवश्यक संशोधन किया जाय। तदनुरूप सभी राज्यों से अनुरोध किया गया कि वे अपना प्रतिनिधि भेजें। रोड द्वीप (Rhode Island) को छोड़कर सभी राज्यों ने अपने-अपने प्रतिनिधियों को भेजा। मई, 1787 में विश्वविख्यात फिलाडेल्फिया सम्मेलन (Philadelphia Convention) हुआ जिसने वर्तमान अमरीकी संविधान का निर्माण किया।

उद्देश्य और संगठन– इस सम्मेलन का एकमात्र और स्पष्ट उद्देश्य था– "राज्यमंडल के अनुच्छेदों को दुहराना और काँग्रेस तथा अन्य विधायिका सभाओं को ऐसे परिवर्तनों और प्रावधानों का सुझाव देना जो सरकार को संकटमय स्थिति का सामना करने के लिए तथा संघ के सुरक्षा के लिए आवश्यक हो।" इस प्रकार राष्ट्रों के संगठन को दृढ़ बनाना तथा केन्द्रीय सरकार की शक्ति में वृद्धि करना इस सम्मेलन का विशेष उद्देश्य था। इस सम्मेलन के प्रतिनिधियों का स्तर बहुत उच्चकोटि का था। विधानमंडलों के इतिहास में राजनीतिक अनुभव और व्यावहारिक ज्ञान से परिपूर्ण अथवा मानवीय व्यवहार तथा सरकार के आवश्यक सार तत्त्व के उद्‌गमों के अधिक गहन परिज्ञान से सम्पन्न मनुष्यों की ऐसी सभा कभी न हुई। सम्मेलन में भाग लेने वाले व्यक्तियों में प्रमुख थे– **जॉर्ज वाशिंगटन, जेम्स मेडिसन, अलेक्जेंडर, एडमंड बेंजामिन, रैडल्फ, जेम्स बिल्सन** तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति। सम्मेलन के प्रतिनिधियो के सम्बन्ध में एक फ्रांसीसी दूत ने फ्रांस की सरकार को लिखा था कि "यदि फिलाडेल्फिया के सम्मेलन के सभी प्रतिनिधियों को देखा जाय तो मै कहूँगा कि ऐसी सभा पहले कभी नहीं हुई थी– यूरोप में भी नहीं क्योंकि नये प्रतिनिधिगण, योग्यता, गुण, नि:स्वार्थता, निष्पक्षता, एवं देश-प्रेम के आधार हमेशा पूजनीय हैं।" **जैफर्सन** ने इसे देव-पुत्रों की सभा (assembly of semi-gods) कहा था। **वियर्ड** के अनुसार प्रतिनिधिगण धनिक, कुलीन तथा योग्य (the rich, the well-born and the able) वर्ग के थे।

संविधान का निर्माण तथा प्रवर्त्तन– यह सम्मेलन 24, मई 1787 के दिन स्वतंत्रता भवन में आरम्भ हुआ और 17 दिसम्बर, 1787 तक चलता रहा। सम्मेलन के सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि इसमें देश के विभिन्न और अनेक विरोधी हितों का प्रतिनिधित्व था। इसलिए सम्मेलन के सामने समस्या थी कि ऐसे संविधान का निर्माण किया जाय जिसमें विभिन्न हितों का समझौता हो। एक ओर केन्द्रीय सरकार को सुदृढ़ बनाना आवश्यक था तो दूसरी ओर राज्यों की स्वतंत्रता की रक्षा करना भी जरूरी था; साथ ही बड़े और छोटे राज्यों के परस्पर-विरोधी दृष्टिकोण में समन्वय करना भी महत्त्वपूर्ण था। इस उद्देश्य से अनेक योजनाएँ प्रस्तुत की गयीं– वर्जीनिया योजना (Virginia Plan), न्यूजर्सी योजना (The New Jeresy Plan), कनेक्टिकट समझौता (Connecticut Compromise), व्यापार और दास व्यापार समझौता (commerce and Slave Trade Compromise), आदि योजनाएँ प्रमुख थीं। अन्त में, नये संविधान, "जिसे समझौतों का ढेर" (bundle of compromises) कहा गया है, के प्रारूप को सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया। लेकिन, उसे लागू करने से पूर्व उसको 13 राज्यों में नौ राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा अनुसमर्थित होना आवश्यक था। संविधान के कुछ विरोधियों ने अधिकार-पत्र के अभाव में इसकी तीव्र आलोचना की। इस दोष को संविधान के प्रवर्तन के बाद संशोधनों द्वारा

नोट

अधिकार-पत्र जोड़कर दूर करने का सुझाव दिया गया। 21 जून, 1788 के दिन संविधान नौ राज्यों के विधानमंडलों द्वारा अनुसमर्थित हो गया। कांग्रेस ने संविधान लागू करने की उद्घोषणा की। 4 मार्च, 1789 को संविधान प्रभाव में आ गया। जॉर्ज वाशिंगटन को प्रथम राष्ट्रपति चुना गया। प्रथम कांग्रेस का भी संगठन हुआ। इस प्रकार, राज्यमण्डल का अन्त हो गया और उसकी ही नींव पर नये संविधान के भव्य और दृढ़ भवन को खड़ा किया गया।

स्विट्जरलैण्ड के संविधान का विकास (Development of Switzerland's Constitution)

स्विट्जरलैंड का प्रारम्भिक इतिहास जातियों के आवागमन का इतिहास है। अगस्त, 1291 को तीन स्वतन्त्र तथा संप्रभु राज्यों ने 'स्थायी संघ' की स्थापना की। वास्वत में, स्विट्जरलैंड का जन्म हुआ। संघ की स्थापना में कई सौ वर्ष इसके विस्तार तथा दृढ़ता के वर्ष थे। संघ में क्रमशः अन्य कैण्टनों ने प्रवेश किया। 1353 ई. में स्थायी मैत्री संघ आठ कैण्टनों का राज्यमण्डल (confederation) बन गया। 1553 ई. में राज्य-मण्डल के सदस्यों की संख्या तेरह हो गयी। लेकिन धर्म-सुधार आन्दोलनों ने राज्य-संघ की एकता को पुनःभंग कर दिया। 1648 ई. में वेस्टफालिया की संन्धि ने एक स्वतन्त्र एवं संप्रभुता-सम्पन्न राज्य के रूप में मान्यता प्रदान की। फ्रांस की राज्य-क्रांति (French Revolutions, 1789) के समय तक स्विस राज्यमण्डल अधिक दुर्बल स्विट्जरलैंड को पुराना राज्यमंडल दे दिया। राज्य पुनः दृढ़ हो गया। पुनः गृह-युद्ध की ज्वाला भड़की, लेकिन अन्त में राष्ट्रीय एकता के समर्थकों की जीत हुई।

1848 ई. का संविधान (The constituion of 1848)– 1848 ई. के संविधान का निर्माण 'अमेरिका के संविधान को आदर्श मानकर किया गया था। यह कैंटनों की प्रभुसत्ता संघ की बढ़ती हुई शक्ति के बीच समझौते का परिणाम था। इस संविधान द्वारा यह प्रयत्न किया गया कि कैंटन उस सीमा तक संप्रभुराज्य बने रहें जहाँ तक कि संघीय संविधान उन्हें प्रभुसत्ता प्रदान कर सके। संघीय शक्ति कतिपय सामान्य विषयों तक रही; जैसे- वैदेशिक सम्बन्ध, डाक व्यवस्था आदि। संघ-शासन को चलने के लिए संघीय संस्थाओं की व्यवस्था की गयी। कार्यपालिका-शक्ति संघीय परिषद् (Federal Council) में निहित की गयी जो एक बहुल कार्यपालिका (Plural Executive) थी। व्यवस्थापिका शक्ति द्विसदनात्मक संघीय मण्डल (Federal Assembly) में निहित की गयी–एक सदन जनसंख्या के आधार पर और दूसरा सदन कैण्टनों की समता के आधार पर संगठित था। राष्ट्र की न्यायपालिका संघीय न्यायाधिकरण (Federal Tribunal) में निहित की गयी। संविधान में कैण्टनों को अपने प्रदेशों में पूर्ण प्रभुता के उपयोग का अधिकार दिया, लेकिन अशान्ति या युद्ध की सम्भावना या स्थिति के समय केन्द्रीय सरकार हस्तक्षेप कर सकती थी।

1874 ई. का संविधान- यद्यपि 1848 ई. के संविधान ने स्विट्जरलैण्ड को एक युक्तिसंगत तथा आधुनिक संविधान दिया, फिर भी यह अधिक दिनों तक कार्यशील न रहा। रेडिकल लोग (Radicalists) इस संविधान के विरूद्ध थे। वे केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाना चाहते थे। उन्हें जनता का पर्याप्त समर्थन प्राप्त हुआ। फलतः 1874 ई. में संघीय संसद ने नया संविधान तैयार किया जिसका जनमत-संग्रह द्वारा अनुमोदन हुआ। 29 मई, 1874 ई. को नया संविधान प्रभावी हुआ। यही संविधान आज भी स्विट्जरलैण्ड में विद्यमान है। इस संविधान द्वारा कैन्टनों की स्वतन्त्रता पहले की अपेक्षा कम कर दी गयी और न्यायपालिका की स्वतन्त्रता की स्थापना के भी प्रयास किये गये। जनमत-संग्रह की व्यवस्था को विस्तृत किया गया। 1874 ई. से लेकर अबतक संविधान में अनेक बार संशोधन हुए हैं जिनके परिणामस्वरूप केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को प्रश्रय मिला है, लेकिन संविधान में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ है।

स्विस संविधान का विश्व की प्रमुख शासन-प्रणलियों में एक अनूठा स्थान है। इसके अनूठेपन के अनेक कारण हैं। **प्रथम,** स्विस गणतन्त्र विश्व का प्राचीनात्मक तथा सर्वश्रेष्ठ प्रजातन्त्र है। **द्वितीय,** इसकी कार्यपालिका अनूठी है। **तृतीय,** इसने राष्ट्रीय स्वनिर्णय के सिद्धांत को गलत साबित कर दिया है। **चतुर्थ,** स्विट्जरलैण्ड एक तटस्थ राष्ट्र है।

एक अन्य प्रारूप स्वीकार किया गया। यह प्रजातांत्रिक तथा शांतिवादी सिद्धांतों पर आधारित था। यह संविधान यथार्थ में मैकार्थर द्वारा बनाया गया था, जापानी मंत्रिमंडल द्वारा नहीं। वाशिंगटन में 'सुदूर पूर्वी आयोग' ने संविधान के लिए कतिपय मूल सिद्धांतों की सिफारिश की जिन्हें संविधान के प्रारूप में स्थान दिया गया। इसके बाद संविधान के प्रारूप को सम्राट के नाम पर जनता की सूचना के लिए प्रसारित किया गया। जनरल मौकार्थर ने खुलकर इसका समर्थन किया। मंत्रिमंडल ने इस पर विस्तारपूर्वक विचार किया। तत्पश्चात् संविधान के प्रारूप को डायट के समक्ष रखा गया।

नोट

वाद-विवाद के पश्चात् 7 अक्तूबर, 1946 को प्रतिनिधि सभा ने प्रायः सर्वसम्मति से नये संविधान को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। केवल साम्यवादी सदस्यों ने इसका विरोध किया। 3 नवम्बर, 1946 को एक साम्राजीय आज्ञाप्ति के द्वारा इस संविधान को उद्घोषित किया गया। प्रधानमंत्री योशिदा शिगेरु (Yoshide Shigeru) द्वारा सम्राट हिरोहीतो की उपस्थिति में इसे 3 मई, 1947 ई. को इसे लागू किया गया। इसे सम्राट हिरोहितों की मृत्यु के कारण **शोवा संविधान** (Showa constitution) भी कहते हैं। जापान की वर्तमान शासन-व्यवस्था इसी संविधान के द्वारा संचालित हो रही है।

चीनी गणराज्य के संविधान का विकास (Development of Chinese Republicon constitution)

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-चीनी साम्यवादियों का कहना है कि उनका संविधान इतिहास से घनिष्ठ रूप से संबंधित है; वह ऐतिहासिक अनुभव पर आधारित है। **लीऊ शाओ-ची** ने कहा था कि चीन का वर्तमान संविधान "चीनी जनता के एक शताब्दी से अधिक क्रांतिकारी संघर्ष तथा आधुनिककालीन चीनी संविधानवाद के ऐतिहासिक अनुभव का निष्कर्ष है।"

चीनी गणराज्य के संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को निम्नलिखित भागों में बाटा जा सकता है-

1. वर्तमान काल में संविधान का विकास (Development of constitution in modern times) – 1984 ई. से 1949 ई. तक।
2. अस्थायी संविधान (Provisional Constitution) – 1949 ई. से 1954 ई. तक।
3. 1954 ई. का संविधान।
4. 1975 ई. का संविधान।
5. 1978 ई. का संविधान।
6. वर्त्तमान संविधान (1982 ई॰)

संविधान का विकास (Development of Constitution): आधुनिक चीन के संविधान का विकास 1894 ई. में जापान द्वारा उसकी पराजय के उपरांत शुरू होता है इस दिशा में सुधार आन्दोलन (Reform Movement) पहला उल्लेखनीय कदम है। कांग यू-बी के नेतृत्व में सुधारवादियों ने आंदोलन चलाया जिसका उद्देश्य ऐसे संविधान की स्थापना करने की थी जिसका आधार पूंजीवाद तथा सामंतवाद हो। मूलतः यह आन्दोलन प्रगतिवादी था। 1898 ई. तक इसे कुचल दिया गया। सुधारवादियों के साथ-साथ चीन में एक क्रांतिकारी गुट का उदय हुआ। इसका नेता डॉ. सनयात सेन था। क्रांतिकारी गुट एक बुर्जुआ प्रजातांत्रिक गणराज्य (Bourgeois Democratic Republic) की स्थापना करना चाहता था।

क्रांतिकारियों की बढ़ती शक्ति को देखकर मंचू शासन ने संविधान-निर्माण की घोषणा की तथा संविधान के सिद्धांतों का उल्लेख किया। इन संवैधानिक सिद्धांतों का उद्देश्य निरंकुश सामंतवादी शासन को दृढ़ बनाना तथा जनता को धोखा देना था। क्रांतिकारियों ने मंचू संविधानवाद को धोखे की टट्टी कहकर विरोध किया, लेकिन सुधारवादियों ने उसका समर्थन किया।

1911 ई. में मंचू वंश का अन्त हो गया। सदियों पुराने सामन्तवादी राजतन्त्र के स्थान पर चीनी गणतन्त्र की नींव पड़ी। डॉ. सनयात सेन के नेतृत्व में 'अस्थायी संविधान (Provisional Constitution) की नींव पड़ी। यह प्रगतिवादी पर बुर्जुआ गणराज्य था। 1919 ई. की क्रांति ने चीन में प्रजातान्त्रिक गणराज्य का बीज बोया।

प्रतिक्रियावादियों के सामने गणराज्य न टिक सका। यू आन-शी-काई तथा पीयांग युद्ध सामन्तों के अधीन "चीनी गणराज्य" सिर्फ नाम के लिए रह गया। अन्तिम युद्ध में सामन्तों ने 1923 ई. में दिखावे के लिए एक संविधान की घोषणा की। लेकिन क्रांतिकारियों ने इसका विरोध किया।

इस बीच साम्यवादी दल का उदय हुआ। डॉ॰ सनयात सेन के नेतृत्व में ही उसने साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद के विरूद्ध संघर्ष शुरू किया। लेकिन, डॉ॰ सेन की मृत्यु के बाद च्यांग-काई-शेक साम्यवादियों का दमन करने लगा। फलतः देश

नोट

में गृह-युद्ध छिड़ गया। साम्यवादियों के नेतृत्व में जनता ने प्रतिक्रियावादी शासन के विरूद्ध लड़ाई शुरू कर दी च्यांग-काई-शेक, जो संविधान के पक्ष में नहीं था, ने अंततः 1946 ई॰ में एक संविधान का निर्माण किया, जिसका चीनी जनता ने जमकर विरोध किया। इस प्रकार, अंतिम चरण में पूंजीवादी कुआमिन्तांग तथा समाजवादी शक्तियों में राज्यसत्ता को अपनाने के लिए विकट संघर्ष चला। अन्त में, 1949 ई॰ में समाजवादी शक्तियों की विजय हुई तथा मजदूरों के नेतृत्व में जनवादी गणराज्य (People's Republic) की स्थापना हुई।

संक्षेप में, साम्यवादी क्रांति के पूर्व चीन में दो प्रकार के संविधान का निर्माण हुआ था। मंचू वंश, पीयांग युद्ध-सामन्त तथा च्यांग-काई-शेक द्वारा निर्मित प्रतिक्रियावादी तथा दिखावटी संविधान और दूसरा, डॉ॰ सनयात सेन द्वारा निर्मित बुर्जुआ प्रजातांत्रिक संविधान।

अस्थायी संविधान (Provisional Constitution)– साम्यवादी शासन की स्थापना के तुरन्त बाद किसी संविधान का निर्माण नहीं किया गया। शासन-व्यवस्था के संचालन के लिए एक सामान्य कार्यक्रम (Common Programme) को अपनाया गया जिसने पांच वर्षों तक अस्थायी संविधान (Provisional Constitution) के रूप में काम किया। सामान्य कार्यक्रम का निर्माण **चीनी जनवादी राजनीतिक परामर्शदाता सम्मेलन** (Chinese People's Political Consultative Conference) नामक संस्था द्वारा हुआ। यह एक खिचड़ी संस्था थी जिसमें साम्यवादी दल के साथ विभिन्न राजनीतिक दलों, लोक संगठनों, जनशक्ति सेना और समुद्रपार चीनियों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। सम्मेलन द्वारा निर्धारित सामान्य कार्यक्रम विगत वर्षों की जनवादी क्रांतियों के अनुभव की देन थी। इसने उन मौलिक नीतियों को पारिभाषित किया जिनका अनुपालन चीनी गणराज्य करेगा। जनवादी लोकतंत्रीय अधिकानायकशाही सिद्धांत इसका आधार था।

परामर्शदाता सम्मेलन ने तीन प्रलेखों का निर्माण किया–(क) सामान्य कार्यक्रम (A Common Programme) (ख) परामर्शदाता सम्मेलन का सावयव नियम (An Organic Law of the CPPCC) और (ग) केन्द्रीय सरकार का सावयव नियम (An Organic Law of the Central People's Government)।

तीनों प्रलेखों में सामान्य कार्यक्रम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। इसमें अन्तरिक शासनकाल के लिए अर्थात् समाजवाद की प्राप्ति तक के लिए, मौलिक उद्देश्यों का उल्लेख किया गया था। प्रस्तावना में कहा गया था कि चीन का राजनीतिक आधार 'नवीन प्रजातन्त्र' (new democracy) है जिनका उपयेाग 'जनतांत्रिक अधिनायकतंत्र' (people democratic dictatorship) द्वारा किया जाएगा। 'नवीन प्रजातंत्र' का अर्थ उस संक्रमण काल से था जिसके द्वारा चीन को 'अर्द्ध-सामन्तवाद' (semi feudalism) और 'अर्द्ध-उपनिवेशवाद' (semi-colonialism) से गुजरकर 'सर्वहारा अधिनायकवाद' (proletarian dictatorship) तक पहुंचना था। 'जनतांत्रिक अधिनायकतंत्र' का अर्थ है कि 'प्रजातंत्र' 'जनता' के हाथ में रहेगा और 'अधिनायकतंत्र' अन्य वर्गों–बड़े बुर्जुआ, सामंती जमींदार और जनता के अन्य दुश्मनों पर लागू होगा। सामान्य कार्यक्रम में अन्य कई मौलिक बातों का उल्लेख किया गया था, जेसे साम्राज्यवादी विशेषाधिकारों की समाप्ति, भूमि-सुधार, औद्योगीरकण की आवश्यकता, राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों को समान अधिकार और सोवियत रूस से मित्रता। सरकार के ढाँचे के बारे में कहा गया था कि संक्रमण काल में राष्ट्रीय जन-सरकार परिषद् (Central People's Government Council) का निर्वाचन होगा जो कार्यकारिणी के रूप में कार्य करेगी।

सम्मेलन का उद्देश्य चीन के समस्त प्रजातांत्रिक वर्गों और राष्ट्रीयताओं को एकता के सूत्र में बाँधना था। सम्मेलन प्रजातन्त्र के कार्यक्रम को लागू करेगा तथा साम्राज्यवाद, सामंतवाद, नौकरशाही और पूंजीवाद का विरोध करेगा, कुआमिन्तांग को उखाड़ फेंकेगा औार क्रांतिविरोधियों का विनाश करेगा। इसका अन्तिम लक्ष्य अर्थव्यवस्था को मजबूत करना और एक दृढ़, स्वतन्त्र तथा शांतिप्रिय जनवादी गणतांत्रिक चीन की स्थापना करना होगा।

केन्द्रीय जनवादी सरकार परिषद् में 56 सदस्य होंगे जिनमें एक अध्यक्ष और 6 उपाध्यक्ष होंगे। यह विधायिका, कार्यकारिणी और न्यायपालिका तीनों का कार्य करेगी। परिषद् कई निकायों का संगठन करेगी। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सरकार प्रशासन परिषद् (Government Administration Council) थी जो एक सुपर-कैबिनेट (super cabinet) के रूप में कार्य करती थी। इसके सदस्य थे, प्रधानमंत्री, पाँच उपप्रधानमंत्री, एक महासचिव और 16 सदस्य। सरकार

नोट

प्रशासन परिषद् (GAC) की चार समितियां थीं। (क) राजनीतिक और कानूनी मामलों की समिति, (ख) वित्त और अर्थ–समिति, (ग) संस्कृति और शिक्षा समिति और (घ) जन–निरीक्षण समिति। इनके अतिरिक्त परामर्शदाता सम्मेलन (CPOC) ने एक क्रांतिकारी सैनिक परिषद् (Revolutionary Military Council), एक सर्वोच्च न्यायालय (supreme Court) और एक सर्वोच्च जन–प्रॉक्यूरेसी (Supre People's Procuracy) की स्थापना की थी।

परामर्शदाता सम्मेलन में सर्वोच्च विधायिका शक्ति निहित थी। वस्तुत: सरकार प्रशासन परिषद् और केन्द्रीय जनवादी सरकार परिषद् अधिक शक्तिशाली निकाय थे। लेकिन ये दोनों निकाय भी साम्यवादी दल के इशारे पर चलते थे क्योंकि दल का सरकार पर पूर्ण नियंत्रण था।

1954 का संविधान (The constitution of 1954)– 13 जनवरी, 1953 को माओत्से–तुंग की अध्यक्षता में केन्द्रीय सरकार ने एक समिति का निर्माण किया। इसका उद्देश्य जनवादी गणराज्य के लिए संविधान का प्रारूप तैयार करना था। मार्च, 1954 में समिति ने संविधान के प्रथम प्रारूप को स्वीकार किया। प्रारूप को विचार–विमर्श तथा सुझाव के हेतु जनता के समक्ष रखा गया। दो महीने तक इस पर विचार–विमर्श होता रहा। इस आधार प्रारूप में उचित संशोधान लाये गये। 14 जून, 1954 को संशोधित रूप में संविधान के प्रारूप को प्रकाशित किया गया तथा सर्वसाधारण की चर्चा के लिए उसे जनता में परिचालित किया गया। दो महीने तक लोक–विवाद होता रहा। संविधान को जनता का समर्थन प्राप्त हुआ तथा संशोधन के लिए अनेक सुझाव दिये गये। इन सुझावों के संदर्भ में प्रारूप समिति में पुन: संशोधन लाया गया। संविधान के संशोधित प्रारूप को 9 सितम्बर, 1954 को केन्द्रीय जनवादी सरकार परिषद् ने औपचारिक रूप से स्वीकार किया। प्रथम राष्ट्रीय जन–काँग्रेस ने 20 सितम्बर, 1954 को संविधान को अंतिम रूप से स्वीकृति प्रदान की।

चीनी साम्यवादियों के अनुसार, उनका संविधान समाजवादी संविधान (People's Democratic Republic) है। यह बुर्जुआ संविधानों के विपरीत समाजवादी संविधान है। इसके निर्माण में चीनियों ने अन्य संविधानों, खासकर सोवियत संविधान, के अनुभवों से लाभ उठाया। देश के विगत इतिहास तथा आधुनिक स्थिति का भी इस पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इस संदर्भ में **लीऊशाओ–ची** ने बतलाया था कि चीनी गणराज्य के संविधान का निर्माण करते समय कतिपय तथ्यों को ध्यान में रखा गया। ये तथ्य हैं–

(*i*) चीनी जनता ने लम्बे संघर्ष के बाद साम्राज्यवाद, सामंतवाद तथा पूंजीवाद पर विजय प्राप्त कर ली है।

(ii) चीन में जनवादी प्रजातांत्रिक राज्य, जिसका नेतृत्व मजदूर कर रहे हैं तथा जो मजदूरों और किसानों के गठबन्धन पर आधारित है, की जड़ जम चुकी है।

(*iii*) चीन की अर्थव्यवस्था में समाजवाद ने नेतृत्व ग्रहण कर लिया।

(*iv*) चीन में क्रमबद्ध रूप से समाजवादी परिवर्तन प्रारम्भ हो गया है तथा समाजवादी समाज की दिशा में परिवर्तन होने लगा है।

नए संविधान द्वारा केन्द्रीय सरकार के ढाँचे में परिवर्तन लाया गया। तीन प्रमुख निकायों की स्थापना की गयी– (क) विधायिका अर्थात् राष्ट्रीय जन–कांग्रेस (National People's Congress), (ख) राज्य का प्रधान अर्थात् गणतंत्र का अध्यक्ष (Chairman of the People's Republic) और (ग) मंत्रिमण्डल अर्थात् राज्य परिषद् (State Cauncil)। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च जनप्रॉक्यूरेसी (Supreme People's Prodcuaracy) और सर्वोच्च जन–न्यायालय (Supreme People's Court) केन्द्र सरकार के मुख्य अंग थे।

1975 का संविधान (The Constitution of 1975)– 1954 का संविधान लगभग 20 वर्षों तक लागू रहा। अगला संविधान 17 जनवरी, 1975 को पारित हुआ। यह संविधान पुराने संविधान का विकसित रूप था। लेकिन, इसे पूर्णतया नए रूप में प्रस्तुत किया गया था। चीनी शासकों के अनुसार दो दशकों की लम्बी अवधि में नई परिस्थितियां पैदा हुईं। आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अनेक परिवर्तन हुए जिसके चलते नए संविधान के निर्माण की आवश्यकता पड़ी। 1975 ई॰ के संविधान की निम्नलिखित विशेषताएं थीं :–

नोट

(i) यह संविधान काफी संक्षिप्त था। इसमें केवल 30 अनुच्छेद थे।

(ii) शासन की समस्त शक्तियां पार्टी में केन्द्रीभूत कर दी गई। संविधान ने कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति को ही सर्वेसर्वा माना जिसके नेतृत्व में राष्ट्रीय जन कांग्रेस भी कार्य करेगी।

(iii) राष्ट्रपति के पद को समाप्त कर दिया गया। उसके कुछ अधिकारों को राष्ट्रीय जन कांग्रेस की स्थायी समिति (Standing Committtee) को और कुछ अधिकारों को कम्युनिष्ट पार्टी के चेयरमैन को सौंप दिए गए।

(iv) शासन का अधिकांश ढांचा अब पहले जैसा ही था। 1975 ई॰ के संविधान में भी केंन्द्रीय विधान-सभा को राष्ट्रीय जनकांग्रेस के नाम से ही जाना गया। यह अपने कार्यों के संपादन के लिए एक स्थायी समिति का गठन करती थी। यह एक राज्य परिषद् का भी निर्वाचन करती थी जो मंत्रिपरिषद् का कार्य करती थी।

(v) 1975 ई॰ के संविधान में कुछ नए नागरिक अधिकार शामिल किए गए। अधिकांश पुराने अधिकारों को बनाए रखा गया। उसमें चार नए अधिकारों को जोड़ा गया– (i) हड़ताल का अधिकार (ii) जनसेवा संगठित करने का अधिकार (iii) नागरिकता के प्रचार का अधिकार और (iv) सार्वजनिक विषयों पर खुले तौर से वाद-विवाद करने और चित्र पोस्टर निकालने का अधिकार।

(vi) संविधान सोवियत रूस के साम्यवादी की निंदा करता है। 1954 ई॰ के संविधान में सोवियत रूस को 'जनतांत्रिक लोकतांत्रित देशों' की श्रेणी में रखा गया था जबकि 1975 ई॰ के संविधान में उसे एक साम्राज्यवादी देश घोषित किया गया।

1978 ई॰ का संविधान (The Constitution of 1978)– इस संविधान को राष्ट्रीय जनकांग्रेस ने 5 मार्च, 1978 को स्वीकृत किया।

(i) इस संविधान में 60 अनुच्छेद थे।

(ii) इसकी प्रस्तावना में चीन की समाजवादी क्रांति का उल्लेख मिलता है। माओत्से-तुंग के नेतृत्व की प्रशंसा की गई और श्रमिकों की तानाशाही में विश्वास प्रकट किया गया।

(iii) संविधान के प्रथम अध्याय में सामान्य सिद्धांतों का वर्णन किया गया।

(iv) दूसरे अध्याय में राज्य संरचना पर प्रकाश डाला गया और इसके विधायी, कार्यकारी और न्यायिक अंगो का वर्णन किया गया। राष्ट्रपति पद को समाप्त कर दिया गया। चीन के विधानमंण्डल का नाम 'राष्ट्रीय कांग्रेस' और मंत्रिपरिषद् का नाम 'राज्य परिषद' ही बरकरार रहा।

(v) तीसरे अध्याय में नागरिक अधिकारों और कर्तव्यों का उल्लेख किया गया।

(vi) चौथे अध्याय में राष्ट्रध्वज, राष्ट्रचिह्न और राजधानी का विवरण दिया गया।

1982 ई॰ का संविधान (The Constitution of 1982) – 1982 ई॰ का संविधान चीन का चौथा संविधान था। यही संविधान अभी भी लागू है। राष्ट्रीय जन कांग्रेस ने इस संविधान को 4 दिसंबर, 1982 को स्वीकार किया। इस संविधान के निर्माण का विस्तृत ब्योरा मिलता है। अप्रैल, 1982 में इसका मसौदा प्रकाशित किया गया। देश भर में इस पर व्यापक रूप से विचार-विमर्श हुआ। जनकांग्रेस ने लगभग 100 संशोधनों पर विचार किया। 30 संशोधनों को स्वीकार कर लिया गया। 6 जून, 1983 को छठी जनकांग्रेस का प्रथम अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में 1982 ई. के संविधान के अंतर्गत देश के राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति का चुनाव हुआ और इस प्रकार नया संविधान पूर्णत: लागू हो गया।

टास्क चीन का चौथा संविधान कब स्वीकार किया गया?

नोट

फ्रांस में संवैधानिक विकास (Constitutional Development in France)

फ्रांस के संविधान का अध्ययन महत्त्वपूर्ण तथा रोचक है। फ्रांस को "राजनीतिक प्रयोग" का देश कहा गया है। इस देश में सदा नये संविधान की सृष्टि तथा नये राजनीतिक प्रयोग होते रहे हैं। विगत दो शताब्दियों में यह देश अनेक राजनीतिक विचारों तथा प्रतिक्रियाओं का स्रोत रहा है जिन्हें केवल प्रमुख यूरोपीय राज्यों ने ही नहीं बल्कि विश्व के अन्य राष्ट्रों ने भी ग्रहण किया है। संसदीय शासन-प्रणाली तथा प्रजातन्त्र को प्रचारित करने में इसने एक दुभाषिए और प्रचारक का कार्य किया है। स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व जो प्रजातन्त्र के उच्च आदर्श हैं; फ्रांस की राज्य-क्रांति की ही देन है। शासन-व्यवस्था की अनेक संस्थाएँ फ्रांस की मौलिक देन है। फ्रांस की शासन-व्यवस्था का अध्ययन इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि यह देश की महान् शक्तियों में से एक है।

तृतीय गणतंत्र से पूर्व– फ्रांस का आधुनिक राजनीति एवं संवैधानिक इतिहास 1789 ई॰ की महान् क्रांति से प्रारम्भ होता है। इस क्रांति ने बोरबन वंश के निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासन का अन्त किया तथा फ्रांस की शासन-व्यवस्था में अस्थिरता ला दी। इसके पश्चात् फ्रांस में संवैधानिक प्रयोगों की श्रृंखला-सी बँध गयी। एक के बाद एक का अब तक 14 बार फ्रांस की शासन-व्यवस्था में उलट-फेर हो चुका है। इस पर **फाइनर** ने कहा है कि "प्रत्येक संविधान का निर्माण उसे कार्यान्वित करने के लिए नहीं बल्कि उसे बदल डालने के लिए किया गया।"

1761 ई॰ में प्रथम लिखित संविधान का जन्म हुआ जिसमें सीमित राजतन्त्र तथा निर्वाचित संसद की व्यवस्था की गयी। 1793 ई॰ में **जैकोबिन्स** ने इसके स्थान पर प्रथम बार गणतन्त्रीय व्यवस्था की स्थापना की। इस संविधान में प्रत्यक्ष निर्वाचन, प्रौढ़ मताधिकार और 24 सदस्यों की मंडलात्मक कार्यपालिका की व्यवस्था की गयी। इसके बाद 1795 ई.में डायरेक्टरी (Directory) का संविधान बना जिसमें विधायिका सभा तथा 5 व्यक्तियों की कार्यकारिणी समिति की व्यवस्था की गयी। 1799 ई॰ में नेपोलियन बोनापार्ट ने एक नये संविधान का निर्माण किया जिसे **कॉन्सुलेट** (Consulate) कहा गया है। यह व्यवस्था भी अल्पकालीन ही रही। 1804 ई॰ में नेपोलियन ने साम्राज्य की स्थापना की और स्वयं सम्राट बन बैठा। इस प्रकार फ्रांस में गणतंत्र का युग समाप्त हो गया और पुनः राजतन्त्र प्रारम्भ हुआ। 1814 ई॰ में वाटरलू के संग्राम के बाद नेपोलियन के साम्राज्य का अन्त हो गया और बोबन वंश पुनः सिंहासनारूढ़ हुआ। 1830 ई॰ की क्रांति के फलस्वरूप आर्लियन्स वंश के अधीन संवैधानिक राजतन्त्र की स्थापना हुई। लेकिन 1848 ई॰ की क्रांति ने इसका भी अन्त कर दिया और द्वितीय गणतन्त्र (Second Republic) की स्थापना हुई। इस बार भी गणतन्त्रीय व्यवस्था क्षणभंगुर ही रही। 1852 ई. में नेपोलियन तृतीय जर्मनी से पराजित हुआ और द्वितीय साम्राज्य का अन्त हो गया। तत्पश्चात् एक अंतःकालीन सरकार का निर्माण किया गया जिसने बाद में नेशनल असेम्बली का रास्ता दे दिया। अन्त में, असेम्बली ने एक संविधान का निर्माण किया जो 1875 ई. में प्रवर्तन में आया। यह संविधान तृतीय गणतन्त्र (Third Republic) के नाम से प्रख्यात हुआ।

तृतीय गणतन्त्र– तृतीय गणतन्त्र की कतिपय विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। **प्रथम,** यह एक लिखित तथा निर्मित संविधान था। यह एक प्रलेख (document) के रूप में नहीं था, बल्कि अलग-अलग निर्मित सिनेट, लोक-शक्तियों के संगठन तथा लोक-शक्तियों से सम्बन्धित कानूनों तथा समय-समय पर जारी किये गये आदेशों एवं नियमों के संग्रह से बना था। **द्वितीय,** गणतन्त्रात्मक शासन-पद्धति की व्यवस्था की गयी थी। **तृतीय**, संसदीय शासन-प्रणाली को अपनाया गया जिसमें एक संवैधानिक राष्ट्रपति तथा उत्तरदायी मंत्रिपरिषद् थी। **चतुर्थ,** विधानसभा द्विसदनात्मक थी– प्रतिनिधि सभा (Chamber of Deputies) और सिनेट (Senate)। **पंचम,** शासन का स्वरूप एकात्मक था, पुनः स्थायी संविधान के निर्माण के लिए एक संविधान सभा का निर्माण हुआ जिसके द्वारा निर्मित संविधान अस्वीकृत हो गया। अतः, 1946 ई॰ में द्वितीय संविधान-सभा का निर्वाचन हुआ जिसके द्वारा निर्मित संविधान को 27 अक्टूबर, 1946 को प्रवर्तित किया गया। इस संविधान के साथ चतुर्थ गणतन्त्र का उदय हुआ।

नोट

चतुर्थ गणतन्त्र (The Fourth Republic)– चतुर्थ गणतन्त्र द्वारा कोई विशेष क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुए। इसके द्वारा फ्रांस की पुरानी शासन-प्रणाली में न तो मूलभूत परिवर्तन किया गया औन न भूतकाल से पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद ही। शासन के बाह्य आवरण में कुछ परिवर्तन अवश्य हुए, परन्तु मूलरूप से नहीं। यह संविधान भी राजनीतिक दर्शन विशेष का नहीं अपितु विभिन्न विरोधी राजनीतिक मतावलम्बियों के समझौते का परिणाम था और "इस समझौते को तर्क ने नहीं परिस्थितियाँ ने निहित की थी।"

चतुर्थ गणतन्त्र का संविधान 12 वर्षों तक प्रवर्तन में रहा–1946 ई॰ से 1958 ई॰ तक। इस संविधान का निधन आकस्मिक नहीं था। इसमें अनेक मौलिक दुर्बलताएँ थीं तथा परिस्थितियाँ भी प्रतिकूल ही रहीं। यह संविधान परस्पर-विरोधी तत्त्वों का एक समझौता था और इस समझौते पर किसी तर्क का नहीं वरन् तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा था। कालान्तर में ये विरोधी तत्त्व और अधिक प्रबल हो गये। **हर्बर्ट ल्यूथी** के शब्दों में, "जिस दिन से चतुर्थ गणतन्त्र का जन्म हुआ उसी दिन से उसके शव से दुर्गन्ध निकलने लगी थी और यह सुन्दर मृत्यु से मरने में भी समर्थ नहीं हो सका।" सच पूछा जाय तो चतुर्थ गणतन्त्र के रूप में तृतीय गणतन्त्र की व्यवस्था क्रमशः जीवित हो गयी थी। **डेविड थाम्पसन** के अनुसार, "संविधान के लागू होने के कुछ ही दिन बाद ऐसा प्रतीत होने लगा कि यह अपने पूर्ववर्ती संविधान से भिन्न नहीं था। तृतीय गणतन्त्र की व्यवस्था पूर्णतः अज्ञात लोक से धीरे-धीरे उतर कर फ्रांस में छा गयी और ऐसा अनुभव होने लगा कि चतुर्थ गणतन्त्र का अन्त हो चुका है और तृतीय गणतन्त्र पुनः अवतरित हुआ।"

पंचम गणतंत्र का निर्माण– वैधानिक उपबन्धों की दुर्बलताओं के अतिरिक्त चतुर्थ गणतन्त्र के अन्त का तात्कालिक कारण फ्रांस की औपनिवेशिक समस्या थी। चतुर्थ गणतन्त्र के जीवन-काल में फ्रांस के उपनिवेश उसकी जटिल समस्या बने रहे। मई, 1958 में इस समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया। अल्जीरिया में फ्रांसीसी सैनिकों ने फ्रांसीसी सरकार की अल्जीरिया के प्रति ढुल-मुल नीति के विरूद्ध विद्रोह कर दिया और द गॉल (De Gaulee) के हाथों में देश के शासन की बागडोर सौंपने की माँग की। इसी बीच कोर्सिका के सैनिकों ने भी विद्रोह कर दिया और द गॉल का पक्ष लिया। अतः विवश होकर द गॉल को फ्रांस का प्रधानमंत्री नियुक्त करना पड़ा और 6 महीने तक के लिए शासन की समस्त शक्ति उसके हाथों में सौंप दी गयी। द गॉल पर नये संविधान के निर्माण का भार सौंपा गया। तीन महीने के अन्दर नये संविधान का प्रारूप प्रस्तुत किया गया। सितम्बर, 1958 में उस पर लोकमत-संग्रह (Referendum) हुआ। संविधान बहुमत द्वारा स्वीकृत हो गया। इस संविधान ने पाँचवे गणतन्त्र को जन्म दिया। 5 अक्टूबर, 1958 को पंचम गणतन्त्र का संविधान प्रवर्तित हुआ।

रशिया की संवैधानिक व्यवस्था (Constitutional System of Russia)

दिसंबर 1993 के संविधान के अंतर्गत रूस में **संघीय गणराज्य** (Federal Republic) की स्थापना की गई। अतः इस देश का अधिकारिक नाम **रूसी संघ** (Russian Federation) है। इस संघ में 21 गणराज्य (Republics), 49 प्रशासनिक अंचल (Administrative Regions), 6 प्रांत (Provinces), 10 स्वायत्त जनपद (Autonomous Districts) और दो संघीय नगर (Federal Cities) – मास्को तथा सेंट पीट्र्सबर्ग सम्मिलित है। इस तरह रूसी संघ कुल मिलाकर 89 प्रशासनिक इकाइयों (Administrative Units) से बना है।

शासन-प्रणाली के स्तर पर यहां **अध्यक्षीय प्रणाली** (Presidential System) और **संसदीय प्रणाली** (Parliamentary System) **का मिश्रण** तैयार करने का प्रयत्न किया गया है। अध्यक्ष प्रणाली की तरह यहां एक शक्तिशाली **राष्ट्रपति** (President) की व्यवस्था की गई है, और संसदीय प्रणाली की तरह यहां एक शक्तिशाली **संसद** (Parliament) की व्यवस्था की गई है जिसे **संघीय सभा** (Federal Assembly) कहा जाता है। राष्ट्रपति राज्य का अध्यक्ष (Head of State) जो सीधे जनसाधारण के द्वारा चार वर्ष के लिए चुना जाता है; उसे लगातार दो बार से आगे नहीं चुना जा सकता। यह संविधान का संरक्षक है, और सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति (Supreme Commander of the armed Forces) भी है। वह प्रधान-मंत्री (Prime Minister) तथा मंत्रि-परिषद (Council of Minsiters) अथवा मंत्रिमंडल (Cabinet) की नियुक्ति के लिए संसद (Parliament) का अनुमोदन जरूरी होता है। राष्ट्रपति एक अंतरंग मंत्रिमंडल

नोट

(Kitchen Cabinet) की सलाह से कार्य करता है जिसमें उसके विश्वस्त मित्र और उच्चाधिकारी सम्मिलित होते हैं। मंत्रिमंडल को सत्ता में रहने के लिए संसद का विश्वास प्राप्त होना चाहिए।

राष्ट्रपति आज्ञप्तियां (Decress) जारी कर सकता है जो प्रचलित कानून की तरह मान्य होती है। फिर संसद इन्हें निरस्त भी कर सकती है। दूसरी ओर, राष्ट्रपति भी संसद-द्वारा-पारित विधेयक (Bill) को कानून बनने से रोक सकता है। वह संसद–अर्थात् संघीय सभा (Federal Assembly) के प्रति अपने वार्षिक अभिभाषण (Annual Address) के अंतर्गत सरकार की राजनीतिक और आर्थिक नीति का निरूपण कर सकता है। देश की रक्षा (Defence) का दायित्व सँभालने के लिए राष्ट्रपति सुरक्षा-परिषद (Security Council) नियुक्त करता है। जिसका अध्यक्ष वह स्वयं होता है। वह केन्द्रीय बैंक (Central Bank) के अध्यक्ष (Chairperson), महा-अभियोजक (Prosecutor General) तथा न्यायपालिका (Judiciary) के प्रमुख सदस्यों की नियुक्ति का प्रस्ताव संसद के पास भेजता है। जनवरी, 1994 के बाद सुरक्षा-सेवाएं, गृह-मंत्रालय, रक्षा मंत्रालय और विदेश मंत्रालय सीधे राष्ट्रपति के अधीन कर दिए गए हैं। राष्ट्रपति-पद का उम्मीदवार कम-से-कम दस लाख मतदाताओं के द्वारा मनोनीत होना चाहिए; इनमें किसी एक अंचल (Region) या गणराज्य (Republic) के मतदाताओं की संख्या कुल संख्या की 7% से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।

रूस में विधायिका (Legislature) के कृत्य **संघीय सभा** (Federal Assembly) को सौंपे गए हैं। इसमें दो सदन (Chambers) रखे गए हैं। अवर सदन (Lower House) को **स्टेट ड्यूमा** कहा जाता है। इसमें 450 सदस्यों की व्यवस्था की गई है। उच्च सदन (Upper House) को **संघीय परिषद** (Federal Council) कहा जाता है। इसमें 178 सदस्यों की व्यवस्था की गई है। स्टेट ड्यूमा के 225 सदस्य सीधे एकसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों (Single-Member Constituencies) से चार वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इस चुनाव में बहुलमत प्रणाली (Plurality System) अपनाई जाती है– अर्थात् 'जो सबसे आगे, जीत उसकी (First pas the post)। शेष 225 सदस्य राष्ट्रीय दल-सूचियों (Nationa Party Lists) से आनुपातिक प्रतिनिधत्व (Proportional Representation) के आधार पर चुने जाते हैं। इस तरह प्रत्येक मतदाता के दो वोट होते हैं: एक स्थायी निर्वाचन क्षेत्र के लिए; दूसरा राष्ट्रीय दल-सूची के लिए। स्टेट ड्यूमा के उम्मीदवार की न्यूनतम आयु 21 वर्ष होनी चाहिए। जब कोई उम्मीदवार चुन लिया जाता है, तब वह कोई वैतनिक कार्य (Paid Job) स्वीकार नहीं कर सकता; न वह किसी सरकारी पद (Government Post) पर रह सकता है।

बहुलमत प्रणाली (Plurality System) :- वह निर्वाचन-प्रणाली जिसके अंतर्गत एकसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र में जिस उम्मीदवार को सबसे ज्यादा वोट मिलते हैं, उसे विजयी मान लिया जाता है।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) :- ऐसी चुनाव प्रणाली जिसमें मतदाता एक से अधिक उम्मीदवारों को अपनी-अपनी पसंद के क्रम में रख सकते हैं, ताकि बहुमत (Majority) के साथ-साथ अल्पमत (Minority) को भी उचित प्रतिनिधित्व दिया जा सके। यह एक जटिल प्रणाली है। इसके लिए कई तरीके अपनाए जा सकते हैं जो प्रस्तावित चुनाव के नियमों के अंतर्गत निर्दिष्ट कर दिए जाते हैं।

संघीय परिषद के अंतर्गत रूसी संघ की 89 प्रशासनिक इकाइयों में से प्रत्येक के दो-दो प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं जिससे इस परिषद के सदस्यों की संख्या 178 हो जाती है। किसी भी गणराज्य या अंचल के प्रतिनिधि क्रमशः वहां की कार्यपालिका (executive) और विधायिका के अध्यक्ष होने चाहिए।

साधारणतः कोई भी विधेयक शुरू-शुरू में स्टेट ड्यूमा में प्रस्तुत होना चाहिए हालांकि कुछ नीति-संबधी विषय संघीय परिषद् के अधिकार क्षेत्र में रखे गए हैं। स्टेट ड्यूमा में पारित होने के बाद प्रत्येक विधेयक को संघीय परिषद के पास भेजना चाहिए। यदि संघीय परिषद किसी विधेयक को अस्वीकार कर दे तो उसे स्टेट ड्यूमा के पास वापस भेजा जाएगा। वहाँ एक आयोग-जिसमें दोनों सदनों के सदस्य सम्मिलित होंगे-इनमें मतभेदों को दूर करने का प्रयत्न करेगा। यदि स्टेट ड्यूमा उच्च सदन के संशोधनों को अस्वीकार कर दे तो वह दो-तिहाई बहुमत से उस विधेयक को दुबारा पारित करके उच्च सदन की इच्छा की अवहेलना कर सकती है। ऐसे हाल में उस विधेयक को संसद-द्वारा पारित माना जाएगा।

संसद से पारित होने के बाद प्रत्येक विधेयक को राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए भेजना होता है यदि राष्ट्रपति किसी विधेयक पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दे तो उसे स्टेट ड्यूमा के पास वापस भेज दिया जाता है। यदि स्टेट ड्यूमा

नोट

राष्ट्रपति के संशोधनों से सहमत हो तो वह उसे साधारण बहुमत से दुबारा पारित कर सकती है। यदि स्टेट ड्यूमा राष्ट्रपति से असहमत हो तो वह उसे दो-तिहाई बहुमत से दुबारा पारित करके राष्ट्रपति के निषेधाधिकार (Veto) को निरस्त कर सकती है। यही प्रक्रिया संघीय परिषद में भी दोहरानी होगी– अर्थात् यदि संघीय परिषद् राष्ट्रपति के संशोधनों से सहमत हो तो वह उसे साधारण बहुमत से दुबारा पारित कर सकती है, अन्यथा उसे यहां भी दो-तिहाई बहुमत से पारित करना होगा। यदि ये शर्तें पूरी हो जाती हैं तो प्रस्तुत विधेयक को राष्ट्रपति के द्वारा पारित माना जाएगा।

विधायिका को विस्तृत शक्तियां प्रदान की गई है, फिर भी उनमें कई तरह से कटौती कर दी गई है। स्टेट ड्यूमा पूर्ण बहुमत (Absolute Majority) के आधार पर (अर्थात् 226 वोटों के आधार पर) अविश्वास-प्रस्ताव (Vote of No-Confidence) पारित करके सरकार को गिरा सकती है परंतु इसे तीन महीने के भीतर दो बार ऐसा प्रस्ताव पारित करना होगा, तभी राष्ट्रपति उस कार्रवाई करने को विवश होगा। ऐसी हालत में राष्ट्रपति या तो नई सरकार का गठन करेगा, फिर स्टेट ड्यूमा को भंग करके नया चुनाव कराने का आदेश देगा। नए प्रधानमंत्री और नई सरकार की नियुक्ति के लिए स्टेट ड्यूमा का अनुसमर्थन (Ratification) जरूरी होगा। यदि राष्ट्रपति-द्वारा प्रस्तावित उम्मीदवार को स्टेट ड्यूमा को भंग कर सकता है, और नए चुनाव का आदेश दे सकता है। परंतु निम्न हालतों में राष्ट्रपति संसद को भंग नहीं कर सकता (क) यदि नई संसद के चुनाव के बाद एक वर्ष से कम समय बीता हो; (ख) यदि संसद राष्ट्रपति के विरूद्ध महाभियोग (Impeachement) की कार्रवाई शुरू कर चुकी हो; (ग) यदि राष्ट्रपति संपूर्ण रूस में आपातकाल (Emergency) की घोषणा कर चुका हो; या (घ) यदि राष्ट्रपति का कार्यकाल समाप्त होने में छह महीने से कम समय रहता हो। उधर संघीय परिषद राष्ट्रपति के विरुद्ध तभी महाभियोग चला सकती है जब संघीय सभा के दोनों सदन इसके पक्ष में वोट दे चुके हो, और सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) तथा संविधानिक न्यायालय (Constitutional Court) दोनों इस प्रस्ताव से सहमत हों।

महाभियोग (Impeachement):- वह प्रक्रिया जिसके अंतर्गत किसी देश के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, उच्च या सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश या किसी अन्य उच्चाधिकारी पर अत्यंत गंभीर आरोप लगाकर उसे पद से हटाने की कार्रवाई की जाती है। यह आरोप देशद्रोह, भ्रष्टाचार या संविधान के उल्लंघन का हो सकता है। महाभियोग उन्हीं उच्चाधिकारियों पर चलाया जाता है जिनकी पदावधि विधानमंडल के राजनीतिक समर्थन (Political Support) पर आश्रित नहीं होती।

साधारणत: किसी देश के उच्चाधिकारी पर महाभियोग चलाने की शक्ति वहां के विधानमंडल (Legislature) में निहित रहती है, और इसके लिए अपेक्षित प्रक्रिया (Procedure) संविधान की व्यवस्थाओं या उनसे जुड़ी प्रथाओं (Conventions) से निर्धारित होती है।

रूस के संविधान के अनुसार राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने की कार्रवाई चार चरणों में पूरी की जा सकती है: (क) स्टेट ड्यूमा को दो-तिहाई बहुत से महाभियोग के पक्ष में वोट देना होगा; (ख) सर्वोच्च न्यायालय को इस बात की पुष्टि करनी होगी कि राष्ट्रपति की कथित कार्रवाई गंभीर अपराध या देशद्रोह (treason) की कोटि में आती है; (ग) संवैधानिक न्यायालय का यह व्यवस्था देनी होगी कि स्टेट ड्यूमा ने महाभियोग चलाने के निर्णय का जो अनुमोदन किया है, उसमें प्रक्रिया (procedure) का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है; और (घ) राष्ट्रपति को हटाने का प्रस्ताव संघीय परिषद के दो-तिहाई बहुमत से पारित होना चाहिए।

संवैधानिक न्यायालय (Constitutional Court) :- रूस के संविधान के अनुसार, वह न्यायालय जिसे न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review) की शक्ति प्राप्त है, इसमें 19 सदस्यों की व्यवस्था की गई है। ये सदस्य राष्ट्रपति के द्वारा मनोनीत किए जाते हैं, परंतु इनकी नियुक्ति के लिए संघीय परिषद की पुष्टि आवश्यक है। इस न्यायालय को यह निर्णय देने का अधिकार है कि राष्ट्रपति, संसद तथा सरकार की कोई कार्रवाई संविधानसम्मत है या नहीं?

न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review) :- लिखित संविधान के अंतर्गत कि यह शक्ति कि वह किसी नियम, कानून, प्रशासनिक आदेश या कार्रवाई को संविधान की व्यवस्थाओं या उनमें निहित सिद्धांतों की दृष्टि से परख कर उसे संविधान या उसकी मूल चेतना (spirit) के विरूद्ध घोषित कर सकता है जिससे वह रदद् हो जाती है।

नोट

1993 के संविधान के अंतर्गत रूस की केन्द्रीय सरकार को फिर से विस्तृत शक्तियां देने का प्रयत्न किया गया है, परंतु रूसी संघ के 21 गणराज्यों तथा 68 अंचलों, प्रांतो एवं जनपदों को भी समानता के आधार पर पर्याप्त सत्ता प्रदान की गई है। कराधान, रक्षा, विदेशी मामले, ऊर्जा और सामाजिक–आर्थिक नीति से जुड़े विषय केन्द्रीय अर्थात् संघीय सरकार के लिए सुरक्षित रखे गए हैं, परंतु शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, संस्कृति और भूमि के उपयोग से जुड़े विषय केन्द्र और स्थानीय शासन के संयुक्त प्रबंध के अतंर्गत रखे गए हैं। गणराज्यों के अपने–अपने संविधान हैं; उनकी अपनी–अपनी निर्वाचित सरकारें हैं; और वे अपना–अपना बजट बनाते हैं। वे आर्थिक और सामाजिक सुधारों की गति और दिशा निर्धारित करने में प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं; भूमि का स्वामित्व मुख्यत: इन्हीं के नियंत्रण में आता है; और राज्य के कल्याणकारी कार्यक्रमों का 80% खर्च इनके हिस्से में आता है।

यह बात महत्त्वपूर्ण है कि रूस का संविधान अपने नागरिकों को बुनियादी मानव–अधिकार और स्वतंत्रताएं प्रदान करता है। इनमें आवास (Housing), नि:शुल्क चिकित्सा (Free Healthcare), शिक्षा (Education) और कुछ हालतों में कानूनी सहायता (Legal Assistance) का अधिकार सम्मिलित है।

राजनीतिक दलों की स्थिति (Status of Political Parties) :– रूसी संघ के निर्माण से पहले सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ एक साम्यवादी देश था जहां साम्यवादी दल (Communist Party) का एकाधिकार प्रचलित था। 1990 के दशक के आरंभ से वहां राजनीतिक बहुलवाद (Political Pluralism) को सहन करने की शुरूआत हुई। तब से वहां अनेक राजनीतिक दल उभर कर सामने आए, हालांकि उनमें से बहुत ही कम दल जानदार या टिकाऊ सिद्ध हुए। दल के बंधन या दल के प्रति निष्ठा को वहां बहुत महत्त्व नहीं दिया जाता है, बहुत सारे राजनीतिज्ञ स्वाधीन या निर्दलीय (Independent) उम्मीदवारों के रूप में चुने जाते हैं। वे स्थानीय समर्थन के आधार पर आगे आते हैं, संसद के भीतर अवसरवादी गठबंधन बना लेते हैं। किसी उम्मीदवार को राजनीतिक दल की ओर से संसदीय चुनाव लड़ने के लिए कम–से–कम 2,00,000 हस्ताक्षर प्राप्त करने पड़ते हैं।

राजनीतिक बहुलवाद (Political Pluralism) :– वह सिद्धांत जिसके अंतर्गत जनसाधारण को अनेक विचारधाराओं, नीतियों, कार्यक्रमों और नेताओं में से अपनी–अपनी पसंद का विकल्प चुनने का अवसर और स्वतंत्रता दी जाती है। दिसंबर, 1995 के संसदीय चुनाव के समय करीब 250 राजनीति दल अपना पंजीकरण (Registration) करा चुके थे। इनमें से केवल 43 दलों ने चुनाव में हिस्सा लिया, और केवल 23 दलों ने कुछ स्थान जीते। इनमें भी कुछ विशेष दलों का वर्चस्व रहा। स्टेट ड्यूमा के 373 स्थानों, विभिन्न दलों के हिस्से में आए क्योंकि इन्हें निर्दलीय उम्मीदवार नहीं जीत पाए। इनमें 90% स्थानों पर पृथक्–पृथक् दलों के हिस्से में आए। ये दल थे : रूसी संघ साम्यवादी दल (communist Party of The Russian Federation); रूस का उदार–लोकतंत्रीय दल (Liberal-Democratic Party of Russia); याब्लोको; 'रूस हमारा घर है' (Our Home is Russia) ; और रूस का कृषि–प्रधान दल (Agrarian Party of Russia)। जुलाई, 1996 तक राष्ट्रव्यापी राजनीतिक दलों में कानूनी तौर पर पंजीकृत दलों की संख्या गिरकर 86 रह गई। विचारधारात्मक दृष्टि से रूस के राजनीतिक दलों को मोटे तौर पर तीन संतुलित श्रेणियों में रख सकते हैं : रूढ़िवादी पूर्व–साम्यवादी (Conservative Ex-Communit); उत्कट दक्षिणपंथी राष्ट्रवादी और लोकवादी (Redical Righwing Nationalist and Populist); और उदारवादी मध्यमार्गी (Liberal&Centrist) दल जो बाजार–व्यवस्था और बहुलवाद का समर्थक है। इनमें रूढ़िवादी पूर्व–साम्यवादी मुख्यत:रूसी संघ के साम्यवादी दल से जुड़े हैं जिसे अक्तूबर, 1993 में फिर से कानूनी तौर पर मान्यता मिल गई थी। यह दल सोवियत संघ के साम्यवादी दल (Communit Party of the Soview Union : CPSU) का अल्पसंशोधित उत्तराधिकारी है जो कि अर्थव्यवस्था पर राज्य के नियंत्रण का समर्थन करता है। इनके अलावा, 'रूस की स्त्रियां' (Women of Russia) ऐसा दल है जो रूसी स्त्रियों में फैली हुई बेरोजगारी की समस्या और उनके प्रति होने वाले दुर्व्यहवहार पर ध्यान केंद्रित करता है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

1. **सही वि**कल्प चुनिए (Choose the correct option)–

   1. मैग्नाकार्टा जिसे माँग राजपत्र (The Great Charter) कहते हैं को मंजूरी दी–
      (क) हेनरी द्वितीय (ख) रिचर्ड प्रथम (ग) जॉन (घ) ट्यूडर
   2. ब्रिटिश संसद शक्तिशाली हो गयी थी–
      (क) पंद्रहवीं शताब्दी में (ख) चौदहवीं शताब्दी में
      (ग) सोलहवीं शताब्दी में (घ) बारहवीं शताब्दी में
   3. ब्रिटेन में जिसे 'सबसे बुद्धिमान बेवकूफ' कहा गया है 1603 ई. में गद्दी पर बैठा, वह कौन है?
      (क) रिचर्ड प्रथम (ख) जेम्स प्रथम (ग) हेनरी द्वितीय (घ) जान
   4. ग्रेट ब्रिटेन और अमरीकी उपनिवेशों के बीच युद्ध चला-
      (क) 10 वर्षों तक (ख) 8 वर्षों तक (ग) 6 वर्षों तक (घ) 5 वर्षों तक
   5. वर्तमान में स्विट्जरलैण्ड का संविधान जो प्रभावी है कब लागू हुआ –
      (क) 29 मई 1874 (ख) 29 मई 1875 (ग) 29 मई 1878 (घ) 29 मई 1880

6.2 यू.एस.ए और स्विट्जरलैण्ड में संविधान संशोधन की प्रक्रिया (Amendment Process in the Constituion of U.S.A. and Switzerland)

संवैधानिक संशोधन का अर्थ (Meaning of Constitutional Amendment) :- संविधान विकासशील होते हैं। इसी प्रसंग में **हेनरी मेन** (Henry Maine) ने कहा था कि संविधान निर्मित नहीं अपितु विकसित होते हैं। इस उक्ति में सत्यता की मात्रा जो भी हो इतना तो सर्वामान्य ही है कि कोई भी संविधान अपने अन्तिम, रूप को प्राप्त नहीं कर पाया है तथा विकास के योग्य है। **लार्ड ब्रागहम** ने कहा था : 'यदि संविधान का कोई मूल्य है तो उन्हें विकसित होना चाहिए, उनकी जड़ें भी होती हैं, वे पकते हैं, दृढ़ होते हैं।" तात्पर्य यह है कि मानव समाज विकासशील है, समय के साथ मनुष्य की आवश्यकताएँ तथा परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। चूँकि उत्तम संविधान का यह गुण है कि वह समय की माँग को परिलक्षित करे, अत: आवश्यकताओं में परिवर्तन के साथ संविधान में अनुकूल परिवर्तन आवश्यक है। **विल्सन** के शब्दों में "संविधान को निश्चित रूप से जीवन प्रेरक होना चाहिए; इसके तत्त्व हैं राष्ट्रीय विचार और स्वभाव। अत: राष्ट्रीय जीवन में परिवर्तन के साथ इसका विकास आवश्यक है।

अमेरिका में संवैधानिक संशोधन (Constitutional Amendment in U.S.A.)

संवैधानिक संशोधन की रीतियाँ (Procedures of Constituional Amendment): आधुनिक लिखित संविधान में अमरीकी संविधान सबसे अधिक पुराना संविधान है। इसका निर्माण लगभग दो सौ वर्ष पूर्व हुआ था लेकिन आज भी यदि मेडिसन और हैमिल्टन पृथ्वी पर आवे तो इसे पहचानने में उन्हें भी कठिनाई होगी। आज का संविधान सिर्फ 1787 ई॰ का लिखित प्रलेख नहीं है, यह तो ढाँचामात्र है, गगनचुम्बी अट्टालिका का आधार मात्र है। समय और परिस्थिति की माँग के अनुसार इसमें संशोधन हुए, विधि वेत्ता, प्रकाशकीय आधार, विधायिनी संस्थाओं, नागरिकों और राजनीतिक दलों ने इसकी व्याख्या की। संविधान के शब्दों को उन्होंने विभिन्न अर्थ, सिद्धांत, नियम, प्रणालियों आदि से विभूषित किया। इन्हें संविधान में लिपिबद्ध नहीं किया गया, लेकिन प्रथा और परम्परा के रूप में संविधान के व्यावहारिक और अभिन्न अंग बन गये। **आँग** और **रे** ने इसलिए कहा है कि "वर्तमान संविधान सिर्फ प्रलेखीन अनुच्छेद नहीं है बल्कि समस्त व्याख्याएँ, निर्णय, अभ्यास और प्रणालियाँ जो मौलिक अनुच्छेदों और धाराओं के इर्द-गिर्द विकसित हुए हैं इसका सकंलन है, जिन्हें कम-से-कम एक हजार पृष्ठों में मुद्रित किया जा सकता है।"

सांवैधानिक वृद्धि के प्रसंग में **मुनरो** ने कहा है– यह संविधान 1787 की तिथि चिन्ह रखते हुए भी गुजरे हुए वर्षों में निरंतर परिवर्तित, विकसित, विस्तृत और नवीन परिस्थितियों के अनुकूल होता रहा है।" **ब्राइस** के शब्दों में "अमरीकी

नोट

संविधान अनिवार्यत: उतना ही बदला है जितना कि राष्ट्र बदला है और जहाँ तक लोगों के विचार इस संविधान के बारे में बदले हैं वहीं तक इस संविधान की आत्मा एवं अर्थ में परिवर्तन हुआ है।"

संविधान के विकास के साधन

संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान का विकास विभिन्न रीतियों से हुआ है जिनमें निम्नलिखित प्रमुख है:-

(क) संविधि द्वारा विकास (Development by Statuts)।

(ख) प्रशासकीय निर्णयों द्वारा विकास (Development by Administrative Decision)।

(ग) न्यायिक व्याख्याओं द्वारा विकास (Development by Judicial Interpretations) ।

(घ) राजनीतिक और नागरिक व्याख्याओं द्वारा विकास (Development by Interpretation by Politicians and Citizens) ।

(ड़) प्रथाओं ओर परम्पराओं द्वारा विकास (Development by Usages and Conventions)।

(च) संशोधन द्वारा विकास (Development Amendment)।

(क) संविधि (Statute) :- संविधान-निर्माता इस तरह से अवगत थे कि भविष्य को भूत की कड़ी में बाँधा जा सकता है। अत: उन्होंने केवल शासन का ढाँचा तैयार किया और आधारभूत सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। शासन-सम्बन्धी विस्तार की बातों को पूरा करने का भार उन्होंने भावी जन-प्रतिनिधियों पर छोड़ दिया। उसका विचार था कि कांग्रेस संविधान की न्यूनताओं तथा कमियों को पूरा करेगी और शासन का पूर्ण ढाँचा तैयार करेगी। काँग्रेस ने इस कार्य को सफलतापूर्वक किया।

उदाहरणार्थ : (i) संशोधन में केवल सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना का उल्लेख है और उनकी रचना तथा अधीनस्थ न्यायालयों की स्थापना और संगठन का भार काँग्रेस पर छोड़ दिया है। काँग्रेस ने 1789 ई॰ में न्यायपालिका अधिनियम (Judiciary Act of 1789) के द्वारा न्याय-व्यवस्था की नींव डाली।

(ii) संघीय विधायिका के बारे में संविधान सिर्फ काँग्रेस के दो कथनों की चर्चा करता है, परन्तु सदस्यों की निर्वाचन-विधि, निर्वाचन का समय, स्थान आदि को बाद में विधियों द्वारा निश्चित किया गया है।

(ख) प्रशासकीय निर्णय :- विधायिका की तरह कार्यपालिका का भी अमरीकी संविधान के विकास में पर्याप्त हाथ रहा है। राष्ट्रपतियों की राजाज्ञाओं, आज्ञाओं तथा अन्य कार्यवाहियों ने संविधान में वृद्धि की है। **जैक्सन, लिंकन, रूजवेल्ट** आदि राष्ट्रपतियों का संविधान पर स्पष्ट छाप है। उदाहरणार्थ, संविधान में मंत्रिमंडल की व्यवस्था नहीं है, लेकिन राष्ट्रपति वाशिंगटन ने मंत्रिमंडल द्वारा परामर्श तथा शासन-संचालन की तथा प्रारम्भ की जो अब संविधान का अभिन्न अंग बन गया है। इस प्रकार यद्यपि युद्ध-घोषणा का अधिकार काँग्रेस को है, लेकिन राष्ट्रपति ने इसे अप्रत्यक्ष तरीके से अपने हाथ में लिया है।

(ग) न्यायिक व्याख्याएँ :- संवैधानिक वृद्धि की अधिकतम महत्त्वपूर्ण साधना न्यायिक निर्वाचन है। काँग्रेस या राज्य विधायिकाएँ कोई विधि बनाती हैं, राष्ट्रपतीय या राज्यिक प्रशासन अधिकारी कोई कार्य करते हैं। उन विधियों और कार्यों आदि को यदि कोई अवैधानिक समझता है तो न्यायालय के समक्ष उन्हें उनकी वैधानिकता के परीक्षण के लिए पेश करता है। न्यायालय निर्णय देते समय संविधान से संबंधित धारा का अर्थ लगाते हैं जो उन्हें संविधान को पूर्व से पर्याप्त भिन्न अर्थ देने का सुअवसर प्रदान करता है। इस प्रकार संविधान को नयी दिशा मिलती है। किसी वाक्यांश का विवेचन करते समय न्यायालय उन्हें नया क्षेत्र तथा विषय प्रदान करते हैं। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है और "विकास की दिशा एक निर्णय के बाद दूसरे निर्णय द्वारा निर्धारित होती रहती है जबतक कि अन्तिम निर्णय के बहुत दूर अर्थ नहीं लगा दे।" उदाहरणार्थ, सर्वोच्च न्यायालय ने निहित शक्ति के सिद्धांत (Implied Power) सहज शक्ति के सिद्धांत प्रथा अन्य निर्णयों के द्वारा शासन का मार्ग ही बदल दिया है। **ऑग और रे** के मत में न्यायालय "निरंतर अधिवेशन में रहनेवाला संवैधानिक सम्मेलन" (A King of Continuous Constitutional Convention) है जो संविधान वही है जिसे न्यायाधीश कहे कि यह संविधान है।" **मुनरो** के शब्दों में "प्रत्येक सोमवार को सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की घोषणा के साथ संविधान में परिवर्तन होता रहता है।"

नोट

(3) प्रथाएँ और अभिसमय: वाशिंगटन ने कहा था, "समय और आदत सरकार तथा मानवीय संस्थाओं का सच स्वरूप निश्चित करने के लिए आवश्यक है।" अमरीकी संविधान के विकास में भी प्रथाओं तथा अभिसमयों (costoms and convention) का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। ये शासन के आधारभूत तथा मौलिक नियम बन गये हें, इनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं– (i) संविधान में राष्ट्रपति के निर्वाचन की अप्रत्यक्ष पद्धति अपनायी गयी है लेकिन प्रथाओं ने उसे प्रत्यक्ष निर्वाचन का रूप दे दिया है। (ii) संविधान में मंत्रिमंडल की व्याख्या नहीं है, लेकिन प्रशासकीय विभागों के परामर्श-दातृ संस्था के रूप में मंत्रिमंडल को जन्म दिया है। (iii) "संधियों के स्थान पर कार्यकारी समझौता" (Executive agreements) प्रथा की ही देन है। (iv) कांग्रेस में 'काउकस' (Caucus) और समिति प्रणालियों का विकास। (v) सभी धन-विधेयक का प्रतिनिधि-सभा में पुन: स्थापित होना। (vi) राजनीतिक दलों तथा उसके सभी अंगो का विकास–काउकस (Caucas) सम्मेलन, समितियाँ, प्लेटफार्म, निधि इत्यादि प्रथाओं की देन हैं। (vii) वाशिंगटन के समय यह प्रथा आरम्भ हुई कि किसी व्यक्ति को दो बार से अधिक राष्ट्रपति नहीं होना चाहिए। 1940 ई॰ तक इस प्रथा का पालन हुआ। अंत में, 1961 ई॰ से इसे वैधानिक रूप प्रदान किया गया। (viii) नियुक्ति-सम्बन्धी सिनेटोरियल कर्टसी (Senatorial courtesy) की प्रथा महत्त्वपूर्ण है।

(4) राजनीतिज्ञों तथा नागरिकों द्वारा व्याख्याएँ : संविधान की व्याख्या में राजनीतिज्ञ (Politicians) और साधारण नागरिक भी भाग लेते हैं, यद्यपि ये शासन में पदाधिकारी नहीं होते। इनमें राजनीतिक दलों के नेताओं का कार्य उल्लेखनीय है। **वियर्ड** ने उदाहरण देते हुए कहा कि संविधान की धारा 2 में यह व्यवस्था की गयी है कि राज्यों द्वारा नियुक्त "निर्वाची" (Electorates) एकत्र होकर राष्ट्रपति को चुनेंगे। संविधान निर्माताओं का उद्देश्य था कि दलबन्दी या निहित स्थानों से परे योग्यतम व्यक्ति राष्ट्रपति को चुनेंगे, लेकिन आज व्यवहार में निर्वाची राजनीतिक दलों तथा मतदाताओं की इच्छा को कार्य रूप देने के लिए रबर स्टाम्प (Rubber-Stamp) का काम करते हैं इस प्रकार लाखों अमरीकी मतदाताओं ने राष्ट्रपति के निर्वाचन को एकदम बदल दिया है।

संशोधन की प्रक्रिया (Procedure For Amendment):- अमरीकी संविधान के जनकों के दो उद्देश्य थे– (1) संविधान की विधियों को सर्वोपरिता प्रदान करना तथा (2) संविधान में अनम्यता तथा नम्यता का समन्वय करना। संविधान एक पवित्र प्रलेख है, उसकी विधियाँ देश की सर्वोच्च विधियाँ हैं उनके निर्माण और परिवर्तन की प्रणाली साधारण विधि से भिन्न होनी चाहिए। फिर स्थायीपन संविधान का एक गुण है, लेकिन इस स्थिरता के लिए यथाकाल व्यवस्था आवश्यक है। संविधान सदियों तक तभी जीवित रह सकता है जब विभिन्न समयों और परिस्थितियों के अनुकूल अपने में परिवर्तन ला सके; लेकिन वह परिवर्तन ऐसा नहीं होना चाहिए कि संविधान की आत्मा या स्वरूप ही समाप्त हो जाय। **चीफ जस्टिस मार्शल** ने कहा था कि "हम यह कभी नहीं भूलें कि यह संविधान सदियों तक स्थायी रहेगा और फलत: उसे मनुष्य जीवन के विभिन्न संकेतों के अनुकूल व्यवस्थित होना पड़ेगा।" अमरीकी संविधान के निर्माता इस तथ्य से पूर्णत: अवगत थे। इन्हीं उद्देश्यों ने संशोधन की एक विशिष्ट प्रणाली को स्थान दिया।

प्रक्रिया की धारा- अमरीकी संविधान के पाँचवें अनुच्छेद में संविधान के संशोधन की प्रक्रिया का उल्लेख है–"काँग्रेस, जब कभी इसके दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमत से आवश्यक समझे, संविधान में संशोधन प्रस्तुत कर सकेगी या दो-तिहाई राज्यों के विधान मण्डलों की प्रार्थना पर संशोधन करने के लिए एक-कन्वेंशनों द्वारा दोनों में से जिस किसी ढंग को काँग्रेस स्वीकार करें, संतुष्ट कर दिया जायगा तो वह इस संविधान का वैध अंग बन जायगा।"

(क) प्रस्तावना:- संशोधन का प्रस्ताव लाने के लिए दो पद्धतियों का उल्लेख किया गया है। प्रथम काँग्रेस के दोनों सदन अपने दो तिहाई बहुमत से संशोधन का प्रस्ताव प्रस्तावित कर सकते हैं। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया है यह दो तिहाई बहुमत संशोधन पर मत देनेवाले सदस्यों का होना चाहिए, न कि समस्त सदस्यों का। द्वितीय, अमरीकी संघ की कम-से-कम दो-तिहाई राज्यों की विधान सभाएँ कांग्रेस से संशोधन की प्रार्थना करे ऐसी प्रार्थना के फलस्वरूप काँग्रेस संविधान में संशोधन करने के लिए एक सम्मेलन (Convention) आमंत्रित करती है और इस सम्मेलन द्वारा संशोधन प्रस्तावित किया जा सकता है।

नोट

(ख) अनुसमर्थन (Retification): संशोधन को प्रभावी होने के लिए उसका अनुसमर्थन आवश्यक है। प्रस्तावित संशोधन की संपुष्टि के लिये भी दो तरीके अपनाये जा सकते हैं। (i) संघ के तीन–चौथाई राज्यों के विधानमण्डल उसकी पुष्टि कर दें, या (ii) इस कार्य के लिए राज्यों में आमंत्रित किये गये सम्मेलनों में तीन–चौथाई राज्यों के सम्मेलनों द्वारा संशोधन की पुष्टि की जाय। संशोधन की पुष्टि के लिए उपर्युक्त दो विधियों में से कौन–सी विधि प्रयोग में लायी जाय इसका निर्णय काँग्रेस करती है।

निरोध– ये प्रक्रियाएँ मर्यादित भी है। संविधान में सिर्फ एक मर्यादा को स्पष्टत: लिखा गया है कोई भी राज्य बिना सहमति के सिनेट में मताधिकार की समानता से वंचित नहीं किया जायगा। दास व्यापार (Slave Trade) पर भी अल्पकालीन निरोध (restriction) था। अठारहवें संशोधन के समय उन विषयों को भी संशोधन–शक्ति से बाहर रखने की चेष्टा की गयी जो संविधान में अन्तर्निहित (Germane) नहीं है लेकिन यह प्रयास असफल रहा।

संविधान-प्रक्रिया का कार्यरूप– यद्यपि प्रस्तावना और अनुसमर्थन की दो विधियाँ संविधान में व्यवस्थित हैं, अभी तक संशोधन के सभी प्रस्ताव काँग्रेस के दोनों सदनों के दो–तिहाई बहुमत द्वारा पारित हुए हैं और सिर्फ इक्कीसवें संशोधन को छोड़कर सभी प्रस्ताव राज्य की विधायिका सभाओं द्वारा अनुसमिर्थित हुए हैं लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि कन्वेन्शन की प्रक्रिया के लिए कभी प्रयत्न ही नहीं किया। कई बार दो–तिहाई राज्यों से कन्वेन्शन बुलाने की प्रार्थना की है, लेकिन काँग्रेस सदा इसके विरूद्ध रही है। सम्मेलन के आमंत्रण से भय है कि एक बार सम्मेलन होने पर वह मनमाने तरीके से प्रस्ताव पारित करता चला जायगा, यहाँ तक कि संविधान का एकदम नया रूप हो जायगा। अनुसमर्थन के सम्बन्ध में विधायिका सभाओं से सम्मेलन का उपयोग किया जाय–इसका निश्चय काँग्रेस ही करेगी। प्रथम प्रणाली कम खर्चीली है, यद्यपि सम्मेलन से तुरंत तथा अधिक प्रतिनिधि–मूलक परिणाम मिलेगा। काँग्रेस अनुसमर्थन का समय निर्धारित कर सकती है, जैसे अठारहवें, बीसवें, तथा इक्कीसवें संशोधन के लिए सात वर्ष का समय निश्चित किया गया था। बहुत से संशोधनों के तो अभी तक अनुसमर्थन ही नहीं हो सके, अनेक का अनुसमर्थन कई वर्षों के बाद पूरा हुआ और अनेक संशोधन जिन्हें अनुसमर्थन के लिए पच्चीसों वर्ष पूर्व प्रस्तावित किया गया था अभी तक जीवित है। अन्त में एक अन्य उल्लेखनीय बात यह है कि संशोधन का प्रस्ताव एक विधेयक नहीं है। अत: उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति (Attent) की आवश्यकता नहीं तथा न उस पर निषेधाधिकार (Veto) का ही वह प्रयोग कर सकता है।

आलोचनाएँ (Criticisms) (i) **अत्यधिक धीमी तथा कठिन :** अमेरिका में संशोधन की प्रक्रिया की कई विद्वानों ने कड़ी आलोचना की है। चीफ जस्टिस मार्शल ने इसे 'स्थूल और कष्टकारण' (Unwieldy and Cumbrous) कहा है। मुख्यत: चार रूप में इसके विपक्ष में तर्क दिये जाते हैं। पहली आलोचना यह है कि संशोधन की यह धीमी और कठिन (Slow and difficult) प्रक्रिया है। इसकी कठिनता का प्रमुख कारण 2/3 काँग्रेस सदस्यों की प्रस्थापना और 2/4 राज्यों द्वारा अनुसमर्थन की आवश्यकता है। इसी कारण प्रत्येक संशोधन में वर्षों लग जाते हैं और अनेक संशोधन तो आवश्यक सदस्यों का अनुसमर्थन न मिलने के कारण अभी तक पड़े हुए हैं। इस शताब्दी के प्रारम्भ में तो लोगों को यह विश्वास हो गया कि अब आगे संशोधन हो नहीं सकते हैं, लेकिन सात वर्षों (1913–20) के अन्दर चार और एक ही वर्ष (1932) में तो कई महत्त्वपूर्ण संशोधनों ने इस विश्वास को गलत साबित कर दिया। अत: संशोधन–सम्बन्धी इस आलोचना की अधिक खींचातानी ठीक नहीं है।

(ii) **अत्यधिक सरल :** कुछ आलोचकों का यह कहना है कि संशोधन की यह प्रक्रिया बहुत सरल (Too Easy) है और इसी प्रसंग में **हैमिल्टन** ने 'फेडेरलिस्ट' में लिखा था कि संशोधन की सरलता का परिणाम होगा, संवैधानिक अस्थिरता। 18वें संशोधन को जितनी तेजी से राज्य की विधायिका सभाओं ने अनुसमर्थित किया, इस आलोचना में लोगों का विश्वास और दृढ़ हो गया। लेकिन इस धारणा को भारी धक्का तब लगा जबकि उसी सरलता से विधायिका सभाओं ने 18वें संशोधन को रद्द कर दिया। धीरे–धीरे यह शिकायत समाप्त हो गयी क्योंकि अधिकतर संशोधनों को अनुसमर्थन नहीं मिल पाया। आज तो यह आलोचना सुनने में भी नहीं आती।

(iii) **पूर्ण प्रजातांत्रिक नहीं :**– तीसरी आलोचना यह है कि यह प्रक्रिया पर्याप्त प्रजातांत्रिक नहीं (Non & Sufficiently Democractic) है, क्योंकि प्रस्थापना या अनुसमर्थन में जनता को प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने का अवसर नहीं मिलता है। **सिनेटर लाफोलेट** (Lafollete) ने इस आलोचना को दूर करने के लिए योजना दी। 21वें संशोधन को इसी उद्देश्य से चुने गये सम्मेलन द्वारा अनुसमर्थित करा कर जनता को करीब–करीब प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने का अवसर दिया गया लेकिन विधि को अधिक प्रोत्साहन नहीं मिला है फिर भी इस आलोचना के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि देश की विशालता की प्रत्यक्ष रीति से प्रतिनिधिमूलक रीति ही सुविधाजनक तथा अल्पव्यापी हैं

नोट

(iv) **अल्पसंख्यकों द्वारा नियन्त्रण :** अन्तिम आलोचना इस सम्बन्ध में यह की जाती है कि संशोधन पर अल्पसंख्यकों का नियन्त्रण रहता है। इसकी व्याख्या दो तरह से की जाती है–(i) 37 राज्य जिनकी जनसंख्या शेष 13 राज्यों से बहुत कम हो सकती है, संशोधन ला सकते हैं। यदि 37 कम आबादीवाले राष्ट्र संगठित हो जायँ तो 13 बहुसंख्यक राष्ट्र उनके समक्ष असमर्थ हो जायेंगे, लेनिक व्यवहार में ऐसा मौका विरले ही आ सकता है। इसके विपरीत यदि 13 कम आबादीवाले राज्य संगठित हो जायँ तो शेष अधिक आबादीवाले राज्य संशोधन नहीं ला सकते हैं।

स्विट्जरलैंड में संवैधानिक संशोधन (Constitutional Amendment in Switzerland)

संवैधानिक विकास के लिए अनेक पद्धतियों पर निर्भर किया जाता है; जैसे-प्रथाएँ, रीति-रिवाज, प्रशासकीय अध्यादेश, न्यायालयों के निर्णय और वैज्ञानिक औद्योगिक अनुसंधान आदि। इन पद्धतियों से भी स्पष्ट व प्रत्यक्ष पद्धति संवैधानिक संशोधन हैं इसकी जटिलता तथा संविधान की प्रतिष्ठा का ख्याल रखते हुए इस पद्धति का कम प्रयोग होता है। पर स्विट्जरलैंड में अन्य विधियों के विपरीत संवैधानिक परिवर्त्तन लाने के लिए संवैधानिक संशोधन की पद्धति पर ही अधिक निर्भर किया गया है। स्विट्जरलैंड में केवल 77 वर्षों में (1874-1975 ई॰) 50 संशोधन किये गये, जबकि अमेरिका में 170 वर्षों में (1789 ई॰ से आज तक) केवल 26 संशोधन किये गये।

स्विस संविधान में संशोधन की जो प्रक्रिया निर्धारित की गयी है उसके दो प्रकार है–

संशोधन पद्धतियाँ (1) संवैधानिक जनमत-संग्रह (constitutional Referendum)

(2) संवैधानिक आरम्भण (Constitutional Initiative)।

इन दोनों पद्धतियों द्वारा संविधान के आंशिक या पूर्ण संशोधन (partial or Total Revision) हो सकते है।

(1) संवैधानिक जनमत-संग्रह (constitutional Referendum) :- इसकी दो शर्तें हैं।

(क) जब दोनों सदन सहमत हों : संविधान में संशोधन के लिए यह आवश्यक है कि संघीय विधानमंडल के दोनों सदन-राज्य सभा और राष्ट्रीय परिषद्-संयुक्त रूप में संविधान में पूर्ण अथवा आंशिक संशोधन का निश्चय करें और तदनुरूप संशोधन का प्रस्ताव करें। तत्पपश्चात् उस संशोधन का सर्वसाधारण और कैंटनों के जनमत-संग्रह (Referendum) के लिए प्रस्तुत किया जाता है। यदि सर्वसाधारण और कैंटन उसे बहुमत से स्वीकार कर ले तो संशोधन स्वीकृत समझा जाता है। इस प्रसंग में कैंटन का एक और अर्द्ध कैंटन का आधा मत माना जाएगा।

(ख) जब एक सदन सहमत हो और दूसरा विरोध करे :- लेकिन, यदि संघीय विधानमंडल का एक ही सदन प्रस्तावित संशोधन के लिए सहमत हो और दूसरा सदन उक्त संशोधन का विरोध करता हो, तो–

(i) सर्वप्रथम सर्वसाधारण जनमत संग्रह द्वारा यह निर्णय किया जायगा कि संशोधन की आवश्यकता है या नहीं।

(ii) सर्वसाधारण की स्वीकृति मिल जाने पर संघीय विधान मंडल का पुनर्निवाचन होता है।

(iii) तत्पश्चात् विधानमंडल के निर्वाचित सदन प्रस्तावित संशोधन पर विचार करते हैं।

(iv) यदि दोनों उक्त संशोधन को स्वीकार कर लेते हैं, जो प्रस्तावित संशोधन सर्वसाधारण और कैंटनों के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

(v) यदि सर्वसाधारण और कैंटन दोनों बहुमत से संविधान को स्वीकृत कर लेते हैं तो उक्त संशोधन क्रियाकारी हो जाता है।

(2) संवैधानिक आरम्भण (Constitutional Initiative) :- संविधान का पूर्ण अथवा आंशिक संशोधन (complete or partial revision) सर्वसाधारण के लिए कम-से-कम 50,000 स्विस नागरिकों द्वारा आवेदन-पत्र आवश्यक हैं इस सम्बन्ध में भी दो प्रक्रियाएँ है-

(क) यदि आवेदन-पत्र पूर्ण संशोधन (Complete Revision) के लिए हो तो उसी प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है जिस प्रक्रिया का संघीय विधानमंडल के एक सदन संशोधन प्रस्ताव के पास करने और दूसरे के द्वारा विरोध करने की स्थिति में होता है।

नोट

(ख) आंशिक संशोधन (Partial Revision) के लिए दो रूप में माँग की जा सकती है–

(1) साधारण शब्दों में या

(2) सूत्र रूप में

यदि आवेदन-पत्र साधारण शब्दों में हो तो -

(i) संघीय विधानमंडल की स्वीकृति के बाद उसका विधेयक तैयार होता है। उस विधेयक पर सर्वसाधारण तथा कैंटन की स्वीकृति (Ratification) ली जाती है। स्वीकृति मिलने पर संशोधन क्रिया द्वारा होता है।

(ii) यदि संघीय विधान मंडल संशोधन–प्रस्ताव के विरोध में हो तो उस पर सर्वसाधाण का निर्णय लिया जाता है। यहाँ कैंटनों की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है। यदि संशोधन–प्रस्ताव को मतदाताओं की स्वीकृति मिल जाती है तो संघीय विधानमंडल प्रस्ताव के अनुरूप विधेयक तैयार करता है। तब उस विधेयक का कैंटनों तथा सर्वसाधारण के जनमत–संग्रह के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

यदि संशोधन-प्रस्ताव विधेयक या सूत्र में हो तो-

(i) संघीय विधानमंडल के पक्ष में होने की स्थिति में विधेयक को सर्वसाधारण तथा कैंटन के जनमत–संग्रह के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

(ii) संघीय विधानमंडल के पक्ष में होने की स्थिति में विधानमंडल जनमत संग्रह के लिए निम्नलिखित सिफारिशें करता है–

(क) प्रस्तावित संशोधन अस्वीकृत कर दिया जाय, अथवा

(ख) संघीय विधानमंडल उक्त संशोधन के स्थान पर अपना निजी प्रस्ताव तैयार करके प्रारम्भिक संशोधन प्रस्ताव के साथ सर्वसाधारण और कैंटन के निर्णय के लिए भेज सकता है।

6.3 यू.एस.ए. और स्विट्जरलैण्ड की संघीय व्यवस्था (Federal System of U.S.A. and Switzerland)

अमरीकी संघीय व्यवस्था (American Federal System): संयुक्त राज्य अमरीका के विधानमंडल को 'कांग्रेस' कहा जाता है। अमरीका में संघीय शासन प्रणाली (Federal Government) प्रचलित है। वहां की संघीय सरकार पूरे राष्ट्र से संबंधित मामलों का शासन चलाती है– पचास राज्यों की सरकारें अपने–अपने राज्य से संबंधित मामलों का शासन चलाती हैं। संघीय प्रणाली की आवश्यकता के अनुरूप वहां संघ के विधानमंडल–अर्थात् कांग्रेस में दो सदन रखे गए हैं: (1) प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) संपूर्ण राष्ट्र के जनसाधारण का प्रतिनिधित्व करती है और (2) सीनेट (Senate) पृथक्–पृथक् राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है। प्रतिनिधि सभा को निम्न सदन या अवर सदन (Lower House) कहा जाता है सीनेट को उच्च सदन, उपरला सदन (Upper HOuse) या दूसरा सदन (Second Chamber) कहा जाता है। प्रतिनिधि सभा के सदस्य को कांग्रेस–सदस्य (Congresssman) कहा जाता है सीनेट के सदस्य को सीनेट सदस्य या सीनेटर (Senator) कहा जाता है।

प्रतिनिधि सभा (House of Representatives): इसमें 435 सदस्य होते हैं जो कि पूरे देश की जनता के द्वारा चुने जाते हैं। इनका निर्वाचनक्षेत्र (Constituencies) जनसंख्या के आधार पर बनाए जाते हैं। अत: इस सदन में किसी राज्य से आने वाले प्रतिनिधियों की संख्या वहां की जनसंख्या पर निर्भर है।

प्रतिनिधि सभा के सदस्य दो वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इस अवधि को किसी भी तरह बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता। प्रचलित प्रथा (Convention) के अनुसार प्रतिनिधि सभा का सदस्य उसी निर्वाचनक्षेत्र से संबद्ध होना चाहिए जहां से वह चुनाव लड़ता है। इससे राष्ट्रीय प्रतिभाओं का यथोचित उपयोग तो नहीं हो पाता, परंतु लोकतंत्र की भावना (Democratic Spirit) को अवश्य बल मिलता है।

नोट

प्रतिनिधि सभा के सदस्यों को कुछ विशेषाधिकार (Privileges) प्राप्त हैं। उनहें सदन में बोलने की पूर्ण स्वतंत्रता है। वहां की गई किसी भी बात के लिए उन पर कोई कानूनी कार्रवाई नहीं की जा सकती। अधिवेशन के दौरान उन्हे दीवानी मामलों (Civil Suits) में बंदी नहीं बनाया जा सकता।

प्रतिनिधि सभा अपने अध्यक्ष या सभाध्यक्ष (Speaker) का चुनाव स्वंय करती है। उसे दलगत आधार पर चुना जाता है, और सभाध्यक्ष बन जाने पर वह अपने दल का सदस्य बना रहता है।

सीनेट (Senate): संयुक्त राज्य अमरीका के प्रत्येक राज्य को सीनेट में अपने दो-दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है, चाहे भौगोलिक या जनसंख्या की दृष्टि से कोई राज्य कितना भी छोटा या बड़ा क्यों न हो ! चूंकि वहां राज्यों की वर्तमान संख्या 50 है, इसलिए सीनेट में 100 सदस्य होते हैं। शुरू-शुरू में राज्यों के विधानमंडल अपने-अपने राज्य का प्रतिनिधित्व करने के लिए सीनेट-सदस्यों का चुनाव करते थे। परंतु 1913 से राज्यों की जनता इनका प्रत्यक्ष चुनाव करती है।

प्रत्येक सीनेट-सदस्य छह वर्ष के लिए चुना जाता है। दो-दो वर्ष बाद सीनेट के एक-तिहाई सदस्य सेवा-निवृत्त हो जाते हैं। इस तरह पूरी सीनेट कभी भंग नहीं होती। यह एक स्थायी सदन बनी रहती है।

संयुक्त राज्य अमरीका का उपराष्ट्रपति (Vice President) **सीनेट का सभापति** (Chairman) होता है। अमरीका के राष्ट्रपति की तरह उपराष्ट्रपति का चुनाव भी जनसाधारण के द्वारा-निर्वाचक-गुण के माध्यम से, चार वर्ष की नियत अवधि के लिए होता है। सीनेट में उपराष्ट्रपति निष्पक्ष रूप से कार्य करता है। वह मतदान (Voting) में केवल तभी हिस्सा लेता है। जब किसी मामले के पक्ष और विपक्ष में बराबर मत हो जाने के कारण फैसला न हो पा रहा हो। ऐसे हाल में वह अपने निर्णायक मत (Casting Vote) का प्रयोग करता है।

कांग्रेस की शक्तियां और कृत्य (Powers and Functions of the Congress): विधि-निर्माण और संविधान-संशोधन (Legislation and Constitutional Amendment) अमरीका में संघीय प्रणाली और लिखित संविधान अपनाया गया है। इसके अंतर्गत विधि-निर्माण के विषयों की दो सूचियां (Lists) बनाई गई हैं: संघीय विषय (Federal Subject) और राज्य विषय (State Subjects) जो विषय इनमें से किसी सूची के विचारक्षेत्र में नहीं आते, उन्हें अवशिष्ट विषय (Residual Subjects) कहा जाता है। इन विषयों पर कानून बनाने की शक्तियां राज्यों के पास रहती हैं। इस दृष्टि से अमरीकी संघ-व्यवस्था भारतीय संघ व्यवस्था से भिन्न है, क्यांकि भारत में अवशिष्ट विषय संघ सरकार के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं। दूसरे, भारत में एक समवर्ती सूची (Concurrent List) की व्यवस्था भी की गई है, परंतु अमरीका में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गई है। अमरीकी कांग्रेस को केवल संघीय विषयों पर कानून बनाने का पूरा अधिकार है।

निहित शक्तियों के सिद्धांत (Doctrine of Implied Powers) के अंतर्गत कांग्रेस तथा राष्ट्रपति ने कई ऐसी शक्तियां प्राप्त कर ली हैं जो स्वयं संविधान के अंतर्गत उन्हें व्यक्तिगत रूप से नहीं सौंपी गई थी। उदाहरण के लिए संविधान अंतर्गत कांग्रेस को मुद्रा छापने, कर लगाने, ऋण लेने और खर्च करने का अधिकार दिया गया है। इसके आधार पर उसे एक 'निहित शक्ति' के रूप में 'राष्ट्रीय बैंक' (National bank) की स्थापना का अधिकार मिल गया है। संयुक्त राज्य अमरीका का सर्वोच्च न्यायालय शासन के विभिन्न अंगों की 'निहित शक्तियों' को मान्यता देता है। और वही इनकी सीमाएं भी निर्धारित करता है।

वित्त विधेयक (Finance Bill) केवल प्रतिनिधि सभा से ही शुरू किए जा सकते हैं। परंतु उनके लिए सीनेट का अनुमोदन जरूरी होता है। इस दृष्टि से, विधानमंडल के दूसरे सदन के रूप में सीनेट की शक्ति बेजोड़ है। यही कारण है कि **अमरीकी सीनेट को विश्व का सबसे शक्तिशाली दूसरा सदन** (Most Powerful Second Chamber of the World) कहा जाता है।

अन्य विधेयक किसी भी सदन से आरंभ किए जा सकते हैं। कोई भी विधेयक दोनों सदनों में पारित होने के बाद **राष्ट्रपति की समानुमति** (Presidential Assent) के लिए भेजा जाता है। साधारणत: राष्ट्रपति उस पर हस्ताक्षर करके दस कार्य-दिवसों के भीतर लौटा देता है। यह समानुमति मिल जाने के बाद वह कानून बन जाता है।

नोट

यदि राष्ट्रपति अपने **निषेधाधिकार** (Veto) का प्रयोग करके किसी विधेयक को अपनी आपत्तियों के साथ सदन के पास वापस भेज दे तो कांग्रेस के दोनों सदन दो-तिहाई बहुमत से उसे दुबारा पारित करके इस निषेधाधिकार को निष्फल कर सकते हैं।

कांग्रेस को संविधान के संशोधन का पूर्ण अधिकार है इसके लिए प्रत्येक सदन का दो-तिहाई बहुमत अपेक्षित है। परंतु कांग्रेस में पारित होने के बाद इसके लिए कम से कम तीन-चौथाई राज्यों के विधानमंडलों का अनुसमर्थन (Ratification) जरूरी है।

सर्वोच्च न्यायालय साधारणत: कानून को शक्ति बाह्य (Ultra Vires) ठहराकर निरस्त कर सकता है, अर्थात् वह यह निर्णय दे सकता है कि ऐसा कानून बनाना कांग्रेस की शक्ति के बाहर था। परंतु संवैधानिक संशोधन के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ऐसा निर्णय नहीं देता।

प्रशासनिक शक्तियां (Administrative Powers): अमरीकी कांग्रेस विभिन्न प्रशासनिक विभागों के बारे में विवरण (Reports) मँगा सकती है। यह अपनी जांच समितियां (Inquiry Committees) नियुक्त करके प्रशासनिक विभागों की आलोचना कर सकती है।

इसके अलावा, राष्ट्रपति उच्च पदों के लिए (जैसे कि मंत्रियों, राजदूतों, न्यायाधीशों, महान्यायवादियों के पद पर) जो नियुक्तियां करता है, या विदेशों के साथ जो संधियां करता है, उनके लिए सीनेट का अनुसमर्थन (Ratification) जरूरी होता है। एक प्रथा (Convention) के अनुसार, यदि राष्ट्रपति को ऐसे राज्य में कोई नियुक्ति करनी हो जहां का सीनेट-सदस्य राष्ट्रपति के अपने राजनीतिक दल से हो तो राष्ट्रपति ऐसी नियुक्ति करने से पहले उस सीनेट-सदस्य से परामर्श कर लेता है यदि वह सदस्य प्रस्तावित नियुक्ति का अनुमोदन कर देता है तो सीनेट भी उस नियुक्ति की पुष्टि नहीं करेगी। इस प्रथा को सीनेट-सौजन्य (Senatorial Courtesy) की संज्ञा दी जाती है।

न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers): यदि देशद्रोह, भ्रष्टाचार या संविधान के उल्लंघन, इत्यादि का आरोप लगाकर राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, न्यायाधीशों या प्रशासनिक उच्चाधिकारियों पर महाभियोग (Impeachment) चलाना हो तो इसके लिए प्रतिनिधि सभा महाभियोग की धाराएं (Articles of Impeachment) तैयार करती है, और सीनेट में मुकदमा चलाया जाता है। प्रतिनिधि सभा में महाभियोग की धाराओं को साधारण बहुमत (Simple Majority) से पारित किया जाता है। दोष-सिद्धि के लिए महाभियोग की प्रत्येक धारा पर सीनेट में उपस्थित तथा मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत (Two-Third Majority) आवश्यक होगा। दोष सिद्ध हो जाने पर अभियुक्त को पद से हटा दिया जाता है।

निर्वाचकीय शक्तियां (Electoral Powers): चार-चार साल बाद जब राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का चुनाव होता है तो इस चुनाव में डाले गए वोटों की गिनती के लिए कांग्रेस के दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन (Joint Session) होता है। यदि राष्ट्रपति-पद के लिए किसी उम्मीदवार को पूर्ण बहुमत (Absolute Majority) नहीं मिल पाता तो जिन तीन उम्मीदवारों को सबसे अधिक वोट मिले हों, उनमें से एक को प्रतिनिधि सभा राष्ट्रपति-पद के लिए चुन लेती है। यदि उपराष्ट्रपति-पद के लिए किसी उम्मीदवार को पूर्ण बहुमत नहीं मिल पाता तो जिन दो उम्मीदवारों को सबसे अधिक वोट मिले हों, उनमें से एक को सीनेट उपराष्ट्रपति-पद के लिए चुन लेती है।

समिति प्रणाली (The Committee System): अमरीकी कांग्रेस के अंतर्गत विधि-निर्माण का वास्तविक कार्य अनेक समितियों और उपसमितियों (Sub-Committees) की सहायता से संपन्न किया जाता है। कांग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन में हजारों विधेयक प्रस्तुत किए जाते हैं। कोई भी सदस्य इन विधेयकों से जुड़े हुए सारे मुद्दों का जानकार नहीं हो सकता। देखा जाए तो विधि-निर्माण का सारा कार्य विशेषज्ञता (Specialization) की मांग करता है। समिति प्रणाली का ध्येय ऐसे प्रत्येक कार्य को उपयुक्त विशेषज्ञों को सौंपना है। फिर, समिति के सदस्य एक समय किसी एक विषय पर- जैसे कि कराधान (Taxation) या ऊर्जा (Energy) जैसे विषय पर-अपना ध्यान केंद्रित कर सकते हैं ताकि उसके लिए उपयुक्त विधेयक का प्रारूप तैयार किया जा सके।

कांग्रेस की समिति को आम तौर पर 'लघु विधान-मंडल' (Little Legislature) **की संज्ञा दी जाती है।** किसी भी विधेयक को अंतिम रूप देने का अधिकार ऐसी समितियों के हाथ में रहता है। सिद्धांतत: किसी समिति के प्रस्ताव

नोट

को प्रतिनिधि सभा या सीनेट में अस्वीकार किया जा सकता है, परंतु व्यावहारत: ऐसा बहुत कम हो पाता है। जब समिति का अध्यक्ष या अन्य कोई सदस्य समिति के विचार या निर्णय के बारे में सदन के पटल पर बोलता है, तब साधारणत: विधायक उसकी विशेषज्ञता का आदर करते हैं, और उसकी बात बड़े ध्यान से सुनते हैं। यदि कोई स्थायी समिति किसी विधेयक पर अपना प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत करने में बहुत देर कर दे, अर्थात् तीस दिन से ज्यादा लगा दे तो प्रतिनिधि सभा के बहुमत (अर्थात् 218 सदस्यों) के हस्ताक्षर इसे इस विधेयक को उस समिति के विचारक्षेत्र से वापस लेने की कार्रवाई की जा सकती है, परंतु ऐसे अवसर बहुत ही कम आते हैं।

पिछली दो शताब्दियों के दौरान कांग्रेस में कई तरह की समितियाँ बनाई गई हैं। **मुख्य प्रकार की समितियों** का विवरण:

स्थायी समिति (Standing Committee): कांग्रेस का प्रत्येक सदन अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार, अपने-अपने नियमों के अंतर्गत, स्थायी महत्त्व के विषयों पर स्थायी समितियां बना सकता है। ऐसी समितियां सदन के पूरे कार्यकाल तक चलती हैं। इनके उदाहरण हैं: विनियोजन समिति (Appropriation Commmittee), बजट समिति (Budget Committte), अर्थोपाय समिति (Ways and Means Committee), इत्यादि।

प्रवर समिति (Select Committe): यह समिति साधारणत: किसी विशिष्ट विधायी उद्देश्य (Specific Legislative Purpose) की पूर्ति के लिए बनाई जाती है, जैसे कि किसी सार्वजनिक समस्या के अध्ययन और विश्लेषण के लिए। इसे निश्चित समय तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करना होता है। इसके बाद यह भंग कर दी जाती है।

संयुक्त समिति (Joint Committee): इसका गठन तब होता है जब इसके लिए दोनों सदन एक-जैसा निर्णय करते हैं। इसमें दोनों सदनों के सदस्य रखे जाते हैं। ऐसी समिति स्थायी या अस्थायी दोनों तरह की हो सकती है। उदाहरण के लिए, अर्थ-व्यवस्था, कराधान, कांग्रेस पुस्तकालय, छपाई (Printing) की व्यवस्था, इत्यादि के लिए ऐसी समिति बनाई जा सकती है।

सम्मेलन समिति (Conference Committee): यह ऐसी संयुक्त समिति है जो किसी विषय पर दोनों सदनों के निर्णय में एकरूपता लाने के लिए बनाई जाती है। उदाहरण के लिए कोई भी विधेयक राष्ट्रपति की समानुमति के लिए भेजने से पहले दोनों सदनों के द्वारा एक ही रूप में पारित होना चाहिए। यदि दोनों सदनों के द्वारा एक ही रूप में पारित होना चाहिए। यदि दोनों सदन एक ही विधेयक पारित करना चाहते हों, परंतु उनकी अभिव्यक्ति में कोई अंतर हो तो इस अंतर को दूर करने के लिए या उनके मतभेद को सुलझाने के लिए इस समिति का सहारा लिया जाता है। यही कारण है कि कभी-कभी सम्मेलन समिति को अमरीकी कांग्रेस का तीसरा सदन (Third House) कहा जाता है।

सदन नियमावली समिति (House Rule Committe): प्रतिनिधि सभा की यह समिति यह निर्णय करती है कि किसी विधेयक को सदन में किस रूप में रखा जाए? यह प्रतिनिधि सभा में किसी विधेयक पर होने वाले वाद-विवाद की समय-सीमा भी निर्धारित कर सकती है।

राष्ट्रपति और कांग्रेस–परस्पर संबंध (Relation Between the President and The Congress): संयुक्त राज्य अमरीका का राष्ट्रपति शासन के कार्यकारी अंग (Executive Organ) का अध्यक्ष है; कांग्रेस वहां का सर्वोच्च विधायी अंग (Supreme Lesgislative Organ) है। **शक्ति-पार्थक्य** (separation of Powers) के सिद्धांत के अंतर्गत इन दोनों अंगों की शक्तियां और कृत्य इस ढंग से निर्धारित किए गए हैं कि वे अपने-अपने क्षेत्र में एक-दूसरे से स्वाधीन हो; शासन का कोई भी अंग अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय किसी दूसरे अंग पर आश्रित न हो। उदाहरण के लिए, वहां राष्ट्रपति का कार्यकाल चार वर्ष का है; कांग्रेस की प्रतिनिधि सभा का कार्यकाल दो वर्ष का है। इस नियम अवधि से पहले न तो राष्ट्रपति कांग्रेस को भंग कर सकता है; न कांग्रेस ही राजनीति समर्थन (Political Support) की कमी के कारण राष्ट्रपति को है।

दूसरी ओर, अवरोध एवं संतुलन (Checks and Balances) के सिद्धांत के अंतर्गत यह व्यवस्था की गई है कि शासन के विभिन्न अंग एक-दूसरे पर अंकुश रख सकें ताकि **शक्ति के जमाव** (concentration of Power) को रोका जा सके, और शासन का कोई अंग निरंकुश न हो जाए। राष्ट्रपति और कांग्रेस का परस्पर संबंध इस सिद्धांत का उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसके मुख्य-मुख्य मुद्दों का विवरण इस तरह कर सकते हैं :

राष्ट्रपति संदेश (Presidential Message): राष्ट्रपति प्रति वर्ष कांग्रेस को अपना संदेश देता है। इसके अंतर्गत वह

नोट

व्यवहारत: कांग्रेस के चालू अधिवेशन (Current Session) के लिए पूर्ण कार्यसूची (full Agenda) प्रस्तुत कर देता है। इसमें वह यह व्यक्त कर देता है कि वर्तमान अधिवेशन के दौरान वह विधानमंडल से क्या-क्या करने की आशा और अपेक्षा करता है? राष्ट्रपति के इस कृत्य को ध्यान में रखते हुए उसे संयुक्त राज्य अमरीका का मुख्य विधायक (Chief Legislator) कहा जाता है। राष्ट्रपति के संदेश को सारे अमरीका में टेलीविजन पर देखा जाता है; उसे बहुत महत्त्व दिया जाता है; यह सारी अमरीकी जनता और पूरे विश्व के नाम होता है। लोकमत पर उसका जो प्रभाव पड़ता है, उसे ध्यान में रखकर ही कांग्रेस राष्ट्रपति के प्रस्तावों पर उपयुक्त कार्रवाई करती है। अधिवेशन के दौरान भी यदि राष्ट्रपति यह अनुभव करता है कि कांग्रेस का दृष्टिकोण उसके प्रस्तावों के प्रति अनुकूल नहीं है तो वह फिर, जितनी बार चाहे, राष्ट्र के नाम संदेश जारी कर सकता है।

परंतु कोई राष्ट्रपति अपने प्रस्तावों को कांग्रेस के माध्यम से कहां तक कार्यान्वित करा पाएगा– यह उसके अपने व्यक्तित्व, कांग्रेस में उसके दल के बहुमत और लोकमत के समर्थन पर निर्भर है। आम तौर पर राष्ट्रपति के प्रस्तावों में से आधे से ज्यादा कार्यान्वित नहीं हो पाते। उसके बजट-प्रस्तावों में भी कांग्रेस कई तरह के परिवर्तन या कटौती कर देती है।

राष्ट्रपति की समानुमति और निषेधाधिकार (Presidential Assent and Veto): कोई भी विधेयक कांग्रेस के दोनों सदनों में पारित होने के बाद राष्ट्रपति के पास 'समानुपति' के लिए भेजा जाता हैं यदि राष्ट्रपति उस विधेयक के प्रस्तुतीकरण (Submission) के दिन से कांग्रेस के दस कार्य-दिवस (Working Days) बीत जाने पर भी उस पर कोई आपत्ति नहीं करता तो उसे राष्ट्रपति की 'मौन सम्मति' मान लिया जाता है; अत: वह विधेयक कानून बन जाता है। परंतु यदि राष्ट्रपति इस अवधि से पहले उस विधेयक पर अपनी आपत्तियां व्यक्त करके उसे कांग्रेस के पास वापस भेज देता है तो कांग्रेस के पास दो विकल्प रह जाते हैं : (क) वह राष्ट्रपति के सुझावों के अनुसार विधेयक में संशोधन कर दे, और उसे नए रूप में दुबारा पारित करके राष्ट्रपति के पास भेज दे ताकि राष्ट्रपति उसका अनुमोदन कर दे; या फिर (ख) कांग्रेस के दोनों सदन उस विधेयक का मूल रूप में दो-तिहाई बहुमत से दोबारा पारित कर दें जिससे राष्ट्रपति का निषेधाधिकार निरस्त हो जाएगा। परंतु इतना बहुमत जुटाना सरल नहीं होता। इसका अर्थ यह हुआ कि राष्ट्रपति किसी विधेयक को कुछ समय के लिए निलंबित (Suspend) कर सकता है। राष्ट्रपति के इस अधिकार को निलबंन-निषेधाधिकार (Suspensory Veto) कहा जाता है।

यदि राष्ट्रपति ऐसे किसी विधेयक पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दे, और इस कार्य-दिवस पूरे होने से पहले कांग्रेस स्थगित (Adjourn) हो जाए तो वह विधेयक अपनी मौत मर जाता है। राष्ट्रपति के इस अधिकार को 'जेब में डालने का निषेधाधिकार' या 'अवरोधन-निषेधाधिकार' (Pocket Veto) कहा जाता है। यदि कांग्रेस उस विधेयक पर पुनर्विचार चाहती हो तो उसे नए अधिवेशन में नए सिरे से पारित करके राष्ट्रपति के पास भेजना पड़ेगा।

कार्यकारी आदेश (Executive Order) कांग्रेस राष्ट्रपति और उसके प्रशासनिक विभागों (Executive Agencies) को कार्यकारी आदेश निकालने की अनुमति देती है। ये आदेश कानून की तरह मान्य और प्रभावशाली होते हैं। ये आदेश मुख्यत: तीन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जारी किए जाते हैं : (क) संविधान या किसी विशेष कानून की व्यवस्थाओं को व्यावहारिक रूप देने के लिए (ख) विदेशों के साथ की गई संधियों को लागू करने के लिए; और (ग) नए प्रशासनिक विभाग स्थापित करने के लिए या इन विभागों के कार्य में कोई परिवर्तन करने के लिए। उदाहरण के लिए, स्त्रियों और अश्वेतों के लिए सकारात्मक कार्रवाई (Affirmative Action) की व्यवस्था के कार्यान्वयन, राष्ट्रपति कार्यालय के पुनर्गठन, आपात स्थिति (Emergency) के दौरान उपभोक्ता वस्तुओं की राशन-व्यवस्था (Rationing) तथा कीमतों और मजदूरी की दरों के नियंत्रण, इत्यादि के मामले में कार्यकारी आदेशों का विस्तृत प्रयोग किया जाता है।

सीनेट का अनुसमर्थन (Senatorial Ratification): राष्ट्रपति की शक्तियों को कांग्रेस के अंकुश में रखने के लिए एक व्यवस्था यह की गई है कि राष्ट्रपति उच्चाधिकारियों की जो नियुक्ति करेगा, या विदेशों के साथ जो संधियां करेगा, वे तभी मान्य होंगी जब सीनेट का साधारण बहुमत (Simple Majority) प्राप्त होता है। वैसे नियुक्तियों की प्रक्रिया को 'सीनेट-सौजन्य' (Sentorial courtesty) की प्रथा के अंतर्गत कुछ हद तक सरल बना दिया गया है। अंतर्राष्ट्रीय संधियों के अनुसमर्थन के लिए सीनेट में उपस्थिति और मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत जरूरी है।

नोट

सीनेट-सौजन्य अमरीकी संविधान की एक महत्त्वपूर्ण प्रथा (convention) है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि राष्ट्रपति को किसी राज्य-विशेष से जुड़े हुए संघीय पद (Federal Office) पर– जैसे कि जिला न्यायवादी (district Attorney) के पद पर नियुक्ति करनी हो, और उस राज्य का एक या दोनों सीनेट सदस्य (Senators) राष्ट्रपति के अपने राजनीतिक दल के हों तो राष्ट्रपति ऐसी नियुक्ति करने से पहले उस एक या दोनों सीनेट-सदस्यों से परामर्श कर लेता है। यदि वे प्रस्तावित नियुक्ति का अनुमोदन कर दें तो सीनेट उस नियुक्ति की पुष्टि कर देगी। इसके विपरीत, यदि उन्हें इस पर आपत्ति हो तो सीनेट भी उनकी पुष्टि नहीं करेगी।

कार्यकारी विभागों के निरीक्षण में कांग्रेस-समितियों की भूमिका (Role of the Congress Committe in the Inspection of Executive Agencies): कांग्रेस की विभिन्न समितियां वैसे तो विधि-निर्माण के कार्य में सहायता देने के लिए बनाई जाती हैं, परंतु अपने विचार क्षेत्र में आने वाले विषयों के अन्वेषण और विश्लेषण के लिए वे प्रशासनिक विभागों से कोई भी जानकारी (Informations) मांग सकती हैं, या विवरण (Reports) मँगा सकती है। प्रशासनिक विभाग इन समितियों की पूछताछ (Inquiries) को बहुत गंभीरतापूर्वक लेते हैं, और इन्हें उपयुक्त जानकारी देने के लिए सदैव तैयार रहते हैं। इस तरह इन समितियों के माध्यम से कांग्रेस ने प्रशासनिक विभागों के काम-काज के निरीक्षण की भूमिका संभाल ली है।

वित्तीय नियंत्रण (Financial Control): कांग्रेस किसी भी प्रशासनिक विभाग (Agencey) या कार्यक्रम (Programme) के लिए धन की स्वीकृति देने से पहले यह पता लगाती है कि उस विभाग या कार्यक्रम के लिए पिछली बार जो विनियोग (Appropriations) किए गए थे, उनका उपयोग (Utilization) किस-किस तरह किया गया है? इस तरह वह यह जांच कर लेती है कि प्रस्तावित विनियोग का उपयोग किस तरह किया जाएगा? इस प्रथा के कारण भी संयुक्त राज्य अमरीका में कार्यकारी शाखा (Executive Branch) पर कांग्रेस का नियंत्रण स्थापित हो गया है। इस प्रथा को वित्तीय नियंत्रण की संज्ञा दी जाती है।

क्या आप जानते हैं

विनियोग प्रशासनिक प्रक्रिया के अंतर्गत, वह धनराशि जो किसी विशेष उद्देश्य (Purpose) की पूर्ति या किसी विशेष परियोजना (Project) के कार्यान्वयन के लिए निर्धारित की जाती है।

राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने का अधिकार (Right to Impeachment of the President): अमरीका की अध्यक्षीय प्रणाली के अंतर्गत राष्ट्रपति अपने अस्तित्व के लिए विधानमंडल (अर्थात् कांग्रेस) के राजनीतिक समर्थन (Political Support) या विश्वास (confidence) पर आश्रित नहीं है। अत: सामान्य परिस्थितियों में कांग्रेस राष्ट्रपति को अपने पद से नहीं हटा सकती। परंतु यदि उस पर देशद्रोह, भारी भ्रष्टाचार, जघन्य अपराध या दुष्कर्म का आरोप हो तो उस पर महाभियोग चलाया जा सकता है। राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने का अधिकार केवल कांग्रेस को है। यह कार्रवाई प्रतिनिधि सभा में शुरू होनी चाहिए जहां महाभियोग की धाराएं (Articles of Impeachement) तैयार करके सीनेट के पास भेज देनी चाहिए ताकि उनके आधार पर सीनेट में मुकदमा चलाया जा सके। महाभियोग की किसी भी धारा को पारित करने के लिए प्रतिनिधि सभा का साधारण बहुत (Simple Majority) पर्याप्त है। महाभियोग के निर्णय के लिए सीनेट का दो-तिहाई बहुमत (Two-Third Majority) जरूरी होगा।

स्विट्ज़रलैंड की संघीय व्यवस्था (Federal system of switzerland)

स्विट्ज़रलैंड का समाज पुरूष-प्रधान समाज है। यहां 1971 तक स्त्रियों को संघीय चुनाव में वोट देने को अधिकार नहीं था। यहां 1984 में पहली बार मंत्रिमंडल में कोई स्त्री रखी गई । उसने 1988 में त्यागपत्र दे दिया, और वहां दूसरी स्त्री 1993 में रखी गई। 1999 में संघीय सभा (Federal Assembly) ने पहली स्त्री-अध्यक्ष का चुनाव किया। उसी वर्ष यूरोपीय संघ के साथ द्विपक्षीय व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। 1999 की एक परिपृच्छा के अंतर्गत ही कामगारों के लिए 'हड़ताल के अधिकार' (Right to Stirke) को मान्यता देने के उद्देश्य से संवैधानिक संशोधन किया

नोट

गया। स्विट्ज़रलैंड अनेक राजनीतिक प्रभागों (Political Divisons) में बँटा है जिन्हें 'कैंटन' (Conton) कहा जाता है। स्विस परिसंघ ऐसे 20 कैंटनों और 6 अर्ध-कैंटनों (Half-cantons) का संघ (Federation) है। स्विट्ज़रलैंड का संविधान 1874 से चला आ रहा है । दस संविधान के अंतर्गत संघीय सरकार (Federal Governmenet) को विशिष्ट शक्तियां प्रदान की गई हैं, और अवशिष्ट शक्तियां (Residual Powers) कैंटनों के पास रहने दी गई हैं। प्रत्येक कैंटन का अपना-अपना संविधान, अपनी-अपनी विधान सभा (Assembly) और अपनी-अपनी सरकार है। कैंटनों से निचले स्तर पर 3,000 से ज़्यादा 'कम्यून' (Communes) हैं। इनकी जनसंख्या 20 से लेकर 3,50,000 तक है। कम्यून-सभाओं और परिपृच्छा के माध्यम से वहाँ 'प्रत्यक्ष लोकतंत्र' (Direct Democracy) को बढ़ावा दिया जाता है।

स्विस संविधान के अंतर्गत, संघ के स्तर पर **संघीय सभा** (Federal Assembly) की व्यवस्था की गई जिसमें दो सदन हैं। निचले सदन को **राष्ट्रीय परिषद** (National Council) कहा जाता है; उपरले सदन को **राज्य-परिषद** या **राज्य सभा** (Council of States) कहा जाता है। राष्ट्रीय परिषद में 200 सदस्य होते हैं जो सार्वजनिक वयस्क मताधिकार (Universal Adult Suffrege) के आधार पर आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proport-ional Representation) के सिद्धांत के अनुसार दलीय सूची प्रणाली (Part List System) से चार वर्ष के लिए चुने जाते हैं। राज्य-परिषद में 46 सदस्य होते हैं। इनमें प्रत्येक कैंटन के दो-दो प्रतिनिधि और प्रत्येक अर्धकैंटन का एक-एक प्रतिनिधि होता है। राज्य-परिषद के सदस्य तीन या चार वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इनका कार्य-काल संबद्ध कैंटन के अपने संविधान से निर्धारित होता है।

स्विट्ज़रलैंड में संघीय सरकार की कार्यकारी शक्ति (Executive Power) **संघीय परिषद** (Federal Council) के हाथों में रहती है। इसमें सात सदस्य होते हैं जिन्हे कभी-कभी मंत्री (Ministers) कहा जाता है। ये सदस्य संघीय सभा (Federal Assembly) के द्वारा इसके दोनों सदनों (राष्ट्रीय परिषद और राज्य-परिषद) के संयुक्त अधिवेशन में चार वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इसका प्रत्येक सदस्य किसी एक संघीय विभाग (Federal Department) का अध्यक्ष होता है। संघीय परिषद इनमें से एक-एक सदस्य को एक-एक वर्ष के लिए अपना अध्यक्ष (President) और उपाध्यक्ष (Vicepresident) चुनती है। एक प्रथा (Convention) के अनुसार, संघीय परिषद के किसी सदस्य को लगातार दो बार अध्यक्ष नहीं चुना जा सकता। एक अन्य प्रथा के अनुसार, अध्यक्ष का कार्य-काल पूरा हो जाने पर पिछले उपाध्यक्ष को नया अध्यक्ष चुन लिया जाता है। फिर, एक अन्य प्रथा के अनुसार, जो व्यक्ति एक बार संघीय परिषद का सदस्य चुन लिया जाता है, वह जब तक चाहे, उसे इस पद के लिए फिर से चुन लिया जाता है। इस तरह इस परिषद के सब सदस्यों को बारी-बारी से उपाध्यक्ष और अध्यक्ष बनने का अवसर मिलता है। संघीय परिषद के अध्यक्ष को ही स्विस परिसंघ का अध्यक्ष या राष्ट्रपति (President) कहा जाता है।

अपने एक वर्ष के कार्य-काल में संघीय परिषद के अध्यक्ष को अपने छहों सहयोगियों के समकक्ष माना जाता है। उसे कुछ अतिरिक्त वेतन और भत्ते तो मिलते हैं, परंतु वह केवल सांकेतिक राज्याध्यक्ष (Nominal Head of State) की भूमिका निभाता है। उसकी कार्यकारी शक्तियाँ अपने सहयोगियों के समतुल्य होती है। यही कारण है कि स्विस कार्यपालिका को बहुल कार्यपालिका (Plural Executive) माना जाता है; यह इसकी विलक्षण विशेषता है।

प्रत्यक्ष लोकतंत्र की संस्थाएं (Institutions of Direct Democracy): स्विट्ज़रलैंड की राजनीतिक प्रणाली के अंतर्गत **'प्रत्यक्ष लोकतंत्र' के सिद्धांत का सबसे विस्तृत प्रयोग** देखने को मिलता है। मूलत: प्रत्यक्ष लोकतंत्र ऐसी व्यवस्था का संकेत देता है जिसमें किसी छोटे समुदाय के सारे नागरिक (Citizens) समय-समय पर स्वयं एकत्र होकर कानून बनाते हैं या सार्वजनिक निर्णय (Public Decisions) करते हैं। प्राचीन यूनान के कुछ नगर-राज्यों में यह प्रथा प्रचलित थी हालांकि वहां नागरिक का दर्जा इने-गिने लोगों को ही प्राप्त था। आधुनिक युग के बड़े-बड़े समुदायों में-जहां नागरिक का दर्जा भी राज्य के सब (वयस्क) सदस्यों के लिए सुलभ है-ऐसी प्रथा व्यावहारिक नहीं होगी। अत: लोकतंत्र के वर्तमान रूप के अंतर्गत किसी देश के नागरिक अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से ही अपने राजनीतिक अधिकारों (Political Rights) का प्रयोग करते हैं। इस व्यवस्था को 'प्रतिनिधि लोकतंत्र' (Representative Democracy) कहा जाता है। स्विट्ज़रलैंड में भी 'प्रतिनिधि लोकतंत्र' के माध्यम से शासन चलाया जाता है। परंतु वहां की राजनीतिक प्रक्रिया (Political Process) के अंतर्गत प्रतिनिधि लोकतंत्र में प्रत्यक्ष लोकतंत्र का पुट होने का विस्तृत प्रयत्न किया गया है। वैसे विश्व की अन्य लोकतंत्रीय प्रणालियों में (जैसे कि संयुक्त राज्य अमरीका के कुछ राज्यों, इटली और स्लोवाक

नोट

गणराज्य में) भी ऐसे प्रयत्न हुए हैं, परंतु स्विट्ज़रलैड की जनसंख्या अनेक संजातीय (Ethnic) और धार्मिक (Religious) समूहों में बँटी है। वहां मुख्यत: अल्पाइन और नार्डिक जातियों के लोग रहते हैं। इनमें मोटे तौर पर 70% लोग जर्मन भाषा बोलते हैं; 20% फ्रैंच बोलते हैं; और 10% इटैलियन बोलते हैं। करीब 47% लोग रोमन कैथोलिक धर्म को मानते हैं; करीब 44% प्रोटेस्टेंट हैं; शेष अन्य धर्मों में आस्था रखते हैं। इस तरह के समूहों में भिन्न-भिन्न विषयों पर सहमति होना मुश्किल है। परंतु ये लोग अपने मतभेदों पर अत्यधिक बल नहीं देते बल्कि सहवर्तन-मूलक राजनीति (Consociational Politics) में विश्वास करते हैं।

नोट्स सहवर्तनमूलक राजनीति (Consociational Politics) ऐसी राजनीति जिसमें सारे निर्णय केवल बहुमत (Majority) के आधार पर नहीं किए जाते बल्कि भिन्न-भिन्न समूह मिल-जुलकर निर्णय करते हैं, और मिल-बांटकर सत्ता (Authority) का प्रयोग करते हैं। जो समाज जातीय, धार्मिक, भाषाई, क्षेत्रीय, सांस्कृतिक और विचारधारात्मक आधार पर भिन्न-भिन्न समूहों में बँटा हो, उसमें परस्पर सद्भावना कायम रखने के लिए ऐसी राजनीति सर्वथा उपयुक्त मानी जाती है।

सहवर्तनमूलक राजनीति के लिए राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया में नागरिकों की प्रत्यक्ष सहभागिता (Direct Participation) सर्वथा उपयुक्त सिद्ध होती है। इसके लिए साधारणत: दो विधियों का प्रयोग किया जाता है: उपक्रम (Initiative) और परिपृच्छा (Referendum) । इनमें परिपृच्छा अधिक लोकप्रिय है।

उपक्रम (Initiative): उपक्रम ऐसी विधि है जिसमें किसी राजनीतिक निर्णय के लिए बुनियादी स्तर (Grass-root Level) पर शुरूआत की जाती है, अर्थात् इसमें कोई साधारण नागरिक या नागरिकों का समूह प्रस्तावित कानून या संवैधानिक संशोधन का प्रारूप (Draft) तैयार करता है। यदि पंजीकृत मतदाताओं के (Registered Voters) की निश्चित संख्या उस पर हस्ताक्षर कर देती है तो सरकार उसके पक्ष और विपक्ष में विधानमंडल (Legislautre) या निर्वाचकमंडल (Electorate) से मतदान कराने को बाध्य होती है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत साधारण मतदाता मनचाहा कानून बनवाने के लिए विधायकों पर आश्रित नहीं रह जाते बल्कि स्वयं भी इस दिशा में पहल कर सकते हैं। स्विट्ज़रलैड में यदि 1,00,000 मतदाता संवैधानिक संशोधन (Consititutional Amendment) के प्रस्ताव पर हस्ताक्षर कर दें तो उसे दो वर्ष के भीतर राष्ट्रव्यापी मतदान के लिए प्रस्तुत करना अनिवार्य होगा। यदि 50,000 मतदाता (अर्थात् जनसंख्या का 0.7% हिस्सा) किसी संघीय कानून (Federal Law), आज्ञप्ति (Decree) या दीर्घकालिक संधि (Long-Term Treaty) पर परिपृच्छा की मांग करें तो उसे भी दो वर्ष के भीतर राष्ट्रव्यापी मतदान के लिए प्रस्तुत करना ज़रूरी होगा। भिन्न-भिन्न कैंटनों ने उपक्रम के प्रयोग के लिए अपने-अपने नियम बना रखे हैं।

परिपृच्छा (Referendum): परिपृच्छा ऐसी विधि है जिसमें सरकार या संसद की प्रार्थना पर किसी महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर जनसाधारण से मतदान कराया जाता है। इसका लक्ष्य कोई संवैधानिक संशोधन, नीति-परिवर्तन या ऐसा विवादास्पद विषय हो सकता है जिस पर विधानमंडल अपना निर्णय दे चुका हो, और उस पर निर्वाचकमंडल (Electorate) का निर्णय अपेक्षित हो। यह मूलत: वैधता (Legitimacy) प्राप्त करने का उपाय है। कभी-कभी विपक्ष (Opposition) की कटु आलोचना से बचने के लिए सरकार अपनी लोकप्रियता से लाभ उठाकर अपने निर्णय पर लोकमत की स्वीकृति की छाप लगवाने के लिए इस विधि का प्रयोग कर सकती है। स्विट्ज़रलैंड में पहले-पहले श्वाइज़ नामक कैंटेन में 1294 में नीति के मूद्दे पर नागरिकों से प्रत्यक्ष मतदान कराया गया था। पहली-पहली राष्ट्रव्यापी परिपृच्छा 1802 में आयोजित की गई। वह स्थिति जिसमें जनसाधारण सरकार की किसी नीति, कार्रवाई या कानून को उपयुक्त मानते हुए मन से उसका सम्मान करने लगते हैं।

टास्क वैधता (Legitimacy) से आप क्या समझते हैं?

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the Blanks) –

1. संयुक्त राज्य अमरीका के विधानमंडल को ..... कहा जाता है।
2. अमरीका और स्विट्जरलैण्ड में ..... प्रणाली प्रचलित है।
3. अमरीकी सीनेट को विश्व का सबसे शक्तिशाली ..... कहा जाता है।
4. स्विट्जरलैण्ड अनेक राजनीतिक प्रभागों में बँटा है जिन्हें ..... कहा जाता है।
5. स्विट्जरलैण्ड में संघीय सरकार की कार्यकारी शक्ति ..... में होती है।

6.4 सारांश (Summary)

- ब्रिटिश संविधान क्रमिक विकास का परिणाम है। इसकी जड़ें सदियों पुराने इतिहास में जमी हुई हैं। **वुड्रो विल्सन** ने इसे ही व्यक्त करते हुए कहा है कि "ब्रिटिश संवैधानिक इतिहास की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसकी राजनीतिक संस्थाएँ, उसके विकासक्रम, जो प्राचीनतम शासन-प्रणाली के परिवर्तन तक एक है, से सम्बद्ध है।"
- इंगलैंड का इतिहास केल्ट (Celts), रोमन (Romans) और सैक्सन (Saxons) जातियों के आगमन के साथ शुरू होता है। यद्यपि इनका शासन पाँचवी शताब्दी के आरंभ तक रहा फिर भी संविधान के विकास में इसका भी हाथ नहीं रहा। इसके बाद ऐग्लो-सैक्सन सभ्यता का प्रारंभ होता है जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान अंग्रेजी सभ्यता तथा उसके संविधान की नींव पड़ी।
- ब्रिटिश संविधान के विकास का दूसरा और महत्त्वपूर्ण अध्याय 1066 ई॰ के नार्मन विजय से प्रारंभ होता है। वस्तुत:, यही संविधान का उद्‌गम-स्थल है। इस युग में सामाजिक और प्रशासनिक व्यवस्था का ऐसा रूप दिया गया जिसके फलस्वरूप राजा पूरे देश का शासक बन गया। कुछ मिलाकर नार्मन युग में राजनीतिक व्यवस्था को काफी दृढ़ बनाया गया।
- हेनरी द्वितीय ने शासन को सफलतापूर्वक चलाया और राजतंत्र को दृढ़ बनाया। लेकिन, उससे अयोग्य उत्तराधिकारियों–रिचर्ड प्रथम और जॉन की गलत नीतियों ने क्रांति की आग भड़का दी; समर्थकों ने उसका साथ छोड़ दिया। अन्त में, बैरोनी ने जॉन को अपनी शर्तों को मानने के लिए बाध्य किया। फलत:, उसे मैग्नाकार्टा (Magna Carta) जिसे 'माँग-राजपत्र (The Great Charter) कहते हैं, पर अपनी मंजूरी देनी पड़ी। यह राजपत्र विश्व का नहीं तो कम-से-कम ग्रेट ब्रिटेन का सबसे महत्त्वपूर्ण लेख अवश्य है। उन्नीसवीं शताब्दी में **विशप बिलियम स्टब्स** (Bishop Wiliam Stubbs) ने कहा था कि ब्रिटिश संविधान का पूरा इतिहास इस महान राजपत्र की एक व्याख्या है।
- 1603 ई॰ में जेम्स प्रथम, जिसे 'सबसे बुद्धिमान बेवकूफ' (wisest fool) कहा गया है, राजगद्दी पर बैठा। वह राजा के 'दैवी अधिकार' (Divine Rights of the Kings) के सिद्धांत में विश्वास करता था। इस सिद्धांत के अनुसार राजा पृथ्वी पर ईश्वर का एक दूत था जिसे असीमित और निरंकुश शक्ति प्राप्त थी।
- 1660 ई॰ में राजतंत्र की पुन: स्थापना हुई। चार्ल्स द्वितीय गद्दी पर बैठा। फिर राजा और संसद का सम्बन्ध बिगड़ने लगा। चार्ल्स के शासन की एक महत्त्वपूर्ण घटना 1679 ई॰ का **हैबियस कॉरपस ऐक्ट** (Harbeas Corpus Act, 1679) था। चार्ल्स के बाद जेम्स द्वितीय राजगद्दी पर आया। चर्च के कारण संसद से उसकी लड़ाई छिड़ गयी। फलस्वरूप, 1688 ई॰ में 'गौरवपूर्ण क्रांति' (Glorious Revolution) हुई और स्टुअर्ट युग का अंत हो गया।
- अधिकार-पत्र (1689 ई॰) तक ब्रिटिश संवैधानिक इतिहास के विकास के बीजारोपण का युग था। उस समय तक संविधान के मौलिक तत्त्वों की नींव पड़ चुकी थी। इसी नींव पर संविधान का विशाल भवन खड़ा हुआ। 1689 ई॰ के बाद का युग इसी भवन-निर्माण की कहानी है।
- सत्तरहवीं सदी के अन्तिम दशक में बहुत-से बन्धनों के बावजूद राजा शक्तिशाली बना रहा। सिद्धांत में संसद की

नोट

सर्वोच्चता मानी जा चुकी थी, लेकिन इसे व्यवहारिक रूप देने में कठिनाई हो रही थी। विलियम और मेरी की राजकीय नीतियों और कार्यों पर कड़ा नियंत्रण रहा। लेकिन, अट्ठारहवीं सदी के प्रारम्भ में सही समय ने पलटा खाया।

- राजा वास्तविक शासक न रहा, वह संवैधानिक प्रधान बन गया। वह सिर्फ राज्य करने लगा शासन नहीं। सभी उत्तराधिकारियों ने इस नियम का पालन किया।
- अट्ठारहवीं सदी के मध्य तक ऐसी संस्था का जन्म हुआ जो जनतंत्र का प्रमुख अंग बन गयी। यह संस्था मंत्रिपरिषद् थी। धीरे-धीरे वास्तविक प्रशासकीय शक्ति संसद के प्रति उत्तरदायी एकदलीय मंत्रिपरिषद के हाथ में आ गयी। अन्त में, जनता की प्रतिनिधि सभा 'कॉमन सभा' के हाथ में देश की अन्तिम शक्ति आयी और मंत्रिमंडल उसके प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी हुआ।
- मंत्रिमंडल के सामूहिक उत्तरदायित्व की व्यावहारिक सफलता के लिए नेता की आवश्यकता थी, लेकिन बहुत दिनों तक किसी ने इस स्थान को ग्रहण नहीं किया।
- प्रत्येक संविधान की जड़ अतीत के गर्भ में छिपी हुई है। अमरीकी संविधान भी इसका अपवाद नहीं है। अत: वर्तमान संविधान के समुचित ज्ञान के लिए उसका ऐतिहासिक ज्ञान आवश्यक है। अध्ययन की सुविधा के लिए संविधान के विकास को चार भागों में बाँटा जा सकता है– (1) उपनिवेशीकरण (Colonization), (2) स्वतन्त्रता (Independence), (3) राज्यमंडल (Confederation) और (4) संविधान (Constituion)।
- अमरीकी उपनिवेशों की अन्य प्रमुख स्थायी विशेषता स्थानीय संस्थाएँ थीं। आधुनिक काल की स्थानीय संस्थाओं का यहीं से प्रारम्भ होता है। न्यू इंगलैंड की प्रमुख देन शहरों में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र था।
- स्विट्जरलैंड का प्रारम्भिक इतिहास जातियों के आवागमन का इतिहास है। अगस्त, 1291 को तीन स्वतन्त्र तथा संप्रभु राज्यों ने 'स्थायी संघ' की स्थापना की। वास्तव में, स्विट्जरलैंड का जन्म हुआ। संघ की स्थापना में कई सौ वर्ष इसके विस्तार तथा दृढ़ता के वर्ष थे।
- 1848 ई॰ के संविधान का निर्माण 'अमेरिका के संविधान को आदर्श मानकर किया गया था। यह कैंटनों की प्रभुसत्ता संघ की बढ़ती हुई शक्ति के बीच समझौता का परिणाम था। इस संविधान द्वारा यह प्रयत्न किया गया कि कैंटन उस सीमा तक संप्रभुराज्य बने रहें जहाँ तक कि संघीय संविधान उन्हें प्रभुसत्ता प्रदान कर सके।
- यद्यपि 1848 ई॰ के संविधान ने स्विट्जरलैण्ड को एक युक्तिसंगत तथा आधुनिक संविधान दिया, फिर भी यह अधिक दिनों तक कार्यशील न रहा। रेडिकल लोग (Radicalists) इस संविधान के विरूद्ध थे। वे केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाना चाहते थे। उन्हें जनता का पर्याप्त समर्थन प्राप्त हुआ। फलत: 1874 ई॰ में संघीय संसद ने नया संविधान तैयार किया जिसका जनमत-संग्रह द्वारा अनुमोदन हुआ। 29 मई, 1874 ई॰ को नया संविधान प्रभावी हुआ। यही संविधान आज भी स्विट्जरलैण्ड में वर्तमान है।
- चीनी साम्यवादियों का कहना है कि उनका संविधान इतिहास से घनिष्ठ रूप से संबंधित है; वह ऐतिहासिक अनुभव पर आधारित है। **लीऊ शाओ-ची** ने कहा था कि चीन का वर्तमान संविधान "चीनी जनता के एक शताब्दी से अधिक क्रांतिकारी संघर्ष तथा आधुनिककालीन चीनी संविधानवाद के ऐतिहासिक अनुभव का निष्कर्ष है।"
- साम्यवादी शासन की स्थापना के तुरन्त बाद किसी संविधान का निर्माण नहीं किया गया। शासन-व्यवस्था के संचालन के लिए एक सामान्य कार्यक्रम (Common Programme) को अपनाया गया जिसने पांच वर्षों तक अस्थायी संविधान (Provisional Constitution) के रूप में काम किया। सामान्य कार्यक्रम का निर्माण **चीनी जनवादी राजनीतिक परामर्शदाता सम्मेलन** (Chinese People's Political Consultative Conference) नामक संस्था द्वारा हुआ। यह एक खिचड़ी संस्था थी जिसमें साम्यवादी दल के साथ विभिन्न राजनीतिक दलों, लोक संगठनों, जनशक्ति सेना और समुद्रपार चीनियों के प्रीतिनिधि सम्मिलित थे।
- परामर्शदाता सम्मेलन ने तीन प्रलेखों का निर्माण किया–(क) सामान्य कार्यक्रम (A Common Programme) (ख) परामर्शदाता सम्मेलन का सावयव नियम (An Organic Law of the CPPCC) और (ग) केन्द्रीय सरकार

नोट

का सावयव नियम (An Organic Law of the Central People's Government)।

- तीनों प्रलेखों में सामान्य कार्यक्रम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। इसमें अन्तरिक शासनकाल के लिए अर्थात् समाजवाद की प्राप्ति तक के लिए, मौलिक उद्देश्यों का उल्लेख किया गया था। प्रस्तावना में कहा गया था कि चीन का राजनीतिक आधार 'नवीन प्रजातन्त्र' (new democracy) है जिनका उपयेाग 'जनतांत्रिक अधिनायकतंत्र' (people democratic dictatorship) द्वारा किया जाएगा।
- दिसंबर 1993 के संविधान के अंतर्गत रूस में **संघीय गणराज्य** (Federal Republic) की स्थापना की गई। अत: इस देश का आधिकारिक नाम **रूसी संघ** (Russian Federation) है। इस संघ में 21 गणराज्य (Republics), 49 प्रशासनिक अंचल (Administrative Regions), 6 प्रांत (Provinces), 10 स्वायत्त जनपद (Autonomous Districts) और दो संघीय नगर (Federal Cities) – मास्कों तथा सेंट पीटर्सबर्ग सम्मिलित है। इस तरह रूसी संघ कुल मिलाकर 89 प्रशासनिक इकाइयों (Administrative Units) से बना है।
- शासन-प्रणाली के स्तर पर यहां **अध्यक्षीय प्रणाली** (Presidential System) और **संसदीय प्रणाली** (Parliamentary System) **का मिश्रण** तैयार करने का प्रयत्न किया गया है। अध्यक्षीय प्रणाली की तरह यहां एक शक्तिशाली **राष्ट्रपति** (President) की व्यवस्था की गई है, और संसदीय प्रणाली की तरह यहां एक शक्तिशाली **संसद** (Paliament) की व्यवस्था की गई है जिसे **संघीय सभा** (Federal Assembly) कहा जाता है।
- रूस में विधायिका (Legislature) के कृत्य **संघीय सभा** (Federal Assembly) को सौंपे गए हैं। इसमें दो सदन (Chambers) रखे गए हैं। अवर सदन (Lower House) को **स्टेट ड्यूमा** कहा जाता है। इसमें 450 सदस्यों की व्यवस्था की गई है। उच्च सदन (Upper House) को **संघीय परिषद** (Federal Council) कहा जाता है। इसमें 178 सदस्यों की व्यवस्था की गई है। स्टेट ड्यूमा के 225 सदस्य सीधे एकसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों (Single-Member Constituencies) से चार वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इस चुनाव में बहुलमत प्रणाली (Plurality System) अपनाई जाती है।
- संघीय परिषद के अंतर्गत रूसी संघ की 89 प्रशासनिक इकाइयों में से प्रत्येक के दो-दो प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं जिससे इस परिषद के सदस्यों की संख्या 178 हो जाती है।
- साधारणत: कोई भी विधेयक शुरू-शुरू में स्टेट ड्यूमा में प्रस्तुत होना चाहिए हालांकि कुछ नीति-संबधी विषय संघीय परिषद् के अधिकार क्षेत्र में रखे गए हैं। स्टेट ड्यूमा में पारित होने के बाद प्रत्येक विधेयक को संघीय परिषद के पास भेजना चाहिए। यदि संघीय परिषद किसी विधेयक को अस्वीकार कर दे तो उसे स्टेट ड्यूमा के पास वापस भेजा जाएगा। वहां एक आयोग-जिसमें दोनों सदनों के सदस्य सम्मिलित होंगे-इनमें मतभेदों को दूर करने का प्रयत्न करेगा।
- संविधान विकासशील होते हैं। इसी प्रसंग में **हेनदी मेन** (Henry Maine) ने कहा था कि संविधान निर्मित नहीं अपितु विकसित होते हैं। इस उक्ति में सत्यता की मात्रा जो भी हो इतना तो सर्वमान्य ही है कि कोई भी संविधान अपने अन्तिम रूप को प्राप्त नहीं कर पाया है तथा विकास के योग्य है। **लार्ड ब्रागहम** ने कहा था : 'यदि संविधान का कोई मूल्य है तो उन्हें विकसित होना चाहिए, उनकी जड़ें भी होती हैं, वे पकते हैं, दृढ़ होते हैं।" तात्पर्य यह है कि मानव समाज विकासशील है, समय के साथ मनुष्य की आवश्यकताएँ तथा परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं।
- आधुनिक लिखित संविधान में अमरीकी संविधान सबसे अधिक पुराना संविधान है। इसका निर्माण लगभग दो सौ वर्ष पूर्व हुआ था लेकिन आज भी यदि मेडिसन और हैमिल्टन पृथ्वी पर आयें तो इसे पहचानने में उन्हें भी कठिनाई होगी। आज का संविधान सिर्फ 1787 ई॰ का लिखित प्रलेख नहीं है, यह तो ढाँचामात्र है, गगनचुम्बी अट्टालिका का आधार मात्र है। समय और परिस्थिति की माँग के अनुसार इसमें संशोधन हुए, विधि वेत्ता, प्रकाशकीय आधार, विधायिनी संस्थाओं, नागरिकों और राजनीतिक दलों ने इसकी व्याख्या की।

नोट

- **आँग** और **रे** ने इसलिए कहा है कि "वर्तमान संविधान सिर्फ प्रलेखीन अनुच्छेद नहीं है बल्कि समस्त व्याख्याएँ, निर्णय, अभ्यास और प्रणालियाँ जो मौलिक अनुच्छेदों और धाराओं के इर्द-गिर्द विकसित हुए हैं इसका संकलन है, जिन्हें कम-से-कम एक हजार पृष्ठों में मुद्रित किया जा सकता है।"
- संवैधानिक विकास के लिए अनेक पद्धतियों पर निर्भर किया जाता है; जैसे-प्रथाएँ, रीति-रिवाज, प्रशासकीय अध्यादेश, न्यायालयों के निर्णय और वैज्ञानिक औद्योगिक अनुसंधान आदि। इन पद्धतियों से भी स्पष्ट व प्रत्यक्ष पद्धति संवैधानिक संशोधन हैं इसकी जटिलता तथा संविधान की प्रतिष्ठा का ख्याल रखते हुए इस पद्धति का कम प्रयोग होता है: पर स्विट्जरलैंड में अन्य विधियों के विपरीत संवैधानिक परिवर्त्तन लाने के लिए संवैधानिक संशोधन की पद्धति पर ही अधिक निर्भर किया गया है। स्विट्जरलैंड में केवल 77 वर्षों में 50 संशोधन किये गये, जबकि अमेरिका में 170 वर्षों में (1789 ई॰ से आज तक) केवल 26 संशोधन किये गये।
- संयुक्त राज्य अमरीका के विधानमंडल को 'कांग्रेस' कहा जाता है। अमरीका में संघीय शासन प्रणाली (Federal Government) प्रचलित है। वहां की संघीय सरकार पूरे राष्ट्र से संबंधित मामलों का शासन चलाती है- पचास राज्यों की सरकारें अपने-अपने राज्य से संबंधित मामलों का शासन चलाती हैं। संघीय प्रणाली की आवश्यकता के अनुरूप वहां संघ के विधानमंडल-अर्थात् कांग्रेस में दो सदन रखे गए हैं: (1) प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) संपूर्ण राष्ट्र के जनसाधारण का प्रतिनिधित्व करती है और (2) सीनेट (Senate) पृथक्-पृथक् राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है। प्रतिनिधि सभा को निम्न सदन या अवर सदन (Lower House) कहा जाता है सीनेट को उच्च सदन, उपरला सदन (Upper House) या दूसरा सदन (Second Chamber) कहा जाता है। प्रतिनिधि सभा के सदस्य को कांग्रेस-सदस्य (Congresssman) कहा जाता है सीनेट के सदस्य को सीनेट सदस्य या सीनेटर (Senator) कहा जाता है।
- **संयुक्त राज्य अमरीका का उपराष्ट्रपति** (Vice President) **सीनेट का सभापति** (Chairman) होता है। अमरीका के राष्ट्रपति की तरह उपराष्ट्रपति का चुनाव भी जनसाधारण के द्वारा-निर्वाचक-गुण के माध्यम से, चार वर्ष की नियत अवधि के लिए होता है।
- **वित्त विधेयक** (Finance Bills) केवल प्रतिनिधि सभा से ही शुरू किए जा सकते हैं। परंतु उनके लिए सीनेट का अनुमोदन जरूरी होता है। इस दृष्टि से, विधानमंडल के दूसरे सदन के रूप में सीनेट की शक्ति बेजोड़ है। यही कारण है कि **अमरीकी सीनेट को विश्व का सबसे शक्तिशाली दूसरा सदन** (Most Powerful Second Chamber of the World) कहा जाता है।
- इसके अलावा, राष्ट्रपति उच्च पदों के लिए (जैसे कि मंत्रियों, राजदूतों, न्यायाधीशों, महान्यायवादियों के पद पर) जो नियुक्तियां करता है, या विदेशों के साथ जो संधियां करता है, उनके लिए सीनेट का अनुसमर्थन (Ratification) जरूरी होता है। एक प्रथा (Convention) के अनुसार, यदि राष्ट्रपति को ऐसे राज्य में कोई नियुक्ति करनी हो जहां का सीनेट-सदस्य राष्ट्रपति के अपने राजनीतिक दल से हो तो राष्ट्रपति ऐसी नियुक्ति करने से पहले उस सीनेट-सदस्य से परामर्श कर लेता है यदि वह सदस्य प्रस्तावित नियुक्ति का अनुमोदन कर देता है तो सीनेट भी उस नियुक्ति की पुष्टि करेगी। इस प्रथा को सीनेट-सौजन्य (Senatorial Courtesy) की संज्ञा दी जाती है।
- स्विट्ज़रलैंड का समाज पुरूष-प्रधान समाज हैं यहां 1971 तक स्त्रियों को संघीय चुनाव में वोट देने को अधिकार नहीं था। यहां 1984 में पहली बार मंत्रिमंडल में कोई स्त्री रखी गई । उसने 1988 मे त्यागपत्र दे दिया, और वहां दूसरी स्त्री 1993 में रखी गई। 1999 में संघीय सभा (Federal Assembly) ने पहली स्त्री-अध्यक्ष का चुनाव किया।
- स्विट्ज़रलैंड का संविधान 1874 से चला आ रहा है । दस संविधान के अंतर्गत संघीय सरकार (Federal Governmenet) को विशिष्ट शक्तियां प्रदान की गई हैं, और अविशिष्ट शक्तियां (Residual Powers) कैंटनों के पास रहने दी गई हैं। प्रत्येक कैंटन का अपना-अपना संविधान, अपनी-अपनी विधान सभा (Assembly) और अपनी-अपनी सरकार है।

नोट

- स्विस संविधान के अंतर्गत, संघ के स्तर पर **संघीय सभा** (Federal Assembly) की व्यवस्था की गई जिसमें दो सदन हैं। निचले सदन को **राष्ट्रीय परिषद** (National Council) कहा जाता है; उपरले सदन को **राज्य-परिषद** या **राज्य सभा** (Council of States) कहा जाता है। राष्ट्रीय परिषद में 200 सदस्य होते हैं जो सार्वजनिक वयस्क मताधिकार (Universal Adult Suffrege) के आधार पर आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) के सिद्धांत के अनुसार दलीय सूची प्रणाली (Part List System) से चार वर्ष के लिए चुने जाते हैं।
- स्विट्ज़रलैंड में संघीय सरकार की कार्यकारी शक्ति (Executive Power) **संघीय परिषद** (Federal Council) के हाथों में रहती है। इसमें सात सदस्य होते हैं जिन्हे कभी-कभी मंत्री (Ministers) कहा जाता है।

6.5 शब्दकोश (Keywords)

वीटो (Veto) : निषेधाधिकार।

अभियुक्त : अभियोजित व्यक्ति, अपराधी।

6.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. इंग्लैंड (UK) और अमरीकी (USA) संविधान के विकास पर प्रकाश डालिए।
2. रसिया, चीन, स्विट्जरलैण्ड और फ्रांस की संवैधानिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. अमेरिका (USA) और स्विट्जरलैण्ड में संविधान संशोधन की प्रक्रिया का विवेचन कीजिए।
4. अमेरिका (USA) और स्विट्जरलैण्ड की संघीय व्यवस्था की व्याख्या कीजिए।

उत्तर :- स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (1) ग (2) क (3) ख (4) ग
(5) क

2. (1) कांग्रेस (2) संघीय शासन (3) दूसरा सदन (4) कैंटन
(5) संघीय परिषद्

6.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ*–सी.बी. गेना, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड, दिल्ली।
2. *तुलनात्मक शासन एवं राजनीति*–डॉ. बीरकेश्वर प्रसाद सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन (पी. एण्ड डी.) 24, दरियागंज, अंसारी रोड, दिल्ली।
3. *तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा*– ओम प्रकाश गाबा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।
4. *तुलनात्मक राजनीति*–जे.सी. जौहरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि., दिल्ली।

नोट

इकाई–7: संवैधानिक संरचना–कार्यपालिका (Constitutional Structure-Executive)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
7.1 ब्रिटिश सम्राट और प्रधानमंत्री (British King and Prime Minister)
7.2 यू.एस.ए., फ्रांस, रसिया, चीन का राष्ट्रपति और स्विट्जरलैण्ड की बहुल कार्यपालिका (The President of U.S.A., France, Russia, China and Plural Executive of Switzerland)
7.3 सारांश (Summary)
7.4 शब्दकोश (Keywords)
7.5 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)
7.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- ब्रिटिश राजा और प्रधानमंत्री, यू.एस.ए., फ्रांस, रसिया और चीन के राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति की व्याख्या करने में।
- स्विट्जरलैण्ड की बहुल कार्यपालिका का विवेचन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

कार्यपालिका सरकार का दूसरा महत्त्वपूर्ण अंग है। इसे विधानमण्डल का पूरक और समकक्षी दोनों कहा जाता है। कार्यपालिका का प्रमुख कार्य निर्मित कानूनों को क्रियान्वित करते हुए देश का शासन करना है। **गिलक्राइस्ट** के शब्दों में, "कार्यकारिणी सरकार का वह अंग है जो कानून के रूप में अभिव्यक्त जनता की इच्छा को कार्य में परिणत करती है।" यह वह धुरी है जिसके चारों ओर राज्य का वास्तविक प्रशासन-यन्त्र घुमता है।" देश के प्रशासन में नियुक्त समस्त पदाधिकारी कार्यपालिका के अन्तर्गत सम्मिलित हैं। **प्रो॰ गार्नर** का कथन है कि "व्यापक और सामूहिक अर्थ में कार्यपालिका विभाग अन्तर्गत सभी अधिकारी, राज्य कर्मचारी तथा एजेन्सियाँ आ जाती हैं जिनका कार्य राज्य की इच्छा, जिसे व्यवस्थापिका ने निर्धारित कर कानून के रूप में व्यक्त किया है को कार्यरूप में परिणत करना है।"

7.1 ब्रिटिश सम्राट और प्रधानमंत्री (British King and Prime Minister)

क्राउन की परिभाषा–क्राउन कोई व्यक्ति-विशेष नहीं है। यह एक गढ़ी हुई योजना, एक अमूर्त्त विचार है। **प्रो॰ मुनरो** के अनुसार **"क्राउन** एक कृत्रिम है तथा विधि-व्यक्त है। यह न शरीर धारण करता है, न मरता है।" **सर मारिस एमौस** के शब्दों में **"क्राउन** वैधानिक रूप में सम्राट की प्रभु-शक्तियों, असाधारण अधिकारों एवं सामान्य अधिकारों का भंडार है।" **सर सिडनी लो** इसको "सुविधाजनक काम चलाऊ उपकल्पना" कहते हैं। **डॉ॰ फाइनर** के कथानुसार "जब हम राजनीति में कार्यों की विवेचना करते हैं तब हमारा मतलब उस प्रेरक शक्ति से है जिसका निर्माण जनता, संसद तथा मन्त्रिपरिषद् ने सदियों के संवैधानिक विकास में स्थापित कुछ औपचारिक प्रबन्धों के अनुसार किया है। क्राउन इन

नोट

राजनीतिक शक्तियों के असली केन्द्रों के ऊपर एक अलंकृत उपाधि है" **ऑग और जिंग** के शब्दों में, "**क्राउन** राजा, मन्त्रिगण तथा संसद के विलक्षण संगम से निर्मित सर्वोच्च कार्यपालिका शक्ति के पीछे एक कल्पना है। हम सत्ता के इसी कुछ-कुछ अविचारणीय सम्मिश्रण को क्राउन कहते है। इस प्रकार क्राउन राजा, मंत्री तथा संसद तीनो का संयोग है। राजा क्राउन का तात्पर्य "पूरी सरकार" (The Government) से है।

सम्राट और क्राउन में दो प्रमुख भेद–निष्कर्ष रूप में राजा और क्राउन (King and Crown) में दो प्रमुख भेद है। **पहला**, राजा एक व्यक्ति है; लेकिन क्राउन एक संस्था है। राजा मरता है, लेकिन क्राउन स्थायी है। राजा द्रष्टव्य है, क्राउन अदृश्य हैं **दूसरा** क्राउन का एक अंग है। उसके अतिरिक्त मंत्रिपरिषद् तथा संसद मिलकर क्राउन का निर्माण करते हैं– अत: क्राउन की शक्तियों का उपयोग राजा सामान्य जन साधारण के प्रतिनिधियों द्वारा करता है।

क्या आप जानते हैं सांविधानिक दृष्टि से क्राउन का अर्थ है– सम्राट का पद एक संस्थान के रूप में। इस प्रकार सम्राट एक व्यक्ति है, परन्तु क्राउन एक संस्था (Crown-an Instituion) है, जिसमें शासन की शक्तियाँ एवं परम्पराएँ निहित हैं।

क्राउन की शक्तियाँ (Power of Crown): सम्राट की अभिहित शक्तियाँ, क्राउन शक्तियाँ सम्राट की निजी शक्तियाँ नहीं बल्कि उसकी अभिहित शक्तियाँ (Norminal Power) है। इन शक्तियों का उपयोग सम्राट खुद नहीं करता, मंत्रिगण सम्राट के नाम पर करते हैं। मंत्री, संसद के प्रति जवाबदेह होते हैं। अत: संसद ने उन्हें अधिकार दिया है कि वे इन शक्तियों का उपयोग करें।

सम्राट– पद और उत्तराधिकार के नियम (Title and Succession to the throne)–इंगलैंड में सम्राट-पद और उत्तराधिकार के नियम 1701 ई॰ के समझौता अधिनियम (Act of Setteement, 1701) पर आधारित हैं इन्हें संसद ने पास किया था। इनके द्वारा यह व्यवस्था है कि राजपद हेनोवर वंशीय इंगलेक्ट्रस सोफिया के वंशजों में से आनुवंशिक क्रम से चलेगा जबतक कि राजा अथवा वंश प्रोटेस्टेण्ट धर्मावलम्बी बना रहेगा। इसके अतिरिक्त स्त्री की तुलना में पुरुष वंशज की श्रेष्ठता प्रदान की गयी। 1714 ई. में साम्राज्ञी एलिजाबेथ द्वितीय इस वंश की 11वीं उत्तराधिकारणी, जिनकी पदवी 1931 ई॰ के सिंहासन-त्यजन अधिनियम (Abdiction Act of 1931) के आधार पर है। प्रथम महायुद्ध के बाद हैनोवर वंश का नाम बदलकर विण्डसर वंश कर दिया गया। 1936 ई. के स्टेच्यूट वेस्ट मिनिस्टर (Statutes of westminister; 1936) के अनुसार सम्राट के उत्तराधिकार के नियमों या उपाधियों में परिवर्तन करने वाले कानून के लिए ब्रिटेन के स्वराज्य प्राप्त उपनिवेशों के विधान-मंडल की स्वीकृति आवश्यक है। उत्तराधिकार का एक अन्य नियम एजेंसी से सम्बन्धित है। 1937 और 1943 ई॰ के रीजेंसी अधिनियम (Regency Act) के अनुसार यदि सम्राट नाबालिग हो या किसी मानसिक अथवा शारीरिक रोग के कारण शासन करने योग्य न हो तो रिजेंट की व्यवस्था कर दी जाती है और यदि सम्राट और संरक्षक दोनों ही कार्य-संचालन के लिए अनुपयुक्त हों तो निम्नलिखित पद्धति अपनायी जाती है।

(क) राज-पद आनुवंशिक क्रम (Hereditary) से चलेगा।

(ख) राज-पद जयेष्ठत्व (Primogeniture) के नियम पर मिलेगा,

(ग) स्त्री की तुलना में पुरुष वंश की श्रेष्ठता प्रदान की गयी है,

(घ) प्रोटेस्टेण्ट धर्मावलम्बी ही, कैथोलिक नहीं, राजगद्दी पर बैठ सकता है,

(च) उत्तराधिकारी के नियमों या उपाधियों में परिवर्तन लाने के लिए स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों की स्वीकृति आवश्यक है,

(छ) नाबालिक या प्राकृतिक अयोग्यता की दशा में रिजेंट या परामर्शदाताओं की व्यवस्था की गयी है।

वंशानुगत सिद्धांत का महत्त्व- राजपद का आनुवंशिक आधार राजनीतिक रूप से बहुत ही सफल तथा उपयोगी है। राजगद्दी के लिए कभी-कभी विवाद नहीं खड़ा होता तथा चुनावों से दूर रहने के कारण इसकी पवित्रता भी नष्ट नहीं

नोट

होती है। यद्यपि, वंशानुगत (Hereditary Principle) के विरुद्ध बहुत से विवेकपूर्ण तर्क दिये जा सकते है, फिर भी अधिकतर व्यक्ति इसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति देते हैं, क्योंकि भाग्य और अदृश्य में विश्वास करना मानव स्वभाव है।

सम्राट के विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ (Royal Privileges and Immunities): ब्रिटिश सम्राट अनेक विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ (Privileges and Immunities) का उपभोग करता हैं। उसे गिरफ्तार नहीं किया जा सकता, उसका कोई माल कुर्क नहीं हो सकता, राजभवन में उसके विरूद्ध न्यायिक कार्यवाही नहीं की जा सकती तथा कहा जाता है कि यदि सम्राट प्रधानमन्त्री को गोली मार दे तो भी उस पर कानूनी कार्यवाही नहीं होगी।

आर्थिक सहायता:सविलि लिस्ट– ब्रिटिश सम्राट को राजकोष से वार्षिक अनुदान मिलता है। पहले राजा की निजी जागीरदारियाँ थीं तथा सम्पत्ति के अन्य साधन होते थे जिसकी आमदनी से उसका खर्च चलता था। आज भी संपत्ति प्राप्त करने उसका प्रबन्ध करने, उसे देखने या बेच डालने का अधिकार है। लेकिन खर्च बढ़ने के कारण संसद द्वारा अनुदान देने की प्रथा चल पड़ी है। 1889 ई॰ तक सम्राट के व्यक्तिगत उपभोग तथा सार्वजनिक कार्यों के लिए अनूदित धन-राशि को ही साथ रखा जाता था, लेकिन धीरे-धीरे दोनों को अलग किया जाने लगा। आजकल संसद द्वारा सम्राट राजघराने के सदस्यों को निजी व्यय के लिए राजकोष से वार्षिक अनुदान तय कर दिया जाता है। इस अनुदान को सिविल लिस्ट (Civil List) कहा जाता है।

सम्राट का स्थान (The Position of King): 1688ई॰ के गौरवपूर्ण क्रांति तक सम्राट को अगाध और निरंकुश शक्तियाँ प्राप्त थीं। वह सिर्फ राष्ट्र का प्रधान नहीं था, बल्कि वास्तविक शासक भी था। आज राज्य का पुरा शासन उसी के नाम पर होता है, लेकिन व्यवहार में शक्तियों का उपयोग नहीं करता। आज भी दूर से देखने पर उसका पद विशाल नजर आता है। विशाल राजभवन तथा दुर्ग, सुदुर फैले हुए उपनिवेश, राष्ट्रीय जीवन में उसका स्थान आदि उनके पद को और भव्य बना देते हैं, लेकिन वास्तविकता तो यह है कि व्यक्तिगत स्थिति में सम्राट आज नगण्य है, उसका स्थान सिर्फ सैद्धान्तिक तथा ऐतिहासिक महत्ता का रह गया है, व्यावहारिक नहीं। उसकी शक्तियों का उपयोग उसके नाम पर जनता के प्रतिनिधि करते हैं। सम्राट की शक्तियों का वर्णन करते हुए **फाइनर** कहता है, "यह विशाल गगनचुम्बी तथा वैभवपूर्ण अट्टालिका है जिसके अन्दर राजनीतिक शक्ति का शून्य स्थान है।" ब्रिटिश संविधान के अन्तर्गत सम्राट का स्थान सिद्धांत और व्यावहार के अन्तर का सर्वोतम उदाहरण है।

"सम्राट राज्य करता है, शासन नहीं"– इस प्रसंग में यह कहा जाता है कि "सम्राट राज्य करता है, शासन नहीं।" इसका साधारण अर्थ यह है कि सम्राट सार्वजनिक कार्यों के किसी प्रत्यक्ष और क्रियात्मक नियन्त्रण का उपयोग नहीं करता। सम्राट की शक्तियाँ आज भी असीम हैं, लेकिन उनका प्रयोग वह व्यक्तिगत रूप में नहीं करता है। उसके नाम पर उसकी शक्तियों का उपभोग, उसका प्रयोग मंत्रिमंडल तथा संसद करती है। सम्राट राष्ट्र का प्रधान है। वह राज्य की समस्त शक्तियों का स्रोत है, फिर भी यह शक्तिहीन है, माटी की मूरत है। कानूनी तौर पर मन्त्रियों के परामर्श से वह शासन करता है, लेकिन व्यवहार में मंत्रियों के परामर्श से वह बाध्य है और वह बाध्यता इतनी कठोर है कि सम्राट मंत्रियों के परामर्श का उल्लंघन नहीं कर सकता। फलत: सम्राट राज्य का प्रधान मात्र रह जाता है, शासन का नहीं। विधानत: वह सर्वशक्तिमान है, लेकिन व्यवहार में केवल एक अलंकार। ब्रिटिश शासन-पद्धति मुख्यत: दो सिद्धांतों पर आधारित है, पहला, सम्राट मंत्रियों के परामर्श से बाहर कोई भी सार्वजनिक कार्य नहीं कर सकता है जिनका वैधिक महत्त्व है। उसका हर कार्य उसके मंत्रियों का कार्य है। जब हम यह कहते हैं कि क्राउन सार्वजनिक पदाधिकारियों की नियुक्ति करता है तब हमारे कथन का तात्पर्य यह होता है कि सम्राट संसद के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों के परामर्शानुसार सार्वजनिक पदाधिकारियों की नियुक्ति करता है सम्राट संसद का अधिवेशन आमन्त्रित करता है, उसे विसर्जित या विघटित करता है, उसमें अपना भाषण पढ़ता है, युद्ध, शांति या सन्धि की घोषणा करता है; लेकिन इन कार्यों का सम्पादन वस्तुत: मन्त्रियों द्वारा होता है। **ग्लेडस्टोन** ने इसी तथ्य को इन शब्दों में रखा है– "राज्याभिषेक से मृत्युपर्यन्त राजा के जीवन में कोई क्षण ऐसा नही होता जबकि किसी सार्वजनिक कार्य के लिए वह ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी न हो और क्राउन की शक्ति का ऐसा कोई प्रयोग नहीं हो सकता जिसके लिए वह किसी मंत्री को स्वयं उत्तरदायी बनाने के लिए तैयार न पा सकें।"

नोट

ब्रिटिश संविधान का दूसरा सिद्धांत यह है कि प्रत्येक सार्वजनिक कार्य के लिए मंत्रिगण संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यह प्रकृति का नियम है कि शक्ति और उत्तरदायित्व साथ-साथ चलते हैं, सम्राट की शक्तियों का हस्तांतरण मंत्रियों को हो गया है और वे शासन के वास्तविक अधिकारी हो गये हैं तथा सम्राट नामपात्र के लिए राज्य का प्रधान रह गया है।

"सम्राट कोई गलती नहीं कर सकता"– ब्रिटिश सम्राट के सम्बन्ध में एक दूसरा कथन है– "सम्राट कोई गलती नहीं कर सकता।" इस कथन का प्रयोग इस अर्थ में किया जाता है कि सम्राट को किसी कार्य के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता। उसके नाम पर किए गए किसी कार्य के लिए कोई मन्त्री या मन्त्रिपरिषद् उत्तरदायी होती है। अन्तिम रूप में इसका मतलब यह है कि सम्राट स्वविवेक से, गलत या सही, कोई भी कार्य नहीं कर सकता है। इस सूत्र के अन्य अर्थ भी हो सकते हैं। इसे निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत समझाया जा सकता हैं:-

(i) कानूनों की मार्यादाओं से ऊपर– उन्मुक्तियों के अन्तर्गत हमने देखा है कि सम्राट विधि के ऊपर (Above the Restriction of Law) है वह सामान्य न्यायालयों के क्षेत्र से उन्मुक्त है। उसे किसी भी कार्य के लिए, चाहे वह हत्या ही क्यों न हो, न्यायालय के समक्ष दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

(ii) सम्राट सार्वजनिक कार्यों के लिए दोषी नहीं हो सकता– सम्राट देश की कार्यपालिका नहीं है और न वह किसी को अधिकृत करने की शक्ति रखता है। उसे किसी भी कार्य के लिए दोषी नहीं ठहराया (not guilty for public acts) जा सकता है। मंत्रिगण वास्तविक शक्तियाँ तथा अधिकार रखते हैं और केवल ये लोग ही उत्तरदायी ठहराये जा सकते हैं। **लार्ड फिशर** के मतानुसार, "राजा के बहुत से परमाधिकार हैं परन्तु जब इसको कार्यरूप में परिणत किया जाता है तब केवल संसद के प्रति उत्तरदायी मन्त्री की सलाह पर उनका प्रयोग हो सकता है।" इसी लेखक के शब्दों में "मन्त्रिमण्डलीय उत्तदायित्व राजतन्त्र का संरक्षक है। इसके अभाव में राजतन्त्र राजनीति झगड़ों की आंधियों तथा राजनीतिक तूफानों के बीच अधिक समय तक नहीं ठहर सकता है।" **लार्ड असंकिन** के अनुसार, "राजा ऐसा कोई अन्त:करण नहीं रख सकता जो उत्तरदायी नागरिकों की धरोहर नहीं है–सभी व्यक्तियों में दोष हो सकते हें, परंतु हमारे शासन की बुद्धिमत्ता उन दोषों को राजा से दूर रखती है–वह कोई भी कार्य बिना परामर्श के नहीं कर सकता और जो कुछ किया गया है उसकी मजदूरी पदारूढ़ व्यक्ति देता है, चाहे किसी भी स्त्रोत से आरम्भ हुआ हो।" कहा जाता है कि एक बार **चार्ल्स द्वितीय के एक दरबारी** ने राज्य शयन-कक्ष पर निम्न पंक्तियाँ लिख दी थीं– "यहाँ एक महान् एवं शक्तिशाली राजा लेटा हुआ है जिसके वचनों का कोई भी विश्वास नहीं करता, जो कभी गलत बात नहीं कहता और न कभी बुद्धिमत्ता का कार्य करता है।" चार्ल्स द्वितीय का उत्तर था कि यह सब बहुत कुछ सत्य है "उसके शब्द उसके थे। परन्तु उसके कार्य मन्त्रियों के कार्य थे।" उपर्युक्त लेखकों के कथन के द्वारा यह बतलाने की चेष्टा की गयी है कि सम्राट स्वविवेक के अन्तर्गत कोई कार्य नहीं कर सकता है। अन्ततोगत्वा, उसके सभी कार्य उसके मन्त्रियों के कार्य हैं ओर किसी भी त्रुटि के लिए उन्हें ही दोषी करार दिया जायगा, सम्राट को नहीं।

(iii) अवैधानिक कार्य के लिए सम्राट के नाम किसी की उन्मुक्ति नहीं– इस सूत्र का तीसरा अर्थ यह हो सकता है कि सम्राट किसी भी व्यक्ति को गलती करने के लिए अधिकृत नहीं कर सकता (No Legal immunity to any body for unconstitutional acts in the name of the king)। कोई भी अधिकारी अपने द्वारा किये गये किसी अवैध या अवैधानिक कृत्य के लिए सम्राट के आदेश की शरण नहीं ले सकता है। अर्ल ऑफ डेनवी काण्ड (Denbey's Case, 1678) में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। एक पत्र लिखने के अपराध में डेनवी पर अभियोग लगाया तो उसने अपने बचाव में यह तर्क पेश किया कि उक्त पत्र सम्राट के आदेश के अधीन लिखा गया था और सम्राट कोई गलती नहीं कर सकता। अत: वह दोषी नहीं हैं। लेकिन संसद ने इस दलील को अस्वीकार करते हुए यह सिद्धान्त प्रतिपारित किया कि अपने कार्यों के लिए मन्त्री ही उत्तरदायी हैं। निष्कर्ष यह है कि व्यक्तिगत रूप से सम्राट कुछ नहीं कर सकता, इसलिए वह कोई भी गलती नहीं करता।

गलत निष्कर्ष– सम्राट की स्थिति के उपर्युक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि वह मृतप्राय है, एक स्वर्णिमशून्य या मिट्टी की मूर्ति-मात्र है, शासन के क्षेत्र में यह नि:शक्त तथा प्रभावहीन है। अत: उसके पद की कोई उपयोगिता नहीं।

नोट

शक्ति के स्थान पर प्रभाव– सम्राट का पद महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावपूर्ण है। सम्राट व्यक्तिगत रूप से कुछ कार्यों को करता है जिसे अन्य कोई नहीं कर सकता है। वह विदेशी राजदूतों का स्वागत करता, पीयर नियुक्त करता, उपाधियाँ देता, सिंहासन-भाषण देता। इन छोटे-मोटे कार्यों के अलावा वह दो प्रमुख कार्य करता है– प्रधानमंत्री की नियुक्ति करना तथा लोकसभा को विघटित करना। यद्यपि इन कार्यों के संबन्ध में साधारणत: उसकी शक्ति हीन हो गया, फिर भी उसका प्रभाव बढ़ गया है। **ग्लैडस्टोन** के विचारानुसार, "सत्रहवीं शताब्दी में राज्य की स्थिति में जो परिवर्तन हुए हैं उसके द्वारा शक्ति के स्थान पर लाभदायक प्रभाव की स्थापना हुई है।"**बेजहॉट** के कथन से इस प्रभाव की गहराई का पता चलता है– "प्रशासन तथा नीति-निर्धारण के सम्बन्ध में सम्राट के तीन राजनीतिक अधिकार हैं यथा परामर्श के लिए पूछे जाने का अधिकार, प्रोत्साहन देने का अधिकार और चेतावनी देने का अधिकार।" यद्यपि सम्राट के ये अधिकार मुख्यत: सैद्धान्तिक है, फिर भी उसे प्रभावशाली बनाने में इनका बहुत हाथ है।

ब्रिटिश प्रधान मंत्री (The British Prime Minister)

अनौपचारिक आधार (Informal Base): ब्रिटेन की अन्य संस्थाओं की तरह ब्रिटिश प्रधानमन्त्री का पद भी आकस्मिक घटनाओं का नतीजा तथा संयोग की बात (a child of chance) है। इस पद की उत्पत्ति प्रथाओं के द्वारा हुई। इसकी स्थिति के बारे में किसी भी परिनियम या संविधि में कुछ जिक्र नहीं है। इनोवर वंश के शासन-काल में वॉलपोल की अध्यक्षता तथा संचालन करने का अवसर मिला। इस प्रकार वॉलपोल प्रथम प्रधानमंत्री बना। लेकिन उसे अधिकांश लोग प्रथम मन्त्री (First Minsiter) ही कहते थे। प्रधानमन्त्री की पदवी लुई चौदहवें के शासन काल के 'Prime Minister' की नकल द्वारा अपनायी गयी। लेकिन 1878 ई॰ के पूर्व इस शब्द का प्रयोग किसी राष्ट्रीय प्रलेख में नहीं हुआ था। उस वर्ष पहली बार बर्लिन की सन्धि में उसका उल्लेख किया गया। सन्धि की प्रथम धारा में **लॉर्ड बीकन्सफील्ड** (Lord Beaconsfield) को साम्राज्ञी **"ट्रेजरी का प्रथम लॉर्ड तथा इंगलैंड का प्रधान मंत्री"** (First Lord of Majest's Treasury and Prime Minister of England) कह कर संकेत किया गया। **सर सिडनी लो** के विचार में, "यह नामकरण उन विदेशियों के अज्ञान के प्रति कुछ रियायत मात्र था जो ब्रिटेन के पूर्ण शक्तियुक्त महादूत की वास्तविक स्थिति को समझ न पाते थे।" इसके बाद 1906 ई॰ में प्रधानमंत्री की स्थिति को राज्य के उत्सवों से सम्बन्धित सामाजिक प्राथमिकताओं की तालिका में मान्यता प्रदान की गयी और राजकीय उद्घोषणा द्वारा उसे राज्य के आदर की दृष्टि से चौथे नम्बर का प्रजाजन माना जाने लगा। उसे यार्क के आर्क विशप से निचला दर्जा दिया गया। 1917 ई. के चेकर्स स्टेट ऐक्ट (Chequers Estate Act, 1917) में प्रधानमन्त्री का पद ग्रहण करनेवाले व्यक्ति की चर्चा की गयी है और उस पद के धारण करने वाले व्यक्ति को चेकर्स प्रयोग करने की अनुमति दी गयी है। चेकर्स का अर्थ होता है प्रधानमन्त्री का अधिकारी। इस अधिनियम से सिर्फ प्रधानमंत्री को संवैधानिक स्थिति की मान्यता मिली है, किन्तु उस स्थिति को अभी तक संवैधानिक स्वरूप प्रदान नहीं किया गया है। प्रधानमन्त्री के पास कानून द्वारा प्राप्त वास्तविक शक्ति बिल्कुल नहीं है। उसकी तमाम शक्तियाँ एवं अधिकार संवैधानिक अभिसमयों से ही प्राप्त हुए हैं और वे समस्त अधिकार उन्हीं अभिसमयों से मर्यादित भी है। तात्पर्य यह है कि उनकी स्थिति और उसके अधिकार राजनीतिक हैं और उस उत्तरदायी सरकार की जरूरत के अनुसार बन पाये हैं, जहाँ संसद है और सार्वजनिक मताधिकार पर आधारित है। वह मन्त्रिमंडल की परम्परागत अनुयायी के कारण निर्णय करता है; लेकिन उसके निर्णय को कानूनी रूप मन्त्रियों, प्रिवी परिषद् या सम्राट द्वारा ही मिलता है। इस प्रकार अन्य अधिकारी उसकी अगुआई को इसलिए नहीं मानते कि उसका आधार संविधान है; बल्कि इसलिए कि वह एक दल का नेता है। **ग्लैडस्टोन** ने ठीक ही कहा था कि "कहीं भी इतने छोटे पदार्थ की इतनी बड़ी छाया नहीं।"

नोट्स 1937 ई॰ के क्राउन के अधिनियम (The ministers of the Crown Act., 1937) में प्रथम बार प्रधानमन्त्री को कानूनी मान्यता दी गयी और कहा गया कि "उस व्यक्ति को जो प्रधानमन्त्री और क्राउन का प्रथम मन्त्री (First Lord of the Treasurey) होगा, दस हजार पौंड वेतन मिलेगा।" इस प्रकार प्रधानमन्त्री का पद ट्रेजरी के प्रथम लॉर्ड के पद का ही रूप है और अभी भी दोनों पद एक साथ जुड़े हुए हैं।

नोट

(i) प्रधानमंत्री का चुनाव (Choice of the Prime Minister) : बहुमत दल का नेता सांविधानत: प्रधानमंत्री की नियुक्ति सम्राट द्वारा होता है। लेकिन दलगत सरकार के विकास ने एक प्रथा चला दी है, सम्राट लोकसभा में निर्वाचित बहुसंख्यक राजनीति दल के मान्य नेता को प्रधानमन्त्री का पद ग्रहण करने तथा मन्त्रिमंडल-निर्माण के लिए आमन्त्रित करता है। 18वीं शताब्दी तक ब्रिटिश मन्त्रिमंडल का अभाव-सा था और उस समय तक क्राउन के प्रधानमन्त्री के लिए यह आवश्यक था कि उसके ऊपर सम्राट की कृपा हो तथा साथ-साथ सर्वसाधारण का समर्थन प्राप्त हों लेकिन आज सम्राट का स्वेच्छाधिकार नहीं है क्योंकि लोक-सभा के सदस्यों के असंगठित दलों के विरोधी नेताओं के प्रति अनिश्चित वफादारी का अन्त हो गया है। 19वीं शताब्दी में भी उदार दल और अनुदार दल में नीति मतभेद, दल के अन्तर्गत मतभेद, बुढ़ापा या बीमारी आदि के आधार पर किसी भी व्यक्ति को दल का नेता होना सन्देहात्मक हो जाता था। लेकिन बीसवीं शताब्दी में दल के दृढ संगठन के फलस्वरूप निश्चित तथा निस्संदेह रूप में कोई व्यक्ति नेता चुन लिया जाता है और सम्राट को उसे ही प्रधानमन्त्री पद के लिए आमन्त्रित करना पड़ता है। इस प्रकार अभिसमय के अनुसार लोकसभा में बहुमत दल (Majority Party) का नेता प्रधानमन्त्री बनता है। अत: प्रधानमन्त्री के चुनाव में सम्राट की शक्ति सीमित या नहीं के बराबर है।

(ii) सम्राट का स्वेच्छाधिकार : कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं जब सम्राट निजी निर्णय (Discretion) के अनुसार कार्य कर सकती है। सर्वप्रथम ऐसी परिस्थिति तब उत्पन्न होती है जब प्रधानमन्त्री इस बात का सबूत छोड़े बिना कि दल किसको उत्तराधिकारी बनाना चाहता है, त्याग-पत्र दे देता है या बहुमत दल का कोई स्पष्ट तथा निश्चित नेता नहीं है। सम्राट द्वारा नामजद राजनीतिज्ञ शक्तिशाली सरकार का वहाँ निर्माण कर सकता है। उदाहरणार्थ, 1880 ई. में लार्ड हार्टिगन उदारवादी दल का लोक-सभा में नेता था और ग्रेनवाइल उसके लार्ड-सभा में नेता था, लेकिन दल में ग्लैडस्टोन भी शामिल था और उदारवादी जीत का अनादर होने के कारण भावी प्रधानमन्त्री समझा जाता था, लेकिन महारानी उन्हें नापसन्द करती थी। अत: हार्टिगटन और ग्रेनवाइल को बारी-बारी से आमंत्रित किया गया; लेकिन उन्होंने मंत्रिमण्डल बनाने से इन्कार कर दिया और ग्लैडस्टोन के नेतृत्व को अवश्यम्भावी बतलाया। 1832 ई॰ के पश्चात् 11 अल्पसंख्यक सरकारें और 3 संयुक्त सरकारें बन चुकी हैं। इस समस्त परिस्थितियों में कई ऐसे गुंजाईश रहते हैं जिनके द्वारा सम्राट अपने प्रभाव का उपयोग कर सकते हैं लेकिन उनके लिए यह विचार आवश्यक है कि वे सुनिश्चित परम्पराओं के अन्दर रहते हुए भी काम करें। यदि पराजय होने पर सरकार त्याग-पत्र दे देती है तो सम्राट को विरोधी दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करना चाहिए। जेनिन्स ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है, "सम्राट का कार्य केवल सरकार निर्णय करना है। उस सरकार का नहीं जिसका वे अनुमोदन करते हैं। यदि वे ऐसा करेंगे तो दलगत राजनीति में फँस जायेंगे।। यह आवश्यक है कि जनता का सम्राट की निष्पक्षता में विश्वास बना रहे। इसके लिए सम्राट को न केवल निष्पक्षता से ही कार्य करना चाहिए बल्कि उसे निष्पक्षता से काम करते हुए प्रतीत भी होना चाहिए। इसको करने का एक मात्र उपाय विरोध दल के नेता को सरकार बनाने के लिए तुरन्त आमन्त्रित करना है।" यह है कि 1839 ई. के पश्चात् प्रत्येक अवसर पर यही किया गया है। 1866 ई॰ में जब लार्ड सैलिसवरी ने त्याग-पत्र दिया था तो महारानी विक्टोरिया की ग्लैडस्टोन के प्रति घृणा ने उन्हें परम्परा से हटने की प्रेरणा दी। लेकिन काफी समय तक षड्यन्त्र जारी रखने के बाद भी वे सफल न हुई। सम्राट को विरोधी दल के नेता को आमंत्रित करते समय अन्य किसी राजनीतिक से सलाह नहीं लेनी चाहिए क्योंकि इस प्रकार की मशविरा यह संदेह उत्पन्न कर सकती है कि सम्राट विरोधी दल के नेता की सरकार बनाने के अधिकार का अतिक्रमण कर रहे हैं। जब कभी सम्राट ने किसी व्यक्ति के साथ सलाह-मशविरा किया है, जो विरोधी दल का मान्य नेता नहीं है, तो ऐसे अवसरो पर सम्राट के विचार-विमर्श के बावजूद एक ऐसा व्यक्ति प्रधानमंत्री हुआ जो या तो दल का नेता नहीं था या कम-से-कम उस समय-दल का नेता नहीं था। यह निश्चित है कि 1916 ई॰ में परम्पराओं का पालन किया गया था। ऐस्क्विथ के त्याग-पत्र के पश्चात् सम्राट ने बोनर लॉ को अस्वीकृत कर दिया। 1931 ई॰ में मैकडोनल्ड की बहाली सम्राट के निजी इच्छा का फल मालूम पड़ती है। वह अपने दल के प्रतिनिधि होने के अर्थ में प्रधानमंत्री के रूप में उसकी उपस्थिति उसी प्रकार की एक "प्रासाद क्रांति" (Palace Revolution) मालूम पड़ती है जैसा कि 1968 ई॰ के लार्ड ब्यूट के प्रधानमंत्री बनने पर मालूम पड़ी थी। बेव और जेनिंग्स सम्राट

नोट

के इस कार्य को वैज्ञानिक बतलाते हैं लेकिन लॉस्की की राय में वैधानिक शब्द बहुत लचीला है। 1957 ई॰ में इडेन त्याग-पत्र के बाद मैकमिलन की बहाली में सम्राज्ञी का बहुत हाथ था।

(iii) लार्ड-सभा का सदस्य प्रधानमंत्री नहीं : सर राबर्ट वॉलपोल के समय से यह एक सुनिश्चित नियम-सा बन गया है कि प्रधानमंत्री लोक-सभा, लार्ड-सभा दोनों में से किसी एक सदन का सदस्य रहे। लेकिन बीसवीं शताब्दी में यह भी निश्चित हो गया है कि प्रधानमंत्री को लोकसभा का सदस्य जरूर ही होना चाहिए, लार्ड-सभा का सदस्य अर्थात् पीयर प्रधानमंत्री नहीं बन सकता है। 1902 ई॰ में लार्ड सैलिसबरी के त्याग-पत्र देने के बाद कोई भी पीयर प्रधानमंत्री नहीं बना है। 1923 ई॰ में यह समस्या उत्पन्न हुई कि क्या किसी पीयर को प्रधानमंत्री बनाया जा सकता है। बोनर लॉ के त्याग-पत्र देने के बाद सम्राट के सामने प्रश्न उठा– लार्ड कर्जन, जो एक पीयर था और स्टेजनी वाल्डविन, जो लोक-सभा का सदस्य था, दोनों में से किसे प्रधानमंत्री चुना जाय। अन्त में, वाल्डविन को ही प्रधानमंत्री बनाना पड़ा, यद्यपि उसे कर्जन की तुलना में मंत्रित्व का नहीं के बराबर अनुभव था। इस प्रश्न पर निष्कर्ष यही दिया जाता है कि यद्यपि यह नियम कि प्रधानमंत्री को लोक-सभा का सदस्य अवश्य होना चाहिए, अनिवार्य नहीं है, फिर भी जैसा कि कीथ का कहना है, कि "प्रधानमंत्री पद के लिए किसी कुलीन पुरुष का चुन लिया जाना एक साधारण सी बात हो गयी है।" चूँकि मंत्रिमंडल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है और उसका जीवन-मरण लोकसभा के विश्वास से सम्बन्धित है इसलिए उसके नेता को अवश्य ही लोक-सभा का सदस्य होना चाहिए।

(iv) प्रधानमंत्री के व्यक्तिगत गुण : यद्यपि नियमत: प्रधानमंत्री पद के लिए कोई निश्चित योग्यता नहीं है, फिर भी व्यवहार में उसके लिए कुछ निजी गुणों को होना अनिवार्य है। विभिन्न विद्वानों ने प्रधानमंत्री के लिए विभिन्न योग्यताओं का उल्लेख किया है। मुनरो के शब्दों में, "ब्रिटेन में प्राय: प्रधानमंत्री कुलीन, सुशिक्षित तथा धनवान होते हैं। वे छोटी आयु में ही राजनीति में प्रवेश करते और इसे अपना व्यवसाय बना लेते हैं।" मगर पिट ने प्रधानमंत्री के इस गुणों का उल्लेख किया है : "पहला व्यक्तित्व शक्ति, दूसरे ज्ञान, तीसरे परिश्रम और अन्त में, धैर्य।" उसे केवल लोकमत का अध्ययन करने वाला विद्यार्थी ही नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे प्रचार-कला का पंडित भी होना चाहिए। फाइनर कहता है कि "उसके गुण होने चाहिए सभी खतरों के प्रति सदा सजगता, उनसे भागनेवाले नहीं; सभी वृहत् ज्ञान और योग्यता, अधिक विशिष्टता या अज्ञान नहीं तत्क्षण और स्थिर आकुलता तथा उत्साह की क्षमता निश्चलता नहीं।" डॉ. जेनिंग्स के अनुसार, उनके व्यक्तित्व एवं सम्मान का जनमत को प्रभावित करने में विशेष प्रभाव पड़ता है। इसलिए उनमें सिने-अभिनेताओं के समान जनता के मन को आकर्षित करने के लिए कुछ विशेष कौतुक होना चाहिए, और उसे अपने व्यक्तित्व को आकर्षक करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए, जैसे– पाइपों वाले बाल्डविन और सिगारों वाले चर्चिल! उसे भाषणें का अच्छा आविष्कारक तथा कुशल वक्ता भी होना चाहिए। सम्भवत: उससे भी अधिक आवश्यक ध्वनिविस्तारक पर बोलने की विधि है..... अन्त में, यह आवश्यक है कि वह अपने राजनीतिक मित्रों की निष्ठा को बनाये रखे।।" लॉस्की ने भी प्रधानमंत्री के गुणों का वर्णन इन प्रकार किया है, "विवेक, कौशल, मनुष्यों पर शासन की शक्ति, विश्वसनीय व्यक्तियों की पहचान, प्रभावशाली वक्तव्य देने की क्षमता, ऐसा शिक्षात्मक निर्णय कि वह बल तथा लोकमत से आगे तो अवश्य हो, लेकिन इतना न हो कि उसका सुगमतापूर्वक पालन न हो सके, एक ऐसी महत्त्वाकांक्षा जो आगे तो बढ़ाये, पर साथ आकस्मिकता के प्रदर्शन में सजग हो, व्यक्तियों या कार्यों के बारे में तत्कालीन निर्णय के समय मर्यादित व्यग्रता– ये सब ऐसे गुण हैं जिनके बिना किसी प्रधानमंत्री का काम नहीं चल सकता।"

प्रधानमंत्री के अधिकार और कर्त्तव्य (Powers and functions of the Prime Minister) **:** सम्राट एक नाम मात्र का प्रधान है। व्यवहार में उसकी तमाम् शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिमंडल द्वारा होता है जो अन्ततोगत्वा प्रधानमन्त्री के हाथ में चला जाता है। वस्तुत: प्रधानमन्त्री के हाथ में ही शासन का तमाम अधिकार रहता है। वह ब्रिटिश संविधान की कुँजी है। डॉ॰ जेनिंग्स उसे "संविधान की बुनियाद कहते है। यद्यपि उनकी शक्तियाँ संविधान में कहीं लिखी हुई नहीं हैं, फिर भी वे इतनी अधिक हैं कि विश्व के किसी भी संवैधानिक शासन को उतनी अधिक शक्तियाँ प्राप्त नहीं। ग्रीव्ज ठीक कहता है कि "उसकी औपचारिक शक्तियाँ एक अनियंत्रित शासक-की-सी दिखाई देती है।"

शक्तियों के स्त्रोत: उसकी शक्तियों के मुख्यत: दो स्त्रोत हैं– विधि और विजित दल के नेता की स्थिति। पिछली

नोट

शताब्दियों में सम्राट शासन का वास्तविक अधिकारी था, लेकिन समय बीतने के साथ उसकी शक्तियाँ क्राउन को हस्तान्तरित हो गयीं और उन्होंने रूढ़ियों का रूप ले लिया। क्राउन के अन्तर्गत शक्तियों का वास्तविक प्रयोगकर्त्ता मंत्रिमण्डल तथा उसका प्रधानमंत्री है। इस प्रकार प्रधानमन्त्री सम्राट के स्थान पर देश का वास्तविक शासक बन गया है। उसकी शक्तियों का प्रमुख आधार दलगत राजनीति का विकास है। वह बहुमत दल के नेता के रूप में प्रधानमन्त्री रहता है। जबतक लोक-सभा में उसके दल का बहुमत है, वह बिना किसी नियन्त्रण के शासन करता है। प्रधानमन्त्री के साथ पूरे दल का भाग्य बंधा रहता है, इसलिए दल के सदस्यों का पूर्ण समर्थन प्राप्त होता है। उसकी शक्तियों के एक अन्य स्त्रोत का भी उल्लेख किया जा सकता है। आजकल आम जनता संसद को शक की नजर से देखने लगी है कि वह विशेष हितों का प्रतिनिधि है जबकि प्रधानमंत्री आम हितों का रक्षक है। प्रधानमंत्री की स्थिति दल-संगठन के फलस्वरूप इतनी दृढ़ होती है कि वह व्यक्तिगत तथा वर्गीय हितों से कम प्रभावित होता है और समस्त जनता के हितों को समझने और सुलझाने का प्रयत्न करता है। अत: आम जनता नेतृत्व के लिए प्रधानमंत्री की ओर टकटकी लगाये रहती है। जनता का समर्थन प्रधानमंत्री को बहुत शक्तिशाली बना देती है।

(i) मंत्रिमंडल का निर्माण, जीवन तथा मरण का केन्द्र-स्थल : प्रधानमंत्री मंत्रिमंडल के निर्माण, जीवन तथा मृत्यु का केन्द्र (Centre of formation, life and death) है। प्रधानमंत्री पद की बागडोर सँभालने के बाद उसका कर्त्तव्य होता है मन्त्रिमंडल का निर्माण करना। टेकनिकल रूप से अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राज्य के प्रधान अर्थात् सम्राट द्वारा होती है, लेकिन अनौपचारिक रूप से प्रधानमन्त्री ही उन्हें नियुक्त करता है, क्योंकि उसके परामर्श पर सम्राट उन्हें मन्त्रिमंडल में शामिल करता है। साधारणतया सम्राट प्रधानमन्त्री द्वारा मन्त्रि-परिषद् के सदस्यों की सूची बिना हिचक स्वीकृत कर लेता है। तात्पर्य यह है कि प्रधानमंत्री मन्त्रिमंडल के निर्माण में बहुत कुछ स्वतन्त्र है, लेकिन प्रधानमन्त्री के हाथ भी कुछ व्यावहारिक प्रतिबन्धों से बँधे हुए हैं, उसे यह देखना पड़ता है कि उसके दल के प्रमुख सदस्य उनके मन्त्रिमंडल में आ जाएँ। कभी-कभी तो उसे ऐसे व्यक्तियों को मंत्रिमंडल में रखना पड़ता है जिन्हें वह नहीं चाहता और जिन्हें नहीं रखने से संकट में पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त उसे विभिन्न वर्गों, विभिन्न धर्मों, विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों, नवयुवक राजनीतिज्ञों आदि के प्रतिनिधित्व को ध्यान में रखना पड़ता है। इतना ही नहीं, दल या संसद के बाहर के व्यक्ति को भी वह मन्त्रिमंडल में स्थान दे सकता है, यदि उसे किसी खास काम के लिए योग्य समझे। उदाहरणस्वरूप, 1903 ई॰ में बाल्फर (Balfour) ने उपनिवेश मन्त्रित्व लार्ड मिलनर (Lord Milner) को उस समय दे दिया जबकि वह दक्षिणी अफ्रीका में उच्चायुक्त था और जबकि उसे बिल्कुल संसदीय अनुभव नहीं था। मैकडॉनल्ड (Macdonald) ने सन् 1942 ई. में किसी भी दल से असम्बद्ध भारत के अवकाश-प्राप्त वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड (Lord Chelmstord) को नौसैनिक मन्त्री का पद दिया। 1924 ई॰ में अनुदारवारियों के विरोध के बावजूद बाल्डविन ने चर्चिल को वित्त मन्त्री नियुक्त किया। इस प्रकार यह प्रधानमन्त्री ही निर्णय करता है कि मन्त्रिमंडल में कितने मंत्री हों और उसमें कौन-कौन मंत्री लिए जायँ। वास्तव में शासन के निर्माण में प्रधानमंत्री को पूरी छूट रहती है? "इस संबन्ध में तो संसद न ही दलीय कार्यपालिका ने ही उसके ऊपर दबाव डाला है।"

प्रधानमंत्री केवल मंत्रिमंडल का निर्माण ही नहीं करता है, बल्कि उसे जीवन देता है तथा गति प्रदान करता है। मन्त्रियों के बीच विभागों का वितरण प्रधानमन्त्री ही करता हैं यदि कोई अनुभवी राजनीतिज्ञ चाहे तो किसी विभाग को अस्वीकृत भी कर सकता है; बशर्ते कि उस दल में उसको इतना समर्थन एवं आदर प्राप्त हो कि शासन को उसकी सेवाएँ अत्यन्त जरुरी हो और दल के लिए भी ऐसे व्यक्ति से वंचित होना बुद्धिमानी न हो। साधारणत: विभागों के वितरण के सम्बन्ध में प्रधानमंत्री का निर्णय अन्तिम होता है। पद की अस्वीकृति का अर्थ हो सकता है, सिर्फ उस संसद काल के लिए ही नहीं बल्कि सदा के लिए शासन अधिकार से वंचित रहना। सर राबर्ट हॉन जैसे सफल वित्त मंत्री ने जब बाल्डविन द्वारा दिये गये रक्षा मंत्रालय का प्रधान बनना अस्वीकार कर दिया तो भविष्य में फिर कभी किसी पद के लिए उनके नाम पर विचार ही नहीं किया गया। इतना ही नहीं, प्रधानमंत्री यह भी देखता है प्रत्येक मन्त्री की देख-रेख में सब विभाग ठीक से कार्य कर रहे हैं, या नहीं समस्त प्रशासन का मुखिया होने के नाते वह सभी विभागों का निरीक्षण करता है। इसके अलावे प्रधानमन्त्री मंत्रिमंडल की बैठकों का सभापतित्व करता है। वह मंत्रिमंडल की सारी कार्यवाहियों का संचालन करता है। मंत्रिमंडल की कार्यविधि (Agenda) पर उसका नियंत्रण होता है। मंत्रिमंडल के निर्णय तथा नीति

नोट

निर्धारण में प्रधानमंत्री का ही निर्णय होता है। यों तो मन्त्रिमंडल का निर्णय तथा नीति निर्धारण में प्रधानमंत्री का ही सबसे ऊपरी हाथ रहता है। यो तो मंत्रिमण्डल का निर्णय मतदान द्वारा होता है लेकिन अतंत: प्रधानमंत्री का परामर्श ही निर्णायक होता है। बंद कमरे में मंत्रियों में आपसी मतभेद हो सकते है, किन्तु अन्त में सभी को एक होना पड़ता है, क्योंकि तमाम दल की परस्पर अधीनता को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक है। सच पूछा जाय तो आपसी असहमति और विरोध की सम्भावना बहुत कम है। यदि दो मंत्रियों अथवा दो विभागों में मतभेद हो जाय तो वह अपनी बातचीत द्वारा अथवा प्रधानमंत्री के बीच-बचाव द्वारा तय हो सकता है। यदि मंत्रिमंडल के विचार-विमर्श में मतभेद उत्पन्न हो जाय तो मंत्रिमंडल का प्रधानमंत्री एवं दल के नेता होने के कारण प्रधानमन्त्री की स्थिति इतनी सुदृढ़ होती है कि वह कुछ-न-कुछ निर्णय कर देता है। मंत्रिमंडल के सदस्य वाद-विवाद के विषय विचारार्थ प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के पूर्व प्रधानमन्त्री की राय अवश्य लेता है और उसकी सहायता की माँग करता है। थोड़े में प्रधानमन्त्री का पथ-प्रर्दशक है। वह प्रधान होने के नाते सभी मन्त्रालयों की नीतियों का समन्वय करता है। वह शासनरूपी संगठन का प्रमुख प्रबन्धक है। वह समस्त शासन के कार्यों की देख-भाल करता है तथा शासन के विविध क्रिया-कलापों को एक-दूसरे से सम्बद्ध कराता है। इस प्रकार प्रधानमन्त्री का कर्त्तव्य है कि वह देखें कि प्रत्येक विभाग की गाड़ी गतिशील रहें। वह मन्त्रिमंडल को सिर्फ जीवन ही नहीं देता, बल्कि उसे जीवित रखने का भी प्रयत्न करता है तथा गतिशील बनाता है।

प्रधानमन्त्री का सिर्फ निर्माता तथा पालनकर्त्ता ही नहीं, बल्कि संहारकर्त्ता (destroyer) भी है। सभी मंत्रियों का भविष्य उसी के साथ बँधा हुआ है। प्रधानमन्त्री के साथ ही अन्य मन्त्री भी तैरते या डूबते हैं। उसके त्याग-पत्र के साथ पूरी मन्त्रिपरिषद् भंग हो जाती है। इसके अलावा उससे असहमत होने वाले अन्य मन्त्री को त्याग-पत्र द्वारा पद-त्याग करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, 1922 ई॰ में भारत-मन्त्री मांटेग्यू को सहयोगियों के परामर्श के बिना एक अनावश्यक घोषणा करने के कारण मंत्रित्व त्यागना पड़ा था। उसी प्रकार 1935 ई॰ में सैमुएल होर की स्वतन्त्र वैदेशिक नीति के कारण पद-त्याग करना पड़ा था। इसी तथ्य को राबर्टपोल ने इन शब्दों में स्पष्ट किया है, "साधारणत: यदि प्रधानमन्त्री तथा उसके एक मंत्री में गहरा मतभेद उत्पन्न हो जाय और यदि वह मतभेद मंत्रियों में बातचीत तय न हो सके तो उसका फल यह होगा कि मन्त्री को हटाना पड़ेगा, प्रधानमन्त्री को नहीं।" यदि प्रधानमंत्री को यह विश्वास हो जाय कि किसी मन्त्री विशेष के मंत्रिमंडल में रहने से समस्त मंत्रिमंडल की कार्यक्षमता, योग्यता, ईमानदारी तथा शासन की नीति पर बुरा प्रभाव पड़ने की आशंका है तो वह समस्त शासन के मुखिया होने के नाते अपने साथी से त्याग-पत्र माँग सकता है। यों तो विधि अनुसार मन्त्रियों को बरखास्त (Dismiss) करने का अधिकार सम्राट का विशेषाधिकार है, लेकिन व्यवहार में यह परम्परा बन गयी है कि इस अधिकार का प्रयोग वह प्रधानमंत्री की सलाह से करेगा। अत: मंत्रियों की नियुक्ति का अधिकार प्रधानमन्त्री का अधिकार है। यहाँ एक उल्लेखनीय प्रथा यह है कि कोई भी मन्त्री लोक हित के लिए ही मंत्रि-पद पर आसीन रह सकता है। इसलिए यदि किसी मंत्री को यह मालूम हो जाता है कि उसके उदासीन रहने से आम लोगों के अहित की सम्भावना है या जनमत उसके विरुद्ध है तो उसका पुनीत कर्त्तव्य हो जाता है कि त्याग-पत्र दे दें।" मंत्रियों ने इस परम्परा का पालन भी किया है। उदाहरणार्थ मि॰ लौवे (Mr. Lowe) तथा मि॰ एरीटन (Mr. Aryton) ने सन् 1873 ई॰ में त्याग-पत्र दिया, कर्नल सीली (Colonel Seely) ने 1914 ई॰ में त्याग-पत्र दिया, मि॰ मॉण्टेग्यू (Mr. Montague) तथा मि॰ आस्टिन चेम्बरलेन (Mr. Austin Chamberloin) ने 1917 ई॰ में त्याग-पत्र दिया, और एन्थोनी इडेन (Anthony Eden) ने 1956 ई॰ में पद-त्याग किया तथा प्रोफ्यूमों ने 1963 में।

इस प्रकार प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल के निर्माण, जीवन तथा मरण के केन्द्र-बिन्दु है। वह मंत्रिमंडल का निर्माणकर्त्ता, पालनकर्त्ता तथा संहारकर्त्ता, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश है। मंत्रिमंडल रूपी मेहराब (arch) की आधारशिला है। मंत्रिपरिषद् की वह कुँजी है। लेकिन अमेरिका के राष्ट्रपति की तरह मंत्रिमंडल का मालिक नहीं है, मंत्रिमंडल के अन्य सदस्य उसके नौकर नहीं बल्कि सहयोगी हैं। प्रधानमंत्री तथा सहयोगियों में क्या संबंध है, इसे विद्वानों ने विभिन्न रूप में व्यक्त किया है। लार्ड मार्ले ने 'समकक्षों में प्रथम' (Primus interpares) कहा था। उसका कहना था कि "यद्यपि प्रधानमन्त्री तथा उसके सहयोगी सामान्यत: एक समान होते हैं, उसमें सभी निश्चय एकमत से किये जाते हैं और वे भाईचारे से मिलकर काम करते हैं, तथापि प्रधानमन्त्री की एकमत में विशेष स्थिति तथा आधार-सत्ता का प्रयोग करता है।" लेकिन ब्रिटिश उदारवादी लेखक राम्जे म्योर उस विचार से सहमत नहीं है। उनकी राय में प्रधामन्त्री को आम व्यक्तियों में प्रथम कहना

नोट

सर्वथा भ्रममूलक है; क्योंकि वह अपने सहयोगियों को नियुक्त करता तथा पदच्युत करता है। विधि में नहीं, लेकिन व्यवहार में वह राज्य का कार्यकारी प्रधान है, जिसकी शक्तियाँ इतनी व्यापक है जितना कि विश्व में किसी भी संवैधानिक शासक, यहाँ तक कि अमेरिकन राष्ट्रपति को प्राप्त नहीं" मार्ले की उपमा से उत्तम सर विलियम हारकोर्ट (Sir William Harcourt) का लैटिन वाक्यांश नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा" है। किन्तु यह वाक्यांश भी प्रधानमन्त्री तथा मंत्रियों के बीच सही-सही स्थिति का मूल्यांकन करने में अस्पष्ट है। डॉ॰ जेनिग्स का कहना है कि "प्रधानमन्त्री केवल समान श्रेणी वालों में प्रथम ही नहीं है और न केवल हारकार्ट के शब्दों में 'सितारों के बीच चन्द्रमा ही है। वह सूर्य के समान है जिसके चारों ओर ग्रह घूमते हैं।" जेनिंग्स का कथन बहुत सही है वास्तव में प्रधानमंत्री सूर्य है जिसके चारो और मंत्रीरूपी उपग्रह चक्कर काटते है।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि प्रधानमंत्री तानाशाह हो सकता है। यद्यपि वह मंत्रियों को नियुक्त करता तथा शासन में स्थान देता है, फिर भी उसके प्रति नहीं, वे संसद के प्रति उत्तरदायी है। उसके साथ अधिनायक की तरह व्यवहार नहीं कर सकता है, बल्कि वह उन्हें अपने साथ लेकर चलता है। प्रधानमंत्री उसके विचारों की उपेक्षा नहीं कर सकता और न उससे स्वामी की तरह बातचीत कर सकता है। फाइनर का कहना है कि "यह मानना ही पड़ेगा कि प्रधानमन्त्री कोई सीजर नहीं है और न उसका साथी ऐसा है जिसे चुनौती नहीं दी जा सके। उसका विचार भी अनुल्लघनीय है। उसकी सत्ता का एक मात्र आधार यह है कि वह राष्ट्र की कितनी सेवा कर सकता है। किसी भी समय उसका प्रतिद्वन्द्वी उसका स्थान ग्रहण कर सकता है।" उसकी प्रतिष्ठा का आधार उसके दल का समर्थन है। लॉस्की ने ठीक ही कहा है कि "दल संगठन के प्रसंग में उसकी शक्ति उसके प्रभाव पर आधारित है। सारांश में, प्रधानमंत्री किसी सहयोगी को विवश कर नहीं बल्कि समझा-बुझाकर अपने विचारों को मनवा सकता है। उसकी शक्ति अनुशासनिक (disciplined) के साथ-साथ नैतिक (ethical) भी है। अत: उसे सहयोगियों के प्रति धृष्ट, कठोर, अकुशल तथा अन्यायपूर्ण नहीं होना चाहिए अन्यथा दल की एकता को धक्का पहुँचेगा और फलस्वरूप उसका भविष्य भी अन्धकारमय हो जायेगा।

(ii) दल का नेता : शासन का प्रधान होने के अतिरिक्त प्रधानमंत्री बहुमत दल का नेता (Party Leader) होता है। देश में उसकी सर्वोच्च शक्ति का बड़ा राज है कि वह विजयी दल का नेता होता है। दल नेता होने के नाते ही वह शासन का प्रधान हो पाता है। इस स्थिति में उसका व्यक्तित्व सार्वजनिक रूप ले लेता है। रेडियो, कार्टून, प्रेस आदि द्वारा जनता के समक्ष उसके विरूद्ध उँगली उठाना दल के साथ विश्वासघात माना जाता है। वह दल की एकता का प्रमुख स्तम्भ है। प्रधानमंत्री के भविष्य के साथ दल का भविष्य बँधा रहता है। आम चुनाव (General Election) उसी के व्यक्तित्व को केन्द्र बनाकर लड़ा जाता है। इसलिए यह कहना ठीक ही है कि आम चुनाव ही प्रधानमंत्रियों के बीच जनमत संग्रह (Plebiscite) है। ग्लैडस्टोन ने 1857 ई. के आम निर्वाचन के ऊपर प्रकाश डालते हुए कहा था कि यह 1874 ई॰ के जैसा आम निर्वाचन नहीं है, जबकि पिट ने देशों से अपील की थी क्या क्राउन को अल्पमत वाले शासन का दास रहना चाहिए? यह निर्वाचन 1831 ई. के निर्वाचन की तरह नहीं है जबकि सुधारों के ऊपर जनमत माँगा था, न यह निर्वाचन 1882 ई॰ जैसा है जबकि निर्वाचन-व्यापार संरक्षण के आधार पर लड़ा गया था। देश को इस (1857 ई.) आम चुनाव में नीति के बारे में तय करना नहीं था, बल्कि केवल यह तय करना था कि देश पामर्स्टन को प्रधानमंत्री चुनेगा या नहीं। 1880 ई॰ के आम चुनाव में यह तय करना नहीं था, बल्कि केवल यह तय करना था कि देश पामर्स्टन को प्रधानमंत्री चुनेगा या नहीं। 1880 ई॰ के आम चुनाव में यह तय करना था कि देश लार्ड बेकन्सफील्ड को प्रधानमंत्री बनाना चाहता था या ग्लैडस्टोन कों। 1945 ई॰ के आम चुनाव में अनुदार दल ने नहीं बल्कि चर्चिल ने व्यक्तिगत रूप में देश से अपील की। प्रत्येक हाल में प्रधानमन्त्री की तस्वीर टाँग दी गई थी जिसके नीचे ये शब्द लिखे थे " इसको युद्ध का अधूरा काम करने दों ओर उसके नीचे छोटे अक्षरों में निम्नलिखित असंगत शब्द जुड़े हुए थे "युद्धजन्य क्षति को वोट दो।" अनुदार दल ने चुनाव घोषणा-पत्र भी प्रकाशित नहीं कराया, किन्तु चर्चिल ने अपना चुनाव घोषण्धा-पत्र प्रकाशित कराया, जो "मैं" शब्द से प्रारम्भ होता था। निर्वाचन का नारा था; "चर्चिल या लॉस्की" जिसमें लॉस्की को विशेष रूप से शैतान बताया गया था। 1983 के ऐतिहासिक आम चुनाव का मुख्य मुद्दा "थेचरवाद बनाम समाजवाद" (Thateherism vs. Socialism) था। अनुदार दल की प्रत्याशित जीत का मुख्य कारण थैचर का "लौह महिला" (Iron Lady) का व्यक्तित्व और "ब्रिटिश सुरक्षा के खतरे का सामना करने की इच्छा और ताकत (the will and the capacity

नोट

to meet threats to British Security) थी।" मजदूर दल की हार का एक मुख्य कारण दल के नेता माईकेल फूट का "नरम" (moderate) व्यक्तित्व था। सभी आम चुनाव दलों के नेताओ के बीच होते हैं न कि अनुदार दल और मजदूर दल के बीच। निर्वाचन द्वारा प्रधानमंत्री राष्ट्र का प्रतीक बन जाता है। उसके व्यक्तित्व में दल की प्रतिष्ठा तथा शक्ति पायी जाती है। इन कारणों से दल के अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति उसे पदच्युत करने में सफल नहीं हो सकता है। एक बार प्रधानमंत्री हो जाने के बाद उसे नेता-पद से निकाल फेंकना मुश्किल हो जाता है, जिस प्रकार वेटन और उसे अनुयायी एटली को तथा चर्चिल और उसके अनुयायी नेविली चेम्बरलेन को पदच्युत करने में असफल रहे।। वस्तुत: प्रधानमंत्री के व्यक्तित्व पर दल टिका रहता है। अज्ञान-से-अज्ञान व्यक्ति भी 10, डाननिंग स्ट्रीट को जानता है, लेकिन अन्य मन्त्रियों या राजनीतिज्ञों के बारे में कोई चिन्ता नहीं करता। निष्कर्षत: बहुमत दल के नेता होने के कारण प्रधानमंत्री की स्थिति बहुत ही शक्तिशाली हो जाती है।

(iii) लोक-सभा का नेता– प्रधानमंत्री संसद का आजकल मुख्यत: लोक-सभा का नेता (Leader of the Commons) होता है। लार्ड-सभा में वह किसी को नियुक्त कर देता है जो उस सदन में उसका प्रतिनिधितव करता है। लोक-सभा में इस प्रकार प्रतिनिधि की नियुक्ति की प्रथा है लेकिन व्यवहार में प्रधानमंत्री ही जनप्रिय सदन का नेतृत्व करता है मंत्रिमंडल का अन्य कोई सदस्य प्रधानमंत्री की तरह लोक-सभा में समस्त मंत्रिमंडल का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता है। शासन की नीति से सम्बन्धित अन्तिम तथा अधिकृत भाषण प्रधानमंत्री का होता है। सरकार की नीति तथा कार्य के बारे में प्रमुख घोषणाएँ प्रधानमंत्री से ही होती है। लोकसभा में अविभागीय तथा आलोचनात्मक समस्याओं पर प्रश्न प्रधानमंत्री से ही पूछे जाते हैं, तथा दिऐ गये भाषण से उत्पन्न गलतफहमी को तुरंत दूर करने का कार्य उसी का है। अपने साथियों के भाषण में इस प्रकार सुधार लाने का अधिकार सिर्फ प्रधानमंत्री को है अन्य किसी मंत्री को नहीं। प्रधानमंत्री ही लोक-सभा में महत्त्वपूर्ण विषयों पर अन्तिम सुवक्ता (Ultimate Oracle) तथा नीति स्रोत (Fountain of Policy) है।

लोक सभा के संचालन में भी प्रधानमंत्री नेतृत्व प्रदान करता है। वह व्यवस्थापिका का प्रधान होता है। वह व्यवस्थापन का नीति निर्धारण कर संसद का पथ-प्रर्दशन करता है। सभी सरकारी विधेयक, उसकी निगरानी में तथा उसके परामर्श के अनुसार तैयार किये जाते हैं। वार्षिक बजट को तैयार करने में प्रधानमंत्री का बहुत बड़ा हाथ रहता है। लोक-सभा में व्यवस्था रखने के लिए वह अध्यक्ष ही सहायता करता है। दलीय सचेतक द्वारा वह दल के सदस्यों को आवश्यक आदेश देता है। वह सदन का समय-विभाजन तथा कार्यक्रम तैयार करता है; सरकारी और निजी कार्य का समय निर्धारित करता है, विरोधी दल के परामर्श से प्रत्येक कार्यवाही के लिए समय निर्धारित करता है।

संसद से सम्बन्धित प्रधानमंत्री का अन्य महत्त्वपूर्ण अधिकार लोक-सभा को विघटित करने का है। प्रधानमंत्री सम्राट को लोक-सभा को भंग करने का परामर्श दे सकता है और सम्राट साधारणतया उसे अस्वीकार नहीं कर सकता। पिछले एक सौ वर्षों में सम्राट ने ऐसा कभी नहीं किया है। प्रधानमंत्री के हाथ में यह बहुत ही शक्तिशाली हथियार है जिसके द्वारा वह लोक-सभा के सदस्यों को अनुशासित तथा नियन्त्रित करता है।

(iv) सम्राट और मंत्रिमंडल के बीच में कड़ी : प्रधानमंत्री आम जनता के महत्त्व की बातों को सम्राट तक पहुँचाने का माध्यम (link) है; वह सम्राट तथा मंत्रिमंडल को एक-दूसरे से जोड़ने वाली कड़ी का काम करता है। प्रारम्भ में "प्रधानमंत्री की उपेक्षा कर" अन्य मंत्री सम्राट से सीधा सम्पर्क स्थापित कर लेते थे, लेकिन आजकल यह परम्परा स्थगित हो गयी है। सिर्फ प्रधानमंत्री ही सम्राट को शासन-सम्बन्धी सूचनाएँ दे सकता है, यहाँ तक कि विशुद्ध विभागीय मामलो में भी प्रधानमन्त्री ही माध्यम का काम कर सकता है। मंत्रिमंडल सचिवालय मंत्रिमंडल के निर्णयों को लिखता है और वह उसकी नकल सम्राट को भेजता है इसके अतिरिक्त मंत्रिमंडल के अन्य विचारों तथा निर्णयों की सूचना प्रधानमंत्री को स्वेच्छा से सम्राट को देता है। एक बार जहाँ प्रधानमंत्री ने सम्राट को इस सम्बन्ध में सूचना दे दी फिर, "किसी अन्य मंत्री द्वारा इसके दुहराये जाने की आवश्यकता नहीं।" इस प्रकार प्रधानमंत्री सम्राट का प्रमुख परामर्शदाता है। आपात्काल में सम्राट सर्वप्रथम प्रधानमंत्री से ही सलाह लेता है। यहाँ तक प्रधानमंत्री सम्राट के व्यक्तिगत जीवन के मामलों को भी नियंत्रित करता है। सम्राट किन-किन सरकारी कार्यों में भाग लेगा, साम्राज्य या राष्ट्रमंडल के किस माँग की यात्रा करेगा आदि बातों का निर्णय प्रधानमंत्री ही करता है। स्टैनले बाल्डविन इसे अपना अधिकार तथा कर्त्तव्य समझते थे। इसी अधिकार के अन्तर्गत उन्होंने एडवर्ड अष्टम को श्रीमती सिम्पसन से विवाह नहीं करने की सलाह दी

नोट

थी और मंत्रिमंडल से बात काफी आगे बढ़ जाने पर परामर्श किया था। प्रधानमंत्री इस अधिकार के द्वारा सम्राट को नियंत्रित करता है तथा शासन का वास्तविक प्रधान बन जाता है।

(v) अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिनिधि : अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ब्रिटिश प्रधानमंत्री का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह वैदेशिक नीति पर पूर्ण नियंत्रण रखता हैं। यद्यपि विदेश–विभाग उसके हाथ में नही रहता, फिर भी वैदेशिक नीति का वही निर्माणकर्त्ता है। फलत: विदेश मंत्री के कार्यकलापों पर कड़ी निगरानी रखता है जैसे–चेम्बरलेन द्वारा इडेन पर, चैम्बरलेन द्वारा हाली फॉक्स पर, मैक्डोनेलड द्वारा हेण्डरसन पर और चर्चिल द्वारा इडेन पर। वैदेशिक नीति–संबंधी महत्त्वपूर्ण सम्मेलनों, उत्सवों, डोमिनियनों तथा राष्ट्रमंडल के देशों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार–विमर्श में भाग लेता है। लार्ड विकसफील्ड ने बर्लिन की सभा में भाग लिया, लायड जॉर्ज ने पेरिस के शांति सम्मेलन में हाथ बँटाया, और नेविल चैम्बरलेन के प्रयास के फलस्वरूप म्यूनिख समझौता हुआ, चर्चिल ने तो द्वितीय महायुद्ध काल में छ: बार राष्ट्रपति रूजवेल्ट से और दो बार स्टालिन से भेंट की, प्रधानमंत्री विल्सन को भी रोडेसिया की स्वतन्त्रता सम्बन्धी समस्या को सुलझाने के लिए स्मिथ से स्वयं मिलना पड़ा था। प्रधानमंत्री अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों, राष्ट्रमंडलीय सम्मेलन तथा अन्य सम्मेलनों में भाग लेते है तथा अन्य राज्याध्यक्षों से विचार–विमर्श के हेतु मिलते हैं। इस प्रकार प्रधानमंत्री ब्रिटिश राष्ट्र का अंतराराष्ट्रीय प्रतिनिधि है।

(vi) संरक्षण और उपाधियाँ संबंधी शक्ति : प्रधानमंत्री के पास संरक्षण तथा कृपा के अपार स्रोत है। उपाधियाँ प्रदान करना सम्राट का विशेष अधिकार है। लेकिन प्रधानमंत्री की सिफारिश पर ही सम्राट किसी को उपाधि दे सकता है या पीयर बना सकता है। किन्तु इस संबंध में कुछ ऐसे भी अपवाद है जैसे ऑर्डर ऑफ सेंट माइकल एण्ड सेट जॉर्ज (Order of St. Michael and St, George) अथवा नौसेना, स्थलसेना एवं वायुसेना संबंधी उपाधियाँ जिसमें सम्बन्धित मन्त्री सम्राट को तदर्थ सत्ता देते हैं। उपाधियों के अतिरिक्त सभी बड़े पदों पर नियुक्तियाँ प्रधानमंत्री के द्वारा ही की जाती है। विशप, राजदूत, न्यायाधीश, विभागीय प्रमुखगण, उपनिवेशों के गवर्नर, स्थायी आयोगों और बोर्डों के मुख्य अधिकारी, प्रधानमंत्री के ही कृपा–पात्र हैं। यद्यपि नियुक्तियों के सम्बन्ध में विभागीय मंत्रियों की राय ली जाती है, फिर भी प्रधानमंत्री का ही निर्णय अंतिम होता है। अन्त में सिविल सर्विस पर वित्त मंत्रालय का नियंत्रण होता है। और वित्त–मंत्रालय के ऊपर प्रधानमंत्री का प्रथम लार्ड होने के नाते नियंत्रण रहता है।

(vii) आपातकालीन अधिकार : प्रधानमंत्री को आपातकालीन अधिकार भी प्राप्त है। युद्ध, अर्थ–संकट या अन्य इसी प्रकार के संकटों के समय में उनकी शक्ति बढ़ जाती है। यद्यपि भारतीय संविधान की ये विधि–विहीन नहीं है, फिर भी तुरन्त कदम उठाने के लिए पूरे राष्ट्र की शक्ति को विपत्ति से लड़ने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि कार्यपालिका काफी शक्तिशाली बन जाय। दूसरे विश्व–युद्ध के समय एक प्रजातांत्रिक राज्य में चर्चिल ने तानाशाही राज्यों के हिटलर और मुसोलिनी से कम शक्ति का प्रयोग नहीं किया। आपातकाल में वस्तुतत: संवैधानिक तानाशाही की स्थापना हो जाती है जिसका तानाशाह प्रधानमंत्री होता है। कभी–कभी तो जल्दबाजी में यदि कार्य करने से पहले विचार–विमर्श का समय नहीं मिलता है तो उस कार्य को पूरा करने के बाद मंत्रिमंडल की स्वीकृति ली जाती है, जैसे–डिजरैली ने स्वेज नहर में हिस्सा खरीदने के बाद उसे मंत्रिमण्डल के विचार–विमर्श के लिए प्रस्तुत किया। प्रधानमंत्री की युद्ध कालीन स्थिति की चर्चा करते हुए कार्टन आदि ने लिखा है कि युद्ध–संचालन के संबंध में प्रधानमंत्री क्या करता है; यह उसकी अपनी रुचि और योग्यता पर निर्भर करता है। परन्तु यह स्पष्ट है कि पिछली शताब्दी की अपेक्षा उसका भाग अब अधिक व्यापक हो गया है। अपने परमर्शदाताओं पर यद्यपि वह सब एकमत भी हो, तब भी मामले नहीं छोड़े जा सकते। जब सैनिक मामले राजनीतिक उद्देश्यों अथवा घरेलू आवश्यकताओं को प्रभावित करते हो, तो उसे स्वयं निर्णय करना आवश्यक है। प्रधानमन्त्री ही केवल इस स्थिति में होता है कि युद्ध संचालन के सब दृष्टिकोणें पर विचार कर उनका विश्लेषण कर सके। कोई उसका स्थान नहीं ले सकता। कोई उसका उत्तरदायित्व ग्रहण नहीं कर सकता। अब सैनिक निर्णय करने में वह भाग नहीं लेता परन्तु अन्तिम उद्देश्यों को निर्धारित करने में वह निश्चय ही भाग लेता है। युद्ध काल में शक्ति और उत्तरदायित्व के केन्द्रीकरण की आवश्यकता है। लार्ड जार्ज और चर्चिल दोनों ने अपने मन्त्रिमंडलों का युद्ध के दौरान पुनर्गठन किया। चर्चिल तो सुरक्षामन्त्री के पद का निर्माण कर स्वयं उस पर आसीन हो गया। वह युद्ध की गतिविधियों से बहुत निकट सम्पर्क रखता था 'चीफ ऑफ कमिटी' का स्वयं

नोट

नियन्त्रण-निर्देशन करता था और यहाँ तक कि नौसैनिक योजनाओं, यातायात, खाद्य आपूर्ति, राष्ट्रीय वित्त आदि पर स्वयं निगरानी रखता था। इस प्रकार युद्ध संचालन की शक्ति उनके हाथों में केन्द्रित हो गयी थी। मई, 1966 में नौसैनिक कर्मचारियों (Seaman) की हड़ताल के कारण प्रधानमंत्री विल्सन ने सकंट-काल की घोषणा की थी जिसके अनुसार खाद्यान्न के आयात-निर्यात तथा अनिवार्य सेवाओं में बाधा पहुँचाने वालों को सजा का भागी होना पड़ा।

7.2 यू.एस.ए., फ्रांस, रसिया, चीन का राष्ट्रपति और स्विट्जरलैण्ड की बहुल कार्यपालिका (The President of U.S.A., France, Russia, China and Plural Executive of Switzerland)

अमेरिकी राष्ट्रपति (American President)

फिलाडेल्फिया सम्मेलन द्वारा राष्ट्रपति-पद का सृजन– संयुक्त राज्य अमेरिका में अध्यक्षात्मक पद्धति की सरकार है। 1787 में फिलाडेल्फिया सम्मेलन (Philadelphia Convention) ने पर्याप्त वाद-विवाद के पश्चात् इस पद्धति को अपनाया जिसके परिणामस्वरूप संविधान में राष्ट्रपति पद का सृजन किया गया। फिलाडेल्फिया सम्मेलन के प्रतिनिधि एकमत थे कि केन्द्र में एक शक्तिशाली कार्यपालिका का निर्माण किया जाय; क्योंकि राज्यमण्डल अनुच्छेदो (Articales of Confederation) में एक सुनिश्चित तथा केन्द्रीय कार्यपालिका के अभाव का उन्हें कटु अनुभव हो चुका था। फिर भी उन्हें ध्यान रखना था कि कार्यपालिका उतनी शक्तिशाली भी न हो जो निरंकुश बन जाय। अत: शक्तिशाली, पर नियन्त्रित, कार्यपालिका के दृष्टिकोण से अनेक विकल्प प्रस्तुत किये गये, जैसे–वंशानुगत राजा, जनता द्वारा निर्वाचित प्रधान, व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी कार्यपालिका, एकल या बहुल संघीय कार्यपालिका आदि। अन्त में, फिलाडेल्फिया सम्मेलन में निश्चित कार्यावधि के लिए निर्वाचित एकल कार्यपालिका के पक्ष में समझौता हुआ। अत: संविधान में यह व्यवस्था की गयी कि कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी जो चार वर्ष के लिए अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित हों।

राष्ट्रपति का निर्वाचन (Election of the President)

(क) संवैधानिक उपबन्ध (Constitutional Provisions)

फिलाडेल्फिया सम्मेलन का निर्णय – फिलाडेल्फिया सम्मेलन में राष्ट्रपति की निर्वाचन पद्धति के प्रश्न पर प्रतिनिधियों में पर्याप्त मतभेद था। मुख्यत: दो सुझाव प्रस्तुत किये गये। **प्रथम,** कुछ प्रतिनिधियों ने जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन का सुझाव रखा लेकिन इसे व्यवहारत: असम्भव समझाया। इस पद्धति से अव्यवस्था, हुल्लड़बाजी तथा राजनीतिक असंयम का भी भय था। अत: इस सुझाव को नहीं माना गया। **द्वितीय,** राष्ट्रपति का काँग्रेस द्वारा निर्वाचन का सुझाव प्रस्तुत किया गया जिसे सम्मेलन का पर्याप्त समर्थन हुआ, लेकिन यह पद्धति शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन करती थी तथा संविधान निर्माता राष्ट्रपति को विधान-पालिका से स्वतन्त्र स्थिति देना चाहते थे। फलत: यह सुझाव भी अस्वीकृत ही रहा। अन्त में, दोनों सुझावों के बीच का रास्ता अपनाया गया। एक ऐसी निर्वाचन-पद्धति की खोज की गयी जो राष्ट्रपति को काँग्रेस से स्वतन्त्र स्थिति प्रदान करती तथा अप्रत्यक्ष रूप से जनता को निर्वाचन में भी भाग लेने का अवसर प्रदान करती।

निर्वाचन-मण्डल (Electoral College) – संविधान के द्वितीय अनुच्छेद में राष्ट्रपति के निर्वाचन विधि (Procedure of Election) का उल्लेख किया गया है। राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक-मण्डल (Electoral College) द्वारा होता है। निर्वाचक-गण राज्यों द्वारा नियुक्त सदस्य (Electors) होते हैं। प्रत्येक राज्य से निर्वाचकों की संख्या काँग्रेस के दोनों सदनों में राज्य के प्रतिनिधियों के बराबर होती है, अर्थात् प्रत्येक राज्य से निर्वाचकों की संख्या काँग्रेस के सदनों में मिलकर प्रतिनिधि होते हैं। निर्वाचकों की नियुक्ति प्रत्येक राज्य के विधानमण्डल द्वारा निर्धारित रीति से होती है। लगभग सौ वर्षों से प्राय: सभी राज्यों में निर्वाचकों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा व्यस्क मताधिकार के आधार पर होता है। इस प्रक्रिया को उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है, यदि किसी राज्य की सिनेट में दो सदस्यों और प्रतिनिधि सभा में छ: सदस्य हों तो निर्वाचक-गण में उस समय से आठ (दो-छ:) सदस्य होंगे। निर्वाचकों की संख्या न्यूर्याक में 45,

नोट

कैलिफोर्निया में 32 और इलिनायस में 27 से लेकर नेवाड, डालावेयर, वरमौट प्रत्येक में 3-3 हैं। निर्वाचक-मण्डल का कार्य राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति चुनने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं।

निर्वाचकों की योग्यता–कोई ऐसा व्यक्ति, जो काँग्रेस के दोनों सदनों में से किसी का सदस्य हो अथवा संयुक्त राज्य के अधीन किसी लाभ या उत्तरदायित्व के पद पर कार्य कर रहा हो या ट्रस्ट के पद हो, निर्वाचक नियुक्त नहीं हो सकता।

मतदाता– निर्वाचक को प्रत्यक्ष रूप से मतदाताओं द्वारा चुना जाता है। मतदाताओं के सम्बन्ध में 1970 ई. में **'मतदान अधिकार नियम'** में संशोधन किया गया। इसके पूर्व 21 वर्ष की आयु प्राप्त प्रत्येक नर-नारी को मत देने का अधिकार प्राप्त था, किन्तु अब 18 वर्ष की आयु प्राप्त प्रत्येक नर-नारी को मताधिकार प्रदान कर दिया गया है। दूसरा परिवर्तन आवास की अवधि से संबंधित है। 1970 के पूर्व अमेरिका में कम-से-कम 30 राज्य ऐसे थे, जहाँ वहीं व्यक्ति मतदान कर सकता था जो कम-से-कम एक वर्ष राज्य में लगातार रहा हो। यह अवधि अब 30 दिन कर दी गयी है। तीसरा परिवर्तन यह हुआ कि 1970 के संशोधन के पूर्व मतदाता को अपना नाम पंजीकृत करवाने से पूर्व एक साक्षरता की परीक्षा देनी होती थी। अब यह प्रतिबन्ध भी हटा दिया गया है। ऐसा परिवर्तन नीग्रो नागरिकों को मताधिकार प्राप्त कराने के उद्देश्य से किया गया। इन संशोधनों के परिणामस्वरूप 1972 के राष्ट्रपति चुनाव में 1 करोड़ 10 लाख अतिरिक्त व्यक्तियों को मत देने का अधिकार प्राप्त हुआ।

मतदान और गणना– प्रत्येक राज्य के निर्वाचक एक निश्चित स्थान पर दिसम्बर के द्वितीय बुधवार के पश्चात् प्रथम सोमवार को एकत्र होकर राष्ट्रपति के पद के लिए दो प्रत्याशियों के पक्ष में मत देंगे। मतदान व्यस्क मताधिकार के आधार पर तथा गुप्त पर्चों (Secret Ballot) द्वारा होता है। इनमें कम-से-कम एक व्यक्ति ऐसा होना चाहिए जो उस राज्य का निवासी न हों। निर्वाचन के फलस्वरूप तीन प्रमाण-पत्र (Certificate) तैयार किये जाते हैं, जिसमें एक डिस्ट्रिक्ट कोर्ट में सुरक्षित रहता है, दूसरा डाक द्वारा सिनेट के अध्यक्ष के पास भेजा जाता है और तीसरा उसके पास एक विशेष सन्देश-वाहक (Messenger) द्वारा भेज दिया जाता है। 6 जनवरी को अध्यक्ष, कांग्रेस के दोनों सदनों के सामने उन्हें खोलेगा ओर उनकी गिनती करेगा। राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति दोनों श्रेणियों के उम्मीदवारों में जिन्हें सर्वाधिक मत प्राप्त होगा, उन्हें, निर्वाचित घोषित किया जायगा, लेकिन दोनों निर्वाचकों की कुल संख्या का बहुमत प्राप्त होना चाहिए। 20 जनवरी को राष्ट्रपति शपथ ग्रहण करता है।

जब किसी उम्मीदवार को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता– संविधान में राष्ट्रपति के चुनाव के सम्बन्ध में कुछ अन्य उपबन्ध भी है। यदि किसी प्रत्याशी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो क्या होगा? संविधान के अनुसार इस स्थिति में प्रतिनिधि-सभा उन पाँच व्यक्तियों में से (1804 ई० के संशोधन के अनुसार तीन व्यक्तियों में से) जिन्हें क्रमशः अधिक मत प्राप्त हो, किसी एक को राष्ट्रपति निर्वाचित करेगी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रतिनिधि-सभा के सदस्य व्यक्तिगत रूप से मतदान नहीं करेंगे, बल्कि "राज्य द्वारा मतदान" (Voting by States) होगा; अर्थात् सभी प्रतिनिधि राज्यों के आधार पर अपनी-अपनी मण्डल बनायेंगे और प्रत्येक मण्डल को एक-एक मत देने का अधिकार होगा। इस प्रकार (1) राज्य के प्रतिनिधि अलग-अलग प्रत्याशियों को मत नहीं दे सकते, (2) प्रत्येक मण्डल एक ही व्यक्ति के पक्ष में मतदान करेगा तथा (3) प्रत्येक राज्य को एक ही मत प्राप्त होगा। दूसरी स्थिति तब पैदा होती है, जब दो व्यक्तियों को निर्वाचकों का बहुमत प्राप्त हो, लेकिन दोनों प्राप्त मतों की संख्या समान हो। इस दशा में भी प्रतिनिधि-सभा ही "राज्य द्वारा मतदान" (Voting by States) की पद्धति से किसी एक को राष्ट्रपति निर्वाचित करेगी।

इसी प्रकार यदि किसी भी उम्मीदवार को उप-राष्ट्रपति पद के लिए स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हो पाता तो सर्वाधिक मत-प्राप्त करने वाले दो उम्मीदवारों में से सिनेट किसी एक उम्मीदवार को चुन लेती है। इस हेतु कोरम कुल सिनेटरों का दो-तिहाई बहुमत चाहिए। इस चुनाव में प्रत्येक सिनेटर का एक मत होता है और जिस उम्मीदवार को निरपेक्ष बहुत हो जाय, वह उपराष्ट्रपति चुना जाता है।

बारहवाँ संशोधन– मूल संविधान द्वारा व्यवस्थित राष्ट्रपति की निर्वाचन-पद्धति दोषपूर्ण थी। बारहवें संशोधन (1804ई०) द्वारा इसमें दो सुधार लाये गये। **पहला,** यदि किसी भी व्यक्ति को निर्वाचकों का बहुमत प्राप्त न हो तो प्रतिनिधि-सभा उन तीनों व्यक्तियों में से जिन्हें क्रमशः बहुमत प्राप्त हुआ हो, किसी एक को राष्ट्रपति निर्वाचित करेगी। मूल संविधान में तीन व्यक्तियों के स्थान पाँच व्यक्तियों में से चुनने का विधान था। **दूसरा**, निर्वाचक दो व्यक्तियों के पक्ष में मतदान

नोट

करते समय अपने मतपत्र पर एक व्यक्ति के नाम के आगे 'राष्ट्रपति' और दूसरे व्यक्ति के नाम के आगे 'उपराष्ट्रपति' लिख दें। मूल संविधान में सिर्फ दो प्रत्याशियों को मत देने की व्यवस्था थी, राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के लिए अलग-अलग मत देने का विधान नहीं था, फलस्वरूप 1900 ई॰ के निर्वाचन में **जेफर्सन** और **बर्र** को बराबर मत प्राप्त हुए। अत: यह निश्चित करना कठिन हो गया कि कौन राष्ट्रपति होगा और कौन उपराष्ट्रपति? प्रतिनिधि-सभा को इसका निर्णय करना पड़ा। लेकिन संघर्ष इतना तीव्र था कि 36 बार मतदान के उपरान्त ही निर्णय हो सका। इसी स्थिति से बचने के लिए 'राष्ट्रपति- और 'उपराष्ट्रपति' का उल्लेख आवश्यक कर दिया गया है।

शपथ-ग्रहण– 1933 के पूर्व तक निर्वाचन होने के लगभग 4 मास पश्चात् 4 मार्च को नवीन राष्ट्रपति द्वारा पद-ग्रहण किया जाता था। **बीसवें संशोधन** (1933) द्वारा इसमें परिवर्तन लाया गया। इसके अनुसार नव-निर्वाचित राष्ट्रपति अब 4 मार्च को नहीं बल्कि 20 जनवरी को अपना पद-ग्रहण करता है। इस संशोधन के द्वारा यह भी तय किया गया कि यदि नये राष्ट्रपति की अपने पद पर आसीन होने के पूर्व मृत्यु हो जाती है तो उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति बन जायगा।

पद-ग्रहण के समय सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति को शपथ-ग्रहण दिलाता है। शपथ इस प्रकार है– "मै गंभीरतापूर्व शपथ लेता हूँ कि अमेरिका के राष्ट्रपति पद पर निष्ठापूर्वक कार्य करूँगा और अपनी योग्यता पर अमेरिका के संविधान का संरक्षण, सुरक्षा और प्रतिरक्षण करूँगा।

(ख) व्यवहार में जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन (In practice direct election by the people): अमरीकी संविधान के निर्माता राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए ऐसी पद्धति की खोज में थे जो 'हुल्लड़ और अव्यवस्था' (Tumult and dissorder) से दूर है। फलत: उन्होनें निर्वाचकगण (Electoral College) की पद्धति को अपनाकर परोक्ष निर्वाचन (Indirect election) की व्यवस्था की। प्रथम दो निर्वाचन संवैधानिक उपबन्ध के वास्तविक अर्थ के अनुकूल सम्पन्न हुए, लेकिन तृतीय निर्वाचन (1976 ई॰) में कुछ और चतुर्थ निर्वाचन (1800 ई॰) के समय तो स्थिति में स्पष्ट परिवर्तन हो गया। दलगत आधार पर निर्वाचकों ने जेफर्सन और बर्र (Jefferson and Burr) या एडम्स और पिंकनी (Pinckney) को मत दिया। उस समय तक दो राजनीतिक दलों–फेडरलिस्ट और रिपब्लिकन का अभ्युदय हो चुका था। इन दलों ने चुनाव के पहले अपने ही प्रत्याशियों को चुन लिया था तथा वे उन्हें मत देने वाले निर्वाचकों का समर्थन कर रहे थे। इस प्रकार बहुत पहले ही राष्ट्रपति के निर्वाचन को दलगत राजनीति से दूर रखने का संविधान-निर्माताओं का उद्देश्य धराशायी हो गया। परोक्ष निर्वाचन की प्रक्रिया राजनीतिक दलों के विकास के कारण छिन्न-भिन्न हो गयी। संविधान में आयोजित व्यवस्था से विभिन्न रूप इसने ले लिया। एक ओर यह दलबन्दी के जाल में फँस गया तथा 'हुल्लड़बाजी प्रकृति' (tumultuous Characteristic) को अपनाया, दूसरी ओर राष्ट्रपति निर्वाचक, मण्डल 'नगण्य' (Row Ciphers) या "यन्त्रवत्" (Recording Machine) बन गया। इन दोनों परिणामों का कारण यह है कि राष्ट्रपतीय निर्वाचकों का चुनाव जनता यह ध्यान रखते हुए करती है कि अमुक निर्वाचक किस प्रत्याशी को मत देता। अत: सच पूछा जाय तो जनता प्रत्यक्षत: निर्वाचकों के माध्यम से राष्ट्रपति पद के उम्मीदवारों को ही मत देती है। ऑग और रे के शब्दा में, "लिखित मौलिक विधि को बिना हुए कार्य रूप में संविधान में किस प्रकार परिवर्तन हो जाता है, इसका उदाहरण इससे उत्तम कही नहीं मिल सकता।"

प्रश्न उठता है, आज राष्ट्रपतीय निर्वाचन का वास्तविक रूप क्या है? इसकी जानकरी निम्नलिखित चरणों के अन्तर्गत की जा सकती है–

(i) उम्मीदवारों का मनोनयन (Nomination of the Candidates)– नये राष्ट्रपति के पद-ग्रहण करते ही अगले चार वर्षों के बाद होने वाले राष्ट्रपति के चुनाव की चर्चा होने लगती है। जैसे-जैसे समय नजदीक आता जाता है, उम्मीदवार सामने आने लगते हैं। लेकिन राष्ट्रपति चुनाव का वास्तविक हंगामा विविध दलों द्वारा उम्मीदवारों के चयन के साथ शुरू होता है। 1840 के पूर्व राष्ट्रपति पद के उम्मीदवारों का मनोनयन दल-विशेष के सिनेटर और प्रतिनिधि सभा के सदस्य अपनी अनौपचारिक बैठक (Caucus) में करते थे, परन्तु इस पद्धति में दल के सामान्य सदस्यों की राय का कोई महत्त्व नहीं रहता था और उन राज्यों की इच्छाएँ भी नहीं जानी जा सकती थीं, जहाँ दल अल्पमत में होता था। 1840 में 'कॉकस' द्वारा लोकप्रिय उम्मीदवार एन्ड्रयू जैक्सन की उम्मीदवारी को अस्वीकार करने के कारण दलों द्वारा राष्ट्रपति के पद के उम्मीदवारों के मनोनयन की विधि में परिवर्तन लाया गया।

नोट

अब उम्मीदवारों का चयन डेमोक्रेटिक और रिपब्लिकन दलों के राष्ट्रीय सम्मेलनों (National convention) द्वारा होता है। इस हेतु संविधान में कुछ नहीं कहा गया है। प्रत्येक दल की राष्ट्रीय समिति अपने-अपने दल के लिए सम्मेलन के समय तथा स्थान का निर्णय करती है और इस समबन्ध में प्रारंभिक व्यवस्था करती है। प्रत्येक दल अपना सम्मेलन जुलाई या अगस्त के महीने में प्राय: करता है। राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रतिनिधि (Delegates) के चुनाव के लिए दल विभिन्न तरीके अपनाते हैं, जैसे–प्रारंभिक क्षेत्रों द्वारा, राज्यों जिला सम्मेलनों द्वारा, केन्द्रीय समितियों द्वारा और कभी-कभी राज्य की दलीय समिति द्वारा प्रतिनिधि चुने जाते हैं। प्रतिनिधियों की संख्या सामान्यत: 1,500 से 3,000 के बीच होती है। सम्मेलन में प्रतिनिधियों के अतिरिक्त कुछ वैकल्पिक प्रतिनिधि, (Atlernate Delegates) भी होते हैं जो नियमित प्रतिनिधियों (Regular Delegates) की अनुपस्थिति मतदान में भाग लेते है। सम्मेलन एक हॉल में होता है जिसमें प्रतिनिधियों के अतिरिक्त रेडियो रिपोर्टरों, प्रेस संवाददाताओं और टीकाकारों को भी आमंत्रित किया जाता है। सम्मेलन का वातावरण बहुत ही उत्तेजित रहता है, शोर-शराबे से हॉल गूँजता रहता है और जोशपूर्ण भाषण सुनने को मिलते हैं। उम्मीदवारों का चयन ऐसे कोलाहपूर्ण वातावरण में नहीं हो सकता है। इसलिए दल के प्रमुख नेता परस्पर सौदेबाजी करते हैं और राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति पद के लिए ऐसे उम्मीदवारों को चुनने की कोशिश करते हैं जिन्हें प्रतिनिधियों का स्पष्ट बहुमत (Absolute majority) मिल जाय।

औपचारिक रूप से प्रत्येक उम्मीदवार का नाम उसके किसी समर्थक द्वारा ओजस्वी भाषण के साथ प्रस्तावित किया जाता है और किसी दूसरे प्रतिनिधि द्वारा उस नाम का समर्थन किया जाता है। उम्मीदवारों का नाम प्रस्तावित हो जाने के बाद मतदान होता है। उसी व्यक्ति को अन्तत: दल का उम्मीदवार घोषित किया जाता है जिसे प्रतिनिधियों का स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो। यदि किसी उम्मीदवार को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो दुबारा मतदान होता है और जिन उम्मीदवारों को पहले मतदान में थोड़े मत प्राप्त हुए थे, उन्हें छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार तबतक मतदान चलता रहता है जबतक कि किसी उम्मीदवार को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो जाय। कई बार मतदान के अनेक दौर चलते है। उदाहरणस्वरूप, 1880 में रिपब्लिकन दल के राष्ट्रीय सम्मेलन में गारफील्ड के मनोनयन हेतु 36 बार मतदान हुआ और 1904 में डेमोक्रेटिक दल के राष्ट्रीय सम्मेलन में जॉन डेविड के मनोनयन हेतु 103 बार मतदान करना पड़ा।

उप-राष्ट्रपति पद के लिए मनोनयन– उप-राष्ट्रपति पद के लिए उम्मीदवारों का मनोनयन राष्ट्रपति की भाँति ही होता है। इस सम्बन्ध में यह परम्परा बन गयी है कि राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार केवल एक राज्य के नहीं होंगे बल्कि एक क्षेत्र के भी नहीं होंगे। इसका अर्थ यह है कि यदि राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार उत्तरी राज्यों से है तो उपराष्ट्रपति पद के लिए उम्मीदवार दक्षिणी राज्यों से होना चाहिए। चूँकि उप-राष्ट्रपति के पद का महत्त्व अमरीकी राजनीति में नगण्य है, इसलिए इस पद के लिए प्राय: कड़ा संघर्ष नहीं होता है और शीघ्र ही कोई उम्मीदवार स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर लेता है।

(ii) चुनाव अभियान– राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के पदों के लिए मनोनयन समाप्त होते ही उम्मीदवार अपने दल की एक राष्ट्रीय समिति का गठन करता है। यह समिति अपना एक प्रधान और कोषाध्यक्ष चुनती है। राज्यों, जिलों तथा अन्य स्थानों में दल के कार्यालय खोले जाते हैं। चुनाव-प्रचार जोरों से शुरू होता है। लाखों डॉलर खर्च किए जाते हैं। यद्यपि चुनाव अभियान पर कानूनत: 30 लाख डॉलर तक खर्च किया जा सकता है, परन्तु उम्मीदवार इस सीमा से बहुत अधिक खर्च करते है। 1960 के चुनाव में सभी उम्मीदवारों ने कुल मिलाकर लगभग 2750 लाख डॉलर खर्च किया, 1964 के चुनाव में 360 लाख डॉलर और 1972 के चुनाव में 400 लाख डॉलर उम्मीदवारों ने व्यय किये। सामाचार-पत्रों, रेडियो, टेलिविजन पर उम्मीदवारों के जीवन-चरित्र और दलीय नीतियों का प्रकाशन, सभाएँ व्यक्तिगत सम्पर्क आदि विभिन्न तरीके चुनाव-प्रचार के कार्य में लाये लाते हैं।

(iii) निर्वाचन-मण्डल का चुनाव– अगला कदम निर्वाचक-मण्डल का जनता द्वारा चुनाव हैं। दोनों दलों द्वारा निर्वाचक-मण्डल के लिए उम्मीदवार खड़े किये जाते हैं इन उम्मीदवारों को अपने-अपने दलों के राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति पदों के लिए उम्मीदवारों को मत देने की प्रतिज्ञा लेनी पड़ती है। निर्वाचकों का चुनाव मतदाताओं द्वारा होता है। प्रत्येक राज्य में निर्वाचक-मण्डल के सदस्यों का चुनाव सूची-प्रणाली (list system) के आधार पर होता है अर्थात् मत किसी उम्मीदवार के लिए नहीं बल्कि दल की सूची के पक्ष में डाले जाते हैं। जिस दिन मतदान होता है, उससे एक दिन पहले राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार अपने कार्यालय से रेडियो या टेलीविजन द्वारा अन्तिम भाषण देते हैं और मतदाताओं से अपने पक्ष में मत देने के लिए अपील करते हैं। निर्वाचन-मण्डल के सदस्यों का चुनाव-व्यक्तिगत

नोट

न होकर सामूहिक होता है अर्थात् यह परम्परा बन गयी है कि जिस दल को किसी राज्य में मतदाताओं का बहुमत प्राप्त हो जाता है उसी दल के सभी उम्मीदवार राष्ट्रपति के निर्वाचन-मण्डल के उम्मीदवार चुने जाते हैं। दूसरे दल को एक स्थान भी नहीं मिलता। उदाहरणस्वरूप, यदि डेमोक्रेटिक सूची को 3,00,000 मत प्राप्त हुए, रिपब्लिकन को 2,99,00 तथा समाजवादियों को 10,000 तो डेमोक्रेटिक सूची के सभी उम्मीदवार निर्वाचित माने जायेंगे। यह संभव है कि किसी राज्य से केवल 51 प्रतिशत मत प्राप्त करके ही राष्ट्रपति-पद को कोई प्रत्याशी उस राज्य के समस्त निर्वाचक मतों (जैसे– न्यूयार्क 41 या ओहिया 25) को प्राप्त कर ले। यदि किसी अन्य राज्य में उसे 49 प्रतिशत मत मिले तो एक भी निर्वाचन मत उसे प्राप्त नहीं होगा। इस प्रकार किसी प्रत्याशी द्वारा प्रत्यक्ष मतों और उसके समर्थक निर्वाचकों की निर्वाचित संख्या में कोई सीधा संबंध नहीं होता। निर्वाचक मतों की संख्या का वस्तुत: प्रत्यक्ष से कोई सम्बन्ध नहीं होता वरन् उस संबंध में भ्रम ही उत्पन्न करती है क्योंकि इसके द्वारा राज्य पर निर्वाचक का परिणाम ही प्रकट हो पाता है। 1968 के चुनाव में 538 निर्वाचकों में से 301 ने निक्सन को, 191 ने हर्बर्ट हम्फ्रे को तथा 46 ने स्वतन्त्र दलीय प्रत्याशी जॉर्ज वैलेस को मत दिये थे। निक्सन, हम्फ्रे तथा वैलेस को प्रत्यक्षत: क्रमश: 31,77,023 मत, 31,2,70,533 मत तथा 9,96,141 मत प्राप्त हुए थे। 1972 के चुनाव में निक्सन को 52 और मैकगवर्न को 17 निर्वाचक मत प्राप्त हुए जबकि इनके द्वारा लोकप्रिय मतों की संख्या क्रमश: 41,5,37,286 (61%) और 255,03,308 (38%) थी। निक्सन को 49 राज्यों का बहुमत प्राप्त हुआ जबकि मैकगवर्न को केवल एक राज्य का। यहाँ भी निर्वाचक मतों एवं प्रत्यक्ष मतों में कोई सीधा संबंध नहीं जुड़ता। इसी कारण कभी-कभी स्पष्ट बहुमत से कम मत पाने वाले उम्मीदवार भी राष्ट्रपति चुन लिए जाते हैं, जिन्हें 'अल्पसंख्यक राष्ट्रपति' (Minority President) की संज्ञा दी जाती है। विल्सन, ट्रूमन, केनेडी जैसी चोटी के राष्ट्रपति इसके उदाहरण है। राष्ट्रपति पद का जो उम्मीदवार 538 निर्वाचकों में से 270 स्थान प्राप्त कर लेता है, उसे विजयी घोषित किया जाता है। 1977 में कार्टर को 303 और फोर्ड को 235 मत प्रापत हुए। यदि निर्वाचक-मण्डल के मतों में किसी भी प्रत्याशी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो प्रतिनिधि सदन राष्ट्रपति का और सिनेट उपराष्ट्रपति का निर्वाचन करता है।

(iv) निर्वाचक-मण्डल द्वारा मतदान– जैसा कि कहा जा चुका है, चुनाववर्ष में दिसम्बर मास के दूसरे बुधवार को निर्वाचक-मण्डल के सदस्य अपने-अपने राज्यों की राजधानियों में एकत्र होते हैं और राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति पद के लिए विभिन्न उम्मीदवारों के पक्ष में मतदान करते हैं, निर्वाचकों द्वारा राष्ट्रपति का चुनाव एक औपचारिकता मात्र है। पूर्व निश्चय के अनुसार यह तय रहता है कि किस दल के उम्मीदवार को उन्हें मत देना है। वस्तुत: वे अपने की 'रिकार्डिंग मशीन' के रूप में काम करते हैं। अत: निर्वाचक-मण्डल का चुनाव होते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रपति कौन होगा?

निर्वाचन-प्रणाली के दोष (Defects of the system of election): संविधान-निर्माताओं ने राष्ट्रपति की निर्वाचन-पद्धति को निर्धारित करते समय इसे जनकोलाहल तथा अव्यवस्था से बचाना चाहा था। अत: निवार्चन-सम्बन्धी मूल योजना का यह उद्देश्य था कि भव्य नागरिक निर्वाचक चुने जायेंगे और किसी उच्च कोटि के अमेरिकन को राष्ट्रपति चुनेंगे। लेकिन दल-प्रथा के कारण इस उद्देश्य की पूर्ति न हो सकी और निर्वाचन में अनेक का प्रवेश हुआ। निर्वाचन-मण्डल का प्रावधान भी अनेक दोषों के लिए उत्तरदायी है।

(i) अल्पमत राष्ट्रपति– सर्वप्रथम, निर्वाचन-पद्धति का दोष यह है कि कभी-कभी ऐसा व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित हो जाता है जिसे निर्वाचक-मण्डल के सदस्यों का बहुमत तो प्राप्त होता है लेकिन देश की जनता का बहुमत प्राप्त नहीं होता। इस दोष का कारण 'इकाई नियम' (Unit rule) है जो इस प्रकार है: प्रत्येक राज्य में राजनीतिक दल पृथक-पृथक निर्वाचकों की सूची जनता के समक्ष रखते हैं। जिस दल को सबसे अधिक मत मिलता है, उस दल की सूची जनता द्वारा स्वीकृत समझी जाती है; अर्थात् विजयी दल को उस राज्य के निर्वाचकों की सभी जगहें मिल जाती हैं। उदाहरणार्थ, यदि ओहियो (Ohio) में रिपब्लिकन निर्वाचक-सूची को 15,00,000 मत मिलते हैं और डिमोक्रेटिक निर्वाचक-सूची को सिर्फ 1,500,411 तब ओहियों राज्य के 35 निर्वाचकों के मत डिमोक्रेटिक दल के हो जायेंगे। इस प्रकार कतिपय बड़े राज्यों में बहुत कम मत आने पर भी निर्वाचक-गण में उस दल के निर्वाचकों की संख्या बहुत अधिक हो जायगी, यद्यपि दूसरे दल को पूरे राष्ट्र में कुल मिलाकर बहुत ज्यादा मत क्यों न प्राप्त हुआ हो? अत: सम्पूर्ण राष्ट्र की जनता का बहुमत प्राप्त नहीं होने पर भी कोई व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित हो सकता है। 1860 और 1912 ई॰ में क्रमश: लिंकन

नोट

और विल्सन राष्ट्रपति चुने गये, क्योंकि निर्वाचकों का बहुमत उन्हें प्राप्त था, लेकिन देश में जनता का बहुमत नहीं। इस प्रकार 1876 ई॰ में हेज (Hayse) को टिलडन (Tilden) से करीब 3 लाख मत कम मिला था, फिर भी वह निर्वाचित घोषित हुआ। इस प्रकार कभी-कभी अल्पमत राष्ट्रपति (Monority President) निर्वाचित हो जाते है लेकिन सौभाग्यवश ऐसा कम होता है।

(ii) उम्मीदवार की अपीलीय शक्ति पर जोर– राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) की पद्धति ने निर्वाचन को दोषपूर्ण बनाया है। इसके चलते राष्ट्रपति के निर्वाचन पर जन-समूह का प्रभाव अत्यधिक बढ़ गया है। अत: राष्ट्रपति के मनोनयन के लिए अभ्यर्थी की योग्यता पर कम ध्यान दिया जाता है; बल्कि ऐसे व्यक्ति को उम्मीदवार चुना जाता है जो अधिक से अधिक लोगों को अपील कर सके। जैसे, धर्म-विरोधी, उग्रवादी, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अनुदार तथा रोमन कैथोलिक हो।

(iii) विशिष्ट व्यक्तियों का निर्वाचन नहीं– यह कहा जाता है कि राष्ट्रीय सम्मेलनों के कारण ही प्रतिभाशाली व्यक्ति राष्ट्रपति पद के लिए खड़े नही हो सकते हैं। **मुनरो** ने कहा भी है कि संयुक्त राज्य अमेरिका बहुत से व्यक्तियों को राष्ट्रपति पद पर सुशोभित नहीं कर सका जो सचमुच विशिष्ट राजनीतिज्ञ थे, जैसे–हेमिल्टन, मार्शल, बेब्सटर, कैलटन, हेरूट आदि। **लॉर्ड ब्राइस** ने भी एक प्रश्न किया है, **"महान व्यक्ति राष्ट्रपति क्यों नहीं चुने जाते हैं?"** इसका मुख्य कारण यह है कि राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रतिनिधि असंगत, असैद्धांतिक तथा स्वार्थपूर्ण होते हैं जिनके परिणामस्वरूप समझौता द्वारा ही किसी उम्मीदवार को चुना जाता है; उसके गुणों पर कम ध्यान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रतिनिधि स्वतन्त्र नहीं होते, उनके विचार विविध प्रभावों के परिणाम है, उनपर अनेकानेक प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ते हैं, जैसे– धनपतियों, विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि-मण्डल के बीच लेन-देन, प्रेस द्वारा प्रचार तथा गलत-सही अफवाहों के प्रभाव। लेकिन इस आलोचना का यह अर्थ नहीं कि राष्ट्रपति पद पर कभी विशिष्ट व्यक्ति आसीन ही न हो सके वाशिंगटन, मेडिसन, जेफर्सन, लिंकन, विल्सन, दोनों रूजवेल्ट आदि विशिष्ट व्यक्तित्व के उदाहरण हैं। यदि कोई विशिष्ट व्यक्ति पराजित भी हुआ है तो किसी-किसी कारण से ही।

(iv) प्रत्याशी को शासन का पूर्व अनुभव नहीं– लास्की के वक्तव्य से अमरीकी राष्ट्रपति की निर्वाचन-पद्धति दोषपूर्ण दीख पड़ती है। उसका कहना है कि अमरीकी राष्ट्रपति को शासन का पूर्ण अनुभव विरले ही रहता है जबकि ब्रिटिश प्रधानमंत्री इस पद पर आसीन होने के पहले पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर चुका रहता है, वह शासन के छोटे-मोटे पदों पर रह चुका रहता है। अमेरिका में शासन का अनुभव, काँग्रेस तथा मन्त्रिमण्डलों की सदस्यता आदि राष्ट्रपति के लिए विशेष गुण नहीं समझा जाता है। जैसा कि लास्की ने कहा है "वहाँ वकील, सैनिक, किराये से आय प्राप्त करनेवाला व्यक्ति, राजनीतिज्ञ या राजनीति से जीविका चलानेवाला व्यक्ति– इन्हीं वर्गों से प्रत्याशी निर्वाचित होते हैं।"

फ्रांसीसी राष्ट्रपति (French President)

चतुर्थ गणतन्त्र का संविधान ब्रिटिश संविधान की तरह पूर्णत: संसदात्मक (Parliamentary) था। वास्तविक शासन-शक्ति मंत्रिपरिषद् के हाथ में थी। राष्ट्रपति नाम-मात्र का या संवैधानिक (Nominal or constitutional) कार्यपालिका-प्रधान था। वह शक्तिहीन था। अब्बे लॉते ने इस पद का एकमात्र गुण नपुंसकता बतलाया है ˙ लेकिन पंचम गणतन्त्र में राष्ट्रपति की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है इसमें राष्ट्रपति की शक्ति में अपार वृद्धि हुई तथा मंत्रिपरिषद् एव संसद की शक्तियों मे ह्रास। फ्रांस के एक भूतपूर्व प्रधानमन्त्री मेण्डीज के अनुसार राष्ट्रपति एक अवंशानुगत राजा बनाया गया है और ऐसी शक्तियाँ प्रदान की गयी है जिनमें वह अपने को एक वैधानिक अधिनायक बना सकता है। मार्सेल प्लेजॉ के शब्दों, "राष्ट्रपति के परिवर्तित परमाधिकारियों को देखकर राजा को राष्ट्रपति की असुखकर स्मृतियाँ जाग उठती हैं।" तात्पर्य यह है कि पंचम गणतन्त्र में राष्ट्रपति शासन का सबसे बड़ा शक्तिशाली तथा केन्द्रीय अंग बन गया है।

राष्ट्रपति का निर्वाचन (Election of the President): अर्हताएँ: 1946 ई0 के संविधान मे राष्ट्रपति-पद के लिए अर्हताओं (Qualifications) का उल्लेख नहीं था । सिर्फ इतना कहा गया था कि फ्रांस के किसी भूतपूर्व राजवंश का वंशज इस पद के लिए उम्मीदवार नहीं हो सकता था। इस उपबन्ध का उद्देश्य राजतन्त्र की पुन: स्थापना को रोकना था। अत: राजवश के व्यक्तियों को छोड़कर 18 वर्ष से अधिक उम्र वाला कोई भी व्यक्ति इस पद के लिए खड़ा हो सकता था। प्राय: मध्यम योग्यता के व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित होते थे, क्योंकि वास्तविक शक्ति के अभाव में प्रभावशाली व्यक्ति इस

नोट

पद को पसन्द नहीं करते थे। **पंचम गणतन्त्र** का संविधान भी राष्ट्रपति की अर्हताओं के सम्बन्ध में मौन है । यहाँ तक कि राजवंश सम्बन्धी प्रतिबन्ध की भी चर्चा नहीं की गयी है । अत: नये संविधान में कोई भी वयस्क फ्रंसीसी नागरिक राष्ट्रपति पद के लिए खड़ा हो सकता है।

निर्वाचन-विधि: चतुर्थ गणतन्त्र में राष्ट्रपति का निर्वाचन संसद के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में गुप्त मतदान द्वारा सम्पुर्ण बहुमत से होता था। लेकिन **पंचम गणतन्त्र** में निर्वाचक-मण्डल को विस्तृत कर दिया गया, क्योकि राष्ट्रपति को वास्तविक रूप में कार्यपालिका-प्रधान तथा राष्ट्रीय नेता बनाना था। उसके निर्वाचन के लिए व्यवस्थित निर्वाचक-मण्डल (Electoral College) के निम्नलिखित सदस्य होते है।

(क) संसद के सदस्य

(ख) समुद्र-पार प्रदेशों की विधानपालिका जनरल कौन्सिल के सदस्य, और

(ग) नगरपालिकाओं के प्रतिनिधि।

संविधान की धारा 7 के अनुसार दो पृथक-पृथक मतदान होते थे। । प्रथम मतदान में अभ्यर्थी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त होना आवश्यक था। यदि किसी भी अभ्यर्थी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो तो दूसरे मतदान में सापेक्षिक बहुमत (Relative majority) के आधार पर निर्वाचन होता था।

पहला 1968 ई. के संविधान में भी राष्ट्रपति को विधियों के सूत्रपात का अधिकार नहीं है। वह संसद को केवल सन्देश भेज सकता है। इस संबंध में दोनों संविधानों में बाह्य रूप से भले ही समानता हो, लेकिन वास्तविकता में बहुत अन्तर है। **चतुर्थ गणतन्त्र** में राष्ट्रीय सभा को ही राष्ट्रपति सन्देश भेजता था, उसके प्रत्येक सन्देश पर किसी मन्त्री का प्रतिहस्ताक्षर आवश्यक था तथा मन्त्रिगण उसके प्रभाव में नहीं थे। इसलिए उसका यह अधिकार महत्त्वहीन था। लेकिन **पंचम गणतन्त्र** के राष्ट्रपति पूरी **संसद**-दोनों सदनों-को संदेश भेजता है, अनेक विषयों से सम्बन्धित सन्देश पर मंत्रियों के प्रतिहस्ताक्षर की आवश्यकता नहीं रह गयी है तथा मन्त्रियों की स्थिति राष्ट्रपति के अनुचर-सी हो गयी है। अत: विधियों के सूत्रपात में राष्ट्रपति की शक्ति काफी प्रभावशाली हो गयी है।

दूसरा, 1946 ई0 के संविधान में संसद द्वारा पारित किसी विधेयक को कानून बनाने के लिए **राष्ट्रपति की स्वीकृति** आवश्यक थी । संसद द्वारा प्रेषित विधेयक को 10 दिनों या आवश्यक होने पर 5 दिनों के अन्दर राष्ट्रपति को लागू (Promulgate) करना पड़ता था। यदि आवश्यक समझे तो राष्ट्रपति विधेयक को संसद के पास पुनर्विचारार्थ लौटा सकता था जिस पर पुनर्विचार करना ही पड़ता। 1958 ई0 के संविधान में केवल परिवर्तन यह आया है कि राष्ट्रपति को विधेयक पर विचार करने के लिए 15 दिनों का समय दिया गया। वह विधेयक को संसद के पास पुनर्विचारार्थ लौटा सकता है जिसपर संसद को विचार करना ही पड़ता है।

तीसरा, नये संविधान के अनुसार राष्ट्रपति प्रधानमंत्री और संसद के दोनों सदनों के अध्यक्षों से परामर्श कर राष्ट्रीय सभा को भंग कर सकता है परन्तु पुनर्निर्वाचन के एक वर्ष के अन्दर उसे भंग नहीं किया जा सकता। चतुर्थ गणतन्त्र में भी राष्ट्रीय सभा को भंग करने की व्यवस्था थी। किन्तु उसे संविधान में राष्ट्रीय सभा को भंग करने का वास्तविक निर्णायक मन्त्रिमंडल था। नये संविधान में इस बात का वास्तविक निर्णायक राष्ट्रपति हो गया है। यद्यपि नये सविधान में भी यह आवश्यक है कि उस हेतु राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री और संसद के दोनो सदनों के अध्यक्षों, से परामर्श कर ले, तथापि इसके लिए कोई आवश्यकता नहीं कि प्रधानमन्त्री एवं संसद दोनों सदनों के सभापतियों की स्वीकृति भी राष्ट्रपति प्राप्त करें।

अन्त में, नये संविधान में राष्ट्रपति को कुछ ऐसे अधिकार दिये गये हैं जो चतुर्थ गणतन्त्र में राष्ट्रपति को प्राप्त नहीं थें संविधान की धारा 11 के अनुसार राष्ट्रपति कुछ विषयों में किसी विधेयक को मन्त्रिमण्डल के प्रस्ताव पर अथवा संसद-सदनों के संयुक्त प्रस्ताव पर जनमत-संग्रह (Referendum) के लिए भेज सकता हैं लोकमत में विधेयक के पक्ष में मत प्राप्त होने पर वह सामान्य विधियों की तरह उसकी घोषणा कर देता है। मन्त्रिपरिषद् के सभी अध्यादेशों पर भी इस संविधान में राष्ट्रपति का प्रतिहस्ताक्षर आवश्यक है । राष्ट्रपति के संकटकालीन शक्तियाँ भी इस दिशा में उल्लेखनीय है।

न्यायिक शक्तियाँ 1985 ई0 के संविधान की धारा 64 के अनुसार राष्ट्रपति न्यायिक स्वतन्त्रता की प्रतिभूत (Guarantor) हैं वह न्यायपालिका की उच्च परिषद् का सभापतित्व करता है। उसे क्षमा-दान की शक्ति प्राप्त है। वह

नोट

संवैधानिक परिषद् के एक-तिहाई सदस्यों एवं अध्यक्ष की नियुक्ति करता है। **चतुर्थ गणतंत्र** में भी राष्ट्रपति को क्षमा-दान तथा दण्ड प्राविलम्बन का अधिकार था। लेकिन सामान्यत: इस अधिकार का प्रयोग वह न्यायालय की सर्वोच्च परिषद् की सिफारिश पर करता था।

संकटकालीन शक्तियाँ: विश्व के इने-गिने संविधानो में ही किसी अधिकार-विशेष को संकटकालीन अधिकार (Emergency powers) दिये गये हैं। फ्रांस के 1946 ई0 **के संविधान** में इस तरह का उपबंध नहीं था। लेकिन भारत के सदृश **पंचम गणतन्त्र** में धारा 16 के अनुसार राष्ट्रपति को आपात्कालीन शक्तियाँ दी गयी हैं। राष्ट्र की स्वतन्त्र गणतांत्रिक संस्थाएँ, राज्य की अखण्डता तथा अन्तरराष्ट्रीय बाधाओं पर घोर असुरक्षा के भय उत्पन्न होने पर और संवैधानिक रूप से शासन-संचालन में निरन्तर बाधा पड़ने पर राष्ट्रपति आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। वह प्रधानमंत्री, संसद के दोनों सदनों के अध्यक्ष तथा संवैधानिक परिषद् से मन्त्रणा कर उसके लिए आवश्यक कदम उठायेगा। एक सन्देश द्वारा राष्ट्र को वह इन स्थितियों से अवगत करायेगा। संकटकाल में राष्ट्रीय सभा भंग नहीं होगी तथा संसद की बैठक नहीं रुकेगी। यह उल्लेखनीय है कि संकटकालीन शासन तथा संकट का सामना करने का पूर्ण उत्तदायित्व राट्रपति पर ही है। उसके सभी निर्णय निजी होगे प्रधानमंत्री के हस्ताक्षर की आवश्यकता नहीं। आलोचकों का कहना है कि इस अधिकार के प्रयोग से राष्ट्रपति तानाशाह बन सकता है। **मेण्डीज फ्रांस** ने कहा है कि यह संविधान देश के लिए खतरनाक, जन-शक्ति के लिए खतरनाक तथा जनतन्त्र के लिए खतरनाक है।

पिकल्स का कहना है कि संविधान की इस धारा (16) पर आलोचको की मूल आपत्ति यह है कि कोई राष्ट्रपति व्यक्तिगत अधिकार के लिए जानबूझ कर इसका दुरुपयोग कर सकता है और यहाँ तक कि यह धारा सरकार को पलटने के लिए कानूनी आवरण का काम का सकती है। **पिकल्स** कहता है कि इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति, जज और जुरी दोनों बन जाता है क्योंकि संविधानत: वही निश्चय करेगा कि इस तरह की परिस्थितियाँ कब पैदा होती हैं तथा क्या कदम उठाना चाहिए? लेकिन **एरोन** का कहना है कि राष्ट्रपति के संकटकालीन अधिकार उसे तानाशाह नहीं बना सकते हैं क्योंकि वैधानिक रहते हुए वह बिना किसी औचित्य के इस शक्ति को व्यवहार में नहीं ला सकता है, अगर वह संवैधानिकता का परित्याग करता है तो इस पर महाभियोग चलाया जा सकता है।

राष्ट्रपति-पद का मूल्यांकन (An estimate of the Presidency): चतुर्थ गणतन्त्र में पूर्णत: संसदीय व्यवस्था को अपनाया गया । अत: राष्ट्रपति केवल संवैधानिक प्रधान था। शासन की वास्तविक शक्तियाँ मन्त्रिमण्डल के हाथ में थीं। उसके सभी कार्यों पर प्रधानमन्त्री या किसी अन्य मन्त्री का प्रतिहस्ताक्षर आवश्यक था। अत: वह मंत्रिमण्डल तथा संसद का बंदी था। विश्व के अन्य संवैधानिक राज्याध्यक्षों से भी उसकी हालत गयी गुजरी थी। भारतीय राष्ट्रपति की तरह न हो तो उसे संकटकालीन अधिकार प्राप्त थे और न ब्रिटिश सम्राट की भाँति गौरव एवं प्रतिष्ठा ही। अमरीकी राष्ट्रपति से तो उसकी तुलना ही निरर्थक है। फ्रांस का राष्ट्रपति केवल राज्य का प्रधान था जबकि अमेरिका का राष्ट्रपति राज्य और शासन दोनों का। **सर हेनरी मेन** ने तृतीय गणतन्त्र के प्रारम्भिक दिनों में कहा था-संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो फ्रांस के राष्ट्रपति से अधिक दयनीय अवस्था में हो। फ्रांस का प्राचीन राजा शासन करता था, इंग्लैंड का प्राचीन राजा राज करता है परन्तु शासन नहीं करता। अमेरिका का राष्ट्रपति शासन करता है। परन्तु राज नहीं करता था। फ्रांस के राष्ट्रपति के लिए ऐसी व्यवस्था है कि न तो वह राज करता है और न शासन ही। इस प्रकार चतुर्थ गणतन्त्र के अतर्गत राष्ट्रपति केवल नाम मात्र कार्यपालिका प्रधान था । **ऑग** ने इसे यूरोपीय राजनीति की एक विलक्षणता कहा था। **मुनरो** के अनुसार उस पराजित व्यक्ति को न तो कुछ सोचना और न कार्य ही करना चाहिए था। यदि दोनों में वह कुछ भी करता तो उसे पद-त्याग करना पड़ता। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ **क्लेमेन्शो ने** फ्रांसीसी राष्ट्रपति निर्वाचित होने योग्य व्यक्ति के संबंध में कहा था कि मैं सर्वाधिक मुढ़ व्यक्ति के लिए मतदान करता हूँ। एक अन्य आलोचक के अनुसार राष्ट्रपति का पद खरगोशों का शिकार करने के लिए है न कि राज्य का संचालन करने के लिए बनाया गया है।

लेकिन चतुर्थ गणतन्त्र के अन्तर्गत राष्ट्रपति की शक्ति का मूल्यांकन पूर्णत: सही नहीं है । वह ठीक है कि वह निशक्त तथा नपुसंक था पर उसका गौरव-प्रतिष्ठा तथा उसकी व्यावहारिक उपयोगिता भी थी। उसे 18 लाख फ्रैंक प्रतिवर्ष वेतन मिलता था तथा यात्रा और मनोविनोद के लिए अलग भत्ता। उसे 100 तोपों की सलामी दी जाती थी । राजतंत्र के अन्तर्गत

नोट

सम्राट को जो सम्मान मिलते हैं वे सभी राष्ट्रपति को प्राप्त होते थे। वह राष्ट्र की एकता का प्रतीक और राजनीतिक दलबंदी से ऊपर समझा जाता था। संकटकालीन अवस्थाओं में वह महत्त्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करता था और राष्ट्र का नेता बन जाता था। बहुदलीय व्यवस्था के कारण मंत्रिमण्डल के निर्माण में उसे पर्याप्त विवेक तथा बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता था। अनुभव एवं योग्यता के अनुपात में प्रशासन के कार्य में वह पर्याप्त नैतिक तथा राजनीतिक प्रभाव डालता था मंत्रिमण्डल की स्थिरता बनाये रखने में उसका बहुत बड़ा हाथ था। अत: **न्यूमेन** के शब्दों में राष्ट्रपति पद में फ्रांस के प्राचीन गौरव की झलक मिलती है। इसमें राज्य की प्रतिष्ठा मिलती है। इस पद का अन्त गणतंत्र के भूत और वर्तमान गौरव का अन्त है।

1958 ई. के संविधान में यह चित्र पूर्ण परिवर्तित हो गया इसकी शक्तियाँ व्यापक तो हो गयी हैं, साथ-साथ उनका वास्तविक प्रयोग भी वह करने लगा है। ब्रिटिश सम्राट की भाँति वह राज्य के गौरवपूर्ण अंग तो है ही साथ-साथ अमरीकी राष्ट्रपति की तरह शासन की वास्तविक बागडोर भी उसके हाथों में आ गयी है। मंत्रिमण्डल तथा संसद पर उसका पूर्ण नियंत्रण हो गया है। उसके संकटकालीन अधिकार ने उसकी शक्ति को अत्यधिक बढ़ा दिया है। वह देश तथा संविधान का रक्षक भी हो गया है। उसी अपार शक्तियाँ तथा उसके वास्तविक प्रयोग के आधार पर फ्रंसीसी साम्यवादी नेता **मॉरिस थोरेज** ने यह भी कहा है कि राष्ट्रपति को नये संविधान में 19वीं शताब्दी के सम्राटों से भी अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं। **प्रो० एरोन** ने फ्रांस के राष्ट्रपति की तुलना अमेरिका के राष्ट्रपति से करते हुए लिखा है कि कागज पर फ्रांस का राष्ट्रपति अमेरिका के राष्ट्रपति से कम शक्तिशाली है। सभी चीजों के बावजूद पाँचवाँ गणतन्त्र एक संसदीय सरकार की स्थापना करता है। इसका सबूत यह है कि सरकार राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी है राष्ट्रपति के प्रति नहीं। अंत में **प्रो० एरोन** के शब्दों में ही ''राष्ट्रपति-पद का विकास दो प्रकार से हो सकता है। यदि साधारण व्यक्ति राष्ट्रपति हो तो वह मात्र सरकार का सर्वश्रेष्ठ परामर्शदाता या सर्वोच्च मध्यस्थ बनकर रह सकता है, तब संविधान सरकार की ओर विकसित होगा अथवा अगर वह वस्तुत: अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहता हो तो संघर्ष मोल लेगा-सर्वप्रथम अपने प्रधानमन्त्री के साथ और बाद में राष्ट्रीय सत्ता के साथ।

रशिया का राष्ट्रपति (President of Russia)

शासन-प्रणाली के स्तर पर **अध्यक्षीय प्रणाली** (Presidential System) और संसदीय प्रणाली (parliamentary System) **का मिश्रण** तैयार करने का प्रयत्न किया गया है। अध्यक्षीय प्रणाली की तरह यहां एक शक्तिशाली **राष्ट्रपति** (President) की व्यवस्था की गई है, और संसदीय प्रणाली की तरह यहां एक शक्तिशाली **संसद** (Parliament) की व्यवस्था की गई है जिसे **संघीय सभा** (Federal Assembly) कहा जाता है। राष्ट्रपति राज्य का अध्यक्ष (Head of state) है जो सीधे जनसाधारण के द्वारा चार वर्ष के लिए चुना जाता है; उसे लगातार दो बार से आगे नहीं चुना जा सकता। वह संविधान का संरक्षक है, और सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति (Supreme commander of the Armed Forces) भी है। वह प्रधान मंत्री (Prime Minister) तथा मंत्रि-परिषद् (Council of Ministers) अथवा मंत्रिमडंल (Cabinet) की नियुक्ति करता है। जिसमें लगभग 30 सदस्य रखे जाते हैं। इनकी नियुक्ति के लिए संसद (Parliament) का अनुमोदन जरूरी होता है । राष्ट्रपति एक अंतरंग मंत्रिमंडल (Kitchen Cabinet) की सलाह से कार्य करता है जिसमें उसके विश्वस्त मित्र और उच्चाधिकारी सम्मिलित होते है। मंत्रिमंडल को सत्ता में रहने के लिए संसद का विश्वास प्राप्त होना चहिए।

राष्ट्रपति आज्ञाप्तियां (Decrees) जारी कर सकता है जो कानून की तरह मान्य होती है। परंतु ये आज्ञप्तियां प्रचलित कानून के विरुद्ध नहीं होनी चाहिए। फिर संसद इन्हें निरस्त भी कर सकती है। दूसरी ओर, राष्ट्रपति भी संसद-द्वारा- पारित विधेयक (Bill) को कानून बनने से रोक सकता है। वह संसद-अर्थात् संघीय सभा (Federal Assembly) के प्रति अपने वार्षिक अभिभाषण (Annual Address) के अंतर्गत सरकार की राजनीतिक और आर्थिक नीति का निरूपण कर सकता है। देश की रक्षा (Defence) का दायित्व संभालने के लिए राष्ट्रपति सुरक्षा - परिषद् (Security Council) नियुक्त करता है जिसका अध्यक्ष वह स्वयं होता है। वह केंद्रीय बैंक (Central Bank) के अध्यक्ष (Chairperson), महा-अभियोजक (prosecutor General) तथा न्यायपालिका (Judiciary) के प्रमुख सदस्यों की नियुक्ति का प्रस्ताव संसद के पास भेजता है। जनवरी, 1994 के बाद

नोट

सुरक्षा–सेवाएं, गृह–मंत्रालय, रक्षा मंत्रालय और विदेश मंत्रालय सीधे राष्ट्रपति के अधीन कर दिए गए हैं। राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार कम–से–कम दस लाख मतदाताओं के द्वारा मनोनीत होना चाहिए; इसमें किसी एक अंचल (Region) या गणराज्य (Republic) के मतदाताओं की संख्या कुल संख्या की 7% से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। रूस में विधायिका (Legislature) के कृत्य **संघीय सभा** (Federal Assembly) को सौंपे गए हैं। इसमें दो सदन (Chambers) रखे गए हैं। अवर सदन (Lower House) को स्टेट **डयूमा** कही जाती है । इसमें 4520 सदस्यों की व्यवस्था की गई है। उच्च सदन (upper House) को **संघीय परिषद्** (Federal Council) कहा जाता है। इसमें 178 सदस्यों की व्यवस्था की गई है।

चीन का राष्ट्रपति (President of China)

केन्द्रीय कार्यपालिका: गणतंत्र का अध्यक्ष (Central Executive: Chairman of the Republic): जनवादी चीन का संविधान आंशिक रूप से संसदीय प्रणाली को अपनाता है। भारत की भाँति गणतंत्र का अध्यक्ष होता है जो शासन के अध्यक्ष यानी प्रधानमंत्री से अलग होता है। 1954 के संविधान में अध्यक्ष पद की व्यवस्था की गयी। माओं –त्से तुंग गणतंत्र के अध्यक्ष के साथ–साथ दल के महासचिव भी रहे जिस कारण वे देश के सर्वशक्तिशाली पदाधिकारी बने रहे। लेकिन लिउ–शाओं–ची की यह स्थिति नहीं थी। 1975 के संविधान में इस पद को समाप्त कर दिया गया और स्थायी समिति तथा उसके अध्यक्ष को गणतंत्र के अध्यक्ष की शक्तियाँ और कार्य सौंपे दिये गये। पुन: 1982 के नए संविधान द्वारा इस पद को पुनर्जिवित कर दिया गया। छठी राष्ट्रीय कांग्रेस (जून, 1983) ने बुर्जुग प्रतिष्ठित नेता ली जीआनियन (Li-Xianian) को गणतंत्र का अध्यक्ष चुना। 18 अप्रैल, 1988 को जनरल यांग शांगकुन (Yangshangkun) चीन के नए अध्यक्ष चुने गए।

अध्यक्ष का चुनाव (Election of the Chairman): चीनी गणराज्य के अध्यक्ष का चुनाव राष्ट्रीय काँग्रेस के सदस्यों द्वारा किया जाता है। 1954 के संविधान द्वारा उसका कार्यकाल 4 वर्ष निर्धारित किया था; 1982 के संविधान द्वारा कार्यकाल 5 साल का कर दिया गया है। कोई भी व्यक्ति, जिसे राजनीतिक अधिकार प्राप्त हों और उसकी आयु 45 वर्ष हो, अध्यक्ष चुना जा सकता है । वस्तुत: दल के वरिष्ठ और प्रतिष्ठित नेता ही इस पद के लिए चुने जाते हैं जैसे माओ–त्सेतुंग, लिऊ–शाओ–ची और ली जीआनियन।

अध्यक्ष की शक्तियां और कार्य (Powers and Functions of the Chairman): चीनी गणराज्य के अध्यक्ष की शक्तियों और कार्यों का विस्तृत वर्णन संविधान में किया गया है। अध्ययन की सुविधा के हेतु उसके कार्यों और अधिकारों को चार वर्गो में विभाजित किया जा सकता है। यहाँ इनका वर्णन संक्षेप में किया जा रहा है।

(क) प्रशासकीय शक्तियाँ एवं कार्य: गणराज्य के अध्यक्ष को प्रधानमंत्री और उप–प्रधानमंत्री की नियुक्ति का अधिकार प्रदान किया गया है । वह उन्हें उनके पद से हटा भी सकता है। आयोगों के अध्यक्षों और मंत्रियों को नियुक्त करने और उन्हें पदच्युत करने का अधिकार भी गणराज्य के अध्यक्ष का होता है। यह राज्य परिषद् के महासचिव को नियुक्त एवं पदच्युत करने का अधिकार भी रखता है। लेकिन नियुक्ति–संबंधी यें अधिकार वस्तुत:दल के प्रेजिडियम को प्राप्त है। उसी की इच्छा के अनुसार इन नियुक्तियों की घोषणा अध्यक्ष करता है। राष्ट्रीय जन–काँग्रेस के कानूनों और घोषणाओं को लागू करने का कार्य भी अध्यक्ष का ही है । वह देश के किसी क्षेत्र अथवा समस्त देश में सैनिक शासन स्थापित करने का अधिकार रखता है । सेना का सर्वोच्च अधिकारी वही है और इसलिए वह सेना को जो भी चाहे आज्ञा दे सकता है। राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् के उपाध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति करने का अधिकार भी उसे प्राप्त है। वह उन्हें उनके पद से हटा भी सकता है । उसे युद्ध की घोषणा करने का भी अधिकार होता है और वह देश के किसी भी भाग में मार्शल लॉ लागू कर सकता है । सच पूछा जाय तो वह भारत के राष्ट्रपति की भाँति नाममात्र का प्रधान है इसलिए उसके प्रशासकीय अधिकारों का वास्तविक प्रयोग प्रधानमंत्री तथा उसके सहयोगी दल ही करते हैं।

(ख) औपचारिक शक्तियाँ एवं कार्य : संविधान में गणराज्य के अध्यक्ष की औपचारिक शक्तियों का भी

नोट

उल्लेख है। वह किसी भी व्यक्ति को क्षमादान दे सकता है। उसे राज्यादेशों, उपाधियों एवं पदवियों के वितरण का भी अधिकार प्राप्त है। सम्मानसूचक उपाधियाँ वही प्रदान करता है।

(ग) कूटनीतिक शक्तियाँ एवं कार्य : अध्यक्ष को विदेशों से संबंध स्थापित करने का अधिकार प्राप्त है । चीन के राजदूतों को विदेशों में भेजना और विदेशी राजदूतों के प्रमाण-पत्रों का निरीक्षण करना आदि उसी के कार्य हैं। वह किसी भी देश से संधि कर सकता है और किसी भी देश से युद्ध की घोषणा कर सकता है।

(घ) सैनिक शक्तियाँ और कार्य : गणराज्य का अध्यक्ष सेना का सर्वोच्च अधिकारी होता है और इसलिये राज्य की समस्त सेनाओं के संचालन का उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त है। वह राज्य की सेना का ही अध्यक्ष नहीं होता बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् का भी अध्यक्ष होता है । वह अपने विचारों को सुरक्षा परिषद् मे रखकर वह अन्य सदस्यों को प्रभावित करता है।

(ड़) निरीक्षणात्मक शक्तियाँ और कार्य: संविधान में अध्यक्ष की निरीक्षणात्मक शक्तियों का भी उल्लेख है। वह सर्वोच्च राज्य सम्मेलन का अध्यक्ष होता है और इस सम्मेलन में वह अपनी इच्छानुसार कुछ सदस्यों को नियुक्त करने का अधिकार रखता है सम्मेलन के महत्त्वपूर्ण विषयों में वह अपनी राय जाहिर करता है और सम्मेलन द्वारा लिये गये निर्णयों को राष्ट्रीय जन-काँग्रेस के पास भेजता है। चीन के गणराज्य के उपाध्यक्ष के चुने जाने से पूर्व उसकी शक्तियों के प्रयोग का अधिकार भी अध्यक्ष को दिया गया है।

स्विस संघीय कार्यपालिका (The Swiss Federal Executive)

अतुल्य तथा अनोखी कार्यपालिका: विश्व की प्रमुख शासन-प्रणालियों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है- संसदात्मक (Parliamentary) और अध्यक्षात्मक (Presidential)। संसदीय पद्धति कार्यपालिका का प्रधान एक राष्ट्रपति या सम्राट होता है जो नाम-मात्र का (Titular of Nomial) प्रधान होता है और उनके नाम पर शासन शक्ति का वास्तविक प्रयोग विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल करता है । अध्यक्षात्मक प्रणाली में भी एक राज्य का प्रधान राष्ट्रपति होता है जो कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान (Real executive head) भी होता है। इन दोनों अवस्थाओं मे कार्यपालिका का एक ही प्रधान (Singular Head) होता है। लेकिन स्विस शासन-पद्धति न तो संसदात्मक है, न अध्यक्षात्मक ही। उसकी कार्यपालिका में दोनों की विशेषताओं का सम्मिश्रण मिलता है; इसमें दोनों शासन-पद्धतियों के गुणों को अपनाने तथा अवगुणों से बचने का प्रयत्न किया गया है । स्विट्जरलैंड में कार्यपालिका शक्ति को ब्रिटेन तथा अमेरिका के सदृश किसी एक व्यक्ति में निहित न कर सात सदस्यों की एक परिषद् में निहित किया गया है जिसे संघीय परिषद् (Federal Council) कहते हैं। इसी कारण स्विस कार्यपालिका को बहुल कार्यपालिका (Plural Executive) या मण्डलात्मक कार्यपालिका (Collegiate Ececutive) या मिश्रित कार्यपालिका (Commission Type Executive) कहते हैं। संसार की कार्यपालिकाओं में यह अतुल्य तथा अनोखी कार्यपालिका (Unparallel andpeculiar Executive) है। **कोडिंग** के शब्दों में इस अनोखे छोटे देश की अनोखी संस्था निस्संदेह संघीय परिषद् अर्थात् स्विस संघीय कार्यपालिका है।

संघीय परिषद् (The Federal Council)

सदस्य-संख्या एवं संगठन: संविधान की धारा 92 के अनुसार स्विस राज्यमण्डल में सर्वोच्च निर्देशन तथा कार्यपालिका शक्ति 7 सदस्यों की एक संघीय परिषद् द्वारा प्रयुक्त की जाती है। इस प्रकार स्विट्जरलैंड में कार्यकारिणी शक्ति किसी एक व्यक्ति-राष्ट्रपति या सम्राट के हाथ में नहीं बल्कि एक परिषद् के हाथ में सौपी गयी हैं। संविधान द्वारा इसकी सदस्य-संख्या 7 निश्चित की गयी है। यद्यपि नवीन सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप बढ़ते हुए शासन-कार्य-भार के दृष्टिकोण से संख्या बहुत कम है, फिर भी स्विस जनता ने संख्या में वृद्धि का सदा विरोध किया है। इस सम्बन्ध में जनता ने दो बार 1900 और 1942 ई. में संशोधन प्रस्ताव को रद्द कर दिया।

यहाँ प्रश्न उठता है किस कारण स्विस-संविधान के निर्माताओं ने परम्परागत एकल कार्यपालिका पद्धति (Singular Executive) को न अपनाकर बहुल कार्यपालिका पद्धति (Plural Executive) को अपनाया। इस नयी संवैधानिक व्यवस्थाओं के मुख्यत: दो कारण हो सकते हैं। **प्रथम,** यह व्यवस्था देश की ऐतिहासिक परम्परा के अनुकूल है। 1848 ई. में संघीय संविधान के निर्माण से पूर्व विभिन्न कैण्टनों की कार्यपालिकाएँ मंडलात्मक ही थीं। इसके अतिरिक्त 1738

नोट

से 1803 ई0 तक जब स्विट्जरलैंड फ्रांस के अधीन था तो राष्ट्रीय कार्यकारिणी शक्ति 5 सदस्य की डाईरेक्टरी को दी गयी थी। यह भी एक मंडलात्मक कार्यकारिणी का प्रयोग था। **द्वितीय**, स्विस–जनता किसी व्यक्ति विशेष के हाथ में सत्ता को केन्द्रित करने की प्रवृत्ति का स्वभावत: विरोध करती है । इस प्रवृति को यह जनतंत्रीय सिद्धान्तों के प्रतिकूल मानती है। इसमें उसे राजतन्त्र अथवा तानाशाही का आभास मिलता है। 1848 ई0 मे संविधान–प्रारूप निर्माण समिति ने बताया था कि समिति किसी ऐसे पद का निर्माण प्रस्तावित करने की बात नहीं सोच सकती जो स्विस जनता के विचारों एवं स्वभाव के प्रतिकूल हो तथा जिससे वह राजतन्त्रात्मक या तानाशाह प्रवृत्ति का प्रमाण देख सके। स्विट्जरलैंड में परिषद्ों की पद्धति जमी हुई है। हमारी प्रजातांत्रिक भावना किसी अन्य व्यक्तिगत प्रधानता के प्रति विरोध करती है। स्विस जनता **एडमंड** रैन्डोल्फ के अनुसार एकल कार्यपालिका राजतन्त्र का गर्भस्थ शिशु है। वाइमर संविधान (Wimar Constitution) के निर्माण के समय जर्मनी में भी स्विस–पद्धति की नकल करने की चेष्टा की पर सफलता नहीं मिली। संघीय परिषद् के संगठन को व्यापकतम बनाने की कोशिश की गयी है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कुछ संवैधानिक उपबन्ध तथा व्यावहारिक परम्पराएँ हैं। एक संवैधानिक प्रतिबन्ध यह लगाया गया है कि परिषद् में एक कैंटन से सिर्फ एक व्यक्ति ही निर्वाचित हो सकता है एक से अधिक नहीं। ऐसी व्यवस्था इसलिए कि गयी कि अधिक–से अधिक कैंटन प्रतिनिधित्व पा सकें। परन्तु यह दृढ़ परम्परा बन गयी है कि **बर्न, ज्युरिच** तथा **वांड** नामक कैंटनों में से एक–एक सदस्य अवश्य हों। कुछ व्यावहारिक परम्पराएँ भी हैं जो संगठन को व्यापक प्रतिनिधित्व स्वरूप देती है जैसे–प्रमुख धर्मावलम्बियों भाषा–भाषियों तथा राजनीतिक दलों को समुचित प्रतिनिधित्व देकर। सामान्यत: संघीय परिषद् में 3 जर्मन भाषा–भाषी तथा 1 इटालियन भाषा–भाषी कैंटन से पार्षद लियें जाते हैं इसके अतिरिक्त परिषद् राजनीतिज्ञों का एक बेमेल अथवा विजातीय (Heterogeneous) समुदाय भी है । ब्रिटिश मंत्रिमण्डल में सिर्फ एक दल के अनुयायी रहते हैं। लेकिन स्विस संघीय परिषद् की एक विचित्रता यह है कि उसमें सभी प्रमुख दलों को स्थान दिया जाता है। 1929 ई. से प्राय: सभी प्रमुख दलों– उदारवादी, कैथोलिक अनुदारवादी, कृषक दल तथा समाजवादी दलों को प्रतिनिधित्व मिलता आ रहा है।

टास्क स्विस कार्यपालिका को बहुल कार्यपालिका क्यों कहा जाता है?

निर्वाचन–पद्धति: संघीय परिषद् के सदस्यों की निर्वाचन–पद्धति (System of Election) 1848 ई. के संविधान द्वारा निर्धारित की गयी थी। संघीय सभा के दोनों सदन संयुक्त अधिवेशन में उनका निर्वाचन करते हैं। पार्षदों का जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन का प्रस्ताव कई बार आया है, लेकिन लोक निर्णय ने अस्वीकृत कर दिया है।

कार्यकाल: संविधान की धारा 96 में संघीय परिषद् के कार्यकाल की व्यवस्था की गई है। संघीय परिषद् के सदस्य 4 वर्षों के लिए नियुक्त किये जाते हैं। 1931 ई. के पहले इसकी अवधि केवल 3 वर्ष की थी। लेकिन 1931 ई. में राष्ट्रीय परिषद् के साथ इसके कार्य–काल को भी प्राय: बढ़ाकार 4 वर्ष कर दिया। संविधान में यह कहा गया कि संघीय सभा के प्रत्येक नव–निर्वाचन पर संघीय परिषद् का भी नया निर्वाचन होगा। अत: प्राय: संघीय परिषद् का चुनाव संघीय सभा द्वारा प्रत्येक चौथे वर्ष राष्ट्रीय परिषद् के निर्वाचन के तुरन्त बाद होता है। दूसरा प्रावधान यह है कि यदि वर्ष की अवधि के अन्तर्गत संघीय परिषद् के किसी सदस्य का स्थान रिक्त हो तो संघीय सभा अपनी पहली बैठक में ही शेष अवधि के लिए सदस्य का निर्वाचन करेगी। धारा 120 के अन्तर्गत यह समस्या पैदा होती है। संविधान का पुनर्निरीक्षण करने का प्रस्ताव विचाराधीन हो तो संघीय सभा के साथ–साथ संघीय परिषद् को भी विघटन कर दिया जाता है और नवनिर्वाचित विधान–सभा पुन संघीय परिषद् का निर्वाचन करती है।

यद्यपि सदस्यों का वैधानिक काल 4 वर्ष है परन्तु उनका बार–बार पुनर्निर्वाचन होता रहता है। फलस्वरूप उनका औसत कार्य–काल 10 वर्ष हो जाता है। अनेक ऐसे भी पार्षद हुए है जिन्होंने 30–30 वर्षों तक सदस्य–पद का उपयोग किया है। उदाहरणार्थ डॉ. जीसट माटा 21 वर्षों तक संघीय परिषद् के सदस्य बने रहे। आधुनिक पार्षदों में डॉ. फिलिप एटर 23 वर्षों से डॉ. कार्ल लौबलेट 14 वर्षों से, डॉ मेक्स पेट्रिट पीचर 10 वर्षों से और डॅ0 रौडोल्फ रूबाटल 8 वर्षों पार्षद–पद पर रहे।

नोट

योग्यताएँ: संविधान की धारा 96 के अनुसार संघीय परिषद् के सदस्य उन सभी स्विस नागरिकों के बीच में से चुने जाते है जो राष्ट्रीय परिषद् की सदस्यता की योग्यता रखते है। अत: कोई भी व्यक्ति जो राष्ट्रीय परिषद् के लिए चुने जाने की योग्यता रखता है संघीय परिषद् का सदस्य निर्वाचित हो सकता है इसका अर्थ यह हुआ कि धर्माधिकारी (Clergy) संघीय परिषद् के सदस्य नहीं हो सकते क्योकि उनके लिए राष्ट्रीय परिषद् की सदस्यता वर्जित है। 1914 ई. में एक कानून द्वारा यह बन्धन लगा दिया गया कि दो निकट सम्बन्धी संघीय परिषद् के सदस्य नहीं हो सकते और न तो संघीय परिषद् के निकट सम्बन्धी किसी ऐसे पद पर नियुक्त किये जा सकते है जो कि संघीय परिषद् के अधीन हो। संविधान की धारा 97 के अनुसार यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया है कि संघीय परिषद् के सदस्य राज्य-मण्डल अथवा किसी कैंटन के अन्तर्गत अन्य कोई पद ग्रहण नहीं कर सकते न तो वे कोई अन्य व्यवसाय ही कर सकते हैं। यद्यपि संविधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है । फिर भी संघीय सभा, संघीय परिषद् के लिए अधिकतर अपने सदसयों में से ही निर्वाचन करती है। लेकिन धारा 97 द्वारा लगाये गये प्रतिबन्ध के अनुसार संघीय परिषद् के सदस्य चुने जाने पर उनको संघीय सभा की सदस्यता से पद-त्याग करना पड़ता है। लेकिन व्यावहारत: सदस्यों का योग्य शासन होना आवश्यक है। उन्हें अनुभवी योग्य तथा निुपण होना चाहिए। उनमें पारस्परिक मतभेदों को समझौते के द्वारा सुलझाने की क्षमता होनी चाहिए। उनमें प्रशासनिक योग्यता श्रेष्ठ मानसिक शक्ति बुद्धि चैतन्य, व्यवहार-कुशलता, शांत स्वभाव अदि गुणों का होना आवश्यक है इन्हीं गुणों की आवश्यकता के कारण अधिकतर सदस्य ऐसे होते हैं। जो संघीय सभा तथा कैंटन के विधान-मण्डल के सदस्य अथवा कैंटन या राज्यमण्डल के कोई उच्चाधिकारी रह चुके है और काफी दीर्घकाल तक। **कोडिंग** का कहना है कि स्विट्जरलैड में पद-ग्रहण करने के लिए किसी व्यक्ति में विनम्रता (Modesty) का गुण होना आवश्यक हैं। व्यक्तिगत गुणों तथा सेवा के फलस्वरूप ही संघीय परिषद् की सदस्यता को प्राप्त कर सकता है।

संघीय परिषद् की सदस्यता के लिए वैधिक योग्यताओं के अतिरिक्त अनेक परम्पराओं का विकास हुआ है जिसका पालन पार्षद के निर्वाचन के सम्बन्ध में बहुत कड़ाई से किया जाता है। उनमें निम्नांकित परम्पराएँ उल्लेखनीय हैं-(1) संघीय परिषद् की सदस्यता संघ में भौगोलिक शक्ति के केन्द्रीकरण को अभिव्यक्त करती है । परम्परा द्वारा यह पूर्व निश्चित है कि सबसे बड़े कैंटन बर्न और ज्युरिच को परिषद् में अवश्य ही प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा। (2) भाषागत अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व देने के विचार से यह परम्परा बन गयी है कि पाँच से अधिक पार्षद जर्मन-भाषी क्षेत्र से नहीं आएंगे। (3) कानून के अभाव में भी संघीय परिषद् में देश के सभी प्रमुख राजनीतिक दलों को उनकी शक्ति के अनुपात में प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। (4) संघीय परिषद् में वह व्यक्ति ही चुने जाते हैं जिन्हे सार्वजनिक कार्यों का पर्याप्त अनुभव हो। प्राय: राष्ट्रीय परिषदों के इच्छानुकूल पुनर्निर्वाचन होता है। अधिकांश पार्षद दो-तीन अवधियों तक सदस्य बने रहते हैं।

वेतन: संघीय परिषद् के सदस्य को संघीय निधि से 48,000 फ्रैंक वार्षिक वेतन मिलता है। 55 वर्ष की उम्र वाले सदस्यों को निवृत्ति -वेतन (Pension) दिया जाता है बशर्ते कि वे दस वर्षों तक पार्षद रह चुके हों । निवृत्ति-वेतन का 40 से 60 प्रतिशत होता हैं। पार्षदों का वेतन अन्य देशों के मन्त्रियों की अपेक्षा बहुत ही कम है और वे बहुत सादगी से रहते हैं।

प्रशासकीय विभाग: स्विट्जरलैंड में प्रशासन के समस्त कार्य को 7 विभागों में बाँट दिया गया हैं। प्रत्येक विभाग एक संघीय परिषद् के अधीन होता हैं। जो उसके कार्यसंचालक के लिए समस्त परिषद् के प्रति उत्तरदायी होता है। एक विभाग के प्रमुख की अस्वस्थता या अनुपस्थिति में कार्य करने के लिए प्रत्येक विभाग का प्रमुख दूसरे विभाग का उप-प्रमुख होता है। सम्पूर्ण प्रशासन के लिए सामूहिक रूप से उत्तरदायी (Collectively responsible) होता है; परन्तु ह्यूज के मत में यह भ्रमात्मक है कि संघीय परिषद् का सामूहिक रूप में (Corporate body) किस सीमा तक अस्तित्व है। बहुधा कहा जाता है कि स्विट्जलैंड में सात कार्यकारिणी सदस्य (Federal Councillors) हैं परन्तु कोई कार्यकारिणी परिषद् (Federal council) नहीं। वर्तमान काल में निम्नलिखित 7 प्रशासकीय विभाग (Administrative Departments) हैं जिनका विभाजन अमेरिका के समान विधायिकी अधिनियम से नहीं, बल्कि फ्रांस के जैसा कार्यपालिका विनिमय से हुआ है-

(1) राजनीतिक विभाग (Political Department)

(2) गृह विभाग (Department of Interior),

(3) न्याय और पुलिस विभाग (Department of Justice and Police),

नोट

(4) सैनिक विभाग (Military Department),

(5) वित्त और प्रशुल्क विभाग (Department of Finance and Customs),

(6) सार्वजनिक अर्थ–विभाग (Department of Economy)

(7) डाक और रेल विभाग (Postal and Railways Department)

साधारण तथा संघीय परिषद् की बैठकें सप्ताह में दो बार होती है। इसकी कार्यवाही गुप्त होती है। इसमें कम–से–कम चार सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है। निर्णय बहुमत से होता है। कोई भी सदस्य बिना परिषद् की आज्ञा के बैठक से अनुपस्थित नहीं रह सकता। परिषद् का अध्यक्ष निर्णयात्मक मत (Casting Vote) देता है। संघीय चांसलर (Federal Chancellor) जो विधान–सभा और संघीय परिषद् के कार्यालय का अध्यक्ष होता है संघीय परिषद् के सचिव के रूप में परिषद् की बैठकों में उपस्थित रहता है। चांसलर के बदले कोई उप–चांसलर भी उनके कार्यों को कर सकता है।

पदाधिकारी: संघीय परिषद् के लिए सभापति और उप–सभापति की भी व्यवस्था है जिनका निर्वाचन संघीय सभा प्रतिवर्ष संघीय परिषद् के सदस्यों में से ही करती है। इन्हीं पदाधिकारियों को राज्यमण्डल का राष्ट्रपति और उप–राष्ट्रपति भी कहते हैं।

संघीय परिषद् के अधिकार एवं कृत्य (Powers and functions of the Federal Council): संविधान की धारा 102 में संघीय परिषद् की शक्तियों तथा कृत्यों की एक लम्बी सूची दी गयी है। इसके कार्य मुख्यत: प्रशासकीय है। संविधान की धारा 95 के अनुसार इसे सर्वोच्च निर्देशिका तथा कार्यपालिका शक्ति (the supreme directing and executive authority) प्राप्त है। प्रशासकीय शक्तियों के अतिरिक्त इसे कुछ महत्त्वपूर्ण विधायनी, वित्तीय एवं न्यायिक शक्तियाँ भी प्रदान की गयी हैं। अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से संघीय परिषद् को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है–

(i) कार्यपालिका की शक्तियाँ: सर्वप्रथम हम इसकी प्रशासकीय शक्तियों की चर्चा करगें । यह स्विस राज्यमण्डल की सर्वोच्च कार्यकारी सत्ता है। संघीय विधियों तथा आदेशों के अनुसार समस्त राज्यमण्डल के प्रशासक को नियन्त्रित करती है तथा इस बात का निरीक्षण करती है कि संघीय संविधान तथा संघीय कानूनों का निरीक्षण हो या नहीं और इसके लिए आवश्यक कार्यवाही करती है। संघीय सभा द्वारा निर्मित विधियों तथा अधिनियमों, संघीय न्यायाधिकरण के निर्णयों तथा विभिन्न कैण्टनों के परस्पर झगड़ों के निबटारे हेतु हुए समझौते एवं मध्यस्थों के निर्णयों को लागू कराने का प्रबन्ध करती है । इसे नियुक्ति का भी अधिकार प्राप्त है। जिन पदों पर संघीय सभा, संघीय न्यायालय अन्य किसी संघीय प्राधिकारी की नियुक्ति का अधिकार दिया गया है, उस पर संघीय परिषद् नियुक्ति करती है । संघीय प्रशासन के सभी विभाग इसके अधीक्षण में ही अपना कार्य करते हैं।

संघीय परिषद् पर राज्यसंघ में शान्ति एवं व्यवस्था, देश की बाह्य आक्रमणों एवं आंतरिक उपद्रवों से रक्षा तथा स्विट्जरलैंड की स्वतन्त्रता एवं तटस्थता की सुरक्षा का उत्तरदायित्व सौंपा गया है।

संघीय सेना संघीय परिषद् के ही अधीक्षण में अपना कार्य करती है। यदि उस समय आवश्यक हो जाए जिस समय संघीय सभा के अधिवेशन न चल रहा हो तो संघीय परिषद् सेना का संगठन कर उसका आवश्यकतानुसार उपयोग कर सकती है । परन्तु यदि सेना 3 सप्ताह से अधिक के लिए अथवा दो हजार सैनिकों से संगठित किया जाये तो संघीय सभा के सदनों की बैठक तुरंत बुलाना आवश्यक है।

स्विट्जरलैंड के वैदेशिक सम्बन्ध के नियम तथा देखभाल का अधिकार भी संघीय परिषद् को ही दिया गया है। संविधान में कहा गया हैं कि यह विदेश में राज्यमण्डल के हितों की देख–भाल करेगी, खासकर अन्तरराष्ट्रीय संबंध तथा वैदेशिक मामले। इसके अतिरिक्त कैंटनो द्वारा परस्पर या विदेशों से की गयी संधियों को यह स्वीकृति देती है।

संघीय परिषद् सभा के प्रत्येक साधारण अधिवेशन में अपने कार्य का विवरण देती है, आन्तरिक स्थिति तथा वैदेशिक संबंध पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत करती है और सभा के विचारार्थ सार्वजनिक कल्याण के उपायों का सुझाव रखती है । संघीय सभा या उनके किसी एक सदन द्वारा माँग की जाने पर विवरणों के अतिरिक्त विवरण भी प्रस्तुत कर सकता है।

संघीय परिषद् को किसी एक या दोनों सदनों को किसी विषय पर सन्देश भेजने का अधिकार है। सन्देश के साथ विधेयकों अथवा योजनाओं के प्रारूप भी संघीय सभा के विचार तथा स्वीकृति के हेतु भेजे जा सकते हैं। अन्त में, कैण्टनों के प्रशासन पर भी संघीय परिषद् का अधिकार है । यह कैण्टनों के कतिपय प्रशासन विभागों का निरीक्षण

नोट

करता है कैंटनों की विधान सभाओं द्वारा पारित कुछ विधेयकों को संघीय परिषद् की स्वीकृति प्रदान करता है। संघीय सभा की स्वीकृति के लिए हुए कैंटन विधान में संशोधन प्रस्तावों का संघीय परिषद् जाँच करती तथा विधानमण्डल में उपर्युक्त प्रस्ताव प्रस्तुत करती है। किसी कैंटन में उपद्रव अथवा अशान्ति की स्थिति में संघीय परिषद् संघीय हस्तक्षेप का निश्चय करती तथा सभा का अनुमोदन प्राप्त कर हस्तक्षेप करती है।

(ii) विधायी शक्तियाँ: विधि-निर्माण में भी संघीय परिषद् का काफी हाथ रहता है धारा 102 (4) के अनुसार यह संघीय सभा में कानून का प्रारूप प्रस्तुत करती है तथा परिषद् या कैंटनों द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों पर प्रारंभिक प्रतिवेदन देती है। यद्यपि इसके सदस्य विधानमण्डल के सदस्य नहीं होते, लेकिन वे किसी भी सदन की बैठक में भाग ले सकते हैं। अपने विचार सुझाव तथा प्रस्ताव रख सकते हैं तथा वाद-विवाद में भाग ले सकते हैं। संघीय परिषद् स्वेच्छा से या विधानसभा के निर्देश से विधेयक भी प्रेषित कर सकती है। इसके अलावा सभा में प्रस्तुत किए जाने वाले सभी विधेयकों का संघीय परिषद् परीक्षण करती है तथा संवैधानिक दृष्टि से उन्हें त्रुटि रहित बनाती है। स्विट्जरलैंड में नया विधेयक प्राय: संघीय परिषद् से प्रारम्भ होती है। अगर कोई विधेयक संघीय-परिषद् की नजर से छूट भी जाता है तो उनकी औपचारिक शुरूआत करने के लिए संघीय परिषद् से निवेदन किया जाता है। संघीय परिषद् विधेयक का प्रारूप तैयार करती तथा तर्कपूर्ण प्रतिवेदन के साथ उसे संघीय सभा के समक्ष रखती है। अगर संघीय सभा ने संघीय परिषद् को किसी विषय पर विधेयक का प्रारूप तैयार करने के लिए कहा हो और परिषद् उसके विरूद्ध रिपोर्ट देती है तो साधारणत: सभा विधेयक के उस प्रारूप को कानून नहीं बनने देती है। संघीय परिषद् का कार्य सिर्फ विधेयक का प्रारूप तैयार करना ही नहीं है बल्कि इसके बाद के उपक्रमों में भी वह सभा को नेतृत्व प्रदान करती है। इसका भार परिषद् के एक सदस्य को सौंप दिया जाता है। वह विधेयक समिति से विचार-विमर्श करता, उसकी बैठकों में भाग लेता तथा उसे परामर्श देता है। इस सन्दर्भ में प्रो. रैपर्ड का कथन है कि यह समझाना कठिन नहीं कि संसद सदस्य क्यों नहीं वास्तविक विधायक बन पाते हैं जब विधेयक किसी सदन के समक्ष रखा जाता है, जब संघीय परिषद् जो परिषद् द्वारा उसे विधेयक का संरक्षक नियुक्त किया जाता है, उसे प्रस्तुत करता है। उसका अर्थ बतलाता है उसके पक्ष में तर्क देता है और विधायिकी भेड़ियों से उसकी रक्षा करने के लिए गड़रिये का काम करता है। पुन: प्रो. रैपड के शब्दों में मानना पड़ेगा कि सर्वाधिक उत्तरदायी तथा भावपूर्ण कार्य विधानमण्डल का नहीं बल्कि कार्यपालिका का है। संघीय परिषद् के तत्त्वावधान में विधानमण्डल द्वारा पारित सभी विधेयक छपते हैं तथा उसके आदेश से निर्धारित तिथि से व्यवहार में लाये जाते हैं।

संघीय सभा की समितियों की कार्यवाही और निर्णय को भी संघीय परिषद् प्रभावित करती है। समितियाँ परिषद् के विशेषज्ञों के मतों की उपेक्षा नहीं कर सकती; वे संघीय परिषद् के विशेषज्ञों की सहायता से अपनी रिपोर्ट तैयार करती है।

संघीय सभा अपने कानूनों की व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण हेतु संघीय परिषद् के विनियम (regulations) बनाने का अधिकार देती है। अत: एक भारी संघीय परिषद् प्रति वर्ष विनियम अथवा अधिनियम पारित कर प्रत्यक्ष रूप से विधि निर्माण में भाग लेती है।

(iii) न्यायिक अधिकार : संघीय परिषद् को कुछ न्यायिक अधिकार (Judicial power) भी प्राप्त हैं। वह कुछ विशेष प्रकार की अन्तराष्ट्रीय संधियों तथा संविधान की कतिपय धाराओं जैसे-183 (शुल्क रहित सैनिक अस्त्र-शस्त्र), 51 (जिसूट धार्मिक समुदाय), 53 (कब्रिस्तान) आदि के अन्तर्गत उत्पन्न विवादों के सम्बन्ध में की गयी अपीलों पर निर्णय देती है। संघीय रेलवे प्रशासन तथा विभिन्न प्रशासकीय विभागों के विरुद्ध की गयी अपील की यह सुनवाई करती है। अन्य देशों की कार्यपालिका के सदृश उसे क्षमादान (pardon) का अधिकार प्राप्त नहीं हैं।

(iv) वित्तीय अधिकार: संविधान स्पष्ट शब्दों में कहता है कि संघीय परिषद् राज्य-मंडल वित्त का प्रशासन करती है, बजट तैयार करती है तथा आय-व्यय का लेखा रखती है।

इस प्रकार संघीय सभा की स्वीकृति से संघीयपरिषद् राजस्व एकत्र करती है तथा उसके व्यय का अधीक्षण करती है।

(v) संकटकालीन अधिकार: भारत के संविधान के सदृश स्विस संविधान कार्यपालिका संकट अथवा आपत्तिकाल में कोई विशेष अधिकार प्रदान नहीं करती है। लेकिन आन्तरिक या अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति से उत्पन्न संकटकाल में

नोट

(emergency) संघीय सभा ने परिषद् को पूर्ण अधिकार सौंप दिया है। उदाहरणस्वरूप 1835, 1853 और 1870 ई. में देश की तटस्थता के रक्षार्थ 1914 तथा 1939 ई. में विश्वयुद्ध के समय राष्ट्र की तटस्थता, स्वतन्त्र तथा आर्थिक हितों की रक्षा के हेतु और 1930 ई. में आर्थिक संकट का सामना करने के लिए संघीय परिषद् को 'पूर्णाधिकार' सौंपे गये। संघीय विधानमण्डल तथा कैंटनों के अधिकार संघीय परिषद् द्वारा प्रयुक्त होने लगे, नागरिक अधिकार निलम्बित कर दिये। ह्यूबर ने संघीय परिषद् को सौंपें गये अधिकारों के परिणाम के बारे में कहा है कि उन पूर्णाधिकारियों के द्वारा बहुत मात्रा तक संविधान निलम्बित हो गया। सरकार ही वस्तुत: विधायिनी शाक्ति बन गयी, बहुत सी जनतांत्रिक संस्थाओं (विशेषकर लोकनिर्णय पद्धति) को बाधा पहुँची तथा संघीय परिषद् के अधिकारों का इतना अधिक प्रसार हो गया कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

निष्कर्ष रूप में, लॉवेल के कथनानुसार संघीय परिषद् को मुख्य शक्ति-स्रोत कहा जा सकता है और निश्चित रूप से यह राष्ट्रीय सरकार का संतुलन चक्र है।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

सही विकल्प चुनिए (Choose the Correct Option)–

1. वह देश जिसका राष्ट्रपति अंतरंग मंत्रिमंडल (Kitchen Cabinet) की सलाह से कार्य करता है–
   (क) ब्रिटेन (ख) फ्रांस (ग) रसिया (घ) चीन
2. 'स्टेट ड्यूमा' किस देश की विधायिका के निम्न सदन का नाम है–
   (क) रसिया (ख) चीन (ग) ब्रिटेन (घ) अमेरिका
3. किस देश की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग 7 सदस्यों की एक संघीय परिषद् द्वारा किया जाता है–
   (क) फ्रांस (ख) अमेरिका (ग) ब्रिटेन (घ) स्विट्जरलैण्ड
4. "पंचम गणतंत्र" किस देश से सम्बंधित है–
   (क) फ्रांस (ख) रसिया (ग) चीन (घ) स्विट्जरलैण्ड
5. किसने कहा है कि "अमरीकी राष्ट्रपति में ब्रिटिश सम्राट तथा प्रधानमंत्री दोनों के पद सम्मिलित हैं–
   (क) लास्की (ख) आंग व रे (ग) ब्रोगन (घ) बियर्ड

7.3 सारांश (Summary)

- सिद्धान्त और तथ्य में विभेद ब्रिटिश संविधान की प्रमुख विशेषता है। यह वह संविधान है, जिसमें कानूनी सत्य (Legal Truth) प्राय: राजनीतिक असत्य (Political Untruth) हो जाता है। इसी प्रसंग में ग्लैडस्टोन ने सम्राट और क्राउन के अन्तर को ब्रिटिश संविधान का सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य कहा है।
- अब एक जटिल प्रश्न उठता है, क्राउन क्या है? क्राउन का शाब्दिक अर्थ– "वह टोपी जिसे सम्राट राज्यपद के चिह्न-स्वरूप पहना है।" लेकिन आज क्राउन का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में होता है। इस विशिष्ट अर्थ को इतिहास के जरिये समझा जा सकता है। पहले इंगलैंड में निरंकुश राजतन्त्र था। क्राउन को धारण करने वाले सम्राट के हाथ में राज्य के समस्त अधिकार रहते थे। सम्राट की शक्तियाँ उसकी व्यक्तिगत हैसियत से प्राप्त होती थी। क्योंकि प्रत्येक राजा व्यक्तिगत रूप से निर्वाचित होता था। अत: उसकी मृत्यु के पश्चात् 'अराजकत्व काल' (interragnum) कायम हो जाता था।
- 1774 ई॰ में हार्डविक (Hardwicke) ने जार्ज द्वितीय से कहा– "श्रीमान आपके मन्त्रिगण सरकार के साधन-मात्र हैं, जार्ज द्वितीय ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया– "इस देश में मन्त्रिगण ही वास्तविक राजा हैं।"
- करीब एक सौ वर्षों के बाद जार्ज द्वितीय के कथन की सत्यता स्पष्ट हो गई। मन्त्रिगण राजा के नौकर न रह गये बल्कि मालिक बन गये।

नोट

- इस प्रकार ब्रिटिश संविधान के अन्तर्गत एक नयी संवैधानिक संस्था का उदय हुआ। राजाओं की मृत्यु होते ही, नये राजा पदारूढ़ होते; लेकिन राजतंत्र एक संस्था के रूप में अनवरत रूप से चलता रहा। इस संस्था को क्राउन कहा जाने लगा। आज भी सम्राट व्यक्तिगत रूप से क्राउन पहनता है। उसी के नाम पर राज्य के सभी कार्य होते हैं। विधानत: सभी शक्तियों का स्रोत भी वही है; लेकिन व्यवहारत: उनका प्रयोग सम्राट व्यक्तिगत रूप से नहीं करता; बल्कि एक संस्था के रूप में करता है।
- क्राउन की एक अन्य विशेषता यह है कि वह कभी मरता नहीं, उनका अन्त नहीं होता। यह अविनाशी (Immortal) है। सम्राट एक व्यक्ति है, वह जन्म ग्रहण करता है। उसकी मृत्यु होती है; लेकिन क्राउन एक संस्था है; इसलिए वह कभी भी मरती नहीं, बल्कि स्थायी है।
- निष्कर्ष रूप में राजा और क्राउन (King and Crown) में दो प्रमुख भेद है। पहला, राजा एक व्यक्ति है; लेकिन क्राउन एक संस्था है। राजा मरता है, लेकिन क्राउन स्थायी है। राजा द्रष्टव्य है, क्राउन अदृश्य है दूसरा क्राउन का एक अंग है। उसके अतिरिक्त मंत्रिपरिषद् तथा संसद मिलकर क्राउन का निर्माण करते हैं– अत: क्राउन की शक्तियों का उपयोग राजा सामान्य जनसाधारण के प्रतिनिधियों द्वारा करता है।
- संयुक्त-राज्य अमेरिका में शक्तियों के विभाजन के सिद्धांत को अपनाया गया है। कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका तीनों विभागों को अलग-अलग रखा गया है फिर भी इस सिद्धान्त को पूरे तौर पर लागू नहीं किया जा सकता। इंगलैंड में तो इस सिद्धांत को कोई महत्त्व नहीं दिया गया। वहाँ कार्यपालिका और व्यवस्थापिका को एक-दूसरे से अभिन्न रखा गया। विधायिनी शक्ति संसद-सहित सम्राट के हाथों में है।
- यहाँ सम्राट का मतलब क्राउन से है। अत: क्राउन राष्ट्रीय विधानमण्डल का अभिन्न अंग हैं। उसकी स्वीकृति संविधि पारित होने के लिए आवश्यक है। कोई भी विधेयक तब तक संविधि पुस्तक (Statue Book) में दर्ज नहीं हो सकता जब तक कि सम्राट उस पर हस्ताक्षर न करे। सम्राट को संसद पारित किसी विधेयक की स्वीकृति प्रधान करने या उसका प्रतिनिषेध (Veto) का अधिकार है लेकिन वह प्रतिनिषेध-अधिकार स्वयं लुप्त हो गया, 1707 ई॰ बाद इसका प्रयोग कभी नहीं हुआ।
- क्राउन को न्याय का स्रोत (fountain of Justice) कहा जाता है। इस ऐतिहासिक कथन का अर्थ है कि सम्राट का सद्विवेक न्यायव्यवस्था में अन्तिम वाक्य है। लेकिन अब यह कथन व्यावहारिकता से दूर है। अन्य देशों की तरह इंगलैड में भी स्वतन्त्र न्यायपालिका के सिद्धांत को अपनाया गया है।
- ब्रिटेन की अन्य संस्थाओं की तरह ब्रिटिश प्रधानमन्त्री का पद भी आकस्मिक घटनाओं का नतीजा तथा संयोग की बात (a child of chance) है। इस पद की उत्पत्ति प्रथाओं के द्वारा हुई। इसकी स्थिति के बारे में किसी भी परिनियम या संविधि में कुछ जिक्र नहीं है। इनोवर वंश के शासन-काल में वॉलपोल की अध्यक्षता तथा संचालन करने का अवसर मिला। इस प्रकार वॉलपोल प्रथम प्रधानमंत्री बना। लेकिन उसे अधिकांश लोग प्रथम मन्त्री (First Minister) ही कहते थे। प्रधानमन्त्री की पदवी लुई चौदहवें के शासन काल के 'Prime Minister' की नकल द्वारा अपनायी गयी।
- बहुमत दल का नेता संविधानत: प्रधानमंन्त्री की नियुक्ति सम्राट द्वारा होता है। लेकिन दलगत सरकार के विकास ने एक प्रथा चला दी है, सम्राट लोकसभा में निर्वाचित बहुसंख्यक राजनीति दल के मान्य नेता को प्रधानमन्त्री का पद ग्रहण करने तथा मंत्रिमंडल-निर्माण के लिए आमन्त्रित करता है।
- कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं जब सम्राट निजी निर्णय (Discretion) के अनुसार कार्य कर सकती है। सर्वप्रथम ऐसी परिस्थिति तब उत्पन्न होती है जब प्रधानमन्त्री इस बात का सबूत छोड़े बिना कि दल किसको उत्तराधिकार बनाना चाहता है, त्याग-पत्र दे देता है या बहुमत दल का कोई स्पष्ट तथा निश्चित नेता नहीं है। लेकिन यह अधिकार ऐसा है जिसका सफल प्रयोग इस बात पर निर्भर करता है कि सम्राट द्वारा नामजद राजनीतिज्ञ शक्तिशाली सरकार का कहाँ तक निर्माण कर सकता है। उदाहरणार्थ, 1880 इ॰ में **लार्ड हार्टिगन** उदारवादी दल का लोक-सभा में नेता था और ग्रेनवाइल उसके लार्ड-सभा में नेता था, लेकिन

नोट

दल में ग्लैडस्टोन भी शामिल था और उदारवादी जीत का अनादर होने के कारण भावी प्रधानमन्त्री समझा जाता था, लेकिन महारानी उन्हें नापसन्द करती थी। अत: हार्टिंगटन और ग्रेनवाइल को बारी-बारी से आमंत्रित किया गया; लेकिन उन्होंने मंत्रिमण्डल बनाने से इन्कार कर दिया और ग्लैडस्टोन के नेतृत्व को अवश्यसम्भावी बतलाया।

- सर राबर्ट वॉलपोल के समय से यह एक सुनिश्चित नियम-सा बन गया है कि प्रधानमंत्री लोक-सभा, लार्ड-सभा दोनों में से किसी एक सदन का सदस्य रहे। लेकिन बीसवीं शताब्दी में यह भी निश्चित हो गया है कि प्रधानमंत्री को लोकसभा का सदस्य जरूर ही होना चाहिए, लार्ड-सभा का सदस्य अर्थात् पीयर प्रधानमंत्री नहीं बन सकता है।
- यद्यपि नियमत: प्रधानमंत्री पद के लिए कोई निश्चित योग्यता नहीं है, फिर भी व्यावहार में उसके लिए कुछ निजी गुणों को होना अनिवार्य है। विभिन्न विद्वानों ने प्रधानमंत्री के लिए विभिन्न योग्यताओं का उल्लेख किया है। **मुनरो** के शब्दों में, "ब्रिटेन के प्राय: प्रधानमंत्री कुलीन, सुशिक्षित तथा धनवान होते हैं। वे छोटी आयु में ही राजनीति में प्रवेश करते और इसे अपना व्यवसाय बना लेते हैं।" मगर पिट ने प्रधानमंत्री के इस गुणों का उल्लेख किया है: "पहला व्यक्तित्व शक्ति, दूसरे ज्ञान, तीसरे परिश्रम और अन्त में, धैर्य।" उसे केवल लोकमत का अध्ययन करने वाला विद्यार्थी ही नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे प्रचार-कला का पंडित भी होना चाहिए।
- सम्राट एक नाम मात्र का प्रधान है। व्यवहार में उसकी तमाम शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिमंडल द्वारा होता है जो अन्ततोगत्वा प्रधानमन्त्री के हाथ में चला जाता है। वस्तुत: प्रधानमन्त्री के हाथ में ही शासन का तमाम अधिकार रहता है। वह ब्रिटिश संविधान की कुँजी है।
- उसकी शक्तियों के मुख्यत: दो स्रोत हैं– विधि और विजित दल के नेता की स्थिति।
- प्रधानमंत्री मंत्रिमंडल के निर्माण, जीवन तथा मृत्यु का केन्द्र (Centre of formation, life and death) है। प्रधानमंत्री पद की बागडोर सँभालने के बाद उसका कर्त्तव्य होता है मन्त्रिमंडल का निर्माण करना। टेकनिकल रूप से अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राज्य के प्रधान अर्थात् सम्राट द्वारा होती है, लेकिन अनौपचारिक रूप से प्रधानमन्त्री ही उन्हें नियुक्त करता है, क्योंकि उसके परामर्श पर सम्राट उन्हें मन्त्रिमंडल में शामिल करता है।
- प्रधानमंत्री केवल मंत्रिमंडल का निर्माण ही नहीं करता है, बल्कि उसे जीवन देता है तथा गति प्रदान करता है। मन्त्रियों के बीच विभागों का वितरण प्रधानमन्त्री ही करता है यदि कोई अनुभवी राजनीतिज्ञ चाहे तो किसी विभाग को अस्वीकृत भी कर सकता है; बशर्ते कि उस दल में उसको इतना समर्थन एवं आदर प्राप्त हो कि शासन को उसकी सेवाएँ अत्यन्त जरुरी हो और दल के लिए भी ऐसे व्यक्ति से वंचित होना बुद्धिमानी न हो।
- प्रधानमन्त्री सिर्फ निर्माता तथा पालनकर्त्ता ही नहीं, बल्कि संहारकर्त्ता (destroyer) भी है। सभी मंत्रियों का भविष्य उसी के साथ बँधा हुआ है। प्रधानमन्त्री के साथ ही अन्य मन्त्री भी तैरते या डूबते हैं। उसके त्याग-पत्र के साथ पूरी मन्त्रिपरिषद् भंग हो जाती। इसके अलावा उससे असहमत होने वाले अन्य मन्त्री को त्याग-पत्र द्वारा पद-त्याग करना पड़ता है।
- इस प्रकार प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल के निर्माण, जीवन तथा मरण के केन्द्र-बिन्दु है। वह मंत्रिमंडल का निर्माणकर्त्ता, पालनकर्त्ता तथा संहारकर्त्ता, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश है। मंत्रिमंडल रूपी मेहराब (arch) की आधारशिला है। मंत्रिपरिषद् की वह कुँजी है। लेकिन अमेरिका के राष्ट्रपति की तरह मंत्रिमंडल का मालिक नहीं है, मंत्रिमंडल के अन्य सदस्य उसके नौकर नहीं बल्कि सहयोगी हैं।
- फिलाडेल्फिया सम्मेलन में निश्चित कार्यावधि के लिए निर्वाचित एकल कार्यपालिका के पक्ष में समझौता हुआ। अत: संविधान में यह व्यवस्था की गयी कि कार्यपालिका शक्ति एक राष्ट्रपति में निहित होगी जो

नोट

चार वर्ष के लिए अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित हों।

- संविधान के द्वितीय अनुच्छेद में राष्ट्रपति के निर्वाचन विधि (Procedure of Election) का उल्लेख किया गया है। राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक-मण्डल (Electorral College) द्वारा होता है।
- **ब्रोगन** ने कहा है कि "अमरीकी राष्ट्रपति में ब्रिटिश सम्राट तथा प्रधानमंत्री दोनों के पद समन्वित हैं।" अर्थात् राष्ट्रपति की तुलना में ब्रिटिश सम्राट तथा प्रधानमंत्री दोनों से की जाती है। ब्रिटिश सम्राट के सदृश अमेरिका का राष्ट्रपति भी राज्य का प्रधान है। वह सरकार के 'गौरवपूर्ण (dignified) भाग का अधिष्ठाता है। जैसा कि **लॉस्की** ने बतलाया है, राष्ट्रपति सम्राट से अधिक और कम दोनों हैं। अधिक इस अर्थ में है कि उसकी कार्यपालिका शक्ति वास्तविक है। जबकि ब्रिटिश-सम्राट केवल नाममात्र का या संवैधानिक प्रधान है। ब्रिटिश संविधान में सिद्धान्तत: सम्राट में समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ निहित हैं, लेकिन वह प्रत्येक कार्य मन्त्रिमण्डल के परामर्श से करता है, जो सम्राट के प्रति उत्तरदायी है। कहने का अर्थ यह है कि व्यवहार में सम्राट की समस्त शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिमण्डल करता है। मन्त्रिमण्डल ही वास्तविक कार्यपालिका है। इसके विपरीत अमेरिका का राष्ट्रपति सिर्फ संविधानिक प्रधान नहीं अपितु वास्तविक प्रधान है।
- फ्रांस के राष्ट्रपति से भी अमेरिकी राष्ट्रपति की तुलना की जा सकती हैं। चतुर्थ गणतन्त्र के अन्तर्गत अमरीकी राष्ट्रपति की तुलना में फ्राँसीसी राष्ट्रपति की स्थिति अत्यन्त दुर्बल थी, लेकिन पंचम गणतन्त्र में उसकी शक्ति में पर्याप्त वृद्धि हुई है। अमेरिका के राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक-मण्डल द्वारा होता है जबकि चतुर्थ गणतन्त्र फ्रांस के राष्ट्रपति का निर्वाचन फ्रांस की संसद के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन द्वारा होता था। लेकिन पाँचवें गणतन्त्र में राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक-मण्डल द्वारा होगा, जिसमें संसद के सदस्य, समुद्र पार के प्रदेशों की व्यवस्थापिका के जेनरल कौंसिल के सदस्य तथा नगरपालिकाओं के निर्वाचित प्रतिनिधि होंगे। यह प्रणाली फ्रांसीसी राष्ट्रपति के प्रभाव को अधिक व्यापक बनाती है।
- जहाँ तक कार्यावधि का प्रश्न है, अमरीकी राष्ट्रपति का निर्वाचन 4 वर्ष के लिए होता है जबकि चौथे और पाँचवे गणतन्त्र के राष्ट्रपति की पदावधि 7 वर्ष की हैं।
- ब्रिटिश प्रधानमंत्री और अमरीकी राष्ट्रपति की तुलना एक अनुपयुक्त, पर रोचक विषय है। सरकार के पृथक प्रकार तथा शक्तियों का लचीला रूप इस प्रकार की तुलना को जटिल बना देता है तथा विद्वानों में मतैक्य नहीं हो सकता है। **राम्जे म्योर** के मत में "ब्रिटिश प्रधानमंत्री की शक्तियाँ इतनी विस्तृत हैं कि विश्व के किसी अन्य संवैधानिक शासक को उतनी शक्तियाँ प्राप्त नहीं, यहाँ तक कि अमेरिका के राष्ट्रपति को भी नहीं।" दूसरी ओर **ब्राइस** ने कहा है कि "अमेरिका के राष्ट्रपति का पद विश्व का सर्वोच्च पद है।"
- **लॉस्की** ने इन दोनों प्रतिकूल विचारधाराओं के मध्य का मार्ग अपनाया है–"अमेरिका का राष्ट्रपति सम्राट से कम या ज्यादा दोनों है।" इस प्रकार प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति की स्थिति के विषय में विद्वान् एकमत नहीं है फिर भी **लॉस्की** का विचार सत्य के अधिक निकट है।
- दोनों जनता के प्रतिनिधि होते हैं, दोनों प्रजातन्त्र राज्यों में सर्वेसर्वा हैं, दोनों की शक्तियाँ व्यापक हैं, दोनों विश्व की दो महान् शक्तियों के कार्यपालिका प्रधान है, दोनों जनता के प्रति उत्तरदायी शासन के संचालक हैं और दोनों युद्ध अथवा संकटकालीन अवस्था में असीमित अधिकारों का प्रयोग कर सकते हैं।
- **चतुर्थ** गणतन्त्र का संविधान ब्रिटिश संविधान की तरह पूर्णत: संसदात्मक (Parliamentary) था। वास्तविक शासन-शक्ति मंत्रिपरिषद् के हाथ में थी। राष्ट्रपति नाम-मात्र का या संवैधानिक (Nominal or constitutional) कार्यपालिका-प्रधान था। वह शक्तिहीन था। **अब्बे लॉते** ने इस पद का एकमात्र गुण नपुंसकता बतलाया

नोट

है ं लेकिन पंचम गणतन्त्र में राष्ट्रपति की स्थिति में क्रांतिकरी परिवर्तन हुआ है इसमें राष्ट्रपति की शक्ति में अपार वृद्धि हुई तथा मंत्रिपरिषद् एव संसद की शक्तियों में ह्रास। फ्रांस के एक भूतपूव्र प्रधानमन्त्री **मेण्डीज फ्रांस** के अनुसार राष्ट्रपति एक अवंशानुगत राजा बनाया गया है और ऐसी शक्तियाँ प्रदान की गयी है जिनमें वह अपने को एक वैधानिक अधिनायक बना सकता है।

- 1946 ई. के संविधान मे राष्ट्रपति–पद के लिए अर्हताओं (Qualifications) का उल्लेख नहीं था । सिर्फ इतना कहा गया था कि फ्रांस के किसी भूतपूर्व राजवंश का वंशज इस पद के लिए उम्मीदवार नहीं हो सकता था। इस उपबन्ध का उद्देश्य राजतन्त्र की पुन: स्थापना को रोकना था। अत: राजवंश के व्यक्तियों को छोड़कर 18 वर्ष से अधिक उम्र वाला कोई भी व्यक्ति इस पद के लिए खड़ा हो सकता था। प्राय: मध्यम योग्यता के व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित होते थे, क्योंकि वास्तविक शक्ति के अभाव में प्रभावशाली व्यक्ति इस पद को पसन्द नहीं करते थे। **पंचम गणतन्त्र** का संविधान भी राष्ट्रपति की अर्हताओं के सम्बन्ध में मौन है । यहाँ तक कि राजवंश संबंधी प्रतिबंध की भी चर्चा नहीं की गयी है । अत: नये संविधान में कोई भी वयस्क फ्रांसीसी नागरिक राष्ट्रपति पद के लिए खड़ा हो सकता है।
- स्विस शासन–पद्धति न तो संसदात्मक है, न अध्यक्षात्मक ही। उसकी कार्यपालिका में दोनों की विशेषताओं का सम्मिश्रण मिलता है; इसमें दोनों शासन–पद्धतियों के गुणों को अपनाने तथा अवगुणों से बचने का प्रयत्न किया गया है । स्विट्जरलैंड में कार्यपालिका शक्ति को ब्रिटेन तथा अमेरिका के सदृश किसी एक व्यक्ति में निहित न कर सात सदस्यों की एक परिषद् में निहित किया गया है जिसे संघीय परिषद् (Federal Council) कहते हैं। इसी कारण स्विस कार्यपालिका को बहुल कार्यपालिका (Plural Executive) या मण्डलात्मक कार्यपालिका (Collegiate Excecutive) या मिश्रित कार्यपालिका (Commission Type Executive) कहते हैं। संसार की कार्यपालिकाओं में यह अतुल्य तथा अनोखी कार्यपालिका (Unparallel and peculiar Executive) है। **कोडिंग** के शब्दों में दस अनोखा छोटे देश का अनोखी संस्था नि:संदेह संघीय परिषद् अर्थात् स्विस संघीय कार्य पालिका है।
- संविधान की धारा 92 के अनुसार स्विस राज्यमण्डल में सर्वोच्च निर्देशन तथा कार्यपालिका शक्ति 7 सदस्यों की एक संघीय परिषद् द्वारा प्रयुक्त की जाती हैं इस प्रकार स्विट्जरलैंड में कार्यकारिणी शक्ति किसी एक व्यक्ति–राष्ट्रपति या सम्राट के हाथ मे नहीं बल्कि एक परिषद् के हाथ में सौपी गयी है। संविधान द्वारा इसकी सदस्य–संख्या 7 निश्चित की गयी है ।
- स्विस राज्य–मण्डल के राष्ट्रपति पद भी संघीय परिषद् की तरह अनोखा तथा अतुल्य है। ब्रिटेन में शासन के कार्यकारी भाग का प्रधान प्रधानमंत्री होता है और 'गौरवपूर्ण' भाग का प्रधान सम्राट है। स्विस राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और सम्राट दोनों पदों का समन्वय करता है वह शासन का प्रधान है और राज्य का भी । लेकिन इसकी तुलना न तो ब्रिटिश प्रधानमंत्री से की जा सकती है और न ब्रिटिश सम्राट से ही। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री उससे बहुत ज्यादा शक्तिशाली है और ब्रिटिश सम्राट को उससे बहुत अधिक सम्मान तथा गौरव प्राप्त है ।
- ब्रिटिश प्रधानमंत्री शासन का सर्वेसर्वा है। वह मंत्रिमण्डल का निर्माण–कर्त्ता संचालन तथा संहारक है। वह संसद का नेता राष्ट्र का प्रमुख प्रवक्ता तथा नियुक्तियों का अधिकारी है, लेकिन स्विस राष्ट्रपति को इनमें से कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। संघीय परिषद् सदस्यों की न तो नियुक्ति और न तो उन्हें अपदस्थ करने में ही उसका कोई हाथ है। उसके सभी अधिकार उनके साथियों से समान है।
- शासन–प्रणाली के स्तर पर **अध्यक्षीय प्रणाली** (Presidential System) और **संसदीय प्रणाली** (parliamentary System) **का मिश्रण** तैयार करने का प्रयत्न किया गया है। अध्यक्षीय प्रणाली की

नोट

तरह यहां एक शक्तिशाली **राष्ट्रपति** (President) की व्यवस्था की गई है, और संसदीय प्रणाली की तरह यहां एक शक्तिशाली **संसद** (Parliament) की व्यवस्था की गई है जिसे **संघीय सभा** (Fedreal Assembly) कहा जाता है। राष्ट्रपति राज्य का अध्यक्ष (Head of state) है जो सीधे जनसाधारण के द्वारा चार वर्ष के लिए चुना जाता है; उसे लगातार दो बार से आगे नहीं चुना जा सकता। वह संविधान का संरक्षक है, और सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति (Supreme commander of the Armed Forces) भी है।

- राष्ट्रपति एक अंतरंग मंत्रिमंडल (Kitchen Cabinet) की सलाह से कार्य करता है जिसमें उसके विश्वस्त मित्र और उच्चाधिकारी सम्मिलित होते है।
- राष्ट्रपति आज्ञाप्तियां (Decrees) जारी कर सकता है जो कानून की तरह मान्य होती है। परंतु ये आज्ञप्तियां प्रचलित कानून के विरुद्ध नहीं होनी चाहिए। फिर संसद इन्हें निरस्त भी कर सकती है। दूसरी ओर राष्ट्रपति भी संसद-द्वारा- पारित विधेयक (Bill) को कानून बनने से रोक सकता है ।
- देश की रक्षा (Defence) का दायित्व सँभालने के लिए राष्ट्रपति सुरक्षा परिषद् (Security Council) नियुक्त करता है जिसका अध्यक्ष वह स्वयं होता है। वह केंद्रीय बैंक (Central Bank) के अध्यक्ष (Chairperson), महा-अभियोजक (prosecutor General) तथा न्यायपालिका (Judiciary) के प्रमुख सदस्यों की नियुक्ति का प्रस्ताव संसद के पास भेजता है। जनवरी, 1994 के बाद संरक्षण-सेवाएं, गृह-मंत्रालय, रक्षा मंत्रालय और विदेश मंत्रालय सीधे राष्ट्रपति के अधीन कर दिए गए हैं। राष्ट्रपति-पद का उम्मीदवार कम-से-कम दस लाख मतदाताओं के द्वारा मनोनीत होना चाहिए; इसमें किसी एक अंचल (Region) या गणराज्य (Republic) के मतदाताओं की संख्या कुल संख्या की 7% से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।
- जनवादी चीन का संविधान आंशिक रूप से संसदीय प्रणाली को अपनाता है। भारत की भाँति गणतंत्र का अध्यक्ष होता है जो शासन के अध्यक्ष यानी प्रधानमंत्री से अलग होता है। 1954 के संविधान में अध्यक्ष पद की व्यवस्था की गयी। माओं -त्से तुंग गणतंत्र के अध्यक्ष के साथ-साथ दल के महासचिव भी रहे जिस कारण वे देश के सर्वशक्तिशाली पदाधिकारी बने रहे। लेकिन लिउ-शाओं-ची की यह स्थिति नहीं थी। 1975 के संविधान में इस पद को समाप्त कर दिया गया और स्थायी समिति तथा उसके अध्यक्ष को गणतंत्र के अध्यक्ष की शक्तियाँ और कार्य सौंप दिये गये।
- चीनी गणराज्य के अध्यक्ष का चुनाव राष्ट्रीय काँग्रेस के सदस्यों द्वारा किया जाता है। 1954 के संविधान द्वारा उसका कार्यकाल 4 वर्ष निर्धारित किया था; 1982 के संविधान द्वारा कार्यकाल 5 साल का कर दिया गया है। कोई भी व्यक्ति, जिसे राजनीतिक अधिकार प्राप्त हों और उसकी आयु 45 वर्ष हो, अध्यक्ष पद चुना जा सकता है। वस्तुत: दल के वरिष्ठ और प्रतिष्ठित नेता ही इस पद के लिए चुने जाते हैं जैसे माओ-त्सेतुंग, लिऊ-शाओ-ची और ली जीआनियन।

7.4 शब्दकोश (Keywords)

कार्यपालिका : इसमें सम्मिलित है– राज्य के प्रधान, प्रधानमंत्री, मंत्रिमंडल, विभागों के प्रधान आदि।

क्राउन : जिसे सम्राट राज्यपद के चिह्न स्वरूप पहनता है। अर्थात् ताज अथवा मुकुट।

7.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सम्राट और क्राउन में क्या अंतर है? ब्रिटेन में क्राउन के बने रहने के क्या औचित्य हैं।
2. अमेरिकन राष्ट्रपति के चुनाव एवं शक्तियों की विवेचना कीजिए
3. ब्रिटिश प्रधानमंत्री और अमेरिकी राष्ट्रपति की तुलनात्मक व्याख्या कीजिए।

नोट

4. पंचम गणतंत्र के अंतर्गत फ्रांस के राष्ट्रपति की शक्तियों का विश्लेषण करें।
5. "स्विस संघीय परिषद् न तो सदनात्मक है न अध्यक्षात्मक" विवेचन कीजिए।
6. चीनी गणतंत्र के अध्यक्ष (राष्ट्रपति) और भारत-अमेरिका के राष्ट्रपति का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

उत्तर: स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

(1) ग (2) क (3) घ (4) क (5) ग

7.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *तुलनात्मक शासन एवं राजनीति*–डॉ. बीरकेश्वर प्रसाद सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन (पी. एण्ड डी.) 24, दरियागंज, अंसारी रोड, दिल्ली।
2. *तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा*– ओम प्रकाश गाबा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।
3. *तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ*–सी.बी. गेना, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड, दिल्ली।
4. *तुलनात्मक राजनीति*–जे.सी. जौहरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि., दिल्ली।

नोट

इकाई–8: संवैधानिक संरचना-व्यवस्थापिका (Constitutional Structure- Legislature)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
8.1 ब्रिटिश संसद की शक्ति और संगठन, अमरीकी कांग्रेस, स्विस संघीय विधानमंडल (Composition and Power of the British Parliament, U.S. Congress, Swiss Federal Assembly)
8.2 फ्रांस-रसिया संसद और चीन की राष्ट्रीय जन-कांग्रेस (French-Russian Parliament and National People's Congress of China)
8.3 सारांश (Summary)
8.4 शब्दकोश (Keywords)
8.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
8.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- ब्रिटिश संसद, अमरीकी कांग्रेस, स्विस संघीय व्यवस्थापिका, फ्रांस-रसिया संसद और चीनी गणराज्य की व्यवस्थापिका के संगठन एवं शक्तियों की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सरकार, राज्य का आवश्यक मूल तत्व है। वह राज्य का कार्यवाहक यन्त्र है जो राज्य की इच्छा को निर्धारित, व्यक्त तथा कार्यान्वित करता है। सरकार के अभाव में राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए उसे राज्य की आत्मा कहा जाता है। राज्य एक सूक्ष्म धारणा है, परन्तु सरकार एक वास्तविक तथ्य है सरकार द्वारा ही राज्य के लक्ष्य का निर्धारण तथा क्रियान्वयन होता है। यह राज्य का वह यन्त्र है जिसके ऊपर राज्य के कानून बनाने, उनका क्रियान्वयन करने तथा जो उनका पालन न करें उसे उचित दण्ड देने-दिलाने का उत्तरदायित्व होता है। इन्हीं कार्यों को पूरा करने के लिए सरकार की शक्तियाँ तीन विभागों में बँट जाती है जिन्हें क्रमशः व्यवस्थापिका (legislature) कार्यपालिका (executive) और न्यायपालिका (judiciary) कहा जाता है। लेकिन, **ड्यूग्वी** आदि विद्वान सरकार के केवल दो अंग ही मानते हैं। परन्तु कुछ विद्वान पाँच अंग मानते हैं। (1) निर्वाचकगण, (2) शासन प्रबंधकर्ता, (3) व्यवस्थापिका, (4) कार्यपालिका और (5) न्यायपालिका। एक अन्य अमरीकी विद्वान **डीले** ने तो सरकार के सात अंग बतलाये हैं (1) कार्यपालिका, (2) शासन विभाग, (3) व्यवस्थापिका (4) कानून सर्वप्रधान (5) न्याय विभाग, (6) संविधान का व्याख्याता न्यायालय और (7) न्यायालय। लेकिन आज सरकार के अंगों के ये वर्गीकरण मान्य नहीं है। सरकार के तीन अंगों वाला सिद्धांत (Trinity Theory of Government) सिद्धांत ही मान्य है जिसके अनुसार व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सरकार के तीन अंग है। सरकार के तीनों अंगों में सबसे महत्त्वपूर्ण व्यवस्थापिका है। यही विभाग कानून का निर्माण करती है जिसके अनुसार कार्यकारिणी शासन करती है तथा व्यवस्थापिका न्याय का कार्य करती है व्यवस्थापिका का सरकार के संगठन में सर्वोच्च स्थान हैं प्रजातांत्रिक राज्यों में यह जनता का प्रतिनिधित्व करती है और लोकतंत्र का दर्पण होती है।

नोट

8.1 ब्रिटिश संसद की शक्ति और संगठन, अमरीकी कांग्रेस, स्विस संघीय विधानमंडल (Composition and Power of the British Parliament, U.S. Congress, Swiss Federal Assembly)

ब्रिटिश संसद (British Parliament): सैद्धांतिक दृष्टि से ब्रिटिश संसद में राजमुकुट (The Crown), लार्ड सभा (House of Lords) और कॉमन्स सभा (House of Commons) तीनों आ जाते हैं। **लार्ड सभा को उच्च सदन, उपरला सदन** (Upper House) या दूसरा सदन (Second Chamber) **कहा जाता है; कॉमन्स सभा को निम्न सदन या अवर सदन** (Lower House) कहा जाता है। परंतु वास्तव में कॉमन्स सभा की शक्तियां और कृत्य लार्ड सभा की तुलना में अधिक विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है। व्यावहारिक और राजनीतिक कारणों से **कॉमन्स सभा को ब्रिटिश संसद का पर्यायवाची समझा जाता है** क्योंकि इसके सदस्यों का चुनाव जनसाधारण के द्वारा किया जाता है; इसी सदन को विधि-निर्माण की अंतिक शक्ति प्राप्त है; और मंत्रिमंडल (Cabinet) अपने अस्तित्व के लिए इसी सदन के विश्वास (Confidence) पर आश्रित है।

संसद की प्रभुसत्ता (Sovereignty of Parliament): ए.वी. डाइसी (1835–1922) के अनुसार, कानूनी दृष्टि से संसद की प्रभुसत्ता इंग्लैंड की राजनीतिक संस्थाओं की प्रमुख विशेषता है। इंग्लैड के कानून के अंतर्गत किसी ऐसे व्यक्ति या संस्था को मान्यता नहीं दी गई है जिसे संसद के द्वारा बनाए गए कानून को रद्द करने या उससे ऊंचा कानून बनाने का अधिकार हो। **विलियम ब्लैक्स्टन** (1723–80) के शब्दों में संसद को कानून बनाने, उसकी पुष्टि, विस्तार या व्याख्या करने का सर्वोपरि और असीम अधिकार है। ये कानून किसी भी तरह के हो सकते हैं–चाहे वे धार्मिक हो या सांसारिक हो, दीवानी हो या फौजदारी हो, सैनिक हो, या असैनिक हो। यह राजसिंहासन के उत्तराधिकार की परंपरा को नियमित कर सकती हैं यह देश के संस्थापित धर्म को बदल सकती है। यह राज्य या स्वयं संसद की संरचना का नव-निर्माण कर सकती है। यह ऐसा सब कुछ कर सकती है जो प्राकृतिक दृष्टि से असंभव न हो।

ब्रिटिश संसद को प्रभुसत्तासंपन्न मानने का मुख्य कारण यह है कि वहां कोई लिखित संविधान (Written Constitution) नहीं है शासन-प्रणाली से जुड़ी हुई प्रथाएँ (conventions), न्यायिक दृष्टांत (Judicial Precedents) और संसद के अधिनियम (parliamentary Enactments) ही वहां के संविधान का आधार है। संसद के अधिनियम कानून की दृष्टि से सर्वोपरि है। इसके माध्यम से प्रथाओं को भी बदला जा सकता है, या रद्द किया जा सकता है। न्यायपालिका को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी भी आधार पर संसद के अधिनियमों का विधि-बाह्य (Extra-Legal) या शक्ति-बाह्य (Ultra Vires) घोषित कर दे, अर्थात् यह निर्णय दे सके कि प्रस्तुत अधिनियम का निर्माण संसद की शक्ति से बाहर है।

परंतु व्यावहारिक दृष्टि से, संसद की शक्ति सर्वथा असीम नहीं है। **लेस्ली स्टीफेन** के अनुसार, संसद की वास्तविक शक्तियां आंतरिक दृष्टि से भी कुछ सीमाओं से बँधी है एवं बाह्य दृष्टि से भी। आंतरिक दृष्टि से देखा जाए तो स्वयं विधानमंडल सामाजिक स्थितियों की देन है। अत: यह वही कानून बना सकता है जो सामाजिक दृष्टि से मान्य हो। वह ऐसा कोई कानून भी नहीं बना सकता जो लोकमत (Public Opinion) के विरूद्ध हो। बाह्य दृष्टि से देखा जाए तो संसद अंतराष्ट्रीय कानून (International Law) के विरूद्ध भी नहीं जा सकती। फिर, आज की ब्रिटिश संसद यूरोपीय संसद (european Parliament) के कानूनों को मान्यता देने के लिए भी बाध्य है, क्योंकि युनाइटेड किंग्डम यूरोपीय संघ (European Union) का सदस्य है। वैसे ये सब सीमाएँ व्यावहारिक सीमाएँ हैं जो अंतर्राष्ट्रीय समुदाय या यूरोपीय संघ के किसी भी सदस्य देश के विधानमंडल पर लागू होती हैं। ब्रिटिश संसद के संदर्भ में इनकी चर्चा इसलिए जरूरी है क्योंकि उसकी सत्ता को सिद्धांतत: असीम माना जाता है।

कॉमन्स सभा (House of Commons): कॉमन्स सभा के सदस्यों की वर्तमान संख्या 646 है। ये सब सदस्य निर्वाचित होकर आते हैं। प्रचलित भाषा में इन्हें एम॰पी॰ (Member of Parliament) या संसद-सदस्य कहा जाता है। बाहर के दबावों से मुक्त रखने के लिए कुछ 'विशेषाधिकार' (Privileges) प्राप्त होते हैं। दीवानी कार्रवाई (Civil Action) के अंतर्गत गिरफ्तार नहीं किया सकता। संसद में अपने कर्त्तव्यपालन के दौरान वह जो भाषण देता है या अन्य गतिविधियों

नोट

में हिस्सा लेता है, उनके कारण उस पर कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। संसद-सदस्य को जो वेतन मिलता है, वह कर या अन्य कटौतियां काटकर औसत ब्रिटिश वेतन का दुगुना होता है।

कॉमन्स सभा का कार्यकाल पांच वर्ष है, परंतु उसे इससे पहले भी भंग किया जा सकता है, या संसदीय अधिनियम (Parliamentary Act) के द्वारा इसका कार्यकाल बढ़ाया जा सकता है। कॉमन्स सभा अपने अध्यक्ष या सभाध्यक्ष (Speaker) के अनुशासन में कार्य करती है। इसकी मुख्य शक्तियां और कृत्य इस प्रकार है:

विधि-निर्माण (Legislation): कॉमन्स सभा का मुख्य कार्य विधि-निर्माण या कानून बनाना है। संसदीय अधिनियम, 1911 के अनुसार, धन-विधेयक (Money Bills) कॉमन्स सभा से ही शुरू किए जा सकते हैं। वहां पारित होने के बाद इन्हें लार्ड सभा में भेजा जाता है। परंतु लार्ड सभा इन्हें अधिक-से-अधिक एक महीने तक रोक सकती है। इस तरह देश की वित्त-व्यवस्था (Finances) पर कॉमन्स सभा का पूर्ण नियंत्रण है।

साधारण विधेयक किसी भी सदन से शुरू किए जा सकते हैं, परंतु अधिकांश महत्त्वपूर्ण विधेयक कॉमन्स सभा से ही शुरू किए जाते हैं। कोई भी विधेयक दोनों सदनों में पारित होने के बाद राजकीय समानुमति (Royal Assent) के लिए भेजा जाता है। यह समानुमति मिलने के बाद वह कानून बन जाता है। साधारण विधेयक को लार्ड सभा अधिक -से-अधिक एक वर्ष तक रोक सकती हैं। 1949 के संसदीय अधिनियम के अनुसार, यदि कॉमन्स सभा किसी साधारण विधेयक को एक वर्ष की अवधि के भीतर लगातार दो अधिवेशों में पारित कर दे तो यह कानून बन जाएगा, भले ही उस पर लार्ड सभा की स्वीकृति न हो। इस तरह विधि-निर्माण की प्रक्रिया में कॉमन्स सभा की इच्छा को प्रमुखता प्राप्त है। जहां तक धन-विधेयक का संबंध है, लार्ड सभा उसे अधिक-से-अधिक एक महीने तक रोक सकती है। यदि वह उसे इस अवधि में पारित नहीं करती तो उसे राजकीय समानुमति के लिए भेजा जा सकता है; यदि वह इसे अपनी सिफारिशों (Recommendations) के साथ लौटा देती है तो कॉमन्स सभा उन्हें मानने या न मानने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र हैं इस तरह वित्तीय मामलों में कॉमन्स सभा की शक्तियां सर्वोपरि हैं।

धन-विधेयक (Money Bill): कानून बनाने का यह प्रस्ताव या विधेयक जिसके अंतर्गत सरकारी खर्च (Government Expenditure) के लिए अनुमोदन और अधिकार प्राप्त किया जाता है। संसदीय प्रणाली के अंतर्गत धन-विधेयक प्रस्तुत करने का अधिकार केवल सरकार का है, और इसे सर्वप्रथम संसद या विधानमंडल के निचले सदन (Lower House) में ही प्रस्तुत किया जा सकता है।

समय के साथ कॉमन्स सभा की कई शक्तियां मंत्रिमंडल (cabinet) के हाथों में चली गई हैं। अब यह सदन स्वयं कोई कानून बनाने में पहल नहीं कर सकता। अधिकांश विधेयक सरकार स्वयं प्रस्तुत करती है, और सदन की समय-सारणी (Time Table) पर भी सरकार का नियंत्रण रहता है। सरकार सभी मामलों को विश्वास का मामला बना लेती है। अत: किसी भी मामले पर सदन में यथेष्ट बहुमत न मिल पाने पर वह त्यागपत्र देने के लिए तैयार रहती है।

प्रशासन की निगरानी (Supervision of Administration): कॉमन्स सभा सरकार के सारे काम-काज की निगरानी करती है। मंत्रिमंडल तभी तक अपने पद पर बना रह सकता है जब तक उसे कॉमन्स सभा में बहुमत का विश्वास प्राप्त हो। अत: सरकार कॉमन्स सभा की कृपादृष्टि प्राप्त करने के लिए निरंतर सजग और प्रयत्नशील रहती है।

विधेयकों पर वाद-विवाद के समय विपक्ष (Opposition) के सदस्य सरकार की नीतियों और उसकी कार्य-कुशलता की तीखी आलोचना करते हैं। उसका उपयुक्त उत्तर देना संबद्ध मंत्री का दायित्व हैं

प्रश्न-काल (Question Hours) के दौरान कॉमन्स सभा के सदस्य मंत्रियों से उनके विभगों के काम-काज के बार में प्रश्न पूछ सकते हैं। उन्हें संतुष्ट करना मंत्रियों का कर्त्तव्य हैं

गैर-सरकारी सदस्य सार्वजनिक महत्त्व के अत्यावश्यक मामलों (Matters of Urgent Public Importance) की चर्चा के लिए सदन में स्थगन प्रस्ताव या काम-रोको प्रस्ताव (adjournmnet Motion) रखकर सरकार की गलतियों का पर्दाफाश कर सकते हैं

विपक्ष के सदस्य अनुदान-मांगों पर कटौती प्रस्ताव (Cut Motion) प्रस्तुत करके सरकारी विभागों की कटु आलोचना कर सकते हैं, या अविश्वास प्रस्ताव (No-Confidene Motion) प्रस्तुत करके सरकार को गिराने की कोशिश कर सकते हैं।

नोट

आर.सी. मैक्रिडीस ने विपक्ष की पांच विशेषताओं की ओर संकेत किया है :- (क) विपक्ष संगठित होता है और अपने चुने गए विषयों पर सरकार के सामने संयुक्त चुनौती रखता है; (ख) वह चिरस्थायी होता है; (ग) वह संपूर्ण देश में विरोधी दल के निष्ठावान सदस्यों को नेतृत्व प्रदान करता है; (घ) वह सरकार का विकल्प (Alternative) प्रस्तुत करता है। यदि सरकार गिर जाए तो विपक्ष सत्ता सँभालने के लिए तैयार रहता है। अत: वह सरकार की निंदा करते समय या अपनी ओर से कोई आश्वासन देते समय संयत व्यवहार करता है, और (ड़) वह शासन के कार्य में सहयोग करता है तथा सदन का कार्यक्रम निर्धारित करते समय वह सरकार के साथ मिलकर काम करता है।

विपक्ष का मुख्य कार्य संसद में राष्ट्र–हित और जनमत की दृष्टि से सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों की आलोचना करना है। विपक्ष की संयत और रचनात्मक आलोचना सरकार के लिए अत्यंत मुल्वान सिद्ध होती है। यही कारण है कि ब्रिटेन में विपक्ष को 'महागरिमामयी का निष्ठावान विपक्ष' (Her Majesty's Loyal Opposition) कहा जाता है। ब्रिटिश संसद में विपक्ष के नेता को बाकायादा वेतन दिया जाता है क्योंकि यह मानकर चलते हैं कि सदन में उसका कार्य सत्तारूढ़ सरकार के किसी सदस्य से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। विपक्ष के वरिष्ठ नेताओं का समूह अपने–आपको **छाया–मंत्रिमंडल** (Shadow Cabinet) के रूप में संगठित कर लेता है। इसके सदस्य विशिष्ट विषयों पर–जैसे कि वित्त, विदेशी मामलों, प्रतिरक्षा, इत्यादि के संदर्भ में अपने दल के प्रवक्ता की भूमिका निभाते हैं। सदन में सरकार की हार हो जाने पर इस छाया–मंत्रिमंडल को सरकार बनाने का अवसर दिया जाता है।

लार्ड सभा (House of Lords): इंग्लैंड में एकात्मक शासन प्रणाली (Unitary Government) प्रचलित है जिसमें साधारणत: दूसरे सदन (Second Chamber) की जरूरत नहीं होती। परंतु वहां ऐतिहासिक कारणों से लार्ड सभा के रूप में दूसरा सदन चला आ रहा है और वह आज भी बना हुआ है। इसमें जनसाधारण के निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं होते, बल्कि देश के कुछ ऐसे गणयमान्य लोग होते हैं जिन्हें या तो वंशपरंपरा (Heredity) से लार्ड की पदवी मिली हुई है, या वे पुरोहितवर्ग (Clergy) के उच्चाधिकारियों के नाते लार्ड सभा के सदस्य माने जाते हैं, या फिर उन्हें विशेष योग्यताओं, देश–सेवा, इत्यादि के आधार पर जीवन भर के लिए लार्ड के रूप में मनोनीत कर दिया जाता है। अक्टूबर, 1999 के बाद वंशपरंपरागत लार्डों को लार्ड सभा में बैठने का अधिकार नहीं रहा है।

लार्ड सभा में सदस्यों की संख्या नियत नहीं है। इनकी वर्तमान संख्या 747 है जो किसी कॉमन्स सभा के सदस्यों से ज्यादा है। लार्ड सभा के सक्रिय सदस्यों की संख्या 400 से भी कम है। इस सभा के सदस्यों के नाम से पहले सम्मानपूर्वक 'लार्ड' शब्द का प्रयोग किया जाता है; स्त्रियों के लिए इसकी जगह 'लेडी' शब्द का प्रयोग प्रचलित है। वस्तुत: बहुत कम लार्ड इस सभा में कोई सक्रिय भूमिका निभाते हैं। इनमें 9 विधि–लार्ड (Law Lords) भी सम्मिलित हैं जिनकी भूमिका सबसे महत्त्वपूर्ण हैं न्यायिक विशेषज्ञ होने के कारण इन्हें आजीवन नियुक्ति प्रदान की जाती है। लार्ड सभा के अध्यक्ष को **लार्ड चांसलर** (Lord Chancellor) कहा जाता है।

विधि–निर्माण के क्षेत्र में लार्ड की शक्तियां बहुत सीमित हैं। परंतु इस सभा में विधेयकों (Bills) पर उच्च स्तर का विचार–विमर्श होता है। इससे कई बार ऐसी महत्त्वपूर्ण बातें प्रकाश में आ जाती हैं जो कॉमन्स सभा सदस्यों के ध्यान से छूट सकती थीं। इसके अलावा, राजनीतिक दबावों (Political Pressure) से मुक्त रहने के कारण लार्ड सभा अत्यंत महत्त्वपूर्ण मुद्दो पर तटस्थ भाव से विचार कर सकती है।

आर.सी. मैक्रिडीस के अनुसार, लार्ड सभा की सबसे मुख्य शक्ति न्यायिक शक्ति (Judicial Power) है। यह इंग्लैंड का सर्वोच्च न्यायाधिकरण (Highest Tribunal) और अंतिम अपील–न्यायालय (Final Court of Appeal) है। एक प्रथा के अनुसार, जब लार्ड सभा उच्च न्यायालय (Hight Court) के रूप में कार्य करती है, तब उसमें लार्ड चासंलर के अलावा केवल विधि–लार्ड उपस्थित होते हैं।

लार्ड सभा के सदस्य राजनीति में भाग नहीं ले सकते। परंतु लार्ड चांसलर मंत्रिमंडल का सदस्य होता है, और (कॉमन्स सभा के अध्यक्ष के विपरीत) वह लार्ड सभा के वाद–विवाद में सक्रिय भाग लेता है। 1963 के एक अधिनियम के अंतर्गत कोई लार्ड अपनी पदवी का त्याग करके राजनीति के मैदान में उतर सकता है, और राजनीतिक पद का उम्मीदवार हो सकता है।

नोट

लार्ड सभा को कायम रखने के विरुद्ध मुख्य तर्क :- यह गैर-लोकतंत्रीय सदन है; यह धनिक वर्ग और रूढ़िवादी विचाराधारा (Conservative Ideology) का गढ़ है। परंतु यह सिद्ध करना कठिन है कि लार्ड सभा के अस्तित्व के कारण ब्रिटिश राजनीति में धनिक वर्ग के हितों को प्रधानता दी जाती है। वस्तुत: लार्ड सभा की शक्तियां इतनी सीमित हैं कि वह सर्वसाधारण की इच्छा को कार्यान्वित करने में कोई विशेष बाधा उपस्थित नहीं करती। चूंकि लार्ड सभा कभी भंग नहीं होती, इसलिए राजमुकुट की तरह यह भी शासन की निरंतरता का साधन बनी हुई है। फिर, लार्ड सभा में विचार-विमर्श में इतना उच्च कोटि का होता है कि वह देश के शासन को चलाने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है। राष्ट्रीय महत्त्व के विषयों पर जो प्रवर समितियां (Select Committees) बनाई जाती हैं, उनके कार्य में लार्ड सभा के सदस्य विशेष योग देते हैं। अंतत:, यह देश के प्रतिभाशाली लोगों को सम्मान और मान्यता प्रदान करने का उपयुक्त साधन भी बनी हुई है। यह देश को उनकी योग्यता से लाभ उठाने का अवसर प्रदान करती है।

प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल (Prime Minister and The Cabinet): प्रधानमंत्री और उसका मंत्रिमंडल ब्रिटेन की यथार्थ कार्यपालिका (Real Executive) है। प्रधानमंत्री को शासन का अध्यक्ष (Head of Government) माना जाता है। संसदीय प्रथा के अनुसार, आम चुनाव (general Election) के बाद जब नई संसद अर्थात् नई कॉमन्स सभा का गठन होता है, तब महारानी इस सदन में बहुमत (Mjority) के नेता को प्रधानमंत्री का पद सँभालने के लिए आमंत्रित करती है इसके बाद प्रधानमंत्री अपनी सरकार के अन्य मंत्रियों के नाम महारानी के औपचारिक अनुमोदन के लिए भेजता है। जब अनेक दलों की मिली-जुली सरकार (Coalition government) बनाई जाती है, तब संसद में इन दलों के समूह के सर्वसम्मत नेता को प्रधानमंत्री बनाया जाता है और अन्य मंत्री प्रधानमंत्री की सलाह पर इन दलों के संसद-सदस्यों में से नियुक्त किए जाते हैं। इन मंत्रियों का एक छोटा-सा-समूह- जिसमें प्रधानमंत्री समेत 16 से 25 तक मंत्री रहते हैं– एक अंतरंग (Inner), नीति-निर्माण मंडली (Policy-making Body) के रूप में नियुक्त किया जाता है; इन्हें शासन के सबसे महत्त्वपूर्ण विभाग सौंपे जाते हैं। इन मंत्रियों के समूह को 'मंत्रिमंडल' कहा जाता है। देखा जाए तो मंत्रिमंडल सरकार के ढांचे की आधार-शिला है।

प्रधानमंत्री (Prime Minister): मंत्रिमंडल का प्रत्येक मंत्री अपने-अपने विभाग या विभागों के प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता हैं। प्रधानमंत्री इस मंत्रिमंडल का अध्यक्ष होता है। वह कुछ विभाग अपने हाथ में भी रख सकता है। सिद्धांतत: मंत्रिमंडल के सब सदस्य समकक्ष या बराबर होते हैं, परंतु व्यावहार के धरातल पर प्रधानमंत्री का महत्त्व सबसे बढ़कर है। इसलिए उसे 'समकक्ष' लोगो में प्रथम (First Among Equals) कहा जाता है।

देश की राजनीति में प्रधानमंत्री की स्थिति कई तरह से बेजोड़ है। वह संपूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधि और नेता होता है। वह जब किसी जन-सभा में या जनसंपर्क के साधनों (Mass Media) पर राष्ट्र को संबोधित करता है तो उसकी बात सब जगह बड़े ध्यान से सुनी जाती है। वह अपने दल का महत्त्वपूर्ण नेता भी होता है। उसके मुख्यालय, क्षेत्रीय कार्यालयों और निर्वाचन क्षेत्रों के व्यावसायिक राजनीतिज्ञ (Professional Politicians) तथा स्थानीय स्तर के सक्रिय कार्यकर्ता (activists) उसकी सेवा को तत्पर रहते हैं। वह चुनाव की तिथि निर्धारित करता है; चुनाव-घोषणापत्र (Election Manifeto) के मुदद् और चुनाव-अभियान (Election Campaign) के तौर-तरीके निर्धारित करने में निर्णायक भूमिका निभाता हैं। फिर, संसदीय दल के नेता के नाते वह दल के भिन्न-भिन्न गुटों (Factions) के बीच सामंजस्य स्थापित करता है।

वस्तुत: प्रधानमंत्री ही मंत्रिमंडल बनाता और तोड़ता है। वह अपनी पसंद के संसद-सदस्यों को मंत्रिमंडल में रख सकता है हालांकि उसे विभिन्न राजनीतिक हितों और भिन्न-भिन्न समूहों में नेतृत्व के दावेदारों को इसमें उचित प्रतिनिधित्व देना पड़ता हैं। किसी मंत्री से संतुष्ट न होने पर वह उसका त्यागपत्र मांग सकता है।

वह मंत्रिमंडल की बैंठकों की अध्यक्षता करता है, और उसकी कार्यसूची निर्धारित करता है। इन बैठकों में प्रधानमंत्री के दृष्टिकोण को विशेष महत्त्व दिया जाता है। वही मंत्रिमंडल के निर्णयों को उपयुक्त भाषा और अभिव्यक्ति प्रदान करता हैं। वह विभिन्न मंत्रिमंडलीय समितियों (Cabinet Committes) के सदस्य मनोनीति करता है, और ऐसी महत्त्वपूर्ण समितियों के संयोजन (Convener) की भूमिका निभाता है। व्यावहारत: मंत्रिमंडल सचिवालय (Cabinet

नोट

Secretariat) प्रधानमंत्री सचिवालय के रूप में कार्य करता है। महत्त्वपूर्ण अवसरों पर प्रधानमंत्री संपूर्ण मंत्रीमंडल का प्रतिनिधित्व करता है।

विदेशी मामलों (Foreign Affairs) में प्रधानमंत्री का विशेष वर्चस्व रहता है, भले ही वह विभाग मंत्रिमंडल के किसी अन्य मंत्री को सौंपा गया हो। अंतर्राष्ट्रीय शिखर–सम्मेलनों (Summit Conferneces) में बहुधा प्रधानमंत्री स्वयं अपने देश का प्रतिनिधित्व करता है, और विदेशी राज्याध्यक्षों के आगमन पर वह स्वयं उनका स्वागत करता है।

मंत्रिमंडल (Cabinet): मंत्रिमंडल ब्रिटिश सांविधानिक प्रणाली की धुरी है। मंत्रिमंडल के सदस्य अपने–अपने प्रशासनिक विभाग के अध्यक्ष के नाते देश के शासन में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। अमरीकी मंत्रिमंडल के सदस्य तो विधानमंडल से बिल्कुल नहीं जुड़े होते और वे केवल राष्ट्रपति (President) के सेवक होते हैं, परंतु ब्रिटिश मंत्रिमंडल के सदस्य स्वयं विधानमंडल के महत्त्वपूर्ण सदस्य होते हैं, और वे सामूहिक रूप से विधानमंडल की संचालन समिति (Steering committee) के रूप में कार्य करते हैं। यही सदस्य सदन में अपने–अपने विभाग से संबंधित विधेयक तथा नीति संबंधी प्रस्ताव रखते हैं, और सदन में अपने बहुमत के बल पर इन्हें स्वीकार भी करा लेते हैं।

मंत्रिमंडल के सदस्य कॉमन्स सभा में बहुमत–दल के नेताओं के रूप में अपने विशेष प्रभाव का प्रयोग करते हैं। सरकार को कायम रखने के लिए सत्तारूढ़ दल की एकता या सुदृढ़ता (Solidarity) जरूरी हैं यही सुदृढ़ता मंत्रिमंडल को कॉमन्स सभा में वर्चस्व प्रदान करती है।

मंत्रिमंडल का प्रत्येक सदस्य अपने विभाग के प्रशासन के लिए कॉमन्स सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। वहां उसके विभाग के बारे में जो प्रश्न उठाए जाते हैं, वह उनके उत्तर देता है; अपनी स्थिति को स्पष्ट करता है और यदि अपनी स्थिति का संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दे पाता तो संसद–सदस्य उसका त्यागपत्र मांग सकते है।

मंत्रिमंडल के सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत (Doctrine of Collective Responsibility) के अनुसार, सरकार की सामान्य नीति (General Policy) तथा मंत्रिमंडल के विशेष निर्णयों के लिए पूरा मंत्रिमंडल सामूहिक रूप से उत्तरदायी होता है। मंत्रिमंडल का विचार–विर्मश गुप्त रखा जाता है। अत: कोई भी मंत्री किसी सार्वजनिक मंच पर यह तर्क नहीं दे सकता कि उसने मंत्रिमंडल की बैठक में किसी विशेष निर्णय का विरोध किया था। यदि मंत्रिमंडल के निर्णय से किसी मंत्री का मतभेद हो तो उसे इस निर्णय की स्वीकृति से पहले ही त्यागपत्र दे देना चाहिए, या फिर उस निर्णय और उसके उत्तरदायित्व को चुपचाप स्वीकार कर लेना चाहिए।

राष्ट्र के प्रधान सेनापति (Commander-in-Chief) के नाते युद्धनीति पर उसका पूरा प्रभुत्व रहता है। फिर, जनसंपर्क के उन्नत साधन– टेलीविजन, रेडियो, समाचारपत्र, इत्यादि इतने सुलभ हैं कि वह इनके माध्यम से संपूर्ण राष्ट्र के जनमत को एकदम प्रभावित कर सकता है। जनमत राष्ट्रपति के अनुकूल होने पर कांग्रेस के लिए उसकी उपेक्षा करना कठिन हो जाता है। अमरीका जैसे महान् शक्तिशाली राष्ट्र के मुख्य कार्यकारी के नाते राष्ट्रपति की बात को न केवल अपने देश में, बल्कि संपूर्ण विश्व में बड़ी उत्कंठा के साथ सुना जाता है और उस पर विस्तृत चर्चा की जाती है।

परंतु इन सब साधनों के बावजूद यह जरूरी नहीं कि अमरीकी राष्ट्रपति अपने सभी कार्यक्रमों को बेधड़क और लागू करा सके। उदाहरण के लिए, राष्ट्रपति जिमी कार्टर, अंगोला और मोजाम्बीक को आर्थिक सहायता देने का अपना इरादा नहीं पूरा कर सके। दूसरी ओर, ब्रिटिश प्रधानमंत्री या तो अपने कार्यक्रमों को लागू कराने में समर्थ होता है, या फिर उसे त्यागपत्र देना पड़ता है। **ब्रिटिश प्रणाली के अंतर्गत विधानमंडल और कार्यपालिका में गतिरोध (Dedlock) पैदा होने की कोई गुंजाइश नहीं है।** संक्षेप में, अमरीकी व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रपति और विधानमंडल के बीच खींचातानी के बावजूद दोनों अपने–अपने कार्यकाल तक बने रहते हैं, परंतु ब्रिटिश व्यवस्था के अंतर्गत जब तक प्रधानमंत्री और संसद के बीच निभती रहती है, तब तक दोनों साथ–साथ चलते हैं। जब उनमें निभनी बंद हो जाती है तब प्रधानमंत्री या तो अपना और अपने मंत्रिमंडल का त्यागपत्र प्रस्तुत कर देता है, या फिर कॉमन्स–सभा को भंग करने की सलाह दे कर नया चुनाव कराने की व्यवस्था में जुट जाता है और अपना भविष्य जनता के फैसले पर छोड़ देता है।

नोट

क्या आप जानते हैं सिद्धांतत: प्रशासन की किसी भी विफलता पर संपूर्ण मंत्रिमंडल को त्यागपत्र दे देना चाहिए, परंतु कभी-कभी राजनीति युक्ति-कौशल के नाम पर ऐसी विफलता को किसी विशेष विभाग की विफलता का मुद्दा बनाकर उस विभाग के मंत्री का त्यागपत्र दिला दिया जाता है और सरकार को गिरने से बचा लिया जाता है।

अमरीकी कांग्रेस (American Congress)

संयुक्त राज्य अमरीका के विधानमंडल को 'कांग्रेस' कहा जाता है। अमरीका में संघीय शासन प्रणाली (Federal Government) प्रचलित है। वहां की संघीय सरकार पूरे राष्ट्र से संबंधित मामलों का शासन चलाती है, पचास राज्यों की सरकारें अपने-अपने से संबंधित मामलों का शासन चलाती है। संघीय प्रणाली की आवश्यकता के अनुरूप वहां संघ के विधानमंडल–अर्थात् कांग्रेस में दो सदन रखे गए हैं : (1) प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) जो संपूर्ण राष्ट्र के जनसाधारण का प्रतिनिधित्व करती है; और (2) सीनेट (Senate) पृथक्-पृथक राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है। प्रतिनिधि सभा को निम्न सदन या अवर सदन (Lower House) कहा जाता है; सीनेट को उच्च सदन, उपरला सदन (Uppoer House) कहा जाता है, या दूसरा सदन (Second chamber) कहा जाता हैं। प्रतिनिधि सभा के सदस्य को कांग्रेस-सदस्य कहा जाता है, सीनेट के सदस्य को सीनेट सदस्य या सीनेटर (Senator) कहा जाता है।

प्रतिनिधि सभा (House of Representatives): इसमें 435 सदस्य होते हैं जो कि पूरे देश की जनता के द्वारा चुने जाते हैं। इसके निर्वाचनक्षेत्र (constituencies) जनसंख्या के आधार पर बनाए जाते हैं। अत: इस सदन में किसी राज्य से आने वाले प्रतिनिधियों की संख्या वहां की जनसंख्या पर निर्भर है।

प्रतिनिधि सभा के सदस्य दो वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इस अवधि को किसी भी तरह बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता। प्रचलित प्रथा (Convention) के अनुसार, प्रतिनिधि सभा का सदस्य उसी निर्वाचनक्षेत्र से संबंध होना चाहिए जहां से वह चुनाव लड़ता है। इससे राष्ट्रीय प्रतिभाओं का यथोचित उपयोग तो नहीं हो पाता, परंतु लोकतंत्र की भावना (Democratic Spirit) को अवश्य बल मिलता है।

प्रतिनिधि सभा के सदस्यों को कुछ विशेषाधिकार (Privileges) प्राप्त है उन्हें सदन में बोलने की पूर्ण स्वतंत्रता है। वहां कही गई किसी भी बात के लिए उन पर कोई कानूनी कार्रवाई नहीं की जा सकती। अधिवेशन के दौरान उन्हें दीवानी मामलों (Civil Suits) में बंदी नहीं बनाया जा सकता।

प्रतिनिधि सभा अपने सभाध्यक्ष (Speaker) का चुनाव स्वयं करती है। उसे दलगत आधार पर चुना जाता है, और सभाध्यक्ष बन जाने पर वह अपने दल का सदस्य बना रहता है।

सीनेट (Senate): संयुक्त राज्य अमरीका के प्रत्येक राज्य को सीनेट में अपने दो-दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है, चाहे भौगोलिक या जनसंख्या की दृष्टि से कोई राज्य कितना भी छोटा या बड़ा क्यों न हो, चूंकि वहां राज्यों की वर्तमान संख्या 50 है, इसलिए सीनेट में 100 सदस्य होते हैं। शुरू-शुरू में राज्यों के विधानमंडल अपने-अपने राज्य का प्रतिनिधित्व करने के लिए सीनेट-सदस्यों का चुनाव करते थे। परंतु 1913 से राज्यों की जनता इनका प्रत्यक्ष चुनाव करती है।

प्रत्येक सीनेट-सदस्य छह वर्ष के लिए चुना जाता है। दो-दो वर्ष बाद सीनेट के एक-तिहाई सदस्य सेवा-निवृत्त हो जाते हैं। इस तरह पूरी सीनेट कभी भंग नहीं होती। यह एक स्थायी सदन बनी रहती हैं

संयुक्त राज्य अमरीका का उपराष्ट्रपति (Vice-President) सीनेट का सभापति (Chairman) होता है। अमरीका के राष्ट्रपति की तरह उपराष्ट्रपति का चुनाव भी जनसाधारण के द्वारा निर्वाचक-गण के माध्यम से, चार वर्ष की नियत अवधि के लिए होता है। सीनेट में उपराष्ट्रपति निष्पक्ष रूप से कार्य करता है। वह मतदान (Voting) में केवल हिस्सा लेता है जब किसी मामले के पक्ष और विपक्ष में बराबर मत हो जाने के कारण फैसला न हो पा रहा हो। ऐसी हालत में वह अपने निर्णायक मत का प्रयोग करता है।

नोट

कांग्रेस की शक्तियां और कृत्य (Powers and Functions of the Congress): अमेरिका में संघीय प्रणाली और लिखित संविधान अपनाया गया है। इसके अंतर्गत विधि-निर्माण के विषयों की दो सूचियां (Lists) बनाई गई हैं : संघीय विषय (Federal Subject) और राज्य विषय (State Subjects)। जो विषय इनमें से किसी सूची के विचारक्षेत्र में नहीं आते, उन्हें अवशिष्ट विषय (Residual Subjects) कहा जाता है। इन विषयों पर कानून बनाने की शक्तियां राज्यों के पास रहती हैं। इस दृष्टि से अमरीकी संघ-व्यवस्था भारतीय संघ-व्यवस्था से भिन्न है, क्योंकि भारत में अवशिष्ट विषय संघ सरकार के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं। दूसरे, भारत में एक समवर्ती सूची (Concurent List) की व्यवस्था भी की गई हैं। अमरीकी कांग्रेस को केवल संघीय विषयों पर कानून बनाने का पूरा अधिकार है।

निहित शक्तियों के सिद्धांत (Doctrine of Implied Powers) इसके अंतर्गत कांग्रेस तथा राष्ट्रपति ने कई ऐसी शक्तियां प्राप्त कर ली है जो स्वयं संविधान के अंतर्गत उन्हें व्यक्ति रूप से नहीं सौंपी गई थी। उदाहरण के लिए संविधान के अंतर्गत कांग्रेस को मुद्रा छापने, कर लगाने, ऋण लेने और खर्च करने का अधिकार दिया गया है। इसके आधार पर उसे एक 'निहित शक्ति' रूप में 'राष्ट्रीय बैंक' (National bank) की स्थापना का अधिकार मिल गया है। संयुक्त राज्य अमरीका का सर्वोच्च न्यायालय शासन के विभिन्न अंगों की 'निहित शक्तियों' को मान्यता देता है और वही इनकी सीमाएँ भी निर्धारित करता हैं

वित्त विधेयक (Finance Bill) यह केवल प्रतिनिधि सभा से ही शुरू किए जा सकते हैं। परंतु उनके लिए सीनेट का अनुमोदन जरूरी होता है। इस दृष्टि से, विधानमंडल के दूसरे सदन के रूप में सीनेट की शक्ति बेजोड़ है। यही कारण है कि **अमरीकी सीनेट को विश्व का सबसे शक्तिशाली दूसरा सदन** (Most Powerful Second chamber of the World) **कहा जाता है।**

अन्य विधेयक किसी भी सदन से आरंभ किए जा सकते है। कोई भी विधेयक दोनों सदनों में पारित होने के बाद **राष्ट्रपति की समानुमति** (Presidential Assent) के लिए भेजा जाता है। साधारणत: राष्ट्रपति उस पर हस्ताक्षर करके दस कार्य-दिवसों के भीतर लौटा देता हैं यह समानुमति मिल जाने के बाद वह कानून बन जाता है।

यदि राष्ट्रपति अपने **निषेधाधिकार** (Veto) का प्रयोग करके किसी विधेयक को अपनी आपत्तियों के साथ उसे शुरू करने वाले सदन के पास वापस भेज दे तो कांग्रेस के दोनों सदन दो-तिहाई बहुमत से उसे दुबारा पारित करके इस निषेधाधिकार को निष्फल कर सकते हैं।

कांग्रेस को संविधान के संशोधन का पूर्ण अधिकार है। इसके लिए प्रत्येक सदन का दो-तिहाई बहुमत अपेक्षित है। परंतु कांग्रेस में पारित होने के बाद इसके लिए कम-से-कम तीन-चौथाई राज्यों के विधानमंडलों का अनुसमर्थन (Ratification) जरूरी है।

सर्वोच्च न्यायालय साधारणत: कानून को शक्ति-बाह्य (Ultra Vires) ठहराकर निरस्त कर सकता है, अर्थात् वह यह निर्णय दे सकता है कि ऐसा कानून बनाना कांग्रेस की शक्ति के बाहर था। परंतु सांविधानिक संशोधन के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ऐसा निर्णय नहीं देता।

प्रशासनिक शक्तियां (Administrative Powers): अमरीकी कांग्रेस विभिन्न प्रशासनिक विभागों के बारे में विवरण (Reports) मँगा सकती है। यह अपनी जांच समितियां (Inquiry committees) नियुक्त करके प्रशासनिक विभागों की आलोचना कर सकती है।

इसके अलावा, राष्ट्रपति उच्च पदों के लिए (जैसे कि मंत्रियों, राजदूतों, न्यायाधीशों, महान्यायवादियों के पद पर) जो नियुक्तियां करता है, या विदेशों के साथ जो संधियां करता है, उनके लिए सीनेट का अनुसमर्थन (Ratification) जरूरी होता है। एक प्रथा (Convention) के अनुसार, यदि राष्ट्रपति को ऐसे राज्य में कोई नियुक्ति करनी हो जहां का सीनेट-सदस्य राष्ट्रपति के अपने राजनीतिक दल से हो तो राष्ट्रपति ऐसी नियुक्ति करने से पहले उस सीनेट-सदस्य से परामर्श कर लेता है। यदि वह सदस्य प्रस्तावित नियुक्ति का अनुमोदन कर देता है तो सीनेट उस नियुक्ति की पुष्टि कर देगी। यदि वह सीनेट-सदस्य इस पर आपत्ति करता है तो सीनेट भी उसकी पुष्टि नहीं करेगी। इस प्रथा को **सीनेट-सौजन्य** (Senatorial courtesy) की संज्ञा दी जाती है।

नोट

न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers): यदि देशद्रोह, भ्रष्टाचार या संविधान के उल्लंघन, इत्यादि का आरोप लगाकर राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, न्यायाधीशों या प्रशासनिक उच्चाधिकारियों पर **महाभियोग** (Impeachement) चलाना हो तो इसके लिए प्रतिनिधि सभा महाभियोग की धाराएँ (Articles of Impeachemnts) तैयार करती है, और सीनेट में मुकदमा चलाया जाता है। प्रतिनिधि सभा में महाभियोग की धाराओं को साधारण बहुमत (Simple Majority) से पारित किया जाता है। दोष-सिद्धि के लिए महाभियोग की प्रत्येक धारा पर सीनेट में उपस्थित तथा मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत (Two-Third Majority) आवश्यक होगा। दोष सिद्ध हो जाने पर अभियुक्त को पद से हटा दिया जाता है।

निर्वाचकीय शक्तियां (Electoral Powers): चार साल बाद जब राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का चुनाव होता है तो इस चुनाव में डाले गए वोटों की गिनती के लिए कांग्रेस के दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन (Joint Session) होता है। यदि **राष्ट्रपति** पद के लिए किसी उम्मीदवार को पूर्ण बहुमत (Absolute Majority) नहीं मिल पाता तो जिन तीन उम्मीदवारों को सबसे अधिक वोट मिले हो, उनमें से एक को **प्रतिनिधि सभा** राष्ट्रपति-पद के लिए चुन लेती है। यदि उपराष्ट्रपति-पद के लिए किसी उम्मीदवार को पूर्ण बहुमत नहीं मिल पाता तो जिन दो उम्मीदवारों को सबसे अधिक वोट मिले हों, उमें से एक को **सीनेट** उपराष्ट्रपति पद के लिए चुन लेती है।

समिति प्रणाली (The Committee System): अमरीकी कांग्रेस के अंतर्गत विधि निर्माण का वास्तविक कार्य अनेक समितियों और उपसमितियों (Sub-Committees) की सहायता से संपन्न किया जाता है। कांग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन में हजारों विधेयक प्रस्तुत किए जाते हैं। कोई भी सदस्य इन विधेयकों से जुड़े हुए सारे मुद्दों का जानकार नहीं हो सकता। देखा जाए तो विधि निर्माण का सारा कार्य विशेषज्ञता (Specialization) की मांग करता है। समिति प्रणाली का ध्येय ऐसे प्रत्येक कार्य को उपयुक्त विशेषज्ञों के प्रति सौंपना है। फिर, समिति के सदस्य एक समय किसी एक विषय पर अपना ध्यान केंद्रित कर सकते हैं ताकि उसके लिए उपयुक्त विधेयक का प्रारूप तैयार किया जा सके।

कांग्रेस की समिति को आम तौर पर 'लघु विधान-मंडल' (Little Legsilature) की संज्ञा दी जाती है। किसी भी विधेयक को अंतिम रूप देने का अधिकार ऐसी समितियों के हाथ में रहता है। सिद्धांतत: किसी समिति के प्रस्ताव को प्रतिनिधि सभा सीनेट में अस्वीकार कर सकता है, परंतु व्यावहारत: ऐसा बहुत कम हो पाता है। जब समिति का अध्यक्ष या अन्य कोई सदस्य समिति के विचार या निर्णय के बारे में सदन के पटल पर बोलता है, तब साधारणत: विधायक उसकी विशेषज्ञता का आदर करते हैं, और उसकी बात बड़े ध्यान से सुनते हैं। स्थायी समिति किसी विधेयक पर उसकी विशेषज्ञता का आदर करते हैं, और उसकी बात बड़े ध्यान से सुनते हैं। यदि कोई स्थायी समिति किसी विधेयक पर अपना प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत करने में बहुत देर कर दे, अर्थात् तीस दिन से ज्यादा लगा दे तो प्रतिनिधि सभा के बहुमत (अर्थात् 218 सदस्यों) के हस्ताक्षर से इस विधेयक को उस समिति के विचारक्षेत्र से वापस लेने की कार्रवाई की जा सकती है, परंतु ऐसे अवसर बहुत ही कम आते हैं।

पिछली दो शताब्दियों के दौरान कांगेस में कई तरह की समितियां बनाई गई हैं। मुख्य प्रकार की समितियों का विवरण निम्नलिखित हैं:

स्थायी समिति (Standing Committee): कांग्रेस का प्रत्येक सदन अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार, अपने-अपने नियमों के अंतर्गत, स्थायी महत्त्व के विषयों पर स्थायी समितियां बना सकता है। ऐसी समितियां सदन के पूरे कार्यकाल तक चलती हैं। इनके उदाहरण हैं : विनियोजन समिति (Appropriation Committee), बजट समिति (Budget Committee) विदेशी मामलों की समिति (Foreign Affairs Committee), अर्थोपाय समिति (Ways and Means Committee), इत्यादि।

प्रवर समिति (Select Committee): यह समिति साधारणत: किसी विशिष्ट विधायी उद्देश्य (Specific Legislative Purpose) की पूर्ति के लिए बनाई जाती है, जैसे कि किसी सार्वजनिक समस्या के अध्ययन और विश्लेषण के लिए। इसे निश्चित समय तक अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करना होता है। इसके बाद यह भंग कर दी जाती है।

नोट

संयुक्त समिति (Joint committee): इसका गठन तब होता है जब इसके लिए दोनों सदन एक-जैसा निर्णय करते हैं। इसमें दोनों सदनों के सदस्य रखे जाते हैं। ऐसी समिति स्थायी या अस्थायी दोनों तरह की हो सकती है। उदाहरण के लिए, अर्थ-व्यवस्था, कराधान, कांग्रेस पुस्तकालय, छपाई (Printing) की व्यवस्था, इत्यादि के लिए ऐसी समिति बनाई जा सकती है।

सम्मेलन समिति (Conference Committee): यह ऐसी संयुक्त समिति है जो किसी विषय पद दोनों सदनों के निर्णय में एकरूपता लाने के लिए बनाई जाती है। उदाहरण के लिए कोई भी विधेयक राष्ट्रपति की समानुमति के लिए भेजने से पहले दोनों सदनों के द्वारा एक ही रूप में पारित होना चाहिए। यदि दोनों सदन एक ही विधेयक पारित करना चाहते हों, परंतु उनकी अभिव्यक्ति में कोई अंतर हो तो इस अंतर को दूर करने के लिए या उनके मतभेद को सुलझाने के लिए इस समिति का सहारा लिया जाता है। यही कारण है **कभी-कभी सम्मेलन समिति को अमरीकी कांग्रेस का तीसरा सदन** (Third House) **कहा जाता है।**

सदन नियमावली समिति (House Rules committee): यह समिति यह निर्णय करती है कि किसी विधेयक को सदन में किस रूप में रखा जाए? वह प्रतिनिधि सभा में किसी विधेयक पर होने वाले वाद-विवाद की समय-सीमा भी निर्धारित कर सकती है।

कांग्रेस की विभिन्न समितियां विधि-निर्माण के कार्य में सहायता देने के लिए बनाई जाती हैं। परंतु उन्हें अपने विचार-क्षेत्र में आने वाले विषयों के विश्लेषण के लिए प्रशासनिक विभागों से विस्तृत जानकारी की जरूरत पड़ती है। अत: ये समितियां समय-समय पर प्रशासनिक विभागों से तरह-तरह की जानकारी या विवरण मँगाती रहती है। इस मामले में ऐसा अनुशासन विकसित हो गया है कि प्रशासनिक विभाग कांग्रेस-समितियों की पूछताछ को बहुत महत्त्व देते हैं, और अपेक्षित जानकारी या विवरण देने को हमेशा तैयार रहते है। इससे **कांग्रेस-समितियों को प्रशासनिक विभागों के काम-काज के निरीक्षण का अवसर मिल जाता है।**

यह बात ध्यान देने का है कि अमरीका की अध्यक्षीय प्रणाली के अंतर्गत यह संभावना बहुत कम रहती है कि वहां कोई संगठित विपक्ष (organized Opposition) हो। प्रशासनिक विभागों पर कांग्रेस-समितियों का निरीक्षण इस कमी को कुछ हद तक पूरा कर देता है।

राष्ट्रपति और कांग्रेस–परस्पर संबंध (Relation beweeen the President and the Congress): संयुक्त राज्य अमरीका का राष्ट्रपति शासन के कार्यकारी अंग (Executive Organ) का अध्यक्ष है; कांग्रेस वहां का सर्वोच्च विधायी अंग (Supreme Legislative Organ) है। **शक्ति-पार्थक्य** (Separation fo Powers) के सिद्धांत के अंतर्गत इन दोनों अंगों की शक्तियां और कृत्य इस ढंग से निर्धारित किए गए हैं कि वे अपने-अपने क्षेत्र में एक-दूसरे से स्वाधीन हों; शासन का कोई भी अंग अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय या अपने कृत्यों को संपन्न करते समय किसी दूसरे अंग पर आश्रित न हो। उदाहरण के लिए, वहां राष्ट्रपति का कार्यकाल चार वर्ष का है; कांग्रेस की प्रतिनिधि सभा का कार्यकाल दो वर्ष का है। इस नियत अवधि से पहले न तो राष्ट्रपति कांग्रेस को भंग कर सकता है; न कांग्रेस ही राजनीतिक समर्थन (Political Support) की कमी के कारण राष्ट्रपति को हटा सकती है।

दूसरी ओर, **अवरोध एवं संतुलन (Checks and Balances)** के सिद्धांत के अंतर्गत यह व्यवस्था की गई है कि शासन के विभिन्न अंग एक-दूसरे पर अंकुश रख सकें ताकि **शक्ति के जमाव (concentration of Power)** को रोका जा सके, और शासन का कोई भी अंग निरंकुश न हो जाए। राष्ट्रपति और कांग्रेस का परस्पर संबंध इस सिद्धांत का उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसके मुख्य मुद्दों का विवरण निम्न हैं:

राष्ट्रपति का संदेश (Presidential Message): राष्ट्रपति प्रति वर्ष कांग्रेस को अपना संदेश देता है। इसके अंतर्गत वह व्यावहारत: कांग्रेस के चालू अधिवेशन (Current Session) के लिए पूर्ण कार्यसूची (Full Agenda) प्रस्तुत कर देता है। इसमें वह यह व्यवस्था कर देता है कि वर्तमान अधिवेशन के दौरान वह विधानमंडल से क्या-क्या करने की आशा और अपेक्षा करता है? **राष्ट्रपति** के इस कृत्य को ध्यान में रखते हुए उसे **संयुक्त राज्य अमरीका का मुख्य विधायक** (Chief Legislator) **कहा** जाता है और उसकी विस्तृत चर्चा की जाती है। देखा जाए तो राष्ट्रपति का यह

नोट

संदेश केवल कांग्रेस के नाम नहीं होता; यह सारी अमरीकी जनता और पूरे विश्व के नाम होता है। लोकमत पर उसका जो प्रभाव पड़ता है, उसे ध्यान में रखकर ही कांग्रेस राष्ट्रपति के प्रस्तावों पर उपयुक्त कार्रवाई करती है। अधिवेशन के दौरान भी यदि राष्ट्रपति यह अनुभव करता है कि कांग्रेस का दृष्टिकोण उसके प्रस्तावों के प्रति अनुकूल नहीं है तो वह फिर, जितनी बार चाहे, राष्ट्र के नाम संदेश जारी कर सकता है।

परंतु कोई राष्ट्रपति अपने प्रस्तावों को कांग्रेस के माध्यम से कहां तक कार्यान्वित करा पाएगा– यह उसके अपने व्यक्तित्व, कांग्रेस में उसके दल के बहुमत और लोकमत के समर्थन पर निर्भर है। आम तौर पर राष्ट्रपति के प्रस्तावों में से आधे से ज्यादा कार्यान्वित नहीं हो पाते। उसके बजट-प्रस्तावों में भी कांग्रेस कई तरह के परिवर्तन या कटौती कर देती है।

राष्ट्रपति की समानुमति और निषेधाधिकार (Presidential Assesent and Veto): कोई भी विधेयक कांग्रेस के दोनों सदनों में पारित होने के बाद राष्ट्रपति के पास 'समानुपति' के लिए भेजा जाता है। यदि राष्ट्रपति उस विधेयक के प्रस्तुतीकरण (Submission) के दिन से कांग्रेस के दस कार्य-दिवस (Working Days) बीत जाने पर भी कोई आपत्ति नहीं करता तो इसे राष्ट्रपति की 'मौन सम्मति' मान लिया जाता है; अत: वह विधेयक कानून बन जाता है।

परंतु यदि राष्ट्रपति इस अवधि से पहले उस विधेयक पर अपनी आपत्तियां व्यक्त करके उसे कांग्रेस के पास वापस भेज देता है तो कांग्रेस के पास दो विकल्प रह जाते है: (क) वह राष्ट्रपति के सुझावों के अनुसार विधेयक में संशोधन कर दे, और उसे नए रूप में दुबारा पारित करके राष्ट्रपति के पास भेज दे ताकि राष्ट्रपति उसका अनुमोदन कर दे; या फिर (ख) कांग्रेस के दोनों सदन उस विधेयक को मूल रूप में दो-तिहाई बहुमत से दुबारा पारित करे दें जिससे राष्ट्रपति का निषेधाधिकार निरस्त हो जाता है। परंतु इतना बहुमत जुटाना सरल नहीं होता। इसका अर्थ यह हुआ कि राष्ट्रपति किसी विधेयक को कुछ समय के लिए निलंबित (Suspend) कर सकता है। राष्ट्रपति के इस अधिकार को **निलंबन-निषेधाधिकार** (Suspensory Veto) कहा जाता है।

यदि राष्ट्रपति ऐसे किसी विधेयक पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दे, और दस कार्य-दिवस पूरे होने से पहले कांग्रेस स्थगित (Adjorun) हो जाए तो वह विधेयक अपनी मौत मर जाता है। राष्ट्रपति के इस अधिकार को **'जेब में डालने का निषेधाधिकार'** या **'अवरोधन-निषेधाधिकार'** (Pocket Veto) कहा जाता है। यदि कांग्रेस उस विधेयक पर पुनर्विचार चाहती हो तो उसे नए अधिवेशन में नए सिरे से पारित करके राष्ट्रपति के पास भेजना पड़ेगा।

कार्यकारी आदेश (Executive Order): कांग्रेस राष्ट्रपति और उसके प्रशासनिक विभागों (Executive Agencies) को कार्यकारी आदेश निकालने की अनुमति देती है ये आदेश कानून की तरह मान्य और प्रभावशाली होते हैं। ये आदेश मुख्यत: तीन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जारी किए जाते हैं : (क) संविधान या किसी विशेष कानून की व्यवस्थाओं को व्यावहारिक रूप देने के लिए (ख) विदेशों के साथ की गई संधियों को लागू करने के लिए; और (ग) नए प्रशासनिक विभाग स्थापित करने के लिए या इन विभागों के कार्य में कोई परिवर्तन करने के लिए। उदाहरण के लिए, स्त्रियों और अश्वेतों के लिए सामारात्मक कार्रवाई (Affirmative Action) की व्यवस्था के कार्यान्वयन, राष्ट्रपति कार्यालय के पुनर्गठन, आपात स्थिति (Emergency) के दौरान उपभोक्ता वस्तुओं की राशन-व्यवस्था (Rationing) तथा कीमतों और मजदूरी की दरों के नियंत्रण, इत्यादि के मामले में कार्यकारी आदेशों का विस्तृत प्रयोग किया जाता है।

सीनेट का अनुसमर्थन (Senatorial Ratification): राष्ट्रपति की शक्तियों को कांग्रेस के अंकुश में रखने के लिए एक व्यवस्था यह की गई है कि राष्ट्रपति उच्चाधिकारियों की जो नियुक्तियां करेगा, या विदेशों के साथ जो संधियां करेगा, वे तभी मान्य होंगी जब सीनेट उसका अनुसमर्थन कर देगी। नियुक्तियों के अनुसमर्थन के लिए सीनेट का साधारण बहुमत (Simple Majority) पर्याप्त होता है। वैसे नियुक्तियों की प्रक्रिया को **'सीनेट-सौजन्य'** (Sentorial Courtesy) की प्रथा के अंतर्गत कुछ हद तक सरल बना दिया गया है अतर्राष्ट्रीय संधियों के अनुसमर्थन के लिए सीनेट में उपस्थित और मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों को दो-तिहाई बहुमत जरूरी है।

सीनेट-सौजन्य अमरीकी संविधान की एक महत्त्वपूर्ण प्रथा (Convention) है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि राष्ट्रपति को किसी राज्य-विशेष से जुड़े हुए संघीय पद (Federal Office) पर–जैसे कि जिला न्यायवादी (District Attorney)

नोट

के पद पर नियुक्ति करनी हो, और उस राज्य का एक या दोनों सीनेट सदस्य (Senators) राष्ट्रपति के अपने राजनीतिक दल के हों तो राष्ट्रपति ऐसी नियुक्ति करने से पहले उस एक या दोनों सीनेट-सदस्यों से परामर्श कर लेता है यदि वे प्रस्तावित नियुक्ति का अनुमोदन कर दें तो सीनेट उस नियुक्ति की पुष्टि कर देगी। इसके विपरीत, यदि उन्हें इस पर आपत्ति हो तो सीनेट भी उनकी पुष्टि नहीं करेगी।

कार्यकारी विभागों के निरीक्षण में कांग्रेस-समितियों की भूमिका (Role of the Congress Committee in the Inspection of Executive Agencies): कांग्रेस की विभिन्न समितियों वैसे तो विधि निर्माण के कार्य में सहायता देने के लिए बनाई जाती हैं, परंतु अपने विचारक्षेत्र में आने वाले विषयों के प्रशासनिक विभागों के अन्वेषण और विश्लेषण के लिए वे प्रशासनिक विभागों से कोई भी जानकारी (Informations) मांग सकती है, या विवरण (Reports) मँगा सकती है। प्रशासनिक विभाग इन समितियों की पूछताछ (Inquires) को बहुत गंभीरतापूर्वक लेते हैं, और इन्हें उपयुक्त जानकारी देने के लिए सदैव तैयार रहते हैं। इस तरह इन समितियों के माध्यम से कांग्रेस ने प्रशासनिक विभागों के काम-काज के निरीक्षण की भूमिका सँभाल ली है।

वित्तीय नियंत्रण (Financial Control): कांग्रेस किसी भी प्रशासनिक विभाग (Agency) या कार्यक्रम (Programme) के लिए धन की स्वीकृति देने से पहले यह पता लगाती है कि उस विभाग या कार्यक्रम के लिए पिछली बार जो विनियोग (Appropriations) किए गए थे, उनका उपयोग (Utilization) किस-किस तरह किया गया है? इस प्रथा के कारण भी संयुक्त राज्य अमरीका में कार्यकारी शाखा (Executive branch) पर कांग्रेस का नियंत्रण स्थापित हो गया है। इस प्रथा को वित्तीय नियंत्रण की संज्ञा दी जाती है।

राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने का अधिकार (Right to Impeachment of the President): अमरीका की अध्यक्षीय प्रणाली के अंतर्गत राष्ट्रपति अपने अस्तित्व के लिए विधानमंडल (अर्थात् कांग्रेस) के राजनीतिक समर्थन (Political Support) या विश्वास (Confidence) पर आश्रित नहीं है अत: सामान्य परिस्थितियों में कांग्रेस राष्ट्रपति को अपने से नहीं हटा सकती। परंतु यदि उस पर देशद्रोह, भारी भ्रष्टाचार, जघन्य अपराध या दुष्कर्म का आरोप हो तो उस पर महाभियोग चलाया जा सकता है। राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने का अधिकार केवल कांग्रेस को है। यह कार्रवाई प्रतिनिधि सभा में शुरू होती है जहां महाभियोग की धाराएँ (Articles of Impeachment) तैयार करके सीनेट के पास भेज दी जाती है ताकि उनके आधार पर सीनेट में मुकदमा चलाया जा सके। महाभियोग की किसी भी धारा को पारित करने के लिए प्रतिनिधि सभा का साधारण बहुमत (Simple Majority) पर्याप्त है। महाभियोग के निर्णय के लिए सीनेट का दो-तिहाई बहुमत (Two-Thirs Majority) जरूरी होगा।

समकालीन परिस्थितियों में अमरीकी राष्ट्रपति की शक्तियों का भारी विस्तार हुआ है। उन्नीसवी शताब्दी के दौरान यह सोचा जाता था कि कांग्रेस की विशाल शक्तियों की तुलना में राष्ट्रपति की शक्ति बहुत कम है, परंतु इक्कीसवीं शताब्दी में जब संयुक्त राज्य अमरीका सैन्य शक्ति और आर्थिक समृद्धि के शिखर पर पहुँच गया है, अमरीकी राष्ट्रपति की शक्तियां भी उसी अनुपात से बढ़ गई हैं। आज वह विश्व की सबसे शक्तिशाली आयुधशाला का प्रधान सेनापति है; वही विश्व के अन्य शक्तिशाली राष्ट्रो के साथ संधिवार्ता (Negotiation) चलाता है; वह राष्ट्र के सबसे बड़े प्रशासनिक संगठन का अध्यक्ष है; वह करों का प्रमुख संग्राहक और कानून का प्रमुख प्रवर्त्तक है; वही लोकमत का प्रमुख प्रणेता हैं। विश्व के सबसे शक्तिशाली देश के मुख्य कार्यकारी के नाते उसकी स्थिति सचमुच बेजोड़ है।

स्विस संघीय विधानमंडल (The Swiss Federal Assembly)

स्विस संविधान के अुनच्छेद 71 में स्विस विधानमण्डल की दो मौलिक विशेषताओं की चर्चा की गयी है। प्रथम, यह परिसंघ की सर्वोच्च सत्ता (Supremacy) का उपयोग करती है, द्वितीय यह द्वि-सदनात्मक है।

(i) द्विसदनात्मक – इसमें संघीय सभा की सर्वोच्च शक्ति निहित हैं। यह स्विस जनता तथा कैण्टनों के अधिकारों को छोड़कर संघ की सर्वोच्च शक्ति का उपभोग करती है। संघीय सभा केवल जनता के अधीन है। जनता को छोड़कर इसके द्वारा निर्मित विधि पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता है। अमेरिका के सदृश न्यायपालिका को भी न्यायिक समीक्षा का अधिकार प्राप्त नहीं है। कैण्टन के कानून से संघीय कानून की उच्च स्थिति भी संघीय विधानमण्डल की सर्वोच्च शक्ति का द्योतक है।

नोट

(ii) सर्वोपरिता– संघीय विधानमण्डल की द्विसदनात्मक व्यवस्था के उद्‌भव की व्याख्या दो प्रकार से की जाती है। प्रथम, संविधाननिर्माताओं के सामने दो समस्याएँ थीं– (i) केन्द्रीयकरण और विकेन्द्रीयकरण या कैंटनों की संप्रभुता और शक्तिशाली संघ सरकार तथा (2) छोटे एवं बड़े राज्यों के बीच समझौता करना। इन समस्याओं को सुलझाने के लिए उन्होंने अमरीकी संविधान से लाभ उठाया। उन्होंने द्विसदनात्मक प्रणाली को अपनाया ताकि एक सदन में राष्ट्र का प्रतिनिधित्व हो सके और दूसरे में कैण्टनों का। एक में देश की जनता को जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व प्राप्त हो और दूसरें में प्रत्येक राज्य को समान संख्या में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार हो। अत: विधानमण्डल का दो भाग किया गया–राष्ट्रीय परिषद् (The National Council) और राज्य परिषद् (The Council of States) । प्रथम राष्ट्र की सुदृढ़ता तथा एकता का प्रतीक है तो दूसरा कैटनों की प्रभुता तथा उनकी परस्पर समानता का द्योतक है। द्विसदनात्मक व्यवस्था को अपनाने का दूसरा कारण ऐतिहासिक परम्परा का प्रभाव था। 1848 ई॰ के पूर्व स्विट्‌जरलैंड की संघीय विधानपालिका के रूप में एक 'डाइट' (Diet) नामक संस्था थी जिसमें प्रत्येक कैण्टन को एक मत प्राप्त था। अत:, संघीय विधानमण्डल में एक सदन की आवश्यकता थी जिसमें प्रत्येक कैंटन को समान मत मिले।

राज्य-परिषद् (The council of States): राज्य-परिषद् स्विस संघीय सभा का उच्च या द्वितीय सदन (Upper or Second Chamber) है। यद्यपि संविधान के अनुसार यह निम्न सदन का अधीनस्थ (subordinate) नहीं बल्कि समकक्ष (co-equal) सदन है, फिर भी संघीय इकाइयों का प्रतिनिधित्व करने के कारण अमरीकी सिनेट तथा भारतीय राज्य सभा की श्रेणी में इसे रखा जाता है।

संगठन – स्विस राज्य-परिषद् का संगठन अमरीकी सिनेट से मिलता-जुलता है जिस प्रकार सिनेट में प्रत्येक अमरीकी राज्य को प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है, उसी प्रकार राज्य-परिषद् में प्रत्येक स्विस कैंटन का, चाहे उसका आकार या जनसंख्या कुछ भी हो, दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। सिर्फ एक विभिन्नता यह है कि अमेरिका के असदृश स्वट्‌जिरलैंड में कुछ इकाईयों को, जिन्हें अर्द्ध-कैण्टन कहते हैं, सिर्फ एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया हैं। इस प्रकार, राज्य-परिषद् की सदस्य-संख्या 44 है– 19 कैण्टनों के 28 प्रतिनिधि और 6 अर्द्ध-कैण्टनों के 6 प्रतिनिधि। विश्व के अन्य उच्च सदनों की तुलना में यह संख्या बहुत कम है क्योंकि अमेरिका, भारत तथा ब्रिटेन के अन्य सदनों की सदस्य-संख्या क्रमश: 100, 250 और 900 है। सदस्यों की योग्यताएँ उनकी निर्वाचन-पद्धति, पदावधि आदि का निर्धारण कैंटनों के हाथ में हैं। फलत: राज्य-परिषद् के सभी सदस्यों की योग्यताएँ, कार्यकाल तथा निर्वाचन-विधि एक समान नहीं है। प्रत्येक कैंटन का अलग-अलग नियम है। 4 कैंटनों का प्रतिनिधि वहाँ के विधानमंडल द्वारा 1 कैंटन तथा 3 अर्द्ध-कैंटनों के प्रतिनिधि सार्वजनिक सभाओं द्वारा और शेष 14 कैंटनों तथा एक अर्द्ध कैंटनों प्रतिनिधि व्यवस्था नागरिकों द्वारा चुने जाते हैं। राज्य-परिषद् के सदस्यों के चुनाव पर संविधान की धाराओं 6, 81 तथा 108 के द्वारा कतिपय प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। धारा 6 में कहा गया है कि कैंटनों के सभी निर्वाचन 'प्रजातांत्रिक' (democratic) होंगे। धारा 81 द्वारा यह प्रतिबन्ध लगाया गया है कि राज्य-परिषद् के सदस्य एक ही साथ राष्ट्रीय परिषद् या संघीय परिषद् के सदस्य नहीं हो सकते हैं। धारा 108 के द्वारा राज्य-परिषद् के सदस्य को एक ही संघीय न्यायालय के सदस्य होने पर रोक लगा दी गयी है। कैंटनों द्वारा अन्य प्रतिबन्ध भी लगाये जा सकते हैं।

स्विस राज्य परिषद् का संगठन अमरीकी सिनेट के संगठन से मिलता-जुलता है। दोनों जनतांत्रिक पद्धति तथा संघीय इकाइयों की समानता के सिद्धान्त पर आधारित है। भारतीय राज्यसभा से यह संगठन इस अर्थ में भिन्न है कि यहाँ राज्यों का प्रतिनिधित्व समानता के आधार पर नहीं अपितु जनसंख्या के आधार पर किया गया है। ब्रिटिश लार्ड सभा से असदृश्यता तो और भी अधिक स्पष्ट है, क्योंकि लार्ड सभा के सदस्य वंशगत या नामजद होते हैं।

राज्य-परिषद् के संगठन से यह सन्देह पैदा होता है कि वह सिर्फ कैंटनों का प्रतिनिधि तथा उनके हितो का संरक्षक होगा। लेकिन, व्यवहार में इस सदन ने कभी इस प्रकार की संकीर्ण मनोवृत्ति का प्रदर्शन नहीं किया। राष्ट्रीय हित की अपेक्षा इसने कभी कैंटनों के हितो का समर्थन नहीं किया। न तो यह राज्यधिकारों (State's Rights) के समर्थकों का गढ़ ही है। न तो ब्रिटेन की लॉर्ड सभा की भाँति इसे प्रतिक्रियावादियों का प्रवक्ता ही कहा जा सकता है। विधेयकों पर विचार-विमर्श करने में इसने राष्ट्रीय परिषद् से भी अधिक उदारता का प्रमाण दिया है।

कार्यकाल – स्विस राज्य-परिषद् के सदस्यों के कार्यकाल में भी असमानता हैं। विभिन्न कैंटन अलग-अलग अवधियों के लिए सदस्यों का निर्वाचन करते हैं। फलस्वरूप राज्य-परिषद् के 35 सदस्य 4 वर्ष के लिए 5 सदस्य 3 वर्ष के लिए

नोट

और 4 सदस्य केवल 1 वर्ष के लिए चुने जाते हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि अमेरिकी सिनेट की भाँति राज्य-परिषद् के सदस्यों का कार्यकाल व्यावहारत: बहुत होता है, क्योंकि प्राय: उनका पुनर्निर्वाचन बार-बार होता रहता है।

सदस्यों के विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियाँ- स्विस संसद के प्रतिनिधियों को कुछ विशेषाधिकार (Special privileges) तथा उन्मुक्तियाँ (Immunities) प्राप्त है। संघीय कानून द्वारा सदस्यों को बोलने तथा वाद-विाद में भाग लेने की स्वतंन्त्रता है। उन्हें केवल अपने सदन के प्रति उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। अन्य किसी अधिकारी के प्रति उत्तरदायी नहीं। विधानमंडल द्वारा पारित विधियों के लिए वे उत्तरदायी नहीं होते। न्यायिक प्रक्रियाओं (Judicial Proceedings) के सत्र के समय उन्हें उन्मुक्ति प्राप्त है। केवल विधानमंडल ही इसे समाप्त कर सकती है। विधानमंडल के सत्र के समय गम्भीर अपराध के लिए किसी प्रतिनिधि को गिरफ्तार किया जा सकता है, लेकिन सम्बन्धित सदन से 24 घण्टे के अन्दर आज्ञा लेकर ही उसे बन्दी बनाया जा सकता है।

पदाधिकारी - यद्यपि संविधान द्वारा प्रत्येक वर्ष के लिए अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के चुनाव की व्यवस्था की गयी है, लेकिन राज्य-परिषद् प्रत्येक वर्ष के लिए अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। ये पदाधिकारी राज्य-परिषद् के सदस्यों में से ही चुने जाते हैं। केवल शर्त यह है कि एक ही कैंटन के सदस्य लगातार अध्यक्ष या उपाध्यक्ष निर्वाचित नहीं हो सकते। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत में उपराष्ट्रपति उच्च सदन के पदेन (ex-office) अध्यक्ष होते है।

जहाँ तक अधिकार का प्रश्न है स्विस राज्य-परिषद् के अध्यक्ष की स्थिति अमरीकी सिनेट के अध्यक्ष से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। वह बैठकों का सभापतित्व करता, सदन में व्यवस्था स्थापित करता तथा नियमों को लागू करता है। बराबर मत (Tie) पड़ने पर उसे निर्णायक मत (Casting Vote) देने का अधिकार है।

प्रतिनिधि–राज्य-परिषद् की सदस्यता में काफी स्थिरता पायी जाती है। अधिकांश प्रतिनिधि पुनर्निर्वाचत हो जाते हैं और इच्छापर्यन्त निर्वाचित होते रहते है। अधिकांश प्रतिनिधि उच्चकोटि के होते है तथा उच्च शिक्षा प्राप्त किये रहते हैं। राजनीति उनकी पेशा होती है। वे प्राय: कम्यून या कैंटन से अपना राजनीतिक जीवन प्रारम्भ करते हैं। कैंटनों में सफल राजनीतिक जीवन व्यतीत करने के बाद ही वे संघीय कार्यपालिका या विधायिका में स्थान प्राप्त कर सकते हैं। उनमें से अधिकांश उच्च शिक्षा प्राप्त किये रहते हैं। 1960 ई॰ में लगभग आधे सदस्यों को डॉक्टर की उपाधि प्राप्त थी।

राष्ट्रीय परिषद् (The National Council): राष्ट्रीय परिषद् जनता की प्रतिनिधि सभा है, कैंटनों की नहीं। इसका निर्वाचन जनता स्वयं प्रत्यक्ष रूप से करती है। इस सदन को भारत में लोकसभा और ब्रिटेन में कॉमन सभा कहा जाता है।

संगठन- राज्यपरिषद् के सदृश राष्ट्रीय परिषद् की रचना और संगठन संघीय विधान के उपबन्धों के अनुसार किया गया है। लेकिन, भारतीय लोकसभा की तरह उसकी अधिकतम सदस्य-संख्या निश्चित नहीं की गयी है। सिर्फ इतना कहा गया है कि प्रत्येक 24,000 की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि चुना जायेगा। लेकिन 12,000 से अधिक जनसंख्या पर भी एक ही प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है चाहे उसकी जनसंख्या कितनी भी कम क्यों न हो। इस आधार पर प्रारम्भ में राष्ट्रीय परिषद् की सदस्य-संख्या 120 थी, परन्तु जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण आजकल यह संख्या 196 हो गयी है। सदस्यों की संख्या 200 से कम रखने के लिए 1931 ई॰ तथा 1950 ई॰ में संवैधानिक संशोधनों द्वारा जनसंख्या प्रतिनिधि के अनुपात में परिवर्तन लाया गया है। अभी 24 हजार की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि का निर्वाचन होता है। तुलनात्मक दृष्टिकोण से यह संख्या बहुत कम है, क्योंकि ब्रिटेन, पूर्व सोवियत संघ, भारत और अमेरिका में निम्न सदनों की सदस्य-संख्या क्रमश: 625, 622, 545 और 435 है।

निर्वाचन-प्रणाली- फ्रांस के चतुर्थ गणतन्त्र की भाँति राष्ट्रीय परिषद् के प्रतिनिधियों का चुनाव जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से आनुपातिक प्रतिनिधि-प्रणाली (proportional representation) के आधार पर किया जाता है। यह प्रणाली 1919 ई. में अपनायी गयी थी। 1919 ई॰ के पूर्व निर्वाचन एकल-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्रों (Single member's constituenices) के आधार पर होता था। वर्तमान काल में प्रत्येक कैंटन अथवा अर्द्ध-कैंटन को एक निर्वाचन-क्षेत्र (electoral constituency) मान लिया जाता है। अत: निर्वाचन-क्षेत्र के आकार तथा उससे निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या में

नोट

भिन्नता होती है। चुनाव में राजनीतिक दलों का महत्त्व बढ़ जाता है, क्योंकि मतदाता व्यावहारत: दलों को मत देते हैं, व्यक्तिगत प्रत्याशियों को नहीं । स्विट्जरलैंड में आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति की आलोचना अनेक लेखकों ने की है। विशेषकर **ह्यूज** ने इसके कई दुष्परिणामों की ओर ध्यान आकर्षित किया है–

(क) मतदाता तथा प्रतिनिधियों का सम्पर्क सम्बन्ध अत्यन्त निर्बल हो गया है। राष्ट्रीय परिषद् के सदस्य मतदाताओं के प्रतिनिधि न रहकर राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि हो गये हैं।

(ख) विधानमंडल की स्थिति बहुत निर्बल हो जाती है। जब किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता। तब एकता तथा एकरूप नीति के अभाव में राष्ट्रीय परिषद् शक्तिशाली तथा प्रभावशाली नहीं बन पाती है।

(ग) राष्ट्रीय परिषद् में अनेक दलों को लगभग समान प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। फलस्वरूप, विधानमंडल एक निश्चित नीति का अनुसरण नहीं कर पाती है, विभिन्न विचारधाराओं में समझौता करना पड़ता है तथा उत्तरदायित्व विभाजित हो जाता है।

(घ) संघीय परिषद् का संगठन भी बहुदलीय हो जाता है जिसका बुरा प्रभाव शासन पर पड़ता है। बहुदलीय होने के कारण राज्य-परिषद् संघीय परिषद् का दास बन जाती है।

लेकिन, **आर०सी० घोष** की राय में स्विट्जरलैंड में फ्रांस और इटली की तरह आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली ने प्रबल दुष्प्रवृत्तियों को जन्म नहीं दिया है, बल्कि इस प्रणाली ने निर्वाचन में न्यायप्रवृत्ति को ही बढ़ावा दिया है और जनमत-संग्रह के दोषों को दूर किया है।

मतदाता– स्विस संविधान में मतदाता (Voters) सम्बन्धी व्यवस्था उल्लेखनीय है। प्रत्येक स्विज पुरूष नागरिक को, जिसकी आयु 20 वर्ष या उससे अधिक हो, मत देने का अधिकार है। नागरिकों के मतदान का अधिकार अनेक प्रतिबन्धों तथा सीमाओं से मर्यादित है। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि स्त्रियों को मताधिकार से हाल तक वंचित रखा गया हैं। 8 फरवरी, 1971 से उन्हें भी मताधिकार प्रदान कर दिया गया है। जो व्यक्ति सक्रिय नागरिकता से वंचित कर दिये गये हैं या जिन्हें फौजदारी अपराध में दंड मिला हो उन्हें मताधिकार प्राप्त नहीं हैं। विभिन्न कैंटनों में दिवालियों, भिक्षुकों तथा दुश्चरित्र व्यक्तियों को मताधिकार नहीं दिया गया है।

सदस्यता- स्विस संविधान में राष्ट्रीय परिषद् की सदस्य (membership) के लिए वे अर्हताएँ निर्धारित की गई हैं जो मतदाताओं की अर्हताएँ है; अर्थात् प्रत्येक स्विस नागरिकों, जिसे मताधिकार प्राप्त है, राष्ट्रीय परिषद् का सदस्य बन सकता है। लेकिन, यह उल्लेखनीय है कि धारा 75 के अनुसार कोई धर्माधिकारी (clergy) और धारा 77 के अनुसार राज्य-परिषद् तथा संघीय परिषद् के सदस्य राष्ट्रीय परिषद् के सदस्य नहीं बन सकते हैं। कैंटन पार्षदों को अन्य किसी पद पर कार्य करने से वंचित कर सकते हैं, जैसे संघीय परिषद् या संघीय न्यायालय की सदस्यता।

कार्यकाल–1931 ई. तक राष्ट्रीय परिषद् का कार्यकाल (term) 2 वर्ष था। लेकिन, आजकल यह संविधान द्वारा 4 वर्ष निश्चित कर दिया गया है जबकि भारत, इंगलैंड, फ्रांस, कनाडा और इटली में 5 वर्ष तथा आस्ट्रेलिया में 3 वर्ष और अमेरिका में 2 वर्ष हैं यहाँ दो बातें उल्लेखनीय है। **प्रथम** एक अधिवेशन के अवशिष्ट कार्य दूसरे अधिवेशन को हस्तांतरित होते हैं और एक राष्ट्रीय परिषद् के शेष कार्य दूसरी नव-निर्वाचित राष्ट्रीय परिषद् कों। **द्वितीय** अधिकांश सदस्यों के पुनर्निवाचित हो जाने के कारण सदन की सदस्यता पर्याप्त स्थिर रहती है, सदन को भंग नहीं किया जाता, सिर्फ संशोधन के प्रश्न पर मतभेद होने पर सम्भव है।

पार्षदों की व्यक्तिगत पृष्ठभूमि- पार्षदों की व्यक्तिगत पृष्ठभूमि से उनकी योग्यता का पता चलता है। राष्ट्रीय परिषद् में विभिन्न पेशे के लोगों को प्रतिनिधित्व प्राप्त है, जैसे कृषक, वकील, व्यवसायी, शिक्षक, डॉक्टर, कैंटन तथा नगरपालिकाओं के अधिकारी आदि। विगत पचास वर्षों में वकीलों की संख्या में कमी हुई है। 1916 ई० में उनकी संख्या 41 प्रतिशत थी, 1945 ई० में 19 प्रतिशत तथा 1955 ई० में 13 प्रतिशत हो गई।

उम्र के दृष्टिकोण से अधिकाशं सदस्य अधेड़ तथा बुजुर्ग होते हैं। 1919 ई० में आनुपातिक प्रतिनिधित्व लागू होने के बाद युवक सदस्यों की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। 40 से 49 वर्ष के सदस्यों की संख्या में स्थिरता पायी जाती है तथा 50 वर्ष से अधिक उम्र के सदस्यों की संख्या में वृद्धि।

नोट

वेतन, भत्ते आदि – राष्ट्रीय परिषद् के सदस्यों को मासिक वेतन नहीं मिलता है। इन्हें सदन की बैठक के समय सिर्फ 70 फैंक प्रतिदिन भत्ता तथा मार्ग व्यय दिया जाता है जो इतना कम है कि उनके जीवन-निर्वाह का साधन नहीं बन सकता। अत:, उन्हें किसी दूसरे वैतनिक राजनीति पद पर कार्य करना पड़ता है।

पदाधिकारी– राष्ट्रीय परिषद् अपने सदस्यों में से ही एक अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। इसका चुनाव प्रतिवर्ष एक वर्ष के लिए होता है। यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया है कि कोई भी व्यक्ति लगातार दो वर्षों तक उपाध्यक्ष नहीं बन सकता और जो व्यक्ति अध्यक्ष रह चुका हो वह अगले वर्ष के लिए पुन: अध्यक्ष या उपाध्यक्ष नहीं निर्वाचित हो सकता। इन प्रतिबन्धों का उद्देश्य यह है कि ये पद किसी एक व्यक्ति किसी राजनीतिक दल, किसी एक कैंटन, किसी एक भाषा-भाषी अथवा धार्मिक समुदाय के एकाधिकार न बन जायँ। अध्यक्ष को कोई विधेषाधिकार प्राप्त नहीं है। इनकी शक्तियाँ सामान्य हैं। सदन में अनुशासन बनाये रखने का दायित्व उसी पर है। जब सदन में निर्वाचन होता है तब अध्यक्ष अन्य सदस्यों के समान ही मतदान करता है।

दोनों सदनों में सम्बन्ध: समान सदन– प्रो॰ स्ट्रांग ने कहा कि– "स्विस कार्यपालिका की तरह स्विस विधानपालिका भी अद्वितीय है। विश्व में यही विधानपालिका है जिसके उच्च सदन और निम्न सदन में कोई अन्तर नहीं है।"

संविधान द्वारा संघीय सभा के दोनों सदनों को समान स्थिति प्रदान की गयी है। अमेरिका की सिनेट को छोड़कर विश्व के अन्य देशों के द्वितीय सदन द्वितीय श्रेणी के (Secondary) या अधीनस्थ (Subordinate) सदन हैं। परन्तु, स्विट्जरलैंड में राज्य-परिषद् पूर्णत: राष्ट्रीय परिषद् के समान है। कोई विधेयक यहाँ तक कि वित्तीय विधेयक भी, किसी सदन में प्रेषित किया जा सकता है। कोई भी विधेयक तबतक कानून नहीं बन सकता जबतक दोनों सदनों द्वारा पारित न हो जाय। यदि एक सदन दूसरे सदन द्वारा पारित विधेयक को स्वीकार न करें या उसमें इस प्रकार का संशोधन करे जो पहले सदन को स्वीकार न हो तो ऐसी दशा में विधेयक को एक से दूसरे सदन में पुनर्विचार के लिए भेजा जायगा। यदि किसी प्रकार समझौता न हो सके तो दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा गठित एक मध्यस्थ समिति (Arbitration Committee) की नियुक्ति की जाती है। यदि वह मध्यस्थ समिति भी कोई समझौता कर सकने में असमर्थ रहती है तो विधेयक रद्द हो जाता है लेकिन जैसा कि **ह्यूबर** ने कहा है, "प्राय: सर्वदा कोई मार्ग मिल जाता है और उपर्युक्त मध्यस्थता की व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती है।" विधेयक के सम्बन्ध में तीन बातें उल्लेखनीय हैं। **प्रथम** भारत, इंगलैंड, फ्रांस आदि देशों के द्वितीय सदनों को सिर्फ कुछ दिनों तक विधेयक पारित होने में देर लगाने की शक्ति प्राप्त है जबकि स्विट्जरलैंड में पूर्ण समानता की स्थिति है। **द्वितीय** अन्य देशों में, अमेरिका को छोड़कर दोनों सदनों में मतभेत होने पर अन्तत: निम्न सदन की ही विजय होती है, लेकिन स्विट्जरलैंड में दोनों सदनों का समान बोलबाला रहता है। सदनों में मतभेद होने पर स्विट्जरलैंड में अमेरिका के समान मध्यस्थ समिति (Arbitration Committee) का सहारा लिया जाता है जबकि भारत में दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन (Joint Session) और ब्रिटेन में लोकसभा द्वारा एक वर्ष के अन्दर लगातार दो अधिवेशनों में पारित करने की विधि को अपनाया गया है। **तृतीय**, स्ट्जरलैंड में वित्तीय विधेयक के संबंध में दोनों सदन को एक समान अधिकार प्राप्त है, लेकिन अन्य देशों में वित्त पर अन्तिम नियन्त्रण निम्न सदनों का है। कार्यकारिणी पर नियन्त्रण भी दोनों सदनों का समान है। संघीय परिषद् के सदस्य दोनों सदनों में उपस्थित रहते है और प्रश्नों का उत्तर देते हैं। अन्य प्रजातांत्रिक देशों में कार्यकारिणी पर नियन्त्रण की अन्तिम और वास्तविक शक्ति निम्न सदनों को ही प्राप्त है। इस प्रकार, हर क्षेत्र में दोनों सदनों की शक्ति एक समान है, दोनों का महत्त्व एक समान है। यदि दोनो में कुछ अन्तर है तो वे नगण्य है।

घटता प्रभाव- आधुनिक काल में एक नयी संवैधानिक प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हो रही है– राज्य-परिषद्, राष्ट्रीय परिषद् के समान अधिकार रखते हुए भी कम महत्त्वपूर्ण हो गयी है और होती जा रही है। इसके धीरे-धीरे कम होते संघीय परिषद् के सदस्यों का चुना जाना, कुछ सदस्यों का अप्रत्यक्ष रीति से निर्वाचन तथा सदस्यों का जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व न करना। दूसरी ओर, राष्ट्रीय परिषद् सर्वसाधारण का प्रतिनिधित्व करती है। फलस्वरूप, उसकी प्रतिष्ठा अधिक है और समस्त राजनीतिक क्रियाकलापों के केन्द्र स्थल है। इसी कारण प्रतिभाशाली तथा अनुभवी व्यक्ति राष्ट्रीय परिषद् की सदस्यता को श्रेष्ठतर समझते हैं। **लॉवेल** के अनुसार भी राज्य-परिषद् के घटिया प्रभाव का एक कारण है कि उसमें राष्ट्रीय परिषद् की अपेक्षा राजनीतिक नेता कम मिलते हैं। फिर भी, इतना स्पष्ट है कि स्विस राज्य-परिषद्

नोट

इंगलैंड की लॉर्डसभा, भारत की राज्यसभा, जापान तथा इटली की सिनेट इत्यादि द्वितीय सदनों से बहुत अधिक शक्तिशाली है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि **मुनरो** ने कहा है, "विश्व के अधिकांश द्वितीय सदनों के समान राज्य-परिषद् ने प्रतिक्रियावादी होने की प्रसिद्धि प्राप्त नहीं की है। स्विस राज्य-परिषद् को कोई भी व्यक्ति प्रतिक्रियावाद का गढ़ अथवा प्रगति का बाधक नहीं कहता है।"

संघीय सभा की शक्तियाँ: ब्रिटिश संसद की भाँति स्विस संघीय सभा में राष्ट्र की सर्वोच्च शक्ति निहित हैं। राष्ट्र में इनकी स्थिति सर्वोपरि है। सिर्फ अन्तर यह है कि इस पर कुछ संवैधानिक प्रतिबन्ध है कि जिनका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 71 और 84 में मिलता है। अनुच्छेद 71 के अनुसार, जनता तथा कैंटनों के अधिकारों पर बिना प्रतिकूल प्रभाव डाले स्विस संघीय सभा स्विस राज्यमण्डल की सर्वोच्च शक्ति का प्रयोग कर सकती है। अनुच्छेद 84 के अनुसार, राष्ट्रीय परिषद् वह सभी कार्य कर सकती है जो राज्य के अधिकार-क्षेत्र में हैं और जो अन्य किसी संघीय प्राधिकारी को नहीं सौंपे गये हैं। इस अनुच्छेदों से संघीय सभा की शक्तियों पर निम्नलिखित तीन प्रतिबन्ध स्पष्ट होते हैं–

(i) स्विस जनता के अधिकार

(ii) स्विस कैण्टनों के अधिकार

(iii) संविधान द्वारा अन्य संघीय प्राधिकारियों को सौंपे गये अधिकार।

संविधान के अनुच्छेद 85 में संघीय सभा की शक्तियाँ का विस्तृत उल्लेख मिलता है जिनका अध्ययन अग्रलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है–

(i) विधायी अधिकार– संघीय सभा मूलत: एक विधायी सभा (legislative body) है। इसका मुख्य कार्य विधि निर्माण करना है। संघीय सूची के अन्तर्गत सभी विषयों पर इसे कानून बनाने का अधिकार है। यह संघीय प्राधिकारियों के संगठन तथा निर्वाचन सम्बन्धी विधियाँ बनाती है। संघीय अधिकारियों के वेतन और भत्ते को निर्धारित करती है। संघीय शासन के अन्तर्गत यह स्थायी पदों का निर्माण करती है तथा उनका वेतन निर्धारित करती है। संविधान के संशोधन कार्य में संघीय सभा का प्रमुख हाथ रहता है।

(ii) प्रशासकीय अधिकार - संघीय सभा को कुछ महत्त्पूर्ण कार्यपालिका शक्तियाँ भी प्राप्त है– (क) निर्वाचन-सम्बन्धी अधिकार विशेष रूप से उल्लेखनीय है। संघीय सभा दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में परिषद् के सदस्यों , उनके अध्यक्ष और उपाध्यक्ष, संघीय न्यायाधिकरण के न्यायाधीशों, संघीय बीमा निकाय के सदस्यों, सर्वोच्च सेनापति, विशेष जन-अभियोजना (Extraodinary Public Prosecutor), चांसलर आदि का निर्वाचन करती है। संघीय विधि द्वारा इसका अन्य किसी भी प्राधिकारियों का चुनाव करने अथवा किसी चुनाव की सम्पुष्टि करने का अधिकार दिया जा सकता है।

(ख) वैदेशिक सम्बन्ध पर संघीय सभा पूर्ण नियंत्रित है। यह राष्ट्र की बाह्य आक्रमणों से रक्षा करती है, उसकी स्वतन्त्रता तथा तटस्थता की रक्षा की व्यवस्था करती है, युद्ध की घोषणा, परस्पर अथवा विदेशों से की गयी संघियों को अनुमति प्रदान करती है।

(ग) कैण्टनों की शासनव्यवस्था पर भी संघीय सभा का नियन्त्रण रहता है। यह कैण्टनों के क्षेत्रों तथा उनके संविधान को आन्तरिक अशांति तथा बाहरी हमले से रक्षा की गारण्टी देती है। जब कोई कैण्टन संघीय विधियों को क्रियान्वित करने अथवा संघीय उत्तरदायित्व के निर्वाहन में बाधा डालता है तब संघीय सभा ही यह निश्चय करती है कि अपराधी कैण्टन के विरूद्ध क्या कार्यवाही की जाय। यह कैण्टनों तथा विदेशी राष्ट्रों एवं विभिन्न कैण्टनों के मध्य हुई सन्धियों को स्वीकृति प्रदान करती है।

(घ) देश की आन्तरिक व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी संघीय सभा पर ही है। देश में आन्तरिक शान्ति व व्यवस्था, के लिए आवश्यक कार्यवाई करना इसी की जिम्मेदारी है। इस सभा के अन्य प्रमुख प्रशासकीय कार्य भी है जैसे, दण्डित अपराधियों को क्षमादान अथवा सामूहिक क्षमादान प्रदान करना, संघीय सेना का नियमन व नियन्त्रण करना तथा संघीय प्रशासन की निरीक्षण व निर्देशन करना इत्यादि।

संघीय सभा के प्रशासकीय कार्यों के संबंध से यह स्मरणीय है कि वह प्राय: अपने सभी कार्यों के सम्पादन का उत्तरदायित्व संघीय परिषद् को सौंप देती है जो सभा के निरीक्षण और निर्देशन में कार्य करती है।

नोट

(iii) वित्तीय अधिकार– वित्त पर भी संघीय सभा का अनन्य नियन्त्रण है। संघीय परिषद् द्वारा प्रस्तावित वार्षिक बजट को यह स्वीकृति देती है; ऋण लेने की अनुमति यही देती है। यह करों के लिए कानून बनाती है। यह रेलवे अनुदान प्रदान करती है तथा सार्वजनिक आय-व्यय व लेखे (Public Accounts) के परीक्षण का प्रबन्ध करती है।

(iv) न्यायिक अधिकार–संघीय सभा को दो प्रकार के न्यायिक अधिकार प्राप्त है। **प्रथमत:** देश की न्याय-व्यवस्था पर इसका नियन्त्रण है। यह संघीय न्यायपालिका का निरीक्षण तथा निर्देशन करती है, न्यायिक संगठन कानून बनाती तथा संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों को निर्वाचित करती है। संघीय न्यायालय अपनी वार्षिक रिपोर्ट इसके सामने प्रस्तुत करता है। **द्वितीयत:** संघीय सभा कई मामलों में स्वयं अन्तिम न्यायालय के रूप में कार्य करती हैं। यह संघीय परिषद् तथा संघीय न्यायालय अथवा बीमा न्यायालय के मध्य उत्पन्न विवादों या इन दोनों न्यायालयों में परस्पर उत्पन्न विवादों का निर्णय देती है। यह प्रशासन पर विधि-सम्बन्धी मामलों में संघीय परिषद् नियमों के विरूद्ध अपील सुनती तथा उन पर अन्तिम निर्णय देती है। यह संघीय प्राधिकारियों के बीच क्षमता सम्बन्धी विवादों पर विचार करती है। **तृतीयत:** संघीय सभा को किसी भी संघीय कर्मचारी के विरूद्ध कतिपय मामलों में कार्रवाई करने का अधिकार प्राप्त है। अन्त में, संघीय न्यायालय द्वारा दण्डित तथा सैनिक शासन के अन्तर्गत मृत्यु-दण्ड व्यक्ति के दण्ड को, इसे क्षमा करने का अधिकार दिया गया है।

संघीय सभा की कार्यप्रणाली: संघीय सभा के दोनों सदनों का एक अधिवेशन वर्ष में अनिवार्य है। साधारणत: वर्ष में चार बैठकें होती है– दिसम्बर, मार्च, जून और सितम्बर में। परन्तु, इन्हें एक ही सत्र के अन्तर्गत माना जाता है। इसके अतिरिक्त संघीय परिषद् 5 कैण्टन अथवा राष्ट्रीय परिषद् के चौथाई सदस्यों के अनुरोधों पर दोनों की असाधारण (extraordinary) बैठके भी बुलायी जा सकती है। सत्र प्राय: छोटे होते हैं जो एक बार में 4 सप्ताह तक चलते हैं। सामान्यत: सदस्य अधिवेशन से अनुपस्थित नहीं रहते, क्योंकि बिना कारण अनुपस्थित रहना कर्त्तव्य से जी चुराना समझा जाता है। गणपूर्ति के लिए कम-से-कम सदन के कुछ सदस्यों पर बाहरी दबाव या प्रभाव की गुंजाइश कम रहती है। साधारणत: दोनों सदनों की बैठके अलग-अलग भवनों में होती है, किन्तु कुछ विशेष कार्यों के लिए दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन होते हैं–

(क) संघीय परिषद् पार्षदों और अध्यक्ष, संघीय ट्रिब्यूनल के न्यायाधीशों, राज्यमण्डल के चांसलर और संघीय सशस्त्र सेना के सर्वोच्च सेनापति की नियुक्ति के लिए।

(ख) संघीय सरकार के अधिकार-क्षेत्र सम्बन्धी मतभेदों और संघर्षे पर विचार करने के लिए।

(ग) क्षमादान (pardon) का निश्चय करने के लिए।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जिस समय दोनों सदनों का सम्मिलित अधिवेशन होता है, उस समय राष्ट्रीय परिषद् का अध्यक्ष ही सभापतित्व करता है और निर्णय दोनों सदनों के उपस्थित सदस्यों के बहुमत से होता है।

वाद-विवाद – स्विस नागरिक व्यावहारिक, गम्भीर तथा विचारशील होते हैं। संघीय सभा के सदस्य राष्ट्रीय चरित्र का पूर्ण प्रदर्शन करते हैं। वे ठोस, गम्भीर, समझदार तथा आवेगरहित होते हैं। प्रत्येक प्रश्न पर वे व्यावहारिक दृष्टिकोण से विचार करते हैं, तथा बीच का मार्ग अपनाते हैं। सदस्य समस्त कार्य शांतिपूर्ण तरीके से करते हैं। वाद-विवाद संयमित होते हैं तथा वक्ताएँ नपे-तुले शब्दों में होती हैं। आलंकारिक भाषा का प्रयोग तड़क-भड़क से भरी-पूरी तालियों की गड़गड़ाहट, प्रशंसासूचक नारे या निन्दापरक आवाजे संघीय सभा की बैठकों में विरले ही देखने को मिलती है। फिलीबस्टरिंग (Filibustering), ग्योलीटीन (gulillotine) या अन्य बाधा पैदा करनेवाले मार्गों को नहीं अपनाया जाता। विभाजन भी बहुत कम होता है।

व्यवस्थापक– संघीय सभा के किसी भी सदन में कोई भी विधेयक प्रेषित किया जा सकता है। सिर्फ संघीय परिषद् 'आवश्यक' (urgent) घोषित विषयों को सभा की तुरन्त स्वीकृति की आवश्यकता नहीं पड़ती। सदनों में विधेयक चार प्रकार से प्रेषित किया जा सकता है– (1) संघीय परिषद् द्वारा, (2) संघीय सभा के किसी भी सदन द्वारा (3) कैंटनों द्वारा तथा (4) संघीय सभा के किसी भी सदन के किसी भी सदस्य द्वारा, लेकिन व्यावहारत: विधेयकों को तैयार करने और उनकों प्रेरित करने का कार्य धीरे-धीरे परिषद् में केन्द्रित हो गया है। वित्तीय विधेयक संघीय परिषद् द्वारा ही पुन:स्थापित हो सकता है, किसी सदस्य द्वारा नहीं। विधेयक प्रेषित होने पर उसके सिद्धान्तों पर विचार किया जाता है

नोट

यदि सदन उससे सहमत है तो उसे एक समिति को विचारार्थ सौंप दिया जाता है। विचार करने के उपरांत समिति अपनी रिपोर्ट सदन को प्रस्तुत करती है। सदन में विधेयक के ऊपर "विचार के लिए" प्रस्ताव रखा जाता है। तदुपरान्त उसके प्रत्येक अनुच्छेद पर विस्तृत वाद-विवाद होता है। अन्त में, सम्पूर्ण विधेयक पर जनमत-संग्रह किया जाता है। विधेयक की स्वीकृति के बाद उसे दूसरे सदन में भेज दिया जाता है। उस सदन में भी वही प्रक्रिया दुहरायी जाती है। दूसरा सदन उसे ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर सकता है। यदि सदन कुछ संशोधन करे तो पहले वह पुनः विचार के विधेयक को लौटा दिया जाता है। यदि दोनों सदनों में इस प्रकार समझौता न हो सके तो उसे दोनों सदनों द्वारा गठित रद्द कर दिया जाता है। दोंनो सदनों द्वारा पारित होने के बाद विधेयक पर चान्सलर व राष्ट्रपति का हस्ताक्षर लिया जाता है जिसे उन्हें इन्कार करने का अधिकार या निषेधाधिकार (veto) प्राप्त नहीं हैं। तत्पश्चात् विधेयक कानून बन जाता है।

8.2 फ्रांस-रसिया संसद और चीन की राष्ट्रीय जन-कांग्रेस (French-Russian Parliament and National People's Congress of China)

फ्रांस की संसद (Parliament of France)

व्यावहार के स्तर पर फ्रांस में लोकतंत्र की स्थापना में कई उतार-चढ़ाव आए। कई बार वहां लोकतंत्र को चुनौति दी गई, उस पर प्रहार किए गए, और उसका दमन भी कर दिया गया। परंतु 1958 में वहां पंचक गणराज्य (Fifth Republic) की स्थापना के बाद लोकतंत्र पूरी तरह स्थापित हो चुका है। जहां पिछले सवा दो सौ वर्षों में संयुक्त राज्य अमरीका में एक ही संविधान प्रचलित रहा है, और उसमें केवल छब्बीस संशोधन किए गए हैं, वहां इसी अवधि में फ्रांस में तीन बार राजतंत्र (Monarchy) स्थापित हुआ है, दो बार साम्राज्य (empire) स्थापित हुआ है, पांच बार गणराज्य (Republic) स्थापित हुआ है, और तेरह बार लिखित संविधान लागू किए गए हैं।

फ्रांस का पंचम गणराज्य द्वितीय विश्व युद्ध (1939-45) के प्रसिद्ध सैन्य नायक जनरल **चार्ल्स द गॉल** (1890-1970) के नेतृत्व में स्थापित किया गया था। जनरल द गॉल 1953 में सार्वजनिक जीवन से संन्यास ले चुके थे, परंतु 1958 में उन्हें वापस बुलाया गया। 1958 में ही राष्ट्रीय परिपृच्छा (national referendum) के बाद पंचम गणराज्य की नींव रखी गई और नया संविधान लागू किया गया। जनरल द गॉल 1959 से 1969 तक फ्रांस के राष्ट्रपति रहे। समकालीन फ्रांसीसी सरकार की संस्थाओं और नीतियों को एक निश्चित रूप में ढालने में द गॉल की भूमिका सबसे प्रभावशाली रही।

विधानमंडल–रचना और कृत्य (The Legislature : Composition and Functions): फ्रांस के पंचम गणराज्य के संविधान (1958) के अंतर्गत **एकात्मक शासन-प्रणाली** (Unitary Form of Government) अपनाई गई है। अतः वहां एक ही राष्ट्रीय सरकार की व्यवस्था की गई है। इसके अलावा वहां की जनता 22 क्षेत्रीय परिषद्रों (Regional Councils) 96 महानगर विभागीय परिषद्रों (Metropolition Department Councils) और 36,673 नगरपालिका परिषद्रों (Municipal Councils) या कम्यूनों (Communes) का चुनाव भी करती है। क्षेत्रीय परिषद्रें आर्थिक नियोजन (Economic Plannning) में सरकार को सलाह देती है, और निचली परिषद्रें आवास, परिवहन, खेल-कूद, स्कूलों, सांस्कृतिक और कल्याणकारी कार्यों और कानून के प्रवर्त्तन (Law Enforcement) इत्यादि से सरोकार रखती है। फिर, ये सब परिषद्रें वहां की **सीनेट** (Senate) का चुनाव में भाग लेती है।

पंचम गणराज्य के संविधान (1958) के अंतर्गत **दो-सदनीय संसद** (Two-Chamber Parliament) और **'दोहरी कार्यपालिका'** (Dual Excutive) की व्यवस्था की गई है। यह व्यवस्था **फ्रांसीसी राजनीति प्रणाली को साधारण संसदीय प्रणाली (Parliamentary System)** से अलग सिद्ध करती है। साधारण संसदीय प्रणाली में प्रधानमंत्री (Prime Minister) एवं उसका मंत्रिमंडल (cabinet) की सलाह (Advice) से कार्य होता है। परंतु **फ्रांस में प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति मिल-बांटकर कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग करते हैं।**

फ्रांसीसी संसद के निचले सदन (Lower House) को **राष्ट्रीय सभा** या **नेशनल असेंबली** (National Assembly) कहा जाता है, और उपरले सदन (Upper House) को **सीनेट** (Senate) कहा जाता है। नेशनल असेंबली में 577 सदस्य होते

नोट

हैं जो पांच वर्ष के कार्य-काल के लिए चुने जाते हैं, हालांकि इस सदन को समय से पहले भी भंग किया जा सकता है। नेशनल असेंबली के सदस्य जनता के द्वारा एक-सदस्यीय निर्वाचनक्षेत्रों (Single-Member constituencies) से चुने जाते हैं। इनके चुनाव में 'द्वितीयक बहुमत प्रणाली' (Run-off Absolute Majority System) का प्रयोग होता है। व्यावहार के धरातल पर, वामपंथी और दक्षिणपंथी दलों के गठबंधन आपस में समझौता करके बहुत कम वोट पाने वाले उम्मीदवारों को बैठ जाने के लिए तैयार कर लेते हैं ताकि दो सबसे बलशाली उम्मीदवारों में सीधा मुकाबला कराया जा सके। फिर भी साधारणत: नेशनल असेंबली के तीन-चौथाई स्थान 'दुबारा मतदान प्रणाली' (second ballot) से भरे जाते हैं।

सीनेट के 321 सदस्य एक निर्वाचण (Electoral College) के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं। निर्वाचकगण में नेशनल असेंबली के स्थायी सदस्य, मेयर, विभागीय परिषद्‌ों के सदस्य, और नगरपालिका परिषद्‌ों के प्रतिनिधि (Delegates) सम्मिलित होते हैं। सीनेट के सदस्य नौ वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इसके लिए तीन-तीन वर्ष बाद तिहाई सदस्य सेवानिवृत्त हो जाते हैं, और उनकी जगह नए सदस्यों का चुनाव होता है।

नोट्स निर्वाचक-गण (Electoral College) उन प्रतिनिधियों का समूह है जो स्वयं निर्वाचित होकर आते हैं, और उन्हें किसी उच्चतर सभा के सदस्यों या उच्चाधिकारियों का चुनाव करना होता है।

नेशनल असेंबली के 22 सदस्य और सीनेट के 13 सदस्य समुद्र-पार के विभागों और क्षेत्रों (Overseas Departments and Territories) के द्वारा चुने जाते हैं। सीनेट के 12 सदस्य विदेशों में रहने वाले फ्रांसीसी राष्ट्रजनों (French Nationals) के द्वारा चुने जाते हैं।

नेशनल असेंबली अपना कार्य छह बड़ी-बड़ी कृत्यात्मक स्थायी समितियों (Functional Standing committees) के माध्यम से करती हैं जिनमे 61-61 या 121-121 सदस्य होते हैं। यह सदन संसद के दोनों सदनों में अधिक शक्तिशाली है। यही सदन सबसे पहले वार्षिक बजट की जांच करता है। प्रधानमंत्री इसी सदन में से चुना जाता है। सबसे बढ़कर, इसके सदस्य निंदा या अविश्वास-प्रस्ताव (Censure or No-Confidence Motion) लाकर सरकार को गिराने की क्षमता रखते हैं।

सीनेट के चुनाव-आधार (Electoral base) में स्थानीय शासन से जुड़े हुए प्रतिनिधियों की प्रधानता रहती है। ये मुख्यत: मध्यमार्गी (Centrist) और स्वाधीन विचारों वाले लोग होते हैं। अत: यह सदन नेशनल असेंबली पर एक प्रभावशाली अंकुश की भूमिका निभाता है। नेशनल असेंबली द्वारा पारित विधान (Legislation) पर यह सदन अस्थायी निषेधाधिकार (Temporary Veto) का प्रयोग कर सकता है। जब दोनों सदनों में मतभेद को दूर करने के लिए 'संयुक्त समाधान सम्मेलन' (Joint Conciliation conferences) बुलाए जाते हैं, तब यह सदन विचाराधीन विधान में संशोधन प्रस्तुत कर सकता है। परंतु नेशनल असेंबली अपने 'निश्चयात्मक मत' (Definitive Vote) का प्रयोग करके सीनेट के निषेधाधिकार को रद्द कर सकती है।

फ्रांसीसी शासन-प्रणाली की एक अनोखी विशेषता यह है कि इसमें राजनीतिक कार्यपालिका (Political Executive) के मुकाबले संसद की शक्तियां बहुत सीमित रह जाती हैं। 1958 के संविधान के अनुसार संसद केवल सीमित क्षेत्र में कानून बना सकती है–जैसे कि कराधान (Taxation), नगर-व्यवस्था से जुड़े हुए अधिकारों (Civic Rights), निर्वाचन कानूनों (Electoral Laws), राष्ट्रीयकरण (nationalization) और दंड-व्यवस्था से जुड़े हुए मामलों (Penal Matters) में । परंतु शिक्षा, श्रम कानून (Labour Law), राष्ट्र रक्षा संगठन (National Defence Organization), स्थानीय शासन (Local Government) और सामाजिक सुरक्षा (Social Security) के क्षेत्र में वह केवल मार्गदर्शक-सिद्धांत (Guidelines) या मूल-सिद्धांत (Principles) ही निर्धारित कर सकती है। नीति (Policy) से जुड़े हुए अन्य क्षेत्रों में सरकार को कार्यकारी आज्ञप्ति (Executive Decree) के माध्यम से कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है। अपने अधिकार क्षेत्र में भीतर भी संसद समय-समय पर कार्यकारी शाखा को निर्दिष्ट अवधि के लिए यह अधिकार दे सकती है कि

नोट

वह अध्यादेशों (Ordinances) के माध्यम से शासन चला सकती है, जिन पर राष्ट्रपति के प्रतिहस्ताक्षर (Countersignature) होने चाहिए।

फिर, अनुच्छेद 47 के अंतर्गत फ्रांस की संसद को वार्षिक बजट पर वाद-विवाद और मतदान करने के लिए केवल 70 दिन का समय दिया गया है। यह अवधि बीत जाने पर सरकार अध्यादेश (Ordinance) जारी करके उस बजट को लागू कर सकती है। अन्य विधेयकों (Bills) के मामले में सरकार अपने 'उत्तरदायित्व' (Responsibility) की शपथ लेकर 'गिलोटिन' की प्रक्रिया लागू कर सकती है। ऐसी हालत में 24 घंटे के अंदर उस विधेयक से जुड़ा हुआ वाद-विवाद अपने-आप समाप्त हो जाता है, शर्त यह है कि उस पर विपक्ष की ओर से निंदा प्रस्तुत (Vote of Censure) पारित न कर दिया जाए। कार्यपालिका यह मांग भी कर सकती है कि प्रस्ताव विधेयक पर किसी भी संशोधन को स्वीकार न किया जाए, और उसके संपूर्ण पाठ (Full Text) पर एक–साथ मतदान करा दिया जाए।

मूलत: अनुच्छेद 28 के अंतर्गत यह व्यवस्था की गई थी कि संसद एक वर्ष में केवल दो बार–ज्यादा–से–ज्यादा 170 दिन के लिए अपना अधिवेशन बुला सकती है। इस अवधि के बाहर सरकार आज्ञप्ति के माध्यम से शासन चला सकती थी। परंतु अगस्त, 1995 में संविधान का संशोधन करके यह व्यवस्था कर दी गई कि संसद का अधिवेशन अक्तूबर से जून तक लागातार नौ महीने चलेगा, और मंत्रियों को सप्ताह में एक बार संसदीय प्रश्नों का उत्तर देना होगा।

कार्यपालिका–रचना और कृत्य (The Executive : Composition and Functions): फ्रांस की कार्यपालिका पर्याप्त शक्तिशाली मानी जाती है। यदि पहली बार किसी उम्मीदवार को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं होता तो चुनाव में सबसे ऊंचा स्थान प्राप्त करने वाले जो दो उम्मीदवार फिर से मुकाबला करना चाहते हों, उनमें दो सप्ताह बाद दुबारा चुनाव कराया जाता है। इसमें जिसे पहला स्थान प्राप्त होता है, उसे राष्ट्रपति चुन लिया जाता है। इस तरह फ्रांस का राष्ट्रपति भी वहां की जनता का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि होता है जिससे उसकी शक्ति को विशेष वैधता (Legitimacy) प्राप्त होती है।

जब कोई राष्ट्रपति चुन लिया जाता है तो वह राज्य के अध्यक्ष (Head of State) के साथ-साथ सशस्त्र सेनाओं के प्रधान सेनापति (Commander-in-Chief of the Armed Force) का पद भी सँभाल लेता है। राष्ट्रपति की औपचारिक शक्तियां अत्यंत विस्तृत है। उसे प्रधानमंत्री के चयन (Selection) का अधिकार है; वह मंत्रि-परिषद् (Council of Ministers) या मंत्रिमंडल (Cabinet) की बैठकों की अध्यक्षता करता है; सरकारी विधेयकों पर प्रतिहस्ताक्षर (Countersign) करता है; विदेशी संधियों के लिए वार्ता चलाता है; परिपृच्छा (Referendum) के लिए पहल करता है। वह नेशनल असेंबली को भंग करके नए चुनाव करा सकता है, शर्त यह है कि वह इसे एक वर्ष में एक बार भंग कर सकता है।

टास्क परिपृच्छा (Referendum) से आप क्या समझते हैं?

संविधान के अनुच्छेद 20 और 21 से ऐसा प्रतीत होता है कि कम-से-कम स्वदेशी क्षेत्र (Domestic Field) में नीति-निर्माण के नियंत्रण का अंतिम सूत्र प्रधानमंत्री और मंत्रि-परिषद् के हाथों में रहता है। परंतु अक्टूबर, 1962 के सांविधानिक संशोधन के अंतर्गत जब राष्ट्रपति के प्रत्यक्ष चुनाव (Direct Election) की व्यवस्था कर दी गई, तब कार्यकारी शक्ति के संतुलन में आमूल परिवर्तन आ गया। इससे पहले राष्ट्रपति का अप्रत्यक्ष चुनाव (Indirect Election) होता था जिसमें संसद-सदस्य, विभागीय परिषद्ों (Department council) के सदस्य और नगरपालिका-पार्षद (Municipal Councillors) 'निर्वाचक-गण' (Electoral College) की भूमिका निभाते थे। राष्ट्रपति के प्रत्यक्ष चुनाव की व्यवस्था से उसकी सत्ता बहुत ऊंची हो गई क्योंकि वह गणराज्य का एकमात्र ऐसा व्यक्ति हो गया जिसे संपूर्ण राष्ट्र की ओर से निर्वाचित किया जाता है।

इसके परिणामस्वरूप 1986 तक राष्ट्रपति को सत्तारूढ़ गठबंधन (Governing Coalition) का 'वैध' नेता माना जाता था। उसकी सेवा के लिए एक विशाल एवं प्रभावशाली अधिकारितंत्र तैयार रहता था, और वह स्वदेश एवं विदेश नीति

नोट

के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता था। प्रधानमंत्री की स्थिति केवल 'संसदीय प्रबंधक' (Parliamentary Manager) की रह गई जिसका कार्य सरकार को चलाना और नीति को कार्यान्वित करना था। परंतु 1986 में जब विपक्षी गठबंधन को नेशनल असेंबली में बहुमत प्राप्त हो गया और उसने अपने नेता जाक चिराक को प्रधानमंत्री बनाने की घोषणा की तब उसके तथा राष्ट्रपति मित्तरों के बीच के शक्ति-संतुलन में नया मोड़ आ गया। 1986 से 1988 तक नए प्रधानमंत्री ने कम-से-कम स्वदेशी क्षेत्र में अपना सिक्का जमा लिया, और राष्ट्रपति को सांकेतिक अध्यक्ष (Nominal Head) की स्थिति में पहुँचा दिया। 1988 में राष्ट्रपति और नेशनल असेंबली के नए चुनाव हुए जिन्होंने इस स्थिति पर पटाक्षेप कर दिया। 1997 से समाजवादी पार्टी के प्रधानमंत्री और दक्षिणपंथी गठबंधन के राष्ट्रपति के बीच **सहचारिता** (co-habitation) की स्थिति रही।

फ्रांस में मंत्रिमंडल के जो मंत्री राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री की सेवा में रहते हैं, उनका चयन राजनीतिक आधार पर भी हो सकता है; तकनीकी योग्यताओं के आधार पर भी हो सकता है। संविधान के अनुच्छेद 23 के अनुसार, कोई व्यक्ति सरकार में काम करते हुए संसद-सदस्य नहीं रह सकता। अत: नेशनल असेंबली के प्रत्येक उम्मीदवार को अपना एक **अनुपूरक** (running Mate) मनोनीत करना पड़ता है ताकि यदि कोई संसद-सदस्य सरकार में मंत्री बन जाए या संविधान-परिषद् (Constituinal Council) का सदस्य बन जाए, या सीनेट का सदस्य चुन लिया जाए, या उसकी मृत्यु हो जाए तो उसका अनुपूरक उसके प्रतिनिधि (Deputy) के रूप में कार्य कर सके।

कुछ मामलों में फ्रांस का मंत्रिमंडल अमरीकी मंत्रिमंडल से मिलता-जुलता है क्योंकि इससे विशेषज्ञों (Specialists) को रखा जाता है। परंतु कुछ अन्य मामलों में फ्रांस का मंत्रिमंडल ब्रिटिश मंत्रिमंडल से मिलता-जुलता है क्योंकि इसके सदस्य नेशनल असेंबली के वाद-विवाद में हिस्सा लेते हैं, और उपयुक्त क्षेत्रों में इस वाद-विवाद का नेतृत्व भी करते हैं; वे स्थायी समितियों (Standing Committees) के सामने उपस्थित होते हैं, और असेंबली के सदस्यों के लिखित एवं मौखिक प्रश्नों के उत्तर भी देते हैं। फ्रांसीसी मंत्रिमंडल के सदस्य एक अत्यंत निपुण एवं प्रभावशाली प्रशासनिक सेवा (Civil Service) के निकट सहयोग में कार्य करते हैं।

फ्रांस के 1958 के संविधान के अंतर्गत संविधान के संशोधन (Consitutional Amendment) की व्यवस्था भी कर दी गई है। इसका एक तरीका यह है कि प्रस्तावित संशोधन को नेशलन असेंबली और सीनेट के संयुक्त अधिवेशन में कम-से-कम 60% बहुमत प्राप्त हो। दूसरा तरीका यह है कि संशोधन-विधेयक को दोनों सदनों में एक ही रूप में पारित कर दिया जाए, और फिर उस पर परिपृच्छा (Referendum) आयोजित करके जनता का अनुमोदन प्राप्त कर लिया जाए। इसके अलावा, अनुच्छेद 11 के अंतर्गत राष्ट्रपति सिद्धांतत: सरकार या संसद से यह प्रार्थना कर सकता है कि संविधान-संशोधन या संधि के अनुसमर्थन (Treaty Ratification) के लिए राष्ट्रीय परिपृच्छा (National Referendum) का आयोजन किया जाए। 1961 के बाद आठ बार ऐसी परिपृच्छा कराई जा चुकी है। उदाहरण के लिए यूरोपीय संघ (European Union) की स्थापना के लिए 1992 में मास्ट्रिच्ट संधि (Masstricht Treaty) का अनुसमर्थन इसी व्यवस्था के अंतर्गत कराया गया था। 1995 में संविधान के अनुच्छेद 11 में संशोधन करके राष्ट्रपति का बहुत सारे विषयों पर परिपृच्छा आयोजित कराने का अधिकार दे दिया गया। इनमें आर्थिक और सामाजिक नीति (Economic and Social Policy) तथा सार्वजनकि सेवाओं (Public Services) से जुड़े हुए विषय भी सम्मिलित हैं। इस प्रक्रिया में सुरक्षा की दृष्टि से यह व्यवस्था की गई है कि जब राष्ट्रपति किसी विषय पर **परिपृच्छा** (Referendum) के आयोजन की मांग करता है, तब संसद को उस विषय पर वाद-विवाद करने का अधिकार होता है।

रशिया की संसद (Parliament of Russia)

दिसंबर 1993 के संविधान के अंतर्गत रूस में **संघीय गणराज्य** (Federal Republic) की स्थापना की गई है। अत: इस देश का आधिकारिक नाम **रूसी संघ** (Russian Federation) है। इस संघ में 21 गणराज्य (Republics), एक स्वायत्त अंचल (Autonomous Region), 49 प्रशासनिक अंचल (Administrative Regions), 6 प्रांत (Provinces), 10 स्वायत्त जनपद (Autonomous Districts) और दो संघीय नगर (Federal Cities)—मास्कों तथा सेंट पीटर्सबर्ग सम्मिलित हैं। इस तरह रूसी संघ कुल मिलाकर 89 प्रशासनिक इकाइयों (Administrative Units) से बना है।

नोट

शासन-प्रणाली के स्तर पर यहां **अध्यक्षीय प्रणाली** (Presidential System) और **संसदीय प्रणाली** (Parliamentary System) **का मिश्रण** तैयार करने का प्रयत्न किया गया है। अध्यक्षीय प्रणाली की तरह यहां एक शक्तिशाली **राष्ट्रपति** (president) की व्यवस्था की गई है, और संसदीय प्रणाली की तरह यहां एक शक्तिशाली **संसद** (Parliament) की व्यवस्था की गई है जिसे **संघीय सभा** (Federal Assembly) कहा जाता है। राष्ट्रपति राज्य का अध्यक्ष (head of State) है जो सीधे जनसाधारण के द्वारा चार वर्ष के लिए चुना जाता है; उसे लगातार दो बार से आगे नहीं चुना जा सकता। वह संविधान का संरक्षक है, और सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति (Supreme Commander of the Armed Forces) भी है। वह प्रधानमंत्री (Prime Minister) तथा मंत्रिपरिषद् (Council of Ministers) अथवा मंत्रिमंडल (Cabinet) की नियुक्ति करता है जिसमें लगभग 30 सदस्य रखे जाते हैं। इनकी नियुक्ति के लिए संसद (parliament) का अनुमोदन जरूरी होता है। राष्ट्रपति एक अंतरंग मंत्रिमंडल (Kitchen Cabinet) की सलाह से कार्य करता है जिसमें उसके विश्वस्त मित्र और उच्चाधिकारी सम्मिलित होते हैं। मंत्रिमंडल को सत्ता में रहने के लिए संसद का विश्वास प्राप्त होना चाहिए।

राष्ट्रपति आज्ञप्तियां (Decrees) जारी कर सकता है जो कानून की तरह मान्य होती है। परंतु ये आज्ञप्तियों प्रचलित कानून के विरूद्ध नहीं होनी चाहिए। फिर संसद इन्हें निरस्त भी कर सकती है। दूसरी ओर, राष्ट्रपति भी संसद-द्वारा-पारित विधेयक (Bill) को कानून बनने से रोक सकता है। वह संसद अर्थात् संघीय सभा (Federal Assembly) के प्रति अपने वार्षिक अभिभाषण (Annual Address) के अंतर्गत सरकार की राजनीतिक और आर्थिक नीति का निरूपण कर सकता है। देश की रक्षा (Defence) का दायित्व सँभालने के लिए राष्ट्रपति सुरक्षा-परिषद् (Security Council) नियुक्त करता है जिसका अध्यक्ष वह स्वयं होता है। वह केंद्रीय बैंक (Central Bank) के अध्यक्ष (Chairperson), महा-अभियोजक (prosecutor General) तथा न्यायपालिका (Judiciary) के प्रमुख सदस्यों की नियुक्ति का प्रस्ताव संसद के पास भेजता है। जनवरी, 1994 के बाद सुरक्षा-सेवाएँ, गृह-मंत्रालय, रक्षा मंत्रालय और विदेश मंत्रालय सीधे राष्ट्रपति के अधीन कर दिए गए हैं। राष्ट्रपति-पद का उम्मीदवार कम-से-कम दस लाख मतदाताओं के द्वारा मनोनीत होना चाहिए; इनमें किसी एक अंचल (Region) या गणराज्य (Republic) के मतदाताओं की संख्या कुल संख्या की 7% से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।

रूस में विधायिका (Legislature) के कृत्य **संघीय सभा** (Federal Assembly) को सौंपे गए हैं। इसमें दो सदन (Chambers) रखे गए हैं। अवर सदन (Lower House) को **स्टेट ड्यूमा** कहा जाता है। इसमें 450 सदस्यों की व्यवस्था की गई है। उच्च सदन (Upper House) को **संघीय परिषद्** (Federal Council) कहा जाता है। इसमें 178 सदस्यों की व्यवस्था की गई है। स्टेट ड्यूमा के 225 सदस्य सीधे एकसदस्यीय निर्वाचनक्षेत्रों (Single Member Constituencies) से चार वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इस चुनाव में बहुलमत प्रणाली (Plurality System) अपनाई जाती है-अर्थात् 'जो सबसे आगे, जीत उसकी' (First pas the post)। शेष 225 सदस्य राष्ट्रीय दल-सूचियों (National Party Lists) से आनुपातिक प्रतिनिधित्व (proportional Reperesentation) के आधार पर चुने जाते हैं इस तरह प्रत्येक मतदाता के दो वोट होते हैं। एक स्थानीय निर्वाचन क्षेत्र के लिए; दूसरा राष्ट्रीय दल-सूची के लिए। स्टेट ड्यूमा के उम्मीदवार की न्यूनतम आयु 21 वर्ष होनी चाहिए। जब कोई उम्मीदवार चुन लिया जाता है, जब वह कोई वैतनिक कार्य (Paid Job) स्वीकार नहीं कर सकता; न वह किसी सरकारी पद (Government Post) पर रह सकता है।

बहुलमत प्रणाली (Plurality System): वह निर्वाचन-प्रणाली जिसके अंतर्गत एकसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र में जिस उम्मीदवार को सबसे ज़्यादा वोट मिलते हैं, उसे विजयी मान लिया जाता है।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation): ऐसी चुनाव प्रणाली जिसमें मतदाता एक से अधिक उम्मीदवारों को अपनी-अपनी पसंद के क्रम में रख सकते हैं ताकि बहुमत (Majority) के साथ-साथ अल्पमत (Minority) को भी उचित प्रतिनिधित्व दिया जा सके। यह एक जटिल प्रणाली है। इसके लिए कई तरीके अपनाए जा सकते हैं जो प्रस्तावित चुनाव के नियमों के अंतर्गत निर्दिष्ट कर दिए जाते हैं।

संघीय परिषद् के अंतर्गत रूसी संघ की 89 प्रशासनिक इकाइयों में से प्रत्येक के दो-दो प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं जिससे इस परिषद् के सदस्यों की संख्या 178 हो जाती है। किसी भी गणराज्य या अंचल के प्रतिनिधि क्रमशः वहां की कार्यपालिका (Executive) और विधायिका के अध्यक्ष होने चाहिए।

नोट

साधारणत: कोई भी विधेयक प्रारंभ में स्टेट ड्यूमा में प्रस्तुत होना चाहिए हालांकि कुछ नीति–संबंधी विषय संघीय परिषद् के अधिकारक्षेत्र में रखें गए हैं। स्टेट ड्यूमा में पारित होने के बाद प्रत्येक विधेयक को संघीय परिषद् भेजना चाहिए। यदि संघीय परिषद् किसी विधेयक को अस्वीकार कर दे तो उसे स्टेट ड्यूमा के पास वापस भेजा जाएगा। वहां एक आयोग–जिसमें दोनों सदनों के सदस्य सम्मिलित होंगे–इनके मतभेदों को दूर करने का प्रयत्न करेगा। यदि स्टेट ड्यूमा उच्च सदन के संशोधनों को अस्वीकार कर दे तो वह दो–तिहाई बहुमत से उस विधेयक को दुबारा पारित करके उच्च सदन की इच्छा की अवहेलना कर सकती है। ऐसी हालत में उस विधेयक को संसद द्वारा पारित माना जाएगा।

संसद से पारित होने के बाद प्रत्येक विधेयक को राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए भेजना होता है। यदि राष्ट्रपति हस्ताक्षर करने से इनकार कर दे तथा स्टेट ड्यूमा राष्ट्रपति के संशोधनों से सहमत हो तो वह उसे साधारण बहुमत से दुबारा पारित कर सकती है। यदि स्टेट ड्यूमा राष्ट्रपति से असहमत हो तो वह उसे दो–तिहाई बहुमत से दुबारा पारित करके राष्ट्रपति के निषेधाधिकार (Veto) को निरस्त कर सकती है। इसी प्रकार यदि संघीय परिषद् राष्ट्रपति के संशोधनों से सहमत हो तो वह उसे साधारण बहुमत से दुबारा पारित कर सकती है, अन्यथा उसे यहां भी दो–तिहाई बहुमत से पारित करना होगा। यदि ये शर्तें पूरी हो जाती है तो प्रस्तुत विधेयक को राष्ट्रपति के द्वारा पारित माना जाएगा।

यों विधायिका को विस्तृत शक्तियां प्रदान की गई है, फिर भी उनमें कई तरह से कटौती कर दी गई है। स्टेट ड्यूमा पूर्ण बहुमत (Absolute Majority) के आधार पर (अर्थात् 226 वोटों के आधार पर) अविश्वास–प्रस्ताव (Vote of No-Confidence) पारित करके सरकार को गिरा सकती है, परंतु इसे तीन महीने के भीतर दो बार ऐसा प्रस्ताव पारित करना होगा, तभी राष्ट्रपति उस पर कार्रवाई करने को विवश होगा। ऐसी हालत में राष्ट्रपति या तो नई सरकार का गठन करेगा, या फिर स्टेट ड्यूमा को भंग करके नया चुनाव कराने का आदेश देगा। नए प्रधानमंत्री और नई सरकार की नियुक्ति के लिए स्टेट ड्यूमा का अनुसमर्थन (Ratification) जरूरी होगा। यदि राष्ट्रपति–द्वारा प्रस्तावित उम्मीदवार को स्टेट ड्यूमा तीन बार अस्वीकार कर देती है तो राष्ट्रपति स्टेट ड्यूमा को भंग कर सकता है, और नए चुनाव का आदेश दे सकता है। (क) यदि नई संसद के चुनाव के बाद एक वर्ष से कम समय बीता हो; (ख) यदि संसद राष्ट्रपति के विरूद्ध महाभियोग (Impeachement) की कार्रवाई शुरू कर चुकी हो; (ग) यदि राष्ट्रपति संपूर्ण रूस में आपात–काल (Emergency) की घोषणा कर चुका हो; या (घ) यदि राष्ट्रपति का कार्यकाल समाप्त होने में छह महीने से कम समय रहता हो। उधर संघीय परिषद् राष्ट्रपति के विरूद्ध तभी महाभियोग चला सकती है जब संघीय सभा के दोनों सदन इसके पक्ष में वोट दे चुके हों, और सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) तथा सांविधानिक न्यायालय (Constitutional Court) दोनों इस प्रस्ताव से सहमत हों।

महाभियोग (Impeachment): वह प्रक्रिया जिसके अंतर्गत किसी देश के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, उच्च या सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश या किसी अन्य उच्चाधिकारी पर अत्यंत गंभीर आरोप लगाकर उसे पद से हटाने की कार्रवाई की जाती है। यह आरोप देशद्रोह, भ्रष्टाचार या संविधान के उल्लंघन का हो सकता है। महाभियोग उन उच्चाधिकारियों पर चलाया जाता है जिनकी पदावधि (Term of Office) विधानमंडल के राजनीतिक समर्थन (Political Support) पर आश्रित नहीं होती।

साधारणत: किसी देश के उच्चाधिकारी पर महाभियोग चलाने की शक्ति वहां के विधानमंडल (Legislature) में निहित रहती है, और इसके लिए अपेक्षित प्रक्रिया (Procedure) संविधान की व्यवस्थाओं या उनसे जुड़ी प्रथाओं (Conventions) से निर्धारित होती है।

रूस के संविधान के अनुसार राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने की कार्रवाई चार चरणों में पूरी की जा सकती है: (क) स्टेट ड्यूमा को दो–तिहाई बहुमत से महाभियोग के पक्ष में वोट देना होगा; (ख) सर्वोच्च न्यायालय को इस बात की पुष्टि करनी होगी कि राष्ट्रपति की कथित कार्रवाई गंभीर अपराध या देशद्रोह (Treason) की कोटि में आती है; (ग) सांविधानिक न्यायालय को यह व्यवस्था देनी होगी कि स्टेट ड्यूमा ने महाभियोग चलाने के निर्णय का जो अनुमोदन किया है, उसमें प्रक्रिया (Procedure) का कोई उल्लंघन नहीं हुआ; और (घ) राष्ट्रपति को हटाने का प्रस्ताव संघीय परिषद् के दो–तिहाई बहुमत से पारित होना चाहिए।

नोट

सांविधानिक न्यायालय (Constitutional Court): रूस के संविधान के अनुसार, वह न्यायालय जिसे न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review) की शक्ति प्राप्त है। इसमें 19 सदस्यों की व्यवस्था की गई है। ये सदस्य राष्ट्रपति के द्वारा मनोनीत किए जाते हैं, परंतु इनकी नियुक्ति के लिए संघीय परिषद् की पुष्टि आवश्यक है। इसे न्यायालय को यह निर्णय देने का अधिकार है कि राष्ट्रपति, संसद तथा सरकार की कोई कार्रवाई संविधानसम्मत है या नहीं?

न्यायिक पुनरीक्षण (Judicial Review): लिखित संविधान के अंतर्गत किसी उच्च या सर्वोच्च न्यायालय की यह शक्ति कि वह किसी नियम, कानून, प्रशासनिक आदेश या कार्रवाई को संविधान की व्यवस्थाओं या उनमें निहित सिद्धांतों की दृष्टि से परख कर उसे संविधान या उनकी मूल चेतना (Spirit) के विरुद्ध घोषित कर सकता है जिससे वह रद्द हो जाती है।

1993 के संविधान के अंतर्गत रूस की केंद्रीय सरकार को फिर से विस्तृत शक्तियां देने का प्रयत्न किया गया है, परंतु रूसी संघ के 21 गणराज्यों तथा 68 अंचलो, प्रांतों एवं जनपदों को भी समानता के आधार पर पर्याप्त सत्ता प्रदान की गई है। कराधान, रक्षा, विदेशी मामले, ऊर्जा और सामाजिक-आर्थिक नीति से जुड़े विषय केंद्रीय–अर्थात् संघीय सरकार के लिए सुरक्षित रखे गए हैं, परंतु शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, संस्कृति और भूमि के उपयोग से जुड़े विषय केंद्र और स्थानीय शासन के संयुक्त प्रबंध के अंतर्गत रखे गए हैं। गणराज्यों के अपने-अपने संविधान हैं; उनकी अपनी-अपनी निर्वाचित सरकारें हैं; और वे अपना-अपना बजट बनाते हैं। वे आर्थिक और सामाजिक सुधारों की गति और दिशा निर्धारित करने में प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं; भूमि का स्वामित्व मुख्यत: इन्हीं के नियंत्रण में आता है; और राज्य के कल्याणकारी कार्यक्रमों में 80% खर्च इनके हिस्से में आता है।

यह बात महत्त्वपूर्ण है कि रूस का संविधान अपने नागरिकों को बुनियादी मानव-अधिकार और स्वतंत्रताएँ प्रदान करता है। इनमें आवास (Housing), नि:शुल्क चिकित्सा (Free Healthcare), शिक्षा (Education) और कुछ हालातों में कानूनी सहायता (Legal Assistance) का अधिकार सम्मिलित है।

चीनी गणराज्य की व्यवस्थापिका: राष्ट्रीय जनकांग्रेस (Legislature of the Chinese Republic: National People's Congress)

चीनी गणतंत्र का संविधान संसदीय सर्वोच्चता के सिद्धांत पर आधारित है। यह शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को अस्वीकृत करता है। अत: चीनी संविधान में ब्रिटिश तथा सोवियत संसदों की भांति सर्वोच्च विधायिका संघ की स्थापना की गयी है। इसे राष्ट्रीय जन-कांग्रेस कहते हैं।

1954 ई॰ के संविधान के अनुच्छेद 21 में कहा गया था कि चीनी गणतंत्र में राष्ट्रीय जनकांग्रेस को सर्वोच्च विधायी निकाय का स्थान प्राप्त है; संविधान के अनुच्छेद 3 के अनुसार, चीनी जनवादी गणतंत्र की समस्त शक्तियाँ जनता में निहित है। प्रत्येक स्तर पर जनता की अपनी शक्तियों का प्रयोग है। इसका निरीक्षण नीचे के स्तरों की जनकांग्रेस कार्य करती है। इस प्रकार, संविधान चीनी राष्ट्रीय जनकांग्रेस को राज्य सत्ता का सर्वोच्च अंग घोषित करता है और संसदीय संप्रभुता के सिद्धांत को स्वीकार करता है। साथ-साथ यह भी उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय जनकांग्रेस को साम्यवादी दल के नेतृत्व में कार्य करना पड़ता है। 1954 ई॰ के संविधान में राष्ट्रीय जनकांग्रेस की सर्वोच्चता को स्वीकार किया गया था, लेकिन उसे साम्यवादी दल के नेतृत्व में नहीं रखा गया था। पूर्व सोवियत रूस में भी साम्यवादी दल के नेतृत्व की चर्चा संविधान में नही मिलती है।

संगठन एवं रचना (Organization and Composition): राष्ट्रीय जनकांग्रेस एकसदनात्मक सभा है। परंपरागत प्रजातांत्रिक पद्धति के प्रतिकूल इसमें केवल एक सदन है, यद्यपि चीन एक बहुराष्ट्रीय राज्य है, किन्तु राष्ट्रीयताओं को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए दूसरे सदन की व्यवस्था नहीं की गयी है।

सदस्य- नए संविधान में राष्ट्रीय जनकांग्रेस के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं की गयी है। इसके सदस्यों की संख्या कानून द्वारा निश्चित की जाती है। 1954ई. के संविधान में भी ऐसी ही व्यवस्था थी। छठी राष्ट्रीय काँग्रेस **(6 जून, 1983)**में सदस्यों की संख्या 2,978 थी । इसके सदस्यों का निर्वाचन प्रांतों, स्वायत्तशासी क्षेत्रों, केन्द्रशासित

नोट

नगरपालिकाओं तथा जनमुक्ति सेना (People's Liberaton Army) के द्वारा होता है। यह 56 राष्ट्र-जातियों का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें 75 प्रतिशत प्रतिनिधि श्रमिक किसान और सैनिक हैं।

प्रतिनिधियों का चुनाव- 1975 ई. के संविधान के अनुसार जनकांग्रेस के प्रतिनिधियों का चुनाव सार्वजनिक एवं वयस्क मताधिकार (universal and audit frenchise) के आधार पर होता था। चीन के सभी नागरिक, जो 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुके हैं। और जो पागल अथवा किसी न्यायालय द्वारा दण्डित नहीं हों तथा किसी अन्य कारणवश मताधिकार से वंचित नहीं हों, प्रतिनिधि पदों के लिए उम्मीदवार के रूप में खड़े हो सकते हैं। इस संबंध में जाति, धर्म, लिंग, शिक्षा, सामाजिक स्थिति या अन्य किसी आधार पर भेद नहीं किया जाता था। नए संविधान (1982 ई.) में पुरानी चुनाव-पद्धतियों को समाप्त कर दिया गया है। अब प्रतिनिधियों का चुनाव लोकतांत्रिक परामर्श (democaratic consultation) के द्वारा होता है। जिस तरह से दलीय कांग्रेस के प्रतिनिधियों का चुनाव किया जाता है। वैसे ही केन्द्र राष्ट्रीय जनकांग्रेस के प्रतिनिधियों को केन्द्रीय और स्थानीय अधिकारियों के परामर्श से मनोनीत करता है। निर्वाचित होने के लिए दल का सदस्य होना और माओ के राजनीतिक तथा क्रांतिकारी आदर्शों का मानना अनिवार्य है। इस प्रकार, चीन में व्यावहारिक रूप में चुनाव का अर्थ है, ऐसे उम्मीदवारों की केंद्रीय सत्ता द्वारा नियुक्ति जो माओ और उसके अनुयायियों के दल के प्रति आज्ञाकारी हो। आम जनता कहने के लिए तो लोकतांत्रिक परामर्श और वाद-विवाद मे भाग लेती है परन्तु वास्तविकता यह है कि प्रतिनिधियों के चुनाव से उसका कोई संबंध नहीं रहता। यही कारण है कि चौथी राष्ट्रीय जनकांग्रेस में श्रमिकों, किसानों और सैनिकों के प्रतिनिधियों का बहुमत था। आम जनता द्वारा चुनाव के स्थान पर प्रतिनिधियों की नामजदगी के तरीके को अपनाये जाने का मुख्य कारण यह था कि माओ की नीतियों के विरोधियों को जनकांग्रेस में कोई स्थान नहीं मिल सके। संविधान के अनुच्छेद 16 में विशेष राष्ट्रवादी व्यक्तियों को प्रतिनिधि के रूप में आमंत्रित करने की व्यवस्था कर चुनाव के महत्त्व को और भी समाप्त कर दिया गया है। इस व्यवस्था के अनुसार राष्ट्रीय जनकांग्रेस में केवल निर्वाचित प्रतिनिधियों को ही नहीं, बल्कि देशभक्त व्यक्तियों को भी शामिल किया जाता है।

कार्यकाल (Term) - पुराने संविधान के अनुसार राष्ट्रीय जनकांग्रेस का अधिवेशन वर्ष में एक बार होता था। किसी विशेष परिस्थितिवश समय पर निर्वाचन नहीं हो सकने के कारण जन-कांग्रेस की कार्यावधि को उस समय तक बढ़ाया जा सकता था, जबतक कि नयी कांग्रेस का पहला सत्र प्रारंभ नहीं हो। नए संविधान (1982) के अनुसार राष्ट्रीय जन-कांग्रेस का कार्यकाल 5 वर्ष कर दिया गया है। विशेष परिस्थितियों में उसके कार्यकाल को बढ़ाया भी जा सकता है।

अधिवेशन (Session) 1954 के संविधान के अनुसार राष्ट्रीय जन-कांग्रेस का अधिवेशन वर्ष में एक बार होता था। बैठक स्थायी समिति द्वारा बुलायी जाती थी कुल संख्या के 1/5 प्रतिनिधियों की माँग पर भी बैठक बुलायी जा सकती थी। नए संविधान (1982) में भी अधिवेशन के संबंध में लगभग यही व्यवस्था रखी गई है। अनुच्छेद 18 के अन्तर्गत स्थायी समिति को जनकांग्रेस की बैठक बुलाने की व्यवस्था की गयी है लेकिन सच्चाई यह है कि वर्षों तक इसका अधिवेशन एक बार भी नहीं बुलाया गया। 1964-65 के अधिवेशन के बाद जनवरी, 1975 ई. में ही राष्ट्रीय जनकांग्रेस का चौथा अधिवेशन बुलाया गया। 1975 ई. के महान् सांस्कृतिक क्रांति के फलस्वरूप परिस्थितियाँ अनुकूल होने के बाद राष्ट्रीय जन-कांग्रेस का अधिवेशन बुलाया गया जो 13 जनवरी से 17 जनवरी, 1975 तक चला। छठी कांग्रेस का अधिवेशन केवल 12 दिनों (6 से 17 जून) 1983 तक चला। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि चीन की राष्ट्रीय जन-कांग्रेस का अधिवेशन बहुत ही संक्षिप्त रहा है। 10 वर्षों के बाद बैठक बुलाने पर भी केवल पाँच दिनों तक ही इसका अधिवेशन चला। इसके पहले भी जो अधिवेशन हुए थे, वे केवल 12 दिनों से 26 दिनों के थे। राष्ट्रीय जन-काँग्रेस की एक अन्य विशेषता है, उसकी गोपनीयता। चीन के नेताओं ने राष्ट्रीय जनकांग्रेस के चुनाव के सबंध में एक भी शब्द नहीं कहा जबकि किसी भी देश के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण घटना होती है। केवल कांग्रेस के अधिवेशन के बाद एक महत्त्वपूर्ण अभिलेख भी जारी किया गया जिसमें कांग्रेस के सदस्यों के नाम, मंत्रिमंडल के सदस्यों के नाम और संविधान के नए उपबंधों का उल्लेख किया गया था। इस प्रकार, राष्ट्रीय जनकांग्रेस का अधिवेशन तथा उसकी कार्यवाहियों को एकदम गुप्त रखा जाता है।

नोट

प्रतिनिधि (Deputies)- पूर्व सोवियत रूस की भाँति चीन में भी प्रतिनिधियों के बारे में एक आकर्षक तथा काल्पनिक सिद्धांत प्रस्तुत किया जाता है। एक विधायक जनता का सेवक (servant), समाजवाद का प्रतिनिधि (agent) तथा माओं के क्रांतिकारी विचारों का अनुगामी (follower) है। प्रतिनिधि जनता का संदेशवाहक (massenger) है। जनता से निरंतर संपर्क बनाये रखना, उसके समक्ष कांग्रेस तथा अपने कार्यों का विवरण प्रस्तुत करना, तथा जनता के कष्टों को जानना और उनके निवारण का समाधान ढूँढ निकालना प्रतिनिधियों का कर्त्तव्य है। यही कारण है कि प्रतिनिधियों को उस इकाई के निरीक्षण का काम करना पड़ता है, जिसने उन्हें चुना है। प्रतिनिधियों को निर्वाचन इकाई किसी भी समय वापस बुला सकती है। प्रतिनिधियों के संबंध में उपर्युक्त सिद्धांत आकर्षक अवश्य है, लेकिन वास्तविकता से बहुत दूर है।

पदाधिकारी (officers)- राष्ट्रीय जनकांग्रेस के पदाधिकारियों के बारे में 1982 ई. के संविधान में कुछ भी नहीं कहा गया है। लेकिन, जनकांग्रेस अपनी बैठकों के संचालन के लिए एक प्रेजिडियम (Presidium) का निर्माण करती है। प्रेजिडयम की संख्या बड़ी होने के कारण इसके कुछ स्थायी अध्यक्ष (Permanent Chairman) चुन लिए जाते हैं। इन अध्यक्षों के अधिकारों, कार्यों एवं स्थिति के बारे में संविधान में कुछ भी नहीं कहा गया है। एक सेक्रेटरी–जेनरल की भी नियुक्ति की जाती है।

उन्मुक्तियाँ (Privileges) - 1954 ई. के संविधान द्वारा सदस्यों की उन्मुक्तियों के बारे में व्यवस्था की गयी थी। प्रतिनिधियों को राज्य–परिषद्, मंत्रालयों तथा आयोगों से प्रश्न पूछने का अधिकार था। कोई भी प्रतिनिधि जनकांग्रेस या उसके शासन काल में उसके स्थायी समितियों की अनुमति के बिना बंदी नहीं बनाया जा सकता था या उस पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था। 1975 ई. और 1982 ई. के संविधान के संबंध में कोई भी उपबन्ध नहीं है।

शक्तियाँ एवं कार्य (Power and Functions): संविधान की धारा 17 में राष्ट्रीय जनकांग्रेस की शक्तियों और कार्यों की चर्चा की गयी है। इसे संविधान में संशोधन लाने, कानून बनाने, साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति की सिफारिश पर प्रधानमंत्री और राज्यपरिषद् के सदस्यों की नियुक्ति करने और बर्खास्त करने, राष्ट्रीय आर्थिक योजना, राष्ट्रीय बजट और राजकीय लेखा–जोखा को स्वीकृत करने और अन्य उन अधिकारों और कृत्यों के प्रयोग का अधिकार है, जिन्हें यह आवश्यक समझे। इसके अतिरिक्त, संविधान के अन्य उपबन्धों द्वारा भी कुछ अधिकार इसे प्राप्त हैं। धारा 18 इसे स्थायी समिति के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यों को चुनने तथा पदच्युत करने का अधिकार देती है, धारा 16 राज्यपरिषद् को इसके प्रति उत्तदायी बनाती है, और धारा 25 सर्वोच्च जनन्यायालयों को इसके प्रति उत्तरदायी बनाती है। इस आधार पर राष्ट्रीय जनकांग्रेस की निम्नलिखित प्रमुख शक्तियों की चर्चा की जा सकती है–

(i) **विधि–निर्माण का अधिकार** (Law-making Power) -संविधान में राष्ट्रीय जनकांग्रेस विधायी केन्द्रीय शक्तियों की सर्वोच्च संस्था कही गई है। कानून–निर्माण के क्षेत्र में इसकी शक्तियाँ काफी व्यापक हैं। कुछ मामलों में तो यह ब्रिटिश संसद से भी अधिक शक्तिशाली दीख पड़ती है। चूँकि चीन मे शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को अस्वीकार किया गया है इसलिए सारी शक्तियों का स्त्रोत राष्ट्रीय जनकांग्रेस बन गई है। किसी भी ऐसी संस्था का प्रावधान नहीं है, जो इसकी विधियों को निषेध (veto) करती हो। अन्य देशों में किसी–न–किसी रूप में संसदों के कानून–निर्माण के अधिकार पर नियंत्रण लगाया गया है।

(ii) **सांविधानिक संशोधन** (Constitutional Amendment)- चीन की राष्ट्रीय जनकांग्रेस को संविधान में संशोधन लाने का अधिकार दिया गया। है। संशोधन की प्रक्रिया के बारे में संविधान एकदम चुप है। अत: राष्ट्रीय जनकांग्रेस सधारण बहुमत से भी संविधान में ब्रिटिश संसद की भाँति संशोधन कर सकती है। संक्षेप में, चीन का राष्ट्रीय जन–कांग्रेस को संशोधन–संबंधी शक्ति की तुलना ब्रिटिश संसद की शक्ति से की जा सकती है।

(iii) **निर्वाचन और नियुक्ति** (Election and Appointment) - निर्वाचन और नियुक्ति के संबंध में भी राष्ट्रीय जनकांग्रेस की शक्ति काफी व्यापक है। इसे प्रधानमंत्री और राज्यपरिषद् के अन्य सदस्यों की नियुक्ति और बर्खास्तगी का अधिकार प्राप्त है। लेकिन, इस पर एक बंधन लगा दिया गया है। यह नियुक्ति या बर्खास्तगी साम्यवादी दल

नोट

की केन्द्रीय समिति के प्रस्ताव पर हो सकती है। स्थायी समिति के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा सदस्य भी राष्ट्रीय जनकांग्रेस द्वारा ही चुने जाते हैं। इसे उन्हें वापस बुलाने का भी अधिकार है। यद्यपि संविधान राष्ट्रीय जनकांग्रेस के इस अधिकार पर कोई बंधन नहीं लगाता है, लेकिन व्यावहारत: ये नियुक्तियाँ भी साम्यवादी दल के केन्द्रीय समिति के प्रस्ताव पर ही की जाती हैं। जहाँ तक सर्वोच्च जन–न्यायालय का प्रश्न है, उसे राष्ट्रीय जनकांग्रेस के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है। लेकिन, उसके अध्यक्ष को नियुक्त और पदच्युत करने का अधिकार स्थायी समिति को सौंप दिया गया है। पुराने संविधान में यह अधिकार राष्ट्रीय जनकांग्रेस को प्राप्त था।

(iv) **आर्थिक अधिकार** (Economic Powers)- चीनी संविधान राष्ट्रीय जनकांग्रेस को आर्थिक क्षेत्र में व्यापक अधिकार देता है। राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था से संबंधित नीतियों को स्वीकृति का व्यापक अधिकार इसे प्राप्त है। यह राष्ट्रीय आर्थिक योजनाओं को स्वीकृति देती है तथा राजकीय बजट और आय–व्यय से संबंधित नीतियों को अंतिम रूप देती है। सोवियत रूस की सर्वोच्च सोवियत की भाँति राष्ट्रीय जन–कांग्रेस के आर्थिक अधिकार काफी व्यापक हैं।

(v) **प्रशासकीय नियंत्रण** (Administrative Control) - संविधान राष्ट्रीय जनकांग्रेस का प्रशासन को निरीक्षण और नियंत्रण का अधिकार भी देती है। राज्यपरिषद् और स्थायी समिति को इसके प्रति उत्तरदायी बनाया गया है। यह इन निकायों के अधिकारों में कमी–बेशी कर सकती है। इसकी बैठकों में राज्यपरिषद् की ओर से प्रधानमंत्री, केन्द्रीय सरकार और प्रशासन के संबध में रिपोर्ट पेश की जाती है। इस रिर्पाट पर यह विचार–विमर्श करती है।

(vi) **अन्य अधिकार** (Miscellaneous Powers)- नए संविधान में प्रावधान है कि राष्ट्रीय जनकांग्रेस उन शक्तियों का प्रयोग कर सकती है, जिन्हें यह आवश्यक समझे। यह उपबंध इनके अधिकार को काफी व्यापक बना देता है। इसके अनुसार राष्ट्रीय जनकांग्रेस उन सभी शक्तियों का प्रयोग कर सकती है, जिन्हें वह राष्ट्रहित या साम्यवादी क्रांति के लिए आवश्यक समझे। केवल साम्यवादी दल के नेतृत्व का बन्धन उस पर है दल की केन्द्रीय समिति के निर्देश के अन्तर्गत यह किसी भी शक्ति का प्रयोग कर सकती है जिसकी चर्चा संविधान में नहीं है।

मूल्यांकन (Evaluation): राष्ट्रीय जनकांग्रेस की रचना, अधिकार और स्थिति के बारे में काफी आलोचनाएँ सुनने को मिलती हैं। मुख्य आलोचनाएँ इस प्रकार हैं–

(i) राष्ट्रीय जनकांग्रेस के संगठन और कार्य–विधि में पश्चिमी देशों के समान आलोचनाएँ की जाती है। लोकतांत्रिक पद्धति के अन्तर्गत संसद का चुनाव जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से होता है। लेकिन साम्यवादी चीन में एक नई पद्धति अपनाई गई है जिसे जनवादी विचार–विमर्श (democratic discussing) का तरीका कहा गया है। इस पद्वति के अनुसार प्रतिनिधियों का चयन साम्यवादी दल और प्रशासन के द्वारा ही कर लिया जाता है केवल कहने के लिए जनता से विचार–विमर्श किया जाता है। यह पद्वति घोर अलोकतांत्रिक है। इस चुनाव–पद्वति में जनता का कोई प्रभाव नहीं रहता और प्रतिनिधि जनता के नहीं, बल्कि दल के हिमायती होते हैं। सोवियत लेखक **अेलेक्जेन्ड्रोव** का कहना ठीक ही है कि ऐसी प्रणाली में मेहनतकश जनता के विशाल समुदाय को देश की सर्वोच्च विधायी संस्था पर प्रभाव डालने का अवसर नहीं मिल सकता।

(ii) देशभक्त व्यक्तियों (patriotic personages) के राष्ट्रीय जनकांग्रेस की बैठकों में हिस्सा लेने हेतु आमंत्रण की व्यवस्था भी कटु आलोचना का विषय रही है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि शासकवर्ग व्यक्तियो के नाम पर किसी भी संख्या में अपने मनोनुकूल प्रतिनिधियों को राष्ट्रीय जनकांग्रेस की सदस्यता दे सकते हैं। ऐसी गैर–प्रजातांत्रिक व्यवस्था दुनिया के किसी भी संविधान में नहीं है।

(iii) जहाँ तक राष्ट्रीय जन–कांग्रेस के अधिवेशन का प्रश्न है इसकी बैठक बहुत लम्बे अरसे के बाद होती है। वर्ष में एक बार अधिवेशन की व्यवस्था को कभी व्यावहार में नहीं लाया गया। इसके अतिरिक्त इसकी बैठक केवल 2–4 दिनों के लिए ही होती है। इतनी कम अवधि में और इतने लम्बे अरसे के बाद की बैठकों द्वारा यह संभव नहीं है कि कोई संस्था प्रभावकारी भूमिका अदा कर सके। सच पूछा जाय तो यह व्यवस्था राष्ट्रीय जनकांग्रेस को पूर्णत: नपुंसक बना देती है।

नोट

(iv) राष्ट्रीय जनकांग्रेस के कार्यकाल के बारे में यह व्यवस्था की यह पाँच साल की अवधि को मनचाहे ढंग से बढ़ा सकती है। व्यावहार में ऐसा हुआ भी। यह चीन की जनवादी व्यवस्था को गैर-प्रजातांत्रिक बना देती है।

(v) राष्ट्रीय जनकांग्रेस की सदस्य संख्या बहुत अधिक है। यह विश्व की किसी भी संसद की सदस्य-संख्या से कई गुना ज्यादा है। इतनी बड़ी सभा में किसी विषय या नीति पर गंभीरतापूर्वक विचार-विमर्श नहीं किया जा सकता है।

(vi) संसदीय संस्थाएँ उत्तरदायी ढंग से तभी काम कर सकती है, जब उनमें शासक दल के साथ-साथ विरोधी दल रहें। चीन में विरोधी दल का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अत: राष्ट्रीय जनकांग्रेस का काम केवल साम्यवादी दल की नीतियों का समर्थन करना रह गया है। विस्तृत: निर्णय साम्यवादी दल की केन्द्रीय समितियां शासन के उच्च अंगो, जैसे स्थायी समिति राज्य परिषद् द्वारा लिए जाते हैं। राष्ट्रीय जनकांग्रेस केवल उस पर मुहर लगा देती है।

(vii) पुराने संविधान की तुलना में नये संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रीय जनकांग्रेस की शक्ति और अधिकारों में भारी कमी कर दी गयी है। दोनों संविधानों की तुलना से पता चलता है कि राष्ट्रीय जनकांग्रेस के बहुत-से महत्त्वपूर्ण कार्य व अधिकार छीन लिए गये हैं संख्या में इसके अधिकार 18 से घटा कर 6 कर दिए गए हैं। संक्षेप में, राष्ट्रीय जन-कांग्रेस के कार्यों एवं अधिकारों में भारी कटौती की गई है।

(viii) चीन की वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में राष्ट्रीय जनकांग्रेस की स्थिति को भी पहले से नीचा कर दिया गया है। 1954 ई. के संविधान अनुच्छेद 22 के अनुसार राष्ट्रीय जनकांग्रेस देश के लिए कानून बनाने वाली सर्वोच्च सत्ता थी, उसे राज्य या अन्य निकायों की तुलना में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था 1982 ई. के संविधान के अनुच्छेद 16 के अनुसार अब इसे साम्यवादी के नेतृत्व के अन्तर्गत राज्यशक्ति का सर्वोच्च अंग कहा गया है। अब यह साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति के निर्देश के अन्तर्गत कार्य करती है। उदाहरणस्वरूप, राज्यपरिषद् के प्रधानमंत्री और राज्यपरिषद् के सदस्यों की नियुक्ति व पदच्युत साम्यवादी की केन्द्रीय समिति के सुझावों पर ही की जा सकती है। इस प्रकार यह मात्र वह सत्ता रह गयी है जिसमें केवल कानूनी बात निहित है वास्तविक शक्ति साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति या उसके अध्यक्ष में निहित है। यह राज्य की शक्ति का सर्वोच्च अंग नहीं रह गया है। इसका स्थान गौण पड़ गया है। इसका कारण यह है कि नए संविधान में एक नयी व्यवस्था को लागू किया गया जिसमें दल को केन्द्र बिन्दु माना गया। दल के निर्देश के अनुसार राष्ट्रीय जनकांग्रेस या राज्य के अन्य अंग कार्य करते हैं। इस प्रकार चीन का साम्यवादी दल या स्थायी समिति राज्यशक्ति का सर्वोच्च अंग है राष्ट्रीय जनकांग्रेस नहीं।

राष्ट्रीय जन-कांग्रेस की स्थायी समिति (Standing committee of the National People's Congress)

चीन के संविधान में राष्ट्रीय जनकांग्रेस की स्थायी समिति की व्यवस्था की गई है। यह पूर्व सोवियत राजनीतिक प्रणाली पर आधारित है। जिस प्रकार सोवियत रूस की विधायिका सर्वोच्च सोवियत अपने अध्यक्षमण्डल (Presidium) के माध्यम से काम करती थी उसी प्रकार चीन की विधायिका भी अपनी स्थायी समिति के माध्यम से कार्य करती है। इस स्थायी समिति को जन-कांग्रेस की लघु विधायिका या स्थायी कार्यकारी अंग कहा जाता है। रूस की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्षमण्डल की भाँति यह स्थायी समिति भी सालों भर कार्य करती रहती है। राष्ट्रीय जनकांग्रेस का अधिवेशन कुछ दिनों के लिए, छोटी अवधि के लिए होता है, इसलिए उसकी अनुपस्थिति में स्थायी समिति ही उसका कार्य करती है।

संगठन सदस्य-संविधान की धारा 18 के अनुसार स्थायी समिति में एक अध्यक्ष, अनेक उपाध्यक्ष, महासचिव और अनेक सदस्य होते हैं। स्थायी समिति के आकार के बारे में संविधान कुछ नहीं कहता है। इसका निर्धारण राष्ट्रीय जनकांग्रेस को करना है। चौथे राष्ट्रीय जनकांग्रेस के लिए जनवरी, 1975 में 144 सदस्यों की स्थायी समिति निर्मित की गयी, जिसमें एक अध्यक्ष, 22 उपाध्यक्ष और 121 साधारण सदस्य चुने गए। स्थायी समिति के सदस्य जनकांग्रेस द्वारा चुने जाते हैं। कांग्रेस के सदस्यों में से ही समिति के सदस्य चुने जाते हैं।

कार्यकाल-जहाँ तक स्थायी समिति के कार्यकाल का प्रश्न है, संविधान द्वारा निश्चित नहीं किया गया है। सामान्यत: यह कार्यकाल राष्ट्रीय जनकांग्रेस के पाँच वर्ष के कार्यकाल का सहगामी होता है। यदि जनकांग्रेस का कार्यकाल बढ़ा दिया जाता है तो स्थायी समिति नयी जनकांग्रेस के चुनाव पर्यन्त कार्य करती रहेगी। कार्यकाल बढ़ाने की शक्ति के बारे में कोई स्पस्ट उल्लेख नहीं है। संविधान में यह भी व्यवस्था की गई है कि कार्यकाल के अंतर्गत ही राष्ट्रीय जनकांग्रेस स्थायी समिति के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या साधारण सदस्यों को किसी भी समय वापस बुला सकती है।

नोट

प्रक्रिया –यह राष्ट्रीय जनकांग्रेस की स्थायी कार्यकारी संस्था है। लेकिन, संविधान ने इसकी प्रक्रिया संबंधी नियमों का उल्लेख नहीं किया है। व्यवहार में समिति का अध्यक्ष इसकी बैठकें बुलाता है और उसकी अध्यक्षता करता है। वह चाहे जितनी बैठकें बुला सकता है। यदि स्थायी समिति का अध्यक्षता करने में किसी कारणवश कभी समर्थ न हो तो समिति के उपाध्यक्षों में से किसी एक को अध्यक्ष के कार्यों का निर्वाह करने के लिए यह चुन लेती है। किन्तु यदि अध्यक्ष त्यागपत्र दे देता है, मर जाता है या हटा दिया जाता है तब नये अध्यक्ष का निर्वाचन राष्ट्रीय जनकांग्रेस करती है। समिति का महासचिव इसके कार्यालय का प्रधान होता है, और उसकी सहायता के लिए अनेक उप–महासचिव भी नियुक्त किये जाते हैं।

स्थायी समिति का अध्यक्ष –संविधान द्वारा स्थायी समिति को अलग से कोई भी अधिकार नहीं दिया गया है। इसलिए, उसके अधिकारों और स्थिति के बारे में भिन्न–भिन्न धारणाएँ हैं। चूँकि राष्ट्रपति का पद समाप्त कर दिया गया है इसलिए उसे गलती से राष्ट्रपति के समकक्ष भी मान लिया जाता है। वह ऐसे कार्यों को करता है जो पहले राष्ट्रपति करता था। वह स्थायी समिति की बैठकों की अध्यक्षता करता है; उसकी आज्ञप्तियों और निर्णयों पर हस्ताक्षर करता है, विदेशों में सरकारी उत्सवों के अवसर पर संदेश भेजता है चीन में आये राज्याध्यक्षों और राजनयिकों का स्वागत करता है। लेकिन, इन कार्यों के संबंध में चीन में बहुत औपचारिकता नहीं है। कभी–कभी विदेशी राज्याध्यक्षों के नाम संदेश स्थायी समिति के अध्यक्ष द्वारा न भेजकर प्रधानमंत्री के हस्ताक्षर या साम्यवादी दल के अध्यक्ष की ओर से भेजा जाता है। अत: औपचारिकता के दृष्टिकोण से भी स्थायी समिति के अध्यक्ष का पद बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाता है। फिर भी, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि स्थायी समिति के अध्यक्ष की गरिमा है, और इसी कारण दल के वरिष्ठ नेता ही इस पद पर आसीन होते हैं।

स्थायी समिति का अधिकार और कार्य (Powers and Functions of Standing Committee)-1954 ई. के संविधान की तुलना में नए संविधान के अन्तर्गत स्थायी समिति के अधिकारों को दिया गया है। नया संविधान स्थायी समिति को कई ऐसे अधिकार नहीं देता है, जो पुराने संविधान में उसे प्राप्त थे। फिर भी, संविधान के उपबन्धों और स्थायी समिति के व्यावहारिक रूप पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि उसकी शक्तियों में विशेष कमी नहीं हुई है। स्थायी समिति के कार्यों को निम्न प्रकार से सूचीबद्ध किया जा सकता है–

(i) **राज्याध्यक्ष के अधिकार**–स्थायी समिति पश्चिमी देशों के राज्याध्यक्षों द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों को करती है। यह राष्ट्रीय जनकांग्रेस की बैठकें बुलाती है। राष्ट्रीय जनकांग्रेस की बैठकों के संचालन के लिए निर्मित प्रेजिडियम में स्थायी समिति के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। स्थायी समिति को राज्याध्यक्षों की भाँति दण्डित व्यक्तियों की सजा को कम करने, बदल देने और माफ करने का अधिकार है। यह विदेशों से आये राजनयिकों और पदाधिकारियों के प्रमाणपत्र को प्राप्त करती है तथा चीनी अधिकारियों को विदेशों के लिए प्रमाणपत्र देती है। स्थायी समिति सामान्य क्षमादान की शक्तियों का प्रयोग करती है। स्थायी समिति कई ऐसे अधिकारों का भी प्रयोग करती है, जिसका उल्लेख संविधान में नहीं किया गया है। उदाहरणस्वरूप, इसे सरकारी उपाधियों को प्रस्थापित करने और प्रदान करने का अधिकार प्राप्त है; क्षमादान के अधिकार का भी संविधान में कहीं उल्लेख नहीं है, फिर भी यह इस अधिकार का प्रयोग करती है। एक ओर जबकि इसे राज्याध्यक्ष के कई कार्य सौंपे गये हैं, दूसरी ओर इसे कई ऐसे कार्यों को करने की मनाही है जो दूसरे देशों के राज्याध्यक्ष करते हैं, जैसे इसे राष्ट्रीय जन–कांग्रेस की विधियों का निषेध करने का अधिकार नहीं है इसे राष्ट्रीय जनकांग्रेस को भंग करने का अधिकार नहीं है।

(ii) **कार्यकारी अधिकार**– स्थायी समिति को कार्यपालिका संबंधी कई अधिकार दिए गए हैं। राष्ट्रीय जनकांग्रेस के साथ–साथ स्थायी समिति के प्रति भी राज्यपरिषद् और सर्वोच्च जन–न्यायालय उत्तरदायी है। सर्वोच्च जन–न्यायालय के अध्यक्ष की नियुक्ति और बर्खास्तगी के बारे में भी इसका अधिकार महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि संविधान में इसका कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। यह अधिकार राष्ट्रीय जनकांग्रेस को है, लेकिन स्वभावत: राष्ट्रीय जनकांग्रेस के अंतरकाल में इस शक्ति का प्रयोग स्थायी समिति ही करेगी । संविधान स्थायी समिति को विदेशी शक्तियों के साथ की गयी संधियों को अनुसमर्थित करने तथा समाप्त करने का भी अधिकार देता है। प्रातों, स्वायत्तशासी क्षेत्रों, केन्द्र द्वारा शासित नगरपालिकाओं और क्रांतिकारी समितियों के निरीक्षण का अधिकार भी स्थायी समिति को प्राप्त है। यह उनके अनुचित निर्णयों को रद्द कर सकती है या संकुचित कर सकती है। इस प्रकार, स्थायी समिति को नियुक्ति, पदच्युति और निरीक्षण के अधिकार दिए गए हैं।

नोट

(iii) **विधायी अधिकार**–विधायी क्षेत्र में भी स्थायी समिति के अधिकार व्यापक हैं। संविधान इसे आज्ञाप्तियाँ जारी करने का अधिकार देता है। चूँकि जन–कांग्रेस की बैठक बहुत लंबे अरसे बाद और थोड़े समय के लिए होती है इसलिए आज्ञाप्तियाँ जारी करने का महत्त्व बढ़ जाता है। पूर्व सोवियत रूस में भी प्रेजिडियम को आज्ञाप्तियाँ जारी करने का अधिकार था। लेकिन, चीन की स्थायी समिति की यह शक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि राष्ट्रीय जनकांग्रेस की बैठक लंबी अवधि के बाद हुआ करती है। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि आज्ञाप्तियों का मूल्य राष्ट्रीय जनकांग्रेस द्वारा पारित विधियों के बराबर है। ये चीन में भी राजकीय संस्थाओं, अधिकारों और नागरिकों पर लागू होती है। आज्ञाप्तियाँ केवल कानून का ही स्थान नहीं लेती है।, बल्कि वे कानून की व्याख्या भी करती है, या कानून लागू करने के लिए आदेश के रूप में जारी की जाती है। संक्षेप में, स्थायी समिति का कानून बनाने के संबंध में अधिकार बहुत ही व्यापक और महत्त्वपूर्ण है।

(iv) **न्यायिक अधिकार**– जहाँ तक न्यायिक अधिकार का प्रश्न है, इस क्षेत्र में भी स्थायी समिति को व्यापक अधिकार दिए गए हैं। स्थायी समिति को कानूनों की व्याख्या का अधिकार प्राप्त है। स्थायी समिति को सर्वोच्च जन–न्यायालय के अध्यक्षों की नियुक्ति और वर्खास्तगी का भी अधिकार दिया गया है। यह न्यायालयों के कार्यों की देखभाल भी करती है। स्थायी समिति किसी सरकारी विभाग के गैर–कानूनी निर्णय को रद्द भी कर सकती है। साथ–ही–साथ किसी कानूनी समस्या के महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर स्थायी समिति का निर्णय ही अंतिम माना जाता है।

(v) **अन्य अधिकार**–उपर्युक्त अधिकारों के अतिरिक्त स्थायी समिति को इन सारे अधिकारों और कार्यों के सम्पादन का अधिकार है, जो इसे राष्ट्रीय जनकांग्रेस द्वारा सौंपे जाते हैं। यह प्रावधान इतना व्यापक है कि इसका प्रयोग कर राष्ट्रीय जनकांग्रेस कोई भी अधिकार स्थायी समिति को सौंप सकती है। इस संबंध में चीन के राष्ट्रीय जनकांग्रेस के स्थायी समिति के अधिकार पूर्व सोवियत संघ के प्रजिडियम से अधिक व्यापक है।

अंत में, संविधान–निर्माताओं को यह स्पष्ट उद्देश्य दिखायी पड़ता है कि स्थायी समिति को राष्ट्रीय जनकांग्रेस के अधीन रखा जाय। संविधान राष्ट्रीय जनकांग्रेस को राज्य शक्ति का सर्वोच्च अंग मानता है, जिसके प्रति स्थायी समिति उत्तरदायी है। व्यावहार में साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति के प्रत्यक्ष नियंत्रण में कार्य करने के कारण स्थायी समिति का स्थान गौण पड़ जाता है, वह साम्यवादी दल की नीतियों का आँख मूँद कर समर्थन करती है और उसके निर्देशन तथा नेतृत्व में काम करती है।

स्व–मूल्यांकन (Self-Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the Blanks)–

1. फ्रांस का पंचम गणराज्य ..... के नेतृत्व में स्थापित किया गया।
2. जनरल द गॉल ..... तक फ्रांस के राष्ट्रपति रहे।
3. दिसंबर ..... के संविधान के अंतर्गत रूस में संघीय गणराज्य की स्थापना की गई है।
4. राज्य परिषद् स्विस संघीय सभा का ..... है।
5. अमरीकी कांग्रेस की समिति को आमतौर पर ..... की संज्ञा दी जाती है।

8.3 सारांश (Summary)

- सैद्धांतिक दृष्टि से ब्रिटिश संसद में राजमुकुट (The Crown), लार्ड सभा (House of Lords) और कॉमन्स सभा (House of Commons) तीनों आ जाते हैं। लार्ड सभा को उच्च सदन, उपरला सदन (Upper House) या दूसरा सदन (Second Chamber) कहा जाता है; कॉमन्स सभा को निम्न सदन या अवर सदन (Lower House) कहा जाता है। परंतु वास्तव में कॉमन्स सभा की शक्तियां और कृत्य लार्ड सभा की तुलना में अधिक विस्तृत और महत्त्वपूर्ण हैं। व्यावहारिक और राजनीतिक कारणों से कॉमन्स सभा को ब्रिटिश संसद का पर्यायवाची समझा जाता है क्योंकि इसके सदस्यों का चुनाव जनसाधारण के द्वारा किया जाता है; इसी सदन को विधि–निर्माण की अंतिक शक्ति प्राप्त है; और मंत्रिमंडल (Cabinet) अपने अस्तित्व के लिए इसी सदन के विश्वास (Confidence) पर आश्रित है।

नोट

- ब्रिटिश संसद को प्रभुसत्तासंपन्न मानने का मुख्य कारण यह है कि वहां कोई लिखित संविधान (Written Constitution) नहीं हैं शासन-प्रणाली से जुड़ी हुई प्रथाएँ (conventions), न्यायिक दृष्टांत (Judicial Precedents) और संसद के अधिनियम (parliamentary Enactments) ही वहां के संविधान का आधार है। संसद के अधिनियम कानून की दृष्टि से सर्वोपरि है।
- वस्तुत: प्रधानमंत्री ही मंत्रिमंडल बनाता और तोड़ता है। वह अपनी पसंद के संसद-सदस्यों को मंत्रिमंडल में रख सकता है हालांकि उसे विभिन्न राजनीतिक हितों और भिन्न-भिन्न समूहों में नेतृत्व के दावेदारों को इसमें उचित प्रतिनिधित्व देना पड़ता है।
- मंत्रिमंडल ब्रिटिश सांविधानिक प्रणाली की धुरी है। मंत्रिमंडल के सदस्य अपने-अपने प्रशासनिक विभाग के अध्यक्ष के नाते देश के शासन में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। अमरीकी मंत्रिमंडल के सदस्य तो विधानमंडल से बिल्कुल नहीं जुड़े होते और वे केवल राष्ट्रपति (President) के सेवक होते हैं, परंतु ब्रिटिश मंत्रिमंडल के सदस्य स्वयं विधानमंडल के महत्त्वपूर्ण सदस्य होते हैं, और वे सामूहिक रूप से विधानमंडल की संचालन समिति (Steering committee) के रूप में कार्य करते हैं।
- ब्रिटिश प्रणाली के अंतर्गत विधानमंडल और कार्यपालिका में गतिरोध (Dedlock) पैदा होने की कोई गुंजाइश नहीं है।
- संयुक्त राज्य अमेरीका के विधानमंडल को 'कांग्रेस' कहा जाता है। अमेरीका में संघीय शासन प्रणाली (Federal Government) प्रचलित है। वहाँ की संघीय सरकार पूरे राष्ट्र से संबंधित मामलों का शासन चलाती है, पचास राज्यों की सरकारें अपने-अपने से संबंधित मामलों का शासन चलाती है। संघीय प्रणाली की आवश्यकता के अनुरूप वहां संघ के विधानमंडल–अर्थात् कांग्रेस में दो सदन रखे गए हैं: (1) प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) संपूर्ण राष्ट्र के जनसाधारण का प्रतिनिधित्व करती है; और (2) सीनेट (Senate) पृथक्-पृथक् राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है। प्रतिनिधि सभा को निम्न सदन या अवर सदन (Lower House) कहा जाता है; सीनेट को उच्च सदन, उपरला सदन (Uppoer House) कहा जाता है; या दूसरा सदन (Second chamber) कहा जाता है। प्रतिनिधि सभा के सदस्य को कांग्रेस-सदस्य कहा जाता है; सीनेट के सदस्य को सीनेट सदस्य या सीनेटर (Senator) कहा जाता है।
- इसमें 435 सदस्य होते हैं जो कि पूरे देश की जनता के द्वारा चुने जाते हैं। इसके निर्वाचनक्षेत्र (constituencies) जनसंख्या के आधार पर बनाए जाते हैं। अत: इस सदन में किसी राज्य से आने वाले प्रतिनिधियों की संख्या वहां की जनसंख्या पर निर्भर है।
- प्रतिनिधि सभा के सदस्य दो वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इस अवधि को किसी भी तरह बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता।
- संयुक्त राज्य अमेरीका के प्रत्येक राज्य को सीनेट में अपने दो-दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है, चाहे भौगोलिक या जनसंख्या की दृष्टि से कोई राज्य कितना भी छोटा या बड़ा क्यों न हो, चूंकि वहां राज्यों की वर्तमान संख्या 50 है, इसलिए सीनेट में 100 सदस्य होते हैं। शुरू-शुरू में राज्यों के विधानमंडल अपने-अपने राज्य का प्रतिनिधित्व करने के लिए सीनेट-सदस्यों का चुनाव करते थे। परंतु 1913 से राज्यों की जनता इनका प्रत्यक्ष चुनाव करती है।
- संयुक्त राज्य अमेरीका का उपराष्ट्रपति (Vice-President) सीनेट का सभापति (Chairman) होता है।
- अमेरीका में संघीय प्रणाली और लिखित संविधान अपनाया गया है। इसके अंतर्गत विधि-निर्माण के विषयों की दो सूचियां (Lists) बनाई गई हैं : संघीय विषय (Federal Subject) और राज्य विषय (State Subjects)। जो विषय इनमें से किसी सूची के विचारक्षेत्र में नहीं आते, उन्हें अवशिष्ट विषय (Residual Subjects) कहा जाता है।
- अमरीकी कांग्रेस विभिन्न प्रशासनिक विभागों के बारे में विवरण (Reports) मँगा सकती है। यह अपनी जांच समितियां (Inquiry committees) नियुक्त करके प्रशासनिक विभागों की आलोचना कर सकती है।
- यदि देशद्रोह, भ्रष्टाचार या संविधान के उल्लंघन, इत्यादि का आरोप लगाकर राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, न्यायाधीशों

नोट

या प्रशासनिक उच्चाधिकारियों पर महाभियोग (Impeachement) चलाना हो तो इसके लिए प्रतिनिधि सभा महाभियोग की धाराएँ (Articles of Impeachemnts) तैयार करती है, और सीनेट में मुकदमा चलाया जाता है। प्रतिनिधि सभा में महाभियोग की धाराओं को साधारण बहुत (Simple Majority) से पारित किया जाता है। दोष-सिद्धि के लिए महाभियोग की प्रत्येक धारा पर सीनेट में उपस्थित तथा मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत (Two-Third Majority) आवश्यक होगा। दोष सिद्ध हो जाने पर अभियुक्त को पद से हटा दिया जाता है।

- चार साल बाद जब राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का चुनाव होता है तो इस चुनाव में डाले गए वोटों की गिनती के लिए कांग्रेस के दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन (Joint Session) होता है।
- कांग्रेस की समिति को आम तौर पर 'लघु विधान-मंडल' (Little Legsilature) की संज्ञा दी जाती है। किसी भी विधेयक को अंतिम रूप देने का अधिकार ऐसी समितियों के हाथ में रहता है। सिद्धांतत: किसी समिति के प्रस्ताव को प्रतिनिधि सभा सीनेट में अस्वीकार किया जा सकता है, परंतु व्यावहारत: ऐसा बहुत कम हो पाता है।
- संयुक्त राज्य अमेरीका का राष्ट्रपति शासन के कार्यकारी अंग (Executive Organ) का अध्यक्ष है; कांग्रेस वहां का सर्वोच्च विधायी अंग (Supreme Legislative Organ) है। शक्ति-पार्थक्य (Separation fo Powers) के सिद्धांत के अंतर्गत इन दानों अंगों की शक्तियां और कृत्य इस ढंग से निर्धारित किए गए हैं कि वे अपने-अपने क्षेत्र में एक-दूसरे से स्वाधीन हों; शासन का कोई भी अंग अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय या अपने कृत्यों को संपन्न करते समय किसी दूसरे अंग पर आश्रित न हो।
- दूसरी ओर, अवरोध एवं संतुलन (Checks and Balances) के सिद्धांत के अंतर्गत यह व्यवस्था की गई है कि शासन के विभिन्न अंग एक-दूसरे पर अंकुश रख सकें ताकि शक्ति के जमाव (concentration of Power) को रोका जा सके, और शासन का कोई भी अंग निरंकुश न हो जाए।
- अमेरीकी संविधान के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय संघ सरकार की न्यायिक शाखा का सर्वोच्च अंग है। इसमें मूलत: पांच न्यायाधीश रखे गए थे, परंतु समय के साथ इनकी संख्या भी बदलती रही है। 1869 के बाद से सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या नौ रही है जिनमें एक मुख्य न्यायाधीश (Chieef Justice) होता है।
- संविधान के अनुसार अपना कार्य संपन्न करते हुए अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय ने धीरे-धीरे 'संविधान के संरक्षक' (Guardian of the Constitution) की भूमिका सँभाल ली है। सर्वोच्च न्यायालय की इस भूमिका के विश्लेषण से पहले अमरीकी संविधान के दार्शनिक आधार (Philosophical Basis) की चर्चा कर लेना उपयुक्त होगा।
- अमरीकी संविधान का निर्माण अमरीकी स्वाधीनता की घोषणा (Declaration of Indepedence) 1776 के बाद 1787 में हुआ था। इस घोषणा के अंतर्गत तत्कालीन अमरीका के तेरह उपनिवेश ब्रिटिश शासन से मुक्ति प्राप्त करने के बाद एक राष्ट्र के रूप में जुड़ गए थे।
- इस तरह अमरीकी संविधान के अंतर्गत एक अत्यंत जटिल शासन-व्यवस्था स्थापित की गई थी। इसमें शासन की तीन शाखाएँ– अर्थात् विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका–तथा दो स्तर–अर्थात् संघ स्तर और राज्य स्तर–स्थापित किए गए थे, और उनमें अवरोध एवं संतुलन (Checks and Balances) की विस्तृत व्यवस्था की गई थी। वास्तव में संविधान के संस्थापक एक ऐसी शासन-व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे जो कभी भी निरंकुशतंत्र (Despotism) का रूप धारण न कर पाए। वे यह अवश्य चाहते थे कि शासन के इन विविध स्तरों में किसी के हाथों में अदम्य शक्ति केंद्रित न हो पाए, परंतु उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया कि शासन की इन विविध शाखाओं और स्तरों में कोई मतभेद पैदा हो जाने पर उसका समाधान कैसे होगा, और उस पर अंतिम निर्णय कौन देगा? संयुक्त राज्य अमरीका के इतिहास में कई बार ऐसे मतभेद पैदा हुए।
- समय के अतंराल से कानून की प्रामाणिकता (validity) के प्रश्न पर अमरीकी कांग्रेस अर्थात् विधानमंडल की तुलना में न्यायपालिका की उच्चता स्वीकार कर ली गई, और राज्यों की तुलना में संघ की कानूनी उच्चता को मान्यता दे दी गई।

नोट

- इस तरह सर्वोच्च न्यायालय ने अपने-आपको संविधान का संरक्षक (Guardian of the Consitution) मान लिया है।
- व्यवहार के स्तर पर फ्रांस में लोकतंत्र की स्थापना में कई उतार-चढ़ाव आए। कई बार वहां लोकतंत्र को चुनौति दी गई, उस पर प्रहार किए गए, और उसका दमन भी कर दिया गया। परंतु 1958 में वहां पंचक गणराज्य (Fifth Republic) की स्थापना के बाद लोकतंत्र पूरी तरह स्थापित हो चुका है।
- फ्रांस का पंचम गणराज्य द्वितीय विश्व युद्ध (1939-45) के प्रसिद्ध सैन्य नायक जनरल चार्ल्स द गॉल (1890–1970) के नेतृत्व में स्थापित किया गया था। जनरल द गॉल 1953 में सार्वजनिक जीवन से संन्यास ले चुके थे, परंतु 1958 में उन्हें वापस बुलाया गया। 1958 में ही राष्ट्रीय परिपृच्छा (national referendum) के बाद पंचम गणराज्य की नींव रखी गई और नया संविधान लागू किया गया। जनरल द गॉल 1959 से 1969 तक फ्रांस के राष्ट्रपति रहे। समकालीन फ्रांसीसी सरकार की संस्थाओं और नीतियों को एक निश्चित रूप में ढ़ालने में द गॉल की भूमिका सबसे प्रभावशाली रही।
- फ्रांस के पंचम गणराज्य के संविधान (1958) के अंतर्गत एकात्मक शासन-प्रणाली (Unitary Form of Government) अपनाई गई है। अत: वहां एक ही राष्ट्रीय सरकार की व्यवस्था की गई है। इसके अलावा वहां की जनता 22 क्षेत्रीय परिषद्रों (Regional Councils) 96 महानगर विभागीय परिषद्रों (Metropolition Department Councils) और 36,673 नगरपालिका परिषद्रों (Municipal Councils) या कम्यूनों (Communes) का चुनाव भी करती है।
- पंचम गणराज्य के संविधान (1958) के अंतर्गत दो-सदनीय संसद (Two-Chamber Parliament) और 'दोहरी कार्यपालिका' (Dual Excutive) की व्यवस्था की गई है। यह व्यवस्था फ्रांसीसी राजनीति प्रणाली को साधारण संसदीय प्रणाली (Parliamentary System) से अलग सिद्ध करती है। साधारण संसदीय प्रणाली में प्रधानमंत्री (Prime Minister) एवं उसका मंत्रिमंडल (cabinet) आपसी सलाह (Advice) से कार्य करता है। परंतु फ्रांस में प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति मिल-बांटकर कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग करते हैं।
- फ्रांसीसी संसद के निचले सदन (Lower House) को राष्ट्रीय सभा या नेशनल असेंबली (National Assembly) कहा जाता है, और उपरले सदन (Upper House) को सीनेट (Senate) कहा जाता है। नेशनल असेंबली में 577 सदस्य होते हैं जो पांच वर्ष के कार्य-काल के लिए चुने जाते हैं, हालांकि इस सदन को समय से पहले भी भंग किया जा सकता है। नेशनल असेंबली के सदस्य जनता के द्वारा एक-सदस्यीय निर्वाचनक्षेत्रों (Single-Member constituencies) से चुने जाते हैं। इनके चुनाव में 'द्वितीयक बहुमत प्रणाली' (Run-off Absolute Majority System) का प्रयोग होता है। व्यावहार के धरातल पर, वामपंथी और दक्षिणपंथी दलों के गठबंधन आपस में समझौता करके बहुत कम वोट पाने वाले उम्मीदवारों को बैठ जाने के लिए तैयार कर लेते हैं ताकि दो सबसे बलशाली उम्मीदवारों में सीधा मुकाबला कराया जा सके।
- सीनेट के 321 सदस्य एक निर्वाचकगण (Electoral College) के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं।
- नेशनल असेंबली के 22 सदस्य और सीनेट के 13 सदस्य समुद्र-पार के विभागों और क्षेत्रों (Overseas Departments and Territories) के द्वारा चुने जाते हैं। सीनेट के 12 सदस्य विदेशों में रहने वाले फ्रांसीसी राष्ट्रजनों (French Nationals) के द्वारा चुने जाते है।
- दिसंबर 1993 के संविधान के अंतर्गत संघीय गणराज्य (Federal Republic) की स्थापना की गई है।
- शासन-प्रणाली के स्तर पर यहां अध्यक्षीय प्रणाली (Presidential System) और संसदीय प्रणाली (Parliamentary System) का मिश्रण तैयार करने का प्रयत्न किया गया है। अध्यक्षीय प्रणाली की तरह यहां एक शक्तिशाली राष्ट्रपति (president) की व्यवस्था की गई है, और संसदीय प्रणाली की तरह यहां एक शक्तिशाली संसद (Parliament) की व्यवस्था की गई है जिसे संघीय सभा (Federal Assembly) कहा जाता है। राष्ट्रपति राज्य का अध्यक्ष (head of State) है जो सीधे जनसाधारण के द्वारा चार वर्ष के लिए चुना जाता है; उसे लगातार दो बार से आगे नहीं चुना जा सकता। वह संविधान का संरक्षक है, और सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति (Supreme Commander of the Armed Forces) भी है।

नोट

- राष्ट्रपति एक अंतरंग मंत्रिमंडल (Kitchen Cabinet) की सलाह से कार्य करता है जिसमें उसके विश्वस्त मित्र और उच्चाधिकारी सम्मिलित होते हैं। मंत्रिमंडल को सत्ता में रहने के लिए संसद का विश्वास प्राप्त होना चाहिए।
- राष्ट्रपति आज्ञप्तियां (Decrees) जारी कर सकता है जो कानून की तरह मान्य होती है। परंतु ये आज्ञप्तियां प्रचलित कानून के विरूद्ध नहीं होनी चाहिए। फिर संसद इन्हें निरस्त भी कर सकती है। दूसरी ओर, राष्ट्रपति भी संसद–द्वारा–पारित विधेयक (Bill) को कानून बनने से रोक सकता है।
- देश की रक्षा (Defence) का दायित्व सँभालने के लिए राष्ट्रपति सुरक्षा–परिषद् (Security Council) नियुक्त करता है जिसका अध्यक्ष वह स्वयं होता है। वह केंद्रीय बैंक (Central Bank) के अध्यक्ष (Chairperson), महा–अभियोजक (prosecutor General) तथा न्यायपालिका (Judiciary) के प्रमुख सदस्यों की नियुक्ति का प्रस्ताव संसद के पास भेजता है।
- राष्ट्रपति–पद का उम्मीदवार कम–से–कम दस लाख मतदाताओं के द्वारा मनोनीत होना चाहिए; इनमें किसी एक अंचल (Region) या गणराज्य (Republic) के मतदाताओं की संख्या कुल संख्या की 7% से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।
- रूस में विधायिका (Legislture) के कृत्य संघीय सभा (Federal Assembly) को सौपें गए हैं। इसमें दो सदन (Chambers) रखे गए हैं। अवर सदन (Lower House) को स्टेट ड्यूमा कहा जाता है। इसमें 450 सदस्यों की व्यवस्था की गई है। उच्च सदन (Upper House) को संघीय परिषद् (Federal Council) कहा जाता है। इसमें 178 सदस्यों की व्यवस्था की गई है।
- चीनी गणतंत्र का संविधान संसदीय सर्वोच्चता के सिद्धांत पर आधारित है। यह शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को अस्वीकृत करता है। अत: चीनी संविधान में ब्रिटिश तथा सोवियत संसदों की भांति सर्वोच्च विधायिका संघ की स्थापना की गयी है। इसे राष्ट्रीय जन–कांग्रेस कहते हैं।
- राष्ट्रीय जनकांग्रेस एकसदनात्मक सभा है। परंपरागत प्रजातांत्रिक पद्धति के प्रतिकूल इसमें केवल एक सदन है, यद्यपि चीन एक बहुराष्ट्रीय राज्य है, किन्तु राष्ट्रीयताओं को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए दूसरे सदन की व्यवस्था नहीं की गयी है।
- नए संविधान में राष्ट्रीय जनकांग्रेस के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं की गयी है। इसके सदस्यों की संख्या कानून द्वारा निश्चित की जाती है। 1954ई. के संविधान में भी ऐसी ही व्यवस्था थी। छठी राष्ट्रीय काँग्रेस (6 जून, 1983) में सदस्यों की संख्या 2,978 थी । इसके सदस्यों का निर्वाचन प्रांतों, स्वायत्तशासी क्षेत्रों, केन्द्रशासित नगरपालिकाओं तथा जनमुक्ति सेना (People's Liberaton Army) के द्वारा होता है। यह 56 राष्ट्र–जातियों का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें 75 प्रतिशत प्रतिनिधि श्रमिक किसान और सैनिक हैं।
- संविधान की धारा 17 में राष्ट्रीय जनकांग्रेस की शक्तियों और कार्यों की चर्चा की गयी है। इसे संविधान में संशोधन लोन, कानून बनाने, साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति की सिफारिश पर प्रधानमंत्री और राज्यपरिषद् के सदस्यों की नियुक्ति करने और बर्खास्त करने, राष्ट्रीय आर्थिक योजना, राष्ट्रीय बजट और राजकीय लेखा–जोखा को स्वीकृत करने और अन्य उन अधिकारों और कृत्यों के प्रयोग का अधिकार है, जिन्हें यह आवश्यक समझे । इसके अतिरिक्त, संविधान के अन्य उपबन्धों द्वारा भी कुछ अधिकार इसे प्राप्त है। धारा 18 इसे स्थायी समिति के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यों को चुनने तथा पदच्युत करने का अधिकार देती है, धारा 16 राज्यपरिषद् को इसके प्रति उत्तदायी बनाती है, और धारा 25 सर्वोच्च जनन्यायालयों को इसके प्रति उत्तरदायी बनाती है।

8.4 शब्दकोश (Keywords)

अधिनायक तंत्र : तानाशाही व्यवस्था

पार्लेमा : फेंच भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है– वाद विवाद या विचार–विमर्श करने वाली एक सभा

नोट

8.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. ब्रिटिश संसद की शक्ति एवं संगठन की व्याख्या कीजिए।
2. अमरीकी कांग्रेस की शक्तियों का विवेचन कीजिए।
3. "स्विस संघीय सभा में सभी प्रकार की शक्तियाँ हैं– विधायी, प्रशासकीय और न्यायिक।" समीक्षा कीजिए।
4. पंचम गणतंत्र में फ्रांसीसी संसद के दोनों सदनों के संबंधों का विवेचन कीजिए।
5. रसिया गणतंत्र की संसदीय शक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

उत्तर :- स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

(1) जनरल चार्ल्स द गॉल (2) 1959 से 1969

(3) 1993 (4) उच्च या द्वितीय सदन (Upper or Second Chamber

(5) लघु विधान मण्डल (Little Legislature)

8.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *तुलनात्मक शासन एवं राजनीति*–डॉ. बीरकेश्वर प्रसाद सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन (पी. एण्ड डी.) 24, दरियागंज, अंसारी रोड, दिल्ली।
2. *तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा*– ओम प्रकाश गाबा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।
3. *तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ*–सी.बी. गेना, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड, दिल्ली।
4. *तुलनात्मक राजनीति*–जे.सी. जौहरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि., दिल्ली।

नोट

इकाई–9: संवैधानिक संरचना–न्यायपालिका (Constitutional Structure – Judiciary)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

9.1 अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय और न्यायिक पुनर्विलोकन (US Supreme Court and Judicial Review)

9.2 यू.के., रसिया, फ्रांस की न्यायिक व्यवस्था और स्विट्जरलैण्ड की संघीय न्यायिक व्यवस्था (Judicial System of U.K., Russia, France and Federal Judiciary of Switzerland)

9.3 सारांश (Summary)

9.4 शब्दकोश (Keywords)

9.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

9.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय, न्यायिक पुनर्विलोकन, ब्रिटेन और फ्रांस की न्यायिक व्यवस्था के विवेचन करने में।
- स्विट्जरलैण्ड की संघीय न्यायिक व्यवस्था की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

न्यायपालिका सरकार का वह अंग है जो आवश्यकतानुसार कानूनों की व्याख्या करती है और कानून के भंग करनेवालें को उचित दण्ड देती है। अत: शासनात्मक संगठन को बनाये रखने के लिए न्याय विभाग का रहना सर्वथा अनिवार्य है। कहा जाता है कि यदि किसी देश में विधायिका और कार्यपालिका बहुत अच्छी हो, पर स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्यायपालिका न हो, तो उस देश के संविधान का अधिक मूल्य नहीं रह जाता । यह देखने के लिए कि राज्य के कानूनों का समुचित पालन हो रहा है या नहीं अथवा कानूनों के भंग करनेवालों को दण्ड के लिए सर्वथा एक निष्पक्ष न्यायपालिका की आवश्यकता होती है। प्रो. गार्नर ने ठीक ही लिखा है कि "न्याय विभाग के अभाव में एक सभ्य राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। कोई भी समाज बिना विधानमण्डल के रहता है, यह बात समझ में आ सकती है, लेकिन ऐसे किसी सभ्य राज्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती जिसमें न्यायपालिका या न्यायाधिकरण की कोई भी व्यवस्था नहीं हो।" न्यायपालिका व्यक्ति के अधिकारों या स्वतन्त्रताओं की रक्षा करती है यह अधिकारों का निश्चय और उनपर निर्णय देने के लिए, अपराधियों को दण्ड देने के लिए तथा निर्बलों को अत्याचार से रक्षा करने के लिए नितांत आवश्यक है।" वर्तमान युग में प्रत्येक देश में विधि के शासन (Rule of Law) के सिद्धांत को मान्यता दी गयी है; जिसका अर्थ होता है–प्रत्येक व्यक्ति कानून के अधीन है और कोई इसके ऊपर नहीं, कानून की नजर में राजा-रंक सभी बराबर हैं और सभी को समान अपराध के लिए समान दण्ड मिलना चाहिए। लेकिन न्यायपालिका तथा न्याय विभाग की अनुपस्थिति में ये बातें बेकार मालूम होती हैं। लास्की ने लिखा है कि "जब हम यह जानते हैं कि राष्ट्र-राज्य किस प्रकार अपने यहाँ न्याय करता है तब हमें यह ज्ञात हो जाता है कि वह नैतिक चरित्र के किस स्तर पर है। ब्राइस ने

नोट

लिखा है कि "किसी सरकार की उत्तमता की कसौटी उसके न्याय विभाग की कुशलता है; क्योंकि साधारण नागरिक के हित तथा सुरक्षा के हित में यह भावना आवश्यक है कि उनके साथ उचित न्याय शीघ्र किया जाय। फिर ब्राइस के ही शब्दों में "यदि न्याय का दीप अँधेरे में बुझ जाय तो वह अँधेरा कितना गहन होगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती।" संक्षेप में, एक निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र न्याय विभाग या न्यायपालिका के बिना किसी सभ्य संगठन की कल्पना नहीं की जा सकती।

9.1 अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय और न्यायिक पुनर्विलोकन (US Supreme Court and Judicial Review)

सर्वोच्च न्यायालय (The Supreme Court)

शक्ति, प्रतिष्ठा और संगठन : संयुक्त राज्य अमेरिका की संघीय न्यायपालिका के शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय अवस्थित है। इसका निर्माण संविधान द्वारा अनिवार्य बताया गया है। कांग्रेस ने न्यायपालिका अधिनियम, 1789 द्वारा इसे संगठित किया। आज सार्वजनिक शक्ति के सर्वाधिक स्वतन्त्र अभिकरण (Agency) के रूप में इसका विकास हुआ है। जैसे कि टॉर्टलौट ने कहा है यह ऐसी संस्था है जिसे सबसे कम समझा गया है और जिसे जनता ने सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तड़क-धड़क में सजाया है तथा जिसकी रक्षा के लिए निम्नतम श्रेणी का नागरिक भी उठ खड़ा होगा। हैमिल्टन ने कहा था कि राष्ट्रपति समाज की तलवार को धारण करता है। (Hold of the sword of the community) और काँगेस वित्त को नियन्त्रित करती है। (Community the purse) लेकिन सर्वोच्च न्यायालय राष्ट्रपति और कांग्रेस दोनों को मर्यादित करता है और सिर्फ कुछ प्रलेखों और विधियों के सहयोग से शासन को स्थायित्व प्रदान करता है। तात्पर्य यह कि आज सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति तथा प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी है यहाँ तक कि जजों को ही संविधान का निर्माता कहा जाने लगा है।

न्यायाधीशों की संख्या : सर्वोच्च न्यायालय के संगठन को निर्धारित करने का अधिकार कांग्रेस को दिया गया है। समय-समय पर न्यायधीशों की संख्या में परिवर्तन होता रहा है। प्रारम्भ में इसमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा पांच अन्य न्यायाधीश थे लेकिन 1801 ई० में इसकी संख्या घटाकर 5, 1807 ई० में 7, 1837 में 9 और 1863 ई० में बढ़ाकर 10 कर दी गयी। फिर 1866 ई० में घटाकर 7 कर दी गयी। पुन: 1869 ई० में उसे निश्चित कर दिया जो संख्या अभी तक चली आ रही हैं। आजकल सर्वोच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायधिपति और 8 सहन्यायाधीश है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति : न्यायधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है, किन्तु इन नियुक्तियों की पुष्टि सिनेट द्वारा आवश्यक है सिनेट राष्ट्रपति द्वारा की गयी नियुक्ति को रद्द कर सकती है जैसा कि 1930 ई० में जॉन परकर (John Parker) के मनोनयन को रद्द कर दिया गया था, 9 अप्रैल 1970 को राष्ट्रपति निक्सन द्वारा मनोनित न्यायाधीश हेरल्ड कार्सवले को सिनेट ने अस्वीकार कर दिया क्योंकि कार्सवेल साधारण योग्यता का व्यक्ति था और प्रांतीयता में विश्वास रखता था। न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति न्यायालय के वर्गीय धार्मिक तथा दलीय गठन को ध्यान में रखता है।

न्यायाधीशों की योग्यताएँ : न्यायधीशों की योग्यताओं के सम्बन्ध में संविधान चुप है। लेकिन प्राय: उन व्यक्तियों को न्यायधीश नियुक्त किया जाता है जो ख्याति प्राप्त वकील, कानून के प्राध्यापक, सार्वजनिक व्यक्ति तथा प्रशासकीय अभिकरणों के परामर्शदाता रह चुके होते हैं। डॉ टॉकविले के शब्दों में उनकी योग्यताओं को अच्छी तरह व्यक्त किया जा सकता है-संघीय न्यायाधीश को न केवल अच्छे नागरिक, विद्वान तथा ईमानदार होना चाहिए, बलिक राजनीतिज्ञ भी होना चाहिए। वे समय की गति से सुपरिचित हों और उन अवरोधों का सामना करने से शंकित नहीं हो जिनको वश में किया जा सकता है और ऐसे लोगों को कुचलने में सुस्ती से काम न लें , जो कानूनों के लिए आवश्यक संघीय सर्वोच्चता एवं कानून के पालन का विरोध करे। यदि सर्वोच्च न्यायालय में कभी बुरे नागरिक एवं नासमझ व्यक्ति आ जायें तो संघ में गृहयुद्ध अथवा अराजकता फैलने की सम्भावना है। ऑग एवं रे सर्वाधिक सफल मुख्य न्यायाधिपति थे। मार्शल की सफलता की कुँजी उसकी प्रभावपूर्ण तथा मनोहारी व्यक्तित्व (Forceful and winsome personality)

नोट

तथा उदार, स्पष्ट एवं तर्कपूर्ण विचार में पाया है। फरगूसन एवं मैकहेनरी के शब्दों में कुछ न्यायाधीश प्रतिभाशाली अधिकांश औसत योग्यता के तथा कुछ सामान्य श्रेणी के हुए हैं।

पदावधि, पदच्युति तथा वेतन : संयुक्त राज्य अमेरिका में ब्रिटेन के समान न्यायाधीशों का कार्य-काल आजीवन है। सदाचार काल (God behaviour) तक वे अपने पद पर रह सकते हैं। 70 वर्ष की अवस्था प्राप्त करने पर वे त्याग-पत्र देकर कार्य-निवृत हो सकते हैं। परंतु भारत में 65 वर्ष की अवस्था के बाद में निवृत्त हो जाते हैं तथा स्विट्जरलैंड में उनका कार्यालय सिर्फ 6 वर्ष है। कार्यावधि के अन्तर्गत ही अमेरिका में न्यायाधीशाों को महाभियोग (Impeachment) द्वारा पदच्युत किया जा सकता है। भारत के संसद के दोनों सदनों के निवेदन करने पर उन्हें राष्ट्रपति पदच्युत कर सकता है। अभी तक केवल सेमुएल चेज (Sammuel Chase) नाम न्यायधीश पर महाभियोग लगाया गया है लेकिन वह भी निर्दोष पाया गया।

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का वेतन कांग्रेस द्वारा निर्धारित किया जाता है। निर्धारित वेतन में उसके कार्यकाल के भीतर कटौती नहीं हो सकती। इस समय मुख्य न्यायाधीश को 40,000 डॉलर और अन्य न्यायाधीशों को 32,000 डॉलर वेतन, जो आयकर मुक्त नहीं है, प्रतिवर्ष मिलता है।

क्या आप जानते हैं

प्रारम्भ में सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति और प्रतिष्ठा (Power and presitge) नहीं के बराबर थी। यहाँ तक कि वाशिंगटन न्यायाधीश पद के लिए छः योग्य व्यक्तियों को नहीं पा सका। प्रथम मुख्य न्यायाधीश जॉन हे (John Hay) ने गवर्नर पद के पक्ष में त्याग-पत्र दे दिया था। लेकिन क्रमशः इसकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी और उन्नीसवीं शताब्दी विशेषकर मुख्य न्यायाधिपति मार्शल के कार्य-काल से यह शक्तिशाली तथा गौरवपूर्ण संस्था बन गयी।

सर्वोच्च न्यायालय का कार्यकरण (Working of the Supreme Court)

सर्वोच्च न्यायालय का सत्र प्रतिवर्ष अक्टूबर के प्रथम सोमवार से प्रारम्भ होता है और जून शुरू में समाप्त हो जाता है। आवश्यकता पड़ने पर मुख्य न्यायाधीश विशेष सत्र भी बुला सकता है। मुख्य न्यायाधीश वाशिंगटन में अवस्थित अपने भव्य भवन में बैठता है। मुख्य न्यायाधीश प्रशासकीय प्रधान है। वह बैठकों की अध्यक्षता करता है तथा न्यायालय के निर्णयों और आज्ञाओं की घोषणा करता है। अभियोगों की सुनवाई मंगलवार, वृहस्पतिवार तथा शुक्रवार को होती है। शनिवारको न्यायाधीश परस्पर विचार-विनिमय करते तथा सोमवार को सार्वजनिक रूप से निर्णय देते है। मुकदमें की सुनवाई तथा निर्णय के लिए 6 न्यायाधीशों की गणपूर्ति (Quorum) आवश्यक है। निर्णय के पक्ष में मत देने वाली किसी भी न्यायाधीश को निर्णय लिखने के लिए कहा जा सकता है। अतः सभी न्यायाधीश सभी मुकदमों में काफी चौकस रहते हैं। मुकदमें का निर्णय बहुमत से होता है लेकिन बहुमत के निर्णय विरूद्ध कोई न्यायाधीश भिन्न मत (Dissenting Opinion) दे सकता है। यद्यपि भिन्न मत निरर्थक है फिर भी कभी-कभी प्रचार के फलस्वरूप जनमत पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ता है और अंत में देश, की विधियों को प्रभावित करता है। सर्वोच्च न्यायालय के विचार तथा निर्णयों को संयुक्त राज्य रिपोर्टस (United State Reports) में प्रकाशित किया जाता है जो सांविधानिक विधि के ऐतिहासिक विकास तथा वर्तमान स्थिति का अधिकाधिक स्त्रोत है।

सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार एवं कार्य (Jurisdiction and Role of Supreme Court)

सांविधानिक उपबंधः संघीय न्यायालय का अधिकार क्षेत्र केवल कुछ ऐसे विषयों तक सीमित है जिनका संविधान में स्पष्ट उल्लेख है या जो संविधान में उपलक्षित (Implied) हैं। शेष समस्त विषयों पर राज्य के न्यायालयों का अधिकार है। सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र के विषयों में अनुच्छेद 3 में कहा गया है- इस न्यायालय का अधिकर क्षेत्र राज्य रचित एवं परंपरा प्राप्त कानून तथा सामान्य सिद्धान्त (Equity) दोनों ही होंगे, उन स्थितियों में जो इस संविधान में संयुक्त राज्य के कानूनों तथा संयुक्त राज्य द्वारा की गयी अथवा की जाने वाली सन्धियों के अनुसार उत्पन्न होगी।

नोट

राजदूतों, काउन्सलों तथा अन्य राज्य प्रतिनिधियों से सम्बन्धित मुकदमे, जल सेना तथा सामुद्रिक अधिकार क्षेत्र सम्बन्धी सभी प्रश्नों में उन सब स्थितियों में जहाँ संयुक्त राज्य एक पक्ष होगा, संयुक्त राज्य के दो या दो से अधिक राज्यों के पारस्परिक विवादों में, विभिन्न राज्यों के नागरिकों के पारस्परिक विवादों में तथा एक राज्य अथवा उसे नागरिकों और विदेशी राज्यों तथा नागरिकों के पारस्परिक विवादों में संघीय न्यायपालिका को निर्णय करने का अधिकार होगा।

उपर्युक्त अनुच्छेद के अनुसार सर्वोच्च न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत निम्नलिखित मुकदमे आते है–

(1) संविधान विधियों और संधियों से सम्बन्धित मुकदमें (Cases arising under the constitution laws and treaties),

(2) राजूदतों, राजनीतिक अधिकारियों और वाणिज्य दूतों से सम्बन्धित मुकदमें (Case affecting ambassadors, other public ministers and consults)

(3) नाविक मुकदमें (Admiralty Cases)

(4) ऐसे मुकदमें जिनमें संयुक्त राज्य अथवा कई एककों राज्य एक पक्ष के रूप में विवादग्रस्त हों (Bases in which the United state is party)

(5) विभिन्न एककों के बीच विवाद (Controversis between citizens of different states)

सुविधा के दृष्टिकोण से सर्वोच्च न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र तथा कार्यो का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है–

(क) प्रारम्भिक अथवा मौलिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction)

(ख) पुनर्विचारक क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction)

(ग) न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार (Power of Judicial Review)

(घ) संविधान तथा नागरिक अधिकारों का सरंक्षण (Custodian and Guardian of the Constitution) एवं

(ड) अन्य अधिकार (Miscellaneous)

(क) प्रारम्भिक अधिकार–क्षेत्र : संविधान सर्वोच्च न्यायालय को प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र देता है। यद्यपि कांग्रेस इस अधिकार क्षेत्र को घटा–बढ़ा नहीं सकती है, फिर भी इन्हीं विषयों पर वह दूसरे न्यायालय को अधिकार प्रदान कर सकती है। संविधान निम्न दो विषयों पर सर्वोच्च न्यायालय को प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र प्रदान कर सकता है।

(1) ऐसे मामले जिसका सम्बन्ध राजदूतों, वाणिज्य–दूतों अथवा अन्य प्रकार के विदेशी राज्यों के प्रतिनिधियों से हो। आधुनिक युग में ऐसे झगड़े राष्ट्रीय न्यायालय में कम उठाये जाते हैं क्योंकि ये अन्तर्राष्ट्रीय विधि तथा प्रथाओं के अन्तर्गत आते हैं।

(2) ऐसे मामले जिनमें एक पक्ष संयुक्त–राज्य संघ में सम्मिलित कोई राज्य हो अर्थात् ऐसे झगड़े जिनमें दो से अधिक राज्य शामिल हों, संयुक्त–राज्य पर मुकदमा किया हो या एक–से अधिक राज्यों ने संयुक्त राज्य पर मुकदमा किया हो।

(ख) पुनर्विचारक अधिकार क्षेत्र : अमरीकी संविधान के अनुसार प्रारम्भिक क्षेत्र के विषयों को छोड़कर अन्य सभी विषयों पर सर्वोच्च न्यायालय का अपील अधिकार–क्षेत्र होगा। लेकिन कांग्रेस इस अधिकार–क्षेत्र में परिवर्तन ला सकती है उसे घटा या बढ़ा सकती है। इस अधिकार के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय, राज्य न्यायालय तथा निम्न संघीय न्यायालय के विरूद्ध अपील सुनता है। वह उत्प्रेषण के रिट (Writ of Certioral) द्वारा राज्य के न्यायालयों से ऐसे सभी मामलों को अपने विचार के लिए मंगवा सकता है जिसमें संविधान की किसी व्यवस्था या संधि की व्याख्या का प्रश्न निहित हो। राज्य न्यायालयों से अपील की सुनवाई तभी होती है जब राज्य के उच्च न्यायालय ने संघ के किसी कानून या संधि के विरूद्ध निर्णय दिया हो या संघीय विधि तथा संधि के प्रतिकूल किसी राज्य–विधि को वैध घोषित किया हो। निम्न संघीय न्यायालयों के विरूद्ध अपील तभी सुनी जाती है जब उनके द्वारा राज्य विधि इस आधार पर अवैध घोषित कर दी गयी हो कि उसमें संविधान, कानून या सन्धि का उल्लंघन हो रहा है। 1936

नोट

ई० में यह नियम बना दिया गया कि असंवैधानिकता के आरोप पर सर्वोच्च न्यायालय सिर्फ 3000 डॉलर से अधिक क्षतिग्रस्त मामले की ही अपील सुनेगी। इस प्रकार अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय केवल सांविधानिक महत्त्व के प्रश्नों से सम्बन्धित अपीलें सुनता है।

(ग) न्यायिक पुनर्विलोकन: संयुक्त-राज्य के सर्वोच्च न्यायालय का सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकार न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार है। इस अधिकार के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय संघीय कांग्रेस तथा राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा बनायी गयी विधियों की संविधानिकता पर विचार करता है। तथा उन्हें वैध या अवैध घोषित करता है। इस वैधता का निर्णय दो कसैटियों के आधार पर होता है। प्रथम, राज्य विधानमण्डल को संविधान के अनुसार उस कानून-विशेष को निर्मित करने का अधिकार है या नहीं। द्वितीय कानून विधि की उचित प्रक्रिया (due process of law) द्वारा बनाया गया है या नहीं। अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय ने इस शक्ति का व्यापक प्रयोग किया है तथा संविधान को परिवर्तित कर दिया है। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय को भी सीमित अंश में न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार प्राप्त है।

(घ) संविधान का संरक्षक तथा अविभावक: संयुक्त-राज्य का सर्वोच्च न्यायालय अमरीकी जनता के अधिकारों, स्वतन्त्रताओं तथा संविधान का सरंक्षक (Protector) एवं संघीय व्यवस्था का अभिभावक (guardian) है। वह निर्देश, आदेश, परमादेश, लेख प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा, उत्प्रेषण इत्यादि द्वारा नागरिकों के मूल अधिकारों तथा सांविधानिक ढाँचे की रक्षा करता है। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय भी नागरिक अधिकारों का संरक्षक तथा संविधान का अभिभावक है।

(ड) अन्य अधिकार: सर्वोच्च न्यायालय अन्य छोटे-छोटे कार्यों को भी करता है। उसे अनेक प्रशासकीय कार्यो को करना पड़ता है। न्यायालय के निम्न कोटि के कर्मचारियों, जैसे-किरानी, सन्देश-वाहक, स्टेनोग्राफर आदि की नियुक्ति न्यायालय स्वयं करता है। न्यायालय दीवानी तथा फौजदारी कार्य-विधियों का निर्देशन करता है। सर्वोच्च न्यायालय का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य अपनी आज्ञाओं को लागू करना है। आदेश (Writs) के माध्यम से इस कार्य को किया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय के कार्यों के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि उसे परामर्श देने का अधिकार नहीं है, जो अधिकतर भारतीय सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के विकास में सहयोग भी दिया है। उसे 'अविच्छिन्न सांविधानिक सम्मेलन' (continuous Constitutional Convention) की संज्ञा दी जाती है।

प्रारम्भ में सर्वोच्च न्यायालय एक कमजोर निकाय था। लेकिन आज यह बहुत महत्त्वपूर्ण तथा शक्तिशाली संस्था बन गयी है। परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन तथा आधुनिकीकरण सर्वोच्च न्यायालय की सबसे बड़ी विशेषता है। हरिकन ने सर्वोच्च न्यायालय के विषय में कहा है कि "यह अनेक बातों में अमरीकी राजनीतिक पद्धति में सर्वाधिक शक्तिशाली तत्व तथा विश्व में सबसे न्यायिक संगठन है।" **मुनरो** का कथन है कि "अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति इतनी अधिक है जितनी दुनिया के और किसी न्यायालय ने बहुत ही कम प्रयोग किया है"। फाइनर ने सर्वोच्च न्यायालय को "संविधान में राजनीति-शास्त्र को दी गयी एक सबसे मौलिक और सबसे अमरीकीपन ली हुई देन कहा है। यह वह सिमेंट है जिसने समस्त संघीय ढाँचे को दृढ़ता से जोड़ रखा है"।

न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review)

अर्थ: संविधानवाद (Constitutoinalism) को अमरीकी संविधान निर्माताओं की कई मौलिक देने हैं। उनमे प्रमुख दो से है। (1) नियंत्रण और संतुलन का सिद्धात (Principles of Cheeks and balance) तथा (2) संविधान की सर्वोच्चता। सर्वोच्च न्यायालय को संविधान द्वारा एक महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपा गया कि वह विधायिका तथा कार्यपालिका को नियंत्रण करे। चूँकि संविधान का उल्लंघन तो नहीं कर रहे है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय को 'संविधान का संरक्षक तथा अभिभावक' (Custodian and guardian to the consitituton) बना दिया गया है। इस अधिकार के अन्तर्गत यदि किसी राज्य के विधानमण्डल द्वारा निर्मित कोई कानून, संघीय कानून, संघीय संविधान अथवा संयुक्त राज्य द्वारा की गयी संधि के प्रतिकूल हो संघीय न्यायालय उसे अवैध घोषित कर सकती है। इसी प्रकार यदि संघीय कांग्रेस किसी ऐसी विधि का निर्माण करे जो संविधान के प्रतिकूल है या कार्यपालिका कोई ऐसा आदेश दे जो संविधान के उपबन्ध का उल्लंघन करता है तो सर्वोच्च न्यायालय उस विधि या आदेश को अवैध घेषित करता

नोट

है। न्यायालय के इसी आधिकार को न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार कहते है। डिमॉक ने न्यायिक पुनर्विलोकन की परिभाषा इन शब्दों में दी है–न्यायिक पुनर्विलोकन विधानपालिका द्वारा निर्मित कानून और कार्यपालिका या प्रशासकीय आधिकारियों द्वारा किये गये कार्यों से सम्बन्धित अपने समक्ष आये मुकदमों में न्यायालय द्वारा परीक्षण को कहते हैं जिसके अन्तर्गत वे निर्धारित करते हैं कि वे कानून या कार्य संविधान द्वारा प्रतिबन्धित है या नहीं अथवा संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों का अतिक्रमण करते हैं या नहीं। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार सिर्फ सर्वोच्च न्यायालय को ही प्राप्त नहीं है, बल्कि अन्य संघीय न्यायालयों को दिया गया है।

उत्पत्ति: संविधान में ऐसा कोई उपबंध नहीं है जो संघीय न्यायपालिका को स्पष्टत: न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार प्रदान करता हो; लेकिन इसकी उत्पत्ति का स्रोत संविधान के उपबन्धों में निहित मिलता है तथा संविधान–निर्माताओं की इच्छा से प्रकट होता है । संविधान राष्ट्रीय सर्वोच्चता (National Supermacy) के सिद्धान्त को मान्यता देता है जिसके अनुसार राष्ट्रीय संविधान के विपरीत या अन्य किसी भी कार्य को वैधिक मान्यता नहीं दी जायेगी। संविधान की धारा 6 खण्ड 8 में कहा गया है कि संविधान और इसके अन्तर्गत निर्मित संयुक्त राज्य में न्यायाधीश उन्हे मानने के लिए बाध्य होंगे, उनसे असंगत राज्य के संविधान या विधियों को नहीं। संविधान के उपबन्धों के अतिरिक्त संविधान–निर्माताओं तथा विधि–वेत्ताओं ने भी संघीय न्यायालय की इस शक्ति का समर्थन किया है । हेमिल्टन ने **'फेडरलिस्ट'** में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि विधि का निर्वाचन न्यायालयों का मुख्य और विशेष कर्त्तव्य है। बियर्ड की सर्वोच्च न्यायालय और संविधान (The Supreme court the constitution) फिलाडेल्फिया–सम्मेलन के प्रतिनिधियों के विचारों का विश्लेषण करने के बाद इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है। मुख्य न्यायाधीश मार्शल इस सिद्धांत के सबसे बड़े समर्थक तथा प्रतिपादक हो गये हैं। उन्होंने न्यायिक पुनर्विलोकन के सिद्धांत का प्रतिपादन ही नहीं किया, बल्कि उसे अमरीकी न्यायव्यवस्था की एक अचल तथा अटल परम्परा बना दिया। उन्होंने 1803 ई. मे प्रसिद्ध **मारबरी बनाम मैडिसन** (Marbury Vs. Madison) नामक मुकदमे को निर्णय देते हुए बताया कि संविधान समस्त देश की सर्वोच्च विधि है और न्यायधीशों का यह प्रमुख कर्त्तव्य है कि वे उसी के अनुरूप निर्णय दें। जब कभी काँग्रेस द्वारा पारित कोई अधिनियम या संविधि देश की सर्वोच्च विधि अर्थात संविधान के विरूद्ध हो तो न्यायालय का यह स्पष्ट कर्त्तव्य हो जाता है कि वह संविधान को प्रथम स्थान दें।

न्यायिक पुनर्विलोकन का प्रभाव (Effects of Judicial Review): न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति एक साधारण शक्ति नहीं है, बल्कि अमेरिका के राजनीतिक जीवन पर इसका पर्याप्त संवैधानिक प्रभाव पड़ा । सर्वोच्च न्यायालय अमरीकी संविधानिक पद्धति का संरक्षक ही नहीं है वस्तुत: इसने संविधान को परिवर्तित किया है तथा समय के अनुसार उसे नयी दिशा प्रदान की है। इस शक्ति के आधार पर ही सर्वोच्च न्यायालयों ने न्यायिक सर्वोपरिता (Judicial Supremacy) के सिद्धांत को अधिष्ठित किया है। 14वें संशोधन के अन्तर्गत कानून की उचित प्रक्रिया (due process of Law) उपबंध की व्याख्या इसने इस तरह की कि प्रो0 कोरवीन के शब्दों में राज्य के कानून को निषिद्ध करने की इसे स्वविवेक शक्ति मिल गयी। इस प्रकार न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार ने कांग्रेस और राज्य विधानमण्डलों की तुलना में सर्वोच्च न्यायालय को दृढ़ बनाया। इस अधिकार का द्वितीय संविधान प्रभाव यह था कि राज्य की तुलना में संघ की स्थिति दृढ़ हो गयी। मैकुलोच बनाम मेरीलैंड, 1819 ई. (Mc. Culloch Vs. Maryland) में सर्वोच्च न्यायालयों ने काँग्रेस का राज्य–विधान के विरूद्ध बैंक की स्थापना करने का अधिकार प्रदान किया, यद्यपि संविधान में काँग्रेस को ऐसा स्पष्ट अधिकार प्राप्त नहीं है। गिब्बन्स बनाम ऑगडेन, 1824 ई. (Gibbons Vs. Ogden) में सर्वोच्च न्यायालय ने काँग्रेस को नियमित करने का पूर्ण अधिकार दिया। ब्राउन बनाम मेरिलैंड (Brown Vs.Maryland) 1827 ई. के निर्णय के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय ने वैदेशिक व्यापार को संचालित करने का अधिकार राष्ट्रीय सरकार को दिया। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने व्यापार, वाणिज्य और वित्त के क्षेत्र में राष्ट्रीय सरकार के हाथ को बहुत दृढ़ बना दिया है। इसके साथ–साथ न्यायिक पुनर्विलोकन द्वारा राज्य के अधिकार की रक्षा करने में भी सहायता प्रदान की गयी है। ट्रेड स्कॉट बनाम सेनफेर्ड, 1857 ई. (Tred Scott Vs. Sanford) में सर्वोच्च न्यायालय ने काँग्रेस के कानून को अवैध घोषित किया और मिसरी राज्य के अधिकार के अन्तर्गत सार्वजनिक सुरक्षा, जन–कल्याण, स्वास्थ्य, नैतिकता आदि सामाजिक विषय आते हैं, इनके सम्बन्ध में सर्वोच्च

नोट

न्यायालय ने एक रूप नीति नहीं अपनायी। मुन बनाम लिनोइस 1877 ई. (Munn Vs. llinois) में उसने अलिनोइस राज्य की विधि को वैध घोषित किया और लोचनर-बनाम न्यूयार्क, 1905 ई. (Lochner Vs. Newyork) में काम के समय को प्रतिदिन दस घंटे सीमित कर देने के कानून को अवैध करार दिया। सामाजिक विधान-क्षेत्र में संघीय सरकार के अधिकार को भी न्यायिक पुनर्विलोकन ने प्रभावित किया है और यहाँ भी सर्वोच्च न्यायालय का दृष्टिकोण सदा एक समान नहीं रहा है। एक ओर तो उसने कांग्रेस को कर लगाने तथा वाणिज्य को नियमित करने की छूट दी और दूसरी ओर कई सामाजिक तथा आर्थिक विधियों को रद्द कर दिया। हैंमर बनाम डेजनहर्ट, 1913 ई (Hummer Vs. Dsagenhert) में सर्वोच्च न्यायालय ने कांग्रेस के एक कानून को अवैध घोषित किया जिसके द्वारा उसने बच्चों के श्रम से उत्पादित वस्तुओं को वाणिज्य से निष्काषित करने की चेष्टा की। फिर 1922 ई. में बेली बनाम ड्रक्सेल फर्नीचर कम्पनी (Bailve Vs. Drexel Furniture Company) नामक मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने बच्चों के श्रम को उन्मूलित करने के प्रयास को विफल किया। सामाजिक-आर्थिक विधायन को विफल करने के सर्वोच्च न्यायालय की प्रवृत्ति 1893-1896 ई. में शीर्ष पर पहुँच गयी, जब उसने आर्थिक संकट को दूर करने के उद्देश्य से निर्मित, 13 कानून को अवैध घोषित किया, जिनमें राष्ट्रीय औद्योगिक पुनर्जीवन अधिनियम (Natioanl industrial Recovery Act) और कृषि समन्वय अधिनियम (Agricultural Adjustment) प्रमुख थे। सर्वोच्च न्यायालय के पुनर्विलोकन के अधिकार के विरुद्ध आन्दोलन उठ खड़ा हुआ लेकिन 1937 ई. के बाद सर्वोच्च न्यायालय के रुख में महान परिवर्तन हुआ और उसने उदास दृष्टिकोण अपनाया।

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार के कार्यकरण के विवरण से उसकी महत्त्व साफ हो जाती है न्यायाधीशों ने केवल संविधान की आत्मा तथा भाषा का ही निर्वाचन नहीं किया है बल्कि उन्होंने नीतियों का भी निर्धारण किया है। उन्होंने संविधान में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है। तथा उसे नयी दिशा प्रदान की है अत: इन्हें संविधान का नया निर्माता (New makers of the Constitution) कहा गया है। जस्टिस हाजू ने ठीक कहा है कि अमरीकन जनता संविधान के अधीन अवश्य रहती है। संविधान वही है जो न्यायाधीश कहते हैं। जस्टिस फ्रैंक ने तो यहाँ तक कहा है कि ''सर्वोच्च न्यायालय संविधान है।"

न्यायिक पुनर्विलोकन की आलोचना (Criticism of Judicial Review): संघीय न्यायालयों के न्यायिक पुनर्विलोकन के विपक्ष में अनेक तर्क दिये जाते हैं-

(i) **उचित कार्यों से दुराव:** कुछ आलोचकों का कहना है कि न्यायिक पुनर्विलोकन अधिकार के चलते सर्वोच्च न्यायालय अपने मौलिक कार्यों को करना भूल गया। वह विवादों का निपटारा नहीं करता है, बल्कि उसका मुख्य काम सामाजिक तथा राजनीतिक नीतियों के निर्धारण में हाथ बंटाना हो गया उसने विधानपालिका के कार्यों को अपना लिया है जिसके चलते जनता की प्रतिनिधि सभा जनता की इच्छा को स्वतंत्र रूप से व्यक्त नहीं कर सकती है। वह जनता की सामान्य इच्छा (General will) को विधि के रूप में स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्त नहीं कर सकती है। उसके कार्यों को न्यायपालिका ने हथिया लिया है जो प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था का स्वस्थ चित्र नहीं है। **ब्रोगन** (Brogan) ने ठीक ही कहा है कि सर्वोच्च न्यायालय कार्यपालिका तथा विधानपालिका के कार्यों को एक तृतीय सदन के रूप में नियंत्रित करने लगा।

(ii) **संकीर्ण न्यायाधीश:** न्यायाधीशों को दलीय विचारधाराओं से ऊपर रहना चाहिए। उन्हें सदा सचेत रहना चाहिए कि उनका व्यक्तिगत या सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टिकोण न्याय-सम्बन्धी निर्णय को प्रभावित करे। उन्हें निष्पक्ष तथा स्वतंत्र होना चाहिए और जहाँ तक सम्भव हो वैधिक दृष्टिकोण को अपनाना चाहिए। लेकिन अमेरिका के न्यायाधीशों के विरुद्ध यह कहा जाता है कि उनकी नियुक्ति दल विशेष के अधीन पर होती है तथा उनके निर्णय विशेष राजनीतिक तथा सामाजिक विचारधाराओं से प्रभावित होते है। अत: सर्वोच्च नयायालय का निर्णय कभी उदार होता, तो कभी संकीर्ण, कभी संघ के पक्ष मे तो कभी राज्य के। **बी. गेत्स** का कहना है कि न्यायाधीशों के विचार उसी प्रकार परिवर्तनशील है, जिस प्रकार नकली सिल्क के रंग परिवर्त्तनशील हैं। वे राजनीतिक धूप के कारण शीघ्र बदल जाते हैं।

(iii) **सकारात्मक राज्य के विरुद्ध:** बहुत से आलोचकों का मत है कि न्यायिक पुनर्विलोकन की प्रणाली आधुनिक सामाजिक तथा आर्थिक सभाओं के लिए अनुपयुक्त है। न्यायाधीश प्राय: सर्व सम्पन्न वर्ग के होते हैं। वे निहित स्वार्थों

नोट

का संरक्षण करते हैं। फलत: प्रगतिशील तथा लोकतंत्रात्मक विरोधियों का विरोध करते हैं। इससे सकारात्मक राज्य का विकास नहीं हो पाता। **लोस्की** ने इस आलोचना का जोरदार समर्थन किया।

(iv) **असावधान तथा अनुत्तरदायी कांग्रेस:** सर्वोच्च न्यायालय पुनर्विलोकन के आधार पर कांग्रेस-सदस्यों द्वारा कड़े परिश्रम के बाद पारित विधि को नष्ट कर देता है। फलत: जनता के प्रतिनिधियों के प्रयास का कोई साकार फल नहीं निकल पाता। अत: कानून निर्माण के सम्बन्ध में सावधानी नहीं बरतते तथा वे अपने उत्तरदायित्व को महसूस नहीं करते। फिर वे निश्चित रूप से अपने राजनीतिक लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल हो जाते है।

(v) **कृत्रिम तथा शिथिल कांग्रेस :** न्यायिक पुनर्विलोकन के कारण देश का योजनाबद्ध विकास नहीं हो पाता है तथा राजनीतिज्ञ अपने लक्ष्य को निश्चित नहीं कर पाते हैं। फलत: उनके कार्य में एक प्रकार की कृत्रिमता एवं शिथिलता आ जाती है। व्यापक सुधार योजना लागू नहीं कर पाते हैं, केवल साधारण परिवर्तनों से उन्हें संतोष करना पड़ता है।

पक्ष में तर्क : यदि एक ओर न्यायिक पुनर्विलोकन की कठोर आलोचना की गयी है तो दूसरी ओर उसका जोरदार समर्थन भी किया गया–

(i) **संविधान का संरक्षक :** प्रजातंत्रात्मक राज्य में एक स्वतंत्र तथा निष्पक्ष न्यायपालिका का होना आवश्यक है जो संविधान का संरक्षण कर सके। अमरीकी संविधान में इस तरह के स्वतंत्र तथा निष्पक्ष अधिकारी की आवश्यकता को विशेष रूप से महसूस किया गया है। अधिकार पृथक्करण, संघ तथा राज्य के बीच अधिकार-विभाजन एवं नागरिक स्वतंत्रता से सम्बन्धित उपबंधों को लागू करने के लिए न्यायिक पुनर्विलोकन के साधन से सुसज्जित न्यायपालिका अमेरिका के राजनीतिक जीवन के लिए अत्यावश्यक है। सर्वोच्च न्यायालय को संविधान का अभिभावक तथा संरक्षक (Guardian and Custodian of the Constitution) कहना अनुचित नहीं होगा।

(ii) **संघ और राज्यों पर नियंत्रण :** न्यायिक पुनिर्विलोकन की व्यवस्था आवश्यक हो गयी है, क्योंकि संघ तथा राज्यों की एक-दूसरे से रक्षा आवश्यक है। यदि संघ तथा राज्यों को नियंत्रित न किया जाय तो संघीय व्यवस्था को खतरा पहुंचने का भय है।

(iii) **संविधान का विकास:** न्यायिक पुनर्विलोकन के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के विकास में सहयोग पहुँचाया है। संविधान संशोधन की प्रक्रिया इतनी जटिल है कि साधारणत: उसके द्वारा संविधान में परिवर्तन करना अत्यंत कठिन है। अत: इस कार्य के लिए अन्य साधनों को अपनाया गया है। न्यायिक पुनर्विलोकन इन साधनों में सर्वप्रमुख है, जिसके द्वारा समय और आवश्यकता के अनुसार न्यायपूर्ण परिवर्तन लाया गया है। सच पूछा जाय तो, जैसा कि डूबी ने कहा है सामान्यत: सर्वोच्च न्यायालय निर्वाचन के निर्णय का ही अनुसरण करता है। अत: यह कहना गलत है कि न्यायिक पुनर्विलोकन की व्यवस्था अप्रजातांत्रिक तथा प्रतिक्रियावादी है।

वर्तमान स्थिति: वर्तमान काल में न्यायिक पुनर्विलोकन की स्थिति में काफी परिवर्तन हो गया है। प्रारम्भ में न्यायाधीशों की प्रवृति प्रतिक्रियावादी थी। विधायिका के क्षेत्र में हस्तक्षेप करने के आदि हो गये थे लेकिन आजकल प्रवृत्ति यह है कि कांग्रेस के विधान क्षेत्र में कम-से-कम हस्तक्षेप किया जाय। अत: विधान के क्षेत्र में सर्वोच्च न्यायालय ने कांग्रेस का नेतृत्व को स्वीकार कर लिया है और न्यायाधीश डगलस की राय में न्यायिक सर्वोच्चता की स्थिति अब समाप्त हो गयी।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the blanks) –

1. अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय में वर्तमान में ..... और ..... सहन्यायाधीश हैं।
2. संयुक्त राज्य अमरीका में न्यायाधीशों का कार्यकाल ..... है।
3. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का वेतन ..... द्वारा निर्धारित किया जाता है।
4. अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय का सत्र प्रतिवर्ष ..... के प्रथम सोमवार से प्रारम्भ होता है।
5. न्यायिक पुनर्विलोकन ने अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय को ..... बना दिया है।

नोट

9.2 यू.के, रशिया, फ्रांस की न्यायिक व्यवस्था और स्विट्जरलैण्ड की संघीय न्यायिक व्यवस्था (Judicial System of U.K, Russia, France and Federal Judiciary of Switzerland)

ब्रिटिश न्यायिक व्यवस्था (The British Judicial System)

इंग्लैंड में कानून की अवधारणा (The English Concept of Law)

दो महान वैधिक पद्धतियाँ : मानव इतिहास में विधि की अनेक पद्धतियाँ हैं, लेकिन उनमें से दो सर्वप्रधान हैं- रोमन की असैनिक विधि (Civil Law) और इंग्लैंड की सामान्य अथवा सार्वजनिक विधि (Common Law) विश्व के किसी भी देश की न्यायिक व्यवस्था इन दो पद्धतियों से अछूती नहीं है। महादेशीय यूरोप, लैटिन अमेरिका के प्रजातन्त्र, दक्षिण अफ्रीका, जापान आदि देश रोम की न्यायिक विचारधारा से प्रभावित हुए हैं जबकि आयलैंड, संयुक्त-राज्य अमेरिका, सामुद्रिक ब्रिटिश उपनिवेश, इंग्लैंड की सामान्य विधि के प्रभाव क्षेत्र में आते हैं। **मुनरो** ने कहा भी है कि "विश्व के अधिकतर भाग की यात्रा उन देशों से बिना गुजरे की जा सकती है। जो इंग्लैंड या रोम की विधियों को आदर नहीं करते।"

आवश्यक है कि एक न्यायाधीश को उसकी स्थिति एवं गौरव के अनुरूप निश्चित और पर्याप्त वेतन मिले। हैमिल्टन ने बहुत ठीक लिखा है कि "यह मानव-स्वभाव है कि जो मनुष्य अपनी आजीविका की दृष्टि से शक्ति-सम्पन्न है उसके पास संकल्प का भी बड़ा बल होता है।" अत: न्यायपालिका की स्वतन्त्रता एवं निष्पक्षता के लिए न्यायाधीशों के लिए अच्छे वेतन का होना भी अनिवार्य है। साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि उनके वेतनों में उनके पदावधि-काल में परिवर्तन नहीं हो।

न्यायिक पुनर्विलोकन का सिद्धांत (Theory of Judicial Review): न्यायिक पुनर्विलोकन एक ऐसा सिद्धान्त है जिसका देश के राजनीतिक जीवन पर निर्णायक संवैधानिक प्रभाव पड़ता है। यह न्यायपालिका की वह शक्ति है जिसके द्वारा विधायिका या कार्यापालिका के निर्णयों को अवैध या गैर संवैधानिक घोषित करने का अधिकार है। इस शक्ति के अन्तर्गत न्यायालय संविधान की व्याख्या करते हैं। मुख्य रूप से संघात्मक संविधानों में न्यायपालिका को इन शक्तियों से विभूषित किया जाता है।

सिद्धान्तत: न्यायिक पुनर्विलोकन सिद्धान्त की परिभाषा विभिन्न रूप से विद्धानों द्वारा दी गयी है। फरग्यूसन और मैकहेनरी ने इसकी परिभाषा देते हुए कहा है कि न्यायिक पुनर्विलोकन न्यायालय की वह शक्ति है जो किसी भी कानून या सरकारी कार्य को अवैध घोषित कर सकती है यदि वह समझे कि यह मौलिक कानून या संविधान के विपरीत है। प्रो० एच० जे० अब्राहम ने न्यायिक पुनर्विलोकन को परिभाषित करते हुए लिखा है कि यह न्यायालय की एक ऐसी शक्ति है जो किसी भी कानून या सरकारी कार्य को असंवैधानिक घोषित कर सकती है और इसके प्रयोग को रोक सकती है तथा किसी भी सरकारी अधिकारी के अवैध कार्य को गैर-कानूनी घोषित कर सकती है, यदि मौलिक कानूनों से वे भिन्न हों।" बिटेनिका विश्व-कोष ने न्यायिक पुनर्विलोकन की परिभाषा देते हुए लिखा है कि न्यायलायों द्वारा किसी देश में न्यायिक पुनर्विलोकन वह शक्ति है जिसके द्वारा वह विधायी कार्यपालिका और प्रशासकीय कार्यों का परीक्षण करती है और वह देखती है कि ऐसे कार्य संविधान के प्रावधानों के अनुकूल हों और यदि वे ऐसा नहीं होते तो उन्हें अवैध और अप्रभावी घोषित करने का अधिकार उन्हें है। न्यायिक पुनर्विलोकन सिद्धान्त का अस्तित्व लिखित संविधान में देखा जा सकता है।

नोट्स सामान्यत: न्यायिक पुनर्विलोकन का सिद्धांत संघात्मक संविधान में पाया जाता है जिसमें विधायी शक्तियों का केन्द्र और इकाइयों में विभाजित होता है, नागरिकों के मूल अधिकार होते हैं और विधि-निर्मात्री शक्ति पर अंकुश लगा होता है।"

नोट

अंग्रेजों की विधि व्यावहारिक धारणा : मैग्नाकार्टा के बाद अँगरेजों ने "विधि के शासन" (Rule of Law) में विश्वास किया। इसके अलावा इन लोगों ने विधि की एक निश्चित पर साधारण धारणा बनायी है। साधारणत: इतिहास ने विधि की दो धाराणाओं को जन्म दिया। प्रथम विधि के सम्प्रभु की आज्ञा और द्वितीय विधि विवेक की उपज। लेकिन, अँगरेजों ने विधि के व्यावहारिक रूप को स्वीकृत किया कि विधि सिद्धान्त और नियम है जो न्यायालयों द्वारा स्वीकृत तथा लागू किया जाय। अन्य सिद्धांत या आदर्श जिन्हें भविष्य में लागू किया जा सकता है, प्रथा भले ही हो सकती है, लेकिन विधि नहीं।

विधि के प्रकार (Kinds of Law): इंग्लैंड में तीन प्रकार की विधियाँ प्रचलित हैं- (क) सार्वजनिक या सामान्य विधि (Common Law), (ख) न्याय-भावना अथवा अपक्षपात-विधि (Equity) और (ग) संविधि अथवा परिनियम (Statute Law)।

(क) सार्वजनिक या सामान्य विधि: सामान्य विधि (Common Law) के जन्म की अपनी कहानी है। 800 वर्ष पूर्व की बात है। नार्मन राजाओं की विजय के पूर्व इंग्लैंड में एकरूप न्याय-व्यवस्था नहीं थी। नार्मन तथा एँजविन राजाओं ने इस कमी को महसूस किया। राष्ट्र के एकीकरण तथा राजतन्त्र को प्रभावी बनाने में उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। अत: इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन्होंने न्यायिक शक्ति को हथियार बनाया। न्यायधीशों को देश-भ्रमण के लिए भेजा जाने लगा। प्रथमत: स्थानीय प्रथाओं के आधार पर निर्णय दिया जाता था लेकिन धीरे-धीरे स्थानीय प्रथाओं का महत्त्व जाता रहा और सभी स्थानों पर समान सिद्धान्तों के अनुसार न्याय-व्यवस्था को जन्म दिया जो समस्त देश अथवा राज्य के लिए समान अथवा सार्वजनिक थी। इस प्रकार सामान्य विधि का जन्म हुआ। सामान्य विधि उन नियमों का सूमह है जिनको कभी किसी राजा ने निर्दिष्ट नहीं किया और न किसी विधानमंडल ने। इसके निर्णयों का अभिलेखों के आधार पर विकास हुआ। पूर्वभाषियों (Precedents) पूर्व नियमों (State Law) का यह संकलन है। जब कोई न्यायाधीश सार्वजनिक विधि के संबंध में कोई निर्णय दे देता है तो उक्त निर्णय नियम की तरह स्वीकार किया जाता है जब तक कोई उच्च न्यायालय उसे रद्द न कर दे। संक्षेप में, सामान्य विधि न्यायधीशों द्वारा व्याख्या किये गए परम्परागत व्यावहारों एवं रूढ़ियों का समूह-मात्र है। बाद में ग्लैनविल, ब्रैक्टन, कुक ब्लैंकस्टोन आदि व्याख्याकारों ने इसका क्रमबद्ध रूप से संकलन किया तथा व्याख्या की।

(ख) परिनियम विधि अथवा संविधि: सामान्य विधि के साथ-साथ परिनियम विधि या संविधि (Statute Law) का भी विकास हुआ। सामान्य विधि विकसित विधि थी, जबकि संविधि निर्मित विधि सदियों तक सम्राट के सहयोग से विधियों का निर्माण करता था। इन्ही विधियों को संविधि कहते हैं। पहले इसकी संख्या नगण्य थी। लेकिन धीरे-धीरे ये विधि का प्रमुख स्त्रोत बन गयी। आज इनका क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। यह सामान्य विधि का निषेध नहीं करती, बल्कि उसे लचीला बना देती है तथा उसकी कमियों को पूरा करती है। संविधि अन्तिम आज्ञा है।

(ग) न्याय-भावना अथवा अपक्षपात विधि: सामान्य विधि की बंजर भूमि पर न्यायभावना अथवा अपक्षपात-विधि (Equity) की नींव पड़ी। धीरे-धीरे सामान्य विधि समयानुकूल न रह गयी और अनेक मामलों में वह लागू न होने लगी। इसके अलावा समय की अस्थिरता के कारण एक विधि की आवश्यकता हुई जो प्राविधि (Technical) न हो तथा देर न लगे। इस पृष्ठभूमि पर अपक्षपात विधि की उत्पति हुई और सामान्य विधि की अनेक त्रुटियाँ दूर हुई । अब हम देखेंगे कि इसका विकास कैसे हुआ। चूँकि राजा न्याय का सबसे बड़ा अधिकारी समझा जाता था इसलिए जिन व्यक्तियों को दीवानी अदालत से उचित न्याय नहीं मिलता था वे राजा से न्याय की प्रार्थना करते थे। कार्य-भार की वजह से सम्राट् उन प्रार्थनाओं को चांसलर के पास जो "राजा के सद्विवेक का रखवाला" (Keeper of the king's consceience) था, भेज देता था। चांसलर या उसके सहायक विवेक के आधार पर निर्णय देते थे। इस प्रकार अपक्षपात विधि का जन्म हुआ जिसका आधार प्रथा नहीं बल्कि सद्विवेक था। इस विधि की मान्यता थी कि देश की विधि जाति के सदाचार के अनुरूप और नीति के अनुसार होनी चाहिए" प्रमुख न्यायाधिकारियों (Chancellors) ने, जो बार-बार पीढ़ी-दर-पीढ़ी अनेक निर्णय दिए, उन सब निर्णयों को मिलाकर नियमों का एक समूह बन गया। लेकिन इन दोनों विधियों के अलग-अलग न्यायालय बहुत दिनों तक बने रहे। 1873 ई. में दोनों विधियों के लिए एक न्यायालय हो गया। दोनों विधियों में सामंजस्य पैदा किया गया, लेकिन विरोध के समय न्यायभावना को ऊपर स्थान दिया गया। इस प्रकार न्याय-भावना

नोट

सामान्य विधि से ही पैदा हुई जो उसकी त्रुटियों को दूर करती तथा उच्च कोटि का न्याय देती है। इस पर रोमन विधि का काफी प्रभाव पड़ा। आज इसका क्षेत्र बहुत विशाल हो गया है।

ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था की विशिष्टताएँ (Features of the British Judicial System)

(i) एकरूपता का अभाव : ब्रिटिश न्याय व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता है-सम्पूर्ण देश में एकरूपता (Uniformity) का अभाव। पूरे ग्रेट ब्रिटेन में विधि का एक प्रकार का सिद्धांत न्यायालय की एक प्रकार की कार्यप्रणाली तथा संगठन नहीं है। इंग्लैंड और वेल्स में इस प्रकार की न्याय-व्यवस्था है तो स्कॅटलैंड और उत्तरी आयरलैंड में भी पृथक्-पृथक विभिन्न व्यवस्थाएँ हैं।

(ii) प्रशासनिक न्यायालय का अभाव : ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था की दूसरी विशेषता प्रशासनिक का अभाव है। फ्रांस तथा अन्य यूरोपीय दोशों में दो पृथक् विधियाँ तथा न्यायालय हैं। एक सामान्य नागरिकों के लिए तथा दूसरे शासन के अधिकारियों के लिए। लेकिन इंग्लैंड में नागरिकों तथा अधिकारियों में कोई विभेद नहीं है। अधिकारियों के लिए पृथक् प्रशासनिक न्यायालय (Administrative Courts) नहीं हैं। चाहे कोई साधारण नागरिक हो या प्रशासन का अधिकारी, सभी को सामान्य न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना पड़ता है और सबके ऊपर एक सामान्य विधि लागू होती है। लेकिन इंग्लैंड में धीरे-धीरे प्रशासनिक न्याय-व्यवस्था का प्रादुर्भाव हो रहा है।

(iii) इंग्लैंड और वेल्स में न्यायालयों का समन्वय : इंग्लैंड और वेल्स के न्यायालयों में समन्वय हो सकती है, लेकिन यह व्यवस्था सदा से नहीं है दो पीढ़ी पूर्व ब्रिटिश न्यायालयों का संगठन अव्यवस्थित असम्बद्ध तथा अतिवादी था। न्यायालयों की भरमार थी। परिणामत: अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ पैदा होती थी। लेकिन 1773 ई० से 1876 ई० तक अधिनियमों द्वारा न्याय-व्यवस्था में सुधार लाया गया, जिसके फलस्वरूप न्यायिक व्यवस्था में पूर्णता लायी गयी और केन्द्रीय व्यवस्था के संगठन द्वारा अव्यवस्था को दूर किया गया।

(iv) न्यायिक पुनर्विलोकन की प्रथा का अभाव : अमेरिका में संविधान में न्यायालयों को न्यायिक पुनिर्विलोकन (Judicial Review) की शक्ति दी गयी है जो उन्हें संविधान का संरक्षक बना देता है। लेकिन इसके विपरीत इंग्लैंड में सांसद की सर्वोच्चता के कारण न्यायालयों को संसद की विधियों को अवैध घोषित करने की शक्ति नहीं है।

(v) न्यायालयों की स्वतन्त्रता: ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था की एक अन्य विशेषता न्यायालयों की स्वतंत्रता तथा निष्पक्षता है। इंग्लैंड में न्यायाधीश पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। उनकी नियुक्ति क्राउन द्वारा होती है। जीवनपर्यन्त तथा सदाचारपर्यन्त वे अपने पदों पर बने रहते हैं। संसद सदनों की प्रार्थना पर ही उन्हें कार्य-मुक्त किया जा सकता है, उनका वेतन निश्चित है तथा वे न्याय-भावना का पालन करते हैं। इस प्रकार न्यायाधीशों को प्रभावहीन तथा स्वतन्त्र बनाया गया है।

(vi) नागरिक स्वतन्त्रता का संरक्षक : न्यायाधीश नागरिक अधिकार के संरक्षक हैं। इंग्लैंड में न्यायालयों को इस कार्य के लिए जो श्रेय प्राप्त है वे किसी भी अन्य देशों के न्यायालयों को नहीं। मौलिक अधिकारों की सूची या लिखित संविधान स्वतन्त्रता की रक्षा के साधन नहीं है बल्कि विधि का शासन है। न्यायाधीश विधि के शासन के लागू करने के लिए प्रयत्नशीन रहते है।

(vii) जूरी-प्रथा : ब्रिटिश न्यायिक व्यवस्था की एक विशेषता जूरी-प्रथा (Jury System) अथवा अभिनिर्णायकों के रखने की प्रथा है। विधि के शासन की सफलता में अभिनिर्णायकों का बहुत बड़ा हाथ है। वे जनमत तथा मानवता को सदा ध्यान में रखते हैं तथा कभी-कभी न्याय विरूद्ध भी जा सकते हैं या अभियुक्त को दण्ड देना अस्वीकार कर सकते है। जूरी नागरिकों की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए देश के संकुचित तथा कठोर कानूनों पर प्रहार भी करते हैं। ये निष्पक्षता, निडरता, समझदारी के लिए विश्वविख्यात है।

(viii) न्यायालय की प्रवीणता : ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था की अन्तिम, पर महत्त्वपूर्ण विशेषता न्यायालय की प्रवीणता (Efficiency) है। इंग्लैड में न्यायिक कार्यवाही शीघ्र होती है। तथा निर्णय मे देरी नहीं होती। इसके अनेक कारण है। उन आवश्यक सिद्धांतों का अनुसरण किया जाता है जो न्याय व्यवस्था की प्रवीणता के लिए अनिवार्य है जैसे-जूरी प्रथा, खुला न्यायालय, वकील रखने की प्रथा। इसके अतिरिक्त न्यायिक कार्य-विधि स्पष्ट तथा सरल है। न्यायधीशों को वैधानिक परिभाषाओं (Legal Technicalities) के निर्वाचन को पर्याप्त स्वतन्त्रता दी गयी है। फिर न्यायालय की

नोट

कार्य-विधियों (Rules of procedure) का निर्माण संसद की न्यायिक नियम समिति (Judicial Rule Committee) करती है जो विशेषज्ञों की एक समिति है। विशेषज्ञ वैधिक परिभाषाओं तथा न्यायिक नियमों का इस प्रकार निर्माण करते है कि न्याय में शीघ्रता हो। प्रवीणता, दक्षता तथा शीघ्रता के लिए ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था विश्व में सर्वश्रेष्ठ स्थान रखती है।

(ix) वकीलों की प्रथा : वकीलों की दुहरी प्रणाली भी ब्रिटिश व्यवस्था की एक विशेषता है। प्रथम श्रेणी के वकील, जिन्हें सॉलिसिटर (Solicitors) या एटॉर्नी कहा जाता है कानूनी सलाह देते है। द्वितीय श्रेणी के वकील जिनहे बैरिस्टर (Barrister) कहा जाता है, न्यायालय में वादी के समर्थन में सुक्तियाँ पेश करते हैं।

ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था का संगठन (Organisation of the British Judicial System)

फौजदारी और दीवानी न्यायालय : लगभग एक शताब्दी पूर्व ब्रिटिश न्यायालय का कोई सुव्यवस्थित संगठन नहीं था। लेकिन 1873 ई० के बीच अनेक अधिनियम बने और न्यायिक व्यवस्था को संगठिन किया गया। आजकल ब्रिटेन में दो प्रकार के न्यायालय हैं-(1) फौजदारी न्यायालय और (2) दीवानी न्यायालय जिनका संगठन विभिन्न स्तरीय न्यायालयों में किया गया है। फौजदारी न्यायालयों द्वारा सार्वजनिक उल्लंघन के लिए दण्ड दिया जाता है, जैसे-हत्या, चोरी, डकैती धोखेबाजी इत्यादि। दीवानी न्यायालय वे हैं जो नागरिकों के पारस्परिक झगड़ों का निबटारा करते हैं, जैसे सम्पत्ति क्षति या अनाधिकार प्रवेश, मानहानि आदि से सम्बन्धित मामले इत्यादि।

(क) फौजदारी न्यायालय (Criminal Courts)

(*i*) समरी जुरिशडिक्शन का न्यायालय : समरी जुरिशडिक्शन (Summary Juirisdiction) का न्यायालय फौजदारी न्यायालयों में सबसे निम्न स्तर का न्यायालय है। जस्टिस ऑफ दी पीस (Justice of the peace) या वृत्तभोगी मैजिस्ट्रेट मुकदमें की जांच करते हैं। वृत्तिभोगी मैजिस्ट्रेट की नियुक्ति गृहमंत्री और जस्टिस ऑफ दी पीस की नियुक्ति लॉड चांसलर करता है। दोनों के पृथक-पृथक कार्य होते हैं। इन न्यायालयों में छोटे-छोटे अभियोगों पर विचार होता है, लेकिन संगीन अभियोग पर पेटी सेशंस कोर्ट (Court of Petty Sessions) जिसमें दो या दो से अधिक मैजिस्ट्रेट होते हैं द्वारा सुनवाई होती है।

(ii) क्वार्टर सेशन्स का न्यायालय : क्वार्टर सेशन्स (Quarter Sessions) का न्यायालय समरी जुरिशडिक्शन के न्यायालय से ऊपर होता है। इसे काउण्टी न्यायालय (County Courts) भी कहा जाता है, क्योंकि काउण्टी में दो या दो अधिक जज लिये जाते हैं। इसके सभापति को रिकार्डर (Recorder) कहते है। यह न्यायालय कुछ गम्भीर अपराधों के लिए आरम्भिक न्यायालय (Original Court) है। समरी जुरिशडिक्शन से अपीलें इस न्यायालय में आती है।

(iii) एसाइजेज का न्यायालय: क्वार्टर सेशन्स के न्यायालय से ऊपर एसाइजेज (Assizes) के न्यायालय आते हैं। इसमें उच्च न्यायालय के किंग्स बेंच विभाग (King's Bench Divison) के काउण्टियों मे न्याय करने के लिए दौरा पर निकलते हैं। इसमें दो न्यायधीश रहते हैं। इसमें क्वार्टर सेशन्स के न्यायालय से अपील की जाती हैं।

(iv) कोर्ट ऑफ क्रिमिनल अपील : उपर्युक्त न्यायालय के ऊपर कोर्ट ऑफ क्रिमिनल अपील (Criminal appeal) होती है। नीचे के न्यायालय से इसमें अपील की जाती है। यह सर्वोच्च न्यायालय के अंग हैं जिसमें लॉर्ड चीफ जस्टिस तथा किंग्स बेंच विभाग के तीन न्यायाधीश होते हैं। यह मुकदमें को फिर से जाँच-पड़ताल कर सकता है।

(v) लार्ड-सभा: न्यायिक संगठन के सबसे ऊपरी सिरे पर लार्ड-सभा (House of Lords) है जहाँ फौजदारी और दीवानी दोनों प्रकार के मुकदमों की अन्तिम अपील होती है। यह सर्वोच्च न्यायालय है तथा इसमें सिर्फ वैधानिक तथा सार्वजनिक महत्त्व से सम्बन्धित मुकदमों की अपील की जा सकती है।

(ख) दीवानी न्यायालय (Civil Court)

(i) काउन्टी न्यायालय : काउण्टी न्यायालय (County Courts) दीवानी मामलो में सबसे निम्न स्तर का न्यायालय है। 290 पौण्ड से कम मालियत मुकदमे की सुनवाई की योग्यता इसमें होती है। 1846 ई० में संसद अधिनियम के द्वारा इसकी स्थापना की गयी है। पूरे इंग्लैंड और वेल्स को 500 न्यायिक जिलों में बाँट दिया गया है और सभी जिलों को 60 सर्किटों (Circuits) में बाँटा गया है। प्रत्येक जिलों के लिए लॉर्ड चांसलर एक न्यायाधीश की नियुक्ति करता है

नोट

जो सर्किट के प्रत्येक जिला में एक महीना तक न्यायालय की बैठक करता है। यों तो देखने में इस न्यायालय के कार्य बहुत अधिक लगते हैं, लेकिन वास्तव में तीस प्रतिशत मुकदमें ही न्यायाधीश द्वारा सुने जाते हैं। बाकी मुकदमों को रजिस्ट्रार और क्लर्क समझौता आदि करके निबटा देते हैं। काउण्टी न्यायालय की कार्य-प्रणाली बहुत सरल है।

उच्च न्यायालय : यदि मुकदमा की मालियत काउण्टी न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर हो तो उच्च न्यायालय (high Court of Justice) के किसी विभाग में मुकद्दमे की सुनवाई होती है। उच्च न्यायालय 1873 ई० के जुडीकेचर ऐक्ट (Judicature Act) के आधार पर बना है। इसमें लॉर्ड चीफ जस्टिस और 30 अन्य न्यायाधीश होते हैं। इस न्यायालय के तीन विभाग हैं-

(क) किंग्स बेंच डिवीजन (king's Bench Divison)

(ख) चांसरी डिवीजन (Chancery Divison)

(ग) प्रोवेट तलाक और एडमिरल्टी डिवीजन (Probates Divorce and Admirality Divison)

(ii) अपील का न्यायालय: इसके बाद अपील का न्यायालय (Court of Appeal) होता है जिसमें काउण्टी न्यायालयों तथा उच्च न्यायालयों से अपीलें सुनी जाती हैं। इसकी दो तीन डिवीजन होती हैं। कभी-कभी मुकदमें की सुनवाई के लिए समस्त लॉर्ड जस्टिसेज (Lord Justices) एक साथ बैठते हैं। इस न्यायालय में मास्टर ऑफ रॉल्स (Master of Rolls) और आठ लॉर्ड जस्ट्रिस ऑफ अपीलें (Lord Justice of Appeal) बैठते हैं।

(iii) लॉर्ड सभा: अपील के न्यायालय से भी अपीलों को कुछ विशेष शर्तों के अधीन लॉर्ड-सभा में लाया जाता है। लॉर्ड-सभा समस्त देश का सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय है। दीवानी और फौजदारी दोनों मामलों की अपीलें इसमे होती हैं। लॉर्ड-सभा के न्यायालय का गठन कुछ आजीवन पियरों द्वारा किया जाता है जिन्हें लॉर्डस ऑफ अपील इन आर्डिनरी (Lords of Apeal in ordinary) अथवा विधिज्ञ लॉड्स (Law Lords) कहा जाता है। जुरिशडिक्शन अधिनियम 1947 ई. के द्वारा इस न्यायालय का पुनर्गठन हुआ और विधिज्ञ लॉर्डों की संख्या बढ़ाकर 9 कर दी गयी। ये लॉर्ड उच्च ख्याति-प्राप्त न्याय-शास्त्र-वेत्ता, न्यायाधीश या उच्चकोटि वे वकील होते हैं। इस न्यायालय का अध्यक्ष लॉर्ड चांसलर (Lord Chancellor) होता है, जो मन्त्रिमंडल का भी सदस्य होता है।

(ग) प्रिवी परिषद् की न्यायिक समिति (Judicial Committee of the Privy Council): ब्रिटिश संगठन में प्रिवी परिषद् न्यायिक समिति का भी स्थान उल्लेखनीय है। यह एक उच्चवंशीय अपीलीय सदन है। यह वस्तुत: न्यायालय नहीं है, बल्कि एक परामर्श-दातृ समिति है। आज इसका विशेष महत्व इसलिए है कि यह समुद्र पार के उपनिवशों से आयी हुई अपील को सुनती है। इस समिति के सदस्य प्रिवी परिषद् (Privy Councillor) होते है। जिनको अन्य राज्यों के न्यायाधीशगण अपने देश की न्याय-व्यवस्था के अनुसार आवश्यक मन्त्रणा देते हैं। इस समिति में लगभग 20 स्मृतिकार अथवा न्यायशास्त्री होते हैं जिनमें विधिज्ञ लॉर्ड्स (Law Lords) भी होते हैं। इस समिति का एक विशेष अधिकार-क्षेत्र है-युद्ध काल में समुद्री लूट के माल का बँटवारा करना।

ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था का मूल्यांकन (British Judicaial System Evaluated): ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था निष्पक्षता, प्रवीणता तथा कार्यपरायणयता के लिए विश्व-विख्यात है। न्यायालय स्वतंत्र है तथा उनपर राजनीतिक प्रभाव नहीं पड़ता है। निम्न स्तर के न्यायालयों के विवेक तथा निर्णय पर पर्याप्त नियंत्रण रहता है। इसलिए ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था इस सिलसिले में विश्व में सबसे अधिक सौभाग्यवान है। लेकिन अन्य प्रश्न भी है, जिन्हें ब्रिटिश न्यायालयों की दक्षता को जाँचने लिए उठाया जा सकता है।

(i) न्यायालय का वातावरण कैसा है : पहला प्रश्न ब्रिटिश न्यायालयों के वातावरण (Atmosphere of Courts) के सम्बन्ध में उठाया जाता है। न्यायालयों की कार्यप्रणाली बहुत ही गम्भीर है। यहाँ तक कि निम्न न्यायालयों की प्रतिष्ठा तथा आचार अमेरिका के उच्च न्यायालयों से कहीं श्रेष्ठ है। न्यायाधीश उच्च आसन पर बैठता है वकील गाऊन में विभूषित बँधे हुए शब्दों में तर्क-वितर्क करते हैं। गवाहों से सिर्फ मुकद्दमें के तथ्यों के बारे में पूछा जाता है, न्यायाधीश

नोट

हर बात को ध्यान से सुनता है, दर्शक हल्ला–गुल्ला नहीं कर सकते हैं, तर्क वृहत् ज्ञान पर आधारित होते हैं तथा हर बात को तार्किक तथा प्रभावपूर्ण तरीके से प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार वातावरण बहुत ही भव्य तथा ज्ञानपूर्ण है। विश्व के किसी भी अन्य देश के न्यायालय में इतनी उच्चकोटि का वातावरण नहीं है।

(ii) क्या सभी प्रमाणों (evidences) को सामने लाया जाता है: इंग्लैंड में मुकदमें की कार्यवाही की एक विलक्षणता यह है कि न्यायाधीश एक पंच (umpire) के रूप में कार्य करता है अन्वेषक के रूप में नहीं। वह मुकद्दमें की छानबीन स्वयं नहीं करता, जिरह में वह भाग नहीं लेता तथा न्यायाधीश मुकदमें की कार्यवाही में शीघ्रता लाने या तथ्यों के स्पष्टीकरण के उद्देश्य से कोई कार्य नहीं करता है। यह मुद्दई और मुद्दालह का कार्य है कि वे सभी तथ्यों को स्पष्ट करें। प्रथा के प्रतिकूल महादेशीय (यूरोप) देशों के न्यायाधीश मुकदमों की कार्यवाही तथा जिरह में खुलकर भाग लेते हैं।

(iii) क्या मुद्दालह को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की जाती है मुद्दालह को पर्याप्त सुरक्षा (adequate protection to the defendant) दी जाती है। फौजदारी मुकदमे में, विशेषकर जहाँ सरकार एक दल की रहती है, मुद्दालय बहुत कमजोर स्थिति में रहता है, इसलिए इसकी पर्याप्त चेष्टा की जाती है कि मुद्दालय को किसी प्रकार दिक्कत का सामना नहीं करना पड़े। इस उद्देश्य से गवाहों से ऐसे प्रश्न नहीं पूछे जाते हैं। जिससे कोई स्पष्ट उत्तर निकले, पूर्व गलतियों को कार्यवाही के समय नहीं रखा जाता है। बिना वारण्ट के किसी को गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है, अपराध के समय उस सम्बन्ध में कानून का होना आवश्यक है और कानून की अज्ञानता तो अपराधी के लिए वरदान है। इस प्रकार अपराधी को हर तरह की सुरक्षा प्रदान की जाती है।

(iv) क्या न्यायालय शीघ्रतापूर्ण उपचार प्रदान करता है : मुकदमें की समुचित सुनवाई तथा व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा के अतिरिक्त ब्रिटिश न्यायालय शीघ्रतापूर्वक न्याय करते हैं। इसके विपरीत अमेरिका, भारत आदि देशों में बहुत देर लगती है। कारण यह है कि ब्रिटेन में न्यायालय की कार्य–विधि बहुत सरल प्रकति की है। उनका विकास पृथक्–पृथक् न्यायालयों द्वारा हुआ। फलत: वे प्राविधिक की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक है। लेकिन अमेरिका में न्यायिक कार्य विधियाँ विधायिका के प्रयत्न के फल है। अत: वे अधिक प्राविधिक (technical) हैं। इंग्लैंड में शीघ्रतापूर्ण न्यायिक उपचार के मार्ग में सिर्फ एक बाधा है–न्याय–व्यवस्था में विकेन्द्रकरण का अभाव अर्थात् अपीलों के लन्दन अवस्थित न्यायालयों में सुने जाने के कारण अधिक खर्च अथवा असुविधा का सामना करना पड़ता है।

(v) क्या न्यायालय सभी के लिए समान रूप से खुला हुआ है : प्राविधिक रूप में न्यायालय का दरवाजा सभी के लिए समान रूप से खुला हुआ है। कानून के समक्ष समानता तथा न्यायालय की कुण्डी खटखटाने के लिए समान अवसर देना अंगरेजों के महत्त्वपूर्ण अधिकार है। लेकिन व्यावहार में बात कुछ और है। अमेरिका की तरह इंग्लैंड में भी न्यायालय तथा वकील की फीस इतनी अधिक है कि आम जनता जल्दी न्यायालय जाने का साहस नहीं करती है। अत: यह कहा जाता है कि न्यायालय सिर्फ धनिकों का रक्षक है। इस कमी को दूर करने की चेष्टा की गयी है। गरीबों को नि:शुल्क न्याय देने के लिए कानून बनाये गये हैं, वकीलों के संघों ने भी गरीबों के मुकदमे की नि:शुल्क पैरवी की योजनाएँ चलायी है। फिर भी, गरीब वर्ग के लिए न्यायालय तक पहुँचना एक कठिन तथा दुस्साहसपूर्ण कार्य है।

उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर से यह स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश न्याय–व्यवस्था बहुत संतोषजनक है। विश्व के सभी न्याय–प्रणालियों में यह सर्वश्रेष्ठ स्थान का दावा करता है। निष्पक्ष तथा शीघ्रतापूर्ण न्याय के लिए ब्रिटिश न्यायालय विश्व–विख्यात है।

विधि का शासन (Rule of Law)

विधि के शासन का अर्थ: ब्रिटिश संविधान की एक अद्वितीय देन है, विधि का शासन। साधारण शब्दों में इसका तात्पर्य यह है कि इंग्लैंड का कानून ही देश का शासन करता है न कि किसी व्यक्ति–विशेष की स्वेच्छा। कानून सर्वोच्च है तथा इसके सामने सभी बराबर है। **लॉर्ड हेवर्ट** ने इसका अर्थ बतलाते हुए कहा है कि व्यक्तियों के निर्णय में मनमाने ढंग या ऐसी ही किसी अन्य प्रकार के ढंग के स्थान पर, जो कानून नहीं है, कानून की सर्वोच्चता स्वीकार की जाय। साधारणत: इसके तीन अर्थ है। **प्रथम** विधि ही सर्वोच्च है। स्वेच्छाचारिता नाम की कोई चीज नहीं है। देश का शासन विधि के अुनसार होना चाहिए। **द्वितीय** प्रत्येक व्यक्ति विधि के अधीन है तथा प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य विधि का

नोट

पालन है। **तृतीय,** विधि का शासन संसद की सम्प्रभुता का आधार है। इसके अन्तर्गत संसद के माध्यम से सर्वसाधारण विधि का दास है।

डायसी की व्याख्या : प्रो० डायसी ने विधि के शासन की सरल व्याख्या की है। उसके अनुसार इसके अन्तर्गत तीन विभिन्न परन्तु सजातीय विचार हैं। **प्रथम,** इसका अर्थ है कि न तो किसी को दण्ड दिया जा सकता है न किसी को शारीरिक कष्ट अथवा हानि पहुँचाई जा सकती है जबतक कि कोई व्यक्ति स्पष्टत: विधि के विरूद्ध आचरण न करे और वह विधि विरूद्ध आचरण देश के सामान्य न्यायालय में सिद्ध न हो जाय। तात्पर्य यह है कि इंग्लैड में किसी व्यक्ति को तब तक दण्डित नहीं किया जा सकता जब तक कि यह स्पष्ट रूप से सिद्ध न हो जाय कि उसने देश के किसी कानून को तोड़ा है। दूसरे शब्दों में इस शासन के अन्तर्गत मनमाने ढंग से न तो किसी की जान ली जा सकती है न किसी की सम्पत्ति या स्वतन्त्रता का अपरहण किया जा सकता है। और न नियम के विरूद्ध किसी को कारागृह में रखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त अभियोग की खुली सुनवाई होती है और अभियुक्त को अपने बचाव के लिए सफाई देने का पूरा अवसर दिया जाता है।

द्वितीय, विधि के शासन का अर्थ यह है कि कोई व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं बल्कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे उसका पद और स्थिति कुछ हो, देश के सामान्य कानून से शासित होता है। तथा सामान्य ट्रिब्यूनलों के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत रहता है। जो चीज एक आदमी के लिए कानून है वह समस्त नागरिकों का कानून है।

दूसरे शब्दों में, देश का प्रत्येक नागरिक विधि के सम्मुख समान है और सबके लिए एक ही प्रकार की विधि है। राजा रंक, अमीर, गरीब, ऊँच, नीच सभी विधि के समक्ष समान है। फ्रांस में सामान्य नागरिकों तथा प्रशासन के अधिकारियों के लिए अलग-अलग विधियाँ तथा न्यायालय हैं। लेकिन इंग्लैड में आम जनता तथा नीचे से ऊपर तक सभी अधिकारियों के लिए एक ही विधि तथा न्यायालय है। यदि शासन के अधिकारी किसी व्यक्ति के साथ अन्याय करते है अथवा विधि द्वारा दी गयी शक्तियों का दुरूपयोग करते हैं तो उनके विरूद्ध सामान्य न्यायालय में सामान्य विधि के अनुसार दावा किया जा सकता है। प्रत्येक सरकारी कर्मचारी प्रधानमंत्री से लेकर एक सिपाही तक एक साधारण नागरिक की तरह अपने अवैध कार्य के लिए उत्तरदायी है।

तृतीय, ब्रिटिश संविधान के सामान्य सिद्धांत उन न्यायिक निर्णय के परिणाम हैं, जिनमें न्यायालयों ने विशेष अभियोगों में साधारण नागरिकों के अधिकार को निश्चित किया है। तात्पर्य यह है कि इगलैंड में नागरिकों की स्वतन्त्रता का आधार न्यायिक निर्णय है। न्यायाधीशों ने व्यक्तियों की स्वतन्त्रता की सुरक्षा में महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

डायसी की व्याख्या की आलोचना : डायसी के विधि के शासन संबन्धी विचारों की प्रबल आलोचना की गयी है। वेट जेनिंग्स, रॉल्सन आदि लेखकों ने उसके विचारों को त्रुटिपूर्ण बतलाया है।

(i) प्रथम व्याख्या: पहली व्याख्या के सम्बन्ध में यहा कहा जाता है कि डायसी की व्याख्या स्वेच्छाचारी शक्ति (arbitarary power) और स्वविवेक की आलोचना-अधिकार (discretionary authority) के भेद को स्पष्ट न कर सका, अपितु उसने इन दोनों शब्दों को उलझा दिया। वस्तुत: स्वविवेक शक्तियों का अर्थ स्वेच्छाचारी शक्ति का अर्थ अनुत्तरदायी तथा अनियन्त्रित शक्ति है। यह विधि के शासन का विरोधी है लेकिन स्वविवेक शक्ति का प्रयोग आज परिहार्य है, जैसा कि प्रदत्त व्यवस्थापन (delegated Legislation) के व्यवहार से स्पष्ट है। यदि स्वविवेक शक्ति का प्रयोग विधि के शासन के विरूद्ध है तो विधि के शासन के लिए किसी भी आधुनिक शासन-व्यवस्था में नही।

(ii) डायसी का द्वितिय अर्थ भी संदिग्ध है। शासन के अधिकारियों के पास कतिपय विशेषाधिकार एव विमुक्तियाँ है, जिनसे सार्वजनिक अधिकार लाभ उठा सकते हैं। अन्य समग्र राष्ट्रों की तरह इंग्लैंड भी अपने शासकों तथा कूटनीतिक अधिकारियों को न्यायालयों की कार्य-प्रणाली मुकदमा आदि के सम्बन्ध में कतिपय विमुक्तियाँ प्रदान करते हैं। ऐसे भी उदाहरण हैं जिनमें आन्तरिक आवश्यकताओं के कारण विमुक्तियाँ देनी पड़ी थी जैसे-1960 ई. के ट्रेड डिप्यूट्स ऐक्ट (Trade Disputes Act) के अनुसार किसी व्यक्ति की शारीरिक या साम्पत्तिक हानि पर भी ट्रेड यूनियन के विरूद्ध अदालती कार्यवाही नहीं की जा सकती है। इसके अतिरिक्त आज प्रशासकीय विभागों को अपने क्षेत्र में न्यायालयों की

नोट

तरह अंतिम निर्णय देने का अधिकार दिया गया है, जैसे–गृहमंत्री विदेशियों को स्वदेश के नागरिक का अधिकार प्रदान कर सकता है। अन्य विभागीय मंत्री या अधिकारी, स्वास्थ्यमन्त्री, शिक्षाबोर्ड, व्यापार बोर्ड, यातायात मन्त्री आदि न्यायालयों की तरह झगड़ो का निबटारा करते हैं। इस प्रकार प्रशासनिक शक्ति बँटवारा के कारण विधि के शासन के सिद्धान्त पर आज पर्याप्त मर्यादाएँ लद चुकी है।

(iii) डायसी केवल मौलिक राजनीतिक अधिकारों को स्वीकार करता है जिसके लिए न्यायालय की शरण ली जा सकती है। वह संविधियों से प्राप्त अधिकारों की ओर ध्यान नहीं देता है। आज तो संविधि का क्षेत्र इतना व्यापक हो गया है कि सामान्य विधि द्वारा प्रदत्त अधिकारों–वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अधिकार, स्वरक्षा का अधिकार, विचार व्यक्त करने का अधिकार आदि को संविधि की शरण लेनी पड़ती है। सामान्य विधि का अंश होते हुए भी बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) या अपमानजनक लेख की विधि (Law of Libel) को अधिनियमों का रूप दिया गया।

फ्रांस की न्यायिक व्यवस्था (French Judicial System)

नेपोलियन संहिता : फ्रांस में 1789 ई० की महान क्रांति से पूर्व कोई संगठित न्याय–व्यवस्था नहीं थी। देश में वैधिक एकरूपता का नितांत अभाव था। न्याय–प्रशासन राजाओं की आज्ञप्तियों, अध्यादशों राजाज्ञाओं आदि द्वारा होता था क्रमबद्ध न्यायपालिका का अभाव था और भिन्न–भिन्न कानून लागू थे। **वाल्टेयर** ने इसका सही चित्र प्रस्तुत किया है–"देश में एक ओर से दूसरी ओर तक जानेवाले यात्री को जितनी बार घोड़ा बदलना पड़ता था उससे अधिक प्रकार के कानूनों को बदलना होता था। राज्यक्रांति ने सही–सही न्यायिक व्यवस्था को छिन्न–भिन्न कर दिया। तत्पश्चात् न्यायिक पद्धति एव विधियों में सुधार के अनेक प्रयास हुए। लेकिन ये प्रयास अल्पकालीन तथा टुकड़े–टुकड़े रूप में हुए। सर्वप्रथम नेपोलियन महान ने फ्रांसीसी विधि को संहिताबद्ध करने का महान कार्य अपने हाथ में लिया और उस योजना को अपनी विशिष्ट शक्ति एवं क्षमता से कार्यान्वित करते हुए कुछ ही वर्षों के अन्दर पूर्ण कर दिया। नेपोलियन द्वारा कानून के संग्रह को नेपोलियन–संहिता (Code of Napoleon) कहते हैं। आज के फ्रांस की विधियाँ प्राथमिक रूप से नेपोलियन संहिता पर आधारित है। यह ठीक है कि नवीन परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार विगत डेढ़ सौ वर्षों में उसे संशोधित एवं परिवर्द्धित किया जा रहा है लेकिन उसे पूर्ण रूप से ठुकराया नहीं जा सकता है। वह फ्रांस की न्यायिक व्यवस्था के एक सजीव एवं गतिशील अंग के रूप में आज भी सुरक्षित है।

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि फ्रांस की न्यायिक एवं वैधानिक व्यवस्था के विकास में रोम की वैधानिक पद्धति फ्रांस की प्राचीन सामन्तवादी व्यवस्था, राजाओं द्वारा निर्मित विधियों, 1789 ई० की राज्यक्रान्ति तथा नेपोलियन द्वारा संग्रहित एवं निर्मित विधियों का प्रभाव पड़ा है। मध्ययुगीन सामन्तवादी रूढियों तथा निरंकुश राजतन्त्रीय शासन की इस पर अमिट छाप है। लेकिन सबसे अधिक प्रभाव नेपोलियन बोनापार्ट का पड़ा है। उसी ने प्रथम बार फ्रांसीसी विधियों को संहिताबद्ध किया और वही संहिता आज तक कतिपय परिवर्तनों के साथ चली आ रही है।

टास्क नेपोलियन संहिता से आप क्या समझते हैं।

फ्रांसीसी न्याय–पद्धति की विशेषताएँ (Special features of the Judiciary): फ्रांसीसी न्याय–पद्धति की कतिपय निजी विशेषताएँ हैं जिनका उल्लेख यहाँ आवश्यक है –

(1) प्रलिखित विधियाँ (Written Laws): फ्रांस में प्राय: सभी विधियाँ पूर्णत: लिखित रूप में हैं। इंग्लैंड में भी विधियों का अधिकांश भाग लिखित है, लेकिन उनका एक महत्त्वपूर्ण भाग जिसे सामान्य कानून (common law) कहते है अलिखित है।

(2) संवैध विधियां (Statutory Laws): फ्रांस में प्राय: सभी विधियाँ संसद अथवा किसी संगठित निर्मात्रि संस्था द्वारा निर्मित की गयीं। रूढ़ियों और प्रथाओं का उनमें कहीं–कहीं और प्रथाओं का उनमें कहीं–कहीं और बहुत कम समावेश हुआ है। फ्रांस में न्यायाधीश निर्मित (judgemade) विधियों का विकास नहीं हुआ है, क्योंकि प्रत्येक न्यायालय अपना

नोट

निर्णय देने के लिए स्वतन्त्र है, पूर्वकालीन न्यायिक दृष्टान्तों में वह बाध्य नहीं है। इसके विपरीत इंग्लैंड में अधिकांश विधियाँ न्यायधीशों द्वारा निर्मित है। वहाँ पूर्वकालीन न्यायिक दृष्टातों का समादर किया जाता है इसलिए ऐसी विधियों का वहाँ विकास होता है।

(3) प्रशासकीय अंग (Administrative Organ): फ्रांस में न्यायपालिका को मूलत: प्रशासकीय अंग माना गया है। **मुनरो के शब्दों में** "न्यायपालिका को विधायिका और कार्यपालिका से भिन्न शासन के एक स्वतंत्र अंग के रूप में मानने की आदत फ्रांसीसी जनता में नहीं है। वे डाकघरों की भाँति न्यायालयों को भी केवल प्रशासकीय शाखाओं के रूप में मानते हैं। इसके विपरीत इंग्लैंड में न्यायपालिका को सरकार का एक स्वतन्त्र अंग माना जाता है।

(4) न्यायिक पुनर्विलोकन का अभाव (Absence of Judicial Review): फ्रांस में न्यायापालिका प्रशासन का एक अधीनस्थ अंग है। इसलिए उसे संसद द्वारा निर्मित कानूनों की संवैधानिकता की जाँच करने का अधिकार नहीं है। यह कार्य एक अन्य संस्था, संवैधानिक परिषद् (Constitutional Council) को सुपुर्द किया गया है। लेकिन भारत तथा अमेरिका में यह कार्य नियमित न्यायालयों को सौंपा गया है। इन देशों में न्यायालयों को विधायिका द्वारा निर्मित विधियों की संवैधानिकता की जाँच करने का अधिकार है।

(5) न्यायिक स्वतंत्रता (Independence of Judiciary): फ्रांस में न्यायाधीशों को उतनी स्वतन्त्रता प्राप्त है जिनती कि इंग्लैंड तथा अमेरिका में। इसका कारण यह है कि फ्रांस में न्यायाधीश सरकार के न्याय-विभाग में काम करते हैं साथ ही वे सरकारी वकील का काम करते है और न्याय मंत्रालय के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(6) नियुक्ति (Appointment): फ्रांस में न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रणाली भी अन्य देशों से भिन्न है। प्रतियोगिता परीक्षा के आधार पर उनकी नियुक्ति उच्च न्यायिक परिषद् (The High Council of Judiciary) के द्वारा होती है। लेकिन इंग्लैंड, अमेरिका, भारत आदि देशों में प्राय: सुविख्यात और उच्च कोटि के वकीलों को न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है।

(7) स्थानीय न्यायालय (Local Courts): सभी फ्रांसीसी न्यायालय स्थानीय होते हैं। उनकी बैठक निश्चित स्थानों में ही होती है। वे दौरे पर नहीं जाते हैं।

(8) द्वैध न्याय व्यवस्था (Double System of Courts) : फ्रांस में दो प्रकार के न्यायालय पाये जाते हैं-सामान्य न्यायालय (Ordinary Courts) और प्रशासकीय न्यायालय (Administrative Courts) सामान्य न्यायालय गैर-सरकारी व्यक्तियों के मुकदमों का निर्णय करते हैं। प्रशासकीय न्यायालय सरकारी कर्मचारियों के अपराधों से सम्बन्धित मुकदमों का निर्णय करते है और वे भिन्न प्रकार की विधियों को लागू करते हैं जिन्हें कानून (Administrative Laws) कहते हैं।

(9) सामूहिकता का सिद्धांत (Doctrine of Collegiality) : फ्रांस मे न्याय के संबंध में धारणा यह है कि न्याय करने के लिए कई मस्तिष्कों का संगठित विचार-विमर्श आवश्यक है। कोई भी निर्णय कम-से-कम तीन न्यायाधीशों की स्पष्ट सहमति से दिया जाता है।

न्यायालयों का संगठन (Organisation of Courts): फ्रांस में न्यायालयों का संगठन एकीकृत नहीं है, बल्कि संघात्मक है। न्यायिक प्राधिकार का किसी एक संस्था में संकेद्रण नहीं होता है, बल्कि पांच प्रकार के पृथक-पृथक न्यायालय हैं-

(क) सामान्य न्यायालय (Ordinary Courts),

(ख) प्रशासकीय न्यायालय (Administrative Courts),

(ग) संवैधानिक परिषद् (Constitutional Council),

(घ) उच्च न्यायिक परिषद् (The High Council of Judiciary), तथा

(ड) न्याय का उच्च न्यायालय (The High Court of Justice)

(क) सामान्य न्यायालय (Ordianry Courts) **:** इन न्यायालयों में सिर्फ गैरसरकारी व्यक्तियों से सम्बन्धित मुकदमों की सुनवाई होती है।

नोट

शांति न्यायाधीश के न्यायालय : सबसे निम्न धरातल पर शान्ति न्यायाधीशों (Justices of Peaces) का न्यायालय है। प्राय: कैंटन में ऐसा एक न्यायालय होता है। बड़े-बड़े शहरों में अनेक ऐसे न्यायालय होते हैं। सारे देश में लगभग 300 ऐसे न्यायालय हैं। इस न्यायालय मे एक न्यायाधीश होता है जिसे शांति न्यायाधीश कहते हैं। शान्ति न्यायाधीश की नियुक्ति न्यायाधीश की सिफारिश पर राष्ट्रपति करता है। ये न्यायालय दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के मुकदमों का निर्णय करते हैं। इन न्यायालयों का प्रमुख कार्य वस्तुत: मुकदमों का निर्णय करना ही नहीं वरन् मुकदमों को रोकना है। न्यायाधीश समझा-बुझाकर अथवा मध्यस्थता द्वारा विरोधी पक्षों में समझौता करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार इन न्यायालयों का कार्य सामाजिक दृष्टिकोण से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इनके निर्णयों के विरूद्ध प्रारम्भिक न्यायालयों में अपील की जा सकती है। इंग्लैंड में शान्ति न्यायाधीश अवैतनिक होते हैं जबकि फ्रांस में पूर्ण सवैतनिक कर्मचारी।

प्रारम्भिक न्यायालय : शान्ति न्यायाधीश के न्यायालय के ऊपर प्रारम्भिक न्यायालय (Courts of the first Instance) होता है। प्रत्येक एरोण्डाइजमेंट (Arrondisement) में ऐसा न्यायालय होता है। इसमें 15 न्यायाधीश होते हैं। इसे दीवानी तथा फौजदारी, प्रारम्भिक तथा अपीलीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है, दीवानी मामलों में इसका अधिकार-क्षेत्र सीमित है। फौजदारी मामलों में चोरी, गबन और मार-पीट तक इसका क्षेत्र सीमित है। 3000 फ्रैंक से अधिक के दीवानी मुकदमों में इसको प्राथमिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। इस न्यायालय में शान्ति न्यायाधीशों के निर्णयों के विरूद्ध अपील की जा सकती है। इसके कुछ निर्णयों के विरूद्ध पुनरावेदन- न्यायालय में अपील की जा सकती है।

पुनरावेदन न्यायालय: प्रारम्भिक न्यायालयों के ऊपर पुनरावेदन न्यायालय (Courts of Appeal) होते हैं। एक न्यायालय का क्षेत्राधिकार सात डिपार्टमेन्टों (Departments) तक होता है, अभी फ्रांस में ऐसे 27 न्यायालय हैं। प्रत्येक न्यायालय में तीन विभाग होते हैं-दीवानी, फौजदारी तथा दोषारोपण (Indictment) विभाग। दोषारोपण विभाग इस बात पर विचार करता है कि किसी व्यक्ति पर दोषारोपण किया जाय या नहीं। प्रत्येक विभाग में पांच न्यायाधीश होते हैं इस न्यायालय का कोई मौलिक अधिकार-क्षेत्र (Original Jurisdiction) नहीं है। यह मुख्यत: प्रारम्भिक न्यायालयों के दीवानी मामलों से सम्बन्धित निर्णय के विरूद्ध अपील सुनता है। इसका तथ्य-सम्बन्धी (facts) निर्णय अन्तिम होता है, लेकिन वैधानिक तथ्यों (points of law) से सम्बन्धित निर्णयों के विरूद्ध न्यायालयों में अपील की जा सकती है।

निषेध न्यायालय (Courts of Assize) : निषेध न्यायालय अस्थिर न्यायालय है। यह बड़े-बड़े नगरों का बारी-बारी से दौरा करता है तथा मुकदमों का फैसला करता है। इसमें पुनरावेदन-न्यायालय का एक न्यायाधीश और प्रारम्भिक न्यायालय के दो न्यायाधीश होते हैं। यह फ्रांस का दण्डित न्यायालय (Criminal Court) है जिसमें अधिक गम्भीर फौजदारी मामलों के प्रारम्भिक न्यायालय के निर्णय की अपील की जाती है। इसमें जूरी (Jury) की सहायता से न्यायालय का निर्णय अन्तिम होता है उसके विरूद्ध अपील नहीं की जा सकती है।

विराम न्यायालय (Court of Cessation) : विराम न्यायालय फ्रांस का सर्वोच्च न्यायालय है। इसके संगठन एवं कार्य भारत या अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय से भिन्न है। इसमें एक महाध्यक्ष, 3 विभागीय अध्यक्ष तथा 45 अन्य न्यायाधीश होते हैं जिन्हें पार्षद् (Councillors) कहते हैं। इसकी बैठक पेरिस में होती है। इसके तीन विभाग हैं-प्रार्थना-विभाग (Chamber of Request), दीवानी (civil) विभाग तथा दण्ड (Criminal) विभाग। तीनों विभाग अलग-अलग अपना कार्य करते हैं। यह केवल पुनरावेदनीय (Appellate) न्यायालय है। पुनरावेदनों में भी यह केवल विधि प्रश्न पर ही विचार करता है, तथ्य प्रश्न पर नहीं। यह न्यायालय हर निम्न न्यायालयों के निर्णयों के बदले अपना निर्णय नहीं दे सकता, बल्कि उनकी पुष्टि कर सकता है अथवा रद्द कर सकता है। यद्यपि यह न्यायालय भारत के सर्वोच्च न्यायालय या इंग्लैंड की प्रिवी परिषद् की न्यायिक समिति की भाँति नहीं है, फिर भी जो गरिमा प्राप्त है, वह शायद ही किसी अन्य सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त हो।

(ख) प्रशासकीय न्यायालय (Administrative Council) : प्रशासकीय न्यायालय के दो स्तर हैं-

प्रादेशिक परिषद् : निम्न धरातल पर प्रादेशिक परिषद् (Regional Council) है। इन्हें प्राथमिक अन्तर्विभागीय परिषद् (Inter-Departmental Council) भी कहते हैं। प्रत्येक परिषद का कार्यक्षेत्र 2 से 7 डिपार्टमेंट तक रहता है। इनकी कुल संख्या 23 है। प्रत्येक परिषद् में एक सभापति और चार पार्षद् (councillors) होते हैं। प्रशासन-सम्बन्धी मुकदमे

नोट

सर्वप्रथम इन्हीं न्यायालयों में आते हैं। ये निर्धारण (Assessment) संबंधी विवादों, सार्वजनिक निर्माण, स्थानीय निर्वाचन, ठीका-भंग (Breach of Contract) आदि प्रश्नों का निर्णय करते हैं। इसके निर्णयों के विरूद्ध राज्य परिषद् में अपील की जाती है।

राज्य परिषद् : राज्य परिषद् (Council of State) राष्ट्र का सर्वोच्च प्रशासकीय न्यायालय है। इसका अध्यक्ष फ्रांस का न्याय-मन्त्री होता है। इसके अधीन एक उपाधयक्ष तथा पांच विभागाध्यक्ष रहते हैं। इस परिषद् में 149 सदस्य होते हैं जिनकी नियुक्ति न्याय-मन्त्री के परामर्श से राष्ट्रपति करता है। यह स्वतंत्र, गौरवपूर्ण, शक्तिशाली तथा प्रभावपूर्ण संस्था है। यह प्रादेशिक परिषदों के निर्णय के विरूद्ध अपील सुनती है। प्रशासकीय न्याय का वास्तविक उत्तरदायी इसी के कन्धों पर है। यह मंत्रिमंडल को उसके द्वारा जारी किये जाने वाले आदेशों अथवा आज्ञाप्तियों के सम्बन्ध में परामर्श देती है। सरकार के विभिन्न विभागों के बीच उत्पन्न विवादों का भी यह निबटारा करती है। इसकी कार्य-प्रणाली बहुत साधारण है। यह संस्था जनता के अधिकारों को सुरक्षित रखने में महत्त्वपूर्ण कार्य करती है।

(ग) संवैधानिक परिषद् (Constitutional Council) : संवैधानिक परिषद् फ्रांसीसी न्याय व्यवस्था की अनोखी विशेषता है। भारत तथा संयुक्त-राज्य अमेरिका में विधियों की संवैधानिकता की जांच करने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया है। इसे न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) का अधिकार कहते हैं। फ्रांस में पुनर्विलोकन का अधिकार नियमित न्यायालयों को न देकर एक-दूसरी संस्था को दिया गया है जिसे संवैधानिक परिषद् (constitutional Council) कहते हैं। इसे अर्द्ध-न्यायिक संस्था (Quasi-Judicial Institution) भी कहा जा सकता है।

संविधान के सातवें अध्याय में संवैधानिक परिषद् के संगठन तथा कार्यों का विवरण दिया गया है। इसमें 9 सदस्य होते हैं जो 9 वर्षों के लिए नियुक्त किये जाते हैं। प्रत्येक तीन वर्षों पर एक-तिहाई सदस्य अवकाश ग्रहण करते हैं। तीन सदस्य राष्ट्रपति द्वारा, तीन राष्ट्रीय सभा के अध्यक्ष द्वारा तीन सिनेट के सभापति द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। सदस्यों के अतिरिक्त फ्रांस के भूतपूर्व राष्ट्रपति इसके पदेन (Ex-Officio) सदस्य होते हैं। इसके अध्यक्ष की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होती है। अध्यक्ष को निर्णायक मत (Casting vote) देने का अधिकार है। संवैधानिक परिषद् के साथ-साथ मंत्रिमंडल अथवा संसद के सदस्य नहीं हो सकते हैं। आंगिक विधि के द्वारा परिषद् के संगठन तथा कार्य-प्रणाली को निर्धारित किया जाता है।

संवैधानिक परिषद् के निम्नलिखित कार्य है-

(1) राष्ट्रपति का निर्वाचन नियमित रूप से करवाना तथा निर्वाचन-सम्बन्धी सभी आरोपों की जाँच करना और निर्णय देना

(2) संसद-सदस्यों के निर्वाचन की अनियमितता का निराकरण करना,

(3) जनमत-संग्रह को नियमित (regualte) करना तथा उसके परिणाम की घोषणा करना

(4) आंगिक विधियों (Organic laws) तथा अन्य विधियों के प्रवर्तन (Promulgation) की पूर्ण संवैधानिकता की जाँच संवैधानिक परिषद् द्वारा अनिवार्य है अर्थ यह कि इस परिषद् को न्यायिक समीक्षा (Judicial review) का अधिकार प्राप्त है।

(घ) उच्च न्यायिक परिषद् (The High Council of the Judiciary): राष्ट्रपति न्यायिक स्वतंत्रता का संरक्षक है। इस कार्य में उसकी सहायता के लिए उच्च न्यायिक परिषद् का निर्माण किया गया है। राष्ट्रपति इसका अध्यक्ष तथा न्याय-मंत्री पदेन (ex-officio) उपाध्यक्ष होता है। यह परिषद् फ्रांस के सर्वोच्च न्यायालय (The Court of Cessation) के न्यायाधीशों और पुनरावेदन-न्यायालयों के अध्यक्ष की नियुक्ति करती है। इसे अनुशासन सम्बन्ध मामलों में भी निर्णय देने का अधिकार है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता की रक्षा के सिलसिले में यह राष्ट्रपति की सहायता करती है।

(ड) न्याय का उच्च न्यायालय (The High Court of Justice): यह एक राजनैतिक न्यायालय (Political Court) है। इसके सदस्यों का निर्वाचन संसद के दोनों सदन करते हैं। प्रत्येक साधारण अथवा अर्द्ध-निर्वाचन के पश्चात् राष्ट्रीय सभा और सिनेट अपने ही सदस्यों में से बराबर-बराबर संख्या में इस उच्च न्यायालय के सदस्यों को निर्वाचित करते हैं। अपने ही सदस्यों में से न्यायालय अपना अध्यक्ष चुनता है। राष्ट्रपति पर देशद्रोह के लिए, मंत्रियों

नोट

पर देशद्रोह, देश की सुरक्षा अन्य किसी भी दाण्डिक कार्य के लिए किये गये दोषारोपण का परीक्षण यह न्यायालय करता है और निर्णय देता है।

प्रशासकीय विधि (Administrative Law): प्रशासकीय विधि फ्रांस की न्यायिक प्रणाली की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। साधारणत: प्रजातांत्रिक देशों में सभी के लिए एक ही प्रकार की न्याय-व्यवस्था होती है। लेकिन फ्रांस में दो प्रकार की न्याय-व्यवस्था है। सामान्य जनता के लिए दीवानी कानूनों (Civil Laws) तथा दीवानी न्यायालयों (Civil Courts) की व्यवस्था है, लेकिन सरकारी कर्मचारियों से सम्बन्धित मुकदमों का फैसला प्रशासकीय नियमों के आधार पर होता है।

परिभाषा : प्रशासकीय विधि की परिभाषाएँ अनेक विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से दी है। प्रो० डायसी ने प्रशासकीय विधि की परिभाषा देते हुए कहा है कि "फ्रांस की प्रशासकीय विधि शासन अधिकारियों के अधिकारों और कर्त्तव्यों के वे सिद्धांत है जिनके आधार पर राष्ट्र सत्ता के प्रतिनिधि के रूप में राजा, कर्मचारियों और जनता के पारस्परिक व्यावहार का निर्णय और नियंत्रण होता है।" बार थीलिये के अनुसार "फ्रांस में प्रशासनिक कानून का आशय उन सब कानूनी नियमों से है जिनके प्रशासन के विभागों का परस्पर और जनता से सम्बन्ध का निर्णय होता है।" प्रो० रेन डेविड का कथन है "प्रशासकीय कानून की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि यह उपनियमों की संहिता है जिससे सार्वजनिक प्रशासन की व्यवस्था और कर्त्तव्यों का निर्णय तथा प्रशासकीय कर्मचारियों के राष्ट्र के नागरिकों के प्रति सम्बन्धों का नियंत्रण होता है।

डॉ. जेनिंग्स का कहना है "शासकीय कानून केवल प्रशासन से सम्बन्धित नियम है। नियमों के द्वारा शासन-अधिकारियों के अधिकारों और कर्त्तव्यों का ज्ञान और निर्णय होता है।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं के सम्यक अनुशीलन के बाद प्रशासकीय विधि के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें स्थिर की जा सकती हैं-

(क) प्रशासकीय विधि वे कानून है जो सरकारी कर्मचारियों एवं सामान्य जनता के सम्बन्ध को निर्धारित करते हैं। इस दृष्टि से प्रशासकीय विधि, दीवानी विधि (Civil Law) से भिन्न हैं, क्योंकि दीवानी विधि नागरिकों के पारस्परिक सम्बन्धों को निर्धारित करते हैं। प्रशासकीय न्यायालयों के समझ ऐसे ही मामले आया करते हैं जिनमें सरकार का कोई कर्मचारी सम्मिलित हो और ऐसे मुकदमों की तजबीज प्रशासकीय विधि के आधार पर होती हो।

(ख) सरकार या सरकारी कर्मचारी तथा नागरिकों के बीच जो झगड़े होते हैं, उनका फैसला सामान्य न्यायालय में नही होता है। ऐसे झगड़े के लिए फ्रांस में एक विशेष प्रकार के न्यायालय का संगठन किया गया है जिन्हें प्रशासकीय न्यायालय कहते हैं। फ्रांस में इस तरह की विचारधारा प्रचलित है कि न्यायाधीश सरकारी अधिकारियों के दुश्मन होते हैं और नागरिकों तथा सरकारी कर्मचारियों के बीच झगड़े में सरकारी कर्मचारियों को तंग कर सकते हैं। अत: निष्पक्ष न्याय के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे झगड़ों का निबटारा प्रशासकीय न्यायालयों द्वारा ही हो।

(ग) सरकारी कर्मचारी राज्य के नियमों को अमल में लाने के लिए या अपने ऊँचे अधिकारियों की आज्ञा का पालन करते समय या अपने कर्त्तव्यों का पालन करते समय यदि किसी के वैयक्तिक अधिकारों में हस्तक्षेप कर दे तो ऐसी स्थिति में उसको दोषी ठहराना अन्याय होगा। अत: उसकी रक्षा आवश्यक है। ऐसे मामले में प्रशासकीय न्यायालय ही उचित निर्णय दे सकता है। यही कारण है कि ऐसे अपराधों की जांच के लिए राष्ट्रीय परिषद की अनुमति लेनी पड़ती है जिन अपराधों को कोई सरकारी अधिकारी अपने कर्त्तव्य निभाते समय करता है।

दार्शनिक आधार : फ्रांस में प्रशासकीय विधि के आधारस्वरूप दो मूलभूत सिद्धांत है। पहला आधार रोम के विधान (Roman Law) का प्रभाव है। इस विचारधारा के अनुसार राज्य साध्य (end) है और व्यक्ति साधन (means)। अत: राज्य के कर्मचारियों को नागरिकों की अपेक्षा अधिक अधिकार और सुविधाएँ दी जानी चाहिए। नेपोलियन ने राज्य-कर्मचारियों के अधिकारों की प्राथमिकता को माना था। प्रशासकीय विधि का दूसरा आधार मांटेस्क्यू (Montesquiu) के शक्ति विभाजन (Separation of Powers) का सिद्धान्त है। उस सिद्धान्त के अनुसार कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका को एक-दूसरे से स्वतंत्र रखना चाहिए। अत: प्रशासकीय कर्मचारियों

नोट

को स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष रखने के लिए अलग विधि-व्यवस्था होनी चाहिए। इन्हीं दो सिद्धान्तों पर फ्रांस की प्रशासकीय विधि-व्यवस्था आधारित है।

प्रशासकीय विधि और विधि का शासन (Administrative Law and Rule of Law): प्रशासकीय विधि के कारण फ्रांस में सरकारी कर्मचारी के लिए न्याय की अलग व्यवस्था है। इस दृष्टि से सरकारी कर्मचारियों और सामान्य जनता में कानून के मामले में भेद स्थापित किया जाता है। सरकारी कर्मचारी प्रशासकीय नियमों से प्रशासित होते है जबकि साधारण नागरिकों के लिए सामान्य विधि की व्यवस्था है। लेकिन ब्रिटेन में सामान्य कानून की धारणा को मान्यता दी जाती है। इस व्यवस्था के कारण ब्रिटेन में विधि का शासन है। विधि के शासन के अनुसार राज्य में बसनेवाले सभी लोग कानून के समक्ष बराबर हैं। प्रो. डायसी ने अपनी पुस्तक 'दी लॉ ऑफ दी कन्स्टीट्यूशन' में विधि के शासन के तीन अर्थ स्थिर किये हैं। **प्रथमत:** किसी भी व्यक्ति को तबतक कोई सजा नहीं दी जा सकती जबतक कि खुले न्यायालय में उस व्यक्ति के विरूद्ध उसके अपराध साबित न हो जाय। **द्वितीयत:** कानून के समक्ष सभी बराबर है चाहे सामान्य नागरिक हों या बड़ा-से-बड़ा अधिकारी हो। **तृतीयत:** सभी के लिए एक प्रकार के कानून हैं और एक ही तरह के न्यायालय की व्यवस्था है। ब्रिटेन की न्याय-व्यवस्था से भिन्न फ्रांस में दोहरे कानून तथा दोहरे न्याय की व्यवस्था है। फ्रांस में अधिकारियों के लिए प्रशासकीय विधि की व्यवस्था है। इस कानून की दृष्टि में फ्रांस में सभी नागरिक समान नहीं है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि ब्रिटेन तथा फ्रांस की न्याय-प्रणाली में कोई समता नहीं है। साथ ही, यह भी कहा जा सकता है कि फ्रांस में राज्य कर्मचारियों की तुलना में नागरिकों को कम न्यायिक अधिकार प्राप्त हैं लेकिन यह विचारधारा भ्रांतिपूर्ण है।

प्रो० डायसी के अनुसार फ्रांस की प्रशासकीय विधि इंग्लैंड की सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी की न्यायिक व्यवस्था से भिन्न नहीं थी। गौरवपूर्ण क्रान्ति के पहले ब्रिटेन में कार्यपालिका, न्यायपालिका के अधीन नहीं थी। न्यायपालिका सरकार के किसी कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी। राज्य-कर्मचारियों के संबंध में विशेष अधिकार प्राप्त थे।

अन्य सभी देशों की तरह ब्रिटेन में भी ऐसी बहुत-सी प्रशासकीय संस्थाएँ हैं। जो न्यायिक तथा अन्य अर्द्ध न्यायिक कार्य करती है। बहुत से ऐसे पदाधिकारी और कूटनीतिज्ञ अधिकारी हैं जिन्हें न्यायालय से विशेष उन्मुक्तियाँ मिली हैं। इन सब बातों के कारण विधि के शासन की धारणा वही नहीं रह गयी है, जिसका वर्णन डायसी ने किया था।

फिर न्याय के संबंध में विभिन्न देशों में अलग-अलग धारणाएँ है। ब्रिटेन, अमेरिका आदि देशों में सरकार का दायित्व ही अधिकारियों का दायित्व माना जाता है जबकि फ्रांस में कर्मचारियों का उत्तरदायित्व राज्य का उत्तरदायित्व माना जाता है। प्राय: प्रत्येक न्याय-व्यवस्था में राज्य कर्मचारियों द्वारा किये गये जनता के प्रति अपराध के विरूद्ध न्याय माँगा जाता है। फ्रांस में राज्य द्वारा कर्मचारियों को बचाने का प्रयास किया जाता है जबकि कर्मचारी जनता के प्रति अपराध अपने कर्त्तव्य को निबाहने के सिलसिले में करते हैं। इसका यह भी अर्थ कदापि नहीं है कि प्रशासकीय विधि की स्थिति के कारण जनता की स्वतन्त्रता खतरे में रहती है। फ्रांस में प्रशासकीय विधि के कारण जनता की स्वतन्त्रता सुरक्षित है। वहाँ भी सरकारी कर्मचारी जनता के अधिकारों में हस्तक्षेप करते हैं या जनता के प्रति अपराध करते हैं, प्रशासकीय न्यायालय उस अधिकारी के विरूद्ध अपना निर्णय देते हैं।

प्राय: बहुत से देशों में न्याय प्रणाली काफी जटिल है। न्याय सुलभ नहीं है लेकिन प्रशासकीय न्यायालय शीघ्रतिशीघ्र न्याय देने की व्यवस्था करते हैं।

इंग्लैंड आदि देशों में न्याय काफी महँगा है कानूनी कार्यवाही इतनी महँगी है कि सामान्य जनता आसानी से न्याय प्राप्त नहीं कर सकती है। इंग्लैंड की न्याय-प्रणाली उसी के लिए सुलभ है जो काफी गरीब और उसका न्यायालय शुल्क माफ हो जाता है। मध्यम वर्ग के लिए सुलभ नहीं है। इस दृष्टि से प्रशासकीय विधि के कारण लोगों को सस्ता न्याय मिल जाता है।

स्विस न्यायिक व्यवस्था (Swiss Judicial System)

संघीय न्यायालय का संगठन (Organization of the Federal Tribunal): इतिहास : संघात्मक शासन-व्यवस्था में संविधान की सर्वोच्चता के संरक्षण तथा संघ, संघीय और संघीभूत इकाइयों के मध्य उत्पन्न विवादों को निपटाने

नोट

के लिए निष्पक्ष संघीय न्यायालय की आवश्यकता होती है। स्विट्जरलैंड में सर्वप्रथम 1848 ई० के संविधान ने संघीय अधिकार-क्षेत्र में न्याय-व्यवस्था के लिए एक न्यायालय की व्यवस्था की, परन्तु इस न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र अत्यन्त सीमित था। वह पूर्णतया संघीय सभा तथा संघीय परिषद् के अधीन था। राज्य-मण्डल और कैंटनों की विधियों में अन्तर अथवा विवाद का निर्णय करने का इसे अधिकार नहीं था। ऐसे विवादों का निर्णय स्वयं संघीय सभा तथा संघीय परिषद करती थी। संघ न्यायालय केवल उन्हीं विवादों पर विचार कर सकता था जिन्हें संघीय सभा तथा संघीय परिषद् उसके पास भेजती। 1874 के सांविधानिक पुनर्निरीक्षण ने संघीय न्यायालय के संगठन और अधिकारों में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाया। लेकिन ये परिवर्तन बहुत प्रभावी तथा क्रान्तिकारी नहीं थे। संविधान की धारा 106 में केवल इतना ही कहा गया कि "संघीय न्यायाधिकरण की स्थापना की जाय जो संघीय अधिकार क्षेत्र के सम्बन्ध में न्याय की व्यवस्था करेगा। "फिर भी, इसे अधिकार क्षेत्र में संघीय विधियों तथा संविधानातिरिक्त विकासों (Extra-constitutional development) द्वारा निरन्तर वृद्धि होती रही है। आज संघीय न्यायालय सही माने में देश का सर्वोच्च न्यायालय बन गया है, यही सही है कि वर्त्तमान स्थिति को प्राप्त करने में इसे अन्य संघीय अंगों की तुलना में बहुत अधिक समय लगा। यह विधि के एकीकरण तथा स्विस जनता के अधिकारों की रक्षा के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करता है।

एमकमात्र संघीय न्यायालय : संयुक्त-राज्य अमेरिका में संघीय न्यायालय (Federal Court) का संगठन एक पिरामिड (pyramid) की तरह है जिसके शीर्ष पर सर्वोच्च है सर्वोच्च न्यायालय तथा इसके अधीन अनेक निम्न न्यायालय है। लेकिन स्विट्जरलैंड में समस्त संघीय क्षेत्र के लिए केवल एक ही न्यायालय है जिसे संघीय न्यायालय (Federal Tribunal) कहते हैं।

यह देश का एकमात्र तथा सर्वोच्च संघीय न्यायालय है। इसके अतरिक्त संघीय धरातल पर निम्न न्यायालय (Subordinate Courts) नहीं है।

न्यायधीशों की संख्या: संघीय न्यायालय के संगठन के संबंध में संविधान कोई निश्चय नहीं करता। वह सिर्फ इतना आदेश देता है कि विधि ही संघीय न्यायालय और उसके उपयोगों के संगठन की रीति, उसके सदस्यों और उप-सदस्यों की संख्या एवं उनकी पदावधि तथा वेतन आदि के सम्बन्ध में निर्णय करेगी। इस प्रकार संविधान न्यायाधीशों की संख्या (number of judges) निश्चित नहीं करता है। यह अधिकार संघीय सभा को सौंप दिया गया है जो अपने सदनों के संयुक्त अधिवेशन में न्यायाधीशों का निर्वाचन करती है। फलत: यह संख्या निरन्तर परिवर्तनशील रही है। 1875 ई० में न्यायाधीशों की संख्या 9 थी। परन्तु 1943 ई० में एक विधि द्वारा इस संख्या को पुन: निर्धारित किया गया। न्यायाधीशों की संख्या 9 से बढ़कर 26-28 कर दी गयी। इनके अतिरिक्त उप-न्यायाधीशों (Alternate of Deputy Judges) की भी नियुक्ति की जाती है। जिनकी संख्या 11-13 होती है। इस समय संघीय न्यायाधिकरण में 26 न्यायाधीश तथा 12 वैकल्पिक न्यायाधीश है। उप-न्यायाधीश की अनुपस्थिति में उनके पद पर कार्य करते हैं। संघीय सभा, संघ-न्यायालय के न्यायाधीशों में से ही एक अध्यक्ष (President) और एक उपाध्यक्ष (Vice-President) को दो वर्षों के लिए निर्वाचित करती है।

कार्यकाल : न्यायाधीशों एवं उप-न्यायाधीशों का निर्वाचन 6 वर्ष के लिए किया जाता है। यह भय था कि निर्वाचन पद्धति तथा 6 वर्ष के अल्पकाल के कारण न्यायाधीशों पर राजनीतिक प्रभाव पड़ता तथा उसकी निष्पक्षता एवं कार्यकुशलता समाप्त हो जाती। लेकिन न्यायाधीशों के निर्वाचन के चलते यह भय जाता रहा। निर्वाचन की व्यवस्था के परिणामस्वरूप न्यायाधीशों का कार्यकाल (Tunure) स्थायी-सा हो जाता है। यह परम्परा बन गयी है कि जबतक वे इच्छुक हो उसका बार-बार पुनर्निर्वाचन होता रहता है। केवल अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के पुनर्निर्वाचन नहीं हो सकते हैं।

अर्हताएँ : संविधान न्यायाधीशों की योग्यताओं और अर्हताओं (Qualifications) के सम्बन्ध में मौन है सिर्फ इतना ही कहा गया है कि कोई भी नागरिक जो राष्ट्रीय परिषद् (National Council) की सदस्यता की अर्हता रखता हो, संघीय न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है। अत: वर्गाधिकारी, न्यायाधीश निर्वाचित नहीं हो सकते क्योंकि राष्ट्रीय परिषद् की सदस्यता उनके लिए वर्जित है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान में रखा जाता है कि तीनों राजकीय भाषाओं, मुख्य राजनीतिक दलों, एवं कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेन्ट दोनों धर्मों को न्यायालय में उचित प्रतिनिधित्व मिले।

नोट

इस सम्बन्ध में कुछ प्रतिबन्ध भी है। दो निकट सम्बन्धी संघीय सभा तथा संघीय परिषद् के सदस्य या उनके द्वारा नियुक्त कोई पदाधिकारी संघीय न्यायालय का न्यायाधीश नहीं बन सकते हैं। अपने कार्यकाल में न्यायाधीश न तो संघ या कैंटन के अन्तर्गत किसी अन्य पद पर रह सकते हैं और न कोई व्यवसाय या नौकरी ही कर सकते हैं। 1814 ई० के पहले ये बातें वर्जित नहीं थी। यद्यपि संविधान द्वारा किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं है, फिर भी अनुभवी तथा विशेषज्ञ-विधिवेत्ताओ को ही न्यायाधीश निर्वाचित किया जाता है। **लॉड ब्राइस** ने कहा भी है न्यायाधीशों के निर्वाचन के लिए यद्यपि कोई अर्हता विधि द्वारा निहित नहीं की गयी है। फिर भी न्यायशास्त्र के विद्वानों तथा योग्य व्यक्तियों को निर्वाचित करने का भरसक प्रयत्न किया जाता है। लेकिन यह कहना गलत होगा कि न्यायाधीशों का निर्वाचन राजनीतिक प्रभावों से एकदम अछूता है, भले ही इसका उल्टा प्रभाव न्यायाधीशों की श्रेष्ठता पर नहीं पड़ता।

वेतनादि : स्विस संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों को वेतन के रूप में 53,000 फ्रैंक प्रतिवर्ष मिलता है। अध्यक्ष को भत्ता के रूप में अतरिक्त 36,000 फ्रैंक प्रतिवर्ष मिलता है। उप-न्यायाधीशों को कोई निश्चित वार्षिक वेतन नहीं मिलता है। केवल जिन दिनों वे कार्य करते हैं, उन्हे दैनिक क्रम से कुछ भत्ता दिया जाता है। पेंशन की भी व्यवस्था है। पद-निवृत्ति यदि 60 वर्ष की आयु पर हो और न्यायालय के सदस्य के रूप मे कार्य कर चुका है तो उसके सेवा-काल के अनुसार उसके वेतन का 40 से 60 प्रतिशत तक पेंशन के रूप में दिया जाता है।

सचिवालय : संघ-न्यायालय का अपना सचिवालय (Chancellory) है जिसका संगठन तथा कर्मचारियों की नियुक्ति स्वयं न्यायालय करता है। लेकिन कर्मचारियों की संख्या, इनका वेतन तथा कार्य-काल संघीय सभा निश्चित करती है।

स्थान : संघीय न्यायालय का स्थायी स्थान **वॉंड** (Vand) नामक कैंटन की राजधानी लोजान नगर है। इस नगर में न्यायालय की स्थापना के दो मुख्य कारण थे। **प्रथमत:** संघीय शासन के दो अंग (कार्यपालिका तथा विधानपालिका) जर्मन भाषा-भाषी नगर बर्न मे अवस्थित थे। अत: संविधान निर्माता चाहते थे कि संघीय शासन का कम-से-कम एक अंग फ्रेंच भाषा-भाषी नगर लोजान हो जिससे फ्रेंच बोलनेवाले को संतुष्टि मिले। इसी उद्देश्य से फ्रेंच भाषा-भाषी भाग में अवस्थित कर संघीय न्यायालय का स्थान बनाया गया। **द्वितीयत: ह्यूमर** के मतानुसार संविधान-निर्माता बर्न से संघीय न्यायालय को हटाकर शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत पर बल देना चाहते थे। उनका विचार था कि राजधानी से दूर रहकर न्यायालय राजनीतिक वातावरण से मुक्त रहेगा।

विभाग : कार्य की सुविधा के दृष्टिकोण से स्विस न्यायालय को चार विभागों में बाँट दिया गया है। इनमे दो विभाग दीवानी मुकदमों पर विचार करते हैं, तीसरा विभाग सार्वजनिक विधि सम्बन्धी विवादों पर विचार करता है और चौथा विभाग ऋण तथा दीवानियों से सम्बन्धित मुकदमों पर विचार करता है। इन विभागों का संगठन पूरा न्यायालय दो वर्षो के लिए करता है।

फौजदारी मुकदमों पर विचार करने के लिए भी संघ न्यायालय के चार विभाग किये गये हैं- (1) फरियाद विभाग (Chamber of Complaints), (2) फौजदारी विभाग (Criminal Chamber), (3) संघीय दण्ड विभाग (Federal penal Court), (4) सांविधानिक विभाग (Court of Cessation) फौजदारी विभाग कभी-कभी परिभ्रमणशील न्यायालय के रूप में करता है। समय-समय पर देश में परिभ्रमण कर मुकद्दमों की सुनवाई करता है। फौजदारी मामलों पर विचार के समय जूरी की सहायता ली जाती है। प्रत्येक फौजदारी मुकदमें की सुनवाई के समय 12 जूरियों की उपस्थिति आवश्यक है। जूरियों का निर्वाचन जनता द्वारा 6 वर्षो के लिए होता है।

संघीय न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र (Jurisdiction of the Federal Tribunal): संघीय न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(i) दीवानी (Civil)

(ii) फौजदारी (Criminal)

(iii) सांविधानिक (Constitutional) और

(iv) प्रशासकीय (Administrative)

नोट

दीवानी क्षेत्राधिकार : (क) प्रारम्भिक (Original) तथा (ख) पुनिर्वचार (Appellate) दोनों प्रकार का है।

(क) प्रारम्भिक संविधान की धारा 110 के अन्तर्गत निम्नलिखित विपक्षियों के बीच उत्पन्न विवादों का यह निर्णय करेगा–

(1) राज्य–संघ तथा कैंटनों के बीच।

(2) राज्य–संघ तथा किसी एक निगम अथवा साधारण नागरिक के मध्य बशर्ते कि वादी (plaintiff) नागरिक अथवा निगम हो, राज्य–संघ नहीं, और विवादग्रस्त राशि, 4,000 फ्रैंक से कम न हो।

(3) कैंटनों के बीच।

(4) किसी एक कैंटन तथा साधारण नागरिकों अथवा निगमों के बीच बशर्ते कि विवाद–ग्रस्त राशि 4,000 फ्रैंक से कम न हो।

(5) नागरिकता के खोने तथा विभिन्न कैंटनों के कम्यूनों के बीच नागरिक अधिकार संबंधी विवाद।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रारम्भिक रूप से बहुत कम दीवानी मामले संघीय न्यायालय के समक्ष आते हैं।

(ख) पुनर्विचारक : इस सम्बन्ध में दो बातें उल्लेखनीय हैं–

(1) धारा 111 के अनुसार यदि दोनों पक्ष सहमत हों तथा विवादग्रस्त राशि 10,000 फ्रैंक से कम न हो तो संघीय न्यायालय में किसी भी मुकद्दमें में अपील की जा सकती है।

(2) संघीय न्यायालय की विधियों के अन्तर्गत कैंटनों के न्यायालयों के निर्णय के विरूद्ध अपील सुनने का अधिकार है। इस अधिकार–क्षेत्र के अन्तर्गत कैंटनों के न्यायालयों के समक्ष प्रस्तुत कुछ मुकदमों का दशवाँ भाग आता है।

संघ : न्यायालय के फौजदारी (Criminal) अधिकार–क्षेत्र के अन्तर्गत धारा 112 के अनुसार निम्नलिखित विषय आते हैं–

फौजदारी क्षेत्राधिकार –(1) राज्य–संघ के विरूद्ध राजद्रोह, संघीय अधिकारियों के विरूद्ध विद्रोह तथा हिंसा सम्बन्धी अभियोग।

(2) अन्तर्राष्ट्रीय विधियों के विरूद्ध अपराध अथवा दुराचार–सम्बन्धी अभियोग।

(3) राजनीतिक अपराध अथवा दुराचार सम्बन्धी ऐसे अभियोग जिनके कारण संघीय सैन्यबल के हस्तक्षेप की आवश्कता पड़ी हो।

(4) किसी संघीय प्राधिकारी (Federal Authority) द्वारा नियुक्त अधिकारियों के विरूद्ध अभियोग जिसे वही प्राधिकारी प्रस्तुत करे।

संविधान की धारा 113 संघीय न्यायालय को निम्नलिखित सांविधानिक (constitutional) मामलों में निर्णय का अधिकार देती है।

सांविधानिक क्षेत्राधिकार : (1) संघीय अधिकारियों तथा कैंटनों के अधिकारियों के मध्य क्षेत्राधिकार संबंधी विवाद।

(2) कैंटनों के बीच सार्वजनिक विधि (Public law) के सम्बन्ध में विवाद।

(3) नागरिकों के सांविधानिक अधिकारों के अतिक्रमण के विरूद्ध अपीलों तथा साधारण नागरिकों द्वारा समझौता तथा अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों के अतिक्रमण के विरूद्ध की गयी अपीलें।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय के सदृश स्विस संघीय न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) अधिकार प्राप्त है।

प्रशासनिक क्षेत्राधिकार : अन्त में स्विस संघ न्यायालय को कतिपय मर्यादित प्रशासनिक (Administrative) अधिकार प्राप्त है। इसके अंतर्गत वह प्रशासनिक अभियोगों सरकारी कर्मचारियों की कानूनी क्षमता (Legal Competence) सम्बन्धी झगड़े रेल–प्रशासन सम्बन्धी विवाद, करारोपण सम्बन्धी प्रशासनिक मामलों आदि पर विचार करती है। 1928 ई. के पूर्व प्रशासनिक मामलों का निर्णय संघीय परिषद् करती थी, लेकिन एक संशोधन द्वारा उन्हें संघ न्यायालय को हस्तांतरित कर दिया गया।

नोट

अधिकार में वृद्धि : स्विस संघीय न्यायालय के अधिकार का स्पष्ट चित्र सिर्फ सांविधानिक उपबन्धों से नहीं मिल सकता है। संविधान में उल्लेखित अधिकारों के अतिरिक्त संघीय कानूनों द्वारा न्यायालय के अधिकार में वृद्धि की जा सकती है। संघीय सभा की अनुमति से कैंटनों के विधानमंडल भी कुछ दीवानी मामले संघीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार में रख सकते हैं। न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होने वाले 95 प्रतिशत मामले इस वृद्धिगत अधिकार क्षेत्रों के ही अन्तर्गत आते हैं। भारत में भी सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों में संसद वृद्धि कर सकती है।

स्विट्जरलैंड में न्यायिक पुनर्विलोकन अमान्य: लेकिन स्विट्जरलैंड में न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन की सांविधानिकता की जाँच नहीं दिया गया है। उसे संघीय विधियों की सांविधानिकता की जाँच करने का अधिकार नहीं है। संविधान की धारा 113 में कहा गया है कि सभी मामलों में संघीय न्यायालय द्वारा पारित विधियों को और सभी सर्वमान्य आज्ञाओं की तथा संघीय सभा द्वारा अनुसमर्थित सभी विधियों को मान्यता देने पर विवश होगा।" इस प्रकार संविधान की व्याख्या का दायित्व संघ-न्यायालय को नहीं दिया गया। वह केवल कैंटनों द्वारा निर्मित विधियों की सांविधानिकता की जाँच कर सकता है। और उन्हें अवैध घोषित कर सकता है, संघीय कानूनों को नहीं। यह अधिकार स्वयं विधान सभा तथा जनता को प्रदान किया गया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

2. सही विकल्प चुनिए (Choose the Correct Option) –

1. ब्रिटिश न्यायिक संगठन में सबसे ऊपरी पायदान पर है
   (क) लार्ड सभा (ख) क्वार्टर सेशंस का न्यायालय
   (ग) कोर्ट आफ क्रिमिनल अपील (घ) काउन्टी न्यायालय
2. यू.के. में विधि के प्रकार प्रचलित हैं–
   (क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) पाँच
3. न्यायपालिका को मूलत: प्रशासकीय अंग माना गया है–
   (क) ब्रिटेन में (ख) अमेरिका में (ग) फ्रांस में (घ) स्विट्जरलैण्ड में
4. फ्रांस के सर्वोच्च न्यायालय राज्य परिषद् में कितने सदस्य होते हैं?
   (क) 120 (ख) 135 (ग) 149 (घ) 171
5. स्विस संघीय न्यायालय में न्यायाधीशों एवं उप-न्यायाधीशों का कार्यकाल होता है–
   (क) 5 वर्ष (ख) 6 वर्ष (ग) 8 वर्ष (घ) 10 वर्ष

9.3 सारांश (Summary)

- अमेरिका में संविधान में न्यायालयों को न्यायिक पुनिर्विलोकन (Judicial Review) की शक्ति दी गयी है जो उन्हें संविधान का संरक्षक बना देता है। लेकिन इसके विपरीत इंग्लैंड में सांसद की सर्वोच्चता के कारण न्यायालयों को संसद की विधियों को अवैध घोषित करने की शक्ति नहीं है।
- ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था की एक अन्य विशेषता न्यायालयों की स्वतंत्रता तथा निष्पक्षता है। इंग्लैंड में न्यायाधीश पूर्णतया स्वतन्त्र है।
- न्यायाधीश नागरिक अधिकार के संरक्षक हैं। इंग्लैंड में न्यायालयों को इस कार्य के लिए जो श्रेय प्राप्त है वे किसी भी अन्य देशों के न्यायालयों को नहीं। मौलिक अधिकारों की सूची या लिखित संविधान स्वतन्त्रता की रक्षा के साधन नहीं है बल्कि विधि का शासन है।
- ब्रिटिश न्यायिक व्यवस्था की एक विशेषता जूरी-प्रथा (Jury System) अथवा अभिनिर्णायकों के रखने की प्रथा है। विधि के शासन की सफलता में अभिनिर्णायकों का बहुत बड़ा हाथ है। वे जनमत तथा मानवता को सदा

नोट

ध्यान में रखते हैं तथा कभी-कभी न्याय विरूद्ध भी जा सकते हैं या अभियुक्त को दण्ड देना अस्वीकार कर सकते हैं।

- ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था की अन्तिम, पर महत्त्वपूर्ण विशेषता न्यायालय की प्रवीणता (Efficiency) है। इंग्लैड में न्यायिक कार्यवाही शीघ्र होती है। तथा निर्णय में देरी नहीं होती।
- ब्रिटिश संविधान की एक अद्वितीय देन है, विधि का शासन। साधारण शब्दों में इसका तात्पर्य यह है कि इंग्लैंड का कानून ही देश का शासन करता है न कि किसी व्यक्ति-विशेष की स्वेच्छा। कानून सर्वोच्च है तथा इसके सामने सभी बराबर है।
- सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार के कार्यकरण के विवरण से उसकी महत्ता साफ हो जाती है न्यायाधीशों ने केवल संविधान की आत्मा तथा भाषा का ही निर्वाचन नहीं किया है बल्कि उन्होंने नीतियों का भी निर्धारण किया है। उन्होंने संविधान में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है। तथा उसे नयी दिशा प्रदान की है अत: इन्हें संविधान का नया निर्माता (New makers of the Constitution) कहा गया है। जस्टिस हाजू ने ठीक कहा है कि अमरीकन जनता संविधान के अधीन अवश्य रहती है। संविधान वही है जो न्यायाधीश कहते हैं। जस्टिस फ्रैंक ने तो यहाँ तक कहा है कि ''सर्वोच्च न्यायालय संविधान है।
- सर्वप्रथम नेपोलियन महान ने फ्रांसीसी विधि को संहिताबद्ध करने का महान कार्य अपने हाथ में लिया और उस योजना को अपनी विशिष्ट शक्ति एवं क्षमता से कार्यान्वित करते हुए कुछ ही वर्षों के अन्दर पूर्ण कर दिया। नेपोलियन द्वारा कानून के संग्रह को नेपोलियन-संहिता (Code of Napoleon) कहते हैं। आज के फ्रांस की विधियाँ प्राथमिक रूप से नेपोलियन संहिता पर आधारित है।
- फ्रांस में न्यायालयों का संगठन एकीकृत नहीं है, बल्कि संघात्मक है।
- संवैधानिक परिषद् फ्रांसीसी न्याय व्यवस्था की अनोखी विशेषता है। भारत तथा संयुक्त-राज्य अमेरिका में विधियों की संवैधानिकता की जांच करने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया है। इसे न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) का अधिकार कहते हैं। फ्रांस में पुनर्विलोकन का अधिकार नियमित न्यायालयों को न देकर एक-दूसरी संस्था को दिया गया है जिसे संवैधानिक परिषद् (constitutional Council) कहते हैं। इसे अर्द्ध-न्यायिक संस्था (Quasi-Judicial Institution) भी कहा जा सकता है।
- प्रशासकीय विधि फ्रांस की न्यायिक प्रणाली की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। साधारणत: प्रजातांत्रिक देशों में सभी के लिए एक ही प्रकार की न्याय-व्यवस्था होती है। लेकिन फ्रांस में दो प्रकार की न्याय-व्यवस्था है। सामान्य जनता के लिए दीवानी कानूनों (Civil Laws) तथा दीवानी न्यायालयों (Civil Courts) की व्यवस्था है, लेकिन सरकारी कर्मचारियों से सम्बन्धित मुकदमों का फैसला प्रशासकीय नियमों के आधार पर होता है।
- प्रशासकीय विधि के कारण फ्रांस में सरकारी कर्मचारी के लिए न्याय की अलग व्यवस्था है। इस दृष्टि से सरकारी कर्मचारियों और सामान्य जनता में कानून के मामले में भेद स्थापित किया जाता है। सरकारी कर्मचारी प्रशासकीय नियमों से प्रशासित होते है जबकि साधारण नागरिकों के लिए सामान्य विधि की व्यवस्था है। लेकिन ब्रिटेन में सामान्य कानून की धारणा को मान्यता दी जाती है। इस व्यवस्था के कारण ब्रिटेन में विधि का शासन है। विधि के शासन के अनुसार राज्य में बसनेवाले सभी लोग कानून के समक्ष बराबर हैं।
- प्रो. डायसी के अनुसार फ्रांस की प्रशासकीय विधि इंग्लैंड की सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी की न्यायिक व्यवस्था से भिन्न नहीं थी। गौरवपूर्ण क्रान्ति के पहले ब्रिटेन में कार्यपालिका, न्यायपालिका के अधीन नहीं थी। न्यायपालिका सरकार के किसी कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी। राज्य-कर्मचारियों के सम्बन्ध में विशेष अधिकार प्राप्त थे।
- प्रशासकीय विधि-प्रणाली के कारण फ्रांसीसी जनता को न्याय सस्ता और सुलभ हो जाता है। यह प्रणाली सामान्य न्यायालयों को प्रशासकीय मामलों से अलग कर अधिक कार्य-क्षमता प्रदान करती है। सचमुच प्रशासकीय विधि

नोट

के कारण फ्रांस के लोगों की वैयक्तिक स्वतन्त्रता निरापद होती रहती है। सरकारी कर्मचारियों के विरूद्ध सुलभ न्याय अन्य किसी प्रणाली में सम्भव नहीं है।

- संयुक्त-राज्य अमेरिका में संघीय न्यायालय (Federal Court) का संगठन एक पिरामिड (pyramid) की तरह है जिसके शीर्ष पर सर्वोच्च है सर्वोच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय के अधीन अनेक निम्न न्यायालय हैं। लेकिन स्विट्जरलैंड में समस्त संघीय क्षेत्र के लिए केवल एक ही न्यायालय है जिसे संघीय न्यायालय (Federal Tribunal) कहते हैं।
- यह देश का एकमात्र तथा सर्वोच्च संघीय न्यायालय है। इसके अतरिक्त संघीय धरातल पर निम्न न्यायालय (Subordinate Courts) नहीं है। हेनरी द्वितीय ने शासन को सफलतापूर्वक चलाया और राजतंत्र को दृढ बनाया। लेकिन, उससे अयोग्य उत्तराधिकारियों–रिचर्ड प्रथम और जॉन की गलत नीतियों ने क्रांति की आग भड़का दी; समर्थकों ने उसका साथ छोड़ दिया। अन्त में, बैरोनी ने जॉन को अपनी शर्तों को मानने के लिए बाध्य किया। फलतः, उसे मैग्नाकार्टा (Magna Carta) जिसे 'माँग-राजपत्र (The Great Charter) कहते हैं, पर अपनी मंजूरी देना पड़ी। यह राजपत्र विश्व का नहीं तो कम-से-कम ग्रेट ब्रिटेन का सबसे महत्त्वपूर्ण लेख अवश्य है। उन्नीसवीं शताब्दी में विशप बिलियम स्टब्स (Bishop Wiliam Stubbs) ने कहा था कि ब्रिटिश संविधान का पूरा इतिहास इस महान राजपत्र की एक व्याख्या है।
- संघीय न्यायालय के संगठन के सम्बन्ध में संविधान कोई निश्चय नहीं करता। वह सिर्फ इतना आदेश देता है कि विधि ही संघीय न्यायालय और उसके उपयोगों के संगठन की रीति, उसके सदस्यों और उप-सदस्यों की संख्या एवं उनकी पदावधि तथा वेतन आदि के संबंध में निर्णय करेगी।
- 1875 ई० में न्यायाधीशों की संख्या 9 थी। परन्तु 1943 ई० में एक विधि द्वारा इस संख्या को पुनः निर्धारित किया गया। न्यायाधीशों की संख्या 9 से बढ़कर 26-28 कर दी गयी। इनके अतिरिक्त उप-न्यायाधीशों (Alternate of Deputy Judges) की भी नियुक्ति की जाती है। जिनकी संख्या 11-13 होती है। इस समय संघीय न्यायाधिकरण में 26 न्यायाधीश तथा 12 वैकल्पिक न्यायाधीश है। यह उप-न्यायाधीश की अनुपस्थिति में उनके पद पर कार्य करते हैं।
- न्यायाधीशों एवं उप-न्यायाधीशों का निर्वाचन 6 वर्ष के लिए किया जाता है। यह भय था कि निर्वाचन पद्धति तथा 6 वर्ष के अल्पकाल के कारण न्यायाधीशों पर राजनीतिक प्रभाव पड़ता तथा उसकी निष्पक्षता एवं कार्यकुशलता समाप्त हो जाती।
- संघीय न्यायालय का स्थायी स्थान वाँड (Vand) नामक कैंटन की राजधानी लोजान नगर है।
- कार्य की सुविधा के दृष्टिकोण से स्विस न्यायालय को चार विभागों में बाँट दिया गया है। इनमे दो विभाग दीवानी मुकदमों पर विचार करते हैं, तीसरा विभाग सार्वजनिक विधि सम्बन्धी विवादों पर विचार करता है और चौथा विभाग ऋण तथा दीवानियों से सम्बन्धित मुकदमों पर विचार करता है। इन विभागों का संगठन पूरा न्यायालय दो वर्षो के लिए करता है।
- संघीय न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।
  (i) दीवानी (Civil)
  (ii) फौजदारी (Criminal)
  (iii) सांविधानिक (Constitutional) और
  (iv) प्रशासकीय (Administrative)
- संयुक्त-राज्य अमेरिका में शासन का प्रमुख सिद्धांत संविधान की सर्वोच्चता है। संविधान की सर्वोपरिता के रक्षार्थ न्यायालयों को एक महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपा गया है कि वह विधायिका तथा कार्यपालिका को नियन्त्रित करे। चूँकि संविधान सर्वोपरि है, इसलिए कार्यपालिका एवं विधायिका संविधान द्वारा निर्धारित सीमाओं के अंतर्गत ही कार्य करे और सर्वोच्च न्यायालय यह देखे कि वे संविधान का उललंघन तो नहीं कर रहे है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय को 'संविधान का संरक्षक तथा अभिभावक (Custodian and Guardian of the Constitution) बना दिया गया है। जिसके चलते

नोट

अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय को एक "अटूट सांविधानिक सभा" (Continuous constitutional convention) कांग्रेस का तीसरा सदन (Third Chamber of the Congress) कहा जाने लगा है।

- लेकिन स्विट्जरलैंड में न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन की सांविधानिकता की जाँच नहीं दिया गया है। उसे संघीय विधियों की सांविधानिकता की जाँच करने का अधिकार नहीं है। संविधान की धारा 113 में कहा गया है कि सभी मामलों में संघीय न्यायालय द्वारा पारित विधियों को और सभी सर्वमान्य आज्ञाओं की तथा संघीय सभा द्वारा अनुसमर्थित सभी विधियों को मान्यता देने पर विवश होगा।"
- स्विट्जरलैंड में संघीय स्तर पर केवल एक न्यायालय है, संघीय न्यायालय (Federal Tribunal)। अन्य कोई निम्न न्यायालय नहीं है। लेकिन अमेरिका में संघीय न्यायालय का श्रृंखलाबद्ध (Hierachical) संगठन है जिसके शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय तथा उसके नीचे क्रमश: दौरा न्यायालय तथा जिला न्यायालय है। भारत में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बहुत दृढ़ है। यहाँ देश के सभी न्यायालय एक श्रृंखला में गूँथे हुए हैं जिसके शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय है।
- स्विस संघीय न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या बहुत है। इसमें 26–28 न्यायाधीश तथा 11–13 उप–न्यायाधीश हैं जबकि अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय में केवल 9 और भारत के सर्वोच्च न्यायालय में 25 न्यायाधीश हैं लेकिन सोवियत सर्वोच्च न्यायालय में एक अध्यक्ष एक उपाध्यक्ष अनेक न्यायाधीश (वर्तमान समय 68) सहायक न्यायाधीश तथा अनेक जन निर्धारित हैं। स्विस संघ न्यायालय 4 विभागों में (Division) तथा सोवियत सर्वोच्च न्यायालय 5 मण्डलों (Collegiunits) में बँटे हुए है लेकिन अमेरिका तथा भारत में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है।
- अमेरिका में न्यायाधीश असीमित काल या 'सदाचार काल' (good behaviour) के लिए तथा भारत में 65 वर्ष की उम्र तक के लिए नियुक्त किये जाते हैं। सोवियत रूस में न्यायाधीश 5 वर्ष के लिए निर्वाचित होते हैं। स्विस संघीय न्यायालय के न्यायाधीश रूस की तरह 6 वर्ष के लिए निर्वाचित होते है, लेकिन पुर्ननिर्वाचन की व्यवस्था के कारण व्यावहारत: वे अमेरिका की तरह 'सदाचार काल' तक पदासीन रह सकते हैं।
- स्विस, अमरीकी तथा भारतीय न्यायालयों में इस विषय पर साम्यता है कि अपने निर्णयों को लागू करने के लिए उनके कोई प्राधिकारी नहीं होते। उन्हें संघ तथा राज्य सरकारों पर इनके लिए निर्भर रहना पड़ता है। स्विस संघीय न्यायालय इसके लिए कैंटनों तथा संघीय परिषद् पर आश्रित है।
- अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय का एक प्रमुख अधिकार न्यायियक पुनर्विलोकन का अधिकार है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार समिति रूप में प्राप्त है। लेकिन स्विस संघीय न्यायालय को सोवियत सर्वोच्च न्यायालय की तरह अधिकार प्रदान नहीं किया गया।

9.4 शब्दकोश (Keywords)

प्रवीणता : दक्षता, प्रभावशीलता।

सदाचारपर्यंत : आजीवन सुचितापूर्ण व्यवहार ।

कार्यपरायणता : ईमानदारीपूर्ण कार्य करना।

निर्वचन : कानून की व्याख्या करना।

9.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट और न्यायिक पुनर्विलोकन की व्याख्या कीजिए।
2. ब्रिटेन, फ्रांस और स्विट्जरलैण्ड में न्यायिक पुनर्विलोकन सिद्धांत की विवेचना कीजिए।
3. ब्रिटेन, फ्रांस और स्विट्जरलैण्ड की न्यायिक व्यवस्थाओं का विश्लेषणात्मक वर्णन कीजिए।
4. अमेरिका (USA) और स्विट्जरलैंड की संघीय व्यवस्था की व्याख्या कीजिए।

नोट

उत्तर :- स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. (1) एक मुख्य न्यायाधीश और 8 (2) आजीवन
   (3) कांग्रेस (4) अक्टूबर
   (5) संविधान का संरक्षक एवं अभिभावक
2. (1) क (2) ख (3) ग (4) ग (5) ख

9.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *तुलनात्मक शासन एवं राजनीति*–डॉ. बीरकेश्वर प्रसाद सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन (पी. एण्ड डी.) 24, दरियागंज, अंसारी रोड, दिल्ली।
2. *तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा*– ओम प्रकाश गाबा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।
3. *तुलनात्मक राजनीति*–जे.सी. जौहरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि., दिल्ली।
4. *तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ*–सी.बी. गेना, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड, दिल्ली।

नोट

इकाई–10: दलीय व्यवस्था (Party System)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

10.1 दलीय व्यवस्था का अर्थ और वर्गीकरण (Meaning and Classification of Party System)

10.2 दलीय व्यवस्था के प्रकार एवं कार्य (Kinds and Function of Party System)

10.3 सारांश (Summary)

10.4 शब्दकोश (Keywords)

10.5 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)

10.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- दलीय व्यवस्था के अर्थ, प्रकार एवं कार्यों की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों की कार्य प्रणाली, उनकी संरचनाओं और इन संरचनाओं को निर्धारित करने वाले कारकों से निरूपित होती है। इस आधार पर एक दलीय व्यवस्थाओं व दो या बहु–दलीय व्यवस्थाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं रह जाता है। गहराई से देखने पर विभिन्न प्रकार की दलीय व्यवस्थाओं में दलों के द्वारा किये जाने वाले कार्य व राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति में उनकी भूमिका मोटे तौर पर समानता रखती है। अत: दल प्रणाली दो या दो से अधिक दलों का स्वतन्त्र व खुले चुनावों में प्रतियोगी होना है, सही प्रतीत नहीं होती है। यह व्याख्या इस बात पर आधारित है कि दो या अधिक दलों के प्रतियोगी न होने पर राजनीतिक प्रक्रिया के प्रकटीकरण में मौलिक अंतर आ जाता है। इस कारण, अनेक विद्वान एक दल वाली व्यवस्था को, दलीय व्यवस्था में सम्मिलित नहीं करते हैं। हेरी एक्सटीन ने इन्टरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया ऑफ दी सोशल साइंसेज पुस्तक में अपने एक लेख 'पार्टी सिस्टम' में इसी मत की पुष्टि करते हुए लिखा है, "हम एक दल व्यवस्था की अवधारणा को लें तो सही अर्थों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं हो सकती। अगर दल व्यवस्था का अर्थ निर्वाचन प्रतियोगिता प्रक्रिया में दलीय इकाइयों की अन्त:क्रिया है तो एक दल व्यवस्था का विचार बेहूदा है क्योंकि केवल एक ही दल में प्रतियोगिता या अन्त:क्रिया नहीं हो सकती।

दल प्रणाली का उपरोक्त अर्थ अधिकांश विद्वानों के द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है। उनके अनुसार एक दल वाली शासन–व्यवस्थाओं में भी निर्वाचन प्रतियोगिता होती हैं डुवरजर के अनुसार नाजी जर्मनी, फासिस्ट इटली, सालाजार के समय में पुर्तगाल तथा 1923 से 1950 तक टर्की में एक दल के होते हुए भी निर्वाचन प्रतियोगिता का अभाव नहीं था। कोलमैन ने भी दल व्यवस्था में संख्या का आधार अस्वीकार करते हुए नाइजीरिया, घाना, सोमालिया, रोडेशिया और नागालैण्ड को एक से अधिक दलों के प्रतियोगी होने पर भी उन्हें एकदलीय प्रणाली में सम्मिलित किया है। ब्लेंकस्टीन इसी तरह मेक्सिको को एकदलीय व्यवस्था वाला राज्य मानते हैं। अत: दल व्यवस्था न संख्यात्मक लक्षण से परिभाषित की जा सकती है और न ही इसका निर्वाचन प्रतियोगिता के साथ सीधा सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है।

नोट

10.1 दलीय व्यवस्था का अर्थ और वर्गीकरण (Meaning and Classification of Party System)

दल व्यवस्था का आजकल व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जाता है। इसमें दलों की संख्या, संरचना, विचारधारा, उनकी पारस्परिकता इत्यादि अनेक लक्षणों का आधार लिया जाने लगा है। दल व्यवस्थाओं के वर्गीकरण-आधारों के विवेचन से दल व्यवस्था का अर्थ और भी स्पष्ट हो जाता है।

ला पालोम्बारा ने दलीय व्यवस्था के प्रकार का निर्धारण करते समय राजनीतिक दलों के निम्नलिखित लक्षणों का संदर्भ आवश्यक माना है–

(1) राजनीतिक दल की विशेषताएं व लक्षण,

(2) दलों के पारस्परिक सम्बन्ध,

(3) दल या दलों का समाज के अन्य वृत्तों (sectors) से सम्बन्ध, और

(4) दलों की क्रियान्वयता को प्रभावित करने वाले तत्त्व।

दलीय व्यवस्थाओं को इस आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। **ला पालोम्बारा** तथा **माइसन वीनर** ने इसी आधार को लेकर दल व्यवस्थाओं की दो मोटी श्रेणियों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार दल व्यवस्थाओं की दो प्रकार–प्रतियोगी दल व्यवस्थाएं व अप्रतियोगी दल व्यवस्थाएँ– ही माना जा सकता है।

हेरी एक्सटीन ने दल व्यवस्थाओं के तीन नियामक प्रमुख माने हैं। उसके अनुसार किसी दल को केवल संख्या के आधार पर किसी दल व्यवस्था में रखना उपयुक्त नहीं है। इसी तरह वह केवल निर्वाचन प्रतियोगिता को भी दलों को, दल व्यवस्थाओं में वर्गीकृत करने का ठोस आधार नहीं मानता है। उसके अनुसार दलों को दलीय व्यवस्थाओं में वर्गीकृत करते समय निम्नलिखित बातों का आधार रखना अधिक तर्कसंगत है–

(1) सामान्य राजनीतिक व्यवस्था व उसकी उप-संरचनाएं,

(2) सामाजिक संरचना व संस्कृति, और

(3) स्वयं दल का इतिहास।

एक्सटीन की मान्यता है कि दल व्यवस्थाओं को, राजनीति की व्यापक और उसके अन्य पहलुओं के प्रति उनकी अनुक्रियात्मकता के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है। इसी तरह दल व्यवस्थाओं को, सामाजिक-सांस्कृतिक शक्तियों के राजनीतिक संयुक्तक के साधन के रूप में देखा जा सकता है। राजनीतिक दल का अतीत भी उसके दल व्यवस्था विशेष में रखने का आधार बनाया जा सकता है लम्बे अतीत वाले राजनीतिक दल की गतिविधियां अतीत के सन्दर्भ से नियमित रहती हैं। ऐसे दल का कार्य मार्ग बहुत कुछ निश्चित रहने के कारण दिशा निर्देश की क्षमता प्रस्तुत कर देता है इस प्रकार, **एक्सटीन** ने दल व्यवस्थाओं को अत्यधिक व्यापक संदर्भ में रखकर ही वर्गीकृत करने का सुझाव दिया है।

सारटोरी ने भी व्यवस्थाओं के वर्गीकरण में केवल संख्या ही के आधार को भ्रांतिपूर्ण कहा है। उसने दलों के वर्गीकरण में, इनके वैचारिक फासले, वैचारिक उग्रता तथा सत्ता काल या उनके सत्ता में आने की सम्भावना को ध्यान में रखने की बात कही है। उसके अनुसार दल व्यवस्था के रूप का निर्धारण करते समय दलों की संख्या का आधार छोड़ा नहीं जा सकता है, परन्तु केवल संख्या का ही आधार लेना गुमराह होना है। अत: उसने दल व्यवस्थाओं का वर्गीकरण करने के लिए त्रिमुखी आधार प्रतिपादित किया है। यह त्रिमुखी आधार है–

(1) राजनीतिक दलों की संख्या,

(2) दलों की विचारधारा की प्रकृति, और

(3) दलों में विखण्डन की मात्रा (fragmentation)

सारटोरी दल प्रणालियों के वर्गीकरण में संख्या के आधार को भ्रान्तिपूर्ण मानकर भी इस आधार को त्यागने से इनकार

नोट

करता है। उसका कहना है कि दलों की संख्या अपने आप में दलों के लक्षण प्रकट करने वाली है। अत: इसे छोड़ा नहीं जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, किसी राजनीतिक व्यवस्था में दो दलों का होना ही राजनीतिक व्यवस्था, राजनीतिक दलों का निर्वाचन प्रणालियों के बारे में बहुत कुछ तथ्य प्रस्तुत कर देता है।

क्या आप जानते हैं **सारटोरी** दल प्रणालियों के वर्गीकरण में संख्या के आधार को भ्रान्तिपूर्ण मानकर भी इस आधार को त्यागने से इनकार करता है।

ब्लोन्डेल ने भी दलीय प्रणालियों के वर्गीकरण के आधारों की चर्चा की है। उसके अनुसार भी केवल संख्या को देखकर किसी देश की दल प्रणाली के स्वरूप निर्धारण का प्रयास अधूरा है। वह दल प्रणाली के वास्तविक रूप, उसकी प्रकृति, उसके विकास की स्थिति तथा दलों के प्रतिमानित सम्बन्धों को वर्गीकरण के आधार मानता है, परन्तु उसकी मान्यता है कि दलों में इतनी विविधताएं व विचित्रताएं हैं कि केवल इन्हीं आधारों पर किया गया वर्गीकरण विशेष उपयोगी नहीं रहता है। इसलिए वह इन आधारों के साथ कुछ अन्य लक्षणों को भी जोड़ने की बात कहता है। उसके अनुसार निम्नलिखित तथ्य भी दल प्रणाली के प्रकार के नियामक होते हैं–

(1) राजनीतिक दलों की क्रिया-कलाप की दृष्टि से गणना और देश की राजनीति में उनकी भूमिका।

(2) राजनीतिक व्यवस्था में दल की शक्ति, इस शक्ति के माप में दल की सदस्य संख्या, मतदान प्रतिशत और व्यवस्थापिका में उसे प्राप्त स्थानों की संख्या को आधार बनाया जा सकता है।

(3) दलों में विचारधारा सम्बन्धी अन्तर।

(4) दलों के समर्थन का आधार।

(5) दलों का संगठन।

ब्लोन्डेल ने इन पांच तत्त्वों के आधार पर दल व्यवस्थाओं के पांच प्रकार माने हैं। यह हैं–एकदलीय, द्विदलीय, ढाई-दलीय, एक दल-प्रधान, बहुदलीय, तथा बहुदलीय योग दल प्रणालियां। ब्लोन्डेल का यह वर्गीकरण विशेष परिशुद्धता युक्त नहीं है। इसमें बर्मा, चीन तथा मैक्सिको एकदलीय प्रणाली के वर्ग में ही रखे जाएंगे जबकि इन तीनों ही राज्यों में दल की गतिविधियां बहुत कुछ भिन्नता रखती हैं।

दल प्रणाली के अर्थ व दल-प्रणालियों में वर्गीकरण के आधारों का विवेचन करते समय यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दल व्यवस्था का सर्वसम्मत अर्थ नहीं किया जा सकता इसी तरह दल व्यवस्था के वर्गीकरण के आधारों पर भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद विद्यमान हैं।

एलेन बाल का वर्गीकरण (Alan Ball's Classification)

एलेन बाल के अनुसार, दल पद्धतियों के कई वर्गीकरण सम्भव हैं। चाहे कोई भी वर्गीकरण हम प्रयोग में लाएं, इसमें जांच करने की बात सिर्फ इतनी है कि वह वर्गीकरण हमें ऐसे सामान्य निष्कर्षों पर पहुंचाए जो सही व सूचनाप्रद हों। उसके अनुसार दल व्यवस्थाओं की बहुत बड़ी संख्या होने के कारण वर्गीकरण की कोई भी योजना बिल्कुल सही नहीं होगी। वर्गीकरण के आधारों की अनेकता के कारण भी दल व्यवस्थाओं के वर्गीकरण में यह पेचीदगियां उत्पन्न होती हैं। दलों का संचालन दल पद्धतियों के अन्तर्गत होता है और पद्धति का प्रकार दल के आचरण पर गहरा प्रभाव डालता है। जैसे सुस्पष्ट विचारधारा वाले केन्द्रीकृत, अनुशासित राजनीतिक दल का द्विदलीय पद्धति या बहुदलीय पद्धति के अन्तर्गत अलग-अलग आचरण होता है। अत: दल व्यवस्थाओं का वर्गीकरण केवल प्रतियोगी दलों की संख्या के आधार पर करने में भी काफी सावधानियां रखना आवश्यक है। बड़े दलों की संख्या समान होते हुए भी दल व्यवस्थाओं के बीच महत्त्वपूर्ण अन्तर होते हैं। इस तरह, यदि हम द्विदलीय, बहुदलीय तथा एकदलीय व्यवस्थाओं के बीच अन्तर करें तो ब्रिटिश और अमरीकी दल पद्धतियां एक प्रवर्ग में आएंगी और बहुदलीय पद्धतियां होने के कारण इटली व स्वीडन

नोट

में दल पद्धतियों को एक साथ वर्गीकृत करने की गलती की जाएगी तथा रूस, तंजानिया व बर्मा की एकदलीय प्रणालियों को एक ही खाने में रख दिया जाएगा। रूस, तंजानिया व बर्मा की पद्धतियों को एक प्रकार की मानना एकदलीय पद्धति के सामान्य लक्षणों के विषय में सही ज्ञान का परिचय देना नहीं होगा। अत: दल व्यवस्थाओं के वर्गीकरण में सावधानियां व सतर्कताएं रखकर ही उपयोगी वर्गीकरण किया जा सकता है। वर्गीकरण के आधारों को व्यापक व सुनिश्चित बनाकर ही वर्गीकरण करना होगा। एलेन बाल ने दलों की संख्या, उनकी संरचना तथा उनकी ताकत के सुनिश्चित आधार लेकर निम्नलिखित दल व्यवस्थाएं बताई हैं–(1) अस्पष्ट द्विदलीय पद्धतियां (indistinct party systems), (2) सुस्पष्ट द्विदलीय पद्धतियां (distinct two party systems), (3) कार्यवाही बहुदलीय पद्धतियां (working multi-party systems), (4) अस्थिर बहुदलीय पद्धतियां (unstable multi-party systems), (5) प्रभावी दल पद्धतियां (dominant party systems), (6) एकदलीय पद्धतियां (one party systems), (7) सर्वाधिकारी एकदलीय पद्धतियां (totalitarian one party systems)।

(1) **अस्पष्ट द्विदलीय पद्धतियों** में दलीय विचारधाराों पर कम बल दिया जाता है, अधिक्रमिक संरचना का अभाव और मतों को जीतने के कार्यों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। इस पद्धति में दल केंद्रीकृत होते हैं और कुछ श्रेष्ठजनों को आगे बढ़ाने के स्थान पर व्यक्तिगत गुणों पर आधारित ख्याति पर अधिक निर्भर रहते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका तथा आयरलैण्ड की दलीय पद्धतियों को अस्पष्ट द्विदलीय पद्धतियां कहा जा सकता है।

(2) **सुस्पष्ट द्विदलीय पद्धतियों** में दल अधिक केंद्रीकृत होते हैं। पश्चिम जर्मनी और आस्ट्रेलिया की संघीय पद्धतियों के अन्तर्गत भी यही स्थिति है। वे दल, विशिष्ट धार्मिक जटिलताओं को लेकर वर्गों पर आधारित होने की प्रवृत्ति रखते हैं। इस पद्धति के अन्तर्गत चुनावी लड़ाई में विचारधारा की टक्कर राजनीति को कुछ अधिक सरस बना देती है। इन पद्धतियों में संसदीय स्तर पर अल्पमत दलों का अस्तित्व अवश्य रहता है, किन्तु इन छोटे दलों के समर्थन सहित या बिना इनके समर्थन के, दो बड़े दलों में से एक अपनी स्थिर सरकार बनाने में समर्थ होता है। आम तौर पर सुस्पष्ट द्विदलीय पद्धतियों में सरकार अगले विविध चुनाव तक या प्रधानमंत्री के विधान मण्डल को भंग करने के पक्ष में होने तक बनी रहती है। इस प्रकार पश्चिम जर्मनी में फ्री डेमोक्रेट्स, आस्ट्रेलिया में कंट्री पार्टी तथा ब्रिटेन में लिबरल पार्टी जैसी तीसरी पार्टियों के होते हुए भी इन देशों की द्विदलीय पद्धतियों के आवश्यक लक्षणों में गड़बड़ी पैदा नहीं हो सकी है। अत: ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी व आस्ट्रेलिया सुस्पष्ट द्विदलीय व्यवस्थाओं के उदाहरण कहे जा सकते हैं।

(3) **कार्यवाहक बहुदलीय पद्धतियां** वे दल पद्धतियां हैं जो दो से अधिक दल वाली होते हुए भी स्पष्ट द्विदलीय पद्धतियों के समान आचरण करती हैं–खास तौर से सरकारों की स्थिरता के सम्बन्ध में। इस प्रकार स्वीडन तथा नार्वे में सोशल डैमोक्रेटिक पार्टियां हैं जिनका विरोध उदारवादी, कृषक, अनुदारवादी, क्रिश्चियन पार्टियां जैसी कई पार्टियां करती हैं पर बुनियादी स्थिति यह रहती है कि या तो सोशल डेमोक्रेटों की सरकारें बनती हैं, जिसे संसद में काम चलाने के लिए बहुमत प्राप्त हो जाता है अथवा नार्वे की तरह केन्द्र में पार्टियों की स्थिर सम्मिलित सरकार बन जाती है। अत: स्वीडन व नार्वे में कार्यवाही बहुदलीय पद्धतियां कही जा सकती है।

(4) **अस्थिर बहुदलीय पद्धतियों** में सरकार की स्थिरता का अभाव होता है। ऐसी पद्धतियों वाले राज्यों में सरकारें अधिकतर केन्द्र की पार्टियों के साथ साझेदारी से बनती हैं, जिनका विरोध दक्षिण और वाम की पार्टियां करती हैं। इस प्रकार की दल पद्धति का सर्वोत्तम उदाहरण इटली में मिलता है। इटली की संसद में कम से कम आठ पार्टियों का प्रतिनिधित्व रहता है और द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आज तक (1977) कोई भी पार्टी बहुमत में नहीं आ सकी है। क्रिश्चियन डेमोक्रेट दल सबसे बड़ा दल है। अत: यही सरकार बनाने वाली पार्टी रह गई है, जिसने 'दाईं' या 'बाईं' तरफ को झुकी हुई छोटी पार्टियों के साथ साझेदारी से इटली का शासन चलाया है। ऐसी दलीय पद्धतियों वाले राज्यों में सरकारों का पतन जल्दी-जल्दी होता रहता है लेकिन एक सरकार के पतन के बाद अधिकतर थोड़े समय में ही दूसरी सरकार बन जाती है। यह दूसरी सरकार लगभग उस पूर्ववर्ती सरकार, जिसके पतन ने इसके गठन की परिस्थिति पैदा की थी, की तरह ही होती है।

नोट

(5) **प्रभावी दल पद्धतियां** वे पद्धतियां हैं, जिनके अन्तर्गत दल प्रतियोगिता चलने दी जाती है जिससे एक दल का उदय होता है जो दूसरे सब दलों पर छा जाता है। भारत प्रभावी दल पद्धति का अच्छा उदारहरण है–आजादी के बाद से 1977 तक राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही एकमात्र शासक दल है। बहुत से दूसरे दल भी मौजूद हैं और उन्हें प्रभावी दल से खुली प्रतियोगिता की छूट दी गई है। यहां तक कि कुछ एक छोटे दलों ने कई भारतीय राज्यों के शासन पर जब-तब नियंत्रण भी किया है। मेक्सिको में भी ऐसी ही पद्धति है। यहां 'पार्तिदो रिवोल्यूशिनेरिओ इंस्टीट्यूशिनल' (PRI) ने 1917 से कोई भी राष्ट्रपतीय चुनाव नहीं हारा है। लेकिन यह अपने महत्त्वहीन प्रतिद्वंदी, पार्तिदो एसियो नेशनल (PAN) को चुनावों में हर स्तर पर टक्कर देने देता है। भारत और मेक्सिको की तुलना दल पद्धतियों की कुछ कठिनाइयों की ओर संकेत करती है। इन दोनों देशों में प्रभावी दल और चुनावी प्रतियोगिता है फिर भी प्रतियोगी दलों पर कांग्रेस का नियंत्रण पी. ए. एन. पर पी. आर. आई. के नियंत्रण से कम है।

(6) **एकदलीय पद्धतियों** की सही परिभाषा करना दुष्कर है। इस श्रेणी में मिस्र से लेकर तंजानिया तक रखे जा सकते हैं। मिस्र में समाजवादी संघ का निर्माण क्रांतिकारी विशिष्ट वर्ग ने सरकार को व्यापक जन समर्थन दिलाने के लिए किया था। तंजानिया में एक ही दल, तंजानिया अफ्रीकी राष्ट्रीय संघ के अन्दर गुटों में खींचतान और चुनावी प्रतियोगिता के लिए इजाजत रहती है। कीनिया एकदलीय पद्धति का उदाहरण माना जा सकता है। शेख मुजीब के समय में बंगला देश तथा वर्तमान में बर्मा भी एकदलीय पद्धतियों के प्रवर्ग में ही रखे जाते हैं। इन पद्धतियों में चुनावी प्रतियोगिता का पूर्णतया अभाव नहीं होता है। दल में ही गुट, चुनावी खींचतान करने की कुछ-कुछ छूट रखते हैं।

(7) **सर्वाधिकारी दल पद्धतियों** को एकदलीय पद्धतियों से कई बातों में भिन्न पाते हैं। इन पद्धतियों में सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक सक्रियता के सब पहलुओं पर दल का अत्यधिक नियंत्रण रहता है। इनमें प्रभावी विचारधारा पर बल दिया जाता है तथा केवल शासक दल के हाथों में ही राजनीतिक अभिजनों की भर्ती होती है। रूस, चीन, पूर्वी जर्मनी व अन्य साम्यवादी देशों में सर्वाधिकारी एकदलीय प्रणालियां पाई जाती हैं।

एलेन बाल के द्वारा किया गया वर्गीकरण व्यापक और गत्यात्मक होते हुए भी सीमित उपयोगिता रखता है। यह वर्गीकरण की बहुत बारीक योजना होते हुए भी सामान्य निष्कर्षों पर पहुंचाने में सहायक नहीं है। इससे दल पद्धतियों के अन्तर्गत होने वाले जटिल परिवर्तनों की पृष्ठभूमि का संकेत भी नहीं मिलता है। यह बात सही है कि दल पद्धतियों के अन्तर्गत होने वाले परिवर्तनों का निर्धारण जटिल होता है तथा इन परिवर्तनों को अलग-अलग करके समझाना कठिन है फिर भी वर्गीकरण की योजनाओं में दल पद्धतियों की गत्यात्मक ताकतों की अनदेखी नहीं की जा सकती। अत: दल व्यवस्थाओं के वर्गीकरण की बहुत बारीक योजनाओं के मुकाबले में मोटी या सामान्य योजनाएं इस कारण श्रेष्ठतर हो जाती हैं क्योंकि, उनमें दल की संरचनाओं के गत्यात्मक पहलुओं का समावेश सम्भव होता है। इस प्रकार के वर्गीकरण की योजना ला पालोम्बारा और माइनर वीनर के द्वारा प्रस्तुत की गई है।

नोट्स एलेन बाल के द्वारा किया गया वर्गीकरण व्यापक और गत्यात्मक होते हुए भी सीमित उपयोगिता रखता है।

ला पालोम्बारा तथा वीनस का वर्गीकरण (La Palombara and Myron Weiner's Classification): दल व्यवस्थाओं का वर्गीकरण कई अन्य आधारों पर भी किया जा सकता है। **ला पालोम्बारा** तथा **माइरल वीनर** ने दल प्रणालियों को चुनावी प्रतियोगिता के आधार पर वर्गीकृत किया है। इन्होंने उन राजनीतिक दलों को जो चुनावी प्रतियोगिता में स्वतन्त्रतापूर्वक सम्मिलित रहते हैं, प्रतियोगितात्मक दल पद्धति की श्रेणी में तथा उन दलों या दल को जिनमें ऐसी प्रतियोगिता का अभाव होता है, अप्रतियोगितात्मक दल पद्धति की श्रेणी में रखा है। इन दोनों प्रकार की दल पद्धतियों का पृथक-पृथक वर्णन इस प्रकार है–

नोट

(क) प्रतियोगी दल प्रणालियां (The competitive party systems)–प्रतियोगी दल प्रणाली की व्याख्या करते हुए **पालोम्बारा** तथा **वीनर** ने लिखा है कि "प्रतियोगी दल प्रणाली में सत्तारूढ़ दल या दलों का मिला-जुला गठबन्धन अपने आपको सरकार के नियंत्रक के रूप में रखने के लिए प्रतियोगी वातावरण में संघर्षशील रहता है। ऐसे वातावरण के लिए यह आवश्यक है कि जो सत्ता से बाहर है वे बिना हिंसा का सहारा लिए सत्ता के अन्दर सैद्धान्तिक व विधिक रूप से आ सकें। भारत, मलेशिया, श्रीलंका, अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया व पश्चिमी यूरोप के राज्यों में ऐसी ही दल प्रणाली पाई जाती है। प्रतियोगी दल प्रणाली में सभी द्विदलीय व बहुदलीय पद्धतियां सम्मिलित होती हैं किन्तु बारीकी से देखने पर ब्रिटेन व अमरीका की द्विदलीय पद्धति में भी अन्तर दिखाई देते हैं। अत: प्रतियोगी दल प्रणाली में भी अनेक प्रकार के दल पद्धति प्रतिमान पहचाने जा सकते हैं।

ला पालोम्बारा तथा वीनर ने प्रतियोगी दल पद्धति का, दलों की आंतरिक विशेषताओं तथा राजनीतिक व्यवस्था में सरकार पर नियंत्रण बनाए रखने की विधि के आधार पर उप-पद्धतियों में वर्गीकरण किया है। राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों के द्वारा सत्ता की अदल-बदल किस सीमा तक होती है इस आधार पर दल पद्धतियां दो प्रकार की मानी गई हैं। इन्होंने यह दो पद्धतियां–उलटनीय दल पद्धतियां (turnover party systems) व आधिपत्ययी दल पद्धतियां (hegemonic party systems) मौलिक अन्तरों वाली बताई हैं, किन्तु यह दोनों प्रकार की पद्धतियां, दो-दो रूप रख सकती हैं। दलों की आन्तरिक विशेषताओं के आधार पर इनमें से हर एक पद्धति में या तो विचारधारा का प्राधान्य हो सकता है या फलमूलकता का जोर हो सकता है। अत: इन दोनों आधारों पर राजनीतिक दलों की प्रतियोगी दल पद्धतियों को चार प्रकार की उप-श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। यह चार प्रकार की उप-श्रेणियां इस प्रकार हैं–

(1) आधिपत्ययी-वैचारिक दल पद्धतियां

(2) आधिपत्ययी-फलमूलक दल पद्धतियां

(3) उलटनीय-वैचारिक दल पद्धतियां

(4) उलटनीय-फलमूलक दल पद्धतियां

आधिपत्ययी-वैचारिक दल पद्धतियां–जिस दल पद्धति में केन्द्रीय प्रवृत्ति विचारधारा की है तथा सत्तारूढ़ दल या दलों का मिला-जुला समूह लम्बी अवधि तक सरकार पर नियंत्रण रखता है, ऐसी दल पद्धति को आधिपत्ययी-वैचारिक दल पद्धति कहा जाता है। ऐसी पद्धति में सत्तारूढ़ दल या दलों का गठबन्धन बार-बार चुनावी प्रतियोगिता के द्वारा सत्ता में अपने आपको बनाए रखने की अवस्था में रहता है। अमरीका में न्यू डील (New deal) और फेयर डील (Fair deal) के समय ऐसी ही दल पद्धति रही थी। विश्वयुद्ध के बाद जापान की राजनीति में लिबरल दल का छाया रहना अभी तक नार्वे में डेमोक्रेटिक सोशलिस्ट दल का सरकार पर नियंत्रण तथा स्वतन्त्रता के बाद भारत में कांग्रेस दल का 30 वर्ष तक लगातार सत्ता में बना रहना, इन देशों की दल पद्धतियों को आधिपत्ययी-वैचारिक दल पद्धति की श्रेणी में ला देता है।

आधिपत्ययी फलमूलक दल पद्धतियां–इनमें केन्द्रीय प्रवृत्ति तथ्यात्मकता की ओर झुकी रहती है। इनमें राजनीतिक दल लम्बी अवधि तक सत्ता में बने रहते हैं तथा राजनीतिक दल विकास के मार्ग पर मंथर गति से चलते हैं, क्योंकि ऐसी पद्धतियों में दलों को तेजी से आगे बढ़ाने वाली शक्ति के रूप में विचारधारा की प्रेरणा का अभाव रहता है। अमरीका में 1896 से 1932 तक रिपब्लिकन दल ऐसी ही पद्धति बन गया था।

उलटनीय-वैचारिक दल पद्धतियां–इनमें दलों की केन्द्रीय प्रवृत्ति विचारधारा की रहती है किन्तु सत्ता में दलों की जल्दी-जल्दी अदला-बदली होती रहती है। इस प्रकार की पद्धतियों में समाज दो या अनेक विचारधारा आयामों में बराबर-बराबर विभक्त रहता है जिससे कोई भी दल अपनी विचारधारा के अनुसार बनाई गई नीतियों को शासन-तन्त्र के माध्यम से क्रियान्वित करना असम्भव पाता है, तथा एक के बाद दूसरा दल सत्ता में आने पर उसके पूर्ववर्ती दल द्वारा लागू की गई वैचारिक नीतियों को उलटने का प्रयास करता है। ऐसी दल पद्धतियों में सत्तारूढ़ दल या दलों की हेरा-फेरी मौलिक उथल-पुथल व खलबली उत्पन्न कर देती है। ऐसे वैचारिक दल जो सामाजिक, आर्थिक व

नोट

राजनीतिक परिवर्तन से प्रतिबद्ध हों, परिवर्तन के स्थान पर आधिपत्ययी अवस्था चाहेंगे परन्तु परिस्थितियां ऐसा करने में बड़ी बाधा बनकर खड़ी हो जाती हैं। फ्रांस की दल व्यवस्था इसी प्रकार की है।

उलटनीय-फलमूलक पद्धतियां–इनमें राजनीतिक दल बार-बार सत्ता में आने-जाने की केन्द्रीय प्रवृत्ति के कारण, सत्ता में आते ही तेजी से आगे बढ़ने का कार्यक्रम अपनाते हैं। ऐसी पद्धति वाले राजनीतिक दलों में वैचारिक मतभेद आधारभूत नहीं होते हैं। सामान्य परिस्थितियों में अमरीका व ब्रिटेन के राजनीतिक दल इस प्रकार की श्रेणी में रखे जा सकते हैं।

प्रतियोगी दल पद्धति की इन उप-श्रेणियों से स्पष्ट होता है कि राजनीतिक दल की वैचारिक, फलमूलक या आधिपत्ययी और उलटनीय प्रकृति हमें दलों की आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक विकास में भूमिका समझाने में सहायक होती है। अत: प्रतियोगी पद्धतियों के उपरोक्त उप-विभाजन दलों की संरचना, दलों की कार्यविधि व दलों के राजनीतिक व्यवस्था के सम्बन्धों के बारे में व्यापक जानकारी देने वाले कहे जा सकते हैं।

(ख) अप्रतियोगी दल-प्रणालियां (The non-competitive party systems)–एकदलीय पद्धतियों में सामान्यत: चुनावी प्रतियोगिता का अभाव रहता है। एक दल प्रतिमान परिभाषा से ही आधिपत्ययी प्रकार का होता है, किन्तु यह सम्भव है कि मौजूदा एक दल परिस्थिति अन्तत: प्रतियोगी बन जाए। ला पालोम्बारा तथा वीनर के अनुसार 'राष्ट्रीय एकीकरण की स्थापना, अपेक्षाकृत आधुनिक अर्थव्यवस्था का विकास तथा अन्य महत्त्वपूर्ण समस्याओं व मांगों के पूर्ण होने पर राजनीतिक आधुनिकीकरण की स्वाभाविक शक्तियां कई बार एक दल परिस्थिति में प्रतियोगी दलों की अवस्था प्रतिस्थापित कर देती है, किन्तु एक दल पद्धतियों की संरचना, कार्यविधि तथा नेतृत्व इतना कठोर होता है कि अन्य दल की उत्पत्ति नहीं हो पाती है। अत: अप्रतियोगी दल प्रणालियों में एक दल से अधिक दलों का होना ही विरोधाभास है। वैसे एक दल होते हुए भी इन पद्धतियों में पर्याप्त अन्तर पाए जाते हैं। ला पालोम्बारा तथा वीनर ने अप्रतियोगी दल प्रणालियों में तीन उप-श्रेणियां करके इनको तीन प्रकार ही माना है। यह तीन प्रकार निम्नलिखित हैं–

(1) एक दल निरंकुशता पद्धति

(2) एक दल बहुलवादी पद्धति

(3) एक दल सर्वाधिकारी पद्धति

एक दल निरंकुशता पद्धति में, एक अखण्डित या एकाश्य (monolithic) विचारधारा आमुखी व असर्वाधिकारवादी दल सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था पर आच्छादित रहता है। इस प्रकार की दल पद्धति में विरोधी सदस्यों को क्रांतिकारी या राष्ट्रवादी निमित्तों के प्रति देशद्रोही तथा सुरक्षा व एकता के लिए खतरा कहकर दबा दिया जाता है। इस प्रकार की पद्धतियों में राष्ट्र के गन्तव्य व आकांक्षाएं एक ही दल से तादात्मय रखती हैं। सामान्यतया ऐसी दल पद्धति में दल व राष्ट्र का एक ही चमत्कारिक व्यक्ति द्वारा नियंत्रण व निर्देशन होता है। फ्रैंको (Franco) के समय स्पेन, एकक्रूमा के समय घाना, दाइम (Diem) के समय दक्षिण वियतनाम तथा वर्तमान समय में क्यूबा, बर्मा और माली जैसे देशों में एक दल निरंकुशता पद्धति पाई जाती है।

एक दल बहुलवादी पद्धति वाले देश अर्ध-निरंकुश होते हैं। इनमें एक ऐसा दल होता है जो संगठन में बहुलवादी दृष्टिकोण में कठोर वैचारिक के स्थान पर तथ्यात्मक व अन्य समूहों को निष्ठुरता से खत्म करने के बजाय अपने में आत्मसात करने वाला होता है। एक दल निरंकुशता पद्धति से यह दल पद्धति इस बात में भिन्नता रखती है कि इसमें वैचारिक दृष्टिकोण के बजाय तथ्यात्मक दृष्टिकोण का अनुपालन होता है। मैक्सिको, सेनेगल, आइवरी कोस्ट व केमेलन में ऐसी ही दल पद्धतियां विद्यमान हैं।

एक दल सर्वाधिकार पद्धति में राज्य एकाश्म दल के हाथ में यन्त्र मात्र होता है। इस प्रकार की पद्धति में दल एकाधिकारी ही नहीं होता है वरन समाज की आर्थिक व्यवस्था व सामाजिक व्यवस्था के पुनर्गठन के लिए परम सत्ता का उपयोग भी करता है। इसके द्वारा ही एक वैचारिक गन्तव्य की व्याख्या होती है। चीन, रूस, उत्तरी कोरिया व पूर्वी यूरोप के साम्यवादी राज्यों में एक दल सर्वाधिकार पद्धतियां हैं।

ला पालोम्बारा व **वीनर** ने दल पद्धतियों का वर्गीकरण करते समय दो दृष्टिकोण अपनाकर, दल पद्धतियों के वर्गीकरण को गत्यात्मक बनाया है। उन्होंने राजनीतिक दलों को सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तनों की प्रक्रिया के

नोट

प्रतिफल के रूप में देखने का प्रयास किया है। इसी तरह उन्होंने राजनीतिक दलों को राजनीतिक विकास करने वाली स्वतन्त्र संस्थागत ताकत के रूप में रखते हुए वर्गीकृत किया है। इस कारण इनका वर्गीकरण यथार्थवादी, गत्यात्मकता युक्त व व्यापकत्तम है, किन्तु इस वर्गीकरण में इतना अधिक लचीलापन है कि एक ही दल अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग प्रकार की दल प्रणाली में वर्गीकृत किया जा सकता है। वैसे कुछ विद्वानों का कहना है कि ला पालोम्बारा तथा वीनर का वर्गीकरण इसी विशेषता के कारण सर्वश्रेष्ठ बन जाता है। यह वर्गीकरण अप्रतियोगी दल पद्धतियों के तीन प्रकार बनाकर एक दल पद्धतियों में व्याप्त अन्तरों का अच्छा स्पष्टीकरण भी कर देता है। अत: दल पद्धतियों का यह वर्गीकरण संतोषजनक माना जा सकता है।

दल पद्धतियों के वर्गीकरणों के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि दल पद्धतियों की संख्या खासी बड़ी होने के कारण वर्गीकरण की कोई भी योजना बिलकुल सही नहीं हो सकती है। वैसे भी दल पद्धतियों के कई वर्गीकरण सम्भव हैं चाहे कोई भी वर्गीकरण हम प्रयोग में लाएं इसमें जांच करने की बात सिर्फ इतनी है कि यह वर्गीकरण हमें ऐसे सामान्य निष्कर्षों तक पहुंचाता है या नहीं जो सही और सूचनाप्रद हों। यही कारण है कि वर्गीकरण योजनाओं में आजकल केवल दलों की संख्या का ही आधार नहीं लिया जाता है।

10.2 दलीय व्यवस्था के प्रकार एवं कार्य (Kinds and Functions of Party System)

दल पद्धतियों को मुख्यत: तीन वर्गों में रखा जाता है–

1. एकदलीय पद्धति (Single party System)
2. द्वि-दलीय पद्धति (Bi-party or two party System)
3. बहुदलीय पद्धति (Multi-party System)

1. **एकदलीय पद्धति** (Single party System)–एकदलीय पद्धति वह व्यवस्था है जिसमें केवल एक ही राजनीतिक दल का अस्तित्व रहता है। अनिवार्य रूप से सरकार पर उसी दल का अस्तित्व रहता है। अधिकारवादी तथा साम्यवादी; जैसे नाइजीरिया, जर्मनी, फासिस्ट इटली, स्पेन, सोवियत रूस, साम्यवादी चीन आदि में ऐसी व्यवस्था पायी जाती है। इस पद्धति के समर्थकों का कहना है कि यह सच्चे अर्थ में जनतांत्रिक है। जनतंत्र सम्पूर्ण जनता का शासन है, विभिन्न वर्गों का नहीं। सारी जनता इसका प्रतिनिधित्व कर सकती है, अनेकदल नहीं, प्रजातन्त्र में अनेक दलों का अस्तित्व तो एक विरोधाभास है। एकदलीय व्यवस्था से जनता में विभाजन तथा गुटबंदी का डर भी खत्म हो जाता है। राष्ट्रीय एकता बनी रहती है। इस व्यवस्था में विरोधी दल का अभाव रहता है। अत: विरोध के अभाव में दल दृढ़तापूर्वक शासन-संचालन करता है तथा सुनिश्चित दिशा में नीतियों का निर्माण करता है। लेकिन इस पद्धति में अनेक त्रुटियाँ भी पायी जाती है। यह पद्धति अप्रजातांत्रिक है। प्रजातंत्र का आधार वाद-विवाद तथा विचारधाराओं का टकराव है। लेकिन एकदलीय व्यवस्था में विचार का बहुमुखी विकास नहीं हो सकता। अत: व्यक्ति की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। उसके सोचने-विचारने की स्वतंत्रता जाती रहती है। इसके अलावा एक दल का शासन स्थापित हो जाता है। फलत: अधिनायकतंत्र की स्थापना हो जाती है जिनमें व्यक्ति के अधिकारों का अपहरण होने लगता है। सरकार की एकांकी नीति जनता पर लादी जाती है। राष्ट्रीय हित आदि ओट में पड़ जाता है तथा दलीय हित की प्रधानता हो जाती है। संक्षेप में, जनतंत्र का विनाश हो जाता है और देश की उन्नति अवरुद्ध हो जाती है।

2. **द्वि-दलीय पद्धति** (Bi-party or two party System)–द्वि-दलीय पद्धति में केवल दो दलों की प्रधानता रहती है। इसके अतिरिक्त अन्य छोटे दल भी रहते हैं, लेकिन देश की राजनीति में उसका कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं रहता। दो प्रमुख दलों में बहुमत दल सत्तारूढ़ रहता है और अल्पमत विरोधी दल का काम करता है। इस पद्धति का सर्वोत्तम उदाहरण ब्रिटेन तथा संयुक्त-राज्य अमेरिका है। यह प्रणाली प्रजातांत्रिक है। प्रजातंत्र में बहुमत दल का शासन रहता है। जनता का प्रतिनिधित्व बहुमत दल करता है। इसी प्रणाली में उत्तरदायी शासन की स्थापना होती है। विरोधी दल के होने से सत्तारूढ़ दल निरंकुश और स्वेच्छाचारी नहीं हो पाता।

नोट

सरकार को अपनी त्रुटियों को जानने का अवसर मिलता है। मंत्रिमंडल की स्थापना बड़ी सरलता से हो जाती है। साथ ही, उनकी स्थिति भी दृढ़ रहती है। एक दल द्वारा निर्माण का वह दृढ़ तथा निश्चित नीतियों का अनुसरण करता है। इससे जनता का राजनीतिक प्रशिक्षण भी होता है क्योंकि विरोधी दल हर समस्या के विभिन्न पहलुओं को जनता के समक्ष रखते हैं। इस पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि शासन पर बहुमत दल का एकाधिकार हो जाता है, मंत्रिमंडल की तानाशाही की स्थापना हो जाती है। संसद की स्थिति कमजोर पड़ जाती है। मंत्रिमंडल हाँ में हाँ मिलानेवाला एक सभा मात्र रह जाता है निर्वाचकों को मतदान की स्वतंत्रता नहीं रह जाती, क्योंकि बाध्य होकर उन्हें दो में से किसी एक दल को मत देना ही पड़ता है। उनके समक्ष कोई दूसरी इच्छा नहीं रह जाती।

3. **बहुदलीय पद्धति** (Multi-Party System)–बहुदलीय पद्धति उसे कहते हैं जहाँ अनेक राजनीतिक दल होते हैं और एक से अधिक दल प्रभावशाली रहते हैं। किसी एक या दो दलों की प्रधानता नहीं रहती बल्कि सभी दल समकक्ष होते हैं। किसी एक दल को विधानमंडल में इतना प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं होता कि वह सरकार बना सके। कई दल मिलजुलकर सरकार का निर्माण करते हैं। संयुक्त मंत्रिमंडल (Coalition Ministry) बनाया जाता है। बहुदलीय पद्धति यूरोप के महादेशीय देशों, जैसे–फ्रांस, इटली आदि में पायी जाती है। इस पद्धति में किसी एक दल की निरंकुशता नहीं होने पाती और व्यवस्थापिका मंत्रिमंडल के हाथों का खिलौना मात्र ही रहती है। विभिन्न वर्गों तथा स्वार्थों को शासन में पूर्ण प्रतिनिधित्व मिलता है। इस पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके अंतर्गत बनायी गयी संयुक्त सरकार अत्यन्त अस्थायी होती है। पलकों में सरकार बनती-बिगड़ती रहती है। फ्रांस में, 1870-1914 ई. के बीच 88 मंत्रिमन्डलों का निर्माण हुआ। निर्बलता के कारण सरकार की नीतियों में एकरूपता भी नहीं हो पाती। दूसरी ओर कभी-कभी मंत्रिमंडल भी उच्छृश्रृंखल तथा अनियन्त्रित हो जाता है। व्यवस्थापिता का उस पर नियंत्रण नहीं रह जाता। मतैक्य के चलते भी सरकार दृढ़तापूर्वक किसी योजना का कार्यान्वयन नहीं कर सकती है।

टास्क बहुदलीय व्यवस्था से आप क्या समझते हैं?

दल-पद्धति का मूल्यांकन (Evaluation of the Party System)

दल-प्रणाली राजनीतिज्ञों की प्रशंसा तथा भर्त्सना का पात्र रही है। पाश्चात्य राजनीति-शास्त्रियों ने दल-प्रथा को प्रजातन्त्र का प्राण कहा है। **मुनरो** ने तो कहा है कि दलीय शासन का दूसरा नाम लोकतन्त्रीय शासन है। अमरीकी संविधान के निर्माताओं ने दलों का कड़ा विरोध किया था। मार्क्सवादियों ने दलीय प्रजातंत्र को विकृत प्रजातंत्र कहा है। उनके अनुसार दल समाज में वर्गों तथा स्वार्थों के द्योतक है। सर्वोदयवादी नेता तो दलविहीन सरकार (Partyless government) के पक्षपाती हैं इस विवाद को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय है कि हम दल-प्रणाली के गुण और दोष पर ध्यान दें।

दल पद्धति के गुण (Merits)

1. राजनीतिक दल सरकार का निर्माण करते हैं। यदि राजनीतिक दल न रहे तो प्रजातंत्र के अन्तर्गत सरकार का व्यावहारिक रूप देना कठिन हो जाएगा। दल निर्वाचनों में भाग लेते हैं तथा विधान मण्डलों में प्रवेश कर सरकार बनाते हैं।
2. प्रतिनिधि सरकार की सफलता राजनीतिक दलों के अस्तित्व पर ही निर्भर करती है। यह पूरे देश की जनता को किसी सामान्य सिद्धांतों के समर्थन में परस्पर मिलकर काम करने योग्य बनाती है "संगठित राजनीतिक दलों के अभाव में संघर्षात्मक विचार-समूह होंगे जिनमें सामंजस्य के लिए कोई ऐसी सर्वमान्य बात नहीं होगी जो उन्हें इकट्ठे मिलकर प्रभावपूर्ण ढंग से काम करने योग्य बनाए।"
3. **मेकाइवर के शब्दों में–**"दल प्रणाली के बिना राज्य में न तो लोच होती है और न सच्चा-आत्म निश्चय ही।" प्रजातंत्र का आधार जन-सहमति तथा जनमत है, शक्ति नहीं। "यह विवशता की अपेक्षा प्रेरणा को

नोट

अधिक उचित और शस्त्र-संघर्ष के बजाय विचार संघर्ष को अधिक रचनात्मक" मानती है। दल व्यवस्था के चलते विचारों का आदान-प्रदान होता है, सरकार की आलोचना की जाती है। यदि सरकार जनता की इच्छा के अनुसार नीतियों का निर्माण नहीं करती तो जनता उसे दलों के माध्यम से अपदस्थ कर सकती है। अत: राजनीतिक दलों के चलते सरकार का संचालन जनमत के अनुसार होता है।

4. दल जनता के राजनीतिक प्रशिक्षण के प्रमुख साधन हैं। वे जनता की राजनीतिक निद्रा भंग करते हैं, उनमें राजनीतिक जागरण पैदा करते हैं तथा सार्वजनिक प्रश्नों के प्रति सक्रिय रुचि पैदा करते हैं, वे व्याख्यानों, सभाओं, पत्र-पत्रिकाओं आदि के द्वारा नागरिकों को राष्ट्रपति तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से अवगत कराते हैं; नागरिक उत्साह की वृद्धि करते हैं तथा जनतंत्रीय भावना को उद्‌बुद्ध करते हैं।

5. दल-प्रणाली से श्रेष्ठ कानूनों का निर्माण होता है। एक दल दूसरे दल की त्रुटियों को बतलाता है। सभाओं में विरोधी दल कानून-निर्माण में सत्तारूढ़ दल को आलोचनाओं तथा सुझावों द्वारा परामर्श देता है। कानून बनाते समय जो उतावलेपन या राजनीतिक मतैक्यता पैदा हो जाती है, उसे दल दूर करते हैं। **लॉवेल** के शब्दों में, "दल-संगठन, राजनीतिक मतैक्यताओं को नियन्त्रित करते हैं।"

6. राजनीतिक दल जनता की अव्यक्त इच्छाओं को व्यक्त करते हैं। **लॉवेल** के विचारानुसार ये विचारों के दलाल (Broker of ideas) के रूप में कार्य करते हैं। यदि दल न रहे तो जनता की इच्छा असंगठित तथा बिखरी रह जाएगी; वह एक कल्पना की वस्तु रह जाएगी। दल जन-इच्छा को संगठित कर लोकमत का निर्माण करते हैं।

7. दल प्रणाली के माध्यम से सभी लोगों को शासन में भाग लेने का अवसर मिलता है। सत्ता में दलों का परिवर्तन होता है। जो सत्तारूढ दल से सम्बन्धित नहीं रहता वह विरोधी दल से सम्बन्ध स्थापित कर अपनी आलोचनाओं द्वारा ही शासन कार्य में सहयोग दे सकता है।

8. राजनीतिक दल शासन के विभिन्न अंगों में सामंजस्य स्थापित करते हैं। ये व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका के बीच कड़ी (Link) का काम करते है। ये पूरे शासन-तंत्र को एक सूत्र में बाँधकर एक दिशा की ओर ले जाते हैं।

9. राजनीतिक दल वैयक्तिक स्वतंत्रता के रक्षक भी हैं। विरोधी दल, शासक दल की गलतियों के विरुद्ध सदा आवाज उठाते हैं दल सरकार को सदा सचेत करते हैं कि वह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न करें, निरंकुश न बन जायँ। **लॉस्की के** शब्दों में, "राजनीतिक दल देश में तानाशाही से हमारी रक्षा करने के सर्वश्रेष्ठ साधन हैं।

10. राजनीतिक दल विधानपालिका में, अपने प्रतिनिधियों के बीच अनुशासन और नियंत्रण रखते हैं जिनसे एक निश्चित नीति का विकास होता है तथा शक्तिशाली शासन की स्थापना होती है।

11. राजनीतिक दल राष्ट्रीय एकता स्थापित करते हैं। स्थानीयता, जातिवाद, धार्मिक तथा क्षेत्रीय संकीर्णता का त्याग कर ये नागरिकों को वृहद स्वार्थों की ओर ले जाते हैं।

12. राजनीतिक दलों से एक लाभ यह भी है कि वे धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक सुधार में भाग लेते हैं। सामाजिक कुरीतियों को दूर करना पिछड़े देशों में दलों का प्रमुख कार्य है। इसके लिए वे जनमत का निर्माण करते, अन्वेषण करते, राजनीतिक और विशेषज्ञ-समितियों का निर्माण करते हैं।

13. अन्त में, राजनीतिक दल देश के अन्दर एक सुन्दर तथा स्वस्थ राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन का निर्माण करते हैं। वे समस्त राष्ट्र को भ्रातृत्व के सूत्र में बाँधते हैं। **डॉ. फाइनर** का कहना है कि "राजनीतिक दल इस प्रकार कार्य करते हैं कि प्रत्येक नागरिक को सारे राष्ट्र का ज्ञान प्राप्त हो जाय जो अन्य प्रकार से समय और प्रदेश की दूरी के कारण प्राप्त करना असम्भव है।"

नोट

दल पद्धति के दोष (Demerits)

1. दल-व्यवस्था अस्वाभाविक है। यह मानव-स्वभाव का परिणाम नहीं बल्कि कृत्रिम है। व्यक्तियों में कोई मौलिक पारस्परिक अन्तर नहीं है। राजनीतिक दल उनके बीच झूठ-मूठ का विभाजन करते तथा कृत्रिम समझौता कर उन्हें पुन:संगठित करते हैं।
2. राजनीतिक दलों के चलते देश कई गुटों में बँट जाता है। इन विरोधी समूहों में निरन्तर संघर्ष चलता है जो देश की एकता को नष्ट कर देता है। हमारे देश में तो दलबन्दी ने गाँवों और घरों तक को विभाजित कर दिया है। निर्वाचन के समय राजनीतिक दल युद्ध के समान जनता की भावनाओं को उभारने की चेष्टा करते हैं जिससे जनता के पारस्परिक सम्बन्ध में तनाव एवं कड़वाहट उत्पन्न होती है और कभी-कभी दंगे-फसाद तक हो जाते हैं।
3. राजनीतिक दल नागरिकों को पतन के लिए भी उत्तरदायी हैं वे सार्वजनिक जीवन में बेईमानी, भ्रष्टाचार तथा अवसरवादिता को प्रोत्साहित करते हैं। चुनाव के समय झूठे प्रचार करते तथा सत्य को दबाते हैं, मत-प्राप्ति के लिए अनैतिक तथा निम्नकोटि के उपायों की शरण लेते हैं। एक दल दूसरे पर कीचड़ उछालता तथा अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करता है। **गिलक्राइस्ट** के शब्दों में, "दल बहुधा वास्तविकता का दमन करने और अवास्तविकता प्रकट करने के अपराधों के दोषी होते हैं।" तर्क और विवेक का गला घोंट दिया जाता है। इस प्रकार दल पद्धति लोकतंत्र के लिए खतरनाक सिद्ध हो जाती है।
4. दल-प्रणाली में दल-हित को प्रोत्साहन मिलता है और राष्ट्रीय हित का उल्लंघन होता है। दल के प्रति वफादारी (Loyalty) राष्ट्रीय हित के लिए घातक है।
5. **गिलक्राइस्ट के अनुसार–**"दल-प्रणाली किसी देश के राजनीतिक जीवन को यन्त्रवत् बना देती है। विरोधी दल का एकमात्र उद्देश्य होता है–सत्तारूढ़ दल का विरोध करना। वे शासक दल के हर कदम का अन्धाधुन्ध विरोध करते हैं, भले ही वह कदम गलत हो या सही; उपयोगिता और तर्क से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। उनका दृष्टिकोण इतना संकुचित तथा संकीर्ण हो जाता है कि एक-दूसरे का विरोध कर शासन को हथियाना उनका एकमात्र लक्ष्य रह जाता है।"
6. दल पद्धति के कारण शासन योग्य व्यक्तियों की सेवा से वंचित हो जाता है। शासनकार्य में केवल बहुमत दल के व्यक्तियों को भाग लेने का मौका मिलता है, भले ही वे योग्य हों या अयोग्य। दूसरे दलों के योग्य व्यक्ति शासन-कार्य में भाग लेने से वंचित हो जाते हैं।
7. राजनीतिक दल स्वार्थी, राजनीतिक साहसियों तथा अवसरवादियों को प्रोत्साहित करते हैं वे नित्य नये-दलों का निर्माण करते, अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए जनता को भड़काते तथा शक्ति को अपने हाथ में करने के लिए गलत रास्ता अपनाते हैं। राजनीतिक जीवन स्वार्थियों तथा भ्रष्ट व्यक्तियों का गढ़ बन जाता है। कहा गया है, "जिस प्रकार हर एक मुर्गा अपने निजी टीले पर खड़ा होना चाहता है, उसी तरह राजनीतिक अवसरवादी अपने स्वार्थी लक्ष्यों की वृद्धि के लिए अपना जन्म अधिकार सिद्ध करता है। ऐसे दलों का बरसाती कुकुरमुत्ता की तरह जहाँ-तहाँ पैदा होना किसी देश की राजनीतिक समस्याओं को जटिल बना देता है।"
8. अधिकांश राजनीतिक दलों का आन्तरिक संगठन अप्रजातांत्रिक होता है। पूरे दल पर कुछ नेताओं या गुटों का नियंत्रण हो जाता है। ये गुट मनचाहे रूप से सभी निर्णय लेते है, जनता की इच्छा की उन्हें तनिक भी परवाह नहीं रहती। इस प्रकार दलशाही की आड़ में तानाशाही कायम हो जाती है।
9. दल-प्रणाली की गन्दगी अनेक सुयोग्य नागरिकों को सार्वजनिक जीवन से विमुख कर देती है। राष्ट्र उन बुद्धिमान व्यक्तियों की विवेकशीलता, ज्ञान और अनुभव से वंचित हो जाता है, जो या तो निर्वाचन-भीरु हैं अथवा दल-सचेतक और दल-अनुशासन में रहने से इन्कार करते हैं।
10. राजनीतिक दलों के कारण व्यक्ति की स्वतंत्रता का अपहरण होता है। सभी सदस्य दल के नियन्त्रण में रहते हैं,

नोट

उन्हें दल की निर्धारित नीतियों का समर्थन अनिवार्य रूप से करना पड़ता है, अन्यथा दलीय अनुशासन का कोप-भाजन बनना पड़ता है। **गिलबर्ट** ने लिखा है कि "मैंने हमेशा अपने दल के अनुसार मत दिया और स्वयं कभी भी कुछ नहीं सोचा।" नागरिकों की स्वतन्त्रता का भी अपहरण होता है क्योंकि अनिच्छा के बावजूद उन्हें किसी-न-किसी दल का समर्थन करना पड़ता है।

11. अनेक देशों में राजनीतिक दलों के माध्यम से पूँजीपति वर्ग शासन पर नियन्त्रण कर लेता है। दल पूँजीपतियों से आर्थिक सहायता लेते हैं। अत: वे उनके हाथ की कठपुतली बन जाते हैं। सरकार पर इस नियन्त्रण के चलते पूँजीपति वर्ग 'अदृश्य सरकार' (Invisible government) बन जाता है।

दल-पद्धति के दोषों को दूर करने का उपाय–निस्सन्देह दल-पद्धति में कतिपय दोष हैं, लेकिन इन दोषों के चलते उसे जड़-मूल से नाश कर देना असम्भव तथा अस्वाभाविक है। हाँ, उनके दोषों को दूर कर भले ही उनमें सुधार लाया जा सकता है। सबसे पहले दलों का निर्माण तथा संगठन राजनीतिक सिद्धांतों के आधार पर होना चाहिए। शिक्षित जनता ही राजनीतिक समस्याओं को समुचित रूप से समझ सकती है तथा दलों की नीतियों और कार्यक्रमों का सही मूल्यांकन कर सकता है। जनता की गरीबी को दूर करना चाहिए जिससे उनके मत को कोई दल खरीद न सके तथा पूँजीपतियों का दल पर नियन्त्रण न हो सके। दलों को भी अपना दृष्टिकोण वृहद करना चाहिए। उन्हें दलीय हित को त्याग कर राष्ट्रीय हित को अपना लक्ष्य बनाना चाहिए। सरकार को चाहिए कि वह दलों की अनैतिक, अवैधानिक तथा अनुचित कार्यवाहियों पर कड़ा नियन्त्रण रखे। संकुचित आधारों पर संगठित दलों-साम्प्रदायिक, धार्मिक, जातीय आधार आदि को अवैधानिक करार देना गलत न होगा। सरकार किसी दल का पक्षपात न करें, बल्कि सभी दलों को समान एवं उचित अवसर प्रदान करे। सत्तारूढ़ दल को चाहिए कि वह विरोधी दलों के अच्छे सुझावों का आदर करे तथा सभी दलों को समान एवं उचित अवसर प्रदान करे। सत्तारूढ़ दल को चाहिए कि वह विरोधी दलों के अच्छे सुझावों का आदर करे तथा उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयत्न करे। **सिजविक** ने दल पद्धति के दोषों को दूर करने के लिए कुछ व्यावहारिक साधन बताये हैं। अध्यक्षात्मक शासन-पद्धति के अन्तर्गत राष्ट्रपति का निर्वाचन व्यवस्थापिका द्वारा किया जाना चाहिए तथा कार्यपालिका के कर्मचारियों का पद दलबन्दी के अनुसार नहीं होना चाहिए। विभागीय अध्यक्षों की नियुक्ति दलीय आधार पर नहीं होना चाहिए तथा विधायिका सभा के अविश्वास-प्रस्ताव के बाद मन्त्रिमंडल को पद-त्याग करना चाहिए।

राजनीतिक दलों के कार्य (Functions of the Political Parties)

राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दल अनेक प्रकार से सक्रिय रह सकता है। दल की संरचना, अन्य दलों की विद्यमानता तथा राजनीतिक व्यवस्था की विशेषताओं के द्वारा दल के कार्यों व भूमिका का नियमन होता है। **राबर्ट सी. बोन** के अनुसार एक राजनीतिक दल ऐसा परिवर्त्य है जो तीन प्रकार की भूमिका एक साथ निभाने की क्षमता रखता है। यह एक ही साथ मध्यवर्ती, स्वतन्त्र या आश्रित परिवर्त्य के रूप में गत्यात्मक भूमिका निभा सकता है या इनमें से कोई एक भूमिका भी निष्पादित कर सकता है। राजनीतिक दल की परिवर्त्य के रूप में इन तीनों भूमिकाओं का पृथक-पृथक वर्णन करके ही इस रूप में दल की भूमिका का सही मूल्यांकन किया जा सकता है–

(1) मध्यवर्त्ती परिवर्त्य के रूप में दल की भूमिका (Role of political party as an intervening variable)–राजनीतिक दल मध्यवर्त्ती परिवर्त्य के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इस रूप में दल सरकारी तन्त्र तथा राजनीतिक समाज के बीच में आदान-प्रदान की कड़ी का काम करता है। यह समाज और सरकार को जोड़ता है। इस रूप में दल क्षेत्रीय हितों को एक-दूसरे के करीब लाते हैं, भौगोलिक दूरियों का निवारण करते हैं और कभी-कभी विभक्त कर देने वाली शासन संरचनाओं में सामंजस्य स्थापित करते हैं। राजनीतिक दल की इस रूप में भूमिका हर प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था में रहती है। मध्यवर्त्ती परिवर्त्य के रूप में दल की भूमिका के दो पहलू होते हैं। जब यह सत्तारूढ़ हो, तब इसकी भूमिका में उस अवस्था की भूमिका से थोड़ा अन्तर आ जाता है जब यह सत्ता से बाहर होता है पर यह अन्तर मात्रात्मक ही होता है, प्रकारात्मक नहीं हो सकता। मध्यवर्त्ती परिवर्त्य के रूप में दल की तीन सामान्य भूमिकाएं होती हैं–

नोट

(1) दल सरकार की नीतियों की अपने समर्थकों व आम जनता के लिए व्याख्या करता है और सरकार के कार्यों के बारे में जनता को समझाता है।

(2) राजनीतिक व्यवस्था में उठने वाली मांगों को सरकार तक पहुंचाता है।

(3) सत्ता में बने रहने के लिए या सत्ता में आने के लिए लोकमत की परख में लगा रहता है।

अत: मध्यवर्ती परिवर्त्य के रूप में राजनीतिक दलों की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। यह सरकार और समाज के बीच की हर बात में दखल देने के साथ ही साथ मध्यस्थ भी बनते हैं। मध्यवर्ती परिवर्त्य के रूप में दलों की भूमिका को चित्र 10.1 में चित्रित किया गया है।

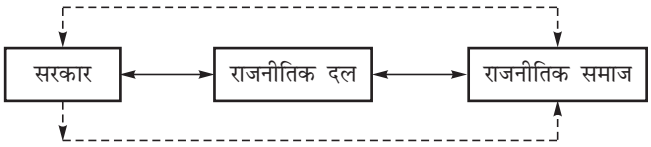

चित्र 10.1

चित्र 10.1 में सरकार व समाज के बीच सम्पर्क का महत्त्वपूर्ण माध्यम राजनीतिक दल को ही बताया गया है। दल की मध्यवर्ती परिवर्त्य के रूप में भूमिका सर्वत्र सभी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं में पाई जाती है, किन्तु इस रूप में दल की भूमिका लोकतांत्रिक समाजों में अधिक प्रभावी रहती है। निरंकुश व सर्वाधिकारी राजनीतिक व्यवस्थाओं में एक ही दल के कारण प्रतियोगी राजनीति का अभाव होता है। अत: दल की मध्यवर्ती परिवर्त्य के रूप में भूमिका नाम मात्र की ही रह जाती है। यहां तक कि कोई भी राजनीतिक प्रक्रिया दल के सक्रिय हस्तक्षेप के बिना निष्पादित ही नहीं हो पाती है।

(2) आश्रितपरिवर्त्य के रूप में दल की भूमिका (Role of political party as a dependent variable)–राजनीतिक दल शून्य में कार्य नहीं करते हैं। यह राजनीतिक व्यवस्था में कार्यरत रहते हैं। इनका कार्य सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पर्यावरण में ही संचालित होता है। अत: अपने चारों तरफ के वातावरण से दल न केवल प्रभावित होते हैं वरन् उससे उनकी गतिविधियां बहुत कुछ सीमित व नियमित भी होती हैं। किसी देश की शासन संरचना की प्रकृति, समाज का स्तरण (stratification) का विभाजन, व्यक्तियों के चिंतन व क्रिया को प्रभावित करने वाला सांस्कृतिक ढांचा और दल क्रिया को नियंत्रित व प्रभावित करने वाले कानून, राजनीतिक दल को आश्रित परिवर्त्य के रूप में ही भूमिका निभाने के लिए चारों तरफ से दबाते रहते हैं। आश्रित परिवर्त्य के रूप में हर राजनीतिक दल निम्नलिखित भूमिका निभाता है–(*i*) राजनीतिक समाज की संरचना व समाज के सांस्कृतिक प्रतिमान को प्रभावित करने वाली राजनीतिक प्रक्रिया को जोड़ना, सरल करना और स्थिर बनाना। (*ii*) समाज की संरचनाओं व उप-व्यवस्थाओं में समन्वय स्थापित करना। (*iii*) पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप अपने को ढालते हुए समाज की सम्पूर्ण समूह व्यवस्था के अनुकूलन में योग देना। आश्रित परिवर्त्य के रूप में दलों की भूमिका को चित्र 10.2 में चित्रित किया गया है।

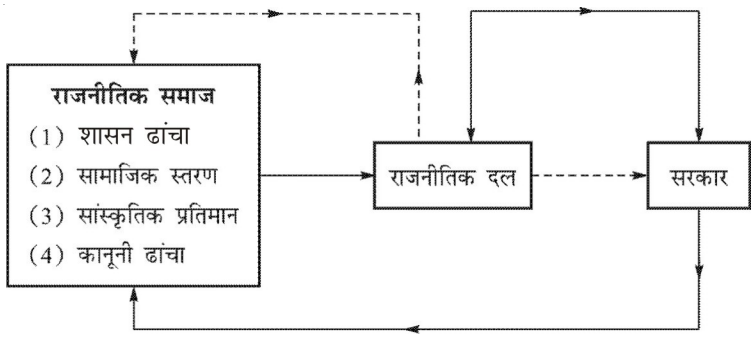

चित्र 10.2 राजनीतिक दल की आश्रित परिवर्त्य के रूप में भूमिका

नोट

चित्र 10.2 में राजनीतिक दल एक तरफ तो सरकार के द्वारा तथा दूसरी तरफ समाज की राजनीतिक व्यवस्था की संरचनाओं के ऊपर आश्रित होकर ही सक्रिय रहता है। इस रूप में दल अपने कार्यों व भूमिका में आश्रित ही रहता है। वह हर स्तर पर नियमित व प्रतिबन्धित रहकर ही सक्रिय होता है।

(3) स्वतन्त्र परिवर्त्य के रूप में दल की भूमिका (Role of political party as an independent variable)—राजनीतिक दल अत्यधिक एकीकृत उप-संस्कृति के रूप में भी देखा जा सकता है। इस रूप में दल सम्पूर्ण समाज का नियामक बन जाता है। मौलिक तथा गत्यात्मक ताकत के रूप में राजनीतिक दल सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था को नियन्त्रित करने की अवस्था में होने के कारण इन दोनों से स्वतन्त्र बन जाता है। द्विदलीय व बहुदलीय प्रणालियों में दलों का प्रभाव व भूमिका कई शक्तियों व खिंचावों से सीमित रहती है, किन्तु एकदलीय पद्धति में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता है। अत: स्वतन्त्र परिवर्त्य के रूप में राजनीतिक दल, विचारधारा कार्यक्रम की रूपरेखा के अनुसार न्यायोचित समाज की स्थापना करने के लिए समाज व सरकार दोनों का ही नियन्त्रक, निर्देशक व निरीक्षक रहता है। इस रूप में दल की भूमिका निम्न प्रकार रहती है—(*i*) समाज व सरकार, दोनों का निर्देशन करना व उन पर नियन्त्रण रखना। (*ii*) विचारधारा के अनुसार सम्पूर्ण संस्थात्मक व्यवस्थाओं को ढालना। (*iii*) कार्यक्रम की क्रियान्विति में आने वाली सभी प्रक्रियात्मक व संरचनात्मक बाधाओं को दूर करना।

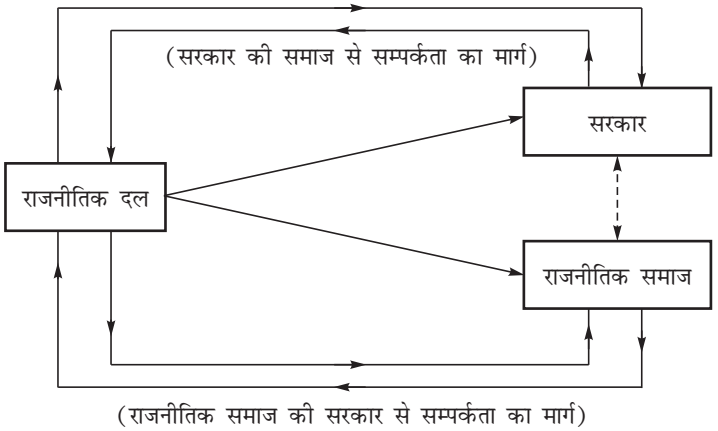

चित्र 10.3 राजनीतिक दल की स्वतन्त्र परिवर्त्य के रूप में भूमिका

स्वतन्त्र परिवर्त्य के रूप में राजनीतिक दल सभी प्रकार के नियन्त्रणों से मुक्त रहता है तथा समाज व्यवस्था व शासन तन्त्र को पूरी तरह से नियन्त्रित व निर्देशित करता है। इस रूप में इसकी भूमिका सर्वाधिकारी शासन-व्यवस्थाओं में ही सम्भव है। इन व्यवस्थाओं में राजनीतिक दल ही राजनीतिक चेतना का केन्द्र होता है। सारी राजनीतिक सक्रियता दल के माध्यम से गुजरती है और वही शासन तथा जोड़-तोड़ का उपकरण होता है। अत: स्वतन्त्र परिवर्त्य के रूप में दल की भूमिका न केवल व्यापक होती है अपितु एकाधिकारी व व्यक्तिगत तथा सामाजिक गतिविधि के सभी पहलुओं की नियन्त्रक भी होती है।

विभिन्न परिवर्त्यों के रूप में राजनीतिक दलों की भूमिका के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि दल अनेक प्रकार के कार्य करते हैं। राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति स्वयं, दलों की संरचनाएं तथा शासन ढांचे की विशेषताएं राजनीतिक दलों के कार्यों की नियामक होती हैं, किन्तु राजनीतिक दलों के कुछ कार्य ऐसे हैं जो इन सबसे प्रभावित रहते हुए भी हर प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था में इनके द्वारा निष्पादित होते हैं हम यहां राजनीतिक दलों के ऐसे सामान्य कार्यों का उल्लेख कर रहे हैं।

राबर्ट सी. बोन ने राजनीतिक दलों के व्यापक कार्यों की चर्चा की है। उसके अनुसार हर प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दल सक्रिय रहते हैं। यह सामान्यतया हर राजनीतिक व्यवस्था में एक ही प्रकार के विचारों वाले व्यक्तियों के व्यवस्थित ढंग से संगठित होने का साधन प्रस्तुत करते हैं। **बोन** राजनीतिक दलों के कार्यों में

नोट

(*i*) संगठन, (*ii*) मांगों के व्यवस्थित संशोधन, (*iii*) नेताओं की भर्ती, (*iv*) सत्ता का वैधीकरण, (*v*) नीति का निर्धारण, (*vi*) शासन उत्तरदायित्व, और (*vii*) आधुनिकीकरण के कार्यों को प्रमुख मानते हैं। उसके अनुसार हर प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दल कम या अधिक मात्रा में यह कार्य करते हुए पाए जाते हैं। लोकतांत्रिक राजनीतिक समाजों में राजनीतिक दलों के यह कार्य चुनावी प्रतियोगिता के अवसरों पर ही अधिक व्यावहारिक बनते हैं, किन्तु निरंकुश सर्वाधिकारी राजनीतियों में तो दल हर समय इन कार्यों को व्यवहार में निरन्तर करते रहते हैं।

राजनीतिक दलों के कार्यों के बारे में **न्यूमैन** भी **राबर्ट सी. बोन** से मिलते-जुलते विचार रखता है। किन्तु उसके अनुसार प्रजातांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों के कार्य निरंकुश व सर्वाधिकारी शासन-व्यवस्थाओं में उनके कार्यों के समान नहीं हो सकते। सर्वाधिकारी शासनों में दल का एकाधिकार होने के कारण न केवल उसकी कार्य शैली में अन्तर आता है वरन् उसकी कार्यक्षमता की असीमता के कारण उसके कार्य भी भिन्न हो जाते हैं। अत: वह लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्थाओं में राजनीतिक दलों के कार्यों को सर्वाधिकारी शासनों में उनके कार्यों से पृथक मानकर इनका अलग-अलग विवेचन करता है। उसके अनुसार लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में राजनीतिक दल–(*i*) अस्त-व्यस्त एवं बिखरी जन-इच्छा को संगठित करने, (*ii*) नागरिकों को राजनीतिक उत्तरदायित्व की दृष्टि से शिक्षित बनाने, (*iii*) शासन और जनमत को जोड़ने वाली कड़ी का प्रतिनिधित्व करने एवं (*iv*) नेताओं का चुनाव कार्य करते हैं।

न्यूमन के अनुसार अधिनायकवादी दल बाहर से लोकतांत्रिक दलों से भिन्न नहीं दिखाई देते हैं। उनके सिद्धांत और कार्य लोकतांत्रिक धारणा लिये रहते हैं। वे भी यही कार्य करते हैं। सर्वाधिकारी दल भी अस्त-व्यस्त जन-इच्छा को संगठित करने, व्यक्तियों को समूह में आबद्ध करने, जनमत तथा शासन को जोड़ने वाली कड़ी का उत्तरदायित्व निभाने व इसके साथ ही नेताओं के चुनाव की व्यवस्था करने का कार्य करते हैं, परन्तु **न्यूमैन** का कहना है कि इतना होते हुए भी, नेताओं व अनुयायियों की उनकी अवधारणाओं की लोकतांत्रिक धारणाओं से पूर्ण प्रतिकूलता के कारण इन कार्यों का अर्थ आधारभूत रूप से बदला जाता है। अत: सर्वाधिकारी दल–(1) जन-इच्छा पर नियंत्रण, (2) व्यक्तियों पर एकरूपता का लादना, (3) समाज व राज्य के मध्य सम्पर्क के लिए केवल ऊपर की ओर से एकतरफा प्रचार व निर्देश एवं (4) नेताओं के चुनाव का कार्य करते हैं यहां इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि सर्वाधिकारी दल मोटे तौर पर वही कार्य करते हैं, जो लोकतांत्रिक व्यवस्था में दलों के द्वारा सम्पादित होते हैं।

अन्तर केवल कार्य-विधि, कार्यक्षमता तथा कार्य उद्देश्यों का होता है। यह अन्तर तो लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्थाओं में भी पाए जाते हैं उदाहरण के लिए, नेताओं का चयन द्विदलीय, बहुदलीय या एकदलीय आधिपत्य व्यवस्थाओं में पर्याप्त अन्तर रखता है। अत: हम न्यूमैन द्वारा दोनों प्रकार की दल व्यवस्थाओं के कार्यों के अलग-अलग वर्गीकरण से सहमत नहीं हो सकते। दलों के कार्य, हर राजनीतिक परिस्थिति में कम या अधिक होते रहते हैं। अत: हमें दलों के केवल ऐसे कार्यों की चर्चा करनी है जो हर व्यवस्था, परिस्थिति व अवस्था में दलों के द्वारा किए जाते हैं।

ला पालोम्बारा ने अपनी पुस्तक पोलिटिक्स विद इन नेशन्स में राजनीतिक दलों के निम्नलिखित कार्य बतलाए हैं–

(*i*) नेताओं की भर्ती और समाजीकरण।

(*ii*) राजनीतिक पहचान व मतों को संरचनात्मक रूप देना।

(*iii*) सरकार बनाना।

(*iv*) संघटन, सौदेबाजी व एकीकरण करना।

राजनीतिक दलों के इन कार्यों को लेकर विद्वानों में अधिक मतभेद नहीं है। सभी राजनीतिक दल कम या अधिक मात्रा में यह कार्य करते हैं। किन्तु राजनीतिक दलों के कार्यों को **ला पालोम्बारा** ने केवल राजनीतिक कार्यों तक सीमित रखने के बजाय व्यापक संदर्भ प्रदान किया है। इसी तरह, वह दलों को केवल कानूनी परिधि में ही सक्रिय नहीं मानता है। उसका कहना है कि विविध परिस्थितियों में अनेक राजनीतिक दल विविध ढांचे का उल्लंघन ही नहीं करते अपितु उसके प्रतिकूल कार्य भी करते हैं अत: राजनीतिक दलों के कार्यों को औपचारिकता के आवरण में ही देखना पर्याप्त नहीं है। राजनीतिक दलों के राजनीति को कलुषित बनाने वाले कार्यों से बेखबर नहीं रहा जा सकता। ला पालोम्बारा ने राजनीतिक दलों के कार्यों के इस पहलू पर अधिक बल नहीं दिया है। आधुनिक दल विशेषकर विकासशील राज्यों

नोट

में, राजनीतिक प्रक्रिया को जोड़ने, सरल करने और स्थिर बनाने के कार्य के साथ ही साथ इसे तोड़ने, पेचीदा बनाने व उसमें अस्थिरता लाने का कार्य भी करते रहते हैं अत: राजनीतिक दलों के कार्यों में इस प्रकार की गतिविधियां भी सम्मिलित की जानी चाहिए। आज राजनीतिक दल एक 'शक्ति संरचना' तथा राजनीतिक व्यवस्था की आधारभूत उप-व्यवस्था बन गये हैं। इनके कार्यों का विवेचन करते समय इन लक्षणों को ध्यान में रखना आवश्यक है। इस प्रकार, राजनीतिक दलों के कार्यों को स्वयं राजनीतिक दल, समाज, समूह व्यवस्था तथा शासन ढांचे के संदर्भ में ही देखना अनिवार्य हो जाता है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए, हम इनके निम्नलिखित कार्यों को सर्वत्र सभी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं में निष्पादित मान सकते हैं।

नेताओं की भर्ती व चयन (The Recruitment and Selection of Leaders)

राजनीतिक समाज का सुव्यवस्थित संचालन करने के लिए ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता होती है जो जन समुदाय के बहुत बड़े भाग द्वारा समर्थित रहें। इस प्रकार का जन-समर्थन न केवल लोकतंत्र व्यवस्थाओं में ही आवश्यक है वरन् सर्वाधिकारी शासनों के लिए भी अनिवार्य है। अत: हर राजनीतिक व्यवस्था में विभिन्न सरकारी पदों के नेतृत्वकर्त्ताओं की भर्ती व चयन की व्यवस्था करनी होती है। राजनीतिक दल इसकी संस्थागत सुविधा व साधन उपलब्ध कराते हैं। करोड़ों व्यक्ति अपने में से ही नेताओं का चुनाव करने के अधिकार का व्यवहार में उपयोग करें तो सैद्धांतिक दृष्टि से यह सम्भव होते हुए भी व्यवहार में असम्भव होगा तथा एक स्थिति यह भी हो सकती है कि उतने ही नेता बनने के प्रत्याशी हों जितने नेता चुनने वाले। इस अवस्था में नेताओं की भर्ती व चुनाव का कार्य असम्भव हो जाएगा। राजनीतिक दल इस स्थिति में नेताओं की भीड़ का एक मात्र माध्यम बन जाते हैं।

नेताओं की भर्ती व चयन में दो पेचीदगियां और हैं। एक बात तो यह है कि नेताओं की भर्ती योग्यता व विशेष दक्षता के आधार पर हो तथा दूसरे नेता, अधिक से अधिक जन समर्थन द्वारा ही सरकारी पदाधिकारी बनने की अवस्था में आएं। इनके कारण नेताओं की भर्ती की समस्या और भी कठिन बन जाती है। राजनीतिक दल, चुनावों में, विभिन्न प्रत्याशियों के रूप में मतदाता के सामने अनेक विकल्प प्रस्तुत करके यह कार्य सम्भव बनाते हैं सर्वाधिकारी व्यवस्थाओं में भी नेताओं का अन्तत: चयन करना ही होता है और यह कार्य राजनीतिक दल ही करता है। इस प्रकार राजनीतिक दल असंख्य लोगों में से कुछ के विकल्प प्रस्तुत करके एक का चयन सम्भव बनाते हैं।

नीतियों व कार्यक्रमों का उत्पादन (The Generation of Policies and Programmes)

राजनीतिक व्यवस्था में दल ही नीतियों व कार्यक्रमों के उत्पादनकर्त्ता होते हैं। मतदाताओं में अधिकांश तो सम्पूर्ण समाज के व्यापक हितों की दृष्टि से सोच ही नहीं पाते हैं। समूह अपने सदस्यों के हितों से ऊपर नहीं उठ पाते हैं। अकेला, अलग-थलग व्यक्ति सम्पूर्ण समाज के लिए उपयोगी नीतियों व कार्यक्रमों का निर्धारण करना चाहे तो भी नहीं कर सकता है क्योंकि ऐसा कार्यक्रम अधिक से अधिक उन लोगों की स्वीकृति तक ही व्याप्त रहेगा जिनके साथ निर्धारण करने वाले व्यक्ति का सम्पर्क है। राजनीतिक दल चुनावों में मुद्दे पेश करके नीतियों व कार्यक्रमों के निर्माता बन जाते हैं। चुनावी प्रतियोगिता में जनता के सामने अनेक नीति विकल्प प्रस्तुत हो जाते हैं, जिनमें से एक का चयन करके समाज की नीति का निश्चय करना व्यावहारिक हो जाता है। सरकारों को क्या करना है, किस दिशा में समाज को ले जाना है यह सब राजनीतिक दल जनता से तय कराने के लिए अनेक विकल्पी कार्यक्रम प्रस्तुत करने का साधन होते हैं।

सर्वाधिकारी शासन-व्यवस्थाओं में तो यह कार्य राजनीतिक दल स्वयं ही करते हैं। इन व्यवस्थाओं में विकल्प प्रस्तुत करके यह नहीं किया जाता है। यह दल की दार्शनिक कोरी औपचारिकता ही होता है। अत: दल के द्वारा उत्पन्न किए गए कार्यक्रमों में किसी प्रकार की काट-छांट का भी प्रश्न नहीं उठता है। इस प्रकार सर्वाधिकारी शासन-व्यवस्थाओं में दल ही नीति और कार्यक्रम का एकमात्र स्रोत रहता है, पर इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने की बात है कि नीति उत्पादन व कार्यक्रम निर्धारण का कार्य राजनीतिक दल विशुद्ध व्यापक हित की दृष्टि से नहीं करते हैं। कार्यक्रम निर्धारण के बाद उनके अमल का कोई निश्चय भी नहीं होता है। दलीय स्वार्थ की प्रवृत्तियां कभी-कभी दलों को कार्यक्रमों से विमुख

नोट

भी कर देती हैं, पर इससे कार्यक्रम व नीति-उत्पादन में सहायता मिलती है।चुनावों में मतदाता इन नीति-सम्बन्धी विचलनों (deviations) की पुन: जांच का अवसर रखते हैं। अत: दल समाज के लिए नीतियों का उत्पादन ही नहीं करते वरन् उनकी निरन्तर परख की अवस्था भी लाते हैं।

सरकार का नियन्त्रण व समन्वय (Control and Co-ordination of Government)

राजनीतिक दलों का तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य शासन-अंगों में समन्वय व सरकार के नियंत्रण का है। एपस्टीन (EPSTEIN) ने अपनी पुस्तक "पोलिटिकल पार्टीज़ इन वैस्टर्न डेमोक्रेसीज' में दलों के इस कार्य को सर्वाधिक महत्त्व का बताते हुए लिखा है कि "दल राजनीतिक व्यवस्था में निर्णय लेने और अपने आपको शामिल करने के उद्देश्य के लिए संगठन व समन्वय की आवश्यकता के प्रति अनुक्रिया है।" दल ही सरकार पर प्रभावी नियंत्रण का यन्त्र हो सकते हैं। दलों का यह कार्य निरन्तर चलता रहता है। इतना ही नहीं, दलों द्वारा शासन का कार्य, केवल उनके सत्ता में रहने पर ही नहीं होता वरन् विपक्ष में भी वे शासन कार्य में सक्रिय रहते हैं। दल विपक्ष की व्यवस्था करके जनता को भी शासन कार्य में सम्मिलित करने की व्यवस्था करते हैं।

दल सरकार के निर्माण में अनेक प्रकार से सहायक होते हैं। वे शासन के लिए योग्य व्यक्तियों को चुनते व प्रशिक्षित करते हैं। संगठनात्मक व प्रेरणात्मक गतिविधियों द्वारा शासक वर्ग के लिए समर्थन जुटाते हैं, और जनमत को जागृत करके सरकार पर प्रभावी नियन्त्रण व्यवस्था लागू करते हैं।

सत्ता का वैधीकरण (Legitimization of Authority)

शासक सत्ता का उपयोग करने का औचित्य रखते हैं या नहीं इसकी जांच का एक माध्यम नियतकालिक निर्वाचन होते हैं। परन्तु दो चुनावों के अन्तराल में शासकों की सत्ता वास्तविक वैधता रखती है या नहीं संस्थात्मक व्यवस्था की विधान मण्डल के माध्यम से परख नहीं हो पाती है। इस कार्य को जनता की तरफ से राजनीतिक दल करते हैं। यह नेताओं की भर्ती व अदला-बदली के लिए संरचनात्मक प्रक्रियाएं जुटाने के साथ ही साथ सत्ता के वैधीकरण की व्यवस्था भी करते हैं। जबर्दस्ती हथियाई सत्ता को वैधीकरण के लिए जनता के सामने दल ही रखवाते हैं। इनकी सत्ता वैधीकरण में इतनी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है कि निरंकुश व्यवस्थाओं में भी दलों का नहीं तो कम से कम एक दल का निर्माण शायद इसलिए ही किया जाता रहा है।

राजनीतिक व्यवस्थाओं में सत्ता की वैधता का संकट उत्पन्न होता रहता है। अब तक मान्यता रही की सत्ता के क्षीण होने पर उसकी पुन: लोकप्रिय अभिपुष्टि या जन समर्थन की आवश्यकता अनिवार्य हो जाती है। उसकी व्यवस्था दलों के माध्यम से ही होती है। यही कारण है कि एक दल प्रणालियों में भी सत्ता वैधीकरण को आवश्यक माना गया है। निरंकुश शासक समय-समय पर चुनावों का दिखावा सत्ता वैधीकरण के उपकरण के रूप में ही करते हैं। अत: राजनीतिक दल सत्ता वैधीकरण के प्रमुख माध्यम ही नहीं होते वरन् सत्ता की वैधता का कार्य निरन्तर चलता रहे इसकी व्यवस्था भी करते हैं।

समाज का एकीकरण (Integration of Society)

राजनीतिक दल समूह मांगों की संतुष्टि और सामंजस्य के द्वारा एक-सी मान्यताएं या विचारधारा उत्पन्न करते हैं, जिससे समाज में विभाजनकारी प्रवृत्तियों का शासन होता रहता है। इससे समाज का एकीकरण होता है। समाज में एकता व दृढ़ता स्थापित होती है। हर समाज में अनेक समूह व हित होते हैं। इनकी आवश्यकताएं व मांगें बार-बार एक दूसरे के प्रतिकूल बनकर पारस्परिक संघर्ष उत्पन्न करता है। परस्पर विरोधी मांगें राजनीतिक व्यवस्था को तोड़ने का कार्य करने लगती हैं। राजनीतिक दल, विरोधी समूह मांगों में चुनावी प्रतियोगिता की प्रक्रिया के द्वारा तालमेल स्थापित करने का कार्य करते हैं। दल एकीकरण करने के साथ ही साथ एकता बनाए रखने का कार्य भी करते हैं।

एलेन बाल ने दलों के सामाजिक एकीकरण के कार्य को महत्त्वपूर्ण बताते हुए लिखा है, "राजनीतिक दलों के अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों में से एक कार्य राजनीतिक प्रक्रिया को जोड़ना, सरल करना और स्थिर बनाना है।

नोट

राजनीतिक दलों में महत्तम समापवर्त्य प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति होती है। वे विभाजन नहीं करते बल्कि दलहीन और मिली-जुली सरकारों के समर्थकों के बावजूद वे समाज को जोड़ते हैं। दल क्षेत्रीय हितों को एक-दूसरे के करीब लाते हैं, भौगोलिक दूरियों का निवारण करते हैं और विभक्त करने वाली शासन संरचनाओं में सामंजस्य स्थापित करते हैं। दलों द्वारा किया जाने वाला यह जोड़ने का कार्य राजनीतिक स्थिरता में महत्त्वपूर्ण कारक होता है। हर राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दल राजनीतिक सत्ता की तलाश में अव्यवस्था के भीतर से व्यवस्था का निर्माण कर लेते हैं। वे अपने द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने वाले हितों का विस्तार करना चाहते हैं और इन हितों के बीच परस्पर सामंजस्य स्थापित करते हैं। राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत हितों के एकत्रीकरण का कार्य भी दल ही करते हैं। हितों का प्रतिनिधित्व सुरक्षा नली (safety valve) का सा प्रभाव रखता है। यह बिखरे, फैले हुए हितों को राजनीतिक प्रक्रिया में समेट लाते हैं और उनकी मांगों को सन्तुष्ट करने का प्रयास करते हैं। सभी दल अपने समर्थन का विस्तार करना चाहते हैं। यह चुनाव लड़ने वाले प्रतियोगी दलों तथा राजनीतिक प्रक्रिया पर हावी रहने वाले एक मात्र दल, दोनों के बारे में सही है। ऐसा करने में वे न केवल समाज के अन्तर्गत विभाजन को प्रतिबिम्बित करते हैं बल्कि उनमें उन्हें कम करने की प्रवृत्ति भी होती है। अत: कुल मिलाकर, राजनीतिक दल समाज के संयोजन का कार्य भी करते हैं।

सरकार व जनता की सम्पर्क कड़ी (Link between Government and the People)

राजनीतिक दलों का एक कार्य सरकार तथा जनता के बीच सम्पर्क स्थापित करना है। वे निर्वाचक-समूह को जानकारी प्रदान करने, प्रशिक्षित करने और सक्रिय बनाने की कोशिश करते हैं। राजनीतिक रूप से अपेक्षाकृत निष्क्रिय लोगों से सम्पर्क रखने और विभिन्न नीतियों के प्रति उनमें सजगता उत्पन्न करने व उनसे उन नीतियों का समर्थन पाने के लिए वे जन सम्पर्क माध्यमों तथा स्थानीय संगठनों का प्रयोग करते हैं। वे जनता को क्रियाशील बनाने का प्रयत्न करते हैं। वे जनता की मांगों को सरकार तक तथा सरकार के निर्णयों को जनता तक ले जाते हैं। इस तरह दल, सरकार और जनता के बीच मध्यस्थ का कार्य करते हैं। दल जनता को सक्रिय बनाकर उनका समर्थन पाने का कार्य जन सभाओं, वर्दियों, झण्डों और एकतासूचक अन्य वस्तुओं द्वारा आगे बढ़ाया जाता है। इस प्रकार दल, व्यक्ति और सरकार को जोड़ने वाली कड़ी बन जाते हैं। राजनीतिक जन संचालन का यह पहलू सर्वाधिकारी शासन-व्यवस्थाओं के एक मात्र दलों के सम्बन्ध में और भी अधिक सही है। इस प्रकार की व्यवस्थाओं में दल, राजनीतिक जन संचालन का कार्य करके ही समाज व सरकार में तालमेल बैठाए रखना है। अत: राजनीतिक दल, सरकार व जनता के बीच सम्पर्क स्थापित करने का प्रभावी साधन रहते हैं।

आधुनिकीकरण का उपकरण (Tools of Modernization)

विकासशील राज्यों की राजनीतिक व्यवस्थाओं में आधुनिकीकरण की समस्या का सामना करने के लिए सरकारें भी राजनीतिक दलों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करती है। इन राज्यों में परम्परागत समाज होने के कारण जातीय, धार्मिक, नस्लीय तथा अन्य लगावों के खिंचाव प्रबल होते हैं इसके कारण राष्ट्रीय एकता व राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास नहीं हो पाता है। समाज व्यवस्था की परम्परागतता, राजनीतिक आधुनिकीकरण में बड़ी रुकावट बन जाती है। राजनीतिक दल सत्ता में आने पर सत्ता में बने रहने के लिए आधुनिकीकरण की आवश्यकताओं के महत्त्वपूर्ण पूरक व प्रेरक बन जाते हैं। आर्थिक व सामाजिक नियोजन के माध्यम से सरकारें समाज का नव निर्माण करती हैं और राजनीतिक दल उनको आवश्यक समर्थन जुटाकर आगे बढ़ने के साधन जुटाते हैं।

विकासशील राज्यों की तरह ही विकसित राज्यों में भी राजनीतिक दल आधुनिकीकरण के संयोजक रहते हैं हर राजनीतिक समाज में राजनीतिक दलों व सरकारों का भविष्य इस बात पर ही निर्भर करता है कि वे समाज को आधुनिकीकरण के मार्ग पर कहां तक ले जाने में सफल रहते हैं। अनेक विकासशील राज्यों में सरकारों व राजनीतिक दलों की लोकतान्त्रिक परिस्थितियों, आधुनिकीकरण में इनकी असफलता के ही कारण, अधिनायकवादी बना दी गई है। अत: राजनीतिक दल आधुनिकीकरण के उपकरण के रूप में हर राजनीतिक समाज में सक्रिय रहते हैं।

नोट

ला पालोम्बारा तथा **माइरन वीनर** ने दलों के इस कार्य के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है, "राजनीतिक दलों का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि वे और उनकी सरकारें राजनीतिक विकास के संकट का सामना करने में कहां तक सफल रहती हैं।"

जन संचालन व सौदेबाजी (Mobilization and Bargaining)

हर जगह राजनीतिक दल जन संचालन का कार्य करते हैं। एकदलीय प्रणालियों में तो जन संचालन लोक प्रशासन के अनिवार्य अंग के रूप में ही व्यवस्थित रहता है। इन व्यवस्थाओं में जन संचालन, जनता तथा दल के सदस्यों को अनुशासित रखने के एक पहलू के रूप में भी देखा जाता है। **सेमुअल बार्नस** ने इस सम्बन्ध में उचित ही लिखा है, "राजनीतिक दल, विखण्डित सभाओं के राजनीतिक दृष्टि से अपरिष्कृत व उदासीन लोगों को सामूहिक क्रिया के लिए संचालित करने का एक उज्जवल आविष्कार है।" इसी तरह **एडवर्ड शील्स** की मान्यता है कि एकदलीय राजनीतियों में तो राजनीतिक तमाशा अधिकांश व्यक्तियों के द्वारा वैचारिक सहमति के आधार पर ही चलाया जाता है। वैसे विचारधारा अधिकतर अभिजनों को ही प्रभावित करती है। इस कारण जन संचालन के लिए भी दल का ही सहारा लेना पड़ता है।

सभी राजनीतिक सभाओं में मतदाताओं का व्यवहार विवेकपूर्ण नहीं रहता है। मतदाताओं का बड़ा भाग सौदेबाजी प्रक्रिया (bargaining process) में सक्रिय नहीं रहता है। मतदाताओं की तरफ से विभिन्न हितों में तालमेल बिठाने का कार्य राजनीतिक दल ही करते हैं वे अपने समर्थकों के हितों की अधिकतम सुरक्षा के लिए अन्य संस्थागत संरचनाओं से सौदेबाजी भी करते हैं यह सौदेबाजी अधिकतर सरकार के साथ करनी होती है। सरकार विभिन्न मांगों का संसाधन करती है और उनकी क्रियान्विति के निर्णय लेती है। सरकार द्वारा मांगों के संसाधन के समय राजनीतिक दल सक्रिय रहते हैं और परिस्थिति के अनुसार लेन-देन की सौदेबाजी करते हैं।

विरोध व उच्छेदन (Opposition and Subversion)

राजनीतिक दल केवल रचनात्मक कार्यों तक ही सीमित नहीं रहते हैं। **पीटर मर्कल** का कहना है कि राजनीतिक दल केवल संवैधानिक या कानूनी परिधि में रहकर ही कार्य नहीं करते हैं। आजकल राजनीतिक दल विपक्ष में होने पर विरोध की राजनीति अपनाते हैं। वे सरकार को नियंत्रित करने व उसमें समन्वय स्थापित करने के कार्य के बिल्कुल प्रतिकूल कार्य भी करते हैं। राजनीतिक प्रतियोगिता की यथार्थता के लिए विपक्ष अनिवार्य भी है। इसी कारण सभी विधान मण्डलों में विपक्ष को मान्यता देने की प्रथा है। ब्रिटेन में विपक्ष को मान्यता ही नहीं प्राप्त है वरन् उसका सुनिश्चित संस्थाकरण भी किया गया है। राजनीतिक दलों का विपक्ष के रूप में कार्य एक सुरक्षा नली की तरह होता है। जन आंदोलन व जन क्रांति से बचाव की व्यवस्था के लिए विपक्ष का होना आवश्यक है।

विपक्षी दलों के रूप में दलों के कार्य विकार्यात्मक (dysfunctional) ही अधिक रहते हैं। नीति निर्धारण की प्रक्रिया से हर स्तर पर निराशा व असहमति का भी उद्‌भव होता है। इन प्रवृत्तियों को वे दल जो सत्ता में आने की सम्भावना नहीं रखते हैं, विरोध व जोड़-तोड़ में प्रयुक्त करते हैं। सर्वाधिकारी दल पद्धतियों में प्रतियोगी दलों को कोई स्थान नहीं दिया जाता है। अत: ऐसी परिस्थितियों में यह दल भूमिगत रूप में ही सक्रिय रहते हैं। इसी तरह, लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्थाओं में क्रांतिकारी दल भूमिगत रहकर लोकतंत्र को उखाड़ फेंकने में सक्रिय रहते हैं। इस तरह राजनीतिक दल प्रति-संगठनों (counter organization) के रूप में आतंकवादी गुरिल्ला गतिविधियों से आगे बढ़कर सरकारों को उलटने के लिए षड्‌यन्त्र व क्रांतियों का नेतृत्व भी करते हैं।

यह दलों की व्यवस्था विरोधी गतिविधियां हैं। ऐसे दल, सरकार की कमजोरियों की खोज करने, इसके राजनीतिक व आर्थिक संकटों से लाभ उठाने तथा सरकार के समर्थकों को विभाजित कर उनको मत-भ्रष्ट करने का कार्य भी करते हैं। इस प्रकार वे ऐसे मौकों की ताक में रहते हैं जब सरकार की किसी कठिनाई के क्षण में तपाक् से सत्ता हथिया लें। 'तीसरे विश्व' के राज्यों में अधिकांश दल लम्बी अवधि तक सत्ता में न आ पाने के कारण ऐसी ही भूमिका निभाते हैं। इन देशों में निराश राजनीतिक नेता दलों का सहारा लेकर तोड़-फोड़ तक के लिए आगे बढ़ जाते हैं। ऐसे लोगों को राजनीतिक दलों में 'संगठनी अस्त्र' (organizational weapon) प्राप्त हो जाता

नोट

है। वे इस अस्त्र का प्रयोग नेताओं को बदलने के बजाय सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था को ही रूपान्तरित करने में ही करते हैं। अत: राजनीतिक दल, उदार विपक्ष से लेकर उग्र विरोध व स्थापित व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए आतंकवादी कार्य भी करते हैं।

राजनीतिक दलों के कार्यों की उपरोक्त सूची किसी भी तरह परिपूर्ण नहीं कही जा सकती। राजनीतिक दलों के कार्य इतने विविध हैं कि उनको सूचीबद्ध किया ही नहीं जा सकता है। राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति, शासनतन्त्र का ढांचा, राजनीतिक प्रक्रिया की विशेषताएं तथा स्वयं दलों की संरचनाओं से इनके कार्य नियमित होते हैं। इनके कार्यों का विश्लेषण करते हुए **न्यूमैन** ने ठीक ही लिखा है कि, "राजनीतिक दल विचारों के दलाल हैं जो दलीय सिद्धान्तों का निरन्तर स्पष्टीकरण, व्यवस्थीकरण और प्रसार करते रहते हैं। वे सामाजिक हित-समूहों के प्रतिनिधि होते हैं जो व्यक्ति समाज व समुदाय के बीच दूरी कम करते हैं।" राजनीतिक दल जनता को सार्वजनिक प्रश्नों और समस्याओं के प्रति जागरूक बनाते हैं। यह विपक्ष में रहते हुए सरकार को सचेत व उत्तरदायी रखते हैं। आततायी सरकारों को उलटने तथा क्रांतिकारी आंदोलनों का नेतृत्व करने का कार्य तक करने में दल आगे रहते हैं।

विकसित व सुस्थापित राजनीतिक व्यवस्थाओं में राजनीतिक दलों के कार्य प्रतिमानित हो गए हैं, किन्तु विकासशील राज्यों में इनके कार्य अत्यधिक अनिश्चय की अवस्था में हैं। इन देशों में राजनीतिक दल विचित्र से विचित्र कार्य करते हुए पाए गए हैं। उदाहरण के लिए, चतुर्थ आम चुनाव के बाद भारत के एक राज्य पश्चिम बंगाल में मिली-जुली सरकार के एक घटक मार्क्सवादी साम्यवादी दल के मंत्रीगण स्वयं ही सरकार के विरोध में हड़ताल पर बैठ गए थे। अनेक अफ्रीकी राज्यों में, राजनीतिक दलों की ऐसी ही विचित्र भूमिकाएं रही हैं। विधान मण्डलों में धरनों से लेकर हिंसात्मक प्रदर्शनों तक में राजनीतिक दल सक्रिय पाए गए हैं। अत: राजनीतिक दलों के उपरोक्त कार्य, इनकी गतिविधियों का एक सामान्य विश्लेषण ही कहे जा सकते हैं।

राजनीतिक दलों के कार्यों का यह विवेचन स्पष्ट करता है कि राजनीतिक दलों का हर राजनीतिक व्यवस्था में केन्द्रीय स्थान होता है। वे सभी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं में महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। राजनीतिक दलों के बिना आधुनिक राजनीतिक व्यवस्थाओं की कल्पना करना कठिन है। उदारवादी प्रजातंत्रीय संस्थाओं में राजनीतिक दल निश्चित रूप से निहित होते हैं और सर्वाधिकारी शासनों में दलों पर निर्भरता सबसे ज्यादा होती है। जिन राज्यों में दल नहीं होते या यहां तक कि एक मात्र दल भी नहीं होता, वे अनिवार्य रूप से अनुदारवादी होते हैं और कहा जा सकता है कि वे राजनीतिक दृष्टि से अधिक अस्थिर होते हैं। ऐसे राज्यों में राजनीतिक दल भूमिगत (underground) रहते हैं। तथा सीमित अर्थों में ही उपरोक्त कार्य करते हैं। राजनीतिक दल विहीन राजनीतिक व्यवस्थाओं की अस्थिरता इस बात का प्रमाण है कि राजनीतिक समाजों में दलों की भूमिकाएं अत्यधिक महत्त्व की होती हैं। अत: आधुनिक राजनीतिक व्यवस्थाओं में राजनीतिक दल आधुनिकता के पर्याय माने जा सकते हैं। कोई भी राज्य राजनीतिक दलों के अभाव में आधुनिकता के मार्ग पर तेजी से आगे नहीं बढ़ सकता है। इसी कारण **जयप्रकाश नारायण** द्वारा प्रतिपादित दल विहीन लोकतंत्र का विचार सैद्धांतिकता से आगे नहीं बढ़ पाता है।

राजनीतिक दलों के कार्यों को लेकर विद्वानों में विशेष मतभेद नहीं है। मौखिक दृष्टि से सब प्रकार की दल प्रणालियों में राजनीतिक दलों के कार्य एक से ही होते हैं। उनमें मात्रा के अन्तर हो सकते हैं किन्तु प्रकार के अन्तर नहीं होते हैं। राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति दल प्रणाली के प्रकार, समाज की समूह व्यवस्था तथा राजनीतिक प्रक्रिया की प्रकृति से इनके कार्यों; कार्य करने की विधियों तथा कार्य-शैली में थोड़ा अन्तर अवश्य आता है, किन्तु सामान्य रूप में राजनीतिक दलों के उपरोक्त कार्य हर समाज व्यवस्था में सम्पादित होते हैं। इसी कारण आधुनिक समाजों में राजनीतिक दलों की एक 'सूक्ष्म राजनीतिक व्यवस्था' (a miniature political system) या 'एक निर्णय प्रक्रिया' (a decision making process) कहा जाता है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. राजनीतिक दल सरकार की नीतियों की अपने समर्थकों एवं आम जनता से व्याख्या करता है ..... के बारे में जनता को समझाता है।
2. ..... में उठने वाली माँगों को सरकार तक पहुँचाता है।
3. दल सत्ता में बने रहने के लिए या सत्ता में आने के लिए ..... की परख में लगा रहता है।
4. राजनीतिक दल ..... की सम्पर्क की कड़ी होते हैं।
5. राजनीतिक दल ..... के आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

10.3 सारांश (Summary)

- दल व्यवस्था का आजकल व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जाता है। इसमें दलों की संख्या, संरचना, विचारधारा, उनकी पारस्परिकता इत्यादि अनेक लक्षणों को आधार रूप में लिया जाने लगा है।
- **ला पालोम्बारा** ने दल व्यवस्था के प्रकार का निर्धारण करते समय राजनीतिक दलों के निम्नलिखित लक्षणों का संदर्भ आवश्यक माना है–

  (1) राजनीतिक दल की विशेषताएं व लक्षण,

  (2) दलों के पारस्परिक सम्बन्ध,

  (3) दल या दलों का समाज के अन्य वृत्तों (sectors) से सम्बन्ध, और

  (4) दलों की क्रियान्वयता को प्रभावित करने वाले तत्त्व।
- दल व्यवस्थाओं को इस आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। ला पालोम्बारा तथा माइसन वीनर ने इसी आधार को लेकर दल व्यवस्थाओं की दो मोटी श्रेणियों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार दल व्यवस्थाओं को दो प्रकार–प्रतियोगी दल व्यवस्थाएं व अप्रतियोगी दल व्यवस्थाएं–की माना जा सकता है।
- **एक्सटीन** की मान्यता है कि दल व्यवस्थाओं को, राजनीति की व्यापक और उसके अन्य पहलुओं के प्रति उनकी अनुक्रियात्मकता के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है। इसी तरह दल व्यवस्थाओं को, सामाजिक-सांस्कृतिक शक्तियों के राजनीतिक संयुक्तक के साधन के रूप में देखा जा सकता है।
- **सारटोरी** ने भी व्यवस्थाओं के वर्गीकरण में केवल संख्या ही के आधार को भ्रांतिपूर्ण कहा है। उसने दलों के वर्गीकरण में, इनके वैचारिक फासले, वैचारिक उग्रता तथा सत्ता काल या उनके सत्ता में आने की सम्भावना को ध्यान में रखने की बात कही है।
- दल प्रणाली के अर्थ व दलों के दल-प्रणालियों में वर्गीकरण के आधारों का विवेचन करते समय यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दल व्यवस्था का सर्वसम्मत अर्थ नहीं किया जा सकता। इसी तरह दल व्यवस्था के वर्गीकरण के आधारों पर भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद विद्यमान हैं।
- एकदलीय पद्धति वह व्यवस्था है जिसमें केवल एक ही राजनीतिक दल का अस्तित्व रहता है। अनिवार्य रूप से सरकार पर उसी दल का अस्तित्व रहता है। अधिकारवादी तथा साम्यवादी; जैसे नाजी जर्मनी, फासिस्ट इटली, स्पेन, सोवियत रूस, साम्यवादी चीन आदि में ऐसी व्यवस्था पायी जाती है।
- जनतंत्र सम्पूर्ण जनता का शासन है, विभिन्न वर्गों का नहीं।
- एकदलीय व्यवस्था से जनता में विभाजन तथा गुटबंदी का डर भी खत्म हो जाता है। राष्ट्रीय एकता बनी रहती है। इस व्यवस्था में विरोधी दल का अभाव रहता है।
- लेकिन इस पद्धति में अनेक त्रुटियाँ भी पायी जाती हैं। यह पद्धति अप्रजातांत्रिक है। प्रजातंत्र का आधार वाद-विवाद तथा विचारधाराओं का टकराव है। लेकिन एकदलीय व्यवस्था में विचार का बहुमुखी विकास नहीं हो सकता।

नोट

- सरकार की एकांकी नीति जनता पर लादी जाती है। राष्ट्रीय हित आदि ओट में पड़ जाता है तथा दलीय हित की प्रधानता हो जाती है। संक्षेप में, जनतंत्र का विनाश हो जाता है और देश की उन्नति अवरुद्ध हो जाती है।
- दो प्रमुख दलों में बहुमत दल सत्तारूढ़ रहता है और अल्पमत विरोधी दल का काम करता है। इस पद्धति का सर्वोत्तम उदाहरण ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका है। यह प्रणाली प्रजातांत्रिक है।
- विरोधी दल के होने से सत्तारूढ़ दल निरंकुश और स्वेच्छाचारी नहीं हो पाता।
- इस पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि शासन पर बहुमत दल का एकाधिकार हो जाता है, मंत्रिमंडल की तानाशाही की स्थापना हो जाती है। संसद की स्थिति कमजोर पड़ जाती है। मंत्रिमंडल हाँ में हाँ मिलानेवाला एक सभा मात्र रह जाता है निर्वाचकों को मतदान की स्वतंत्रता नहीं रह जाती, क्योंकि बाध्य होकर उन्हें दो में से किसी एक दल को मत देना ही पड़ता है।
- बहुदलीय पद्धति उसे कहते हैं जहाँ अनेक राजनीतिक दल होते हैं और एक से अधिक दल प्रभावशाली रहते हैं। किसी एक या दो दलों की प्रधानता नहीं रहती बल्कि सभी दल समकक्ष होते हैं। किसी एक दल को विधानमंडल में इतना प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं होता कि वह सरकार बना सके। कई दल मिलजुलकर सरकार का निर्माण करते हैं। संयुक्त मंत्रिमंडल (Coalition Ministry) बनाया जाता है।
- इस पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके अंतर्गत बनायी गयी संयुक्त सरकार अत्यन्त अस्थायी होती है। पलकों में सरकार बनती-बिगड़ती रहती है।
- प्रतिनिधि सरकार की सफलता राजनीतिक दलों के अस्तित्व पर ही निर्भर करती है। यह पूरे देश की जनता को किसी सामान्य सिद्धांतों के समर्थन में परस्पर मिलकर काम करने योग्य बनाती है।
- राजनीतिक दलों का तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य शासन-अंगों में समन्वय व सरकार के नियंत्रण का है। एपस्टीन (EPS-TEIN) ने अपनी पुस्तक "पोलिटिकल पार्टीज़ इन वैस्टर्न डेमोक्रेसीज' में दलों के इस कार्य को सर्वाधिक महत्त्व का बताते हुए लिखा है कि "दल राजनीतिक व्यवस्था में निर्णय लेने और अपने आपको शामिल करने के उद्देश्य के लिए संगठन व समन्वय की आवश्यकता के प्रति अनुक्रिया है।"
- राजनीतिक दलों का एक कार्य सरकार तथा जनता के बीच सम्पर्क स्थापित करना है। वे निर्वाचक-समूह को जानकारी प्रदान करने, प्रशिक्षित करने और सक्रिय बनाने की कोशिश करते हैं। राजनीतिक रूप से अपेक्षाकृत निष्क्रिय लोगों से सम्पर्क रखने और विभिन्न नीतियों के प्रति उनमें सजगता उत्पन्न करने व उनसे उन नीतियों का समर्थन पाने के लिए वे जन सम्पर्क माध्यमों तथा स्थानीय संगठनों का प्रयोग करते हैं।

10.4 शब्दकोश (Keywords)

उच्छृंखल : मर्यादाविहीन, मर्यादाओं को लांघना।

मत वैभिन्य : अलग-अलग विचार।

उद्‌बुद्ध : जगना, बताना, जागरूक करना।

10.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. दलीय व्यवस्था का क्या अर्थ है? व्याख्या कीजिए।
2. दलीय व्यवस्था के वर्गीकरण को स्पष्ट करते हुए इसके प्रकारों का विवेचन कीजिए
3. दलीय व्यवस्था के कार्यों का वर्णन कीजिए।
4. दलीय व्यवस्था के गुणों एवं दोषों का विवेचन कीजिए।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. सरकार के कार्यों
2. राजनीतिक व्यवस्था
3. लोकमत
4. सरकार और जनता
5. राजनीतिक व्यवस्था।

10.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *तुलनात्मक शासन एवं राजनीति*–डॉ. बीरकेश्वर प्रसाद सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन (पी. एण्ड डी.) 24, दरियागंज, अंसारी रोड, दिल्ली।
2. *तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा*– ओम प्रकाश गाबा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।
3. *तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ*–सी.बी. गेना, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड, दिल्ली।
4. *तुलनात्मक राजनीति*–जे.सी. जौहरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि., दिल्ली।

नोट

इकाई–11: दबाव समूह (Pressure Groups)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

11.1 दबाव समूह का अर्थ (Meaning of Pressure Groups)

11.2 राजनीतिक दल और दबाव समूह में अन्तर (Distinction between Political Parties and Pressure Groups)

11.3 दबाव समूह की भूमिका (Role of Pressure Groups)

11.4 सारांश (Summary)

11.5 शब्दकोश (Keywords)

11.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

11.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- दबाव समूह की भूमिका एवं उसके अर्थ को समझने में।
- दबाव समूह और राजनीतिक दलों के बीच अन्तर की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

दबाव-समूह आधुनिक लोकतन्त्र के अभिन्न अंग है। लोकतन्त्रीय देशों में राजनीतिक दलों के विकास के साथ-साथ दबाव अथवा हित समूहों का विकास हुआ है। प्राय: सभी विकसित और अविकसित देशों में जहाँ लोकतांत्रिक व्यवस्था है दबाव-समूह देश की राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। इंगलैंड और भारत जैसे देशों में आज इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण हो गयी है।

दबाव-समूह अमेरिकी राजनीतिक-व्यवस्था की देन है। यद्यपि अमेरिकी गणतंत्र की स्थापना के साथ ही वे पैदा हो गये थे लेकिन बीसवीं सदी मे इनकी भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण हो गयी। आज अमेरिका के राजनीतिक जीवन में इनका महत्त्व इतना अधिक बढ़ गया है कि सरकार तथा विधायक इनकी उपेक्षा नहीं कर सकते। हित-समूहों का विकास प्रजातांत्रिक देशों में बीसवीं सदी के प्रारम्भ में हेय दृष्टि से देखा जाता था। उन्हें एक बुरी शक्ति मानी जाती थी और प्रजातंत्र के लिए घातक समझा जाता था। लेकिन अब स्थिति बदल गयी है और दबाव तथा हित समूहों को आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। उन्हें राजनीतिक क्रियाशीलता के लिए आवश्यक समझा जाता है। इनका उद्देश्य राजनीतिक दलों की भाँति सत्ता को प्राप्त करना नहीं होता, वरन् सत्तारूढ़ दल की नीतियों को अपने पक्ष में प्रभावित करना होता है। ये व्यक्तिगत संगठन (Private Organisation) होते हैं जो विशेष सामाजिक आर्थिक और व्यावसायिक हितों की रक्षा के लिए क्रियाशील रहते हैं। राजनीतिक क्षेत्र के नीति-निर्धारण और प्रशासन पर दिन-प्रतिदिन इनका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव बढ़ता जा रहा है। अत: आज के लोकतांत्रिक देशों में दबाव हित समूहों का अध्ययन भी लोकप्रिय और रुचिकर विषय हो गया है।

नोट

11.1 दबाव समूह का अर्थ (Meaning of Pressure Groups)

समाज में विभिन्न प्रकार के हित पाये जाते हैं, जैसे–मजदूर, कृषक, उद्योगपति, शिक्षक व्यवसायी आदि। जब कोई छोटा अथवा बड़ा हित संगठित रूप धारण कर लेता है तब उसे हित-समूह (Interest Group) कहा जाता है। इस समूह का उद्देश्य अपने सदस्यों के विविध सामाजिक, आर्थिक और व्यावसायिक हितों की रक्षा करना होता है। जब कोई हित-समूह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार से सहायता चाहने लगता है या अपने सदस्यों के हितों के अनुकूल के निर्माण और सशोंधन के लिए विधायकों को प्रभावित करने लगता है तब उसे दबाव समूह (Pressure Group) कहा जाता है। **मायरन बिनर** ने दबाव समूह की परिभाषा देते हुए लिखा है कि दबाव-गुट अथवा हित-समूह से हमारा अभिप्राय ऐसे किसी ऐच्छिक रूप से संगठित समूह से होता है जो सरकार संगठन से बाहर रहकर सरकारी अधिकारियों की नियुक्ति, सरकार की नीति, इसके प्रशासन तथा इसके निर्णय को प्रभावित करने का प्रयत्न करता है।" इन समूहों को दबाव-समूह या हित-समूह इसलिए कहा जाता है कि इनका निर्माण विशेष हितों की रक्षा के लिए होता है और ये अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से विधायकों के साथ सम्पर्क स्थापित करते हैं तथा उन पर किसी विधायक विशेष के पक्ष अथवा विपक्ष से मतदान के लिए दबाव डालते हैं।

कार्टर एवं हर्ज (Carter and Herz) ने भी हित तथा दबाव-समूह के बारे में लिखा है कि "एक स्वतन्त्र समाज के हित समूहों को स्वतन्त्र रूप से संगठित होने की अनुमति होती है और जब ये समूह सरकारी यंत्र और प्रक्रिया पर प्रभाव डालने का प्रयत्न करते हैं और इस प्रकार कानूनों, नियमों, लाइसेंस, करारोपण तथा अन्य विधायी और प्रशासकीय कार्यों को अपने अनुकूल ढालने की चेष्टा करते हैं, तो स्पष्ट ही ये हित (interest) दबाव-समूह (Pressure Groups) में बदल जाते हैं। अब हित-समूहों की गतिविधियाँ सरकार पर दबाव डालने की हो जाती है। **ओडिगार्ड** (Odegard) ने भी लिखा है, "एक दबाव-समूह ऐसे लोगों का औपचारिक संगठन है जिनके एक अथवा समान उद्देश्य एवं स्वार्थ हों और जो घटनाओं के क्रम को, विशेष रूप से सार्वजनिक नीति के निर्माण और शासन को इसलिए प्रभावित करने का ध्यान करें कि उनके हितों की रक्षा और वृद्धि हो सके।"

नोट्स हित-समूह समाज में पाये जाने वाले विशेष हितों के संगठन होते हैं जो अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार पर ऐसी किसी भी नीति को अपनाने के लिए दबाव डालते हैं जो उनके हितों के प्रतिकूल हों तथा अपने हितों की पूर्ति के लिए समाचार-पत्रों, पर्चा, रेडियो, व्यक्तिगत सम्पर्क तथा अन्य माध्यमों के द्वारा सरकार पर दबाव डालते हैं जिस कारण उन्हें दबाव-समूह कहा जाता है।

हित अथवा दबाव-समूह ऐच्छिक (voluntary) और गैर-राजनीतिक (non-political) संगठन होते हैं। इनकी सदस्यता का आधार इनके सदस्यों के बीच समान हित की चेतना और समान हित की वृद्धि के लिए प्रयत्न होते है। इनका सम्बन्ध किसी राजनीतिक दल के प्रत्यक्ष्य रूप से नहीं होता और न ये किसी राजनीतिक दल के अंग होते हैं। परन्तु ये अपने हितों को देखते हुए किसी-न-किसी राजनीतिक दल से अपना सम्बन्ध अवश्य स्थापित कर लेते हैं। दबाव-समूह राजनीतिक दल की भाँति किसी कार्यक्रम के आधार पर निर्वाचकों को प्रभावित नहीं करते वरन् वे किन्हीं विशेष मसलों में रुचि लेते हैं। उनके संगठन का मौलिक कारण सामाजिक, आर्थिक या व्यावसायिक होता है, राजनीतिक नहीं। फिर भी राजनीति को प्रभावित करने का उद्देश्य उनमें राजनीतिक फूट ला देता है। अर्थात् दबाव-समूह पूर्णत: राजनीतिक संगठन नहीं होते और न वे चुनाव के लिए अपने उम्मीदवार ही खड़ा करते हैं। राजनीतिक दल न होते हुए भी वे दलों की भाँति संगठित होते हैं जिनकी निजी सदस्यता, उद्देश्य, संगठन, एकता, साधन और प्रतिष्ठा होते हैं। प्रकृति उद्देश्य और संगठन की दृष्टि से राजनीतिक दलों से वे मौलिक रूप से भिन्न होते हैं। राजनीतिक दल में सभी व्यक्ति का राजनीतिक उद्देश्य नहीं होता।

राजनीतिक दल को सभी वर्गों के मतदाताओं को व्यापक समर्थन प्राप्त होता है जबकि दबाव-समूह को केवल एक ही वर्ग का। राजनीतिक दल निर्वाचन में भाग लेते हैं जबकि हित-समूह निर्वाचन में भाग नहीं लेते। राजनीतिक दल

नोट

विधान-मण्डल के भीतर और बाहर दोनों जगह कार्य करते हैं जबकि दबाव-समूह केवल विधान-मण्डल के बाहर काम करते हैं। एक बार में व्यक्ति एक ही राजनीतिक दल की सदस्यता प्राप्त कर सकता है जबकि एक ही व्यक्ति एक ही बार में कई दबाव-समूहों का सदस्य हो सकता है अर्थात् राजनीतिक दलों की अनन्य (exclusive) सदस्यता के विपरीत परस्पर-व्यापी (over-lapping) सदस्यता दबाव-समूह में पायी जाती है।

क्या आप जानते हैं

राजनीतिक दलों का उद्देश्य सत्ता को प्राप्त करना तथा उसके माध्यम से अपनी नीतियों और कार्यक्रमों को लागू करना होता है जबकि दबाव-गुटों का उद्देश्य सत्ता को प्राप्त करना नहीं, वरन् अपने हितों की रक्षा करना होता है।

(1) दबाव या हित-समूह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न तरीकों से कार्य करते हैं। वे अपने मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक तथा दैनिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित करते हैं। इन पत्र-पत्रिकाओं में वे अपने हितों को जनता के समक्ष प्रस्तुत करते हैं और उनके पक्ष में जनमत का निर्माण करके सरकार को हितों के अनुरूप नीतियाँ बनाने के लिए बाध्य करते हैं।

(2) उनका कार्य करने का दूसरा तरीका जनता के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित करने का है और किसी भी विधेयक के समर्थन अथवा विरोध के लिए जनता को प्रेरित करना है। इसके लिए वे अल्पकालीन अभियान (Short term campaign) और दीर्घकालीन अभियान (Long-term campaign) चलाते हैं। अल्कालीन अभियान जनमत को किसी भी विधेयक के पक्ष अथवा विपक्ष में बनाने के लिए और दीर्घकालीन किसी भी समस्या के प्रति जनता के मूलभूत दृष्टिकोण को अनुकूल बनाने के उद्देश्य से अपनाया जाता है। प्रभावशाली संगठन द्वारा प्रेस, रेडियो, टेलीविजन और विशेषज्ञों की सेवाओं का उपयोग किया जाता है।

(3) दबाव-समूह परोक्ष रूप से (indirectly) चुनाव में भाग लेते हैं। यद्यपि उनका कोई उम्मीदवार चुनाव में खड़ा नहीं होता, फिर भी वे विशेष राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों को अपना समर्थन देते हैं, इसके लिए वे चन्दा देते हैं तथा चुनाव अभियानों में भाग लेने के लिए अपने कार्यकर्त्ता भी देते हैं। भारत के अधिकांश प्रमुख राजनीतिक दल, जैसे–काँग्रेस, कम्युनिस्ट और जनसंघ अपने मजदूर और छात्र-संगठन को मौके पर काम मे लाते देखे जाते हैं। दूसरी ओर उनके ये संगठन भी उम्मीदवार के चयन के सम्बन्ध में प्रतिनिधित्व की माँग करते हैं।

(4) दबाव-समूह कभी-कभी सरकार पर दबाव डालने के लिए हड़ताल तथा प्रदर्शनों का भी आयोजन करते हैं। भारत मे इस तरीके को बहुत ज्यादा अपनाया जाता हैं। खासकर संघ सभाओं, हड़तालों तथा प्रदर्शनों का ज्यादा सहारा लेते हैं।

(5) कभी-कभी दबाव-समूह ऐसे विधेयकों को जो उनके हित के प्रतिकूल होते हैं, पारित न होने देने हेतु न्यायालय के दरवाजे भी खटखटाते हैं। बैंकों के राष्ट्रीकरण और प्रीवीपर्स के उन्मूलन से सम्बन्धित अध्यादेशों को न्यायालय में चुनौती इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

(6) दबाव अथवा हित-समूहों के कार्य करने का सबसे अधिक सुपरिचित तरीका लोबिईंग (Lobbying) हैं। अमेरिका में यह तरीका राजनीतिक जीवन की महत्त्वपूर्ण संस्था बन चुकी है। प्रत्येक व्यवस्थापिका सदन के साथ लगे हुए कमरे अथवा बरामदे को लॉबी अथवा प्रकोष्ठ कहा जाता है, जहाँ विधायक अवकाश के समय में आकर बैठते हैं और वहाँ दबाव-समूहों के प्रतिनिधि उनसे सम्पर्क स्थापित करते हैं, तथा उन्हें अपने पक्ष में प्रभावित करने की चेष्टा करते हैं। अधिकांश दबाव-समूह अपने वैधानिक प्रतिनिधियों के द्वारा लोबिईंग कार्य कराते हैं। इस तरीके को भ्रष्टाचार का तरीका माना जाता है क्योंकि विधायकों को पक्ष और विपक्ष में मत डालने के लिए कोशिश या रिश्वत तक दी जाती है। वर्तमान समय में अमेरिका में लोबिईंग की पद्धति में एक नया विकास हुआ है, जिसे ग्रास रूट्स लोबिईंग (Grass-route lobbying) कहते हैं। इसका अभिप्राय

नोट

यह है कि लॉबी विधायिका सभा के सदस्यों को प्रभावित करने के लिए उनके विधानसभा-क्षेत्र के मतदाताओं से तार, पत्र अथवा टेलीफोन आदि करवाते हैं। अमेरिका मे लोबिईंग के बढ़ते हुए कुप्रभाव को रोकने के लिए कई कानून बनाये गये, फिर भी लॉबियाँ वहाँ के राजनीतिक जीवन में काफी प्रभावशाली है। भारत में यद्यपि लॉबी का प्रचलन बहुत अधिक नहीं है, फिर भी उद्योगपतियों तथा व्यावसायियों के दबाव-समूह इस तरीके को अपनाने का प्रयास करते हैं। विधेयकों के निर्माण, लाइसेंस देने, किसी विधेयक के पक्ष या विपक्ष में बोलने के लिए भारत में विधायकों को घूस देते हुए या उनके सगे सम्बन्धियों को नौकरियाँ देते हुए वे पाये गये हैं। कई बार ऐसे मामलों का संसद् और विधानसभाओं या उनके बाहर पर्दाफाश भी हुआ है।

दबाव-समूहों को भ्रष्टाचार का अड्डा कहा जाता है। वे गलत ढंग से प्रभाव डालने का तरीका अपनाते हैं। इसके लिए वे विशाल धन-राशि खर्च करते हैं; घूस और रिश्वत देते हैं, विधायकों को तरह-तरह के लालच देते हैं। अमेरिका के हित-समूहों के बारे में लिखते हुए **प्रो. वी. ओ. की.** (V. O. Key) ने कहा है कि "ये हित-समूह विधायकों के लिए अच्छी-अच्छी दावतों का आयोजन करते हैं, उनके लिए नशीली वस्तुएँ मुहैय्या करते हैं। यही नहीं, वे विधायकों के लिए दुराचारी स्त्रियों का प्रबन्ध करते हैं, जिन्हें लॉबी की तरफ से वेतन मिलता है।" इसी कारण अमेरिका में यह महसूस किया जाने लगा है कि दबाव-समूहों ने वहाँ राजनीतिक अनैतिकता, भ्रष्टाचार तथा अन्य प्रकार की अनियमितताओं को बढ़ावा दिया है। भारत में भी दबाव-समूह की बुराइयाँ स्पष्ट होने लगी हैं। देश में अधिकांश हड़ताल और प्रदर्शन इन्हीं के द्वारा आयोजित किये जाते हैं, ये संसद् के सदस्यों को अनैतिक ढंग से प्रभावित करते हुए पाये गये हैं। फिर भी दबाव-समूह आधुनिक लोकतन्त्र के स्वाभाविक अंग बन चुके हैं।

दबाव-समूह की विशेषताएँ (Characteristics of Pressure Groups)

दबाव-समूह अपनी प्रकृति से हित-समूहों की तरह न तो पूर्णत: अराजनीतिक होते हैं और न ही दलों की तरह पूर्णत: राजनीतिक होते हैं। दबाव-समूहों के कुछ विशिष्ट लक्षण होते हैं जो इन्हें अन्य संगठनों से अलग करते हैं। संक्षेप में ये लक्षण निम्नलिखित हैं–

(1) **औपचारिक संगठन**–औपचारिक रूप से संगठित व्यक्ति-समूहों को दबाव-समूह कहा जाता है। व्यक्तियों के किसी भी समूह को दबाव-समूह नहीं कहा जा सकता क्योंकि ऐसे संगठन का औपचारिक होना जरूरी है। दूसरे शब्दों में समूह के हितों की प्राप्ति के लिए औपचारिक ढंग से निर्वाचित या मनोनीत व्यक्तियों की व्यवस्था इसमें हो। अत: दबाव-समूह के अपने नियम, सदस्यता शुल्क, समिति और कार्यकारिणी होती है। इसका कार्य राजनीतिक प्रक्रिया को अपने हितों की पूर्ति के लिए विशेष रूप से प्रभावित करने का है। अत: दबाव-समूह का प्रथम लक्षण इसका औपचारिक संगठन है।

(2) **विशिष्ट स्वहित**–दबाव-समूहों के निर्माण का मुख्य आधार विशिष्ट-हितों की प्राप्ति होता है। विशेष रूप से पेशेवर समूह सामान्य हित का ही लक्ष्य रखते हैं। लेकिन ऐसा देखा जाता है कि उद्देश्यों और स्वहितों की निश्चित ही व्यक्तियों को दबाव-समूह में आबद्ध करती है। जब तक व्यक्तियों के सामने स्पष्ट, निश्चित हित नहीं होंगे तब तक किसी भी दबाव-समूह का निर्माण नहीं हो सकता।

(3) **सर्वव्यापी प्रकृति**–हर तरह की राजनीतिक व्यवस्थाओं में दबाव-समूहों को देखा जा सकता है। सर्वसत्तावादी व्यवस्थाओं में भी ये पाये जाते हैं। लोकतन्त्र में ये महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। साम्यवादी व्यवस्थाओं में भी इनका अस्तित्व पाया जाता है। हालांकि उनकी गतिविधियाँ बहुत गुप्त होती हैं। राजनीतिक दल चुनावों के समय ही सक्रिय दिखाई पड़ते हैं। अत: दो चुनावों के बीच की अवधि में ये समूह सरकार और जनता के अनुसार केवल यह तथ्य कि दबाव-समूह साम्यवादी राज्यों में भी होते हैं इनकी सर्वव्यापकता का प्रमाण है।

(4) **ऐच्छिक सदस्यता**–दबाव-समूह चूँकि विशेष हितों की प्राप्ति के लिए संगठित किये जाते हैं। अत: वही व्यक्ति इसका सदस्य बनते हैं जिनके हितों की सिद्धि इनके द्वारा होती है। फलत: दबाव-समूह का सदस्य बनने के लिए किसी को मजबूर नहीं किया जा सकता। एक व्यक्ति जब चाहे किसी दबाव समूह से त्याग-पत्र

नोट

दे सकता है। इसी विशेषता के कारण दबाव-समूह प्रतिद्वन्द्वी राजनीति के आधार पर स्तम्भ बन जाते हैं और राजनीति में आम-जनता की सहभागिता बढ़ जाती है।

(5) **राजनीतिक क्रिया उन्मुख**–दबाव-समूह अपने आप में राजनीतिक संगठन नहीं होते बल्कि खास प्रश्न पर राजनीतिक क्रिया को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। वे न तो चुनावों में उम्मीदवार खड़ा करते हैं और न ही राजनीतिक संगठन बनाते हैं। दूसरे शब्दों में शासन से बाहर रहकर अपने हितों के अनुकूल सरकार को प्रभावित करते हैं।

(6) **अनिश्चित कार्यकाल**–दबाव-समूह स्थायी नहीं होते। अत: यह बनते और बिगड़ते रहते हैं। हितपूर्ति के बाद ये समाप्त हो जाते हैं। लेकिन कुछ पेशेवर दबाव-समूह स्थायी रूप से बने रहते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों में ट्रेड-यूनियन इसका उदाहरण है। किन्तु अधिकांश समूह हित प्राप्ति के बाद समाप्त हो जाते हैं।

टास्क दबाव समूहों को भ्रष्टाचार का अड्डा क्यों कहा जाता है?

11.2 राजनीतिक दल और दबाव समूह में अन्तर (Distinction between Political Parties and Pressure Groups)

राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों के साथ सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध दबाव समूह का होता है। दोनों एक दूसरे पर इतने निर्भर हैं कि अपने उद्देश्यों की पूर्ति में उन्हें एक-दूसरे का सहयोगी होकर काम करना पड़ता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों एक दूसरे के बिना काम नहीं कर सकते। परिस्थितिवश कभी-कभी दोनों में सहयोग और कभी-कभी विरोध भी देखा जाता है। कुछ दबाव समूह एक से अधिक दलों के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं। अत: समानताओं के बावजूद राजनीतिक दल और दबाव समूह में अन्तर देखे जा सकते हैं। संक्षेप में इन दोनों के बीच निम्नलिखित अन्तर है:–

(क) उद्देश्य सम्बन्धी पहला अन्तर दबाव समूहों और राजनीतिक दलों में पाया जाता है। दबाव समूह के उद्देश्य विशिष्ट स्पष्ट और केवल निजी लाभ के लिए होते हैं। दूसरी ओर राजनीतिक दलों के उद्देश्य सामान्य होते हैं जिसका सम्बन्ध सम्पूर्ण समाज से होता है।

(ख) कार्य-क्षेत्र सम्बन्धी दूसरा अन्तर भी इन दोनों में पाया जाता है। दबाव समूहों का कार्य-क्षेत्र विशिष्ट और समुचित होता है जबकि राजनीतिक दलों का सामान्य और व्यापक। दबाव समूहों का सम्बन्ध मानव जीवन के किसी खास पहलू से ही होता है जबकि दलों का मानव जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियों से होता है।

(ग) सदस्यता सम्बन्धी तीसरा अन्तर भी इन दोनों के बीच पाया जाता है। एक ही समय में एक व्यक्ति अनेक दबाव समूहों का सदस्य हो सकता है जबकि ऐसी ही स्थिति में एक व्यक्ति अनेक राजनीतिक दलों का सदस्य नहीं हो सकता।

(घ) राजनीतिक प्रक्रिया के दबाव-समूह स्वयं अंग नहीं होते। लेकिन दल इसी प्रक्रिया के अनुसार अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। वे केवल निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। दलों की तरह स्वयं निर्णायक नहीं बनते।

(ड़) चुनावों से सीधा सम्बन्ध राजनीतिक दलों का होता है दबाव-समूहों का नहीं। इस प्रकार दबाव-समूह का कोई अपना निर्वाचन-क्षेत्र नहीं होता। लेकिन राजनीतिक दलों का उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना होता है। अत: चुनावों में वे भाग लेकर अपने प्रत्याशियों को विजयी बनाना चाहते हैं।

(च) संगठन को लेकर भी दबाव-समूह और राजनीतिक दलों में अन्तर है। राजनीतिक दल राष्ट्रव्यापी होते हैं।

नोट

लेकिन बहुत कम दबाव-समूहों का स्वरूप राष्ट्रव्यापी होता है। दूसरी और कुछ दबाव-समूह राजनीतिक दलों से भी अधिक व्यापक-संगठन वाले होते हैं जबकि कुछ राजनीतिक दल क्षेत्रीय अथवा स्थानीय स्तर तक ही सीमित रहते हैं।

इन अन्तरों के बावजूद यह निष्कर्ष निकालना गलत है कि दोनों में सम्बन्ध नहीं है। ऐसा माना जाता है कि दबाव-समूहों का रूप अत्यन्त संगठित और उनकी भूमिका समाज में प्रभावकारी होती है तो राजनीतिक दल भी उनके समक्ष बौने लगते हैं।

फाइनर ने इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि "जहाँ सिद्धान्त और संगठन में राजनीतिक दल दुर्बल होगें वहाँ दबाव-समूह बनायेंगे, जहाँ दबाव-समूह शक्तिशाली होंगे वहाँ राजनीतिक दल कमजोर होंगे और जहाँ राजनीतिक दल शक्तिशाली होंगे वहाँ दबाव-समूह दबा दिये जायेंगे।"[1] **फाइनर** का यह कथन पाश्चात्य लोकतंत्रों पर ही लागू होता है जहाँ राजनीतिक दल और दबाव-समूह दोनों ही विकसित हैं। विकासशील राजनीतिक व्यवस्थाओं में राजनीतिक दलों और दबाव-समूहों का शक्तिशाली संगठन नहीं पाया जाता। अत: इन देशों में दोनों के बीच कोई अन्तर नहीं किया जा सकता।

दबाव-समूहों का वर्गीकरण (Classification of Pressure groups)

संख्यात्मक दृष्टि से अधिक और प्रकृति में विभिन्नता के कारण दबाव-समूहों का वर्गीकरण करना एक मुश्किल काम लगता है। वर्गीकरण के निश्चित आधारों में दबाव-समूहों की प्रकृति को जानना सचमुच कठिन है। फिर भी इन समूहों के लक्ष्य, संगठन की प्रकृति, अस्तित्व की अवधि, कार्य क्षेत्र और निर्माण के प्रेरक तत्त्वों के आधार पर दबाव-समूहों का वर्गीकरण अनेक विद्वानों के द्वारा किया गया है। उपर्युक्त आधारों पर दबाव-समूह के कुछ वर्गीकरण इस प्रकार हैं–

1. कार्ल फ्रेडरिक का वर्गीकरण–फ्रेडरिक ने दबाव समूहों को दो वर्गों में विभाजित किया है–(क) सामान्य दबाव-समूह-सामान्य हितों को आधार मानकर चलने वाले समूहों को उसने इस श्रेणी में रखा है। (ख) विशिष्ट दबाव-समूह–किसी खास या विशेष हित की प्राप्ति के लिए काम करने वाले दबाव समूहों को उसने दूसरी श्रेणी में रखा है।

2. ऑमण्ड का वर्गीकरण–ऑमण्ड ने दबाव समूहों का वर्गीकरण संरचनात्मक रूपों और हित संचारण के आधार पर किया है। इन दोनों आधारों पर उसने दबाव-समूह को निम्नलिखित चार वर्गों में रखा है।

(क) संस्थात्मक दबाव समूह (Institutional Pressure groups)–इस वर्ग में ऑमण्ड ने उन समूहों को रखा है जो किसी राजनीतिक दल या संगठन के अन्तर्गत ग्रुप के रूप में काम करते हैं। अतिरिक्त समूहों के रूप में ये सेना और असैनिक सेवा में पाये जाते हैं। कर्मचारियों के इन समूहों का उद्देश्य सामाजिक और राजनीतिक हितों की पूर्ति करना होता है। ये राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासनिक या धार्मिक कार्यों के अलावा हित स्वरूपीकरण का भी काम करते हैं। अल्पविकसित या अविकसित देशों में ऐसे समूहों की संख्या काफी कम होती है, लेकिन विकसित देशों में अधिक संख्या में पाये जाते हैं और प्रभावकारी ढंग से हित स्वरूपीकरण का भी कार्य करते हैं।

(ख) प्रदर्शनात्मक या चमत्मकारिक दबाव-समूह (Anomic Pressure Groups)–ऐसे दबाव-समूहों को ऑमण्ड ने आकस्कि या चमत्कारिक व्यवहार से युक्त माना है क्योंकि ये प्रदर्शनों आंदोलनों, रैलियों, दंगों इत्यादि के रूप में प्रकट होकर अचानक अपने प्रभाव का विस्तार करते हैं। संगठित व नियंत्रित होने के बावजूद ये राजनीतिक व्यवस्था में बाधा उत्पन्न करने या उसे बदल देने की क्षमता रखते हैं। फ्रांस, इटली, लैटिन अमेरिकी, देशों तथा कुछ अरब देशों में ऐसे दबाव-समूह अधिक प्रभावशाली हैं।

(ग) असमुदयत्मक दबाव-समूह (Non-associational Pressure Groups)–रक्त संबंध, धर्म या वर्ग पर परम्परागत ढंग से आधारित दबाव समूह इस वर्ग में रखे जाते हैं। इन समूहों में ऑमण्ड ने पैतृक जातीय धार्मिक व रक्त सम्बन्धी समूहों को स्थान दिया है। इनकी विशेषता यह है कि हित साधने का काम वे निरंतर नहीं करते बल्कि आवश्यकतानुसार समय-समय पर करते हैं। ऐसे समूहों की संरचनाएँ बनती बिगड़ती रहती हैं और बहुत

नोट

कम संगठित हो पाती हैं। विविधता से भरे आधुनिक समाजों में इनका प्रभाव बहुत सीमित होता है।

(घ) समुदयात्मक दबाव-समूह (Associational Interst Groups)—विशेष व्यक्तियों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे समूहों का संगठन औपचारिक रूप से होता है। श्रमिक संघ, व्यापारिक संघ जैसे समूह इसके उदाहरण हैं। ऐसे समूह अपने सदस्यों के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। राजनीतिक व्यवस्था द्वारा इनकी कार्यशैली को मान्यता प्रदान की जाती है। ऐसे समूह उन सभी देशों में पाये जाते हैं जहाँ संघ बनाने का अधिकार लोगों को संविधान द्वारा प्राप्त होता है।

3. ब्लौण्डल का वर्गीकरण—ब्लौण्डल ने निर्माण के प्रेरक तत्त्वों के आधार पर दबाव-समूहों का वर्गीकरण किया। जिन समूहों की स्थापना के जड़ में व्यक्तियों के सामाजिक सम्बन्ध होते हैं उन्हें उसने सांप्रदायिक समूह कहा है और जिन समूहों की स्थापना के पीछे किसी खास लक्ष्य की प्रेरणा हो उन्हें उसने साहचर्य समूह कहा है। प्रथम समूह को पुनः ब्लौण्डल ने रूढ़िगत और प्रथागत तथा दूसरे को संरक्षणात्मक और उत्थानात्मक उपवर्गों में बाँटा है। कुल मिलाकर ब्लौण्डल का वर्गीकरण निम्नलिखित है।

(क) साम्प्रदायिक दबाव-समूह (Communal Pressure Groups): सामाजिक सम्बन्धों के कारण ब्लौण्डल के अनुसार ऐसे दबाव-समूहों का निर्माण होता है। इन सम्बन्धों से सामूहिक एकता की भावना विकसित होती है, फलतः कालान्तर में लोग स्वयं ऐसे समूहों में बँध जाते हैं। ये औपचारिक और अनौपचारिक दोनों रूपों में संगठित होते हैं। ब्लौण्डल ने ऐसे समूहों को निम्नलिखित दो उपभागों में बाँटा है—

(*i*) **प्रथागत समूह** (Customary Groups): जिन समूहों के सदस्यों के व्यवहार और कार्य पद्धति में सामाजिक रीति-रिवाज मुख्य भूमिका अदा करते हैं उन्हें ब्लौण्डल ने प्रथागत समूह कहा है। जातियों और जनजातियों के ऐसे समूह प्रथागत समूहों के अच्छे उदाहरण हैं।

(*ii*) **संस्थात्मक समूह** (Institutional Groups): कुछ संस्थाओं के सदस्यों के एक साथ रहने से सामाजिक सम्बन्धों के आलावा उनमें रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। ब्लौण्डल ने ऐसे समूहों को संस्थात्मक कहा है। सैनिक कल्याण परिषदें, कर्मचारी संरक्षण परिषदें इत्यादि इसके उदाहरण हो सकते हैं।

(ख) संघात्मक या साहचर्य समूह (Associatioanl Groups): ब्लौण्डल के अनुसार एक खास लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समूहों को इस वर्ग में रखा जा सकता है। ऐसे समूह निश्चित लक्ष्य से मुक्त होते हैं जिसके द्वारा राजनीतिक व्यवस्था में समाज की माँगों का प्रवेश होता है। ये समूह माँगों के साथ चलते हैं और औद्योगिक विकास के साथ इनकी संख्या में वृद्धि होती है। ब्लौण्डल ने ऐसे समूहों को पुनः दो उपवर्गों में बाँटा है।

(*i*) **संरक्षणात्मक समूह** (Protective Groups): ऐसे समूहों का उद्देश्य विशिष्ट होते हुए भी व्यापक और सामान्य होते हैं। ये अपने सदस्यों के सामान्य हितों की रक्षा करते हैं। व्यावसायिक और श्रमिक संघों को इसके अन्तर्गत रखा जा सकता है।

(*ii*) **उत्थानात्मक समूह** (Promotional Groups): जब किसी खास दृष्टिकोण के प्रचार द्वारा समाज को विकसित करने का लक्ष्य रखकर समूहों का निर्माण किया जाता है तो उन्हें उत्थानात्मक समूह कहा जाता है। गो-रक्षा, नारी-स्वतंत्रता, निःशस्त्रीकरण आदि लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निर्मित समूहों को इस कोटि में रखा जा सकता है।

4. राबर्ट सी. बोन का वर्गीकरण: बोन ने सामान्य प्रकृति और उद्देश्यों के आधार पर दबाव-समूहों को दो वर्गों में बाँटा है। एक को उसने परिस्थिति-जन्य समूह और दूसरे को अभिवृत्तिजन्य समूह कहा है। इन दोनों प्रकार के समूहों का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है—

(क) परिस्थितिजन्य समूह (Situational Groups): ऐसे दबाव-समूह मुख्य रूप से अपने सदस्यों की रक्षा और सुधार से सम्बन्धित होते हैं। इन समूहों का उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से अपने सदस्यों की स्थिति को सुधारना है।

नोट

बोन का कहना है कि इन दबाव समूहों का किसी खास विचारधारा से विशिष्ट संबन्ध नहीं होता। ये प्रकृति से विशिष्ट होते हैं और अपने सदस्यों के हितों की वृद्धि और रक्षा का भी उद्देश्य रखते हैं। इनकी कार्यपद्धति वैधानिक होती है।

(ख) अभिवृत्तिजन्य समूह (Attitudinal Groups): ऐसे समूह कुछ मूल्यों के प्रति सामान्य रूप से निष्ठा रखते हैं। ये शांतिपूर्ण सुधारों या कभी-कभी क्रांतिकारी तरीकों से समाज में व्यापक परिवर्तन लाना चाहते हैं। ये समूह परिस्थितिजन्य समूहों से भिन्न होते हैं। इनका कार्यक्रम कालबद्ध होता है। कम-से-कम समय में अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सरकार को मजबूत करने का प्रयास करते हैं। चूँकि इन समूहों के उद्देश्य अल्पकालीन होते हैं, अत: ये तेज गति की तकनीकों का प्रयोग करते हैं।

राबर्ट सी. बेन द्वारा किया गया दबाव-समूह का वर्गीकरण सामान्य होते हुए भी दबाव-समूहों की प्रकृति, संगठन, उद्देश्यों और कार्य विधि को समझने में सहायक लगता है।

11.3 दबाव समूहों की भूमिका (Role of Pressure Groups)

ऐसा देखा जाता है कि दबाव-समूहों की कोई एक तरह की कार्यविधि नहीं होती है। वे अनेक तरह की तकनीकों का प्रयोग किया करते हैं। साधारणत: सरकारी प्रक्रिया की संरचना तथा प्रचलित परिस्थितियों के द्वारा दबाव समूहों के माध्यम से प्रयोग में लायी जाने वाली प्रविधियों का नियमन होता है। एक ही दबाव-समूह विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार की तकनीकों का उपयोग कर सकता है। यहाँ एक बात बहुत ही ध्यान देने योग्य है कि दबाव समूह जिस विधि को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में अधिक सहायक मानता है, उसी तकनीक का वह प्रयोग करता है। आमतौर पर दबाव समूह जिन तकनीकों का प्रयोग करते हैं वे निम्नलिखित है–

1. अनुनय (Persuation) 2. सौदेबाजी (Bargaining) 3. प्रत्यक्ष कार्रवाई (Direct Action)

दबाव-समूहों के द्वारा कार्य करने की विधियाँ उनके संगठन के स्वरूप, नेताओं के द्वारा अनुनय करने की क्षमता, पदाधिकारियों और कर्मचारियों का तादात्म्य, सदस्यों की सामूहिक कार्यों में हिस्सेदारी और समूह की वित्तीय स्थिति के द्वारा भी निर्धारित होती है। जैसे दबाव समूह को सौदेबाजी के ज्यादा अवसर मिलते हैं जबकि छोटे और साधनहीन समूह को या तो अनुनय तक ही सीमित रहना पड़ता है या प्रत्यक्ष कार्रवाई करनी पड़ती है।

आधुनिक राजनीतिक प्रक्रिया में दबाव समूहों की विशेष भूमिका एवं महत्त्व है। प्राय: सभी प्रजातांत्रिक देशों में दबाव-समूह पाये जाते हैं। **कार्ल जे. फ्रेडरिक** ने इन समूहों को 'दल के पीछे सक्रिय जन' (The living public behind the party's) कहा है। किन्तु एक ऐसा भी समय था जब इन दबाव समूहों को अनैतिक माना जाता था और उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। लॉबी शब्द को हेय दृष्टि में देखा जाता था और इसे धोखा, भ्रष्टाचार, बुराई इत्यादि का प्रतीक माना जाता था।

किन्तु समय ने करवट ली और लोकतंत्र के विकास के साथ-साथ दबाव समूहों के महत्त्व को भी स्वीकार किया जाने लगा। आज इन्हें लोकतंत्र के लिये न केवल आवश्यक ही माना जाता है बल्कि व्यक्ति के हितों का रक्षक भी समझा जाता है। राज्य को विधायी कार्यों पर दबाव समूहों का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इन्हें विधानमंडल के पीछे सभा मंडल (Legislature behind a legislature) कहा जाता है। **फाइनर** ने दबाव समूहों को अज्ञात साम्राज्य (The Anonymous Empire) कहा है। संक्षेप में इन समूहों की बढ़ती हुई भूमिका तथा महत्त्व के निम्नलिखित कारण हैं–

1. **लोकतांत्रिक प्रक्रिया की अभिव्यक्ति:** दबाव समूहों को लोकतंत्र की अभिव्यक्ति का साधन माना जाता है। लोकतंत्र की सफलता के लिये स्वस्थ जनमत तैयार करना जरूरी है ताकि विशिष्ट नीतियों का समर्थन या विरोध किया जा सके। जनमत को शिक्षित करने के आँकड़े एकत्रित करने तथा विधि निर्माताओं के पास आवश्यक सूचनाएँ पहुँचाकर दबाव समूह अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं।
2. **प्रशासन के लिए सूचना एकत्र करने वाला संगठन:** दबाव समूहों का महत्त्व शासन के लिए सूचनाएँ एकत्रित करने वाले संगठन के रूप में भी है। हर देश में सरकार तथा प्रशासन के पास आवश्यक सूचनाएँ

नोट

पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए। इन सूचनाओं के बिना उचित नीति का निर्माण नहीं किया जा सकता। शासन की सूचनाओं के गैर सरकारी दान के रूप में दबाव समूह महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

3. **प्रशासन को प्रभावित करने वाला संगठन:** दबाव समूह आजकल एक ऐसी संस्था के रूप में परिवर्तित हो चुके हैं जो शासन को एक खास सीमा तक प्रभावित करती हैं। दबाव समूह इतने शक्तिशाली और संगठित हो चुके हैं कि ये अपने स्वार्थ और हित के लिए शासन व्यवस्था पर उपयोगी प्रभाव डाल सकते हैं।
4. **सरकार की निरंकुशता को सीमित करने वाला संगठन:** आधुनिक शासन व्यवस्था में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति बढ़ने के कारण सारी शक्तियाँ केन्द्र के हाथों में इकट्ठी होती जा रही हैं किन्तु ये दबाव-समूह अपने प्रभाव और शक्तियों द्वारा केन्द्रीय निरंकुशता को सीमित करते हैं। इस प्रकार केन्द्र शक्तियों का दुरुपयोग नहीं कर सकता।
5. **प्रशासन और समाज में संतुलन स्थापित करने वाला संगठन:** दबाव समूह अपने प्रभाव और अस्तित्व द्वारा विभिन्न हितों में संतुलन स्थापित करते हुए किसी एक सत्ता को अत्यधिक प्रभावशाली होने से रोकते हैं। व्यापारी, किसान, मजदूर, विधार्थी, स्त्रियाँ, जाति और धार्मिक समुदाय सभी अपने-अपने हितों की रक्षा करना चाहते हैं और इस प्रकार इन समूहों की प्रतियोगिता और उपस्थिति से प्रशासन और समाज में संतुलन स्थापित होता है। यह संतुलन निजी स्वार्थों की वृद्धि पर अंकुश का काम करता है। अत: विभिन्न दबाव समूह समाज में संतुलनकर्त्ता के रूप में कार्य करते हैं।

इस प्रकार दबाव समूहों का महत्त्व अत्यंत व्यापक होता जा रहा है। आधुनिक लोकतांत्रिक समाज में ये दबाव समूह शासकों को बनने और बिगाड़ने की भूमिका भी अदा कर रहे हैं। वे सत्तारूढ़ दल को मनमानी करने से रोकते हैं और समाज में राजनीतिक पहरेदार का कार्य करते हैं। सचमुच दबाव समूह आज की व्यावहारिक राजनीतिक के व्यावहारिक अंग बन चुके हैं जिन्हें समाप्त नहीं किया जा सकता।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. दबाव समूहों का उद्देश्य केवल निजी लाभ के लिए होता है जब ..... के उद्देश्य का सम्बन्ध सम्पूर्ण समाज के लिए होता है।
2. एक ही समय में कोई व्यक्ति अनेक राजनीतिक दलों का सदस्य नहीं बन सकता जबकि कोई व्यक्ति एक ही समय में एक से अधिक ..... का सदस्य बन सकता है।
3. चुनावों से सीधा सम्बन्ध ..... का होता है।
4. दबाव समूहों का महत्व शासन के लिए सूचनाएँ एकत्रित करने वाले ..... के रूप में भी है।
5. दबाव समूह ..... में संतुलन स्थापित करने वाले संगठन के रूप में भी कार्य करते हैं।

11.4 सारांश (Summary)

- समाज में विभिन्न प्रकार के हित पाये जाते हैं, जैसे–मजदूर, कृषक, उद्योगपति, शिक्षक व्यवसायी आदि। जब कोई छोटा अथवा बड़ा हित संगठित रूप धारण कर लेता है तब उसे हित-समूह (Interest Group) कहा जाता है। इस समूह का उद्देश्य अपने सदस्यों के विविध सामाजिक, आर्थिक और व्यावसायिक हितों की रक्षा करना होता है। जब कोई हित-समूह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार से सहायता चाहने लगता है या अपने सदस्यों के हितों के अनुकूल संशोधन के लिए विधायकों को प्रभावित करने लगता है तब उसे दबाव समूह (Pressure Group) कहा जाता है।
- हित अथवा दबाव-समूह ऐच्छिक (voluntary) और गैर-राजनीतिक (non-political) संगठन होते हैं। इनकी सदस्यता का आधार इनके सदस्यों के बीच समान हित की चेतना और समान हित की वृद्धि के लिए प्रयत्न होते हैं। इनका सम्बन्ध किसी राजनीतिक दल से प्रत्यक्ष रूप से नहीं होता और न ये किसी राजनीतिक दल

नोट

के अंग होते हैं। परन्तु ये अपने हितों को देखते हुए किसी-न-किसी राजनीतिक दल से अपना सम्बन्ध अवश्य स्थापित कर लेते हैं।

- राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों के साथ सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध दबाव समूह का होता है। दोनों एक दूसरे पर इतने निर्भर हैं कि अपने उद्देश्यों की पूर्ति में उन्हें एक-दूसरे का सहयोगी होकर काम करना पड़ता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों एक दूसरे के बिना काम नहीं कर सकते। परिस्थितिवश कभी-कभी दोनों में सहयोग और कभी-कभी विरोध भी देखा जाता है।
- उद्देश्य सम्बन्धी पहला अन्तर दबाव समूहों और राजनीतिक दलों में पाया जाता है। दबाव समूह के उद्देश्य विशिष्ट स्पष्ट और केवल निजी लाभ के लिए होते हैं। दूसरी ओर राजनीतिक दलों के उद्देश्य सामान्य होते हैं जिसका सम्बन्ध सम्पूर्ण समाज से होता है।
- कार्य-क्षेत्र सम्बन्धी दूसरा अन्तर भी इन दोनों में पाया जाता है। दबाव समूहों का कार्य-क्षेत्र विशिष्ट और समुचित होता है जबकि राजनीतिक दलों का सामान्य और व्यापक। दबाव समूहों का सम्बन्ध मानव जीवन के किसी खास पहलू से ही होता है जबकि दलों का मानव जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियों से होता है।
- राजनीतिक प्रक्रिया के दबाव-समूह स्वयं अंग नहीं होते। लेकिन दल इसी प्रक्रिया के अनुसार अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। वे केवल निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। दलों की तरह स्वयं निर्णायक नहीं बनते।
- संगठन को लेकर भी दबाव-समूह और राजनीतिक दलों में अन्तर है। राजनीतिक दल राष्ट्रव्यापी होते हैं। लेकिन बहुत कम दबाव-समूहों का स्वरूप राष्ट्रव्यापी होता है। दूसरी ओर कुछ दबाव-समूह राजनीतिक दलों से भी अधिक व्यापक-संगठन वाले होते हैं जबकि कुछ राजनीतिक दल क्षेत्रीय अथवा स्थानीय स्तर तक ही सीमित रहते हैं।
- आधुनिक राजनीतिक प्रक्रिया में दबाव समूहों का विशेष महत्त्व है। प्राय: सभी प्रजातांत्रिक देशों में दबाव-समूह पाये जाते हैं।
- किन्तु एक ऐसा भी समय था जब इन दबाव समूहों को अनैतिक माना जाता था और उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता था।
- किन्तु समय ने करवट ली और लोकतंत्र के विकास के साथ-साथ दबाव समूहों के महत्त्व को भी स्वीकार किया जाने लगा। आज इन्हें लोकतंत्र के लिये न केवल आवश्यक ही माना जाता है बल्कि व्यक्ति के हितों का रक्षक भी समझा जाता है। राज्य को विधायी कार्यों पर दबाव समूहों का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इन्हें विधानमंडल के पीछे सभा मंडल (Legislature behind a legislature) कहा जाता है।
- दबाव समूहों को लोकतंत्र की अभिव्यक्ति का साधन माना जाता है। लोकतंत्र की सफलता के लिये स्वस्थ जनमत तैयार करना जरूरी है ताकि विशिष्ट नीतियों का समर्थन या विरोध किया जा सके।
- दबाव समूहों का महत्त्व शासन के लिए सूचनाएँ एकत्रित करने वाले संगठन के रूप में भी है। हर देश में सरकार तथा प्रशासन के पास आवश्यक सूचनाएँ पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए।
- दबाव समूह आजकल एक ऐसी संस्था के रूप में परिवर्तित हो चुके हैं जो शासन को एक खास सीमा तक प्रभावित करती हैं। दबाव समूह इतने शक्तिशाली और संगठित हो चुके हैं कि ये अपने स्वार्थ और हित के लिए शासन व्यवस्था पर उपयोगी प्रभाव डाल सकते हैं।
- आधुनिक शासन व्यवस्था में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति बढ़ने के कारण सारी शक्तियाँ केन्द्र के हाथों में इकट्ठी होती जा रही हैं किन्तु ये दबाव-समूह अपने प्रभाव और शक्तियों द्वारा केन्द्रीय निरंकुशता को सीमित करते हैं। इस प्रकार केन्द्र शक्तियों का दुरुपयोग नहीं कर सकता।

नोट

- दबाव समूह अपने प्रभाव और अस्तित्व द्वारा विभिन्न हितों में संतुलन स्थापित करते हुए किसी एक सत्ता को अत्यधिक प्रभावशाली होने से रोकते हैं। व्यापारी, किसान, मजदूर, विद्यार्थी, स्त्रियाँ, जाति और धार्मिक समुदाय सभी अपने-अपने हितों की रक्षा करना चाहते हैं और इस प्रकार इन समूहों की प्रतियोगिता और उपस्थिति से प्रशासन और समाज में संतुलन स्थापित होता है।

11.5 शब्दकोश (Keywords)

प्रविधि : विभिन्न विधियाँ अथवा तकनीकें।

अनुनय : प्रार्थना करना।

11.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. दबाव समूह का क्या अर्थ है? समझाइये।
2. राजनीतिक दल और दबाव समूह में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. दबाव समूह की राजनीतिक व्यवस्था में क्या भूमिका है? स्पष्ट कीजिए।
4. दबाव समूहों को "विधान मंडल के पीछे विधान सभा मंडल" (Legislature behind a legislature) कहा जाता है। क्यों? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. राजनीतिक दल 2. दबाव समूह संगठनों 3. राजनीतिक दलों 4. संगठन
5. प्रशासन और समाज।

11.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *तुलनात्मक शासन एवं राजनीति*–डॉ. बीरकेश्वर प्रसाद सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन (पी. एण्ड डी.) 24, दरियागंज, अंसारी रोड, दिल्ली।
2. *तुलनात्मक राजनीति*–जे.सी. जौहरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि., दिल्ली।
3. *तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ*–सी.बी. गेना, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड, दिल्ली।
4. *तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा*– ओम प्रकाश गाबा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।

नोट

इकाई–12: प्रतिनिधित्व की राजनीति और सहभागिता (Politics of Representation and Participation)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
12.1 प्रतिनिधित्व प्रणाली का विकास और सिद्धांत (Development and Theory of Representation System)
12.2 सहभागिता और निर्वाचन व्यवस्था (Participation and Election System)
12.3 ब्रिटेन–अमेरिका–फ्रांस और स्विट्जरलैंड में प्रतिनिधित्व और निर्वाचन व्यवस्था (Representation and Election System in UK, USA, France and Switzerland)
12.4 सारांश (Summary)
12.5 शब्दकोश (Keywords)
12.6 अभ्यास–प्रश्न (Review Questions)
12.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- प्रतिनिधित्व प्रणाली के विकास और सिद्धांत की व्याख्या करने में।
- ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस और स्विट्जरलैण्ड में प्रतिनिधित्व प्रणाली और निर्वाचन व्यवस्था की विवेचना में।

प्रस्तावना (Introduction)

आधुनिक काल में स्वतंत्र और प्रजातांत्रिक देशों की प्रणाली का आधार प्रतिनिधित्व है। प्राचीन काल में राज्य छोटे–छोटे होते थे और अधिकांश राज्य का स्वरूप राजतंत्रीय था। अत: इन राज्यों के शासन–संचालन में जनता का कोई विशेष हाथ नहीं रहता था। प्राय: राजा और उसके द्वारा नियुक्त कर्मचारी शासन का संचालन करते थे। ग्रीस या वैशाली– जैसे छोटे–मोटे राज्य में ही सम्भव है। आधुनिक राज्य प्राय: क्षेत्र तथा जनसंख्या में काफी बड़े होते हैं। इसकी विशालता के कारण राज्य के प्रत्येक नागरिक का प्रत्यक्ष रूप से शासन–कार्य में भाग लेना असम्भव हो जाता है। इसलिए प्रतिनिध्यात्मक प्रजातन्त्र (Representative Democracy) प्रणाली का आविष्कार हुआ है। इस तरह के राज्य में जनता अपने प्रतिनिधियों को चुनती है और वे प्रतिनिधि का संचालन करती हैं अत: प्रतिनिधियों के चुनने के अधिकार को मुख्यत: निर्वाचन का अधिकार कहते हैं। यह नागरिकों का प्रमुख अधिकार हो गया है। तात्पर्य यह कि निर्वाचन–व्यवस्था की कल्पना मुख्यत: आधुनिक है। विशाल आधुनिक प्रजातांत्रिक राज्यों के कारण इसका जन्म हुआ।

संक्षेप में आधुनिक युग में निर्वाचन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राजनीतिक प्रक्रिया है। हर प्रतिनिध्यात्मक सरकार में निर्वाचकों तथा निर्वाचन–क्षेत्रों का संगठन और निर्वाचन प्रक्रिया काफी महत्त्वपूर्ण प्रश्न हो गये हैं। इन्हे आधुनिक प्रजातान्त्रिक पद्धति का आधार कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

नोट

12.1 प्रतिनिधित्व प्रणाली का विकास और सिद्धांत (Development and Theory of Representation System)

प्रतिनिधिक प्रणाली का विकास (Growth of the Representation System):-

माण्टेस्क्यू (Montesqieu) के विचार में विशुद्ध प्रतिनिधि की कल्पना आधुनिक है। प्राचीन काल के लोगों को विशुद्ध प्रतिनिधि की कल्पना नहीं थी। राजा ही कानून बनाता था। यदि कभी समूह एकत्रित होता भी था तो वह जनता का होता था उसके प्रतिनिधियों के नहीं। **रूसो** (Rousseau) का भी कहना है कि प्रतिनिधित्व की कल्पना आधुनिक है। इसकी उत्पत्ति का कारण सरकारों की स्वेच्छाचारिता थी। फिर भी कहा जा सकता है कि प्राचीन प्रजातान्त्रिक राज्यों में इसकी थोड़ी बहुत शुरूआत हो चुकी थी। लेकिन मध्यकालीन युग में यह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगी। जब कुछ राजाओं को धन की आवश्यकता होती थी, तो वे करारोपण के सम्बन्ध में मन्त्रणा लेने के लिए कुछ जन-प्रतिनिधियों को आमंन्त्रित करते थे। प्रतिनिधियों के समूह ने धीरे-धीरे प्रतिनिधि संस्था का रूप ग्रहण कर लिया। जिसे इंग्लैंड में संसद (Parliament), फ्रांस में स्टेटस जनरल (Estates General) तथा जापान में डायट (Diet) कहा जाता था। इन संस्थाओं तथा राजाओं के बीच सदियों तक संघर्ष चलता रहा, राजाओं की शक्ति क्षीण होने लगी तथा प्रतिनिधि संस्थाओं की शक्ति बढ़ने लगी। 1213 ई. में इस प्रकार की सभा बुलायी। 1256 ई॰ में बैरनों के विजय-सत्ता साइमन-डी मांटफोर्ड (Simon de-Montford) ने संसद् की बैठक बुलायी जिसमें सामन्तों, पादरियों और काउण्टियों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त 21 नगरों (Boroughs) से भी दो-दो प्रतिनिधि आमंन्त्रित हुए। पहली बार संसद की प्रतिनिध्यात्मक प्रकृति को इतना व्यापक और क्रान्तिकारी रूप दिया गया। 1295ई॰ में एडवर्ड प्रथम ने संसद् की बैठक बुलायी। यह इतिहास में 'आदर्श संसद्' (Model Parliament) के नाम से विख्यात है, क्योंकि 400 व्यक्तियों की इस सभा में प्राय: सभी प्रमुख वर्गों-वैरन, पादरी, नाइट, नगर आदि को प्रतिनिधित्व मिला। इसके पश्चात् ब्रिटिश व्यवस्था का वह एक स्थानीय और अनिवार्य अंग बन गयी। तत्पश्चात् ट्यूडर और स्टुअर्ट काल में संवैधानिक तथा राजनैतिक क्रांतियाँ चलती रहीं जिसके परिणामस्वरूप संसद् अधिक शक्तिशाली तथा प्रतिनिध्यात्मक बनती गयीं अठारहवीं शताब्दी में सम्राट् एक संवैधानिक प्रधान मात्र रह गया और संसद् पूर्ण सार्वभौम हो गयी। उन्नीसवीं तथा वर्तमान शताब्दी में यह विकास पूर्ण हो गया।

इंग्लैंड में शुरू से ही संसद् का रूप अंशत: प्रतिनिध्यात्मक (Representative) रहा है, क्योंकि नगरों और सामन्तों के प्रतिनिधि किसी-न-किसी रूप में चुने जाते थे। इंग्लैंड के लिए प्रतिनिधित्व का सिद्धांत कोई नया सिद्धांत नहीं था। संसद से पूर्व स्थानीय संस्थाओं में इसका प्रयोग होने लगा था। यह कहना गलत होगा कि प्रतिनिधित्व पद्धति का उदय जर्मनी के जंगलो में और विकास सैक्सन युग के इंग्लैंड में हुआ जिसे बाद में संसदीय संस्थाओं में इसका प्रयोग होने लगा था। मध्ययुगीन संसद की सदस्यता अधिकार की अपेक्षा कठिन और दु:खदायी थी, कैद और हत्या का भय बना रहता था, सदस्यता किसी के सिर पर जबरदस्ती मढ़ी जाती थी। अत: सच्ची प्रतिनिध्यात्मक सरकार की स्थापना वर्तमान काल में हुई। लेकिन इसकी नींव वृहत् सभा में काउन्टी और बौरों को प्रतिनिधित्व देने के साथ पड़ चुकी थी। इसके उदय का कारण स्वतंत्रता या स्वशासन के प्रति प्रेम नहीं, बल्कि राजाओं की कर प्राप्त करने की शक्ति का विरोध था।

इंग्लैंड की भाँति अन्य देशों में प्रतिनिधिक संस्थाओं की स्थापना की तथा शक्ति हस्तान्तरित करने के लिए संघर्ष प्रारम्भ हुआ। फ्रांस की गौरवपूर्ण क्रांति (Glorious Revolution) ने प्रतिनिध्यात्मक प्रणाली की स्थापना की दिशा में एक महान संघर्ष किया। अमरीकी उपनिवेशों ने 'बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं' (No taxation without representation) का नारा लगाया तथा अन्त में लोकतंत्र प्रतिनिध्यात्मक सरकार की स्थापना में सफल हुए। विश्व के अन्य देशों में भी प्रतिनिधिक संस्थाओं की स्थापना के लिए आन्दोलन हुए। इसका परिणाम यह निकला कि लोकतन्त्रीय तथा अधिनायकवादी देशों में समान रूप से प्रतिनिधात्मक प्रणाली अपनायी जा रही है।

प्राचीन तथा मुगलकालीन भारत में दरबार प्रथा के अन्तर्गत जागीरदारों तथा सामन्तों को आमंत्रित किया जाता था,

नोट

लेकिन उन्हें प्रतिनिधि का स्थान प्राप्त नहीं था। 1857 ई. के विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार ने भी महसूस किया कि भारतीयों के सहयोग के बिना शासन चलाना असम्भव है। अत: भारतीय परिषद् अधिनियम 1861 के द्वारा गवर्नर-जनरल तथा गवर्नरों की परिषदों में भारतीयों को स्थान दिया गया। पुन: 1892 ई. में भारतीय परिषद् अधिनियम द्वारा भारतीयों की संख्या में वृद्धि की गयी तथा परोक्ष निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था की गयी। मार्ले-मिण्टो सुधार, 1909 ई० के द्वारा भारतीयों के प्रतिनिधित्व को बढ़ा दिया गया तथा मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की गयी। मॉण्टेगयू-चेम्सफोर्ड सुधार, 1919 इस दिशा में एक प्रमुख कदम था। इसका लक्ष्य क्रमश: उतरदायी शासन की स्थापना था। शासन के हस्तांतरित (Transfered) भाग को प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों के हाथ में सौंप दिया गया। इस अधिनियम की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि साम्प्रदायिक तथा वर्गीय हितों के प्रतिनिधित्व पर अधिक बल दिया गया। 1935 ई० के भारत सरकार अधिनियम ने प्रतिनिधिक संस्थाओं की जड़ को पूरा मजबूत कर दिया। निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या बहुत बढ़ा दी गयी। प्रान्तों में निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी मंत्रिमण्डलीय सरकारों की स्थापना हुई। यह पहला मौका था जबकि भारत में वृहत् रूप से चुनाव हुआ और सबसे बड़ा दल काँग्रेस ने इसमें सक्रिय भाग लिया। अन्त में, स्वतन्त्र भारत के संविधान के निर्माण हेतु संविधान सभा (Constituent Assembly) का संगठन हुआ। इसके प्रतिनिधियों का चुनाव अप्रत्यक्ष रीति से हुआ था। फिर भी इस सभा में सभी वर्गों, जातियों राजनीतिक दलों तथा हितों को समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त था। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व तक, प्रतिनिधित्व तथा निर्वाचन की विशेषता थी कि वे सीमित थे प्रतिनिधियों के चुनाव का आधार वयस्क मताधिकार नहीं था तथा चुनाव का आधार साम्प्रदायिक तथा वर्गीय प्रतिनिधित्व था। लेकिन स्वतन्त्र भारत में निर्वाचन को पूर्ण प्रजातान्त्रिक बना दिया गया है। इसका आधार असीमित वयस्क मताधिकार है प्रतिनिधियों को विशेष स्थान तथा अधिकार प्राप्त है तथा प्रतिनिधिक संस्थाओं को प्रमुखत: विधिनिर्माण एवं कतिपय अन्य क्षेत्रों में भी आवश्यक अधिकार दिये गये हैं।

क्या आप जानते हैं भारत में प्रतिनिध्यात्मक प्रणाली के विकास की कहानी ब्रिटिश शासन की स्थापना से प्रारम्भ होती है।

प्रतिनिधित्व के सिद्धांत (Theories of Representation): प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में दो प्रतिफल सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है- आदिष्ट प्रतिनिधित्व तथा आदेशहीन प्रतिनिधित्व।

आदिष्ट प्रतिनिधित्व (Instructed Representation): आदिष्ट प्रतिनिधित्व का अर्थ है कि प्रतिनिधि निर्वाचकों के अधीन है। उसकी निजी इच्छा कुछ नहीं है। वह निर्वाचकों की इच्छा को अभिव्यक्त करता है। यह किसी प्रकार का संशोधन निर्वाचकों की आज्ञा से ला सकता है। प्रतिनिधि का यह रूप आज पुराना पड़ गया है। फिर भी कुछ ऐसे प्रतिनिधि होते हैं जो मालिक की इच्छा के अंतर्गत ही कुछ कर सकते हैं जैसे विदेशों में राजदूत, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधि-प्रतिनिधित्व के इस सिद्धांत को अमान्य ठहराया गया है, क्योंकि प्रतिनिधियों को न तो विवेकपूर्ण आदेश ही उपलब्ध होते हैं और न तो निर्वाचको की वास्तविक इच्छा का पता आसानी से लगना सम्भव है। इसके अलावा विधि-निर्माण के कार्य आज इतने पेचीदा, कठिन तथा वृहद हो गये हैं कि कोई प्रतिनिधि हर कदम पर निर्वाचकों द्वारा निर्देशित नहीं हो सकता है। द्रुतगति से परिवार में होने वाली घटनाओं तथा समस्याओं के कारण प्रतिज्ञाओं पर अटल रहना किसी भी प्रतिनिधि के लिए सम्भव नहीं है। इसके अलावा वर्तमान निर्वाचन प्रणाली के अन्तर्गत आदिष्ट प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त व्यावहारिक नहीं दीखाई देता है। आधुनिक युग में चुनाव की आधार पद्धति है। मतदाता किसी प्रतिनिधि-विशेष को नहीं बल्कि राजनीतिक दलों को मत देते हैं। दल अपनी नीतियों को मतदाताओं के समक्ष रखते हैं। विजयी दल अपनी नीतियों को कार्यान्वित करता है, न कि मतदाताओं की नीतियों को। मतदाताओं की कोई एक नीति भी हो सकती है। फिर प्रतिनिधिगण दलीय-संगठन के अन्तर्गत चुनाव लड़ सकते हैं और दलीय नीतियों को लागू करने की प्रतिज्ञा करते हैं। यह किसी भी प्रतिनिधि की

नोट

शक्ति के बाहर की बात है कि वह किसी दल की नीति को व्यक्तिगत रूप से लागू करे। अत: यह व्यावहारिक नहीं दिखाई देता कि कोई प्रतिनिधि निर्वाचकों के अन्तर्गत ही अपने कार्य-क्षेत्र को सीमित रखे। अंत में कोई भी विवेकशील व्यक्ति उस स्थिति में प्रतिनिधि होना चाहेगा जब केवल निर्वाचकों के आदेशानुसार उसे चलना पड़े। आदिष्ट प्रतिनिधित्व के सिद्धांत का **लास्की** ने गलत तथा **लीबर** ने ''न्यायविरूद्ध असंगत और अवैधानिक'' कहा है।

आदेशहीन प्रतिनिधित्व (Uninstructed Representation) : आदेशहीन प्रतिनिधित्व का अर्थ है कि प्रतिनिधिगण निर्वाचकों के अभिकर्त्ता (Agent) नहीं हैं, वे निर्वाचकों के अधीनस्थ नहीं है तथा केवल उनके आदेश के अनुसार कार्य नहीं करते हैं जैसा कि ऊपर कहा गया है। सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों दृष्टिकोणों से यह सम्भव नहीं है कि कोई प्रतिनिधि सदा निर्वाचकों के आदेश के अनुसार या निर्वाचकों के समक्ष की गयी प्रतिज्ञाओं के अनुसार कार्य करे। अत: आधुनिक युग में आदिष्ट प्रतिनिधित्व का अमान्य सिद्धांत सिद्ध हो गया है और आदेशहीन सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गयी है।

पदावधि : प्रतिनिधियों के कार्यावधि के सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नहीं है विभिन्न देशों में विभिन्न अवधियां अपनायी गयी हैं। जहाँ तक व्यवस्थापिका सभाओं के लोकप्रिय सदनों का प्रश्न है उनका कार्य-काल भारत, ब्रिटेन तथा कनाडा में 5 वर्ष, अमेरिका में 2 वर्ष और पूर्व सोवियत संघ, स्वीडन तथा जापान में 4 वर्ष है द्वितीय सदनो के प्रतिनिधियों का कार्य-काल अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में 6 वर्ष, दक्षिण अफ्रीका में 10 वर्ष, फ्रांस में 9 वर्ष तथा सोवियत रूस में 4 वर्ष तथा ब्रिटेन में आजीवन है। विभिन्न कार्यवधियों के औचित्य के पक्ष में कोई ठोस तर्क देना कठिन है। भारतीय संविधान सभा (Indian Constitunt Assembly) की संघीय संविधान-समिति (Union Constitution Committee) ने लोकसभा के लिए 4 वर्ष का कार्य-काल निश्चित किया था, लेकिन प्रारूप समिति (drafting Committee) ने इसे बढ़ाकर 5 वर्ष कर दिया। इसका कारण यह बतलाया गया कि संसदीय प्रणाली में प्रथम वर्ष, किसी मंत्री के शासन कार्य का ज्ञान प्राप्त करने में लग जाता है तथा अन्तिम वर्ष सामान्य निर्वाचन की तैयारी में लग जाता है। फलत: दो वर्ष समय बचेगा जो सुनियोजित प्रशासन के लिए अत्यन्त अल्प अवधि है। **डॉ० के० वी० राव** के शब्दों में प्रारूप समिति द्वारा दी गयी व्याख्या उतनी ही असन्तोषजनक है जितना कि अनावश्यक। चार और पांच वर्ष में कोई विशेष अन्तर नहीं है, लेकिन समिति द्वारा उपर्युक्त व्याख्या कतई ठीक नहीं है। **जॉन स्टुअर्ट मिल** ने प्रतिनिधियों की अवधि को निश्चित करने के लिए युक्तिसंगत सिद्धान्त की व्याख्या की है ''एक ओर तो सदस्य के पद की अवधि इतनी लम्बी नहीं होनी चाहिए जो उसे अपना उत्तरदायित्व ही भुला दे या जो अपने कर्त्तव्यों को बहुत नरमी से ग्रहण करे और व्यक्तिगत स्वार्थों की दृष्टि से उनका पालन करे अथवा अपने विचारों के साथ उन सम्पूर्ण मेल मिलापों की अपेक्षा करे जिनके विषय में वह उनसे सहमत हो या भिन्न मत रखता हो यह प्रतिनिधि सरकार के लोगों मे से एक है। दूसरी ओर उसके पद की अवधि ऐसी होनी चाहिए कि उसे एक कार्य द्वारा निरीक्षण योग्य न बनाये अपितु उसके कार्यक्रम द्वारा निरीक्षण योग्य ठहराये। निष्कर्षत: प्रतिनिधि की अवधि न तो बहुत लम्बी चाहिए और न बहुत छोटी ही। साथ ही, उसके कार्य की अवधि उसके कार्य की प्रकृति के अनुकूल होनी चाहिए।

प्रतिनिधियों की योग्यताएं (Qualifications of Representatives): प्रतिनिधियों को विशिष्ट तथा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने पड़ते हैं। उन्हें जटिल तथा पेचीदा कानून का निर्माण करना पड़ता है। साथ ही, उन्हें इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि पहले देश का शासन-संचालन स्वच्छ तथा कुशल तरीके से हो और सामान्य हित की वृद्धि हो। अत: यह आवश्यक है कि प्रतिनिधि योग्य, दक्ष, कार्यकुशल तथा देशसेवी हों।

तात्पर्य यह है कि प्रतिनिधियों का गुणात्मक (Qualitative) पक्ष ऊँचा हो। इसलिए जॉन स्टुअर्ट मिल प्रतिनिधियों के लिए कतिपय ऊँची योग्यताएँ निर्धारित कर देने के पक्ष में थे। भारतीय संविधान सभा (Constituent Assembly) में कई प्रमुख सदस्यों ने यह सुझाव दिया था कि व्यवस्थापिका सभा की सदस्यता के लिए कतिपय विशिष्ट योग्यताएं निर्धारित की जानी चाहिए। **आर० आर० दिवाकर** का कहना था कि हमलोग ऐसा विधायक चाहते हैं जो केवल एक प्रतिनिधि नहीं हो, बल्कि ऐसा प्रतिनिधि नहीं हो, बल्कि ऐसा प्रतिनिधि हो जो विधि-निर्माण कर सके तथा जो दूरदर्शी हों। इसी प्रसंग में **डॉ० राजेन्द्र प्रसाद** ने कहा था कि मै विधानमंडलों के सदस्यों के लिए कतिपय

नोट

योग्यताएँ निर्धारित करने के पक्ष में हूँ। यह अजीब-सा दिखाई देता है कि कानून के प्रशासकों के लिए ऊँची योग्यता निर्धारित करें, लेकिन जो इसका निर्माण करते हैं उनके लिए निर्वाचन होने के अतिरिक्त कुछ नहीं।

के० टी० शाह ने भी यह व्यक्त किया था कि व्यापक रूप से फैली निरक्षरता के फलस्वरूप विधान-मंडलों में अशिक्षित व्यक्तियों के चुने जाने का डर है। अत: विधानमंडल के लिए शिक्षित होना अनिवार्य कर देना चाहिए। लेकिन प्रतिनिधियों पर इस प्रकार की किसी तरह की मर्यादा लगाना अप्रजातांत्रिक दीख पड़ता है। लेकिन कतिपय सामान्य मर्यादाएँ लगायी जा सकती है:– उम्र, नागरिकता, अपराध, मानसिक स्थिति।

विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों के लिए निर्धारित योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए उनके लिए निम्नांकित योग्यता आवश्यक समझी जाती है-

(i) नागरिकता (Citizenship) : साधारणत: देश का नागरिक ही प्रतिनिधि हो सकता है। नागरिकों का प्रतिनिधि पद के लिए प्रत्याशी के रूप में खड़ा होना उनका एक प्रमुख राजनीतिक अधिकार है। प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार प्राप्त रहता है। चाहे वह जन्मजात (by birth) या पंजीकृत (by registration) या अंगीकृत (by naturalization) नागरिक हो, विदेशी नागरिक को यह अधिकार प्राप्त नहीं है क्योंकि सम्भव है वे पद का दुरूपयोग निजी स्वार्थ या अपनी मातृभमि के स्वार्थ के लिए कर सकते हैं। लेकिन देश के नागरिकों से ऐसी आशा नहीं की जा सकती। उसके अलावा देश के नागरिक ही देश-हित की बात अधिक अच्छी तरह से सोच सकते हैं तथा देश की समस्याओं और परिस्थितियों से भली-भाँति अवगत रहने के कारण अधिक अच्छे कानूनों का निर्माण कर सकते हैं।

(ii) आयु (Age): अधिकांश संविधान में प्रतिनिधियों की आयु का उल्लेख मिलता है। भारतीय संविधान में लोकसभा के सदस्यों के लिए न्यूनतम आयु 25 वर्ष तथा राज्य सभा के सदस्यों के लिए 30 वर्ष निश्चित की गयी है। अमेरिका में भी प्रथम तथा द्वितीय सदनों के सदस्यों के लिए भी क्रमश: उपर्युक्त न्यूनतम आयु निश्चित है। भारत सरकार अधिनियम 1935 के द्वारा तो उच्च सदनों के न्यूनतम आयु 25 वर्ष निश्चित की गयी थी। संक्षेप में, व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के लिए साधारणत: न्यूनतम आयु निर्धारित कर दी जाती है। आयु की न्यूनतम सीमा को प्राय: उच्च रखा जाता है। कारण यह है कि विधि-निर्माण के लिए अनुभवी तथा परिपक्व व्यक्तियों की आवश्यकता। द्वितीय सदनों के सदस्यों की न्यूनतम आयु प्राय: अधिक उच्च रखी जाती है क्योंकि उच्च सदन का कार्य कार्यविधियों पर अधिक गंभीरतापूर्वक विचार करना तथा उन्हें निम्नसदन के उत्तेजित एवं क्षणिक आवेशों से बचाना है।

(iii) आवास (Residence): कई देशों में प्रतिनिधियों के लिए आवास की योग्यता की गयी है। अमरीकी प्रतिनिधि सभा के सदस्य के लिए यह आवश्यक है कि वह जिस राज्य से निर्वाचित होता हो, उस राज्य का निवासी हो। लेकिन क्षेत्रीय नियम (locality rule) के विकास के कारण प्रत्याशी को उसी निर्वाचन क्षेत्र का निवासी होना चाहिए। इसके विपरीत भारत में आवास को अनिवार्य नहीं बनाया गया। सिर्फ एक क्षेत्र का निवासी दूसरे क्षेत्र से ही नहीं बल्कि एक राज्य का निवासी दूसरे राज्य से भी खड़ा हो सकता है। फिर भी, साधारणतया अस्थानीय व्यक्ति भी किसी क्षेत्र से प्रतिनिधि-दल के लिए प्रत्याशी के रूप में खड़ा हो सकता है।

(iv) सम्पत्ति (Property): कई देशों में सम्पत्ति को प्रतिनिधि की योग्यता माना जाता है। जिस व्यक्ति के पास निजी सम्पत्ति होती है, उसे कानून-निर्माण के लिए पर्याप्त समय मिलता है। साथ ही चुनाव में घूमने-फिरने और अपने-अपने विचार को प्रकाशित करने के लिए उसके पास पर्याप्त साधन रहता है इसके अलावा सम्पत्ति की रक्षा के लिए वह राज्य का भक्त होता है। बिना पारिश्रमिक के ही जनता की सेवा करता है, लेकिन सम्पत्ति की योग्यता का धीरे-धीरे लोप हो रहा है। प्रगतिशील प्रजातांत्रिक देशों में यह लगभग समाप्त हो गया है।

आधुनिक काल में राजनीतिक समता के सिद्धान्त को अपनाया गया है। अत: धनवान और निर्धन सभी को समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं।

(v) पद (Office): बहुत से राज्य में यह बंधन लगा दिया गया है कि कुछ विशेष पदों पर आसानी से व्यवस्थापिका का सदस्य नहीं हो सकते हैं। उदाहरणस्वरूप, भारत में कोई भी व्यक्ति, जो सरकारी या किसी लाभ के पद पर हो विधानमण्डल का सदस्य नहीं हो सकता है। सयुक्त राज्य अमेरिका में तो कर्यपालिका का सदस्य यानी मंत्रीगण

नोट

कांग्रेस के सदस्य नहीं हो सकते हैं। इस बंधन का एक कारण है कि कार्यपालिका के सदस्य व्यवस्थापिका के सदस्य हो जायें तो वे निजी स्वार्थ के लिए कानून का निर्माण करेंगे।

(vi) पागलपन या दिवालिया (Mentally unfit or Insolent): भारतीय संविधान यह प्रतिबन्ध लगाता है कि कोई भी व्यक्ति जो न्यायालय द्वारा पागल या दिवालिया करार दे दिया गया हो, वह संसद् या विधान-मण्डल का सदस्य नहीं बन सकता।

(vii) चुनाव दुराचरण (Election Malpractices): निर्वाचन के लिए न्यायपूर्ण आचरण और नियमों का पालन आवश्यक है। जो प्रत्याशी चुनाव में इन नियमों को भंग करता है। उसे अयोग्य घोषित कर दिया जाता है। चुनाव दुराचरण का निर्धारण एक स्वतंत्र न्यायालय करता है।

(viii) धर्म (Religion): कई देशों में धर्म को भी प्रतिनिधि की योग्यता मानी गयी है। इंग्लैंड में स्थापित गिरजाघर के अधिकारी, मन्त्री और रोमन कैथोलिक चर्च के पादरी लोकसभा के सदस्य नहीं हो सकते और पाकिस्तान में एक मुसलमान ही राष्ट्रपति हो सकता है।

(ix) अनुभव (Experience): लास्की का कहना था कि केवल अनुभवी व्यक्ति को ही व्यवस्थापिका के चुनाव में खड़ा होने की अनुमति मिलनी चाहिए। किसी भी प्रतिनिधि को स्थायी संस्थाओं में काम करने का कम-से-कम तीन वर्ष का अनुभव अवश्य होना चाहिए।

टास्क भारतीय संविधान में लोक-सभा एवं राज्य सभा के प्रतिनिधियों की न्यूनतम आयु क्या निर्धारित की गई है?

प्रतिनिधियों के विशेषाधिकार (Privileges of the Representatives): प्रत्येक देश में वहां के प्रतिनिधियों को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त रहता है। उन्हें संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखने के तथा कर्तव्य का श्रद्धापूर्वक पालन करने की शपथ लेनी पड़ती है। उन्हें विधानसभा तथा उसके बाहर विचार अभिव्यक्त की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। भाषण देने के विरूद्ध उन पर कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। सदन के अधिवेशन के समय में उन्हें साधारणत: गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। प्रतिनिधियों को नियमित रूप से वार्षिक या मासिक वेतन तथा अन्य प्रकार के भत्ते मिलते हैं।

प्रतिनिधियों के कर्त्तव्य (Duties of the Representatives): आधुनिक काल के प्रतिनिधि सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे किसी दल जाति वर्ग या समूह का प्रतिनिधि नहीं होता है। यद्यपि वह किसी जाति समूह क्षेत्र या वर्ग के समर्थन से चुना जाता है, फिर भी चुने जाने के बाद वह पूरे राष्ट्र का प्रतिनिधि बन जाता है। उसे संकुचित हित का नहीं, बल्कि सम्पूर्ण राज्य का प्रतिनिधि है और राज्य-कार्य ही उसका कर्त्तव्य है। वह अपने निर्वाचकों के आदेशों से बाध्य नहीं और न अपने कार्यों के लिए वह निर्वाचकों के प्रति उत्तरदायी ही है ''प्रतिनिधि अपने विवेक से कार्य करता है। वह अपने निर्वाचकों की मनोवृत्ति को ध्यान में रखता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि हर बाल के लिए उनकी सहमति लेता है, बल्कि वह अपने कार्य के विषय में पूर्ण स्वतन्त्र है। वस्तुत: प्रतिनिधियों को अपने विवेक के अनुसार कार्य करना चाहिए।'' इस सम्बन्ध में **ब्लूंशली** ने कहा है कि प्रतिनिधि वह है जो अपने वैधानिक अधिकारों की सीमा में लोगों के बदले अपनी स्वतन्त्र निर्णय शक्ति के अनुसार कार्य करने के लिए निर्वाचित किया गया है। उसे कार्य और निर्णय की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। यदि कोई प्रतिनिधि अपने विवेक और विचार शक्ति से कार्य न कर केवल निर्वाचकों की सहमति से कार्य करता है तो वह वास्तव में प्रतिनिधि नहीं है। लोकहित के लिए उसे विवेक से कार्य लेना चाहिए।

नोट

12.2 सहभागिता और निर्वाचन व्यवस्था (Participation and Election System)

राजनीतिक सहभागिता (Political Participation): राजनीतिक सहभागिता वह गतिविधि है जिसके अंतर्गत किसी देश के नागरिक सार्वजनिक नीतियों (Public Policies) और निर्णयों (Decisions) के निर्माण, निरूपण और कार्यान्वयन की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। दूसरे शब्दों में, यह जनसाधारण और राजनीतिज्ञों के बीच संपर्क की प्रक्रिया है।

तीसरी दुनिया के देशों में जनसाधारण और राजनीतिज्ञों के संपर्क का मुख्य प्रतिमान 'सेवार्थिवाद' (Clientelism) के रूप में व्यक्त किया जाता है। इस मान्यता के अनुसार, विकासशील देशो में नेताओं (Leaders) और जनसाधारण (Public) का संबंध संरक्षक (Patron) और सेवार्थी (Client) के संबंधों का रूप धारण कर लेता है। मतलब यह कि नेता अपने प्रभाव का प्रयोग करके अपने समर्थकों को सुरक्षा की भावना (Sense of Security) प्रदान करते हैं, और सरकार की ओर से उन्हें कुछ बुनियादी सुविधाएँ (Basic Amenities)– जैसे कि बिजली, पानी, राशन कार्ड, स्कूल, अस्पताल, इत्यादि–उपलब्ध कराने की व्यवस्था करते हैं। इसके बदले में उनके समर्थक उनके जलसे-जुलूस, रैलियों, इत्यादि में सम्मिलित होने और चुनाव के समय उन्हें वोट देने को तैयार रहते हैं। इस तरह वास्तव में जनसाधारण और छोटे-बड़े नेताओं के बीच संरक्षक-सेवार्थी की श्रृंखला बन जाती है। इसके माध्यम से राजनीतिक क्षेत्र के प्रभावशाली लोगों को तरह-तरह के विशेषाधिकार (Privileges)–जैसे कि कोटा, पर्मिट, लाइसेंस, सब्सिडी और ठेके (Contracts)– वितरित किए जाते हैं। ऐसे लोग अपने कृपापात्रों के समर्थन के बल पर सत्ता के दलालों (Power Brokers) की भूमिका निभाते हैं। इस तरह अधिकांश राजनीतिक गतिविधि छोटे-बड़े नेताओं और उनके समर्थकों के बीच लेने-देन का सौदा बन जाती है जिससे भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।

'सेवार्थिवाद' का विचार अनेक विकासशील देशों में अनुभव के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। श्रीलंका में राज्य संसाधन जिन संजातीय समूहों (Ethnic Groups) के नेताओं की पहुँच के लिए अपने प्रभाव का प्रयोग करते हैं। उनके अनुयायी न केवल उनके संगठन में सम्मिलित होते हैं, और उनकी सभाओं में भी बड़ी संख्या में उपस्थित होते हैं, बल्कि चुनाव में भी सब-के-सब उन्हें एक-साथ वोट देते हैं। भारत में राजनीतिज्ञों के सेवार्थी जाति (Caste), धर्म (Religion), क्षेत्र या व्यवसाय (Vocation) के आधार पर उन्हें चुनाव में जितवाते हैं। इन्हें बोलचाल और पत्रकारिता की भाषा में उनके 'वोट बैंक' कहा जाता है। जहां निर्धनता और सामाजिक विषमता इतने विस्तृत स्तर पर फैली हो, हित समूह और राजनीतिक दल इतने कमजोर हों, वहां यदि राजनीतिज्ञ अपने असाधारण व्यक्तित्व और जोड़-तोड़ की क्षमता के बल पर किन्हीं विशेष समूहों का यथेष्ट समर्थन जुटा लें तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं होनी चाहिए।

सहारा मरुस्थल से लगे अधिकांश अफ्रीका में स्वाधीनता-आंदोलन के दौरान जन-सहभागिता को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया गया। परंतु स्वाधीनता के बाद यह प्रवृत्ति लुप्त हो गई। उदाहरण के लिए, 1983 में नाइजीरिया के आम चुनाव में केवल एक-चौथाई मतदाताओं ने मतदान किया। इसके बाद तो वहां सैनिक शासन ही स्थापित हो गया। सैनिक शासन ने इस मामूली सहभागिता को भी चलने नहीं दिया।

लेटिन अमरीका में जो आर्थिक विकास हुआ, उसके परिणामस्वरूप एक शहरी मध्य वर्ग (Urban Middle Class) और सर्वहारा वर्ग (Proletariat) उभरकर सामने आया। परंतु इन देशों में रूढ़िवादी (Conservative) और अभिजातवर्गीय (Aristocratic) विशिष्ट वर्गों ने इन नए वर्गों को राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर ही नहीं दिया। अधिकांश लेटिन अमरीकी देशों में राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण रहा; केवल कोस्टारीका और वेनेजुएला इसके अपवाद थे। जहां गुटतंत्रो (Oligrachies) ने सैनिक शासन को चुनौती दी, वहां निम्न मध्यवर्गों और कामगार वर्गों के लोकप्रिय आंदोलन उभर कर सामने आए। अर्जेंटीना में 1944 से 1955 तक के दौर में युआन पेरों के सत्तावादी शासन (Authoritarian Regime) ने इन वर्गों को राजनीतिक प्रक्रिया में सम्मिलित करने का प्रयास किया।

लेटिन अमरीका के बहुत बड़े हिस्से में सैनिक अधिकनायकतंत्र (Military Dictatorship) का लंबा दौर चला। कहीं-कहीं इसे जन-समर्थन प्राप्त था; कहीं ऐसा नहीं था। परंतु 1980 के दशक के अंत तक आते-आते प्राय संपूर्ण लेटिन अमरीका में असैनिक शासन (Civil Regimes) स्थापित हो गए। कुछ भी हो, लेटिन अमरीकी लोकतंत्रों को

नोट

आज भी भारी मुद्रास्फीति, भारी ऋण और विस्तृत निर्धनता का सामना करना पड़ रहा है जिनके पीछे बुर्जुआ और सैनिक विशिष्ट वर्गों की विशाल छाया मँडरा रही है।

तीसरी दुनिया के कुछ साम्यवादी देशों ने जनगतिशीलन (Mass Mobilization) के माध्यम से आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth) प्राप्त करने का प्रयत्न किया। जन-गतिशीलन वह प्रक्रिया है। जिसमें कोई लोकप्रिय नेता बहुत बड़े जन-समूह को संबोधित करके उन्हें किसी महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिए गतिमान करता है; उनके मन में प्रेरणा और उत्साह का संचार करता है जिससे वे अपने नेता के निर्देशों के अनुरूप कार्य करने के लिए अपनी शक्तियों को एकजुट कर लेते हैं। साम्यवादी देशों ने समाजवादी उद्देश्यों की सिद्धि के लिए मजदूरों और किसानों को गतिमान करने पर विशेष ध्यान दिया। चीन, विएतनाम और क्यूबा में यही रणनीति (Strategy) अपनाई गई। कई गैर-साम्यवादी देशों में–जैसे कि भारत, श्रीलंका और तंज़ानिया में भी कुछ समाजवादी लक्ष्यों की पूर्ति के लिए जन-गतिशीलन की प्रक्रिया अपनाने का प्रयत्न किया गया।

इधर ब्राजील, ताइवान, दक्षिणी कोरिया ओर इंडोनेशिया जैसे विकासशील देशों में सत्तावादी शासकों (Authoritarian Rulers) ने अपने-अपने देश में औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण को बढ़ावा देने के लिए लोगों को राजनीतिक सहभागिता से दूर रखा ताकि वहां बहुराष्ट्रीय निगमों (Multinational Corporations) को राजनीतिक स्थिरता का वातवारण तथा अनुशासित और सस्ती श्रम-शक्ति उपलब्ध हो सके। परंतु दक्षिणी कोरिया और ताइवान जैसे ही विकासशील देशों के स्तर से ऊंचे उठकर विकसित देशों की श्रेणी में आ गए, वहां राजनीतिक सहभागिता की मांग फिर से बलवती हो गई।

नोट्स **गार्नर** के शब्दों में, मतदान का आधुनिक दृष्टिकोण यह है कि यह एक पद या कृत्य है, जो राज्य द्वारा केवल ऐसे लोगों को प्रदान किया जाता है, जो सार्वजनिक हित के लिए सर्वाधिक योग्यता के साथ प्रयुक्त करने योग्य समझा जाता है और यह प्राकृतिक अधिकार नहीं है जो भेद-भाव के बिना सभी नागरिकों को प्राप्त हो।

निर्वाचन व्यवस्था (Election System)

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष निर्वाचन (Direct and Indirect election): साधारणत: निर्वाचन के दो रूप हैं-

(i) प्रत्यक्ष निर्वाचन (Direct Election), तथा

(ii) अप्रत्यक्ष या परोक्ष निर्वाचन (Indirect Election)।

प्रत्यक्ष निर्वाचन उसे कहते हैं जहां मतदाता अपने प्रतिनिधियों को स्वयं निर्वाचित करते हैं। वे प्रतिनिधियों के चुनाव में स्वयं मत देते हैं। इसके विपरीत अप्रत्यक्ष प्रणाली में मतदाता प्रतिनिधियों के चुनाव में स्वयं भाग नहीं लेते हैं। बल्कि कुछ ऐसे लोगों को चुनते हैं, जो इसके बदले में प्रतिनिधियों का निर्वाचन करते हैं अर्थात् प्रतिनिधियों का निर्वाचन मतदाता द्वारा निर्वाचित एक निर्वाचक-मंडल (Electroal Collage) द्वारा होता है स्वयं मतदाता द्वारा नहीं। इस प्रकार अप्रत्यक्ष और दूसरी बार निर्वाचक-मंडल का सदस्य प्रतिनिधियों का निर्वाचन करते हैं उदाहरणस्वरूप भारत में लोक सभा तथा राज्य की विधान सभाओं के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष प्रणाली से होता है। इसके विपरीत राज्य-सभा और राज्य की विधान-परिषद के प्रतिनिधियों का चुनाव अप्रत्यक्ष प्रणाली से होता है।

प्रत्यक्ष निर्वाचन के गुण और दोष (Mertis and Demerits of Direct election): प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली लगभग सर्वमान्य प्रणाली है। यह लोकतन्त्र के सिद्धान्तों के अनूकूल है। लोकसत्ता जनता में निहित है। प्रत्यक्ष प्रणाली के अन्तर्गत ही जनता को इस शक्ति को अभिव्यक्त करने का वास्तविक अवसर मिलता है। प्रत्यक्ष प्रणाली प्रतिनिधियों और निर्वाचकों में घनिष्ठ सम्बन्ध पैदा करती है। उम्मीदवार स्वयं निर्वाचकों के पास जाते हैं उनसे मत देने की प्रार्थना करते हैं और मतदाताओं की जानकारी प्राप्त करते हैं। वे प्रतिनिधि चुने जाने के बाद उत्तरदायित्व का भी अनुभव करते हैं।

नोट

जनता को भी चुनाव में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने के कारण राजनीतिक प्रशिक्षण प्राप्त होता है। उसमें राजनीतिक चेतना एवं सार्वजनिक कार्यों के सम्पादन की भावना उत्पन्न होती है। जनता अपने उत्तरदायित्वों एवं अधिकारों के प्रति जागरूक होती है। साथ ही प्रतिनिधियों के निर्वाचन में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने के कारण जनता का शासन-संचालन में प्रत्यक्ष रूप में भाग लेने का अवसर प्राप्त होता। इसके अतिरिक्त जनता राजनीतिक दलों तथा प्रतिनिधियों पर अंकुश भी रखती है। यदि निर्वाचित प्रतिनिधि अपने दायित्व को नहीं निभा पाते हैं, तो आगामी चुनाव में जनता उन्हें पुन: निर्वाचित नहीं कर सकती है। अत: प्रतिनिधियों को सार्वजनिक हित को बढ़ाने के लिए एवं जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य करना चाहिए।

लेकिन इसका मतलब यही नहीं कि प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली एकदम दोषरहित है। इस प्रणाली में अनेक दोष पाये जाते हैं। आज निर्वाचकों की संख्या बहुत अधिक हो गयी है। जिसके कारण निर्वाचन कार्य जटिल तथा कठिन हो जाता है। इसके लिए बहुत लम्बी-चौड़ी व्यवस्था करनी पड़ती है। तथा राज्य का बहुत बड़ा भाग इस पर खर्च होता जाता है। प्रतिनिधियों के दृष्टिकोण से भी व्यवस्था बहुत ही खर्चीली है, क्योंकि मतदाताओं की बहुत बड़ी संख्या से उन्हें सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। साथ ही यह उत्तेजनापूर्ण होता है। इसमे बहुत से राजनीतिज्ञ धर्म, जाति, सम्प्रदाय आदि की दुहाई देकर मतदाताओं को बहकाते हैं। अत: बुद्धिमान एवं योग्य व्यक्ति निर्वाचन के झंझट में नहीं पड़ना चाहते हैं। फलत: अयोग्य एवं स्थायी व्यक्ति धन, वाक चातुर्य एवं सकीर्ण विचारों का सहारा लेकर चुनाव में प्राय: विजयी हो जाते हैं।

अप्रत्यक्ष निर्वाचन के गुण और दोष (Merits and Demerits of Indirect Election): प्रत्यक्ष निर्वाचन के दोषों को देखते हुए विद्वान अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली का समर्थन करते हैं। उनका कहना है कि अप्रत्यक्ष पद्धति के अन्तर्गत योग्य तथा वांछनीय व्यक्तियों का निर्वाचन संभव है। प्रत्यक्ष निर्वाचन में अशिक्षित तथा उत्तरदायी जनता मतदान में भाग लेती हैं। इसके विपरीत अप्रत्यक्ष प्रणाली में कतिपय चुने हुए व्यक्ति भाग लेते हैं जो साधारण जनता से अधिक बुद्धिमान तथा उत्तरदायी होते हैं। साथ ही उनकी संख्या भी कम होती है। इसलिए उन्हें क्षणिक आवेश में उभारा नहीं जा सकता है। निर्वाचन में खर्च की मात्रा भी कम हो जाती है। राजनीतिक दलों की उग्रता भी इससे घटती है। पिछड़े देशों के लिए अप्रत्यक्ष प्रणाली भी काफी उपयुक्त सिद्ध हुई है। बड़े देश के लिए भी इस व्यवस्था का समर्थन किया जाता है। लेकिन अप्रत्यक्ष प्रणाली में गुण की अपेक्षा दोष अधिक है। यह पद्धति लोकतन्त्र के सिद्धान्तों के विरूद्ध है। मतदाताओं तथा प्रतिनिधियों में कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रह जाता है। मतदाता देश की राजनीति एवं शासन में दिलचस्पी लेना कम कर देते हैं। न तो वे अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक हो सकते हैं, और न तो शासन पर नियन्त्रण का ही काम करते हैं। राजनीतिक दलबन्दियाँ भी कम नहीं होती। अमेरिका के राष्ट्रपति के चुनाव के आधार पर यह अनुभव प्राप्त किया गया है कि अप्रत्यक्ष निर्वाचन केवल नाम-मात्र का रह जाता है। अन्त में, निर्वाचक-मंडल के सदस्यों की संख्या कम रहने के कारण घूसखोरी एवं भ्रष्टाचार की सम्भावना बढ़ जाती है।

निर्वाचन क्षेत्र (Electoral Constituency): मुख्यत: प्रतिनिधियों के निर्वाचन के लिए दो प्रकार के निर्वाचन-क्षेत्र होते हैं:-

(क) एकसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र (Single Member Constituency) तथा

(ख) बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र (Multiple Member Constituency)।

एक सदस्य निर्वाचन क्षेत्र प्रथा के अन्तर्गत सारे देश को उतने ही निर्वाचन-क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। निजी प्रतिनिधियों को निर्वाचन की आवश्यकता होती है, जैसे-यदि लोक-सभा के 500 सदस्य हैं तो पूरे देश को 500 क्षेत्रों में बाँट दिया जायगा और प्रत्येक क्षेत्र से एक प्रतिनिधि का निर्वाचन होगा। इसके प्रतिकूल बहु-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र के अन्तर्गत देश को कई बड़े-बड़े निर्वाचन क्षेत्रों में बाँटा जाता है और प्रत्येक क्षेत्र में एक से अधिक प्रतिनिधि निर्वाचित होते हैं।

आधुनिक युग में एक सदस्य निर्वाचन-क्षेत्र अधिक लोकप्रिय है क्योंकि अत्यधिक सरल है, प्रतिनिधियों और मतदाताओं के बीच निकट संबन्ध स्थापित हो जाता है, प्रतिनिधियों में उत्तरदायित्व की भावना पैदा होती है, निर्वाचन में खर्च कम होता है।

नोट

अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व की प्रणालियाँ (Methods of Minority Representation): प्रजातन्त्र जनता का शासन है। जनता अपने प्रतिनिधियों द्वारा शासन को चलाती है। इसके लिए वह प्रतिनिधियों का निर्वाचन करती है। प्रजातन्त्र तभी जनता का शासन हो सकता है जब प्रतिनिधियों के निर्वाचन में पूरी जनता की इच्छा प्रलक्षित होती हो। बहुमत के आधार पर चुने गये प्रतिनिधि सही मतदाताओं की इच्छा को अभिव्यक्त नहीं करते हैं। साधारण बहुमत की प्रथा के अंतर्गत 51 मतदाताओं को शासन-कार्य में प्रतिनधित्व नहीं मिल पाता है जबकि 49 मतदाताओं को वस्तुत: कोई प्रतिनिधित्व नहीं मिलता है। अत: इस अल्पसंख्यक वर्ग को शासन कार्य में कैसे प्रतिनिधित्व दिया जाय सदा से एक गहन एवं विचारशील समस्या रही है, जे. एस. मिल ने भी कहा है कि यदि बहुसंख्यक वर्गों को शासन करने का प्राकृतिक अधिकार है तो अल्पसंख्यक वर्गों को भी इस बात का समान अधिकार है कि उसकी बात सुनी जाय।

अल्पसंख्यक वर्ग राष्ट्र का एक भाग होते हुए भी बहुसंख्यक जनसमूह से भिन्न होता है। इस भिन्नता के आधार पर आर्थिक, धार्मिक, साम्प्रदायिक आदि कारण होते हैं। इन अल्पसंख्यक वर्गों को समुचित प्रतिनिधित्व देने के बाद ही सच्चा प्रजातन्त्र हो सकता है। अन्यथा पूर्ण लोकसत्ता शासन-संचालन में परिलक्षित नहीं हो सकती है, अल्पसंख्यकों को उचित प्रतिनिधित्व देने के उद्देश्य से अनेक प्रणालियों की चर्चा की गयी है-

(1) आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation)

(2) सीमित मतदान प्रथा (Limited Vote System)

(3) एकल मतदान प्रथा (Cumulative Vote system)

(4) पृथक निर्वाचन प्रथा (Separate Electorate System)

(5) सुरक्षित स्थान-युक्त निर्वाचन प्रथा (Joint Electorate in the Reservation of Seates), तथा

(6) पेशागत प्रतिनिधित्व (Professional of Occupational Representation)

12.3 ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस और स्विट्जरलैण्ड में प्रतिनिधित्व और निर्वाचन व्यवस्था (Representation and Election System in Britain, America, France and Switzerland)

ब्रिटेन सबसे पुराना प्रजातांत्रिक देश है। अत: निर्वाचन और प्रतिनिधित्व व्यवस्था का विकास सबसे पहले ब्रिटेन में ही हुआ है। अभिसमयों पर आधारित विकास के फलस्वरूप जिस कॉमन सभा में लोकतंत्रीकरण पहले हुआ, उसी की नकल अन्य देशों के द्वारा प्रथम सदन के रूप में की गई है। 1949 के प्रतिनिधित्व नियम के अनुसार ब्रिटिश कॉन सभा का चुनाव गुप्त मतदान द्वारा होता है। ब्रिटेन में जिस निर्वाचन पद्धति का प्रयोग होता है उसे साधारण बहुमत पर आधारित एकसदस्यीय निर्वाचन व्यवस्था कहा जाता है। चुनाव परिणाम साधारणत: बहुमत पद्धति के आधार पर होते हैं। दूसरे शब्दों में, जिस उम्मीदवार को सबसे अधिक मत प्राप्त होता है। उसे ही विजयी घोषित किया जाता है। कॉमन सभा का यह चुनाव सामान्यत: पाँच वर्ष के लिए होता है, लेकिन बीच में भी इसके मध्यावधि चुनाव जरूरत के अनुसार होते रहते हैं।

इस निर्वाचन-पद्धति की सबसे मुख्य विशेषता यह है कि मतदाताओं और सदस्यों के बीच सीधा सम्पर्क बनता है। खर्च कम होते हैं और स्थानीय प्रतिभा को प्रोत्साहन मिलता है। ब्रिटेन की इसी निर्वाचन पद्धति का श्रेय है कि इसने इंग्लैंड के द्विदलीय पद्धति को विकसित किया जसमें एक पार्टी सत्ता में रहती है और दूसरा विरोधी दल के रूप में।

कुछ आलोचक इस पद्धति में त्रुटि भी ढूँढ़ते हैं। प्रत्यक्ष चुनाव के फलस्वरूप प्राप्त मतों की संख्या के अनुपात में दलों के उम्मीदवार विजयी नहीं होते हैं। कभी-कभी देश में जिस दल के मतदाताओं का बहुमत होता है, वही अल्पमत में आ जाता है। **राम्जे म्योर** ने भी इस प्रणाली को चुनाव का विकृत रूप माना है और कहा है कि चुनाव एक प्रकार से जुआ है जिसका प्रतिकूल प्रभाव दलीय नेताओं पर पड़ता है। फलत: इस निर्वाचन पद्धति में सुधार लाने के लिए समय-समय पर अनेक सुझाव दिये गये हैं। एकल संक्रमणीय मत विधि के साथ आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को अपनाने का सुझाव दिया गया है। कुछ लोगों ने संचयी मतप्रणाली (Cumulative Vote

नोट

System) तथा सीमित मत प्रणाली (Restrictive Vote System) को भी अपनाने का सुझाव दिया है। लेकिन ये सभी सुझाव ब्रिटिश संदर्भ में दोषमुक्त नहीं है और इनके अपनाने से ब्रिटेन की द्विदलीय पद्धति समाप्त हो जायगी जिसका प्रतिकूल असर वहाँ की राजनीतिक स्थिरता पर पड़ेगा। फलत: ब्रिटेन के लोग वर्तमान निर्वाचन और प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को उपयुक्त मानते हैं और सचमुच विश्व के अधिकांश देशों ने इसी ब्रिटिश पद्धति को अपनाया है। इस आधार पर चुने जाने के बावजूद प्रतिनिधियों का दृष्टिकोण हमेशा राष्ट्रीय होता है और वे अपने को संपूर्ण देश का प्रतिनिधि मानते हैं।

अमेरिका में प्रतिनिधित्व और निर्वाचन व्यवस्था (Representation and Election System in U.S.A.): अमेरिका भी एक लोकतांत्रिक देश है जिसका लिखित संविधान आधुनिक जीवित संविधानों में सबसे पुराना है। अत: प्रतिनिधित्व और निर्वाचन को वहाँ भी बहुत महत्त्व दिया गया है। सभी महत्त्वपूर्ण संवैधानिक निकायों का चुनाव अमेरिका में होता है। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, काँग्रेस के दोनों सदन (प्रतिनिधि सभा और सीनेट) तथा राज्यों में गवर्नर जनता द्वारा चुने जाते हैं। वर्तमान समय में राष्ट्रपति का व्यवहार में प्रत्यक्ष चुनाव चार वर्ष के लिए जनता द्वारा होता है। प्रतिनिधि सभा अमेरिकी मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुनी जाती है। सीनेट का निर्माण राज्यों की समानता संकीर्ण सिद्धान्त पर होता है और उसके भी सदस्य निश्चित कोटा के अनुसार राज्यों द्वारा चुने जाते हैं। 1913 से पूर्व सीनेट के इन सदस्यों का चुनाव परोक्ष रूप से प्रत्येक राज्य की विधायिका द्वारा होता था। लेकिन संविधान के सत्रहवें संशोधन के अनुसार अब इन राज्यों के नागरिक प्रत्यक्ष रूप में इन्हें चुनते हैं। प्रतिनिधि सभा का गठन राज्यों की जनसंख्या के आधार पर होता है और निर्वाचन प्रत्यक्ष तथा वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है। संविधान के उन्नीसवीं संशोधन द्वारा प्रत्येक स्त्री को भी मतदान का अधिकार प्रदान किया गया है। निर्वाचन और प्रतिनधित्व की इस व्यवस्था से यही निष्कर्ष निकलता है कि मौलिक रूप से संप्रभुता वहाँ की जनता में निवास करती है। इसकी स्पष्ट चर्चा संविधान की प्रस्तावना में है। अमेरिका संविधान को गणतंत्र भी कहा जाता है क्योंकि राज्य का प्रधान यानी राष्ट्रपति का चुनाव सीधे जनता द्वारा होता है।

फ्रांस में प्रतिनिधित्व और निर्वाचन व्यवस्था (Representation and Eelction System in France): फ्रांस में क्रांति के समय ही स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के जो नारे सारी दुनिया को दिये गये जिसके गर्भ में निर्वाचन और प्रतिनिधित्व व्यवस्था निहित है, चतुर्थ गणतंत्र में प्रतिनिधित्व और निर्वाचन का सभी व्यवस्थाएँ ब्रिटिश प्रतिमान पर आधारित थी। लेकिन पंचम गणतंत्र में राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप बदल जाने से इसमें कुछ परिवर्तन आया है लेकिन मूल रूप से जनता को ही सभी अधिकार है। बिना किसी भेदभाव के सभी फ्रांसीसी नागरिकों को मतदान का अधिकार है।

फ्रांस में राष्ट्रपति तथा संसद् के दोनों सदनों (राष्ट्रीय सभा और सीनेट) का निर्वाचन होता है। राष्ट्रपति जनता द्वारा चुना जाता है। इसलिए फ्रांस एक गणतंत्र है। राष्ट्रीय सभा के सदस्यों का चुनाव व्यापक, प्रत्यक्ष, समान और गुप्त मतदान के आधार पर होता है। सभी व्यस्क नागरिकों को मताधिकार प्राप्त है। पूरे देश को समान निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक क्षेत्र से एक प्रतिनिधि चुना जाता है। दूसरी ओर सीनेट के सदस्यों का चुनाव व्यापक परोक्ष मताधिकार के आधार पर होता है। फ्रांस के प्रादेशिक विभागों और प्रवासी नागरिकों का प्रतिनधित्व भी इसी सदन में होता है।

स्विट्जरलैंड में प्रतिनिधित्व और निर्वाचन व्यवस्था (Representation and Election System in Switzerland):

स्विट्जरलैंड में प्रतिनिधित्व और निर्वाचन व्यवस्था का स्वरूप ब्रिटेन, अमेरिका, और फ्रांस से भिन्न है। इसके अलावा आज भी स्विट्जरलैंड में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के रूप देखने को मिलते हैं। स्वीस संघीय सभा द्विसदनात्मक है जिसमें प्रथम सदन को राष्ट्रीय सभा (National Council) कहा जाता है जो स्वीस जनता का प्रतिनिधित्व करती है। राज्य सभा (Council of States) को द्वितीय सदन कहा जाता है जो कैंटनों का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें प्रत्येक कैंटन के दो और प्रत्येक अर्द्ध कैंटन से एक प्रतिनिधि लिये जाते हैं।

प्रथम सदन यानी राष्ट्रीय सभा का गठन जनता के द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा होता है। प्रत्येक स्वीस नागरिक जो 20 वर्ष का हो चुका है मतदान में भाग लेता है। चुनाव गुप्त मतदान द्वारा होता है। लेकिन ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस

नोट

और भारत की तरह वहाँ साधारण बहुमत पर आधारित एक सदस्यीय निर्वाचन प्रणाली द्वारा चुनाव नहीं होता। इसके चुनाव के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली क्षेत्र में लायी जाती। प्रत्येक कैंटन एक निर्वाचन क्षेत्र होता है जिसमें प्रतिनिधियों के चुनाव के लिए विभिन्न दल अपने-अपने उम्मीदवारों की सूची प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार उम्मीदवार व्यक्तिगत रूप से नहीं बल्कि सामुदायिक रूप से खड़े होते है। प्रत्येक सूची में उतने ही नाम होते हैं जितने उस कैंटन के स्थान हों। मतदाता उतने मत देने का अधिकारी होता है जितने सदस्यों का निर्वाचन उस कैंटन से होता है। किन्तु आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति का प्रयोग केवल उन्हीं कैंटनों में किया जाता है जहाँ एक से अधिक सदस्यों का चुनाव होता है। जिन कैंटनों से केवल एक सदस्य निर्वाचित होता है वहाँ साधारण प्रणाली द्वारा मतदान होता है।

इसमें कोई शक नहीं कि निर्वाचन और प्रतिनिधित्व की आनुपातिक प्रणाली में भी अनेक दोष हैं। लेकिन अधिकांश विद्वानों की धारणा है कि फ्रांस और इटली की तरह इस पद्धति के बुरे नतीजे स्विटजरलैंड में देखने को नहीं मिलते। सचमुच इस प्रणाली ने स्विट्जरलैंड के प्रतिनिधित्व और निर्वाचन में न्याय की प्रवृत्ति को उत्साहित किया है और जनमत संग्रह के दोषों को समाप्त किया है।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the Blanks) –

1. ..... सबसे पुराना प्रजातांत्रिक देश है।
2. निर्वाचन और प्रतिनिधित्व व्यवस्था का विकास सबसे पहले ..... में हुआ।
3. वर्तमान में अमरीकी राष्ट्रपति का प्रत्यक्ष चुनाव ..... के लिए जनता द्वारा होता है।
4. फ्रांस के पंचम गणतंत्र में मूल रूप से सभी अधिकार ..... को ही है।
5. आज भी ..... में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के रूप देखने को मिलते हैं।

12.4 सारांश (Summary)

- **रूसो** (Rousseau) का भी कहना है कि प्रतिनिधित्व की कल्पना आधुनिक है इसकी उत्पत्ति का कारण सरकारों की स्वेच्छाचारिता थी। फिर भी कहा जा सकता है कि प्राचीन प्रजातान्त्रिक राज्यों में इसकी थोड़ी बहुत शुरूआत हो चुकी थी। लेकिन मध्यकालीन युग में यह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगी। जब कुछ राजाओं को धन की आवश्यकता होती थी तो वे करारोपण के संबन्ध में मन्त्रणा लेने के लिए कुछ जन-प्रतिनिधियों को आमन्त्रित करते थे। प्रतिनिधियों के समूह ने धीरे-धीरे प्रतिनिधि संस्था का रूप ग्रहण कर लिया। जिसे इंग्लैंड में संसद (Parliament), फ्रांस में स्टेट्स जनरल (Estates General) तथा जापान में डायट (Diet) कहा जाता था।
- 1213 ई॰ में इस प्रकार की सभा बुलायी। 1256 ई॰ में बैरनों के विजय-सत्ता साइमन-डी मांटफोर्ड (Simon de-Montford) ने संसद् की बैठक बुलायी जिसमें सामन्तों, पादरियों और काउण्टियों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त 21 नगरों (Boroughs) से भी दो-दो प्रतिनिधि आमंन्त्रित हुए।
- 1295 ई. में एडवर्ड प्रथम ने संसद् की बैठक बुलायी। यह इतिहास में 'आदर्श संसद्' (Model Parliament) के नाम से विख्यात है, क्योंकि 400 व्यक्तियों की इस सभा में प्राय: सभी प्रमुख वर्गों-वैरन, पादरी, नाइट, नगर आदि को प्रतिनिधित्व मिला। इसके पश्चात् ब्रिटिश व्यवस्था का वह एक स्थानीय और अनिवार्य अंग बन गयी।
- अठारहवीं शताब्दी में सम्राट् एक संवैधानिक प्रधान मात्र रह गया और संसद् पूर्ण सार्वभौम हो गयी। उन्नीसवीं तथा वर्तमान शताब्दी में यह विकास पूर्ण हो गया।
- इंग्लैंड में शुरू से ही संसद् का रूप अंशत: प्रतिनिध्यात्मक (Representative) रहा है, क्योंकि नगरों और सामन्तों के प्रतिनिधि किसी-न-किसी रूप में चुने जाते थे। इंग्लैंड के लिए प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त कोई नया सिद्धांत नहीं था।
- अत: सच्ची प्रतिनिध्यात्मक सरकार की स्थापना वर्तमान काल में हुई। लेकिन इसकी नींव वृहत् सभा में काउन्टी

नोट

और बौरों को प्रतिनिधित्व देने के साथ पड़ चुकी थी। इसके उदय का कारण स्वतंत्रता या स्वशासन के प्रति प्रेम नहीं, बल्कि राजाओं की कर प्राप्त करने की शक्ति का विरोध था।

- फ्रांस की गौरवपूर्ण क्रांति (Glorious Revolution) ने प्रतिनिध्यात्मक प्रणाली की स्थापना की दिशा में एक महान संघर्ष किया। अमरीकी उपनिवेशों ने 'बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं' (No taxation without repersentation) का नारा लगाया तथा अन्त में लोकतन्त्री प्रतिनिध्यात्मक सरकार की स्थापना में सफल हुए।
- स्वतन्त्र भारत के संविधान के निर्माण हेतु संविधान सभा (Constituent Assembly) का संगठन हुआ। इसके प्रतिनिधियों का चुनाव अप्रत्यक्ष रीति से हुआ था। फिर भी इस सभा में सभी वर्गों, जातियों राजनीतिक दलों तथा हितों को समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त था। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पूर्व तक, प्रतिनिधित्व तथा निर्वाचन की विशेषता थी कि वे सीमित थे प्रतिनिधियों के चुनाव का आधार वयस्क मताधिकार नहीं था तथा चुनाव का आधार साम्प्रदायिक तथा वर्गीय प्रतिनिधित्व था। लेकिन स्वतन्त्र भारत में निर्वाचन को पूर्ण प्रजातान्त्रिक बना दिया गया है। इसका आधार असीमित वयस्क मताधिकार है प्रतिनिधियों को विशेष स्थान तथा अधिकार प्राप्त है तथा प्रतिनिधिक संस्थाओं को प्रमुखत: विधि निर्माण एवं कतिपय अन्य क्षेत्रों में भी आवश्यक अधिकार दिये गये हैं।
- आदिष्ट प्रतिनिधित्व का अर्थ है कि प्रतिनिधित्व निर्वाचकों के अधीन है। उसकी निजी इच्छा कुछ नहीं है। वह निर्वाचकों की इच्छा को अभिव्यक्ति करता है। यह किसी प्रकार का संशोधन निर्वाचकों की आज्ञा से ला सकता है। प्रतिनिधि का यह रूप आज पुराना पड़ गया है। फिर भी कुछ ऐसे प्रतिनिधि होते हैं जो मालिक की इच्छा के अंतर्गत ही कुछ कर सकते हैं जैसे विदेशों में राजदूत, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधि–प्रतिनिधित्व के इस सिद्धांत को अमान्य ठहराया गया है, क्योंकि प्रतिनिधियों को न तो विवेकपूर्ण आदेश ही उपलब्ध होते हैं और न ही निर्वाचको की वास्तविक इच्छा का पता ही आसानी से लगाना सम्भव है।
- आदेशहीन प्रतिनिधित्व का अर्थ है कि प्रतिनिधिगण निर्वाचकों के अभिकर्त्ता (Agent) नहीं हैं, वे निर्वाचकों के अधीनस्थ नहीं हैं तथा केवल उनके आदेश के अनुसार कार्य नहीं करते हैं। सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों दृष्टिकोणों से यह सम्भव नहीं है कि कोई प्रतिनिधि सदा निर्वाचकों के आदेश के अनुसार या निर्वाचकों के समक्ष की गयी प्रतिज्ञाओं के अनुसार कार्य करे। अत: आधुनिक युग में आदिष्ट प्रतिनिधित्व का अमान्य सिद्धांत सिद्ध हो गया है और आदेशहीन सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गयी है।
- जहां व्यवस्थापिका सभाओं के लोकप्रिय सदनों का प्रश्न है उनका कार्य–काल भारत, ब्रिटेन तथा कनाडा में 5 वर्ष, अमेरिका में 2 वर्ष और पूर्व सोवियत संघ, स्वीडन तथा जापान में 4 वर्ष है द्वितीय सदनो के प्रतिनिधियों का कार्य–काल अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में 6 वर्ष, दक्षिण अफ्रीका में 10 वर्ष, फ्रांस में 9 वर्ष तथा सोवियत रूस में 4 वर्ष तथा ब्रिटेन में आजीवन है।
- भारतीय संविधान सभा (Indian Constituent Assembly) की संघीय संविधान–समिति (Union Constitution Committee) ने लोकसभा के लिए 4 वर्ष का कार्य–काल निश्चित किया था, लेकिन प्रारूप समिति (drafting Committee) ने इसे बढ़ाकर 5 वर्ष कर दिया। इसका कारण यह बतलाया गया कि संसदीय प्रणाली में प्रथम वर्ष, किसी मंत्री के शासन कार्य का ज्ञान प्राप्त करने में लग जाता है तथा अन्तिम वर्ष सामान्य निर्वाचन की तैयारी में लग जाता है। फलत: दो वर्ष समय बचेगा जो सुनियोजित प्रशासन के लिए अत्यन्त अल्प अवधि है।
- प्रतिनिधियों को विशिष्ट तथा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने पड़ते हैं। उन्हें जटिल तथा पेचीदा कानून का निर्माण करना पड़ता है। साथ ही, उन्हें इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि पहले देश का शासन–संचालन स्वच्छ तथा कुशल तरीके से हो और सामान्य हित की वृद्धि हो। अत: यह आवश्यक है कि प्रतिनिधि योग्य, दक्ष, कार्यकुशल तथा देश सेवी हों।
- अधिकांश संविधान में प्रतिनिधियों की आयु का उल्लेख मिलता है। भारतीय संविधान में लोकसभा के सदस्यों के लिए न्यूनतम आयु 25 वर्ष तथा राज्य सभा के सदस्यों के लिए 30 वर्ष निश्चित की गयी है।

नोट

- आधुनिक काल में राजनीतिक समता के सिद्धान्त को अपनाया गया है। अत: धनवान और निर्धन सभी को समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं।
- भारत में कोई भी व्यक्ति, जो सरकारी या किसी लाभ के पद पर हो विधानमण्डल का सदस्य नहीं हो सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में तो कार्यपालिका का सदस्य यानी मंत्रीगण कांग्रेस के सदस्य नहीं हो सकते है। इस बन्धन का एक कारण है कि कार्यपालिका के सदस्य व्यवस्थापिका के सदस्य हो जायें तो वे निजी स्वार्थ के लिए कानून का निर्माण करेंगे।
- प्रत्येक देश में वहां के प्रतिनिधियों को विशेषाधिकार प्राप्त रहता है। उन्हें संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखने के तथा कर्तव्य का श्रद्धापूर्वक पालन करने की शपथ लेनी पड़ती है। उन्हें विधानसभा तथा उसके बाहर विचार अभिव्यक्त की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। भाषण देने के विरूद्ध उन पर कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। सदन के अधिवेशन के समय में उन्हें साधारणत: गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। प्रतिनिधियों को नियमित रूप से वार्षिक या मासिक वेतन तथा अन्य प्रकार के भत्ते मिलते हैं।

12.5 शब्दकोश (Keywords)

गणतंत्र : निर्वाचित राष्ट्राध्यक्ष वाला देश

विकृत : किसी भी वस्तु अथवा जीव का बिगड़ा एवं भयानक रूप।

12.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. ब्रिटिश, अमरीकी, फ्रांसीसी और स्विस के संदर्भ में प्रतिनिधित्व के सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए।
2. ब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिका में मतदान व्यवहार का विवेचना कीजिए।
3. ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस एवं स्विट्जरलैण्ड की चुनाव पद्धति पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. ब्रिटेन 2. ब्रिटेन 3. 4 वर्ष 4. जनता
5. स्विट्जरलैण्ड

12.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ*–सी.बी. गेना, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड, दिल्ली।
2. *तुलनात्मक शासन एवं राजनीति*–डॉ. बीरकेश्वर प्रसाद सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन (पी. एण्ड डी.) 24, दरियागंज, अंसारी रोड, दिल्ली।
3. *तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा*– ओम प्रकाश गाबा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।
4. *तुलनात्मक राजनीति*–जे.सी. जौहरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि., दिल्ली।

नोट

इकाई–13: राजनीतिक दल (Political Parties)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

13.1 राजनीतिक दल: अर्थ, परिभाषा और महत्त्व (Political Party : Meaning, Definition and Importance)

13.2 यू.के, यू.एस.ए. और फ्रांस में राजनीतिक दल (Political Party in UK, U.S.A. and France)

13.3 चीन में कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिका (Role of Communist Party in China)

13.4 यू.एस.ए, यू.के, और फ्रांस में हित समूह अथवा दबाव समूह (Interests groups or Pressure Group in USA, UK and France)

13.5 सारांश (Summary)

13.6 शब्दकोश (Keywords)

13.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

13.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- राजनीतिक दल के अर्थ, परिभाषा और महत्त्व को समझने में;
- यू.के, यू.एस.ए. और फ्रांस में राजनीतिक दलों की स्थिति और चीन में कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिका का विवेचन करने में।
- यू.के., यू.एस.ए और फ्रांस में हित समूहों की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

राजनीतिक दल प्रजातन्त्र की आधारशिला है। दोनों में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। दलों के बिना प्रजातन्त्र जीवित नहीं रह सकता है। इन्हें "प्रजातन्त्र का प्राण" कहा जाता है। वे शासन व्यवस्था के एक अभिन्न अंग हैं। उन्हें सरकार का 'चतुर्थ अंग' (Fourth organ of the Government) कहा गया है। वस्तुत: राजनीतिक दलों के अभाव में लोकतन्त्र सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए लोकतन्त्रीय शासन को दलीय शासन (Party Government) कहा गया है। प्रतिनिधि प्रजातन्त्र के विकास से दलों की अनिवार्यता अत्यधिक बढ़ गयी है। प्रतिनिधियों का चुनाव जनता करती है। लेकिन जब तक राजनीतिक दल नहीं होगा तब तक जनता यह नहीं समझ पायेगी कि वह किसे अपना प्रतिनिधि चुने और किसे नहीं। वे अपने दल के उम्मीदवार को चुनाव में खड़ा कर जनता को यह मौका देते हैं कि वह अपना योग्य प्रतिनिधि चुने। राजनीतिक दल नहीं रहे तो मतदाता अपना मत बिना सोच-विचार के किसी को भी दे देंगे। इसलिए **फाइनर** ने कहा है कि राजनीति दल अमूर्त्त मतदाताओं को मूर्त्त रूप देते हैं। उसी के शब्दों में, दलों के बिना मतदाता या तो नपुंसक हो जायेंगे या विनाशकारी, जो ऐसी असम्भव नीतियों का अनुगमन करेंगे जिससे राजनीति यन्त्र ध्वस्त हो जायेंगे। **लॉवेल** के कथनानुसार किसी महान् राष्ट्र में सम्पूर्ण जनता द्वारा सरकार की धारणा निस्संदेह एक मनगढ़न्त कल्पना है, क्योंकि

नोट

जहाँ मताधिकार विस्तृत है, वहाँ दलों का अस्तित्व निश्चित है और नियन्त्रण वास्तविक रूप में उस दल के हाथों में होगा जिसका बहुमत होगा। "इस सिलसिले में राजनीतिक दलों का मुख्य कार्य निर्वाचक मण्डल को प्रभावित करना, निर्वाचन में प्रत्याशी खड़ा करना, अपने उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों का प्रचार करना तथा निर्वाचन में जीतकर सरकार का निर्माण करना है।" इस प्रकार यदि राजनीतिक दल संगठित न हो तो प्रतिनिधिमूलक सरकार का चलना कठिन होगा। इसलिए राजनीति दलों को 'अदृश्य सरकार' (Invisible Government) कहा गया है। **मैकाइवर** के शब्दों में, "राजनीतिक दलों के अभाव में न तो सिद्धान्तों की संगठित अभिव्यक्ति ही हो सकती है और न नीतियों का उचित विकास ही और न नियन्त्रित रूप से राष्ट्रीय चुनाव के वैधानिक उपायों अथवा मान्य संस्थाओं का सहारा ही लिया जा सकता है जिसके द्वारा राजनीतिज्ञ अपनी शक्ति को बनाये रखने या प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।" इस प्रकार प्रजातन्त्र को व्यावहारिक बनाने के लिए राजनीतिक दलों का अस्तित्व अनिवार्य है।

13.1 राजनीतिक दल: अर्थ, परिभाषा और महत्त्व (Political Party : Meaning, Definition and Importance)

साधारण बोलचाल की भाषा में व्यक्तियों के किसी भी समूह को जो एक समान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्य करता है, दल कहते हैं। यदि उस दल का उद्देश्य राजनीतिक हो तो उसे राजनीतिक दल कहते हैं। यह अपने विचारों का प्रचार कर जनता को अपना अनुयायी बनाता है तथा अपने ही विचारों के अनुसार सरकार का निर्माण करना चाहता है। समाज में ऐसे अन्य संगठन भी होते हैं; जैसे–धार्मिक संगठन, व्यावहारिक संगठन, जातीय संगठन, सांस्कृतिक संगठन इत्यादि। लेकिन इन्हें राजनीतिक दल नहीं कहा जा सकता है; क्योंकि इनका उद्देश्य राजनीतिक नहीं होता है। ये सरकार का निर्माण करना नहीं चाहते हैं, अपितु केवल विशेष वर्ग का हित चाहते हैं। अत: राजनीतिक दल का आशय नागरिकों के ऐसे समूह से है जो सार्वजनिक प्रश्नों के विषय में समान विचार रखता है और राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हुए अपनी कल्पित नीति को विस्तार देने के लिए शासनतन्त्र को हस्तगत करना चाहता हो।

परिभाषा–इसकी परिभाषाएँ अनेक विद्वानों ने दी हैं–

एडमंड बर्क–"राजनीतिक दल उन मनुष्यों का एक समूह है जो कुछ निश्चित सिद्धांतों के आधार पर जिनमें वे सहमत हैं, अपने संयुक्त प्रयत्नों से राष्ट्रीय हित को आगे बढ़ाने के लिए संगठित रहते हैं।" यहाँ बर्क ने तीन आवश्यक तत्त्वों पर जोर दिया है–(क) उद्देश्य राष्ट्रीय हित का साधन, (ख) सिद्धांत और (ग) संगठन को दल के अस्तित्व के लिए आवश्यक माना जाता है।

मैक्स वेबर–"राजनीतिक दल स्वेच्छा से बनाया हुआ वह संगठन है जो शासन शक्ति को अपने हाथ में लेना चाहता है और इसको हस्तगत करने के लिए वह प्रचार और आन्दोलन का सहारा लेता है। इस शासन शक्ति को अपने हाथ में लेने के पीछे एक उद्देश्य हो सकता है जो या तो वस्तुनिष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति हो या व्यक्तिगत स्वार्थ हो या दोनों।"

मैकाइवर–"राजनीति दल वह समुदाय है जिसका संगठन किसी विशेष सिद्धांत या नीति के समर्थन के लिए हुआ हो, जो सांविधानिक उपायों का सहारा लेकर इस सिद्धांत अथवा नीति को सरकार का आधार बनाने का प्रयत्न करता हो।"

लीकॉक–राजनीतिक दल संगठित नागरिकों के उस समुदाय को कहते हैं जो इकट्ठे मिलकर एक राजनीतिक इकाई के रूप में काम करते हैं। उनके विचार सार्वजनिक प्रश्नों पर एक जैसे होते हैं और वे एक सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए मतदान की शक्ति का प्रयोग करके सरकार पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता है।

गिलक्राइट–"राजनीतिक दल व्यक्तियों के उस समुदाय को कहते हैं जिसके सदस्यों के राजनीतिक विचार एक से होते हैं जो एक राजनीतिक इकाई की तरह काम करके सरकार को नियंत्रित करने की चेष्टा करते हैं।"

नोट

गेटेल–"राजनीतिक दल प्राय: संगठित नागरिकों के ऐसे समुदाय हैं जो राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हैं और अपने मतदान की शक्ति का प्रयोग कर सरकार को नियंत्रित करना तथा अपनी सामान्य नीति की पूर्ति करना चाहते हैं।"

राजनीतिक दलों का महत्त्व (Importance of Political Parties)

राजनीतिक दल प्रजातन्त्र में शिक्षा के साधन हैं। ये जनता को विभिन्न प्रकार से राजनीतिक शिक्षा प्रदान करते हैं। ये जनता को सार्वजनिक प्रश्नों एवं समस्याओं के प्रति जागरूक रहने की शिक्षा देते हैं। राजनीतिक दल जनता के समक्ष हर समस्या के विभिन्न तथा विरोधी पहलुओं को रखते हैं जिससे जनता को राजनीतिक समस्याओं का ज्ञान प्राप्त होता है, उनमें राजनीतिक चेतना आती है, जनतन्त्र की सफलता के लिए एक स्वस्थ और चेतनशील राजनीतिक वातावरण की आवश्यकता है। ऐसा वातावरण केवल राजनीतिक दल ही कायम कर सकते हैं। राजनीतिक दल प्रजातन्त्र के आवश्यक तत्त्व जनमत के निर्माण में भी सहायक होते हैं। ये जनमत का निर्माण, प्रकाशन, विकास इत्यादि करते हैं। मतदान और निर्वाचन के समय वे राज्य के नागरिकों को राजनीतिक सहायता प्रदान करते हैं। उनमें शासन के प्रति जागरूकता उत्पन्न करते हैं। और उसको राजनीतिक कर्त्तव्यों का बोध कराते हैं।

प्रजातन्त्र में विभिन्न विरोधी दलों का अस्तित्व इसलिए भी अनिवार्य है कि सत्तारूढ़ दल की विफलता के बाद वे सत्ता को संभालने के लिए आगे बढ़ जाए। बहुमत दल का शासन चलता है तथा विरोधी दल उसकी आलोचना कर उसे सचेत करता है। राजनीतिक दल विभिन्न स्वार्थों, हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जनता इन्हीं दलों के माध्यम से अपनी कठिनाइयों को सरकार तक पहुँचाती है। इस प्रकार जनता तथा जनता के बीच दल कड़ी का काम करते हैं। ये सरकार तथा जनता के बीच सामंजस्य स्थापित करते हैं। यह तभी हो सकता है जब सरकार की इच्छा सरकार जाने तथा उसके मुताबिक कार्य करने का प्रयास करे और सरकार की इच्छा से जनता अपने को अवगत रखे। राजनीतिक दल जनता और सरकार के बीच सामंजस्यपूर्ण स्थिति बनाये रखने में एक कड़ी का काम करते हैं। इसके अतिरिक्त राजनीतिक दलों के द्वारा जनता सरकार पर नियन्त्रण रखती है। प्रजातन्त्र में यदि सरकार पर जनता का नियन्त्रण न रहे तो प्रजातन्त्र सफल नहीं हो सकता। नियन्त्रण को व्यावहारिक रूप देने का सर्वोत्तम माध्यम राजनीतिक दल ही हैं।

प्रजातन्त्र की सफलता की एक प्रमुख वैयक्तिक स्वतन्त्रता की रक्षा है। उसकी पूर्ति का मुख्य साधन राजनीतिक दल हैं। विरोधी राजनीतिक दल शासन दल को नियन्त्रित कर देश को एक दल की निरंकुशता से बचाता है। दलों के माध्यम से ही जनता समुचित रूप से अपने विरोध की अभिव्यक्ति कर सकती है। **प्रो. लॉस्की** के शब्दों में, राजनीतिक दल देश में तानाशाही से हमारी रक्षा करने के सर्वोत्तम साधन हैं।" **लार्ड ब्राइस** ने भी कहा है कि "कोई भी स्वतन्त्र देश इसके बिना नहीं रह सकता है।"

अन्त में, राजनीतिक दल प्रतिनिधि मूलक पद्धति के लिए सर्वथा अनिवार्य है। किसी भी प्रकार की शासन व्यवस्था क्यों न हो, दलों के अभाव में सरकार का सुगम संचालन नहीं हो सकता है। अध्यक्षात्मक पद्धति की सरकार हो या संसदात्मक पद्धति की; पूँजीवादी व्यवस्था हो या समाजवादी, प्रजातन्त्र हो या अधिनायकतन्त्र, सरकार के आधार राजनीतिक दल ही हैं। **मेरियट** ने तो दलों को सरकार की "पूरक संस्था" कहा है; क्योंकि वे अधिकारियों के चुनाव, सार्वजनिक नीति के निर्धारण तथा सरकार के संचालन और इसकी आलोचना करने में सहायता प्रदान करते हैं। दलों की इस महत्त्वपूर्ण स्थिति के बावजूद मार्क्सवादी विचारकों का कहना है कि साम्यवाद की अवस्था में न तो राज्य रहेगा और न राजनीतिक दल ही। राजनीतिक दलों का अस्तित्व विभिन्न वर्गों तथा स्वार्थों के कारण हैं। आज के सर्वोदयवादी भी दलविहीन सरकार (Partyless Government) की चर्चा करते हैं। लेकिन ये विचारधाराएँ जिस आदर्श सामाजिक अवस्था की बात करती हैं वह पूर्णत: काल्पनिक है। भविष्य में जो कुछ हो, कम-से-कम आधुनिक प्रजातन्त्र में राजनीतिक दल प्राणवायु के समान हैं।

क्या आप जानते हैं राजनीतिक दलों को "प्रजातंत्र का प्राण" और सरकार का 'चतुर्थ अंग' कहा जाता है।

नोट

13.2 यू.के., यू.एस.ए. और फ्रांस में राजनीतिक दल (Political Party in UK, U.S.A. and France)

ब्रिटेन में राजनीतिक दल (Political Parties in Britian)

राजनीतिक दल ब्रिटिश शासन-प्रणाली की विशेष बुनियाद का मूलाधार है। यह कहना अनुचित न होगा कि ब्रिटिश संविधान के विकास में राजनीतिक दलों का भी संगठन हुआ और मताधिकार के प्रसार के साथ-साथ यह संगठन अधिकाधिक जटिल, सुदृढ़ एवं अनुशासनबद्ध होता गया। ब्रिटिश शासन की संसदीय विशेषताओं के सफल संचालन में राजनीतिक दलों का मुख्य हाथ है आम चुनाव, मंत्रिमंडल का गठन एवं कार्यकारणी, संसद् की कार्यवाहियों का संचालन, सरकारी नीतियों का निर्धारण, जनता का शासन पर नियंत्रण आदि संसदीय विशेषताओं की अभिव्यक्ति दलीय व्यवस्था के माध्यम से ही होता है। वहाँ साम्राज्ञी की सरकार (Her Majesty's Government) दल की सरकार है और विरोधी दल साम्राज्ञी का विरोधी दल (Her Majesty's Opposition) है। इंग्लैंड में राजनीतिक दलों का यद्यपि कोई वैधानिक अस्तित्व नहीं है। तथापि उनके अभाव में अंग्रेजी शासन-व्यवस्था का समस्त स्वरूप ही बदल जाएगा और इसकी अनेक परम्पराएँ तथा अभिसमय नष्ट हो जायँगी।

नोट्स **जेनिंग्स** ने ठीक ही कहा है कि "यदि ब्रिटिश संविधान का सही सर्वे किया जाय तो यही कहना पड़ेगा कि वह दलों से प्रारम्भ होता है और दलों में समाप्त हो जाता है और प्रारम्भ तथा समाप्ति के बीच में भी राजनीतिक दलों का ही विवेचन होता है।"

ब्रिटिश राजनीतिक दलों के कार्य (The Functions of British Political Parties): ब्रिटिश राजनीतिक दलों का महत्त्व उनके तरह-तरह के कार्यों के कारण हैं। ये देश के राजनीतिक जीवन में अनेक उपयोगी कार्य करते हैं।

मतदाताओं की दूरी को कम करना—राजनीतिक दल सारे देश के मतदाताओं को एक सूत्र में जोड़ते हैं। वे मतदाताओं के बीच की दूरी को बाँटते हैं। मतदाताओं की अपार संख्या के कारण उनका एक-दूसरे को जानना असम्भव है। उनके अलग-अलग विचार होते हैं, वे अलग-अलग मत देते हैं। ये असंगठित रहते हैं जिस कारण राष्ट्र के राजनीतिक जीवन पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन, राजनीतिक दलों ने मतदाताओं को संगठित किया है, निश्चित सिद्धान्त तथा कार्यक्रम उनके सामने रखकर उन्हें विभिन्न समूहों में संगठित किया है। राजनीतिक दलों ने उनको एकता प्रदान की है तथा उनके राजनीतिक प्रभाव को बढ़ाया है।

सदस्यों की बहाली और उदासीनता को दूर करना—प्रत्येक राजनीतिक दल के सदस्य होते हैं। अधिकतम सदस्यता ही दल की ताकत की पहचान है। सभी दल अधिक-से-अधिक मत जीतने का प्रयत्न करते हैं। सदस्यों का प्रमुख कार्य है; जनता की उदासीनता को दूर करना। सदस्य जनता में उत्साह भरते और उन्हें राजनीति में भाग लेने के लिए उकसाते हैं।

जनता को शिक्षा देना—राजनीतिक दलों का एक प्रमुख कार्य जनता को राजनीतिक शिक्षा देना है। इस कार्य को दल की स्थायी शाखाएँ करती हैं और केन्द्रीय दल उनका इस कार्य में सहायता पहुँचाता है। राष्ट्रीय नेताओं, सभाओं, रेडियो, टेलिविजन आदि के द्वारा राजनीतिक दल जनता को शिक्षित करते हैं। यही शिक्षा प्रजातंत्र का आधार है।

नीति निश्चित करना—राजनीतिक दलों का एक अन्य कार्य नीति निर्धारित करना है। प्रत्येक दल की अपनी-अपनी नीति होती है और उस नीति को लागू करने के लिए कार्यक्रम होता है। दल की शाखाएँ शोध-कार्य करके नीति के सम्बन्ध में सलाह देती हैं और राष्ट्रीय अधिवेशनों द्वारा दल की नीति को अन्तिम स्वीकृति दी जाती है।

प्रवक्ताओं, नेताओं तथा उम्मीदवारों का चयन—प्रत्येक दल प्रवक्ताओं, नेताओं और उम्मीदवारों का चयन (Selection of Spokesmen, Leaders and Candidates) करता है। प्रवक्ताओं और नेताओं के बिना कोई दल नहीं

नोट

चल सकता है, क्योंकि नेताओं के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जनता दल का अनुसरण करती है, दल के सर्वोच्च नेता का तो इतना अधिक महत्त्व है कि उसके व्यक्तित्व पर ही चुनाव लड़ा जाता है। कहा भी जाता है, "जनता किसी दल को नहीं बल्कि भावी प्रधानमंत्रियों को मत देती है।"

अनुशासन का पालन करवाना–राजनीतिक दलों का एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह भी है कि वे दल के सदस्यों तथा दल की सहायता से चुने गये संसद सदस्यों को अनुशासित रखें तथा उन्हें दल की नीति और कार्यक्रम से विचलित न होने दें। अनुशासन को बनाये रखने के लिए दल के अपने यंत्र होते हैं जैसे–संसद में दल सचेतक सदस्यों पर निगरानी रखते तथा रास्ता बतलाते हैं।

राजनीतिक उत्तरदायित्व–राजनीतिक दलों का सर्वप्रमुख कार्य राजनीतिक उत्तरदायित्व को ढोना है। इस विशेष नीति को अपनाते हैं जिसकी स्वीकृति जनता द्वारा मिलती है। वे चुनाव काल के उस नीति को कार्यरूप देने की प्रतिज्ञा करते हैं। सत्ता में आने पर वे उसके लिए कानून बनाते तथा प्रशासकीय और वैदेशिक नीतियों का संचालन करते हैं। लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के यंत्रों तथा संसद के सदनों के नेताओं से सम्बन्ध स्थापित कर सरकार से अपनी नीति का अनुसरण करवाता है। यदि संसद में सरकार के विरोधी दल (His Majesty's Opposition) के रूप में आता है तो उसका उत्तरदायित्व बदल जाता है जिसे वह सरकार की आलोचना, विरोध तथा सुझाव द्वारा पूरा करता है।

ब्रिटेन में राजनीतिक दलों का अभ्युदय एवं विकास (Growth and Development of Parties in Britain)

प्रारम्भ–इंग्लैंड के दो राजनीतिक दलों का इतिहास बहुत पुराना है। पन्द्रहवीं शताब्दी में इसका बीजारोपण हुआ। राजगद्दी के दो दावेदार–**लंकास्टार** और **यार्कीस्टो** के बीच झगड़ा शुरू हुआ। जागीरदार सामंत भी दोनों दावेदारों को सहायता करने के कारण दो गुटों में बँट गये–लंकास्ट्रियन और याकिस्ट गुट। लेकिन ये गुट राजनीतिक दल नहीं थे। स्टुअर्ट काल में राजा और संसद के बीच संघर्ष प्रारम्भ हुआ। राजा के समर्थक **कैवेलियर्स** (Cavalliers) और संसद के समर्थक **राउण्डहेड्स** (Roundheads) कहलाये। फिर, **चार्ल्स** द्वितीय ने 1679 ई. में **ऐक्सक्लूजन बिल** (Exclusion Bill) को लेकर जब संसद को भंग कर दिया, तो बिल के समर्थकों ने संसद को बुलाने की प्रार्थना की; उन्हें **पेटिशनर्स** (Petitioners) कहा गया और जिन्होंने इसका विरोध किया उनको **एबौरर्स** (Abborrers) की संज्ञा दी गयी। लेकिन इन संगठनों को भी गुट ही कहना अधिक सही होगा तथा राजनीतिक दल की संज्ञा अनुपयुक्त होगी। आधुनिक अर्थ में राजनीतिक दलों का जन्म टोरीज (Torries) और **ह्विग** (whigs) दलों के विकास के साथ हुआ। **ह्विग** और **टोरी** दल क्रमश: **राउण्डहेड्स** और **कैवेलियर्स** के उत्तराधिकारी थे। **ह्विग** राजा की शक्ति पर नियन्त्रण लगाने के पक्ष में थे और टोरी राजा का परमाधिकार रखने के पक्ष में थे। 1688 ई. से लगभग 150 वर्ष तक दोनों दल बारी–बारी से शासन संचालन करते रहे।

अनुदार दल और उदार दल का अभ्युदय–सन् 1832 ई. के सुधार–अधिनियम के पश्चात् दलों के नामों में परिवर्तन हुआ और अनुदार (conservatives) और उदार (Liberal) नाम से विख्यात हुआ। अनुदार दल टोरी दल का उत्तराधिकारी था और उदार दल ह्विग दल का। ये दल बीसवीं सदी के प्रथम चरण तक देश की राजनीति पर छाये रहे। 19वीं शताब्दी में इन दलों का विकास **डिजरैली और ग्लैडस्टोन**–जैसे राजनीतिज्ञों के नेतृत्व में हुआ। दोनों दलों में मौलिक सैद्धांतिक मतभेद थे। अनुदार दल रूढ़िवाद का पोषक था और राजा के परमाधिकारों, लॉर्ड–सभा की शक्तियों, साम्राज्यवाद तथा पूँजीवाद को अक्षुण्ण रखना चाहता था। उदारदल उदारवाद पर आधारित था और प्रगतिशील सुधारों के पक्ष में था, जैसे मताधिकार का विस्तार, आयरलैंड का स्वराज्य, लॉर्ड–सभा का सुधार आदि।

मजदूर दल का अभ्युदय–बीसवीं सदी में दलों की स्थिति में परिवर्तन हुआ। मजदूर दल का अभ्युदय तथा उदार दल की विलीनता इस सदी की प्रमुख घटना है। व्यावसायिक क्रांति के कारण इंग्लैंड में एक अन्य संगठित वर्ग पैदा हुआ मजदूर वर्ग। कल–कारखानों में काम करने वाले इन श्रमिकों ने श्रमिक–संघों (Trade Unions) की स्थापना की। 1900 में ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने एक मजदूर–प्रतिनिधि समिति (Labour Representative Committee) का निर्माण किया जिसका उद्देश्य था संसद के निर्वाचन में मजदूरों के हितों के समर्थकों का समर्थन करना। इसी से श्रमिक दल का जन्म हुआ। प्रथम विश्व–युद्ध, तक इस दल का कोई महत्त्व नहीं रहा। प्राय: दल के सदस्य उदार दल का समर्थन

नोट

करते थे। लेकिन युद्ध के बाद उदार दल की शक्ति क्षीण होने लगी और मजदूर दल उसका स्थान लेने लगा। प्रथम बार 1923 ई. में इस दल ने सरकार बनायी। फिर 1929 ई. और 1945 ई. में यह सत्तारूढ़ हुआ। इस प्रकार उदार दल करीब-करीब समाप्त हो गया और दो राजनीतिक दल अखाड़े में रह गये–अनुदार दल और मजदूर दल।

1982 में मजदूर दल के कुछ उग्रवादी नेताओं ने दल से अलग होकर एक नये दल **सामाजिक लोकतांत्रिक दल** (Social Democratic Party) की नींव डाली जिसने 1983 के चुनाव में उदार दल से गठबन्धन कर चुनाव में भाग लिया और सात स्थानों पर विजयी हुआ।

जून, 1983 का लोकसभा चुनाव–यह चुनाव ग्रेट ब्रिटेन में बींसवीं सदी की महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटना है। 1900 ई. में सैलिसबरी चुनाव जीतकर लगातार दो बार प्रधानमंत्री हुआ। इसी प्रकार 1983 में **श्रीमती थैचर** चुनाव जीतकर लगातार दो बार प्रधानमंत्री बनी। इसके पूर्व केवल एक बार सत्तारूढ़ दल विरोधी दल से 146 स्थानों से' आगे रहा है। इस बार यह 145 स्थानों से आगे रहा। द्वितीय महायुद्ध के बाद की यह "सबसे बड़ी चुनावी विजय" (Biggest poll Victory) थी।

चुनाव-दंगल में तीन प्रतिद्वन्द्वी मुख्य थे–अनुदार दल, मजदूर दल और उदार-सामाजिक लोकतांत्रिक दल गठबन्धन (Libral Social Democratic Party Alliance)। मतदान के केन्द्रीय व्यक्तित्व थे–**मार्गरेट थैचर** और **माइकेल फूट**। चुनाव "थैचरवाद बनाम समाजवाद" के बीच था। लोकप्रिय मुख्य नारा था–"मैगी को वोट दो" (Vote for Maggie)। थैचर ने ऐन मौके का इस्तेमाल कर समय से एक वर्ष पूर्व ही चुनाव करा दिया। उसका प्रचार वर्षों का कार्यकाल बहुत उत्साहवर्द्धक नहीं रहा था। देश की आर्थिक हालत में गिरावट आयी थी। बेकारी पश्चिमी देशों में सबसे अधिक ब्रिटेन में बढ़ी थी। औद्योगिक उत्पादन 10 प्रतिशत घट गया था। टैक्स और सरकारी खर्च में कमी नहीं आयी थी। यों मुद्रास्फीति (inflation) की दर 4.6 प्रतिशत तक नीचे गयी, लेकिन जनता की दिक्कतें काफी बढ़ गई थीं। घरेलू मामलों में थैचर ने ढीली-ढाली नीति अपना रखी थी। विदेशी मामलों में इंग्लैंड, अमेरिका का पिछलगुआ बन गया था। विचार-मतदान (Opinion Poll) में केवल 26% लोगों ने थैचर के पक्ष में मत दिया था। लेकिन अर्जेण्टाइना को हराकर फाकलैंड द्वीप पर कब्जा कर थैचर ने अद्वितीय साहस का काम किया और कठोर एवं शक्तिशाली व्यक्तित्व का परिचय दिया। जनता में उसकी लोकप्रियता बढ़ी। उसने सूझबूझ से काम लिया और मौका से फायदा उठाया। मध्यावधि चुनाव की घोषणा कर विरोधी पक्ष को उसने मात दे दी।

6 जून, 1983 के चुनाव में 42 करोड़ मतदाताओं में से 70 प्रतिशत मतदाताओं ने मतदान किया। अनुदार दल की अप्रत्याशित विजय हासिल हुई लोकसभा के 650 स्थानों में अनुदार दल को 397 स्थान, मजदूर दल को 209 स्थान और उदार-समाजवादी लोकतांत्रिक दल गठबन्धन को 21 स्थान प्राप्त हुए। अनुदार दल को कुल मतों के 43 प्रतिशत, मजदूर दल को 29 प्रतिशत और गठबन्ध को 26 प्रतिशत प्राप्त हुए। यों अनुदार दल के प्राप्त मतों में गिरावट हुई क्योंकि पिछले चुनाव में उसे क्रमश: 46 प्रतिशत और 44 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे। लेकिन मजदूर दल और गठबन्धन के बीच मतों के विभाजन के कारण उसे बहुत अधिक स्थान प्राप्त हुए। मजदूर दल को सबसे बड़ी चपत लगी। द्वितीय महायुद्ध के बाद इतनी दयनीय हालत उसकी कभी नहीं हुई थी। गठबन्धन दूसरे नम्बर पर आने की उम्मीद कर रहा था। लेकिन उसे भी निराशा ही हाथ लगी। प्राप्त मतों के अनुसार उसका स्थान तीसरा तो रहा ही, साथ-साथ उसे स्थान बहुत कम प्राप्त हुए और उसके अधिकांश नेता भी हार गये। इस स्थिति से निराश होकर उनके नेता **राय जेन्किन्स** (Roy Jenkins) और **डेविड स्टील** (David Steel) ने यह भय व्यक्त किया कि जनता में इससे क्षोभ और क्रोध बढ़ेगा। उन्होंने इसी संदर्भ में चुनाव-व्यवस्था में संशोधन लाने और आनुपातिक प्रतिनिधित्व (proportional representation) को अपनाने की माँग की। फिर भी 1920 के बाद उदार दल को पहली बार इतना अधिक मत मिला था। मजदूर दल के नेता माईकेल फूट (Micchcal Foot) ने इस चुनाव को एक 'दुखान्त घटना' (tragedy) की संज्ञा दी।

यह चुनाव राज्यवाद (Statism) और व्यक्तिवाद (Individualism) के बीच था। मजदूर दल ने लोगों को राज्य के नेतृत्व में सुनहरा भविष्य लाने का वादा किया जिसमें बेकारी और मँहगाई समाप्त हो जायगी। इसके लिए उसने एकतरफा आण्विक नि:शस्त्रीकरण (Uniateral nuclear disarmament) का वचन दिया क्योंकि ऐसा कर ही देश की आर्थिक हालत में सुधार लाया जा सकता था। जन सेवाओं की सुविधाओं और मजदूर संगठनों के दृढ़ीकरण पर जोर दिया जिस

नोट

दूसरी ओर दक्षिण पंथी अनुदार दल ने आर्थिक क्षेत्र में व्यक्ति की जिम्मेदारी पर जोर दिया जिसे अभी तक राज्य ने दबाया है। उसने बेकारी, मँहगाई आदि आर्थिक समस्याओं को चुनाव का मुद्दा नहीं बनाया क्योंकि परिवार और लघु-उद्योग जैसी छोटी इकाइयों को बढ़ावा देकर इन्हें आसानी से दूर किया जा सकता है।

पहली बार घरेलू नीति की अपेक्षा विदेशी नीति ने चुनाव के मुद्दे के रूप से अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। मजदूर दल ने एकतरफा आण्विक निःशस्त्रीकरण और नाटो (Nato) तथा आर्थिक यूरोपियन संघ (Economic European Community) से निकलने की घोषणा की। लेकिन थैचर ने वैदेशिक मामले के अन्तर्गत देश की सुरक्षा और फाकलैंड की जीत को मुख्य मुद्दा बनाया। फाकलैंड की जीत ने थैचर को एक कठोर शासन और दृढ़-प्रतिज्ञ नेता के रूप में प्रस्तुत किया। उसकी अप्रत्याशित जीत का यही कारण बना। अप्रत्याशित बेकारी और मंदी से विरोधी पक्ष को कुछ भी मदद नहीं मिली।

अनुदार दल की विजय का मुख्य कारण उसके नेता थैचर के व्यक्तित्व का एक 'दृढ़ संकल्प, कठोर और शक्तिशाली' शासक के रूप का निखार था, एक ऐसा व्यक्तित्व जो अपने संकल्पों को कृत रूप' (change thoughts into action) दे सकता था, देश की सुरक्षा की बागडोर को सम्भाल सकता था और जिसके पास देश की समस्याओं को सुलझाने की 'क्षमता' (Competence) थी। विरोधी पक्ष की हार का मुख्य कारण उनकी नकारात्मक छवि (negative image) थी, दूसरी ओर जबकि थैचर की सकारात्मक छवि उनके सामने थी। मजदूर दल से दो वर्ष पूर्व कुछ उग्रवादी नेताओं ने इस्तीफा देकर समाजवादी लोकतांत्रिक दल (S.D.P) की स्थापना की थी और उन्होंने उदारदल से गठबन्धन कर मजदूर दल के मतों को बाँट लिया। मजदूर दल यों भी अन्दरूनी मनमुटावों और लड़ाई-झगड़ों के कारण कमजोर पड़ गया था। फिर उसके नेता माइकेल फूट के 'नरम' (moderate) व्यक्तित्व ने उसे नेता-विहीन बना दिया था। जनता की नजर में फूट थैचर का विकल्प नहीं बन सके। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि अनुदार दल को अप्रत्याशित विजय मिली।

ब्रिटिश राजनीतिक दलों के उद्देश्य और संगठन (Aims and Organisation of British Political Parties)

ब्रिटिश राजनीतिक दलों के उद्देश्य तथा संगठन में भिन्नता है। इसकी वर्ग-प्रकृति से इनका उद्देश्य निर्धारित होता है। अनुदार दल धनिक वर्ग का प्रतिनिधि होने के कारण रूढ़िवादी, मजदूर दल श्रमिक वर्गों का रक्षक होने के कारण प्रगतिवादी तथा उदार दल मध्यम वर्ग का नेतृत्व करने के कारण सुधारवादी है। यह कहा जाता है कि यदि स्वतन्त्रता (Liberty), समानता (Equality) और भ्रातृत्व (Fraternity) का देशों के बीच वितरण किया जाय तो इंग्लैंड स्वतंत्रता का फ्रांस समानता का तथा अमेरिका भ्रातृत्व का हकदार होगा। पुनः यदि इन तत्त्वों को ब्रिटिश राजनीतिक दलों के बीच बाँटा जाय तो उदार दल को स्वतन्त्रता, अनुदार दल को भ्रातृत्व तथा श्रमिक दल को समानता प्राप्त होगी।

मजदूर एवं अनुदार दल के संगठन में कुछ सैद्धान्तिक भेद हैं। अनुदार दल में नेता सर्वशक्तिशाली होता है। औपचारिक रूप से किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं होता, एक बार नेता निर्वाचित हो जाने पर इच्छापर्यन्त नेता बने रह सकता है मन्त्रिमंडल का निर्माण स्वतन्त्र रूप से करता है, तथा नीतियों का निर्धारण वही करता है। इसके विपरीत मजदूर दल में नेता की अपेक्षा दल का महत्त्व अधिक होता है। दलीय सम्मेलन दल की नीति निर्धारित करता है तथा अधीनस्थ संगठनों को आदेश देता है। इसके अतिरिक्त दलों के संसदीय सार्वजनिक संगठनों के सम्बन्ध में भी भेद है। मजदूर दल के संसदीय संगठन को दल के सार्वजनिक संगठन के अधीन समझा जाता है जबकि अनुदार दल में सार्वजनिक संगठन को संसदीय संगठन के अधीन। परन्तु दोनों दलों में ये भेद केवल सैद्धांतिक हैं, व्यवहार में उनमें व्यापक समानता पायी जाती है।

(क) अनुदार दल के उद्देश्य (Objectives of Conservative Party): अनुदार दल रूढ़िवादी संगठन है। यह प्राचीन प्रथाओं तथा परम्पराओं का समर्थक है। बर्ट सौरीसन ने कहा भी है कि अनुदार दल के नाम से प्राचीन परम्पराओं और पूर्वभावियों (Traditions and precedents) का बोध होता है। यह दल चाहता है कि इंग्लैंड में सम्राट की सत्ता अक्षुण्ण बनी न रहे। राष्ट्रीय एकता रहे, चर्च का आधिपत्य रहे और व्यक्तिगत सम्पत्ति पर राज्य का अधिकर न रहे। इसलिए

नोट

राजतन्त्र आदि पुरानी 'संस्थाओं की आलोचनाओं का यह दल विरोध करता है और राजा को राज्य का प्रतीक बनाये रखने के पक्ष में है। यह दल पूर्ण राष्ट्रीयता का समर्थक है। पूँजीवाद, व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा प्राइवेट उद्योग-धन्धों का संरक्षण इस दल का उत्कृष्ट उद्देश्य है। लेकिन यह याद रखना चाहिए कि यह दल परम्परावादी भले ही है, प्रतिक्रियावादी कदापि नहीं। इसे प्रगति-विरोधी कहना गलत होगा। परिवर्तन तथा प्रगति का यह विरोध नहीं बल्कि यह सावधानी से और शनैः शनैः परिवर्तन चाहता है। **लार्ड सेसिल** के शब्दों में "अनुदार दल भी सुधारवादी है पर सावधानी के साथ।" यह दल सभी वर्गों के हितसाधन के लिए पूँजीवाद में परिवर्तन लाना चाहता है वह यह भी चाहता है कि प्रजातन्त्र की रक्षा हो और राज्य सामाजिक सेवाओं की विकास-वृद्धि की ओर अग्रसर होता रहे। औद्योगिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप के विरुद्ध वह दल नहीं बल्कि बेकारी को दूर करने के उद्देश्य से गृह-उद्योगों के संरक्षण को प्रोत्साहन देता है। इधर दल के युवक सदस्य श्रमिक दल को भी प्रगतिशील बनाने पर जोर देने लगे हैं। सन् 1947 ई. के औद्योगिक आज्ञापत्र (Industrial Charter) नामक लेख में केन्द्रीय नियोजन (Central Planning) की आवश्यकता को स्वीकार किया गया। सन् 1949 ई. में इस दल ने अपनी नीति निर्देशक पत्रिका "ब्रिटेन के लिए यही मार्ग" (The Right Road for British) में यह प्रतिज्ञा की कि देश में सभी को रोजगार मिलेगा और शासन लोक-कल्याणकारी सेवाओं की ओर अग्रसर होगा। 1955 ई. में चुनाव घोषणा-पत्र में इसने स्वतन्त्र उद्योग तथा स्वतन्त्र व्यापार पर जोर दिया। इस प्रकार यह दल एक प्रतिगामी संगठन नहीं रह गया है, बल्कि यह परम्परा तथा प्रगति का समन्वय करता है। इस दल के समर्थक मुख्यतः धनिक लोग हैं, लेकिन मध्यम वर्ग और श्रमिक वर्ग के लोगों से भी इनको समर्थन मिलता है। भूमि-समस्या में यह दल अधिक रुचि रखता है, इसलिए इसे देहाती दल (Rural Party) भी कहा जाता है।

दल का संगठन—दल संगठन को दो भागों में बाँटा जा सकता है—(क) संसदीय संगठन तथा (ख) सार्वजनिक संगठन।

(क) संसदीय संगठन—संसदीय संगठन के अन्तर्गत सर्वप्रथम दल के नेता (Leader) का स्थान आता है। अनुदार दल के नेता को अपार शक्ति प्राप्त है। वह दल की नीति का निर्धारण करता है, संसदीय पदाधिकारियों तथा मंत्रिमंडल के सदस्य को स्वयं चुनता है, संसद के बाहर दल के पदाधिकारियों को मनोनीत करता है और दल का केन्द्रीय कार्यालय उसके अधीन रहता है। अनुदार दल में नेता का कितना महत्त्व है और उसे कितना सम्मान दिया जाता है, इसका अनुमान 1947 में दल के प्रधान द्वारा कहे गये इन शब्दों से चलता है, "उसकी (नेता की) सत्ता स्वतन्त्र निर्वाचन व उसके समर्थकों के विश्वास पर आधारित है। राष्ट्रीय संगठन द्वारा पारित प्रस्ताव उसके पास सूचनार्थ व उसके मार्ग-दर्शन के लिए भेजे जाते हैं, परन्तु कोई भी प्रस्ताव चाहे कितना ही जोरदार क्यों न हो, नीति-सम्बन्धी प्रश्नों के विषय में उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता। यही हमारे लिए अनुकूल है। यही उन महापुरुषों की शृंखला के लिए अनुकूल रहा है जिनके नेतृत्व के चलने में हम गौरव का अनुभव कर रहे हैं। यद्यपि दल की नीति के निर्माण का उसे एकाधिकार प्राप्त है, परन्तु अन्य सदस्यों की इच्छाओं तथा विचारों की वह अवहेलना नहीं करता। एक बार नेता चुन लिए जाने पर इच्छापर्यन्त वह इस पद पर बना रहता है जब तक उसका स्वास्थ्य अथवा उसके विरुद्ध दलीय असंतोष उसे पदत्याग करने पर विवश न कर दे अथवा उसका देहान्त न हो जाय। जब अनुदार दल विरोधी दल के रूप में कार्य करता है तथा नेता छाया मंत्रिमंडल (Shadow Cabinet) का स्वेच्छा से निर्माण करता है। इसके अतिरिक्त वह एक कार्यसमिति (Executive Committee) की नियुक्ति करता है जिसके सदस्य संसदीय दल की व्यावसायिक समितियों के अध्यक्ष होते हैं। प्रत्येक सदन के दल में साधारण सदस्यों का एक संगठन होता है जिसे 1922 ई. का संगठन (1922 Committee) कहा जाता है। दल के सभी सदस्य इसके सदस्य होते हैं। इसकी साप्ताहिक बैठकों में व्यावसायिक समितियाँ रिपोर्ट प्रस्तुत करती हैं, सचेतक आगामी सप्ताह के कार्यक्रम की घोषणा करता है तथा दल एवं सरकारी नीतियों पर विचार किया जाता है। यहाँ संगठन प्रति वर्ष 1 अध्यक्ष, 2 उपाध्यक्ष, 2 सचिव तथा 1 कोषाध्यक्ष चुनता है। इसकी एक कार्यकारिणी समिति होती है जिसमें उपर्युक्त पदाधिकारियों के अतिरिक्त 12 अन्य सदस्य होते हैं। दल का एक सचेतक (whip) होता है जो सदस्यों को शासनबद्ध रखता है। लार्ड-सभा में इसकी महत्त्वहीन सांविधानिक स्थिति तथा अनुदार दल के अत्यधिक बहुमत के कारण दलीय संगठन महत्त्वहीन है। इस सदन में अनुदार सदस्यों का एक संगठन होता है जो स्वतन्त्र अनुदार लार्डस (Independent Unionist Peers) कहलाता है। इसकी कई समितियाँ होती हैं। सदन में दल का एक सचेतक (whip) होता है।

नोट

(ख) सार्वजनिक संगठन–अनुदारदल के सार्वजनिक संगठन के शिखर पर राष्ट्रीय संघ (The National Union of Conservative and Unionist Association) है। इसके प्रमुख कार्य निर्वाचन क्षेत्रों में दलीय संघों की स्थापना, दल के सभी संगठनों के बीच सम्पर्क स्थापित करना तथा दल के केन्द्रीय कार्यालय से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये रखना है। एक अध्यक्ष, एक सभापति, तीन उपसभापति तथा दो सचिव इसके पदाधिकारी होते हैं। राष्ट्रीय संघ का एक वार्षिक सम्मेलन होता है जिसमें केन्द्रीय परिषद के सदस्य निर्वाचन क्षेत्रीय संघों के प्रतिनिधि तथा प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्रीय संघ और केन्द्रीय संघ के प्रामाणिक एजेंट तथा संस्थापक भाग लेते हैं। सम्मेलन केन्द्रीय परिषद के प्रतिवेदन तथा प्रस्तावों पर विचार करता है। राष्ट्रीय संघ की एक प्रबन्धक समिति होती है जिसे केन्द्रीय परिषद (Central Council) कहते हैं। यह वार्षिक सम्मेलन का संक्षिप्त रूप है। इसकी सदस्यता लगभग 2000 है। इसकी बैठक वर्ष में एक बार होती है, पर विशेष बैठक भी बुलाई जा सकती है। यह राष्ट्रीय संघ के पदाधिकारियों को चुनती है, कार्यकारिणी समिति के प्रतिवेदन पर विचार करती है तथा राष्ट्रीय संघ के नियमों में संशोधन लाती है। राष्ट्रीय संघ कार्यकारिणी समिति (Executive Committee) होती है जिसकी सदस्य संख्या लगभग 150 होती है। दल के संसदीय तथा सार्वजनिक संगठनों के प्रमुख पदाधिकारी या प्रतिनिधि इसके सदस्य होते हैं। इसके प्रमुख कार्य हैं–राष्ट्रीय संघ के पदाधिकारियों के चुनाव के लिए नामों का सुझाव देना, किसी निर्वाचन-क्षेत्रीय संघ की कार्यकारिणी परिषद द्वारा प्रेरित किसी मतभेद अथवा विवाद का निर्णय करना, आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रीय परामर्शदाता समितियों की स्थापना करना, परामर्शदाता समितियों के प्रतिवेदन पर विचार करना, वार्षिक सम्मेलन तथा केन्द्रीय परिषद को अपनी कार्यवाहियों पर रिपोर्ट देना और केन्द्रीय-परिषद की बैठकों के अन्तर्काल में उसके कार्यों को सम्पन्न करना। सामान्य उद्देश्य समिति (General Purposes Committee) एक छोटा निकाय है जिसमें 57 सदस्य होते हैं। यह कार्यकारिणी समिति को दिये गये अधिकारों को छोड़कर राष्ट्रीय संघ के सर्व-साधारण तथा असाधारण कार्यों को सम्पन्न करती। कार्यकारिणी समिति को परामर्श देने के लिए 8 मुख्य राष्ट्रीय परामर्शदाता समितियों (National advisory Committee) का निर्माण किया गया है जो विभिन्न विषयों से सम्बन्धित हैं, जैसे–राजनीतिक शिक्षा, महिला दल के युवक सदस्य, श्रमिक संघ, स्थानीय प्रशासन, प्रचार तथा प्रवक्ता, अनुदार अध्यापकों के संघ तथा विश्वविद्यालयों में दलीय सदस्यों के संघ। कार्यकारिणी समिति आवश्यकता पड़ने पर इस प्रकार की अन्य समितियों की स्थापना कर सकती है।

इंग्लैंड तथा वेल्स को दलीय संगठन के हेतु 12 प्रान्तों (Areas) में बाँट दिया गया है। प्रत्येक प्रांतीय संगठनों का प्रधान होता है। प्रधान के अतिरिक्त, अध्यक्ष, कुछ उपप्रधान, कोषाध्यक्ष तथा 2 सचिव इसके पदाधिकारी होते हैं। इसकी केन्द्रीय परिषद को प्रान्तीय परिषद (Area Council) कहते हैं जो निर्वाचन क्षेत्रों तथा सदस्यों के प्रस्तावों पर विचार करती है। प्रान्तीय परिषद की बैठकों के अन्तर्काल में इसकी कार्य-समिति कार्य करती है। समिति कुछ परामर्शदाता समितियों की स्थापना करती है।

सार्वजनिक संगठन की आधारभूत इकाई निर्वाचन क्षेत्रीय संघ (Constituency Association) है। प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र के लिए दल के सदस्यों का एक संगठन होता है। प्रत्येक संघ में एक अध्यक्ष, एक प्रधान तथा तीन उपप्रधान होते हैं। संघ की एक वार्षिक बैठक होती है। इसकी कार्यकारिणी समिति होती है जिसका अध्यक्ष क्षेत्रीय प्रधान तथा सचिव क्षेत्रीय एजेंट होता है। निर्वाचन क्षेत्रीय संघ का उद्देश्य अपने क्षेत्र में दल के समर्थकों, सिद्धांतों तथा सदस्यों का विकास करना है। दलीय संगठन के लिए प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र को वार्डों में विभाजित कर दिया जाता है और प्रत्येक वार्ड को ब्लॉको में जो कुछ घरों का समूह होता है। दल में युवकों तथा बालकों के पृथक संगठन हैं।

दल का एक केन्द्रीय कार्यालय होता है। यह दल के नेता के प्रति उत्तरदायी होता है। कार्यालय को चलाने के लिए एक प्रधान संचालक होता है। कार्यालय के 6 विभाग हैं। इसके अन्य संगठन हैं–अनुदार राजनीतिक केन्द्र तथा अनुदार अनुसंधान विभाग। केन्द्रीय कार्यालय की भाँति प्रांत में भी एक प्रांतीय कार्यालय होता है जो केन्द्रीय कार्यालय के एक एजेंट के अधीन होता है।

(ख) उदार दल के उद्देश्य (Objectives of Liberal Party): उदार दल आज एक मृतप्राय संगठन है। उन्नीसवीं सदी में राष्ट्र के राजनीतिक जीवन पर उसका प्रबल प्रभाव था। इस दल के संविधान की प्रस्तावना में कहा गया

नोट

है कि "उदार दल का उद्देश्य एक ऐसे स्वतन्त्र एकतापूर्ण समाज की रचना करना है जिसमें प्रत्येक नागरिक को स्वतन्त्रता, सम्पत्ति और सुरक्षा प्राप्त हो तथा कोई भी दरिद्रता, अज्ञानता अथवा बेरोजगारी का दास नहीं होगा।"

औपचारिक रूप से दल का गठन 19वीं शताब्दी में हुआ। लेकिन, जैसा कि उदारवादियों का कहना है, इस दल का अस्तित्व गृह-युद्ध और स्वर्णिम क्रांति के समय से चलता आ रहा है और यह ह्विग (Whigs) का उत्तराधिकारी है। इसके इतिहास के बारे में **बेली** का कहना है कि "विगत तीन शताब्दियों में ह्विग दल अथवा उदारवादी दल कई पहलुओं से गुजर चुका है। कभी यह धनिकों का दल रहा है तो कभी यह दल दलितों का संरक्षक रहा है; कभी इसने शांति का दल और कभी कठोर प्रतिकार करने वाले दल का रूप धारण किया है, कभी आर्थिक नियोजन का पक्षपोषण रहा है, कभी यह साम्राज्यवाद का दल रहा है, तो कभी इसने केवल छोटे से इंग्लैंड का समर्थन किया है। साधारणत: सहिष्णुता समर्थक रहा है, परन्तु कुछ अवधि बड़ी विकट असहिष्णुता की भी रही है।"

लेकिन आज उसकी शक्ति क्षीण हो गयी है और मजदूर दल ने उसका स्थान ले लिया है। वास्तव में, उदार दल सैनिक अफसरों की एक फौज है जिसमें पर्याप्त सैनिकों का अभाव है। वर्तमान राजनीतिक प्रवृत्ति से यह आशा की जाती है कि निकट भविष्य में इंग्लैंड के राजनीतिक क्षेत्र से यह दल पूर्णत: बहिष्कृत हो जायगा। इस दल के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(*i*) उदार दल हर क्षेत्र में स्वतन्त्रता का पोषक है। धार्मिक तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता का इसने सदैव समर्थन किया है। व्यापक मताधिकार तथा लोकप्रिय संप्रभुता के लिए इसने संघर्ष किया है।

(*ii*) इस दल ने सदैव शासन की ओर से प्रतिबन्ध लगाने का विरोध किया है और यथेच्छाचारिता नीति (Laissez faire) का समर्थन किया है।

(*iii*) उदारवादी समाजवाद का विरोध करते हैं और पूँजीवाद में पर्याप्त सुधार लाना चाहते हैं।

(*iv*) यद्यपि वे समाजवादी नहीं हैं, फिर भी दो मार्गों से वे समाजवाद की स्थापना का प्रयत्न करते हैं। प्रथम, जिन उद्योगों को राज्य अपने हाथ में ले सकता है, उनका वे समाजीकरण चाहते हैं; द्वितीय, वे सामाजिक सहयोग के सिद्धांत को अपनाते हैं।

(*v*) पूँजीवाद में सुधार लाने के लिए वे सम्पत्ति के विस्तार (Diffusion) के पक्षपाती हैं, अर्थात् वे चाहते हैं कि सभी उद्योगों में श्रमिकों को लाभ में हिस्सा मिले। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे उद्योगों का प्रजातन्त्रीकरण चाहते हैं।

(*vi*) उदारवादी न तो पूर्णत: स्वतन्त्र उद्योग-धंधों वाले राज्य में विश्वास रखते हैं और न पूर्ण समाजीकृत राज्य में। बल्कि वे, एक मिली-जुली व्यवस्था स्थापित रखना चाहते हैं जिसमें दोनों निहित हों।

(*vii*) उदारवादी साम्राज्यवाद के विरोधी हैं तथा नरमवादी वैदेशिक नीति में विश्वास करते हैं।

संगठन–उदारवादी दल के संगठन के बारे में कहा जाता है कि यह सेनानायकों का एक ऐसा दल है जिसमें पर्याप्त सैनिकों का अभाव है। शुरू में इसमें कई वर्गों के सदस्य थे जैसे पेशेवर व्यापारी मध्यम वर्ग के नागरिक, छोटे-छोटे दुकानदार कुछ धनिक कृषक, नगर के श्रमिक आदि। लेकिन आज इसे न तो बहुसंख्यक कुलीन वर्ग का समर्थन प्राप्त है और न श्रमिक वर्ग का ही। चूँकि इसने पूँजीवाद और समाजवाद के बीच का मार्ग अपना रखा है इसलिए यह धनिक और श्रमिक दोनों में से किसी को भी अपने पक्ष में कर सकने में असमर्थ है। आज लोक-सभा में इस दल की स्थिति नगण्य हो गयी है। 1966 के चुनाव में उसे केवल 12 स्थान प्राप्त हुए थे। दलीय संगठन का जहाँ तक प्रश्न है; उदारवादी दल का एक राष्ट्रीय संगठन है जिसे राष्ट्रीय उदारवादी संघ (National Liberal Federation) कहते हैं। इस संगठन की प्रतिवर्ष एक बैठक होती है। जिसे उदारवादी वार्षिक सम्मेलन (Liberal Annual Assembly) कहा जाता है। यह सम्मेलन दल (Liberal RDP Alliance) के रूप में चुनाव लड़कर उसने 26 प्रतिशत मत प्राप्त किया और 21 स्थानों पर विजय प्राप्त की।

नोट

(ग) मजदूर दल (The Labour Party): मजदूर दल इंग्लैंड में सर्वहारा वर्ग के आन्दोलन का राजनीतिक मूर्तस्वरूप है। यह औद्योगिक क्रान्ति का फल है तथा बीसवीं शताब्दी की जात है। इसकी स्थापना 1900 ई. में हुई और 1922 ई. के सामान्य-निर्वाचन के पश्चात् देश का सबसे बड़ा द्वितीय दल माना जाने लगा है। इस दल के उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

(*i*) यह एक समाजवादी दल है जिसका ध्येय है कि "उत्पादन के समस्त साधनों पर सर्वसाधारण का आधिपत्य होना चाहिए तथा प्रत्येक सेवा का नियन्त्रण और लोकप्रिय शासन अच्छी प्रणाली द्वारा होना चाहिए।"

(*ii*) श्रमिक दल सामाजिक समानता (Social Equality) का प्रबल समर्थक है। वह समाज में समता तथा एकता पैदा करना चाहता है। यह समान शिक्षा, समान सम्पत्ति तथा समान राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक सुअवसर का पक्षपाती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह पूँजीवादी ढाँचे को बदलना चाहता है तथा प्रजातन्त्रात्मक उपकरणों का सहारा लेता है।

(*iii*) मजदूरों की तरह कृषकों की स्थिति में भी दल सुधार चाहता है।

(*iv*) श्रमिक दल संसदीय प्रणाली से शान्तिपूर्वक शनै-शनै: वर्तमान सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन लाने की कामना करता है। यह शासनारूढ़ होकर राष्ट्र की कार्य व्यवस्था पर पूर्ण प्रभाव डालना चाहता है। इसके लिए वृहत तथा महत्त्वपूर्ण उद्योगों का राष्ट्रीयकरण पक्षधर है और शासन को आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप कर एकाधिकार तथा बेकारी को दूर करने की बात भी करता है।

(*v*) अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में यह दल साम्राज्यवाद का विरोधी तथा उपनिवेशों को स्वशासन देने के पक्ष में है इस दल का अन्तिम उद्देश्य है, संसार में विश्व समाजवादी सरकार (Socialist Commonwealth) की स्थापना करना। तत्काल यह दल अन्तर्राष्ट्रीय संगठन; जैसे–संयुक्त राष्ट्रसंघ (Union of Nations) तथा उसके सहयोगी अंग को सुदृढ़ बनाना चाहता है। यह आण्विक बमों की परीक्षा (Test) का विरोधी है।

मजदूर दल के संविधान के अनुसार उसका उद्देश्य "हाथ और मस्तिष्क के कार्य करने वाले श्रमिकों को व्यवसायों से पूरा लाभ दिलाना जहाँ तक संभव हो सके उत्पादन, वितरण व विनिमय के साधनों की साझेदारी के आधार पर उसका अधिक-से-अधिक औचित्यपूर्ण वितरण करना तथा प्रत्येक व्यवहार की सेवाओं में सम्भवत: अच्छा से अच्छा लोकप्रिय प्रशासन व नियन्त्रण की व्यवस्था करना है।"

दल का संगठन–मजदूर दल के संगठन को भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–संसदीय संगठन तथा सार्वजनिक संगठन।

संसदीय संगठन–संसद में मजदूर दल के नेता की स्थिति अनुदार दल के नेता की स्थिति से कुछ भिन्न है। यद्यपि नेता को ही नीति निर्धारण का अधिकार है, परन्तु उसे दलीय सम्मेलन तथा कार्य समिति के निर्देशन में कार्य करना पड़ता है। 1947 में इटली की कार्यकारिणी समिति के प्रधान **लॉस्की** ने लिखा था, सरकार की ओर से बोलने का आपको कोई अधिकार नहीं है।" वस्तुत: देखने में यह आता है कि जब मजदूर दल सत्तारूढ़ रहता है तब नेता की स्थिति मजबूत रहती है। जिस समय दल विरोध पक्ष में रहता है उस समय नेता की स्थिति कुछ दुर्बल रहती है। नेता की स्थिति जो हो यह स्पष्ट है कि अपने पद के लिए संसद में तथा उसके बाहर अपने अनुयायियों के विश्वास तथा समर्थन पर निर्भर रहता है।

लोक-सभा तथा लार्ड-सभा में मजदूर दल के सदस्यों के समूह को **संसदीय मजदूर दल** (Parlimentary Labour Party) कहते हैं। विरोध पक्ष में रहने पर संसदीय दल प्रतिवर्ष अपना नेता उपनेता तथा मुख्य सचेतक चुनता है। प्रतिपक्ष में रहने पर यह एक कार्य समिति का संगठन करता है। जिसके सदस्य संसदीय दल का प्रधान, उप-प्रधान, मुख्य सचेतक, उच्च सदन में दल का मुख्य सचेतक तथा प्रधान और लोक-सभा के 12 सदस्य तथा एक श्रमिक लार्ड होते हैं। प्रति सप्ताह इसकी बैठक होती है। संसदीय दल कुल संसदीय **विषय समितियों** की भी स्थापना करता है। विशेष महत्त्व के विधेयकों को अध्ययन करने के लिए विशेष समितियों की स्थापना की जाती है। इसके अतिरिक्त प्रदेशों से सम्बन्धित मामलों पर विचार करने के लिए **प्रादेशिक समितियाँ** तथा मजदूर संघों से सम्बन्धित मामलों

नोट

पर विचार करने के लिए मजदूर के संघों के **प्रतिनिधियों का समूह** (Trade Union Group M. Ps.) होता है। इसके अलावा कुछ अनौपचारिक समूह (Informal groups) भी संसदीय दल में होते हैं; जैसे–'श्रमिक संघीय समूह' तथा 'बामपक्षीय समूह'।

सार्वजनिक संगठन–मजदूर दल की सदस्यता के दो आधार हैं–व्यक्तिगत तथा संघातरित (Affilatied)। 16 वर्ष से अधिक अवस्था के व्यक्ति दल के सदस्य बन सकते हैं। संघातरित सदस्यों में श्रमिक संघ, सहकारी समितियाँ, समाजवादी समूह, व्यवसायी संगठन आदि। दल के शिखर पर **दलीय सम्मेलन** होता है जो दल के कार्य का निर्देशन एवं नियंत्रण करता है। इसकी बैठक वर्ष में एक बार होती है। वास्तव में यह दल का विधानमंडल है। संसदीय दल इसके अधीनस्थ हैं दल की कार्यकारिणी समिति तथा संसदीय दल सम्मेलन के समक्ष अपनी वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं, जिन पर सम्मेलन विचार-विमर्श करता है। दल की एक कार्यकारिणी समिति (National Executive Committee) होती है जो दलीय सम्मेलन के नियंत्रण और निर्देशन में दल का प्रशासन करती है। हर्बर्ट मोरिसन इस समिति की सेविका है परन्तु सम्मेलन का नेतृत्व करना तथा उसे किस दिशा में चलना चाहिए, इस दिशा में उसे परामर्श देना समिति का कर्तव्य है।" साधारणतया सम्मेलन द्वारा कार्यकारिणी समिति के निर्माण एवं प्रस्तावों का अनुमोदन होता रहा है। समिति कि कुल 28 सदस्य होते हैं। प्रति माह इसकी कम से कम एक बैठक होती है समिति अपने कार्यों को पाँच **उपसमितियों** की सहायता से करती हैं जो अलग-अलग विषयों से सम्बन्धित है। जैसे–संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राष्ट्रमण्डल, नीति तथा प्रचार, और वित्त तथा सामान्य उद्देश्य। इसके अतिरिक्त एक अन्य उपसमिति का निर्माण किया गया है जिसे निर्वाचन सम्बन्धी उपसमिति कहते हैं।

प्रान्तीय संगठन हेतु इंग्लैंड को 9 क्षेत्रों में विभाजित किया गया। प्रत्येक क्षेत्र तथा **वेल्स, स्काटलैंड और उत्तरी आयरलैंड** के लिए एक-एक क्षेत्रीय परिषद् का संगठन किया गया है। प्रान्तों के अन्तर्गत सभी क्षेत्रीय संगठन तथा दल के संघातरित सदस्य इसके सदस्य होते हैं। इसकी बैठक वर्ष में एक बार होती है। यह इस बैठक में अपनी कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करती है। प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में दल का एक संगठन होता है जिसको क्षेत्रीयसंघ कहते हैं। प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र को वार्डों में बाँटा जाता है। प्रत्येक वार्ड में एक समिति होती है। निर्वाचन क्षेत्र वार्ड संगठन संघातरित समुदायी का संघ होता है जो सबसे निम्न स्तर पर दलीय संगठन की एक प्रबन्धक समिति होती है जो किसी भी व्यक्ति को दल अथवा संगठन से निकाल सकती है। प्रबन्धक समिति एक कार्यकारिणी समिति का चुनाव करती है। इसकी बैठक प्रतिमाह होती है। यह कुछ उपसमितियों का संगठन करती है। प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में युवक संघ की स्थापना की जाती है।

मजदूर दल के केन्द्रीय कार्यालय ट्रांसपोर्ट हाउस (Transport House) कहा जाता है। यह राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति के अधीन होता है। इसमें 77 विभाग होते हैं। यह एक सचिव के निर्देशन में कार्य करता है।

साम्यवादी दल (Communist Party)–अनुदार, उदार तथा मजदूर दलों की अपेक्षा इंग्लैंड में साम्यवादी दल भी है। लेकिन अस्तित्व नगण्य है। इसकी सदस्य-संख्या सिर्फ 40 हजार है। 1950 ई. के चुनाव में 90 हजार मत मिले और अभी तक संसद में सिर्फ चार साम्यवादी सदस्य हुए हैं। इसकी नीति फ्रेंच साम्यवादी दल से मिलती-जुलती है। मार्क्स इसका दार्शनिक है और क्रेमलिन इसका निर्देशक। यह जनतन्त्र में विश्वास नहीं करता। यह वर्ग-युद्ध तथा श्रमजीवियों के अधिनायकत्व (Dictatorship of the Proletariat) का समर्थक है। इसने श्रमिक संघों में घुसने की कोशिश की है। लेकिन मजदूर दल के कारण इसे असफलता ही हाथ लगी है। फ्रांस और इटली साम्यवादियों के समान इसे विनष्टकारी तरीकों को अपनाने का अवसर कभी नहीं मिल सका।

अमेरिका में राजनीतिक दल (Political Parties in America)

अमेरिका में राजनीतिक दलों का उद्भव और विकास (Rise and Development of Political Parties in the U.S.A.): गैर सांविधानिक स्थिति–प्रजातन्त्र के अन्तर्गत शासन-व्यवस्था के दो स्रोत होते हैं–सांविधानिक (constitutional) तथा गैर सांविधानिक (Extra-Constitutional)। शासन के सफल संचालन में दोनों पहलुओं का समान महत्व है। दोनों अभिन्न हैं तथा दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। यदि संविधान शासन को ढाँचा प्रदान करता

नोट

है तो गैर-सांविधानिक अंग मांस और रक्त प्रदान कर उसे गतिशील एवं कार्यकारी बनाते हैं। राजनीतिक दल शासन के गैर सांविधानिक पहलू के आदर्श उदाहरण हैं और प्रजातन्त्र के लिए राजनीतिक दल अवश्यम्भावी हैं, जीवनदायिनी शक्ति हैं। लेकिन उन्हें सांविधानिक मान्यता प्रदान नहीं की जाती है, जबकि तानाशाही राज्यों में उन्हें कानूनी स्थिति दी जाती है। फिर भी संविधान के परे उनकी पैदाइश हो जाती है; मनुष्य की प्रकृति तथा आवश्यकता राजनीतिक दल के विकास को अनिवार्य बना देती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी राजनीतिक दलों की संविधान-निर्माताओं ने अपेक्षा की; यहाँ तक कि उन्होंने इनका खुलेआम विरोध किया। लेकिन आशा सफलीभूत न हो सकी। "उन्होंने जिस शिला को अस्वीकार कर दिया था, वही शिला शासन-पद्धति का प्रमुख कोना बन गयी।" आज राजनीतिक दल अमेरिका के जीवन के अभिन्न अंग बन गये हैं; वे सांविधानिक संस्थाओं को आकार-प्रकार एवं संजीवता प्रदान करते हैं।

संविधान-निर्माताओं का दृष्टिकोण–अमरीकी संविधान के निर्माता दल-व्यवस्था में विश्वास नहीं करते थे। वे दलों को शंका की दृष्टि से देखते थे। इतना ही नहीं, वे ऐसी शासन व्यवस्था का निर्माण करना चाहते थे जो राजनीतिक दलों की गुटबन्दियों से परे हो। उनका विश्वास था कि राजनीतिक दलबन्दी से राष्ट्रीय एकता को आघात पहुँचता है, क्योंकि राजनीतिक दल कलह, फूट, छल-कपट इत्यादि बुरी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करते हैं। उन्हें भय था कि दलीय भावना के विकास से उनके नवजात प्रजातन्त्र का अस्तित्व विपत्तिग्रस्त हो जाएगा। **मेडिसन** ने दलबन्दी की भर्त्सना करते हुए कहा था कि "एक संगठित संघ में दलवाद को तोड़ने और उसे नियंत्रित करने की अपने-आप एक प्रवृत्ति होती है और इस प्रवृत्ति का अधिकाधिक विकास होना चाहिए।" **वाशिंगटन** भी राजनीतिक दलों का प्रबल विरोधी था। उसने अपने विदाई-भाषण (Farewell Address) में अमरीकी जनता को "दल-भावना के विनष्टकारी प्रभाव" (The baleful effects of the spirit of party) के विरुद्ध चेतावनी दी और उसे दबाने के लिए "एकरूप जागरण" (Uniform, Vigilance) का नारा दिया। उसने कहा था–"दलगत विद्वेष में सभी के लिए बुराई और हानि छिपी हुई है। अत: प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति का यह सहज कर्तव्य है कि वह ऐसी भावनाओं का दमन करे और उनसे बचे। दलगत विद्वेष से लोकप्रिय संस्थाएँ क्षीण होती हैं और प्रशासन में दुर्बलता आती हैं। यह (दलीय भावना) समाज को आधाररहित विद्वेष और झूठी आकांक्षाओं से उद्वेलित करती है, उसके एक भाग को दूसरे भाग के प्रति शत्रुता के लिए उभारती हैं एवं समय-समय पर विद्रोह और दंगे का कारण बनती है।"

फेडरलिस्ट और एण्टी फेडरलिस्ट–यद्यपि फिलाडेल्फिया सम्मेलन के प्रतिनिधिगण राजनीतिक दलों के प्रबल विरोधी थे, फिर भी सम्मेलन में दलों का अंकुर फूट चुका था। प्रतिनिधिगण दलीय आधार पर विभाजित होने लगे थे, भले ही उन्होंने कभी ऐसा अनुभव नहीं किया। सम्मेलन में प्रतिनिधिगण दो गुटों में विभाजित थे–संघवादी और संघ-विरोधी (Federalist and Anti-Pederalist)। संघवादी संघ-सरकार को शक्तिशाली बनाना चाहते थे और राज्यों को अधीनस्थ इकाइयाँ। इसके विपरीत संघ-विरोधी राज्य-सरकारों को शक्तिशाली बनाने के पक्ष में थे। संविधान के अनुसमर्थन के समय भी ये गुट बने रहे। संघवादी गुट ने राज्य सम्मेलनों में संविधान का समर्थन किया जबकि संघ-विरोधी गुट ने विरोध। लेकिन संविधान अनुसमर्थन के साथ संघ विरोधी गुट सदा के लिए समाप्त हो गया।

रिपब्लिकन्स का आगमन–वाशिंगटन के दोनों गुटों ने मतभेद को दूर करने का प्रयत्न किया। मन्त्रिमंडल में दोनों गुटों के नेताओं-**जेफर्सन** और **हेमिल्टन** को उसने स्थान दिया; लेकिन वस्तुत: शासन पर संघवादी का ही नियन्त्रण रहा। प्रारम्भ में जनता ने एक स्वर से सरकार का समर्थन किया, लेकिन धनी-वर्ग के पक्ष में हेमिल्टन के व्यवहार से विरोधियों का एक ऐसा वर्ग खड़ा हुआ जो जेफर्सन के नेतृत्व में संगठित हुए थे। ये रिपब्लिकन (Republican) कहलाने लगे। वाशिंगटन के पश्चात् ऐडम्स (Adams) के राष्ट्रपति-काल में संघवादी गुट में फूट हो गयी तथा 1798 ई. में **एलियन और सेडिसन ऐक्ट** (Alien and Sedition Act) ने उन्हें अलोकप्रिय बना दिया। फलस्वरूप 1800 ई. के निर्वाचन में संघवादी गुट को मुँह की खानी पड़ी और जेफर्सन के नेतृत्व में रिपब्लिकन गुट ने विजय प्राप्त की।

रिपब्लिकन गुट की सर्वोच्चता–रिपब्लिकन गुट नागरिकों के प्राकृतिक अधिकार पर जोर देता था जबकि संघवादी

नोट

गुट स्वतन्त्रता की अपेक्षा व्यवस्था पर। जेफर्सन के बाद **मेडिसन तथा मुनरो** राष्ट्रपति निर्वाचित हुए जो रिपब्लिकन थे। 1824 ई. तक इसी गुट का शासन रहा। संघवादी गुट धीरे-धीरे समाप्त होने लगा, यहाँ तक कि 1820 में उसने अपना प्रत्याशी राष्ट्रपति पद के लिए खड़ा भी नहीं किया। इस तरह यह दल सदा के लिए समाप्त हो गया। 1800 से 1824 ई तक के काल का किसी प्रकार की गुटबन्दी के अभाव के कारण **इतिहासज्ञों** ने 'उत्तम भावनाओं का सुनहला दिन' (Golden Age of Good Feelings) कहा है।

वर्तमान रिपब्लिकन और डेमोक्रेटिक दल का जन्म–कोई भी दल न तो सदा के लिए सत्तारूढ़ ही रह सकता है और न उसकी एकता ही बनी रह सकती है। अत: रिपब्लिकन गुट भी दो भागों में विभाजित हो गया। **नेशनल रिपब्लिकन** (National Republicans), जिसे ह्विग (Whigs) भी कहते हैं और **डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन** (Democratic Republicans), जिसे सिर्फ **डेमोक्रेट** (Democrat) भी कहा जाता है। ह्विग अनुदार थे तथा डेमोक्रेट्स उदार। 1828 ई. में डेमोक्रेटिक दल सत्तारूढ़ हुआ। उसका नेता जैक्सन (Jackson) राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। 1840 तक डेमोक्रेटिक सत्तारूढ़ रहे। लेकिन दास-प्रथा के प्रश्न ने दोनों दलों को जड़ से हिला दिया। डेमोक्रेटिक दल की स्थिति दुर्बल हो गयी, फिर भी उसका अस्तित्व बना रहा। ह्विग दल का तो जड़ से नाश हो गया और उसके भग्नावशे पर वर्तमान रिपब्लिकन दल (Republican Party) का जन्म हुआ। इस प्रकार मौलिक रिपब्लिकन दल के अवशेष पर वर्तमान दोनों राजनीतिक दलों का उद्‌भव हुआ–रिपब्लिकन दल और डेमोक्रेटिक दल।

1860 के बाद विकास–1860 ई. में रिपब्लिकन दल के हाथ में शासन-सत्ता आई और लिंकन राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। 1861 से 1885 ई. तक रिपब्लिकन दल शासन में आया। गृह-युद्ध के पश्चात् दोनों दलों में मुख्य अंतर आयात-निर्यात तथा सिक्का-सम्बन्धी नीति के सम्बन्ध में था। रिपब्लिकन दल उक्त आयात-निर्यात कर तथा संरक्षक नीति के पक्ष में था तथा डेमोक्रेटिक दल आयात-निर्यात कर को घटाने के पक्ष में था। आर्थिक नीति के अतिरिक्त दोनों दलों में कोई विशेष अन्तर नहीं था। अन्त में डेमोक्रेटिक दल ने थक कर इस प्रश्न को अपने प्लेटफॉर्म से हटा दिया।

1912 ई. में दलीय व्यवस्था में परिवर्तन आया। रिपब्लिकन दल में आन्तरिक विद्रोह हुआ। फलस्वरूप डेमोक्रेटिक प्रत्याशी विल्सन राष्ट्रपति नियुक्त हुआ। 19वीं शताब्दी का प्रश्न आयात-निर्यात विवाद का प्रश्न न रहा बल्कि संयुक्त-राज्य का युद्ध से सम्बद्ध प्रश्न मुख्य प्रश्न बन गया। विल्सन फिर से चुना गया; युद्ध समाप्त हो गया और राष्ट्रसंघ (Leage of Nations) के अनुसमर्थन का प्रश्न सिनेट के सामने आया। सिनेट ने इस सन्धि को अस्वीकार कर दिया। डेमोक्रेटिक दल अलोकप्रिय हो गया। फलत: 1920 ई. में उसकी करारी हार हुई और रिपब्लिकन दल विजयी हुआ; लेकिन इस दल के शासन-काल में आर्थिक संकट की समस्या पैदा हुई जिसे वह सुलझा नहीं सका। डेमोक्रेटिक दल ने नई नीति (New Deal) की घोषणा की जिसने जनता को आकर्षित किया। 1932 ई. में डेमोक्रेटिक दल का प्रत्याशी डॉ. रूजवेल्ट राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। इस दल ने द्वितीय विश्व-युद्ध का सामना किया। इस दल का शासन 20 वर्षों तक रहा। 1952 ई. में रिपब्लिकन दल पुन: प्रभुत्व में आया और आइसनहावर राष्ट्रपति पद पर आसीन हुआ। 1960 ई. तक इस दल का ह्वाइट हाउस पर अधिकार रहा। 1960 के दिसम्बर के निर्वाचन में रिपब्लिकन प्रत्याशी निक्सन को हराकर डेमोक्रेटिक प्रत्याशी केनेडी राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। अत: शासन पुन: डेमोक्रेटिक दल के हाथ में चला आया। 1964 ई. में कैनेडी पुन: राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। कार्य-काल पूरा करने के पहले ही कैनेडी की हत्या कर दी गयी। उप-राष्ट्रपति जॉनसन राष्ट्रपति के पद पर आसीन हुए। 1964 ई. के निर्वाचन में जॉनसन ने रिपब्लिकन प्रत्याशी गोल्डवाटर (Goldwater) को हराया। 1968 में निक्सन ने जो रिपब्लिकन दल के थे राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। पुन: 1977 में **मेकगवर्न** को हराकर निक्सन दूसरी बार राष्ट्रपति चुने गये। कालान्तर में निक्सन के त्याग-पत्र देने के बाद कार्टर राष्ट्रपति हुए। फिर रिपब्लिकन दल के जार्ज बुश राष्ट्रपति हुए। 1992 के चुनाव में डेमोक्रेट बिल क्लिंटन जार्ज बुश को हराकर राष्ट्रपति निर्वाचित हुए तत्पश्चात् जार्ज डब्ल्यू बुश तथा बराक ओबामा अमरीका के राष्ट्रपति बने। इस प्रकार गत सौ वर्षों में रिपब्लिकन और डेमोक्रेटिक दलों के बीच शासन का उलट-फेर होता रहा है।

राजनीतिक दलों का संगठन (Organization of Political Parties): संयुक्त-राज्य में दल-संगठन के दो स्पष्ट

नोट

भाग हैं, लेकिन दोनों भागों में पारम्परिक सम्बन्ध हैं–(क) स्थायी संगठन (Permanent Organization) जो पिरामिड के आकार-सा है। इसमें सतह से चोटी तक विभिन्न स्तरों पर दल -समितियाँ हैं, जैसे–स्थानीय, काउण्टी, राज्य तथा राष्ट्र की समितियाँ। (ख) सामयिक या अस्थायी संगठन (Periodic or Temporary Organization), जिसमें दल के प्राथमिक संगठन (Party Primaries) तथा सम्मेलन (Party Convention) उल्लेखनीय हैं। वे वर्ष में एक बार या उससे भी अधिक समय के अन्तर पर मिलते हैं और दल-संगठनों से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का निर्णय करते हैं।

(क) स्थायी संगठन (Permanent Organization)

(*i*) **स्थानीय संगठन–**उपक्षेत्रीय (Precinct) मतदान जिला दल का सबसे निम्न संगठन है। प्राय: 100 से 500 मतदाता एक क्षेत्र में रहते हैं। आज करीब 1,25,000 क्षेत्र संयुक्त-राज्य में हैं यह मतदान इकाई के दलीय संगठन का एक अध्यक्ष होता है जो मतदाताओं से सम्बन्ध कायम रखता है। विभागीय (उपक्षेत्रीय) संगठनों के ऊपर नगरों में वार्ड-समितियाँ (Ward Committees) और ग्राम-समितियाँ (Village Committees) होती हैं जो विभागीय संगठनों के कार्यों का समन्वय करती हैं। नगरों में वार्ड-समितियों के ऊपर नगर समितियाँ (City Committees) होती हैं जो वार्ड और विभागीय संगठनों को निर्देशित करती हैं।

(*ii*) **काउण्टी संगठन–**उपर्युक्त निम्न स्तरीय दल संगठनों के ऊपर काउण्टी-केन्द्रीय समितियाँ (County Central Committees) होती हैं। ये नीचे के संगठनों में समन्वय स्थापित करती हैं, काउण्टी सरकार से सम्बन्धित समस्याओं में हाथ बँटाती हैं तथा राज्य-केन्द्रीय समिति से सम्बन्ध स्थापित करती हैं। पूरे देश में लगभग 3,000 काउण्टियाँ हैं और प्रत्येक में दलों के निजी संगठन हैं।

(*iii*) **राज्य संगठन–**राज्यों में प्रत्येक दल की राज्य-केन्द्रीय समिति (State Central Committee) होती है। यह राज्य के अन्तर्गत समस्त दलीय यन्त्रों का निरीक्षण करती तथा राज्य के पदों के लिए चुनाव लड़ती है। राज्य-समिति के सदस्यों का निर्वाचन जिला या नगर-समितियों और कुछ राज्यों में प्राइमरी अथवा राज्य सम्मेलनों द्वारा होता है। प्रत्येक दल की 20 राज्य समितियाँ हैं।

राष्ट्रीय संगठन–प्रत्येक दल के स्थायी संगठन के शीर्ष पर राष्ट्रीय समिति (National Committee) होती है। इसमें प्रत्येक राज्य से दो प्रतिनिधि आते हैं–एक पुरुष तथा एक स्त्री। इनका निर्वाचन राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रतिनिधियों या राज्य सम्मेलनों द्वारा होता है। रिपब्लिकन राष्ट्रीय समिति का सदस्य तथा राज्य-समिति का अध्यक्ष भी होता है। राष्ट्रीय समिति मुख्यत: राष्ट्रपति-पद के लिए दल के प्रत्याशी द्वारा नामजद व्यक्ति को दल का अध्यक्ष नियुक्त करती, राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन करती तथा दल के पदाधिकारियों को चुनती है। इस समिति का एक अध्यक्ष होता है जिसकी समिति राष्ट्रपति पद का प्रत्याशी मनोनीत करती है। उसकी एक कार्यकारिणी समिति (Executive Committee) भी होती है। समिति स्वयं राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेती है, परन्तु सिनेट तथा प्रतिनिधि सभा के सदस्यों के निर्वाचन के लिए दो उप-समितियाँ नियुक्त करती हैं, जैसे–Senatorial Campaign Committee तथा Congressional Compaign Committee.

(ख) अस्थाई संगठन (Periodic Organization): दलों के कतिपय संगठन सिर्फ सामयिक होते हैं। उनका यह संगठन विशेष उद्देश्य के लिए होता है तथा उसकी पूर्ति के पश्चात् वे समाप्त हो जाते हैं। प्राय: प्रत्येक दो वर्ष पर दलों का राज्य-सम्मेलन (State Conventions) होता है जिसमें राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रतिनिधियों का निर्वाचन दल के राज्य घोषणा-पत्र की स्वीकृति आदि कार्य होते हैं। इसी तरह राष्ट्रीय स्तर पर भी चार वर्ष के पश्चात् प्रत्येक दल का राष्ट्रीय सम्मेलन होता है। इसके प्रतिनिधि राज्य और क्षेत्रीय सम्मेलनों और दल समितियों या कुछ राज्यों के राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए निर्मित प्राथमिक समितियों द्वारा चुने जाते हैं। राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रमुख कार्य राष्ट्रपति-पद के लिए उम्मीदवार चुनना है।

राजनीतिक दलों के कार्य (Functions of Political Parties): राजनीतिक दलों के अभाव में प्रजातांत्रिक सरकार असम्भव है। स्वतंत्र सरकार के लिए राजनैतिक दल अनिवार्य हैं। अमेरिका में भी राजनीतिक दल शासन के आधार पर बन गये हैं। वे अनेक महत्त्वपूर्ण काम करते हैं।

नोट

(*i*) **एकीकरण** (Integration) **की शक्ति**—राजनीतिक दल राष्ट्रीय एकता के साधन हैं, वे पूरे राष्ट्र को ध्यान में रखते हुए जनता के सामने अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। इसी कार्यक्रम को पूरा करने के लिए वे शासन के विभिन्न अंगों पर अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। प्राय: एक ही दल एक समय में शासन की विभिन्न शाखाओं पर नियंत्रण प्राप्त कर लेता है। सम्पूर्ण देश को एकता के सूत्र में बाँध देता है तथा एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे निर्देशित करता है। इसके अतिरिक्त संयुक्त राज्य में विभिन्न जातियों, धर्मों, संस्कृतियों एवं व्यवसायों के लोग निवास करते हैं। राजनीतिक दल उनमें एकता स्थापित करने में सीमेंट का काम करते हैं।

(*ii*) **शक्ति-पृथक्करण, संतुलन एवं अवरोध के सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप देना** (separation of powers)—अमेरिका में राजनीतिक दल शक्ति के पृथक्करण सिद्धान्त तथा अवरोध और संतुलन सिद्धांत को व्यावहारिक रूप देते हैं। अमेरिका में वैधिक रूप से शासन के विभिन्न अंगों को एक-दूसरे से अलग तथा स्वतंत्र बनाया गया है। साथ ही वे एक-दूसरे को नियंत्रित भी करते हैं। अगर इन सिद्धांतों को काफी दूर तक लागू किया जाय तो शासन टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। लेकिन राजनीतिक दल शासन को इस आपत्ति से बचाते हैं। शासन के अंगों पर अधिकार प्राप्त कर राजनीतिक दल उनके बीच सहयोग पैदा करते हैं। इसके अतिरिक्त शासन की सभी शाखाएँ प्राय: एक समय में एक राजनीतिक दल द्वारा उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करती हैं। अत: संतुलन और अवरोध की सांविधानिक जटिलता दूर हो जाती है तथा शासन सुगम रूप से चलता है। राजनीतिक दल ही व्यवस्थापिका और कार्यपालिका को जोड़ने की एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम करते हैं, जैसे—राष्ट्रपति अपने दल के माध्यम से विधेयकों को प्रभावित करता है।

(*iii*) **विभिन्न सम्भावनाओं तथा उम्मीदवारों की संख्या को कम करना**—प्रजातन्त्र को जीवित रखने के लिए विभिन्न विचारों तथा विरोधों में समन्वय (Co-ordination) आवश्यक है। राजनीतिक दल जनता के विभिन्न विचारों तथा हितों के बीच दूरी को कम करते हैं तथा उन्हें विस्तृत धारा के रूप में एक निश्चित स्वरूप प्रदान करते हैं तथा संघ और राज्य-सरकारों के सामने सम्भावनाओं की संख्याओं को घटा देते हैं। इसी प्रकार वे निर्वाचकों के सामने उम्मीदवारों की संख्या को भी कम करते हैं जिससे निर्वाचकों को भावी शासकों के चुनाव में सहूलियत होती है।

(*iv*) **राजनीतिक शिक्षा और चेतन का साधन**—अन्य प्रजातांत्रिक देशों की तरह अमेरिका में भी राजनीतिक दल जनता को राजनीतिक-शिक्षा देते हैं तथा मतदाताओं में राजनीतिक जागरूकता पैदा करते हैं। इस कार्य को दल प्रचार द्वारा करते हैं। अमेरिका में दल देशान्तर-वासियों के प्रकृतिकरण (Naturalization of Immigrants) का भी कार्य करते हैं।

(*v*) **उत्तरदायित्व का स्थानीयकरण**—राजनीतिक दलों का प्रमुख कार्य उत्तरदायित्व का स्थायीकरण (Localization of responsibility) है। इसका अर्थ यह होता है कि जो दल शासन में रहता है उसे शासन-सम्बन्धी किसी कार्य के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। कोई पदाधिकारी अपने दल के प्रति उत्तरदायी होता है। और वह दल जनता के प्रति। चूँकि किसी निश्चित दल को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, इसलिए वह दल सम्भवत: न्यायपूर्ण व्यवहार करने का प्रयत्न करता है। उत्तरदायित्व सिर्फ बहुमत दल का ही नहीं है बल्कि अल्पमत दल का भी है। विरोधी दल का कर्तव्य है कि वह शासन दल की रचनात्मक आलोचना करे।

(*vi*) **निर्वाचक मण्डल योजना को सफल बनाना**—संयुक्त-राज्य अमेरिका में राजनीतिक दल निर्वाचन-मण्डल की योजना (Electoral College Plan) को सफल बनाते हैं। अगर दल न रहे या अधिक दल रहे तो अधिकतर निर्वाचनों का निर्णय प्रतिनिधि-सभा को ही करना पड़ता है। लेकिन सिर्फ दो दलों के कारण किसी-न-किसी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो जाता है।

(*vii*) **संतुलन का साधन**—राजनीतिक दल प्रजातन्त्र में संतुलन (balance) का काम करते हैं। अमेरिका में द्वि-दलीय प्रथा के कारण राजनीतिक दलों का यह कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है। अगर सिर्फ एक दल रहे तो सोवियत रूस की तरह दलीय तानाशाही का भय है और यदि नागरिकों के अनेक राजनीतिक गुट हो जायँ तो शासन

नोट

के ध्वंश हो जाने का भय है। लेकिन अमरीकी जनता इन छोरों के बीच का रास्ता अपनाती है। द्वि-दलीय प्रथा द्वारा तानाशाही तथा अराजकता से छुटकारा पाया जाता है।

(*viii*) **सामाजिक एवं मानवीय कार्य**–अन्त में, अमेरिका के राजनीतिक दल कुछ सामाजिक तथा मानवीय कार्य करते हैं। बाजार, नृत्य, संगीत, पिकनिक आदि द्वारा वे जनता का मन बहलाते तथा उनमें राजनीतिक चेतना भरते हैं। दल के नेता शासन को मानवीय स्वरूप प्रदान करते हैं। विशेषकर स्थानीय नेता पदाधिकारियों को जनता की इच्छाओं तथा आवश्यकताओं की जानकारी कराते हैं। इस प्रकार दल के जरिये अनेक व्यक्तियों को शासन में सहायता मिलती है।

फ्रांस में राजनीतिक दल (Political Parties in France)

फ्रांसीसी दल का संगठन

(Pattern of French Party Organisation)

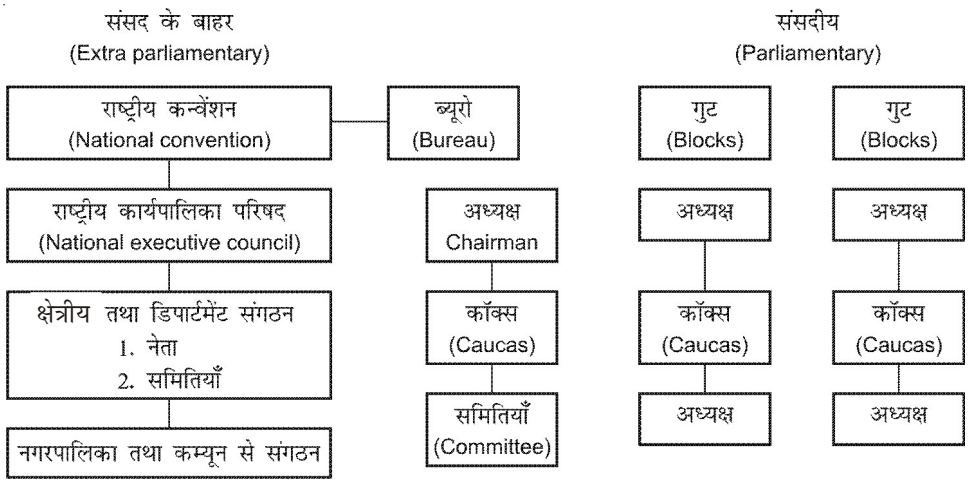

नोट–प्रत्येक दल का संगठन लगभग इसी प्रकार है।

फ्रांस के प्रमुख राजनीतिक दल और उनका संगठन (Important Political Parties of France and their organisation)

इस समय फ्रांस के राजनीतिक जीवन में निम्नलिखित प्रमुख राजनीतिक दल हैं–

1. साम्यवादी दल (The Communist Party)
2. समाजवादी दल (The Socialist Party)
3. लोकप्रिय गणतन्त्रवादी आन्दोलन (Movement Republican Popular M.R.P.)
4. वामपंथी गणतन्त्रवादी संघ (Union of Republican Leftists),
5. स्वतंत्रता-समर्थक गणतन्त्रवादी दल (Republican Party of Liberty)।

साम्यवादी दल (Communist Party)–साम्यवादी दल की स्थापना 1920 ई. में हुई थी। यह फ्रांस का इस समय सबसे अधिक सुसंगठित दल है। इसकी स्थापना के बाद ही इसका संगठन बढ़ता गया। 1924 ई. में साम्यवादी दल गणतन्त्र के 24 प्रतिनिधि चैम्बर ऑफ डिपुटीज में थे। चतुर्थ गणतन्त्र में इस दल का काफी प्रसार हुआ। 1946 ई. में नेशनल एसेम्बली में साम्यवादी दल के कुल 190 प्रतिनिधि थे, लेकिन उसके बाद धीरे-धीरे इस दल की शक्ति घटती गयी। 1955 ई. में नेशनल एसेम्बली में कुल 98 साम्यवादी सदस्य रह गये। पंचम गणतंत्र की स्थापना के बाद दल का अस्तित्व उखड़-सा गया। 1958 ई. के चुनाव में राष्ट्रीय सभा में साम्यवादी दल के कुल 22 सदस्य निर्वाचित हो सके। इससे स्पष्ट है कि इस समय साम्यवादी दल काफी क्षीण हो गया है।

नोट

अन्य देशों के साम्यवादी दलों की तरह फ्रांस के साम्यवादी दल का भी उद्देश्य पूँजीवादी व्यवस्था का अन्त करना है। साम्यवादी दल वर्ग संघर्ष में विश्वास करता है। फ्रांस का साम्यवादी दल क्रांति द्वारा उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण के पक्ष में है। दल का संगठन सुदृढ़ है तथा दलीय सदस्य कठोर अनुशासन का पालन करते हैं। देश के मजदूर तथा किसान वर्गों के लोग अधिकतर इस दल के सदस्य हैं। लेकिन मजदूर से अधिक किसान वर्ग के लोग साम्यदल में अधिक निष्ठा रखते हैं।

समाजवादी दल (The Socialist Party)—यह फ्रांस का दूसरा महत्त्वपूर्ण दल है। इस दल की स्थापना 1905 ई. में हुई थी। उस समय क्रमशः संयुक्त समाजवादी दल के नाम से विख्यात था। इसका उद्देश्य समाज में समाजवाद की स्थापना करना था। इस दल में दो मत के सदस्य थे। कुछ लोगों का मत था कि समाज में शांतिपूर्ण ढंग से समाजवाद की स्थापना की जाय। दूसरे मत के लोग मार्क्सवादी विचारों के समर्थक थे। धीरे-धीरे दोनों विचारधाराओं के लोगों में खाई पड़ती गयी। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद दल में साम्यवादी विचारधारा के लोग अलग हो गये और 1920 ई. में साम्यवादी दल इससे अलग हो गया।

साम्यवादी दल क्षेत्रीय आधार पर संगठित है। देश के छोटे-छोटे विभाग; जैसे, कम्यून से लेकर राष्ट्रीय पैमाने तक इसके संगठन हैं। इस दल का उद्देश्य जनतान्त्रिक प्रणाली को कायम रखते हुए कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। इस दल के बहुत-से सदस्य राज्य के कर्मचारी तथा स्कूल के अध्यापक हैं। मजदूर वर्ग के लोग इसकी क्षमता पर विश्वास नहीं करते हैं। इस दल का आदर्श है कि बड़े उद्योगों का क्रमशः राष्ट्रीयकरण कर लिया जाए, समाज में धन का विभाजन न्यायोचित हो। साथ ही, सामाजिक कल्याण सम्बन्धी नियम बनाना तथा लोगों को अधिक-से-अधिक सामाजिक सुरक्षा की उपलब्धि कराना इसका उद्देश्य है।

लोकप्रिय गणतन्त्र आन्दोलन (Republican Popular Movement)—सिद्धांत की दृष्टि से फ्रांस के वामपक्षीय तथा दक्षिणपक्षीय दलों के बीच का संगठन है। यह दल उन्नीसवीं शताब्दी के कैथोलिक धर्म की विचार-धारा से प्रभावित है। इसका गठन द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद हुआ। यह फ्रांस का एक प्रमुख दल है, लेकिन यह दल अपने को एक राजनीतिक दल नहीं मानकर एक आन्दोलन मानता है। चतुर्थ गणतन्त्र में इस दल का काफी प्रभाव था। लेकिन पंचम गणतन्त्र में इसका वह स्थान नहीं रह गया जो चतुर्थ गणतंत्र में था। यह दल क्षेत्रीय आधार पर संगठित है तथा राष्ट्रीय पैमाने पर इसका काफी प्रभाव भी है।

लोकप्रिय गणतन्त्रवादी आन्दोलन उदार पूँजीवाद तथा सामूहिक साम्यवाद दोनों का विरोधी है। इस तरह यह मध्यवर्गी दल है। व्यक्ति के व्यक्तित्व में विश्वास रखता है। यह शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीयता, व्यक्ति स्वातंत्र्य, परिवारों का संरक्षण तथा प्रजातांत्रिक प्रणाली अक्षुण्ण बनाये रखने के पक्ष में हैं।

वामपंथी गणतंत्रवादी दल (Union of Republican Leftists)—ईसा की बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में स्थापना हुई थी। तृतीय गणतन्त्र के अन्त तक इस दल का काफी बोलबाला था। खासकर दो विश्व-युद्धों के अन्तकाल में इस दल का विशिष्ट स्थान था। द्वितीय विश्व-युद्ध काल में इसका काफी पतन हुआ है। 1951 ई. में राष्ट्रीय परिषद् में इस दल को कुल 76 स्थान मिले। इस दल के समर्थक छोटे-छोटे किसान, व्यापारी तथा अन्य मध्यम वर्ग के लोग हैं। यह दल वामपक्षीय तथा दक्षिणपक्षीय दलों के सिद्धांतों में सन्तुलन का प्रयास है। यह दल व्यक्ति स्वातंत्र्य का समर्थक है। मार्क्सवादी विचारधारा और उदारवार का यह विरोध करता है। वैयक्तिक सम्पत्ति तथा स्वतन्त्रता को यह दल अक्षुण्ण बनाये रखना चाहता है।

स्वतंत्रता समर्थक गणतंत्रवादी दल (Republican Party of Liberty)—फ्रांस का प्रमुख रूढ़िवादी दल है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमुख रूढ़िवादी दलों में रैली ऑफ दी फ्रेंच पीपुल (Railly of the French People) तथा पीजेंट एण्ड सोशल एक्सन पार्टी (Peasant and Social Action Party) हैं। ये दल मुख्यतः दक्षिणपक्षीय दल हैं। इन दलों में मुख्यतः उद्योगपति, पूँजीपति, धनी तथा कुछ मध्यम वर्ग के लोग हैं। यह दल समाजवाद के कट्टर विरोधी हैं।

इन दलों के अतिरिक्त एक अन्य प्रमुख दल का उदय पंचम गणतन्त्र के साथ हुआ है। इस दल का नाम **यूनियन ऑफ दी न्यू रिपब्लिक** (Union of the New Republic) है। इस दल के संस्थापक **दगॉल** हैं। यह दगॉल द्वारा

नोट

1947 ई. में स्थापित रैली ऑफ दी फ्रेंच पीपुल (Raily of the French People) का नया रूप है। उच्च मध्यम वर्ग के लोग इसके समर्थक हैं। 1958 ई. में यह देश बहुमत दल का विश्वास पात्र बन गया। इस दल के समर्थन पर राष्ट्रपति **पाम्पिइयू** चुने गये थे। इस दल ने फ्रांस की दल-पद्धति को नयी दिशा दी है। **दगॉल** की विचारधारा इस दल का दर्शन है। वस्तुत: फ्रांस में दगॉलवादी आन्दोलन का यह संगठनात्मक स्वरूप है। यह दक्षिणपंथी तथा राष्ट्रवादी दल है। इसे उच्च कोटि, धनिक तथा पेशेवर लोगों का समर्थन विशेष रूप से प्राप्त है।

13.3 चीन में कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिका (Role of Communist Party in China)

चीनी गणराज्य में साम्यवादी दल का कार्य एवं महत्त्व (Functions and Importance of the Communist Party in the Chinese Republic): आधुनिक युग में शासन-सत्ता के पीछे वास्तविक शक्ति राजनीतिक दल है। वे शासन रूपी गाड़ी को चलाने के लिए ईंधन का काम करते हैं। वे समाज के आर्थिक तथा राजनीतिक पहलुओं पर इस प्रकार छा गये हैं कि उन्हें अदृश्य सरकार (Invisible Government) कहा जा रहा है। यह स्थिति हर प्रकार की शासन-व्यवस्था में पाई जाती है चाहे वह अधिकनायकतन्त्र हो या प्रजातंत्र। प्रजातंत्र के लिए तो वे अवश्यम्भावी हैं ही, साथ-साथ अधिनायकतन्त्र के लिए भी इनका अस्तित्व अनिवार्य है। सिर्फ अन्तर यह है कि सरकार के स्वरूप के अनुसार उनके संगठन तथा कार्यों की प्रवृत्ति के अनुसार परिवर्तन हो जाता है। भारत तथा ब्रिटेन जैसे प्रजातंत्रिक देशों से चीनी गणतंत्र में दल का बहुत अधिक महत्त्व है। वह देश का वास्तविक शासक है। साम्यवादी चीन में किसी भी देश से अधिक, साम्यवादी दल को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई है। शासन पर उसके प्रभुत्व (Domination) और नेतृत्व (Vanguardship) को कानूनी मान्यता प्रदान की गई है। संविधान में स्पष्ट शब्दों में इसे क्रांति का अगुआ, देश का शासक और सांस्कृतिक क्रांति का हथियार करार दिया गया है। अब दल का अध्यक्ष ही सब कुछ हो गया है; राज्य के अध्यक्ष का पद समाप्त हो गया है। दल का अध्यक्ष देश का वास्तविक शासक होता है। पूर्व सोवियत साम्यवादी दल की भाँति ही चीनी साम्यवादी दल भी समाज और शासन का पथ-प्रदर्शन एवं निर्देशन करता है। **संविधान** में कहा गया है कि "चीन का साम्यवादी दल देश के नेतृत्व का केन्द्र है।" यह जनता का मार्गदर्शक तथा सभी सार्वजनिक संगठनों एवं संस्थाओं का मूल केन्द्र है। दल अपने साधारण कार्यक्रम के विषय में घोषणा करता है कि "दल को समस्त जातीय संगठन के सर्वोच्च स्वरूप को धारण करने के नाते देश-जीवन के नेता एवं हृदय के रूप में ठीक दिशा की ओर कार्य करने के लिए अवश्य प्रयत्न करना चाहिए।" तात्पर्य यह है कि चीन के साम्यवादी दल को देश तथा समाज के नेता एवं हृदय के रूप में स्वीकार किया गया है।

पूर्व सोवियत साम्यवादी दल की भाँति चीनी साम्यवादी दल को भी क्रांति का नियन्त्रक एवं रक्षक, प्रेरक, आदर्श एवं शिक्षक, अग्रणी संगठन, सर्वहारा कृषक वर्ग का मार्ग-दर्शक, माओवाद का प्रचारक एवं देश का वास्तविक शासक माना जाता है। दल के कार्यों का संक्षिप्त विवरण–

(*i*) **क्रांति का नियंता एवं रक्षक**–चीन के साम्यवादी दल के कार्यों को हम दो ऐतिहासिक भागों में बाँट सकते हैं–1949 ई. की क्रांति से पूर्व और (ख) क्रांति के बाद। 1949 ई. के पूर्व साम्यवादी दल का उद्देश्य था, क्रांति लाना। चीन भ्रष्ट एवं पूँजीवाद कुओन्तांगी शासन के पैरों तले तबाह और बरबाद हो रहा था। साम्यवादी दल क्रांति लाने में लगभग तीस वर्षों के निरन्तर संगठन तथा युद्ध के पश्चात् सफल हुआ। क्रांति के पश्चात् साम्यवादी दल का प्रमुख कार्य हो गया, क्रांति की रक्षा करना। देश के अन्दर पूँजीपति तथा देश के बाहर पूँजीवादी देश साम्यवादी क्रांति को कुचल देना चाहते थे। साम्यवादी दल ने उनके विरुद्ध सजग प्रहरी के रूप में कार्य किया। यद्यपि क्रांति की सुरक्षा का खतरा टल गया है, फिर भी साम्यवादी दल का यह प्रमुख कार्य है कि साम्यवादी चीन की आन्तरिक तथा बाहरी शत्रुओं से रक्षा करें।

(*ii*) **प्रेरक, आदर्श एवं शिक्षक**–चीन का साम्यवादी दल एक प्रेरक है, आदर्श है तथा शिक्षक है। क्रांति के पूर्व चीन आर्थिक, सामाजिक तथा अन्य क्षेत्रों में पिछड़ा हुआ था। उसे उन्नत देशों की श्रेणी में लाने के लिए कठिन परिश्रम तथा महान् त्याग करना था। यह परिश्रम और त्याग साम्यवादी दल को ही करना था। दल को जनता में त्याग, उत्साह तथा उत्तरदायित्व की भावना उपजाना था। यह तभी सम्भव था जबकि दल स्वयं आदर्श उपस्थित करें तथा जनता को शिक्षित करें और उसके लिए शिक्षा दे। प्रारूप-संविधान

नोट

के प्रतिवेदन में दल के सदस्यों के उत्तरदायित्व की चर्चा करते हुए कहा गया है कि दल की विशिष्ट स्थिति के कारण दल के सदस्यों को राज्य के अन्तर्गत कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होगा; अपितु उन्हें इसके उत्तरदायित्व का भी वहन करना पड़ेगा। दल के सदस्यों को संविधान तथा कानून का अनुसरण करते हुए जनता के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत करना होगा। इसके अतिरिक्त दल का एक प्रमुख कार्य है, जनता को मार्क्सवाद, लेनिनवाद तथा माओवाद की शिक्षा देना। इन राजनीतिक सिद्धांतों के आदेशों का प्रचार दल का मुख्य कार्य है। सांस्कृतिक क्रांति (Cultural Revolution) के माध्यम से दल ने जनसमुदाय पर पर्याप्त मानसिक प्रभाव डाला है।

(*iii*) **अग्रणी संगठन**–चीन का साम्यवादी दल देश में पाये जाने वाले अन्य संगठनों तथा राजनीतिक दलों को नेतृत्व प्रदान करता है। नव प्रजातन्त्र युवक संघ चीनी साम्यवादी दल का प्रमुख अंग है। चीन में अन्य दलों को भी राजनीतिक मान्यता प्रदान की गई है। पूर्व सोवियत रूस की भाँति चीन का साम्यवादी दल एक मात्र राजनीतिक दल नहीं है। अत: अन्य राजनीतिक दलों का अस्तित्व साम्यवादी दल से पृथक माना जाता है जबकि पूर्व सोवियत रूस में सभी संगठनों को साम्यवाद दल के अंग के रूप में कार्य करना पड़ता था। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि चीन में साम्यवादी दल के अतिरिक्त अन्य संगठनों तथा दलों का वास्तविक पृथक् अस्तित्व है। संयुक्त मोर्चा के नाम पर अन्य संगठनों तथा दलों को साम्यवादी दल के नेतृत्व तथा निर्देशन में कार्य करना पड़ता है। अन्य दलों का अस्तित्व नाम मात्र है।

(*iv*) **संयुक्त मोर्चा का नेतृत्व** (Leadership of the United Front)–चीन के संविधान में जनता के प्रजातांत्रिक संयुक्त मोर्चे (People's Democratic United Front) की सांविधानिक व्यवस्था की चर्चा की गई है। संविधान की प्रस्तावना में यह कहा गया है कि यह संयुक्त मोर्चा राज्य के उद्देश्यों की प्राप्ति तथा शत्रुओं से उनकी सुरक्षा के हेतु एक संघर्ष का संचालन करेगा तथा समस्त जनता को उसके लिए संगठित और प्रोत्साहित करेगा। संयुक्त मोर्चा में श्रमिक वर्ग के अतिरिक्त अन्य प्रजातांत्रिक वर्ग, दल तथा जन संगठन रहेंगे। उसका नेतृत्व सर्वहारा वर्ग के हाथ में होगा। यह श्रमिकों, किसानों तथा अन्य वर्गों के बीच वृहत् सहयोग पर आधारित होगा। इस संयुक्त मोर्चे का नेतृत्व वस्तुत: साम्यवादी दल के हाथ में होगा तथा वही इसका मार्गदर्शन करेगा।

(*v*) **प्रचारक**–साम्यवादी सिद्धांत के अनुसार यह आवश्यक है कि जनता के दिमाग में शासन की मान्यताओं एवं आदर्शों को भरा जाय तथा उन्हें देश के केन्द्रीय नेतृत्व का पक्का अनुयायी बना दिया जाए। चीन में मार्क्सवाद, लेनिनवाद तथा माओवाद के सिद्धान्तों को हमेशा जनता के दिल में कूट-कूटकर भरे जाने की कोशिश की जाती रही है। इस कार्य का उत्तरदायित्व साम्यवादी दल को सौंपा गया है। दल जनता को शिक्षा देता है तथा इसके लिए सभी कठोर एवं अधिनायकवादी साधनों का प्रयोग करता है। वह चीनी राष्ट्रीयता की दृढ़ भावना, पूँजीवाद के विरुद्ध घृणा तथा साम्यवाद के प्रति भक्ति का प्रचार करता है।

(*vi*) **प्रेषक कड़ी**–दल जनता तथा अन्य समूहों और संगठनों का संबंध देश के नेतृत्व से स्थापित करता है। प्रारूप-संविधान के प्रतिवेदन में कहा गया है कि साम्यवादी दल के सदस्य जन-समूह से घनिष्ठ संबंध स्थापित करेंगे तथा समस्त प्रजातांत्रिक दलों, समूहों और सम्पूर्ण जनता के साथ मिल-जुलकर कार्य करेंगे। वे सरकार की नीतियों, उद्देश्यों तथा कार्यों के विषय में जनता को सूचना देंगे तथा उनकी स्पष्ट व्याख्या जनता के समक्ष प्रस्तुत करेंगे। इस प्रकार दल संचार-साधन के रूप में कार्य करेगा।

(*vii*) **अन्तर्राष्ट्रीय कार्य**–चीनी साम्यवादी दल का अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व भी है। यह विश्व क्रांति तथा विश्व साम्यवादी समाज में विश्वास करता है। उसका एक प्रमुख उद्देश्य अन्य देशों से भी पूँजीवाद का नाश कर साम्यवाद की स्थापना करना है इसके लिए अन्य देशों में क्रांतिकारी कार्यकर्त्ताओं का संगठन स्थापित करता है तथा विध्वंसकारी प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है। छिपे रूप से वह अन्य देशों के समान विचार वाले व्यक्तियों को हथियार देता है और उन्हें तोड़-फोड़ के कार्यों का प्रशिक्षण देता है। भारत, बर्मा, इण्डोनेशिया आदि देश चीनी साम्यवादी दल के इस नीति के शिकार हुए हैं। अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर समान

नोट

विचार वाले अन्य देशों के साम्यवादी दलों से सम्पर्क स्थापित कर पृथक् साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के निर्माण की सदा कोशिश करता रहा है। गुप्त रूप से वह कई देशों के साम्यवादी दलों एवं संगठनों का पथ-प्रदर्शन करता है।

(*viii*) **वास्तविक शासक**–चीनी साम्यवादी दल के महत्त्व का निर्णायक कारण यह है कि वह देश का वास्तविक शासक है। पाश्चात्य देशों के दलों की भाँति वह सरकार का निर्माणकर्त्ता, पालनकर्त्ता, तथा संचालक तो है ही, इसके अतिरिक्त वह शासन से इतना घुलमिल गया है कि दल तथा सरकार को एक-दूसरे से अलग करना मुश्किल है। दल शासन पर इस तरह छा गया है कि वह देश का वास्तविक शासक बन गया है। पूर्व सोवियत संघ की भाँति चीन में भी शासक और साम्यवादी दल में अत्यधिक सन्निकटता (Inter-looking relationship between Party and Government) है। दल के नेता ही शासन के विशेष पदों पर रहते हैं। शासन का प्रत्येक विभाग साम्यवादी दल के नेता और सदस्यों से परिपूर्ण है। दल की नीति ही शासन की नीति है। साम्यवादी दल का पोलित ब्यूरो शासन की नीति को निर्धारित करता है, सरकारी विभागों तथा अधिकारियों को निर्देश देता है और उन पर नियन्त्रण रखता है। सिद्धांतत: सरकार कानून बनाती है, अज्ञप्तियाँ निकालती है, वैदेशिक सम्बन्ध का निर्देशन करती है, शासन को नियन्त्रित करती है तथा सैन्यबल को संगठित करती हैं और उसे आदेश देती है; लेकिन व्यवहारत: दल ही इन सभी कार्यों को करता है। सरकार के अंग केवल रबर स्टाम्प का कार्य करते हैं। किसी भी विषय के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय दल ही लेता है और उसी के आदेशानुसार सभी पदाधिकारी अपना कार्य करते हैं।

चीन के साम्यवादी दल के अधिनायकत्व की व्याख्या निम्नलिखित रूपों में की जा सकती है–

प्रथम, दल तीन तरीकों से शासन को नियन्त्रित करता है। पहला तरीका यह है कि सरकार के विधायिकी, प्रशासकीय तथा न्यायिक संगठनों के अधिकांश सदस्य दल के सदस्य होते हैं। इन सदस्यों पर दल के सदस्यों का नियन्त्रण होता है और वे उसी निर्देशानुसार कार्य करते हैं। दूसरा तरीका यह है कि आम तौर पर दल के द्वारा विधायिकी और प्रशासकीय आदेशों और नीतियों की घोषणा होती रहती है जिसका पालन प्रशासन के अंगों तथा पदाधिकारियां को करना पड़ता है। तीसरा तरीका यह है कि दल अपने विभिन्न संगठनों तथा अंगों के द्वारा जो देश के कोने-कोने तथा हर क्षेत्र में व्याप्त हैं, शासन के समस्तरीय अंगों को नियन्त्रित करता है। इस संबंध में **टॉग** ने कहा है कि "केन्द्र के ढाँचे पर ही दल का शासन संबंध निम्न स्तरों में दुहराया गया है। इसी प्रकार आपसी संबंध, प्रान्तीय, नगर, ग्राम, शहरों व ग्रामीण जिलों के स्तर पर दृष्टिगोचर होते हैं। जहाँ दल का नेतृत्व करने वाले सरकारी पदों पर महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं।" तात्पर्य यह है कि प्रशासन के सर्वोच्च स्तर से लेकर निम्नतर तक दल का समानान्तर संगठन पाया जाता है और दल का समस्तरीय संगठन प्रशासन के समकक्ष निकाय पर नियंत्रण रखता है तथा उसे निर्देशित करता है। दल के सदस्य ही समकक्ष स्तर के प्रशासकीय निकाय के पदाधिकारी बन जाते हैं। उदाहरणस्वरूप, सर्वोच्च स्तर पर माओत्से तुंग साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति तथा पोलित ब्यूरो का अध्यक्ष था तथा दल के सचिवालय का प्रमुख भी था और इस प्रकार दल तथा शासन के सर्वोच्च शिखर पर एक ही व्यक्ति था। दल के पोलित ब्यूरो के अन्य सदस्य भी शासन के विभिन्न अंगों के प्रमुख हैं। निम्न स्तर पर भी इसी प्रकार दल के प्रमुख सदस्य समस्तरीय प्रशासकीय निकाय के भी पदाधिकारी होते हैं।

द्वितीय, चीन गणराज्य के शासन के विभिन्न अंगों में कभी मतभेद नहीं देखा जाता है। यद्यपि शासन के प्रत्येक स्तर पर स्वतन्त्र एवं निर्वाचित कार्यपालिका, विधानपालिका तथा न्यायपालिका का संगठन किया जाता है, फिर भी समस्तरीय प्रशासकीय निकायों या विभिन्न स्तरों के प्रशासकीय निकायों में किसी बात के लिए मतभेद देखने को नहीं मिलता है। इस प्रकार सर्वसम्मति चीनी शासन-व्यवस्था की उल्लेखनीय विशेषता है। इस 'सर्वसम्मति' का एकमात्र कारण यह है कि शासन के सभी अंगों पर साम्यवादी दल का नियंत्रण है। दल ही यह निश्चित करता है कि क्या करना है, कब करना है, कैसे करना है और किसके द्वारा करना है।

नोट

तृतीय, यदि सरकार में कोई की प्रभावकारी स्थिति है तो उसका कारण यह नहीं है कि वह सरकार में किसी उच्च पद पर आसीन है, अपितु इसका कारण दल में उसकी प्रभावशाली स्थिति है। चीनी गणराज्य का वास्तविक शासक दल का अध्यक्ष है। उसके बारे में कहा जा सकता है कि "कहीं भी इतनी छोटी वस्तु की इतनी बड़ी छाया नहीं देखी जाती है।" चीनी गणराज्य के भूतपूर्व अध्यक्ष माओ-त्से-तुंग की स्थिति सर्वविदित है। वे देश के सर्वशक्तिशाली व्यक्ति थे। इसका एकमात्र कारण था कि वे दल के अध्यक्ष थे। 1975 के संविधान में गणराज्य के अध्यक्ष का पद समाप्त कर दिया गया। दल का अध्यक्ष ही सर्वेसर्वा रह गया। 1983 से दल और गणराज्य के अध्यक्ष अलग-अलग व्यक्ति हैं।

चतुर्थ, यद्यपि अन्य दलों के अस्तित्व को भी चीन में मान्यता दी गई है तथापि वास्तविकता यह है कि शासन पर साम्यवादी दल का एकाधिकार है। एकदलीय के कारण साम्यवादी दल को विरोध तथा आलोचना का सामना नहीं करना पड़ता है।

साम्यवादी दल की विशेषताएँ (Characteristics of the Communist Party): चीन में प्रथम बार 1 जुलाई, 1921 ई. को साम्यवादी दल की स्थापना हुई। प्रारंभ में सीमित रूप से इसे श्रमिकों का समर्थन प्राप्त हुआ। 1921 में ही **'सनयात सेन'** को दक्षिण चीन का प्रधान शासक घोषित किया गया। उसने साम्यवादी सिद्धांतों के आधार पर ही **कुओमिन्तांग** दल का संगठन किया। **सनयात सेन** के बाद च्यांग-काई-शेक के हाथ कुओमिन्तांग का नेतृत्व आ गया। वह साम्यवादियों की उग्र विचारधारा का कट्टर विरोधी था। उसने दक्षिण वामपंथी दल का संगठन किया। कुओमिन्तांग की कार्यपालिका ने 1957 ई. में साम्यवादियों को अपने दल से पृथक् कर दिया तथा कुओमिन्तांग विरोधी अनेक साम्यवादी नेताओं को मरवा डाला। धीरे-धीरे साम्यवादी दल का स्वतंत्र रूप से विकास होने लगा और उसने कुओमिन्तांग शासन के विरुद्ध आवाज उठानी शुरू कर दी। कुछ नेताओं ने मिलजुल कर एक लाल सेना (Red Army) का निर्माण किया। साम्यवादी दल की नीतियों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया। 1927 ई. तक चीन में साम्यवादी काफी शक्तिशाली हो गये और दल का संगठन दृढ़ हो गया। माओत्से-तुंग के नेतृत्व ने दल को एक नवीन बल दिया। 1967 में चीन-जापान युद्ध के समय साम्यवादियों तथा कुओमिन्तांगों ने संयुक्त मोर्चा बनाकर जापान का मुकाबला किया; लेकिन यह अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सका। क्योंकि च्यांग-काई-शेक साम्यवादियों पर बहुत दिनों तक विश्वास नहीं रख सका। पूँजीवादी देशों की सहायता से वह जापान से युद्ध करता रहा। महायुद्ध की समाप्ति के बाद चीन पुनः च्यांग-काई-शेक के हाथ में आ गया। जापान द्वारा चीन को छोड़ते ही चुँतेह के नेतृत्व में साम्यवादियों ने उसके कुछ भाग पर अपना प्रभाव जमाना आरम्भ कर दिया, कुछ समय के लिए च्यांग-काई-शेक तथा साम्यवादियों का उत्तरी चीन पर अधिकार हो गया। 1949 में घोर युद्ध के बाद साम्यवादियों ने देश की शासन सत्ता पर अपना अधिकार जमा लिया और च्यांग-काई-शेक देश छोड़कर फारमोसा भाग गया। 1 अक्टूबर, 1949 ई. को माओत्से-तुंग के नेतृत्व में चीन को एक गणराज्य घोषित कर दिया गया। इस प्रकार चीन पर साम्यवादी दल का शासन स्थापित हो गया। चीन गणराज्य की दलीय व्यवस्था की विशेषताओं का अभिप्राय इसी दल की विशेषताओं से है।

(1) **एकदलीय व्यवस्था–**यों तो चीन में बहुदलीय पद्धति को राजनीतिक मान्यता प्रदान की गई है और देश में अनेक दल हैं, फिर भी वस्तुतः देश में एकदलीय व्यवस्था ही है। अन्य दल सिर्फ नाममात्र के हैं। साम्यवादी दल ही एकमात्र प्रभावकारी स्थिति में है। चूँकि साम्यवादी एकमात्र सर्वहारा वर्ग के अस्तित्व तथा हित को स्वीकार करते हैं, इसलिए वे एकदल में ही विश्वास करते हैं जो सर्वहारा वर्ग को नेतृत्व प्रदान करे तथा उसके हितों की रक्षा करे।

(2) **उद्देश्य–**चीनी साम्यवादी दल निश्चित सिद्धांतों पर आधारित है तथा इसके निश्चित उद्देश्य हैं। यह दल मार्क्सवाद-लेनिनवाद, जिसकी व्याख्या माओत्से-तुंग द्वारा की गई है, के सिद्धांतों का अनुसरण करता है। "साम्राज्यवाद और सर्वहारा वर्ग की क्रांति के युग में लेनिनवाद ही मार्क्सवाद है।" माओत्से-तुंग ने मार्क्स और लेनिन के सिद्धांतों की व्याख्या नये रूप से की है। माओ ने अपनी पुस्तक **'नया प्रजातन्त्र'** (On the New Democracy) में कहा है कि "चीनी क्रांति की ऐतिहासिक प्रक्रिया को दो भागों में विभाजित

नोट

करना होगा। पहला प्रजातांत्रिक क्रांति और दूसरा साम्यवादी क्रांति। अब प्राचीन रीति की क्रांति सम्भव नहीं जिसे पूँजीपति वर्ग या पूँजीपति अधिनायकशाही के अन्तर्गत पूँजीपति समाज की स्थापना करे। यही नवीन रीति की क्रांति है जिसका नेतृत्व सर्वहारा वर्ग करेगा। इसके पहले स्टेज का ध्येय होगा कि नवीन प्रजातन्त्रात्मक समाज (A New Democratic Society) और "सभी क्रांतिकारी वर्गों की संयुक्त अधिनायकशाही के अधीन राज्य की स्थापना" (A State under the joint dictatorship of all revolutionary classes)। इस सम्बन्ध में **लाइन बार्जर** का भी कथन उल्लेखनीय है– "माओ का विचार है कि समस्त प्रगतिशील वर्गों, साम्राज्यवादी सामन्तशाही और नौकरशाही तत्त्वों को छोड़कर, क्राांतिकारियों के सहयोग द्वारा मिल-जुल कर दो स्थिति वाली क्राांति लाई जा सकती है। ऐसा सम्मेलन केवल प्राक् समाजवादी स्थिति में ही सम्भव है। इस स्थिति के बाद धीरे-धीरे समाजवादी अधिनायकवाद की स्थापना होगी। इस प्रकार **माओत्से-तुंग** बड़ी सावधानी से प्राचीन सामाजिक व्यवस्था से हिंसात्मक विच्छेद की अनावश्यकता को सिद्ध करता है और इसके विरोध की सम्भावना को कम कर देता है।"

उपर्युक्त शक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि माओत्से-तुंग बुर्जुआ वर्गों के अतिरिक्त अन्य वर्गों को मिला-जुला कर एक साझा (coalition) या संयुक्त मोर्चा (United front) की स्थापना करता है। इस मोर्चे के मुख्य सहकारी होंगे सर्वहारा और कृषक वर्ग। लेनिक नेतृत्व की अन्तिम बागडोर सर्वहारा वर्ग के हाथ में रहेगी। इस मोर्चे के अधिनायकवाद को माओत्से-तुंग ने जनवादी-प्रजातान्त्रिक अधिनायक (People's Democratic Dictatorship) कहकर संबोधित किया। संक्रमण काल में इस मोर्चे के नेतृत्व में समाजवाद ने साम्राज्यवादी-सामन्तशाही-नौकरशाही (Imperialist-Feudalist-Bureaucratic) को समाप्त किया तथा समाजवाद की स्थापना का प्रयास किया। माओ ने सर्वहारा वर्ग के अतिरिक्त कृषक वर्ग को भी समुचित महत्त्व दिया है। वह हिंसात्मक तरीके से विश्व में क्रांति लाने के पक्ष में है तथा सम्पूर्ण विश्व में साम्यवाद की स्थापना करना चाहता है।

चीन का साम्यवादी दल माओ-त्से-तुंग के उपर्युक्त सिद्धान्तों का अनुसरण करता है। उसका उद्देश्य साम्राज्यवाद, सामन्तवाद तथा नौकरशाही व्यवस्था को समाप्त करना सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाना, साम्यवादी व्यवस्था की दृढ़ स्थापना एवं उसे विकासोन्मुख बनाना और देश में तथा विश्व में साम्यवाद को विजयी बनाना है।

(3) **दलीय सर्वोच्चता**–पूर्व सोवियत रूस की भाँति चीनी शासन-व्यवस्था दलीय सर्वोच्चता के सिद्धान्त पर आधारित है। साम्यवादी दल देश और समाज का अग्रणी एवं पथ-प्रदर्शक है। अन्य सभी संस्थाएँ वस्तुत: इसी के नेतृत्व में संगठित होती तथा कार्य करती हैं। देश का वास्तविक शासक साम्यवादी दल ही है। प्रशासन के सभी अंगों पर इसका पूर्ण नियन्त्रण रहता है तथा वे पूर्ण नियन्त्रण में कार्य करते हैं।

(4) **मोनोलिथिक दल** (Monolithic Party)–"मोनोलिथिक दल की एकता को व्यक्त करने की उक्ति है जिसका प्रयोग अधिनायकवादी दलों के लिए किया जाता है। 'मोनोलिथिक' का अर्थ होता है एक ही ठोस पत्थर का बना हुआ खम्भा। सोवियत साम्यवादी दल की भाँति चीनी साम्यवादी दल को मोनोलिथिक दल कहा जाता है। यह पूर्णत: केन्द्रित तथा एकरूप संगठित है। इसके सदस्य कठोरतम अनुशासन में बँधे हुए हैं। यह ठोस है। इसमें गुटबन्दी तथा स्वतन्त्रता का कोई स्थान नहीं है। इसका ठोसपन इच्छा तथा कार्य की एकता में निहित है। तात्पर्य यह है कि चीनी साम्यवादी दल बहुत संगठित अनुशासनबद्ध सुदृढ़ तथा स्वीकृत है।

(5) **सदस्यता**–प्रजातान्त्रिक देशों में दल के सदस्य की अधिकता दल की लोकप्रियता का द्योतक है। अत: अधिक-से-अधिक व्यक्तियों को दल का सदस्य बनाया जाता है। लेकिन चीनी साम्यवादी दल एक बन्द सभा (Close Society) है। इसकी सदस्यता को बहुत सीमित रखा जाता है जिससे दल में एकता तथा अनुशासन बना रहे। इसकी सदस्यता साधारण बात नहीं है। केवल श्रमिक वर्ग के पुत्र ही, कठिनाइयों और आवश्यकताओं के लाडले ही अकथनीय कष्ट सहन करने वालों के बच्चे ही और अपार परिश्रमशील वर्ग

नोट

ऐसे दल के सदस्य होने की क्षमता रखते हैं। दल की सदस्यता प्राप्त करने की प्रक्रिया बहुत कठिन है। इसके बारे में **लाइन बार्जर** का कहना है कि "चीनी साम्यवादी दल जिसकी सदस्य संख्या वर्तमान काल में 50 से 60 लाख के करीब है और जो विश्व के किसी भी एक समरूप जनसंख्या की सबसे बड़ी संख्या को नियंत्रित करती है, संभवत: पूर्व सोवियत रूस को छोड़कर सबसे अधिक विशाल राजनीतिक दल है।"

1921 में चीनी साम्यवादी दल की स्थापना हुई। इसके उपरान्त उसकी सदस्य संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। 1927 तक इसकी कुल सदस्य संख्या 59 हजार हो गयी। चीन-जापान युद्ध के समय इसकी लोकप्रियता अधिक बढ़ गई और 1941 में इसके सदस्यों की संख्या आठ लाख हो गई। 1945 में द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के समय दल के सदस्यों की संख्या बढ़कर बारह लाख हो गई। कुओमिन्तांग से इसके संघर्ष से उग्रता के साथ-साथ इसकी लोकप्रियता में तेजी से वृद्धि होनी लगी। यह संख्या 1947 में 27 लाख, 1950 में 58 लाख और 1954 में 60 लाख हो गई। 1956 में राष्ट्रीय काँग्रेस के अधिवेशन के समय इसकी सदस्यों की संख्या 107 लाख के लगभग दिखलाई गई थी। 1959 में यह संख्या 131 लाख और 1961 में 170 लाख हो गई। इस प्रकार चीनी साम्यवादी दल अधिक व्यापक तथा लोकप्रिय होता गया है। पूर्व सोवियत साम्यवादी दल को छोड़कर यह विश्व का सबसे बड़ा तथा प्रभावशाली राजनीतिक संगठन है। दलीय सदस्यों का मुख्य स्पार्क प्लग यंग कम्युनिस्ट लीग (Young Communist League) है। दल के सदस्य मुख्यत: नवयुवक हैं।

चीनी साम्यवादी दल की सदस्यता प्राप्त करना बहुत कठिन है। भली-भाँति जाँच कर तथा प्रशिक्षण देकर ही किसी को सदस्य बनाया जा सकता है। केवल कर्मठ तथा विश्वसनीय व्यक्तियों को ही सदस्यता प्रदान की जाती है। सदस्य बनाते समय काफी सावधानी रखी जाती है। केवल वे ही व्यक्ति सदस्य हो सकते हैं जो साम्यवाद के सिद्धांतों में दृढ़ विश्वास रखते हों। 1941 में **माओ-त्से-तुंग** ने घोषणा की थी कि "दल के सभी सिद्धांत और व्यवहार की एकता पर निर्भर मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विचारधारा का अनिवार्य रूप से अनुशीलन करेंगे।"

दलीय संविधान की धारा 1 में दल की सदस्यता की चार शर्तें दिखाई गई हैं–

(*i*) समस्त सदस्य दल के कार्यक्रमों व संविधान को स्वीकार करते हैं।

(*ii*) सदस्यता के लिए निर्धारित चन्दा भुगतान करना पड़ेगा।

(*iii*) दल द्वारा दिये गये निर्णयों को उन्हें स्वीकार करना पड़ता है।

(*iv*) सदस्य को दल के किसी संगठन से संबंधित होना अनिवार्य है एवं उसके द्वारा बताए गये कार्यों को सम्पन्न करना पड़ता है।

1969 के दलीय संविधान के अनुसार "कोई भी चीनी मजदूर, गरीब, किसान निम्न मध्यम वर्गीय किसान, क्रांतिकारी सैनिक या कोई क्रांतिकारी तत्त्व जो 18 वर्ष की उम्र प्राप्त कर चुका हो दल का सदस्य बन सकता है।

साम्यवादी दल के प्रत्याशियों को अपने रजिस्ट्रेशन की कई शर्तों को स्वीकार करना पड़ता है जो इस प्रकार है–

(*i*) दलीय उद्देश्य साम्यवाद के देशों में स्थायित्व को समझना चाहिए।

(*ii*) आजीवन साम्यवाद के लिए कार्य करने का दृढ संकल्प करना चाहिए।

(*iii*) साम्यवादी दल के स्वरूप व दल-निर्माण के लिए लेनिन तथा स्टॉलिन के सिद्धांतों को मानना चाहिए।

(*iv*) अपने स्वार्थ को लोकहित के लिए न्योछावर करने की भावना रखनी चाहिए।

(*v*) अपने दल के नेताओं की आज्ञा का पालन करना वा दलीय अनुशासन को स्वीकार करना चाहिए।

(*vi*) जन-सामान्य को दल की नीति समझाना चाहिए जनता की सच्ची सेवा करनी तथा मतों के मूल्य को समझना चाहिए।

(*vii*) स्वगत त्रुटियों को आलोचना द्वारा निराकरण करने का प्रयास करना चाहिए।

(*viii*) मार्क्स व लेनिन तथा माओ के सिद्धांत का भली-भाँति अध्ययन करना चाहिए।

नोट

(6) **प्रजातांत्रिक केन्द्रवाद**–चीनी साम्यवादी दल का संगठन प्रजातांत्रिक केन्द्रवाद के सिद्धांत पर आधारित है। संविधान के अनुच्छेद 5 में यह लिखा हुआ है कि "राष्ट्रीय जन-काँग्रेस स्थानीय जन-काँग्रेस और राज्य के अन्य सभी अंग प्रजातन्त्रीय केन्द्रवाद का प्रयोग करते थे।" माओ-त्से-तुंग ने अपनी पुस्तक **सम्मिलित सरकार** (On Coalition Government) में लिखा है कि "चीन में राजनीतिक प्रणाली एक ही साथ प्रजातांत्रिक और केन्द्रित है अर्थात् प्रजातन्त्र के आधार पर केन्द्रित पथ-प्रदर्शन के अधीन होने के कारण प्रजातन्त्रीय है।" इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक निम्न स्तर की दल-संस्था अपने उच्च स्तर की दल-संस्था का निर्वाचन करती है, लेकिन प्रत्येक निम्न संगठन अपने उच्च संगठन के अधीन होता है और इसके आदेशानुसार ही कोई कार्य कर सकता है दल के सभी अंग निर्वाचित होते हैं, दल की प्रत्येक निम्नस्तरीय शाखा अपनी उच्च शाखा के प्रति उत्तरदायी होती है तथा उसके आदेशानुसार कार्य करती है।

(7) **संयुक्त-मोर्चा** (Joiont front)–चीनी साम्यवादी क्रांति का नेतृत्व केवल श्रमिक वर्ग के हाथ में नहीं सौंपते हैं बल्कि श्रमिकों तथा अन्य समान वर्गों को मिलाकर एक संयुक्त मोर्चा का निर्माण करते हैं तथा उसी के कधों पर क्रांति की रक्षा तथा समाजवाद की स्थापना का भार सौंपते है। संयुक्त-मोर्चे में पूँजीपति, सामन्तवादी तथा नौकरशाही वर्गों के लोगों को स्थान नहीं दिया गया है। संयुक्त मोर्चे का अन्तिम साम्यवादी दल करता है। मोर्चे के विभिन्न वर्गों तथा हितों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए विभिन्न राजनीतिक दलों तथा संगठनों के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है, लेकिन इन छोटे दलों या संगठनों को साम्यवादी दल के नेतृत्व में कार्य करना पड़ता है।

13.4 यू.के., यू.एस.ए. और फ्रांस में हित समूह अथवा दबाव समूह (Interest Group or Pressure Group in UK, USA and France)

ब्रिटेन में दबाव समूह (Pressure Groups in U.K.): अन्य देशों की भाँति इंग्लैंड में भी दबाव समूह पाये जाते हैं, लेकिन इनकी संख्या और इनका दबाव अमेरिकी दबाव समूहों से कम है। इंग्लैंड के दबाव समूह दल के अन्दर ही सक्रिय प्रभाव डालते हैं। अनुदार दल और मजदूर दल दोनों में से प्रत्येक से कोई-न-कोई गुट सम्बद्ध रहता है। उदाहरण के लिए श्रमिक संघ साधारणत: मजदूर दल से और कृषक दल साधारणत: अनुदार दल से सम्बन्ध रखते हैं। ब्रिटेन में दबाव-समूह के विकसित नहीं होने का एक कारण यह भी है कि वहाँ निजी विधेयकों की समान्यत: उपेक्षा की जाती है और उनके पारित होने की सम्भावना कम होती है। अत: दबाव समूह दलों के अन्दर ही अपना प्रभाव प्रदर्शित करते हैं तथा अदृश्य रूप से अपने कार्य करवा लिया करते हैं। ये एक माध्यम के रूप से काम करते हैं, जिसके जरिये जनता के विशेष हितों के बारे में सरकार को सूचना प्राप्त होती है।

ब्रिटेन के दबाव समूहों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है–हित (Interest Groups) और वैचारिक समूह (Ideas Groups) हित समूहों को पुन: दो भागों में बाँटा जा सकता है–उत्पादक समूह (Producer Groups) और उपभोक्ता समूह (Consumer Groups)। उत्पादक समूह में दो हजार से ऊपर नियोजक संघ (Employer Association) पाये जाते हैं। अधिकांश नियोजक संघ किसी बड़े संघ के रूप में संगठित होते हैं। 1965 में ब्रिटिश उद्योग परिसंघ (Confederation of British Industries) की स्थापना हुई जो उद्योगों से संबंधित बड़े-बड़े राष्ट्रीय संघों को मिलाकर बना है। ब्रिटिश उद्योग संघ (Confederation of British Industries), ब्रिटिश नियोजक परिसंघ (British Employer Confederation) और ब्रिटिश राष्ट्रीय संघ (National Association of British Manufactures) मुख्य दबाव समूह हैं जो ब्रिटिश उद्योग परिसंघ का निर्माण करते हैं। परिसंघ एक बहुत बड़ा संगठन है, जो अपने सदस्यों को व्यवसायी, शिक्षा, निर्यात आदि से संबधित परामर्श देता है।

उत्पादक समूहों में ऐसे भी समूह आते हैं जो विभिन्न पेशों के द्वारा बनाये जाते हैं जैसे–ब्रिटिश मेडिकल एसोसिएशन, ब्रिटिश डेन्टल एसोसिएशन आदि उत्पादकों के संघ की भाँति मजदूरों के संघ भी पाये जाते हैं। मजदूर संघ छोटे आकार से लेकर बहुत बड़े आकार तक के होते हैं। मजदूर संघों में सबसे बड़ा संघ ट्रान्सपोर्ट एवं जनरल यूनियन

नोट

(Transport & General Work's Union) हैं। अधिकांश मजदूर संघ राष्ट्रीय मजदूर संघ से सम्बन्धित हैं, जिस ट्रेड यूनियन काँग्रेस (Trade Union Congress) कहते हैं। किसानों के भी संघ हैं जिन्हें नेशनल फारमर्स यूनियन (National Farmers Union) और नेशनल यूनियन ऑफ एग्रीकल्चरल वर्कर्स (National Union of Agricultural Workers) कहते हैं।

उत्पादकों की तुलना में उपभोक्ता समूह नहीं के बराबर संगठित है। फिर भी उनके कुछ शक्तिशाली समूह मौजूद हैं, जैसे ऑटोमोबाइल एसोसिएशन (Automobile Association) और रॉयल ऐशोसियन क्लब (Royal Association Club)। अधिकांश उपभोक्ता संघ अभी शुरूआत की स्थिति में है। स्थानीय स्तर पर शिक्षा, स्वास्थ्य, बाल-कल्याण आदि के संबंध में ऐसे समूह पाये जाते हैं।

वैचारिक समूह (Ideas Groups) हित समूह से भिन्न होते हैं। वे भौतिक फायदे के लिए नहीं, बल्कि कुछ विचारों का बढ़ावा देने के लिए बसाए जाते हैं। उनके सामने कुछ आदर्श रहते हैं, जिनकी प्राप्ति के लिए वे संगठित होते हैं तथा प्रयास करते हैं। जैसे नेशनल कम्पेन फार द एबोलिशन ऑफ केपिटल पनिशमेंट (National Compaign for the Abolition of Capital Punishment) एक आदर्श से प्रेरित था। उसी प्रकार अफ्रिकन ब्यूरो और अफ्रिकन काउन्सिल के सदस्य में जाति-विभेद के विरोध के लिए कायम किये गये हैं। इनके पास स्टॉफ नहीं के बराबर रहता है और इनकी आमदनी का जरिया भी नगण्य है।

ब्रिटेन के दबाव समूह विधान मंडल के जरिए अपना प्रभाव नहीं जमा पाते हैं। वे प्राय: प्रशासकीय विभागों और समितियों के माध्यम से काम करते हैं। प्राय: ऐसा देखा जाता है कि व्यवहार में ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद कानून को अन्तिम रूप देने से पहले ही समस्त संगठित प्रभावशाली गुटों से परामर्श कर लेता है। उदाहरण के लिए मजदूर दल की सरकार ने जब कोयले की खदानों, वायुमार्ग तथा रेलमार्ग का राष्ट्रीयकरण किया तो उसने इन उद्योगों के श्रमिक समूहों तथा प्रबन्धकों से पहले सलाह-मशविरा कर लिया। यदि कानून पारित भी हो जाता है और दबाव समूह उसे अपने हितों में मोड़ देने में असफल होते हैं तो उनका अगला कदम उन परामर्शदाता समितियों पर प्रभाव डालना होता है जो प्रत्येक सरकारी विभाग के साथ सम्बद्ध होती है। प्रशासकीय विभागों तथा समितियों में इनके सुझावों पर गम्भीर रूप से विचार किया जाता है। प्रशासकीय विभाग से सम्बन्धित गुटों को सार्वजनिक रूप से स्वीकार भी कर लेते हैं श्रम मंत्रालय समय-समय पर मालिकों के संघों, श्रमिक संघों तथा हितों से सम्बन्धित अन्य संघों की निर्देशिका प्रकाशित करता है, जिससे उनका अधिकृत प्रचार होता है। इन गुटों से सरकार तथा निजी संस्थान दोनों ही परामर्श करते हैं। परामर्शदाता समितियों या उनके सदस्यों के माध्यम से भी परामर्श होता है। समय-समय पर स्मरण-पत्रों का सहारा लिया जाता है। इस प्रकार औपचारिक परामर्श तथा अनौपचारिक नैतिक सम्पर्क के द्वारा पारस्परिक विचार-विमर्श नियमित रूप से चलता है। **के. सी. हीयर** ने इस विषय पर टिप्पणी देते हुए कहा है कि शायद ही ऐसा कोई कार्य होता होगा जिस पर कोई समिति इस देश में बिना किसी संघ हित-समूह अथवा प्रभावक गुट के प्रतिनिधियों से विचार करती होगी।

संक्षेप में, अमेरिका के विपरीत इंग्लैंड में गुट संसद की अपेक्षा प्रशासन पर साधारणत: अधिक दबाव डालते हैं। स्थानीय एवं शासन के स्तर पर यह देखा जाता है कि उसकी इकाइयाँ एक गुट बनाकर दलों और सरकार के कार्यक्रमों को प्रभावित करती है। काउन्टी परिषदों का संघ तथा स्कॉटलैंड की काउन्टी परिषदें इसके उदाहरण हैं। इस तरह के दबाव समूह बहुत कम देशों में पाये जाते हैं। कुछ विद्वानों, जैसे–**सेमुअल बीअर** का कहना है कि आजकल ब्रिटेन में दबाव समूह अमेरिका से अधिक ताकतवर हैं, चूँकि ब्रिटेन में एकात्मक सरकार है और दूसरे महायुद्ध के बाद से लोक-कल्याणकारी राज्य नियंत्रित अर्थव्यवस्था लाने के लिए वचनबद्ध है, इसलिए इस देश में दबाव-समूह सरकार से अधिक-से-अधिक रियासतें लेने की स्थिति में है। कर्मों और नीतियों के निर्धारण में अधिक प्रभाव पाया जाता है। इसमें शक नहीं कि वे इतने मजबूत नहीं हैं कि सरकारी विभागों को नियंत्रित कर सके लेकिन विभागों की नीतियों पर वे हमेशा प्रभाव डालते हैं।

नोट

ब्रिटिश दबाव समूहों का असर कभी-कभी इतना अधिक पाया जाता है कि उससे जनहित को खतरा दिखाई देने लगता है। उदाहरण के लिए 1958 तक नेशनल फारमर्स यूनियन का कृषि मंत्रालय पर बहुत ज्यादा प्रभाव था, जिसके चलते सरकार ऐसी अन्य-मूल्य नीति को अपनाये रही, जो आम लोगों के हितों के खिलाफ थी। मूल्य-नीति में किसी प्रकार के परिवर्तन के लिए संघ तैयार नहीं था। इसमें शक नहीं कि समय-समय पर सरकार शक्तिशाली गुट समूहों के प्रभाव को रोकने की कोशिश करती रही है। फिर भी गुट समूहों की माँग के आगे सरकार को प्रायः झुकना ही पड़ता है।

अमेरिका में दबाव-समूह (Pressure Groups in U.S.A)

संयुक्त-राज्य अमेरिका में दबाव-समूहों ने देश की सक्रिय राजनीति में जिस प्रकार योगदान दिया है, वह विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। यहाँ सचमुच में उन्होंने अदृश्य-साम्राज्य (Anonymous Empire) का रूप ले लिया है। इस देश में हित-समूह काँग्रेस के सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। यहीं पर सबसे पहले **'लॉबिइंग'** (Lobbying) की प्रथा आरम्भ हुई। इसी प्रक्रिया के दौरान प्रत्येक विधेयक के पक्ष अथवा विपक्ष में मतदान करने के लिए सदस्यों पर दबाव डाला जाता है। इंग्लैंड, भारत, कनाडा जैसे देशों की तुलना में अमेरिकी हित-समूह बहुत अधिक शक्तिशाली और ताकतवर है। इन देशों के विपरीत उनका सम्बन्ध शासन और विधानमंडल दोनों से प्रत्यक्ष रूप से रहता है। उन्हें अपने प्रभाव के लिए राजनीतिक दलों का सहारा नहीं लेना पड़ता है उल्टे दलों के नेता ही उनका सहयोग पाने का प्रयास करते हैं।

ग्रिफीथ ने अमेरिकी दबाव-समूहों को चार वर्गों में बाँटा है–व्यापारिक, कृषि-सम्बन्धी, श्रम-सम्बन्धी तथा बुद्धिजीवी। यह वर्गीकरण अब पुराना पड़ गया है। आजकल तरह-तरह के नये गुट-समूह पैदा हो गये हैं उनकी संख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है। अब न केवल वृहत् हितों से सम्बन्धित दबाव-समूह ही रह गये बल्कि तरह-तरह के हितों की रक्षा के लिए नए-प्रकार के गुट पैदा हो गये। उदाहरण के लिए वयोवृद्धों का अपना गुट है सरकारी कर्मचारियों का अलग है, नीग्रो अनुदार विचार वाले उपभोक्ताओं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगवादियों और देशभक्तों ने अपने गुट बनाएं हैं। व्यावसायिक आधार पर तरह-तरह के गुटों का निर्माण हुआ है, वकीलों, डॉक्टरों और शिक्षकों के अपने-अपने हित-समूह हैं। इसी प्रकार व्यापारियों और कृषकों में भी तरह-तरह के गुट पैदा हो गए हैं। मजदूर गुटों में तो अनेक प्रतिद्वन्द्वी गुटों ने जन्म लिया है। शहरी और देहाती हितों की रक्षा के लिए भी गुटों का निर्माण किया गया है। इस प्रकार आज अमेरिका में अनगिनत दबाव-समूह पाये जाते हैं। इनकी संख्या इतनी अधिक है कि उनकी पूरी सूची तैयार कर पाना मुश्किल है।

फिर भी बड़े गुट-समूह मुख्यतः आर्थिक हितों से संबन्धित हैं, खासकर व्यापार से। इनका सम्बन्ध विनिर्माण, परिवहन, बिजली और गैस की सेवाएँ, खदानों और कुछ हद तक क्रय-विक्रय सेवा उद्योगों और कृषि से सम्बन्धित हैं। थोड़े में, व्यावसायिक वर्ग मजदूर और कृषि से सम्बन्धित है, लेकिन अपने-अपने आर्थिक हितों की रक्षा के लिए बड़े पैमाने पर दबाव-समूहों की स्थापना किये हुए हैं। उदहारण के लिए, कृषक दबाव-समूहों में नेशनल गेज, अमेरिकन फारम ब्यूरो फेडरेशन, फारमर्स, एजुकेशन एण्ड कोओपरेटिव यूनियन, टीनेन्टस् एण्ड शेयर कापर्स यूनियन आदि गुटों के नाम लिये जा सकते हैं। इसी तरह श्रमिकों के भी अनेक संघ या गुट हैं जिनमें प्रमुख अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर, काँग्रेस ऑफ द इंडस्ट्रियल आर्गेनिजेशन तथा विभिन्न रेल मजदूर संगठन हैं।

दबाव समूहों का एक दूसरा बड़ा वर्ग देशभक्त और समाजसेवी संगठनों का है जैसे डॉटर्स ऑफ अमेरिकन रिवोल्युशन (Daughters of American Revolution), अमेरिकन लिजन्स (American Legions) वेटरनस ऑफ फॉरन वार्स (Vetarns of Foregin Wars), तथा नेवी लीग (Navy League) आदि। तीसरा वर्ग सुधारक गुटों का हैं, जैसे–वीमेन्स क्रिश्चियन टेम्पेरेस यूनियन (Women's Christian Temperence Union), नेशनल सिविलज सर्विसेज (National Civil Services), रिफार्म लीग (Reform League), लीग ऑफ वीमेन्स वोटर्स (League of Women's Voters) आदि।

नोट

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अमेरिका में बड़े और छोटे दबाव-समूहों तथा हित-समूहों की संख्या अनगिनत हैं। उनके स्वभाव तथा उद्देश्य भिन्न-भिन्न हैं। वे नैतिक मानव-कल्याण के उद्देश्य को लेकर राजनीतिक तथा आर्थिक हितों की प्राप्ति के लिए कायम किये गये हैं।

तकनीक–आमतौर पर सभी देशों में दबाव-समूहों द्वारा अपनाए गई तकनीकें एक समान होती है। फिर भी देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार वे विशेष प्रकार की तकनीक भी अपनाते हैं। अमेरिका में दबाव-समूहों द्वारा अपनाये गए तकनीक कई प्रकार के हैं।

दबाव-समूहों का पहला तकनीकी निर्वाचनों से भाग लेकर देश की राजनीति को प्रभावित करना है। वे प्रतिनिधियों के चुनाव में सक्रिय भाग लेते हैं। अपनी इच्छा के अनुसार उम्मीदवारों का चयन कराना और उन्हें विजयी बनाना उनका एक मुख्य काम है। अमेरिका में यह कार्य इतना व्यापक और इतनी तत्परता से किया जाता है कि हित-समूह यह चिन्ता नहीं करते कि उनका उम्मीदवार रिपब्लिकन है या डेमोक्रेट। उम्मीदवार किसी भी दल का हो, जिससे उनका हित सधता हो, उसे हित-समूह चुनाव में मदद करते हैं। उम्मीदवारों को चुनाव में विजयी बनाना दबाव-समूह की सदस्य संख्या और उसके प्रभाव पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, अमरीकी श्रमिक संघ अपने आकार और सदस्य-संख्या के कारण किसी भी सदस्य को विजयी बनाने की क्षमता रखता है, जिसकी सहानुभूति मजदूरों के प्रति हो। निर्वाचित सदस्य आमतौर पर विशेष दबाव-समूह के प्रभाव में काम करते हैं। अगले चुनाव को भी ध्यान में रखकर उसे ऐसा करना पड़ता है।

अमरिकी दबाव-समूहों का इससे भी बड़ा तकनीकी लॉबी (Lobby) तैयार करना है। लॉबी की पद्धति अमेरिकी शासन-व्यवस्था की विशेष देन है। पहले लौबी शब्द से भ्रष्टाचार, दुराग्रह, बेईमानी जैसे अवगुणों से भरे हुए गन्दगी के छोटे-छोटे समूह जाते थे, लेकिन अब लॉबी अमेरिकी शासन-पद्धति की एक मान्य और सम्मानित व्यवस्था बन गयी है। इसे अब बुरे दृष्टिकोण से नहीं देखा जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत दबाव-समूह अपने एजेण्ट्स को धन देकर राजधानी में इसलिए छोड़ देते हैं कि वे उनके हितों के संरक्षण के लिए आँकड़े तैयार करें और प्रतिनिधियों को काँग्रेस में बोलने के लिए तैयार करें और प्रतिनिधियों के बोलने के लिए सामग्री तैयार करें। **एजेण्ट्स को 'लॉबिस्ट'** (Lobbyst) कहा जाता है। चूँकि अधिकांश विधायक बोलने के लिए स्वयं सामग्री जुटाने का कष्ट नहीं उठाना चाहते हैं इसलिए उनके द्वारा लॉबिस्ट की सहायता ली जाती है। नए प्रतिनिधियों को लॉबिस्ट खिला-पिला कर तथा अन्य सुविधाएँ देकर अपने पक्ष में करने का निरन्तर प्रयास करते रहते हैं। सभी महत्त्वपूर्ण गुट अपनी लॉबियाँ वाशिंगटन में चलाते हैं। यूनाइटेड स्टेट्स चेम्बर ऑफ कॉमर्स की लॉबी तो उसके राष्ट्रीय कार्यालय का एक विभाग है, जो बड़े पैमाने पर चलायी जाती है। कुछ लॉबियाँ स्थायी होती है कुछ अस्थायी। केवल महत्त्वपूर्ण दबाव-समूह ही राष्ट्रीय स्तर रूप से संगठित लॉबियाँ रखते हैं। छोटे-छोटे हित समूह केवल समय-समय पर जरूरत के अनुसार लॉबी चलाते हैं। प्रत्येक लॉबी में साधारणत: कम-से-कम एक विधायी कार्य सम्बन्धी एजेण्ट, और अनुसंधान कार्य करने वाले कुछ दक्ष कर्मचारी होते हैं। इन लॉबी प्रचारकों पर दूर-दूर देश में फैले हुए गुटों को निर्भर रहना पड़ता है। लॉबी प्रचारक राजनीति में बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वे विधेयकों की बड़ी संख्या की जाँच-परख करते हैं, वे काँग्रेस के सदस्यों को समझाते हैं कि किस विधेयक को पारित करने में किसी विशेष लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है और उनसे सम्बन्धित विधेयकों को पारित करने से किस प्रकार आम जनता का कल्याण हो सकता है। लॉबी प्रचारक का यह एक मुख्य काम है कि वह काँग्रेस को ऐसा अनुभव कराये कि जिन विधेयकों का उसका संगठन पारित कराना चाहता है, उसके पीछे सम्पूर्ण "जनता" है। केवल रिश्वत, मुफ्त पास और चुनाव में खर्च से ही कॉग्रेस के सदस्यों को प्रभावित नहीं किया जा सकता है। उन्हें सोचने पर मजबूर किया जाता है कि लॉबी प्रचारक जो चाहता है, जनता भी वही चाहती है। इस प्रकार लॉबी प्रचारक का मुख्य काम अपने गुट के हित में जनहित को ही बदलना है।

काँग्रेस को प्रभावित करने के लिए लॉबी प्रचारक प्रत्यक्ष और परोक्ष साधनों का प्रयोग करते हैं। वे स्वयं तो काँग्रेस के सदस्यों को प्रभावित करते ही हैं, साथ ही उन पर परोक्ष रूप से प्रभाव डालने का भी प्रयास करते हैं। उदाहरण के लिए वे काँग्रेस के सदस्यों से इस ढंग से अपील करते हैं कि वे किसी विधेयक के विरुद्ध मत दें क्योंकि वह

नोट

साम्यवादी अथवा समाजवादी है और इसलिए गैर अमेरिकी है। वे यह प्रयत्न करते हैं कि लोकमत को अपने पक्ष में तैयार करें जिससे मतदाताओं का दबाव सदस्यों पर पड़ें।

लॉबी की पद्धति के विकास के कारण ही हित समूहों को मतदाताओं का संगठित समूह कहा जाने लगा है। राजनीतिक दलों के प्रभाव में ह्रास होने के कारण मतदाताओं पर दबाव-समूहों का प्रभाव पड़ा है। अब प्राय: चुनाव के समय और उसके बाद भी दोनों के व्यवहार को बहुत कुछ इन गुटों के माध्यम से समझा जा सकता है। चुनाव-अभियान में दलीय प्रत्याशी विभिन्न गुटों का समर्थन पाने की कोशिश करता है। यह ठीक ही कहा गया है कि "राजनीतिक दल अब जिस आवाज को सुनते हैं, वह जनता की ओर से बोलने का दावा करने वाले राजनीतिक नेताओं की आवाज की अपेक्षा समूहों और प्रभावक गुटों की आवाज है। यह आवाज वाशिंगटन तक भी पहुँचती है। कारण यह है कि काँग्रेस के सदस्य दलों द्वारा चुने जाते हैं, परन्तु मतदान में वे साधारणत: दल की अपेक्षा गुटों की आवाज पर अधिक ध्यान देते हैं। यही कारण है कि लॉबियाँ और उनके गुट विधायी कार्यों और पदों पर नियंत्रण करने लगते हैं। **लॉस्की** ने ठीक ही इन गुटों और लॉबियों का "काँग्रेस के पीछे एक प्रकार की काँग्रेस" कहा है।[1] यह कहना गलत नहीं है कि प्रभावक गुट और लॉबियाँ विधानमण्डल के तीसरे स्थान के रूप में काम करने लगे हैं।

प्रभावक गुटों की तीसरी कार्यविधि समितियों के माध्यम से काँग्रेस के सदस्यों को प्रभावित करना है। वे काँग्रेस सदस्य को यह विश्वास दिलाने का भरसक प्रयत्न करते हैं कि उन्हें उसके निर्वाचन क्षेत्र का पूरा समर्थन प्राप्त है और अमुक विधि पारित होने अथवा रुकने से उसके निर्वाचकों को समान लाभ होगा, तथा वे सब यही चाहते हैं, जिसकी वकालत गुट कर रहा है। इस कठिन कार्य को वे बड़ी चतुराई से करते थे। कभी-कभी तो दबाव-समूह अपने वांछित विधेयक का प्रारूप भी स्वयं तैयार करते हैं और सम्बद्ध समिति में उसे प्रस्तुत करके उसी को सदन में अग्रिम कार्यवाही के लिए भेजते हैं। चूँकि प्रभावक गुट अधिकारियों से मधुर संबंध बनाये रखते हैं इसलिए विधेयक के प्रारूप को तैयार करने का काम भी वे उन्हीं से लेते हैं। समितियों की बैठकों के समय वे काफी तत्पर रहते हैं और सदस्यों को खिला-पिलाकर तथा अन्य तरीकों से अपने पक्ष में करने का प्रयास करते रहते हैं।

दबाव-समूह की अन्तिम महत्त्वपूर्ण तकनीक लोकमत का निर्माण करना है। वे जैसा चाहते हैं, उसी के अनुसार लोकमत को मोड़ने की कोशिश करते हैं। यह कार्य भाषणों, पुस्तकों, लेखों, रेडियो, टेलीविजन आदि के माध्यम से निरन्तर और सघनता से किये जाते हैं। प्रभावक गुट प्रचार के साधनों पर काफी खर्च करते हैं। यह कहना गलत है कि दबाव-समूह केवल भ्रष्टाचार, रिश्वत और अन्य गन्दे माध्यमों का ही सहारा लेते हैं। सच पूछा जाये तो अब वे अधिक-से-अधिक परोक्ष तरीकों का सहारा लेने लगे हैं।

दबाव-समूह के कार्य–आजकल अमेरिका में दबाव-समूह का महत्त्व पहले की अपेक्षा बहुत ही अधिक बढ़ गया है। शुरू में इस देश में ऐसे गुटों को शंका की दृष्टि से देखा जाता था। लोग इन्हें लोकतन्त्र के लिए खतरनाक समझते थे। **कार्ल जे. फ्रेडरिक** ने लिखा है कि "गत पीढ़ी में इन गुटों को नैतिक क्रोध और भय की दृष्टि से देखा जाता था। गन्दे राजनीतिज्ञ तथा राजनीतिक शास्त्र के प्रबुद्ध विद्यार्थी दोनों ही इन्हें घृणास्पद समझते थे। इन्हें ऐसे दुष्ट और पापी शक्ति समझा जाता था जो आधुनिक लोकतन्त्र और सरकार की जड़ उखाड़ने को उद्यत थे। लेकिन आज बात कुछ और ही है। इन्हें लोकतन्त्र का आधार माना जाने लगा है। एक और श्रमिक वर्ग संगठित गुटों के माध्यम से शोषण विरुद्ध आवाज उठाने लगे हैं, तथा सरकार से अपने अधिकारों की माँग करने लगे हैं, दूसरी ओर पूँजीपति एवं उद्योगपति आपस में गुट बनाकर अपने हितों की रक्षा करने लगे हैं। अब ऐसे गुटों को जीवन और समाज का अस्तित्व बनाए रखने के लिए अनिवार्य माना जाने लगा है।

यह स्पष्ट है कि दबाव-समूह आज न केवल अपरिहार्य है, बल्कि उनका औचित्य भी न्यायसंगत है। ये सरकार की नीतियों के निर्माण में सहायता प्रदान करते हैं। ये विभिन्न हितों, मजदूरों, शिक्षकों, व्यापारियों आदि की आवाज संगठित रूप से सरकार तक पहुँचाने से सफल रहे हैं। आज यह तर्क पुराना पड़ गया है कि लॉबिइंग एक भ्रष्ट और बेईमान तरीका है। यदि कोई दबाव-समूह नियंत्रित तरीके से काम नहीं करता है या अगर भ्रष्टाचार का रास्ता अपनाता है तो यह सरकार की कमजोरी है। यही कारण है कि अमेरिका में दबावसमूह को एक सही और दुरुस्त राजनीतिक अस्त्र के रूप में अपना लिया गया है।

नोट

इतना ही नहीं, दबाव-समूह व्यक्ति की गरिमा की रक्षा करने और उनके विवेक को बढ़ाने में भी सहायता पहुँचाते हैं। हर देश और सरकार में ऐसे व्यक्तियों का अभाव नहीं हैं जो सरकार की नीतियों की आलोचना करते हैं, निरन्तर करते हैं और पूरी शक्ति से करते हैं, परन्तु सरकार के कानों में जूँ तक नहीं रेंगती। उस व्यक्ति के विचारों या भाषणों का सरकार पर प्रभाव नहीं पड़ता, लेकिन जब ऐसे ही व्यक्ति समाज और सरकार पर अपना प्रभाव डालने में सफल हो जाते हैं। खासकर अमेरिका जैसे बड़े-बड़े और विकासशील देशों में इस दृष्टिकोण से दबाव-समूहों की नितान्त आवश्यकता है। इसके अभाव में व्यक्ति के विचारों, उसकी गरिमा और उसके विवेक का कोई महत्त्व नहीं रह जायेगा। यही कारण है कि नहीं चाहने के बावजूद दबाव-समूह का विकास बड़ी तेजी से हुआ है।

अमेरिका में यह देखा जाता है कि दो चुनावों के बीच राजनीतिक शिथिलता आ जाती है। दलों का नामोनिशान, खास कर स्थानीय स्तर पर मिट ही जाता है। दबाव-समूह इस अन्तराल में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। वे सरकारों के अन्तराल में तथा निर्वाचनों की अवधि में विचार शैथिल्य को रोकते हैं तथा जन-जीवन में राजनीति के प्रति उत्साह एवं रुचि उत्पन्न करते हैं। चुनावों के बाद वे अपने ज्ञात अनुभव, विशेषता तथा सांख्यिकी आदि की सहायता से विधानमण्डल एवं समितियों को प्रभावित करते हैं और अपने हित के अनुसार कानून बनवाने का प्रयास करते हैं। आर्थिक मामलों में उनका दबाव बहुत ज्यादा रहता है। वे मजदूरी की दर में कमी-वेशी करवा सकते हैं, काम करने के घंटों में कमी करवा सकते हैं, व्यवसाय की सेवा-शर्तों में तब्दीली ला सकते हैं। ऐसे ही कार्यों की सिद्धि के लिए वे सरकार को प्रभावित करने में लगे रहते हैं। लॉबी की प्रथा के विकास का यही राज है। विभिन्न गुटों की लॉबियाँ सालों भर वाशिंगटन और राज्य की राजधानियों में काम करती रहती हैं, तथा कानून और प्रशासन को प्रभावित करती रहती हैं।

अमेरिका में दबाव समूह लोकमत और सरकारी नीतियों के बीच एक बाँध के समान काम करते हैं। वे विभिन्न व्यवसायिक और आर्थिक हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं और सरकार से उन हितों की रक्षा के लिए सम्पर्क स्थापित करते हैं। इस सम्बन्ध में **पी. हेरिंग** ने लिखा है कि "प्रभावक गुट व्यवसायिक और आर्थिक हितों में विभाजित समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हुए शक्तियों के प्रति ध्यान आकर्षित करते हैं, जिनके मतभेदों के बीच समता होनी चाहिए और जिनमें समन्वय स्थापित होना चाहिए।"[1]

प्रजातन्त्र की एक विचारणीय समस्या है कि सभी लोगों को किसी प्रकार समुचित प्रतिनिधित्व दिया जाए। प्रतिनिधियों का चुनाव भौगोलिक और क्षेत्रीय आधार पर होता है। इस आधार पर चुने गये प्रतिनिधि सभी हितों का समान रूप से प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते हैं। अत: विशेष हितों के प्रतिनिधित्व की समस्या बनी रह जाती है। दबाव-समूह इस कमी को पूरा करते हैं। खासकर अमेरिका ऐसे देश में, जहाँ हितों और व्यवसायों की भरमार है, प्रतिनिधित्व के दृष्टिकोण से दबाव-समूह का महत्त्व बढ़ जाता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि अधिकांश व्यक्तियों के लिए दबाव-समूह ही सच्चा प्रतिनिधि का काम करते हैं।

यह स्पष्ट है कि अमेरिका में दबाव-समूहों का प्रभाव किसी देश से अधिक है उन्हें 'अदृश्य साम्राज्य' कहना गलत नहीं होगा। आज उनका प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया है कि उन्हें वैधानिक ताने-बाने में सीमित और नियंत्रित करने की योजना भी बनायी जा रही है।

फ्रांस में दबाव-समूह (Pressure groups in France)

दबाव-समूह का जितना प्रभाव अमेरिका, ब्रिटेन या भारत में है उतना फ्रांस में नहीं है। चूँकि शासन-शक्ति व्यवस्थापिका के आँचल से निकलकर कार्यपालिका के हाथ में चली गई है इसलिए दबाव-समूह का प्रभाव फ्रांस में कम हो गया है। फिर भी ऐसी बात नहीं है कि फ्रांस में दबाव-समूह समाप्त हो गया है। उसका महत्त्वपूर्ण अस्तित्व फ्रांस में विद्यमान है।

फ्रांस में आज भी बहुत से संगठनों का प्रभुत्व कायम है। उदाहरणार्थ फ्रांस में बड़ी व्यापारिक संस्थाएँ (Large Business Concerns), Confederation Nationable du Patronat Francais (C.N.P.F) में मुख्य रूप से संगठित हैं जिस पर बहुत-बड़ी टैक्सटाइल, स्टील और केमिकल फर्मों का प्रभुत्व कायम है। संयुक्त राज्य अमेरिका के

नोट

नेशनल एसोसिएशन ऑफ मैनुफैक्चर्स (National Association of Manufactures) से किसी भी मामलों में फ्रांस के ये संगठन कमजोर नहीं है। इनके प्रभाव की तुलना इस अमेरिकी संगठन से बखूबी की जा सकती है। C.N.P.F. की शाखा के रूप में छोटे व्यवसायिक संस्थान, व्यवसायिक दुकानदार आदि 'Confederation General deg Petitest Mayenne Enterprises' (P.M.E.) में संगठित हैं। वैसे ये शाखाएँ पूर्णरूपेण स्वायत्तशासी हैं और C.N.P.F. इन संस्थानों पर विश्वस्त नहीं हैं।

फ्रांस के किसान भी हित-समूहों के रूप में संगठित हैं। उनके सात प्रार के वृहत् हित-समूह हैं। इन सात प्रकार के हित-समूह की चोटी पर फेडेरेशन नेशनल डेस सिन्डीकेट डु एक्सप्लायटेण्टस एग्रीकोल्स (Federetion National des Syndicate du Exploitants Agricoles) (F.N.S.E.A) है। F.N.S.E.A. की सदस्य संख्या लाखों में है। इनके लक्ष्य अन्य देशों के किसान दबाव-समूह की तरह ही हैं।

वैसे यह देखा जाता है कि फ्रांस में श्रमिक-संघ (Labour Union) अन्तर्कलह से ग्रसित हैं, फिर भी उनकी गतिविधियाँ परम्परागत लॉबी को संचालित करते हैं तथा उनकी चोटी पर (Confederation General du Travail (C.C.T.) अवस्थित है। इसके अलावा बहुत से महत्त्वपूर्ण संघ हैं जिनमें (The Catholic Confederation Francias des Travaileurs Chretiens) (C.F.T.C.) और समाजवादियों द्वारा संचालित लगभग 4 लाख सदस्यों वाला (Confederation General du Travail Force Overare (C.G.T.F.O.) है। प्रत्येक संघ सामाजिक सुरक्षा के मामले में अपने संघ के सदस्यों और सरकारी विभागों के बीच मध्यस्थता का काम करता है। उदाहरण के तौर पर श्रमिकों का दबाव-समूह, डिटिरयों और प्रशासकों पर एक जैसा डाला जाता है। फिर भी फ्रांसीसी श्रमिक संघों को लॉबी की गतिविधियों में ब्रिटिश और अमेरिकी संघों की तुलना में कम सफलता मिली है। फ्रांसीसी हित-समूह में परिवार संघ समाज कल्याणकारी विद्यालय कार्य के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। लिपिल-समूह भी फ्रांस का एक दबाव-समूह ही है जिसका उद्देश्य ग्रामीण और निजी विद्यालयों के लिए राजकीय सहायता प्राप्त करना है।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks)–

1. ब्रिटेन के दबाव समूहों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है ..... और ..... ।
2. ..... को पुनः दो भागों में बाँटा जा सकता है–उत्पादन समूह (Producer group) और उपभोक्ता समूह (Consumer group)।
3. सबसे पहले लॉबिंग की प्रथा ..... में आरम्भ हुई।
4. अमेरिका में हित समूह ..... का रूप ले चुका है।
5. फ्रांस के ..... भी हित समूह के रूप में संगठित हैं।

13.5 सारांश (Summary)

- राजनीतिक दल का आशय नागरिकों के ऐसे समूह से है जो सार्वजनिक प्रश्नों के विषय में समान विचार रखता है और राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हुए अपनी कल्पित नीति को विस्तार देने के लिए शासनतन्त्र को हस्तगत करना चाहता हो।
- राजनीतिक दल प्रजातन्त्र की आधारशिला है। दोनों में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। दलों के बिना प्रजातन्त्र जीवित नहीं रह सकता है। उन्हें "प्रजातन्त्र का प्राण" कहा जाता है। वे शासन व्यवस्था के एक अभिन्न अंग हैं। उन्हें सरकार का 'चतुर्थ अंग' (Fourth organ of the Government) कहा गया है।
- राजनीतिक दल प्रजातन्त्र में शिक्षा के साधन हैं। ये जनता को विभिन्न प्रकार से राजनीतिक शिक्षा प्रदान करते हैं। ये जनता को सार्वजनिक प्रश्नों एवं समस्याओं के प्रति जागरूक रहने की शिक्षा देते हैं। राजनीतिक दल जनता के समक्ष हर समस्या के विभिन्न तथा विरोधी पहलुओं को रखते हैं जिससे जनता को राजनीतिक

नोट

समस्याओं का ज्ञान प्राप्त होता है, उनमें राजनीतिक चेतना आती है, जनतन्त्र की सफलता के लिए एक स्वस्थ और चेतनशील राजनीतिक वातावरण की आवश्यकता है।

- राजनीतिक दल शासन के विभिन्न अंगों के बीच कड़ी का काम करते हैं। सरकार पृथक्-पृथक् विभागों में बँटी रहती है। लेकिन सम्पूर्ण सरकार एक सावयव के समान है। अत: यदि विभिन्न विभागों में सामंजस्य स्थापित न किया जाय तो शासन-यंत्र का पुर्जा-पुर्जा अलग हो जायगा और सरकार विफल हो जायगी। राजनीतिक दल विभिन्न विभागों में सामंजस्य स्थापित करने का सर्वोत्तम साधन है। संसदीय प्रणाली में व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका में अभिन्न संबंध रहता है क्योंकि दोनों के सदस्य एक ही दल के अनुशासन तथा कार्यक्रमों से बँधे रहते हैं। अध्यक्षात्मक प्रणाली में भी दलों का महत्त्व इस अर्थ में काफी बढ़ जाता है क्योंकि विभिन्न शासन-अंगों की पूर्ण पृथकता को दल-व्यवस्था से ही दूर किया जाता है।
- राजनीतिक दल ब्रिटिश शासन-प्रणाली की विशेष बुनियाद का मूलाधार है। यह कहना अनुचित न होगा कि ब्रिटिश संविधान के विकास में राजनीतिक दलों का भी संगठन हुआ और मताधिकार के प्रसार के साथ-साथ यह संगठन अधिकाधिक जटिल, सुदृढ़ एवं अनुशासनबद्ध होता गया। ब्रिटिश शासन की संसदीय विशेषताओं के सफल संचालन में राजनीतिक दलों का मुख्य हाथ है आम चुनाव, मंत्रिमंडल का गठन एवं कार्यकरण, संसद् की कार्यवाहियों का संचालन, सरकारी नीतियों का निर्धारण, जनता का शासन पर नियंत्रण आदि संसदीय विशेषताओं की अभिव्यक्ति दलीय व्यवस्था के माध्यम से ही होता है। वहाँ सम्राज्ञी की सरकार (Her Majesty's Government) दल की सरकार है और विरोधी दल साम्राज्ञी का विरोधी दल (Her Majesty's Opposition) है। इंग्लैंड में राजनीतिक दलों का यद्यपि कोई वैधानिक अस्तित्व नहीं है। तथापि उनके अभाव में अंग्रेजी शासन-व्यवस्था का समस्त स्वरूप ही बदल जाएगा और इसकी अनेक परम्पराएँ तथा अभिसमय नष्ट हो जाएगी।
- ब्रिटिश दल-प्रथा का सबसे प्रमुख विशेषता द्विदलीय व्यवस्था (Two party system) है। ब्रिटेन में सदा दो दल रहे हैं। जब कभी भी तीसरे दल का जन्म हुआ है मतदाताओं ने चुनाव में एक दल को समाप्त कर दिया है। प्रारम्भ में **'द्विगु'** और **'टोरी'** फिर अनुदार दल और उदार दल तथा आजकल अनुदार दल और मजदूर दल हैं।
- अमेरिका में भी द्विदलीय प्रथा है; किन्तु फ्रांस में बहुदलीय व्यवस्था है। इसका कारण यह है कि अँग्रेजी स्पष्ट बहुमतवाली सरकार तथा वृहत् राजनीतिक और आर्थिक आधारों पर अवस्थित राजनीतिक दलों के पक्ष में है। यों तो साम्यवादी दल और उदार दल—जैसे छोटे-छोटे दल हैं लेकिन उसका स्थान नगण्य है।
- ब्रिटिश दल-व्यवस्था की दूसरी विशेषता केन्द्रीकरण (Centralization) है। सारा दल ऊपर से नीचे तक, एक सूत्र में बँधा रहता है। दल के नेताओं तथा दल के केन्द्र पर पूरे दल पर नियंत्रण रहता है। इसके विपरीत अमेरिका में विकेन्द्रीकरण दलों की विशेषता है।
- केन्द्रीयकरण का स्वाभाविक परिणाम है—अनुशासन। ब्रिटेन में राजनीतिक दल अमेरिकी दलों की अपेक्षा बहुत ज्यादा अनुशासित हैं। अमेरिका में काँग्रेस के अन्दर या उसके बाहर अनुशासन की इतनी कमी है कि रिपब्लिकन या डेमोक्रेटिक दल के अनुयायी अपने नेताओं की आज्ञा का पालन नहीं करते तथा मनमाने रूप से किसी विधेयक पर मतदान करते हैं। इंग्लैंड की संसद में सदस्यों को किस समय बोलना है, क्या बोलना है तथा किस विधेयक के पक्ष या विरोध में मत देना है यह सब दल-सचेतक निश्चित करते हैं।
- दल का केन्द्रीय संगठन पूरे राष्ट्र में संगठित दल को नियंत्रित करता है। दल की स्थानीय इकाइयों को संगठन के केन्द्रीय निर्देशन के अन्दर काम करना पड़ता है। दल का कोई सदस्य राष्ट्रीय नेताओं के बाहर नहीं जा सकता है।
- चीनी साम्यवादी दल का संगठन सोवियत साम्यवादी दल से मिलता-जुलता है। इसका संगठन पिरामिड (Pyramid) के आकार का है। एक अंग के ऊपर दूसरा अंग होता है। नीचे से लेकर ऊपर तक सभी

नोट

अंग श्रृंखला–बद्ध (Hierarchical) तथा व्यवस्थित है। इस पिरामिड का आधार स्थानीय दल संगठन अथवा सेल (Cell) है और शीर्ष पर दल की केन्द्रीय समिति का पोलित ब्यूरो (Polit Bureau) है। इन विभिन्न स्तरीय संगठनों के संबंध का आधार प्रजातांत्रिक केन्द्रवाद (Democratic Centralism) है।

- सबसे निम्न स्तर स्थानीय दल–संगठन अथवा सेल (Cell) होते हैं। उनके ऊपर ग्रामीण तथा शहरी काँग्रेस होती है। ये पुन: काउण्टी या म्युनिसिपल काँग्रेस के सदस्यों को चुनती है। काउण्टी या म्युनिसिपल काँग्रेस के ऊपर प्रादेशिक काँग्रेसों और उनके ऊपर केन्द्रीय राष्ट्रीय काँग्रेस होती है। दलीय संगठन की एक प्रमुख विशेषता यह है कि निम्न स्तर का संगठन अपने से ऊपरी स्तर के संगठन का चुनाव करता है।
- **पोलितब्यूरो** (Polit Bureau): केन्द्रीय समिति द्वारा निर्वाचित एक छोटा कार्यकारी निकाय है। उसकी सदस्य संख्या 50 है। यह दल का प्रमुख राजनीतिक अंग है। यह सम्पूर्ण दल के संगठन को संचालित करता है। यह दल की केन्द्रीय समिति के अधिवेशन को आमंत्रित करता है।
- पोलित ब्यूरो से भी प्रभावकारी तथा क्रियाशील निकाय उसका स्थायी समिति (Standing Commitee) है। यह सम्पूर्ण दल का मस्तिष्क है। इसमें दल के राष्ट्रीय स्तर के उच्चकोटि के इने–गिने नेता स्थान पाते हैं। जैसे चाऊ एन लाई, माओ–त्से–तुंग, लिऊ शाओ–ची, चाऊ तेह, चेन युन, लिन प्याओ जैसे शिखर के नेता। इन समितियों की स्थिति राष्ट्रीय नीति निर्माण में सर्वोपरि है।
- इंग्लैंड के दबाव समूह दल के अन्दर ही सक्रिय प्रभाव डालते हैं। अनुदार दल और मजदूर दल दोनों में से प्रत्येक से कोई–न–कोई गुट सम्बद्ध रहता है। उदाहरण के लिए श्रमिक संघ साधारणत: मजदूर दल से और कृषक दल साधारणत: अनुदार दल से सम्बन्ध रखते हैं। ब्रिटेन में दबाव–समूह के विकसित नहीं होने का एक कारण यह भी है कि वहाँ निजी विधेयकों की सामान्यत: उपेक्षा की जाती है और उनके पारित होने की सम्भावना कम होती है। अत: दबाव समूह दलों के अन्दर ही अपना प्रभाव प्रदर्शित करते हैं तथा अदृश्य रूप से अपने कार्य करवा लिया करते हैं।
- ब्रिटेन के दबाव समूहों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है–हित (Interest Groups) और वैचारिक समूह (Ideas Groups) हित समूहों को पुन: दो भागों में बाँटा जा सकता है–उत्पादक समूह (Producer Groups) और उपभोक्ता समूह (Consumer Groups)।
- 1965 में ब्रिटिश उद्योग परिसंघ (Confederation of British Industries) की स्थापना हुई जो उद्योगों से संबंधित बड़े–बड़े राष्ट्रीय संघों को मिलाकर बना है। ब्रिटिश उद्योग संघ (Confederation of British Industries), ब्रिटिश नियोजक परिसंघ (British Employer Confederation) और ब्रिटिश राष्ट्रीय संघ (National Association of British Manufactures) मुख्य दबाव समूह हैं जो ब्रिटिश उद्योग परिसंघ का निर्माण करते हैं। परिसंघ एक बहुत बड़ा संगठन है, जो अपने सदस्यों को व्यावसायी, शिक्षा, निर्यात आदि से संबधित परामर्श देता है।
- वैचारिक समूह (Ideas Groups) हित समूह से भिन्न होते हैं। वे भौतिक फायदे के लिए नहीं, बल्कि कुछ विचारों को बढ़ावा देने के लिए बसाए जाते हैं। उनके सामने कुछ आदर्श रहते हैं, जिनकी प्राप्ति के लिए वे संगठित होते हैं तथा प्रयास करते हैं जैसे नेशनल कम्पेन फार द एबोलिशन ऑफ केपिटल पनिशमेंट (National Compaign for the Abolition of Capital Punishment) एक आदर्श से प्रेरित था।
- संयुक्त–राज्य अमेरिका में दबाव–समूहों ने देश की सक्रिय राजनीति में जिस प्रकार योगदान दिया है, वह विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। यहाँ सचमुच में उन्होंने अदृश्य–साम्राज्य (Anonymous Empire) का रूप ले लिया है। इस देश में हित–समूह काँग्रेस के सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। यहीं पर सबसे पहले **'लॉबिइंग'** (Lobbying) की प्रथा आरम्भ हुई।

नोट

- आजकल अमेरिका में दबाव-समूह का महत्त्व पहले की अपेक्षा बहुत ही अधिक बढ़ गया है। शुरू में इस देश में ऐसे गुटों को शंका की दृष्टि से देखा जाता था। लोग इन्हें लोकतन्त्र के लिए खतरनाक समझते थे। **कार्ल जे. फ्रेडरिक** ने लिखा है कि "गत पीढ़ी में इन गुटों को नैतिक क्रोध और भय की दृष्टि से देखा जाता था। गन्दे राजनीतिज्ञ तथा राजनीतिक शास्त्र के प्रबुद्ध विद्यार्थी दोनों ही इन्हें घृणास्पद समझते थे। इन्हें ऐसे दुष्ट और पापी शक्ति समझा जाता था जो आधुनिक लोकतन्त्र और सरकार की जड़ उखाड़ने को उद्यत थे। लेकिन आज अमेरिका में यह देखा जाता है कि दो चुनावों के बीच राजनीतिक शिथिलता आ जाती है। दलों का नामोनिशान, खास कर स्थानीय स्तर पर मिट ही जाता है। दबाव-समूह इस अन्तराल में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। वे सरकारों के अन्तराल में तथा निर्वाचनों की अवधि में विचार शैथिल्य को रोकते हैं तथा जन-जीवन में राजनीति के प्रति उत्साह एवं रुचि उत्पन्न करते हैं। इन्हें लोकतन्त्र का आधार माना जाने लगा है।
- दबाव-समूह का जितना प्रभाव अमेरिका, ब्रिटेन या भारत में है उतना फ्रांस में नहीं है। चूँकि शासन-शक्ति व्यवस्थापिका के आँचल से निकलकर कार्यपालिका के हाथ में चली गई है इसलिए दबाव-समूह का प्रभाव फ्रांस में कम हो गया है। फिर भी ऐसी बात नहीं है कि फ्रांस में दबाव-समूह समाप्त हो गया है। उसका महत्त्वपूर्ण अस्तित्व फ्रांस में विद्यमान है।
- फ्रांस में आज भी बहुत से संगठनों का प्रभुत्व कायम है। उदाहरणार्थ फ्रांस में बड़ी व्यापारिक संस्थाएँ (Large Business Concerns), Confederation Nationable du Patronat Francais (C.N.P.F) मुख्य रूप से संगठित हैं जिस पर बहुत-बड़ी टैक्सटाइल, स्टील और केमिकल फर्मों का प्रभुत्व कायम है। संयुक्त राज्य अमेरिका के नेशनल एसोसिएशन ऑफ मैनुफेक्चर्स (National Association of Manufactures) से किसी भी मामलों में फ्रांस के ये संगठन कमजोर नहीं है। इनके प्रभाव की तुलना इस अमेरिकी संगठन से बखूबी की जा सकती है।
- फ्रांस के किसान भी हित-समूहों के रूप में संगठित हैं। उनके सात प्रकार के वृहत् हित-समूह हैं। इन सात प्रकार के हित-समूह की चोटी पर फेडरेशन नेशनल डेस सिन्डीकेट डु एक्सप्लायटेण्टस एग्रीकोल्स (Federation National des Syndicate du Exploitants Agricoles) (F.N.S.E.A) है। F.N.S.E.A. की सदस्य संख्या लाखों में है। इनके लक्ष्य अन्य देशों के किसान दबाव-समूह की तरह ही हैं।

13.6 शब्दकोश (Keywords)

- **औचित्य** : उपयुक्तता
- **वैचारिक समूह** : ये समूह भौतिक फायदे के लिए नहीं कुछ वैचारिक फायदे को बढ़ावा देने के लिए जाने जाते हैं।

13.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. राजनीतिक दल का अर्थ एवं परिभाषा बताइये।
2. यूएसए, यूके और फ्रांस में राजनीतिक दलों के स्वरूप एवं सांगठनिक ढाँचे का विवेचन कीजिए।
3. चीनी गणराज्य में साम्यवादी दल की भूमिका का विवेचन कीजिए।
4. हित समूह (Interest group) अथवा दबाव समूह (Pressure group) की यूके, यूएसए और फ्रांस में क्या भूमिका है? हित समूह अथवा दबाव समूह के महत्व का वर्णन कीजिए।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. हित और वैचारिक समूह
2. हित समूह
3. अमेरिका
4. अदृश्य साम्राज्य
5. किसान।

13.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *तुलनात्मक शासन एवं राजनीति*–डॉ. बीरकेश्वर प्रसाद सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन (पी. एण्ड डी.) 24, दरियागंज, अंसारी रोड, दिल्ली।
2. *तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ*–सी.बी. गेना, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड, दिल्ली।
3. *तुलनात्मक राजनीति*–जे.सी. जौहरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि., दिल्ली।
4. *तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा*– ओम प्रकाश गाबा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।

नोट

इकाई–14: भू-मण्डलीकरण (Globalization)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
14.1 तुलनात्मक राजनीति और भूमण्डलीकरण (Comparative Politics and Globalization)
14.2 विकसित और विकासशील समाजों की अनुक्रिया (Responses from Developed and Developing Societies)
14.3 सारांश (Summary)
14.4 शब्दकोश (Keywords)
14.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
14.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- तुलनात्मक राजनीति और भूमण्डलीकरण के सह-सम्बंधों को विवेचित करने में।
- विकसित और विकासशील समाजों अथवा देशों की अनुक्रिया को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

तुलनात्मक राजनीति आधुनिक राजनीति विज्ञान की महत्त्वपूर्ण देन है। **मैक्रीडिर्स** (Macridis) तथा **वार्ड** (Ward) के शब्दों में, "तुलनात्मक राजनीति एक ऐसा गाईड (Guide) या मार्गदर्शक है, जो घर बैठे-बिठाए हमें देश-विदेश की सैर करा देता है। शासन और राजनीति के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा हम यह जान सकते हैं कि विभिन्न देशों के निवासियों के राजनीतिक आचरण और उनके राजनीति आदर्शों में क्या भिन्नताएँ हैं तथा वे एक जैसी समस्याओं का समाधान किन तरीकों से करते हैं।" यद्यपि यह अध्ययन ऐतिहासिक काल से चला आ रहा है तथापि इसका महत्त्व आधुनिक युग में ही बढ़ा है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक विषय के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए तुलनात्मक अध्ययन अनिवार्य है और बिना तुलनात्मक अध्ययन के किसी भी विषय की वैज्ञानिक व्याख्या सम्भव नहीं है। यही बात राजनीति विज्ञान पर लागू होती है। **जे०सी० जौहरी** (J.c. Johri) ने तुलनात्मक विश्लेषण के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए ठीक लिखा है कि "शक्ति संघर्ष में लिप्त विभिन्न राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं के अनुभववादी अन्वेषण के क्षेत्र में यह सृजनात्मक तथा सम्वर्द्धनात्मक आधार प्रस्तुत करता है।"

14.1 तुलनात्मक राजनीति और भूमण्डलीकरण (Comparative Politics and Globalization)

शासन और राजनीति के तुलनात्मक अध्ययन की उपयोगिता तथा महत्त्व का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :-

1. राजनीतिक व्यवहार को समझना (To understand Political Behaviour) **:** शासन और राजनीति के तुलनात्मक अध्ययन की उपयोगिता यह है कि इससे राजनीति व्यवहार को समझने में सहायता मिलती है। तुलनात्मक

नोट

अध्ययन द्वारा हम राष्ट्रीय, अन्य राष्ट्रों तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एवं राजनीतिक व्यवहार को अच्छी तरह समझ सकते हैं। तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा ही हमें यह पता चलता है कि विभिन्न समाजों के लोगों का राजनीति व्यवहार परस्पर भिन्न क्यों होता है। यह सम्भव है कि दो देशों की परिस्थितियाँ एक जैसी होने के बावजूद भी राजनीतिक क्रिया अलग-अलग हो। प्राचीन काल में आम जनता राजनीति में कोई रूचि नहीं रखती थी परन्तु आधुनिक युग में जनता इसमें रुचि लेने लग गई है। अब राजनीति कुछ लोगों तथा विशेष वर्गों तक ही समिति नहीं रह गई बल्कि इसमें लाखों–करोड़ों लोग भाग लेते हैं। आज राजनीतिक गतिविधियाँ प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करती हैं और उस को एक विशेष प्रकार का व्यवहार करने के लिए बाध्य करती हैं। इसलिए सभी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं में आम व्यक्ति अधिक रुचि लेने लगा है।

प्रत्येक समाज में अभिजनों (Elite) तथा बुद्धिजीवियों को विशेष स्थान प्राप्त होता है। यही नहीं राजनीतिक विचारों का प्रचलन, परीक्षण व मूल्यांकन करके राजनीतिक जीवन को नया रूप देते हैं। वे राजनीतिक समाज में नवीन विचारों को सुदृढ़ता से स्थापित करते हैं। वे अन्य देशों में राजनीति का बड़ी गहराई से अध्ययन करते हैं तथा उनकी तुलना अपनी देश की शासन व्यवस्था से करके ऐसे सुझाव देते हैं जो शासकों तथा शासितों के हित में हों। इस प्रकार बुद्धिजीवी राजनीतिक व्यवहार तथा देश के मार्गदर्शक तथा सचेतक बन जाते हैं परन्तु बुद्धिजीवी यह सब कुछ तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन से ही प्राप्त कर सकते हैं। राजनीति का तुलनात्मक अध्ययन विदेशों में पर्यटन के समान है।

क्या आप जानते हैं तुलनात्मक राजनीति अध्ययन आम जनता को विभिन्न स्तरों पर होने वाले राजनीतिक घटना-चक्रों का ज्ञान कराता है।

2. राजनीतिक व्यवस्थाओं की समानताओं और विभिन्नताओं को समझना (To understand the Similarities and Differences between Political System) : व्यवहार में राजनीतिक संस्थाओं के नाम एक जैसे होने के बावजूद भी कार्य एक जैसे नहीं होते। उदाहरणस्वरूप अमरीका, फ्रांस और भारत में कार्यपालिका के अध्यक्ष को राष्ट्रपति (President) कहते हैं परन्तु इन तीनों देशों में न तो राष्ट्रपति के कार्य एक जैसे हैं और न ही इन देशों की शासन प्रणालियाँ एक जैसी हैं परन्तु राजनीतिक संस्थाओं के इस व्यावहारिक रूप को समझने के लिए शासन और राजनीति का तुलनात्मक अध्ययन करना बहुत आवश्यक है। क्यूबा और चीन में एक ही दल पाया जाता है और वह है साम्यवादी दल। मिस्र और तंजानिया में भी एक दलीय पद्धति पाई जाती है। अत: राजनीतिक व्यवस्थाओं की समानताओं तथा असमानताओं को समझने के लिए तुलनात्मक अध्ययन बहुत सहायक है।

3. किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के संदर्भ का ज्ञान (Knowledge Regarding Contextual Elements of any System) : शासन और राजनीति का तुलनात्मक अध्ययन किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के संदर्भ को समझने में सहायक सिद्ध होता है। उदाहरणस्वरूप प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्यों संसदीय शासन प्रणाली इंग्लैंड में सरकार में स्थायित्व ला सकी परन्तु फ्रांस में सरकारों की अस्थिरता का कारण बनी? ब्रिटेन, अमरीका, आस्ट्रेलिया इत्यादि देशों में दो दलीय प्रणाली क्यों है जबकि भारत और फ्रांस इत्यादि देशो में बहु-दलीय प्रणाली है। तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर ही हम कह सकते हैं कि फ्रांस की अपेक्षा इंग्लैंड में संसदीय शासन प्रणाली सफल रही क्योंकि इंग्लैंड में संसदीय शासन प्रणाली का विकास औद्योगीकरण से पूर्व हो चुका था जबकि फ्रांस में संसदीय शासन प्रणाली का विकास औद्योगीकरण के पश्चात् हुआ।

4. राजनीतिक प्रणालियों के गुणों तथा दोषों का पता चलता है (Merits and Demerits of Political System are Revealed) : शासन और राजनीति के तुलनात्मक अध्ययन से हमें विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों के गुणों तथा दोषों का पता चलता है। तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा ही पता चलता है कि अमुक देश में अमुक शासन पद्धति क्यों सफल है और उनके गुण कौन से हैं। उदाहरणस्वरूप इंग्लैंड में संसदीय शासन प्रणाली सफल है जबकि भारत में उतनी सफल नहीं है। तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा पता लगाया जा सकता है कि इंग्लैंड में संसदीय शासन प्रणाली के सफल

नोट

होने के क्या कारण हैं और भारत में असफल होने के क्या कारण हैं। तुलनात्मक अध्ययन से ही यह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है कि संसदीय तथा अध्यक्षात्मक पद्धतियों को सफल बनाने के लिए किन शर्तों (conditions) का होना आवश्यक है।

5. राजनीति को वैज्ञानिक अध्ययन बनाना (Making Politics a Scientific Study) :- तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन को एक वैज्ञानिक अध्ययन बनाता है। आरम्भ से ही राजनीति शास्त्र के विद्वान् एवं विचारक राजनीति को विज्ञान बनाने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। राजनीति शास्त्र को विज्ञान बनाने के लिए वैज्ञानिक पद्धतियों का होना भी आवश्यक है। और वैज्ञानिक पद्धतियों में तुलनात्मक पद्धति का बहुत महत्त्व है। अरस्तू ने 158 संविधानों का अध्ययन करने के पश्चात् क्रांति के कारणों और क्रांति को रोकने के उपायों का विवेचन किया था। तुलनात्मक राजनीति, राजनीतिक प्रक्रियाओं पर प्रयोग करके निश्चितता को निर्धारित करती है। सन् 1945 के बाद, जब से व्यवहारवाद का जन्म हुआ है, तब से आज तक राजनीति शास्त्र की वैज्ञानिकता की खोज की आधुनिकतम अभिव्यक्ति हम तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन में ही पाते हैं। व्यवहारवाद ने तुलनात्मक राजनीति को विज्ञान का रूप देने में सहायता की है। **पीटर एच. मर्कल (Peter H. Merkel)** के अनुसार "तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर ही राजनीति शास्त्र विज्ञान की श्रेणी में आ सका है और सम्भवत: इसलिए अरस्तू के बाद से आज तक प्रतिष्ठित और श्रेष्ठतम विचारक राजनीति के तुलना में रूचि लेते रहे हैं।" राजनीति का तुलनात्मक अध्ययन करते समय पहले अमरीका, फ्रांस, ब्रिटेन आदि यूरोप के देशों के शासन तथा राजनीति का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता था, लेकिन अब एशिया और अफ्रीका के विकासशील देशों में शासन एवं राजनीति का भी तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इसी तरह पहले केवल औपचारिक संस्थाओं विधानमण्डल, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका का अध्ययन किया जाता था, लेकिन अब अनौपचारिक संस्थाओं–दबाव समूहों, मतदान, जनमत आदि का भी अध्ययन किया जाता है। अत: तुलनात्मक पद्धति पहले की अपेक्षा अधिक व्यापक और उपयोगी बन गई है जिस कारण वह अधिक वैज्ञानिक बन गई है।

6. प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तों की पुन: प्रमाणिकता (Re-validification of Existing Political Theories) : तुलनात्मक राजनीति की महत्त्वपूर्ण उपयोगिता यह है कि इसकी सहायता से प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तों का, चाहे वे आदर्शवादी सिद्धांत हों या आनुभविक सिद्धान्त, पुन: परीक्षण किया जाता है और उनकी प्रमाणिकता जाँची जाती है। हम तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि पुराने स्थापित राजनीतिक सिद्धान्त वर्तमान की परिवर्तित परिस्थितियों में भी मान्य हैं या नहीं और यदि मान्य हैं तो कितने उचित और कितने अनुचित हैं। तुलनात्मक राजनीति स्थापित राजनीतिक सिद्धान्तों की पुन: जाँच करने के लिए नवीन उपकरण व नवीनतायुक्त विविध तथ्य उपलब्ध कराती है ताकि उनकी प्रमाणिकता का पुन: परीक्षण सम्भव हो। एक समय था जब लोकतन्त्र के राजनीति पक्ष पर जो दिया जाता था परन्तु अब राजनीतिक पक्ष के साथ-साथ आर्थिक पक्ष पर भी बल दिया जाता है।

7. राष्ट्रों के घनिष्ठ सम्बन्धों के कारण तुलना अनिवार्य (Close Relations Between Countries Led to Comparison) :आज संसार के सभी देश एक दूसरे के समीप आ गए हैं। विज्ञान की उन्नति, संचार तथा यातायात के साधनों के विकास ने देशों की दूरी को बहुत कम कर दिया है। दूरी कम होने से राष्ट्रों में घनिष्ठता बढ़ी हैं और परस्पर घनिष्ठता बढ़ने से एक दूसरे की शासन पद्धति, रहन–सहन, सम्बन्धों, योजनाओं की सफलता तथा तकनीकी आदान-प्रदान में भी रुचि बढ़ जाती है। अत: तुलनात्मक अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। **प्रो॰ हैरिंग** (Prof. herring) के शब्दो में, "देशों के साथ हमारे सम्बन्ध हैं, उनकी संस्कृति, विचारधारा, इतिहास और उन समस्त तत्त्वों का जो राजनीति पर प्रभाव डालते हैं, तुलनात्मक अध्ययन बहुत जरूरी है। इससे न केवल उन देशों की राजनीति व्यवस्था को ज्यादा अच्छी तरह समझा जा सकता है, बल्कि हम अपनी व्यवस्था का भी सही मूल्यांकन तुलनात्मक अध्ययन द्वारा ही कर सकते है।" (Careful studies that deal comparatively with the cultures and the ideologies, the historical development and the whole complex of forces that seek final expression politically would lead not only to a better understanding of the countries of the world with which we must deal but should likewise enable us to understand ourselves better)

8. राजनीतिक वास्तविकता के अध्ययन के लिए (For the Study of Political Reality) **:** राजनीतिक वास्तविकता को जानने के लिए तुलनात्मक राजनीति का बड़ा महत्त्व है तुलनात्मक अध्ययन का संबन्ध ऐसे तरीके से नई तकनीकों

नोट

और उपागमों के माध्यम से राजनीतिक वास्तविकता के अध्ययन के निरूपण से है, जिससे राजनीति का समस्त क्षेत्र इसके अन्तर्गत आ जाए।

9. राजनीति में सिद्धांत निर्माण (Theory-building in Politics) : तुलनात्मक राजनीति का महत्त्व राजनीति में 'सिद्धान्त निर्माण' (Theory-building in Politics) की दृष्टि से भी है। तुलनात्मक अध्ययन से ही किसी शास्त्र के सिद्धान्तों का निर्माण व नियमों का निरूपण सम्भव होता है। प्राचीन काल से ही राजनीति शास्त्र में ऐसे सिद्धान्तों और सामान्य नियमों की खोज की जाती रही है जो सम्पूर्ण विश्व के राजनीतिक व्यवहार को मोटे रूप में समझने में सहायता करें। राजनीतिक सिद्धान्तों को मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा जाता है–आदर्शन सिद्धान्त (Normative Theory) तथा आनुभविक सिद्धांत (Empirical Theory)। आदर्शक सिद्धान्त में राजनीतिक व्यवस्थाओं के बारे में कोई कल्पना कर ली जाती है और बाद में उस कल्पना को रचनात्मक रूप दिया जाता है। उदाहरणस्वरूप प्लेटो ने दार्शनिक राजा (Philosopher King) की कल्पना की और उसके आधार पर ही आदर्श राज्य (Ideal State) का विचार प्रस्तुत किया। इस प्रकार के आदर्शात्मक सिद्धान्त का ठोस तथ्यों से कोई सम्बन्ध नहीं होता और न ही तुलनात्मक राजनीति इस प्रकार के सिद्धान्तों के निर्माण में कोई सहायता करती है परन्तु आधुनिक सिद्धान्तों में राजनीतिक व्यवहार के वास्तविक तथ्यों को समझ कर सिद्धान्तों के निर्माण का प्रयत्न किया जाता है। तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन का महत्त्व आनुभविक सिद्धांतों के निर्माण में ही है।

भूमण्डलीकरण (Globalization): 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भूमण्डलीकरण तथा अन्य उभरती प्रवृत्तियों का वर्णन निम्नलिखित है :

(क) व्यवस्थाओं का अध्ययन : 1960 से लेकर 1980 के दशक में तुलनात्मक राजनैतिक विश्लेषण में काफी विकास हुआ। इसका क्षेत्र विस्तृत हुआ और इसमें बड़ी संख्या में देश शामिल किए गए। नीति विचारधारा, शासकीय अनुभव और इसी प्रकार के कई मानदंडो का उपयोग किया गया। हालांकि 1980 के दशक में सामान्य सिद्धांत से अलग हटकर संदर्भ की प्रासंगिकता पर बल दिया जाने लगा। अंशत: यह सामाजिक विज्ञानों में ऐतिहासिक जाँच पड़ताल के फिर से बढ़ रहे प्रभाव को प्रतिबिंबित करता है। यह उस 'ऐतिहासिक समाजशास्त्र' के उदय को भी दर्शाता है जो परिघटनाओं को व्यापक और वृहद संदर्भ में देखने की कोशिश करता है। संस्कृति आधारित अध्ययनों का जोर बढ़ा और राष्ट्रीयता आधारित देश और यहाँ तक कि संस्थागत विशिष्ट राष्ट्र पर विशेष बल दिया जाने लगा। 'बड़ी व्यवस्थाओं' पर बल दिया जाने लगा और मॉडल निर्माण का ह्रास हुआ। विशिष्ट संदर्भ और संस्कृतियों पर बल दिए जाने के कारण तुलना का मानदंड व्यापक किया गया। 'छोटी व्यवस्थाओं' या क्षेत्रों के स्तरों पर तुलना की प्रवृत्ति जारी रहीं जैसे इस्लाम धर्म को माननेवाले लैटिन अमेरिका के देश, अफ्रीका, दक्षिण एशिया आदि।

(ख) नागरिक समाज और जनतांत्रिक दृष्टिकोण : सोवियत संघ के विघटन के बाद 'इतिहास का अंत' की अवधारणा सामने आई। फ्रैंसिसि फुक्युयामा ने द एन्ड ऑफ हिस्ट्री नामक लेख लिखा। बाद में उन्होंने इसी विषय पर द एन्ड ऑफ हिस्ट्री एण्ड द लास्ट मैन नामक पुस्तक लिखी। उन्होंने अपने इस लेख और पुस्तक में कहा कि 'मानव सरकार के अंतिम स्वरूप' में उदारवादी प्रजातंत्र की स्थापना और विजय से विचारों का इतिहास समाप्त हो गया। यह 1950 के दशक से चली आ रही 'विचारधारा का अंत' विषय पर हो रही बहस का भी परिचायक है जिसका जन्म शीतयुद्ध की चरम अवस्था में और पश्चिम में साम्यवाद के पतन के संदर्भ में हुआ था। पश्चिमी उदारवादी विद्वानों ने यह बात सामने रखी कि पश्चिम के औद्योगिक समाज में हुए आर्थिक विकास से राजनैतिक समस्याएँ हल हो गईं जैसे आजादी और राज्य शक्ति के मामले, मजदूरों के अधिकार आदि जो औद्योगीकरण के साथ-साथ आगे बढ़े। अमेरिका के समाजशास्त्री डेनियल बेल ने अपनी पुस्तक में बताया कि इस विकास के संदर्भ में एक विचारात्मक सर्वसम्मति थी या राजनैतिक व्यवहार के मुद्दे पर वैचारिक मतभेदों को स्थापित कर दिया गया था। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि इस भूमंडलीकृत दुनिया में अभी भी सारी घटनाएँ पश्चिमी पूँजीवाद के इर्द-गिर्द नाच रही है। पूँजीवाद की तथाकथित विजय के संदर्भ में नागरिक समाज और जनतांत्रीकरण के अध्ययन संबंधी दृष्टिकोणों में नागरिक समाज का महत्त्व बढ़ा और आधुनिक पूँजीवाद विश्व में व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा की बात की जाने लगी।

नोट

इसके अलावा दृष्टिकोण में एक और महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया जिसमें नागरिक समाज और जनतांत्रीकरण के प्रश्न को केन्द्र में रखा गया। इस प्रकार एक तरफ जहाँ बाजार जनतंत्र के विकास के लिए पश्चिमी पूँजीवाद के समकालीन हित से संबंधित अध्ययन हुए तो दूसरी ओर स्वायत्तता प्राप्त करने वाले, जनजातियों के आंदोलन, दलित आंदोलन, निम्न जातियों के आंदोलन, महिलाओं के आंदोलन, पर्यावरण के आंदोलन जैसे जन आंदोलनों को केन्द्र में रखकर अध्ययन किए गए। ये आंदोलन पूँजी के हित और जन अधिकारों के बीच होने वाली टक्कर के परिणाम थे। ये अर्थव्यवस्था भूमंडलीय पूँजी के युग में आने वाले उदारवाद और बदलाव का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार तुलनात्मक राजनैतिक विश्लेषण में अस्मिता, पर्यावरण, जातीयता, लिंग, नस्ल आदि सरोकारों के नए आयाम जुड़े।

नोट्स सन् 1980 के दशक में 'इतिहास के अंत' के विचार के साथ-साथ भूमंडलीकरण की नई परिघटना सामने आई। भूमंडलीकरण ऐसी परिस्थितियों, वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों का नाम है जो पूरे विश्व को इस प्रकार एक सूत्र में बाँधता है कि विश्व के एक कोने में हो रही घटना का असर विश्व के दूसरे कोने में पड़ता है।

(ग) सूचना, संग्रहण और प्रसार : सूचना और संचार प्रौद्योगिकी में इंटरनेट और वर्ल्ड वाइड वेब जैसे अभूतपूर्व विकास भूमंडलीकरण के महत्त्वपूर्ण पक्ष और निर्धारक तत्त्व हैं। इसके कारण उत्पादन, संग्रहण और आँकड़े का विश्लेषण आसान हो गया है और इसे पूरी दुनिया में तेजी से फैलाया जा सकता है। इससे न केवल आँकड़ो की उपलब्धता सहज हो गई बल्कि कुछ ऐसे नए मुद्दे और विषय भी सामने आए जो राष्ट्र-राज्य की परिधि का अतिक्रमण करते हैं। इन नए विषयों के कारण समकालीन भूमंडलीकृत दुनिया के राजनैतिक परिवेश में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया। सामाजिक आंदोलन के संगठनों और कार्यकर्ताओं का पूरी दुनिया में फैला सम्पर्क इसका प्रणाम है। इस प्रकार के सम्पर्क सूत्र के कारण जनतांत्रिक विचार भी तेजी से फैले। शियापास के दक्षिणी मैक्सिकन राज्य के जापासटिस्आ आंदोलन में इंटरनेट का प्रयोग किया गया था और अपने अधिकारों, सामाजिक न्याय और प्रजातंत्र के लिए किए जाने वाले संघर्ष से सबको परिचित कराने के लिए भूमंडलीय जनसंचार का उपयोग किया गया था। समकालीन विषयों में मानवाधिकारों के संवर्धन और सुरक्षा जैसे मुद्दे सामने आए जो सूचना के संग्रहण और प्रसार पर आधारित थे।

14.2 विकसित और विकासशील समाजों की अनुक्रिया (Responses from Developed and Developing Societies)

विकासशील देशों में राजनीतिक प्रक्रिया की प्रकृति को समझने के लिए इनके राजनीति पर्यावरण (Political Environment), राजनीतिक संरचनाओं (Political Structures) और राजनीतिक व्यवहार (Political Behaviour) की जानकारी आवश्यक है। इन तत्त्वों के विस्तृत अध्ययन के लिए इनकी राजनीतिक संस्कृति, हित समूहों, राजनीतिक दलों, जनसंपर्क के साधनों, अधिकारीतंत्र, चुनाव-प्रक्रिया और राजनीतिक सहभागिता पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

राजनीतिक संस्कृति (Political Culture): राजनीतिक संस्कृति का अर्थ है, किसी समाज की संस्कृति के वे पक्ष जो उसकी राजनीति को प्रभावित करते हैं। वैसे संस्कृति की संकल्पना बहुत विस्तृत है जिसके अंतर्गत किसी समुदाय में प्रचलित मूल्यों और मान्यताओं के अलावा कला-विधाएं (Art Forms), प्रतीक-चिह्न, उत्सव-पूर्व, पूजा-पाठ और रहन-सहन का ढंग भी आ जाता है, परन्तु राजनीतिक संस्कृति का अध्ययन करते समय इन्हें हम मूल्यों और मान्यताओं की अभिव्यक्ति मानकर उन्हीं पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं। राजनीतिक संस्कृति में मुख्यत: ऐसे मूल्य (Values), मान्यताएं (Beliefs) और मानक (Norms) आ जाते हैं जो शासक-वर्ग, शासन–प्रणाली और शासन प्रक्रिया को वैधता (Legitimacy) प्रदान करते हैं, और उनके संदर्भ में व्यक्ति की स्थिति को निर्धारित करते हैं।

विकासशील देशों की राजनीतिक संस्कृति के बारे में कोई सामान्य धारणा नहीं बनाई जा सकती। हम केवल ऐसी मुख्य-मुख्य प्रवृत्तियों की चर्चा कर सकते हैं जिनसे इनकी राजनीतिक संस्कृति का सामान्य परिचय मिल सकता है।

नोट

तीसरी दुनिया के देश साधारणत: विशाल आकार के हैं, और उनमें विविध संस्कृतियों, भाषाओं, धर्मों, जातियों, इत्यादि से जुड़े हुए लोग रहते हैं। इन देशों में राज्य की स्थिति बहुत सुदृढ़ नहीं है। अत: वह समाज पर बहुत गहरा प्रभाव डालने की स्थिति में नहीं है। राज्य की स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए इन देशों में राष्ट्र–निर्माण (Nation-Building) का सहारा लिया जाता है। राष्ट्र-निर्माण के माध्यम से पूरे राष्ट्र के लोगों के लिए निष्ठा (Loyalty) का एक ही केंद्र विकसित करने का प्रयत्न किया जाता है ताकि वे अपनी निष्ठा को अपने-अपने संकीर्ण समूहों तक समिति न रहने दें बल्कि संपूर्ण राष्ट्र को अपनी निष्ठा का केंद्र बना लें। फिर राज्य-निर्माण के माध्यम से शक्ति का ऐसा केंद्र विकसित करने का प्रयत्न किया जाता है जो संपूर्ण राज्य में शांति और व्यवस्था कायम कर सके, ओर राज्य की सुरक्षात्मक एवं कल्याणकारी सेवाओं को देश के कोने-कोने तक पहुँचा सके। विघटनकारी शक्तियों, भौगोलिक दूरियों, परिवहन और संचार के अपर्याप्त साधनों के कारण तीसरी दुनिया के देशों में यह काम प्राय: बहुत मुश्किल से होता है।

इन देशों में प्राथमिक शिक्षा (Primary Education) के कार्यक्रम इस ढंग से बनाए जाते हैं कि लोग अपने संजातीय समूह (Ethnic Group) से आगे बढ़कर संपूर्ण राष्ट्र के प्रति निष्ठा से प्रेरित हों। जनसंपर्क के साधनों (Mass Media) की सहायता से लोगों को स्वाधीनता संग्राम की वीर गाथाओं की याद दिलाई जाती है ताकि उनके मन में एकता की भावना का संचार हो। परंतु उत्तर-औपनिवेशिक राज्य (Post-Colonial State) में लोगों की नई मांगों (Demands) और आशाओं (Expectations) के कारण जो नए द्वंद्व (Conflicts) पैदा हो गए हैं, उन्हें शांत करने के लिए पुरानी यादों का सहारा पर्याप्त सिद्ध नहीं होता।

उत्तर–औपनिवेशक राज्य (Post-Colonial State) :- ऐसा राज्य जो उपनिवेशवाद (Colonialism) के शिकंजे से नया-नया मुक्त हुआ हो। साधारणत: तीसरी दुनिया (Third world) के देशों या विकासशील देशों (Developing Nations) को इस श्रेणी में रखा जाता है।

कई सिद्धांतकार यह मानते हैं कि उत्तर-औपनिवेशिक राज्य में विदेशी हितों (Foreign Interests) का प्रभुत्व समाप्त हो जाता है, अत: उसे जनसाधारण की आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति का साधन बनाया जा सकता है। परंतु यथार्थ अनुभव से इस बात की पुष्टि नहीं होती। ऐसे राज्य का सैन्य संगठन (Military Organization) और अधिकारीतंत्र (Bureaucracy) उपनिवेशवादी परंपरा के सांचे में ढ़ले होते हैं जो जनसाधारण के दमन में अभ्यस्त होते हैं। उनके मन में जनसाधारण के प्रति सेवा या सहानुभूति की भावना रातों-रात पैदा नहीं की जा सकती। वैसे ये दोनों गुट राजनीतिक नेतृत्व (Political Leadership) के सेवक के रूप में कार्य करते हैं, परंतु उत्तर-औपनिवेशिक राज्य में साधारणत: राजनीतिक नेतृत्व का चरित्र भी बहुत ऊंचा नहीं रह जाता। जो राजनीतिज्ञ स्वाधीनता-आंदोलन के दौरान कंधे-से-कंधा मिलाकर विदेशी ताकत से लड़े थे, अब वे और उनके उत्तराधिकारी सत्ता की प्रतिस्पर्धा में नए पूंजीपति वर्ग की सहायता पर आश्रित हो जाते हैं, यहां तक कि कुछ राजनीतिज्ञ अपराध-लोक (Underworld) से सहायता लेने में भी संकोच नहीं करते। नया पूंजीपति वर्ग अपने-आप में पर्याप्त शक्तिशाली नहीं होता, परंतु सैनिक और अधिकारीतंत्रीय गुटतंत्रों (Oligrachies) के साथ साँठ-गाँठ करके वह अपनी शक्ति को सुदृढ़ कर लेता है। ऐसी हालत में बहुत सारे राजनीतिज्ञ जनता को झूठे आश्वासन देकर, उनके लिए छोटी-छोटी रियायतें प्राप्त करके या उनकी धार्मिक, सांप्रदायिक तथा संजातीय (Ethnic) भावनाओं को उत्तेजित करके उनके वोट बटोरने का जुगाड़ करते हैं। इसके अलावा, विदेशी शक्तियां भी ऐसे देश में अपने नव-उपनिवेशवाद (Neo-Colonialism) का जाल फैलाकर उसका शोषण करती हैं। कुल मिलाकर, उत्तर-औपनिवेशिक राज्य में जनसाधारण की स्वतंत्रता के लिए नए खतरे और नई समस्याएं पैदा हो जाती हैं। इन्हें सुलझाए बगैर उसकी स्वाधीनता (Independecy) को सार्थक नहीं किया जा सकता।

इन देशों में जाति (Caste), जनजाति (Tribe) और धर्म (Religion) इत्यादि के आधार पर परंपरागत नेतृत्व को जो मान्यता दी जाती है, उसे देखते हुए राष्ट्रीय स्तर पर स्थानीय नेतृत्व के साथ समझौता जरूरी हो जाता है। बहुसांस्कृतिक समाज (Multicultural Society) में इस तरह का समझौता कभी-कभी राष्ट्रीय स्तर पर सरकार चलाने में सहायक सिद्ध होता है। भारत में राष्ट्रीय स्तर पर जो मिली-जुली सरकारें (Coalition Governments) चलाई गई हैं, वे इस प्रबंध का उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। नाइजीरिया में भी राष्ट्रीय नेताओं ने स्थानीय अमीरों–अर्थात् स्थानीय धार्मिक शासकों के साथ समझौता करके सरकार चलाने में बहुत सारी अड़चनों को दूर कर दिया है।

नोट

तीसरी दुनिया में बंधुत्व (Kinship) के आधार पर लोगों के मन में जो भावनाएं घर कर चुकी हैं, वे कभी-कभी आधुनिक संस्थाओं को ठीक तरह काम नहीं करने देती। यहां राजनीतिज्ञ और प्रशासनिक अधिकारी नियमों के निष्पक्ष प्रयोग में यथेष्ट तत्परता नहीं दिखाते बल्कि अपनी शक्ति का प्रयोग करते समय अपने रिश्तेदारों, अपने गाँव या कबीले के लोगों, अपने मित्रों और समर्थकों को फायदा पहुँचाने को तैयार रहते हैं। कुछ लोग इस भाई-भतीजावाद (Nepotism) और भ्रष्टाचार (Corruption) को सामाजिक दायित्व के निर्वाह की संज्ञा देते हैं।

कई बाद परंपरागत भावनाएं आर्थिक विकास में सहायक भी सिद्ध होती हैं। उदाहरण के लिए, प्राचीन प्राच्य विचारक कन्फ्यूशियस ने यह शिक्षा दी थी कि बड़ों को अपना उत्तरदायित्व संभालना चाहिए, और छोटों को केवल आज्ञापालन करना चाहिए। इन शिक्षाओं की प्रेरणा से चीन, ताइवान, सिंगापुर और दक्षिणी कोरिया में आर्थिक विकास से जुड़ी हुई गतिविधियों में तेजी आ गई। कई बार व्यक्तिवादी दृष्टिकोण की तुलना में परंपरावादी दृष्टिकोण राजनीति गतिशीलन (Political Mobilization) और आर्थिक सहयोग (Economic Cooperation) के लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध होता है। विकासशील देश इस क्षेत्र में अपनी राजनीतिक संस्कृति से यथेष्ट लाभ उठा सकते हैं।

हित समूह (Interest Groups): विकासशील देश मुख्यत: परंपरागत समाज रहे हैं जहां हित स्पष्टीकरण (Interest Articulation) और हित समूहन (Interest Aggregation) के विकास की गुंजाइश बहुत कम थी। लोग अपनी-अपनी जाति, जनजाति, धर्म, भाषा, संस्कृति, इत्यादि के प्रति इतनी गहरी निष्ठा रखते थे कि यहां व्यक्तिगत हितों के आधार पर नए समूहों के निर्माण की संभावनाएं नगण्य थीं।

ऐसे समूह जो अपने सदस्यों के किसी समान हित (Common Interest) को ध्यान में रखकर संगठित किए जाते हैं, और उस हित की सिद्धि के लिए वे नियमित रूप से या समय-समय पर सार्वजनिक नीति को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। आधुनिक समाज में कामगारों (Workers), व्यापारियों (Traders), उपभोक्ताओं (Consumers), इत्यादि के बहुत सारे हित समूह पाए जाते हैं।

जन भिन्न-भिन्न व्यक्ति अपने समान हित को पहचान कर हित समूह के रूप में संगठित होते हैं तो इस प्रक्रिया का हित समूहन (Interest Aggregation) कहा जाता है। जब कोई हित समूह अपने सदस्यों की भावनाओं को ध्यान रखकर उन्हें निश्चित मांगों (Demands) के रूप में व्यक्त करता है तो इस प्रक्रिया को हित स्पष्टीकरण (Interest Articulation) कहा जाता है।

स्वाधीनता के बाद इन देशों में आधुनिकीकरण (Modernization) की जो प्रक्रिया शुरू हुई, उसने परंपरागत जीवन-शैली की जगह औद्योगीकरण (Industrialization), शहरीकरण (Urbanization), मुद्रा-विनिमय (Monetary Exchanges), औपचारिक शिक्षा (Formal Education) और जनसंपर्क के साधनों (Mass Media) के विस्तृत प्रयोग को बढ़ावा दिया। जब लोगों की अभिरूचियों और हितों में विविधता पैदा होती है तो समाज में तरह-तरह के संगठन—जैसे कि किसान संघ (Peasant Unions), मजदूर संघ (Trade Unions), वाणिज्यमंडल (chambers of Commerce) और व्यवसायिक साहचर्य (Professional Associations) उभरकर सामने आते हैं। जब परस्पर-विरोधी संगठनों में शक्तिशाली वर्गों को—जैसे कि जमींदारों और व्यापारियों को अपने हितों पर आंच आती दिखाई देती है तो वे किसानों और कामगारों के आंदोलनों (Movements) को समाज-विरोधी गतिविधियों (Antisocial Activities) की संज्ञा देकर पुलिस की सहायता से उनके दमन का प्रयत्न करते हैं। भारत में— विशेषत: बिहार प्रांत में ऐसी घटनाओं के कई उदाहरण मिलते हैं।

कई विकासशील देशों में कमजोर वर्गों (weaker Sections) को अपने हित समूह बनाने से हतोत्साह किया जाता है। अधिकांश लेटिन अमरीकी देशों में यह व्यवस्था की गई है कि औपचारिक समूहों के लिए कानूनी मान्यता (Legal Recognition) प्राप्त करना अनिवार्य होगा। कुछ देशों में तो औपचारिक समूहों को सरकार के नियंत्रण में ही रखा जाता है। मैक्सिको का सत्तारूढ़ दल (इंस्टीट्यूशनल रिवोल्यूशनरी पार्टी) अपने-आपको किसानों, मजदूरों और जनसाधारण का गठबंधन मानता है। अत: वह इन सब क्षेत्रों के औपचारिक समूहों पर अपने वर्चस्व का दावा करता है।

कभी-कभी हित समूह इतने शक्तिशाली हो जाते हैं कि सरकार भी उन्हें रूष्ट करने का जोखिम नहीं उठा सकती, अन्यथा सरकार स्वयं अस्थिर हो जाती है। ईरान के शाह का पलायन (1979), दक्षिण कोरिया में राष्ट्रपति पार्क की हत्या (1979), और मिस्र में राष्ट्रपति सादात की हत्या (1981) ऐसी स्थितियों के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

नोट

टास्क हित समूहन से आप क्या समझते हैं?

राजनीतिक दल (Political Parties): 1980 और 1990 के दशकों से पहले तीसरी दुनिया के देशों में दलीय प्रणालियां (Party Systems) साधारणत: बहुत कमजोर रही हैं। देखा जाए तो सऊदी अरब, कतर, जॉर्डन, बहरीन, कुवैत, और भूटान जैसे राजतंत्रीय देशों में तो कोई दलीय प्रणाली रही ही नहीं, और वहां की राजनीति पर शासक परिवारों (Ruling Families) का प्रभुत्व रहा है। जहाँ-जहाँ सैनिक शासन (Military Rule) स्थापित होता है, वहां प्रचलित राजनीति दलों पर कानूनी प्रतिबंध लगा दिया जाता है–जैसा कि पाकिस्तान में कई बार हुआ। परंतु जब वहां असैनिक शासन (Civilian Rule) की मांग जोर पकड़ने लगती है, तब राजनीतिक दल फिर से उभरकर सामने आ जाते हैं।

कुछ देशों में एकदलीय प्रणाली को इसलिए बढ़ावा दिया जाता है ताकि वह राष्ट्रीय नेता के लिए यथेष्ट समर्थन जुटा सके, और उसके कृपापात्रों में पद-पुरस्कार के वितरण का साधन बन सके। लाइबेरिया में राष्ट्रपति दोइ ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए 'नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी' का सृजन किया, हालांकि वह इससे अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर पाया। बांग्लादेश में जनरल इरशाद ने 'जातीय पार्टी' (People's Party) का सृजन किया ताकि वह इसकी मदद से सैनिक शासक (Military Ruler) का चोला उतारकर असैनिक शासक (Civilian Ruler) का चोला पहन सके। जैरे में राष्ट्रपति मोबूतू ने अपना निर्विवाद नेतृत्व स्थापित करने के ध्येय से प्रत्येक नागरिक को अपनी पार्टी 'रिवोल्यूशन पॉपुलर मूवमेंट' का सदस्य बना लिया।

अनेक विकासशील देशो में स्वाधीनता से पहले राष्ट्रवादी आंदोलनों ने ऐसे प्रभावशाली दलों को जन्म दिया जो स्वाधीनता के बाद भी बने रहे। परंतु ऐसे दल देर-सवेर कमजोर पड़ गए, क्योंकि वे लोगों की नई-नई आशाओं की पूर्ति नहीं कर पाए। घाना में क्वामें नक्रूमा के पतन के साथ उसकी 'कन्वेंशन पीपल्स पार्टी' भी लुप्त हो गई।

कई देशों में राष्ट्रवादी आंदोलन के दौरान जो प्रभावशाली दल उभरकर सामने आए थे, वे स्वाधीनता के बाद इसलिए कमजोर पड़ गए क्योंकि वे पुरानी प्रतिभाओं के जोड़ की नई प्रतिभाएं नहीं ढूंढ़ पाए। भारत में कुछ हद तक 'इंडियन नेशनल काँग्रेस' का यही हाल हुआ है।

कुछ देशों में यह सोचा जाता है कि देश के आधुनिकीकरण के लिए एक ही दल का अस्तित्व सबसे उपयुक्त होगा। तंज़ानिया के राष्ट्रपति न्येरेरे ने ऐसे एक ही दल का समर्थन किया, परंतु अब वहां अनेक दल अस्तित्व में आ चुके हैं।

कई देशों में एकदल-प्रधान प्रणाली (One -party Dominant System) के विलय के बाद बहुदलीय प्रणाली (Multiparty System) का आविर्भाव हुआ है, जैसा कि भारत में देखा जा सकता है। इन देशों की सरकारें ऐसे सुविधाजनक गठबंठन (Convenent Coalitions) सिद्ध हुई हैं जिनका ध्येय सत्ता को हथियाना था– किसी तरह की विचारधारात्मक एकता (Ideological Solidarity) का परिचय देना नहीं था।

इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ में अनेक लेटिन अमरीकी देशों में राजनीतिक दलों की प्रतिस्पर्धा सत्तारूढ़ विशिष्ट वर्गों (Ruling Elites) के भीतर उदारवादी और अनुदारवादी गुटों (Liberal And Conservative Factions) की परस्पर प्रतिस्पर्धा का संकेत देती थी; सर्वसाधारण (Masses) को इस प्रतिस्पर्धा से बाहर रखा गया था। वेनेजुएला एक–मात्र ऐसा देश है जहां 1950 के दशक के बाद सही अर्थ में दलीय प्रतिस्पर्धा का वातावरण रहा क्योंकि वहां की शासन-प्रणाली और अर्थ-व्यवस्था तेल की आय के सहारे टिकी रही है।

मैक्सिकों में सत्तारूढ़ दल (इंस्टीट्यूशनल रिवोल्यूशनरी पार्टी) लोक-मत को अपने वश में रखने के लिए समाचार-पत्रों तथा जनसंपर्क के अन्य साधनों पर प्रतिबंध लगाता रहा है। जब इससे काम नहीं चलता, तब वह सीधे ही मतपत्रों में धांधली (Ballot Rigging) पर उतर आता है।

नोट

जनसंपर्क के साधनों की भूमिका (Role of the Mass Media): जनसंपर्क के साधन–समाचार–पत्र, पत्रिकाएं, रेडियो, टेलीविजन, इत्यादि आधुनिकीकरण के महत्त्वपूर्ण उपकरण हैं। तीसरी दुनिया के देशों में ये साधन भी बहुत विकसित नहीं हैं। समाचार–पत्र साधारणत: विशिष्टवर्गों के उपभोग की वस्तु हैं, और इनका वितरण अधिकांशत: शहरों तक सीमित है। इनके संपादकों को साधारणत: कठोर अभिवेचन (Strict Censorship) का सामना तो नहीं करना पड़ता, परंतु फिर भी वे सर्वथा निडर नहीं रह पाते। यदि प्रभावशाली वर्ग उनसे रुष्ट हो जाएं तो उन्हें अपने पद से हटाया जा सकता है। 1970 के दशक में अर्जेंटीना और चिली में अनेक पत्रकारों को यंत्रणा दी गई, कारावास दिया गया, या उनकी जीवन–लीला ही समाप्त कर दी गई।

विकासशील देशों के समाचार–पत्रों में मुख्यत: शहरों के ही समाचार छापे जाते हैं; गाँवों की दशा पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। तंज़ानिया में 1980 के दशक में गाँव–गाँव में मलेरिया फैल गया था, परंतु वहां के समाचार–पत्रों ने इस घटना को समाचार का विषय बनाने योग्य नहीं समझा। कुछ भी हो, भारत में गाँवों की इतनी उपेक्षा नहीं की जाती। यहां गाँवों में होने वाली घटनाओं–विशेषत: दुर्घटनाओं और प्राकृतिक आपदाओं के समाचारों को जनसंपर्क के साधनों में यथेष्ट स्थान दिया जाता है, और सामाजिक अन्याय की घटनाओं को तो खोज–खोज कर और खोद–खोद कर प्रकाश में लाया जाता है।

अफ़्रीका महाद्वीप में 1600 भाषाएं और बोलियां प्रचलित हैं। इनमें ज्यादातर बोलियां ही हैं जो बोली जाती हैं, लिखकर नहीं भेजी जाती। अत: दूर–दराज के क्षेत्रों में वहां रेडियो से समाचार पहुँचाना सुविधाजनक रहता है। साधारणत: सारी सूचना बड़े–बड़े शहरों से गाँवों की ओर प्रवाहित होती है; गाँवों से शहरों की ओर कोई सूचना प्रवाहित नहीं होती। अब विकासशील देशो में टेलीविजन का रिवाज भी बढ़ चला है। इससे गाँव के लोगों को शहरी जीवन की तड़क–भड़क के दृश्य देखने को मिलते हैं जिससे उनके मन में भी रहन–सहन के ऊंचे स्तर की आकांक्षा जाग जाती है। अत: वे सरकार के पास नित्य नई मांगें भेजने लगते हैं। इससे सरकार का काम ज्यादा मुश्किल हो जाता है।

लेटिन अमरीका और अन्य विकासशील देशों में टेलीविज़न पर शुरू–शुरू में ऐसे लोकप्रिय कार्यक्रम दिखाए जाने लगे जो अमरीका में तैयार किए जाते थे। अब केबल टेलीविज़न के विस्तार के कारण अमरीका और यूरोप के उन्नत देशों के कार्यक्रम और समाचार सीधे ही तीसरी दुनिया के देशों के टेलीविजन पर देखे जाते हैं। इससे सूचना के भूमंडलीकरण (Globalization of Information) को बढ़ावा मिला है। साथ ही विज्ञापन (Advertising) का व्यवसाय भी उन्नत हो गया है। उपभोक्ता–वस्तुओं की मांग बढ़ी है; मनोरंजन के एक–जैसे ढंग और एक–जैसी जीवन–शैली का विस्तार हुआ है। इस प्रवृत्ति ने कुछ हद तक पश्चिम के सांस्कृतिक साम्राज्यवाद (Cultural Imperialism) को भी बढ़ावा दिया है।

सांस्कृतिक साम्राज्यवाद (Cultural Imperialism): वह स्थिति जिसमें कोई शक्तिशाली राष्ट्र सांस्कृतिक उपकरणों (जैसे कि विचारों, जीवन–शैली, साहित्य, कलाकृतियों और दूरदर्शन–कार्यक्रमों) की सहायता से दूसरे देशों के लोगों के मन पर अपने सांस्कृतिक वर्चस्व की छाप छोड़ता है। यह दूसरे देशों पर प्रभुत्व (Domination) स्थापित करने का ऐसा गूढ़ तरीका है जिसमें सैनिक, आर्थिक या राजनीतिक शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाता।

सूचना के प्रसार के साथ–साथ इन साधनों के माध्यम से सामाजिक जीवन की जटिल समस्याओं को जनसाधारण के ध्यान में लाया जा रहा है जिससे उसमें नई तरह की सजगता (Awareness) आ गई है। अत: वे राजनीति में अधिक सक्रिय हो गए हैं; और सरकार पर ज्यादा दबाव डालने लगे हैं। उनकी नई–नई मांगों को पूरा करने में सरकार को अपने सीमित संसाधनों के कारण बहुत मुश्किल का सामना करना पड़ता है। अत: यह जरूरी हो जाता है कि विकास के कार्यक्रमों में लोगों की सहभागिता (Participation) बढ़ाई जाए। ऐसे हाल में सरकार जन–शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए जनसंपर्क के साधनों का विस्तृत प्रयोग करती है। इस तरह परिवार–नियोजन, स्वच्छता, साक्षरता, रोगों की रोकथाम और सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन से जुड़े हुए संदेश जन–जन तक पहुँचाए जाते हैं। भारत का पल्स पोलियो अभियान ऐसी गतिविधियों का ज्वलंत उदाहरण है।

अधिकारीतंत्र की अभिवृत्ति (Attitude of Bureaucracy): संरक्षक अधिकारीतंत्र (Guardian Bureaucray) ऐसा अधिकारीतंत्र (Bureaucracy) जो अपने–आपको राज्य की स्थिरता (Stability) और अखंडता (Integrity) के मुख्य

नोट

संरक्षक के रूप में देखता है। चुनाव की राजनीति (electoral Politics) के कारण जब बार-बार सरकारें बदलती हैं, यहां तक कि कई बार स्थिर सरकार बनने में अड़चन आ जाती है, तब सरंक्षक अधिकारीतंत्र शासन का सारा उत्तरदायित्व स्वयं संभाल लेता है, और ऐसे सब कार्य करने लगता है जो निर्वाचित सरकार को करने चाहिए। राजनीतिक उथल-पुथल के समय जब कहीं सरकार धराशायी हो जाती है, वहां संरक्षक अधिकारीतंत्र अराजकता (Anarchy) नहीं फैलने देता बल्कि नई सरकार स्थापित होने तक सरकार के सारे काम-काज चलता है। ऐसी स्थिति बहुधा तीसरी दुनिया (Third world) के देशो में पाई जाती है। तीसरी दुनिया के देश वैसे तो परंपरागत समाज हैं, परंतु उपनिवेशवादी दौर में ऐसे बहुत सारे देशों के शासकों ने वहां आधुनिक अधिकारीतंत्रीय संरचनाएं (Modern Bureaucratic Sturtures) स्थापित कर दी थी। अत: इन देशों को स्वाधीनता के समय जो प्रशासनिक व्यवस्था विरासत में मिली, वह इनके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। यहां तक कि राजनीतिक अस्थिरता (Political Instability) के दौर में ये अधिकारीतंत्र शासन का सारा काम संभाल लेते हैं। ऐसे अधिकारीतंत्र को संरक्षक अधिकारीतंत्र (Guardian Bureaucracy) कहा जाता है। उदाहरण के लिए पाकिस्तान में कई बार राजनीतिक उथल-पुथल के दौर में वहां का अधिकारीतंत्र सरकार का सारा काम संभालता रहा है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा (Indian Administrative Service) का ढांचा भी उपनिवेशवादी दौर की देन रहा है। यह सेवा 'इंडियन सिविल सर्विस' (Indian civil Service: ICS) की उत्तराधिकारी है जिसे ब्रिटिश राज में स्थापित किया गया था। उन दिनों इसे 'फौलादी ढांचा' (Steel Frame) कहा जाता था। अत: 'भारतीय प्रशासनिक सेवा' आज भी पर्याप्त सुदृढ़ है, और इसने कई बार 'संरक्षक अधिकारीतंत्र' की भूमिका निभाई है। यहां अधिकारीतंत्र साधारणत: राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ (Neutral) रहा है। अत: बार-बार के राजनीतिक परिवर्तनों के बावजूद इसने अपनी यह पहचान कायम रखी है, और नई सामाजिक नीतियों को कार्यान्वित करने में बराबर कार्य-कुशलता का परिचय दिया है।

कोरिया में 1910 से 1945 तक वहां के जापानी शासकों ने राजनीतिक और प्रशासनिक प्रणाली का संपूर्ण नियंत्रण अपने हाथ में रखा था, और उसमें कोरिया के मूल निवासियों की भूमिका को नगण्य बना दिया था। दूसरे विश्व युद्ध (1939-45) में जब जापानियों की पराजय हुई, और वे कोरिया से विदा हो गए तो वहां के राजनीतिक और प्रशासनिक जीवन में शून्य पैदा हो गया।

इधर कुछ मामलों में तीसरी दुनिया का अधिकारीतंत्र आधुनिक मानकों (Modern Norms) के अनुरूप नहीं ढल पाया। इन देशों के परंपरागत समाज बंधुत्व (Kinship) के बंधनों से बँधे थे। ये बंधन अधिकारीतंत्र पर भी हावी रहे। अफ्रीका में राजनीतिज्ञों, प्रशासनिक अधिकारियों तथा सैनिक अधिकारियों से यह आशा की जाती है कि वे अपनी सत्ता (Authority) का प्रयोग करते समय अपने परिवारों को फायदा पहुँचाएंगे। इसका परिणाम यह हुआ है कि वहां के समाज में भाई-भतीजावाद और प्रशासनिक भ्रष्टाचार का बोलबाला है। नाइजीरिया में प्रत्येक राज्य-क्रांति (Coup) के बाद बहुत बड़े पैमाने पर पुराने अधिकारियों को हटाया गया है। चीन के प्रशासन-तंत्र में भी इसी तरह का विस्तृत भ्रष्टाचार फैला हुआ है।

इतना ही नहीं, तीसरी दुनिया में प्रशासनिक अधिकारियों को अपने-अपने क्षेत्र (Region), जाति (Caste) और जनजाति (Tribe) का स्वाभाविक प्रतिनिधि माना जाता है। अत: वे यह अनुभव करते हैं कि अपने-अपने समूह को सहायता और लाभ पहुँचाना उनका दायित्व (Obligation) है। इस दृष्टिकोण ने 'प्रतिनिधि अधिकारीतंत्र' (Representative Bureaucracy) के विचार को बढ़ावा दिया है।

प्रतिनिधि अधिकारीतंत्र (Representative): यह विचार कि तीसरी दुनिया (Third World) के देशों में अधिकारीतंत्र (Bureaucracy) के सदस्य इसके अंतर्गत अपने-अपने क्षेत्र (Region) जाति (Caste), जनजाति (Tribe), भाषा (Language) या धर्म (Religion) के लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अत: इन समूहों के लोग अपने इन तथाकथित प्रतिनिधियों से यह आशा करते हैं कि वे उनकी समस्याओं पर विशेष ध्यान देंगे और उनकी सहायता करेंगे। इन आशाओं को पूरा करना एक तरह से अधिकारीतंत्र के सदस्यों का कर्त्तव्य हो जाता है।

देखा जाए तो प्रतिनिधि अधिकारीतंत्र का विचार औपचारिक दृष्टि से किसी तरह के अधिकार या कर्त्तव्य का सृजन

नोट

नहीं करता। परंतु तीसरी दुनिया के देशों में–जहां की विशाल जनसंख्या तरह-तरह के समूहों में बँटी है और अधिकारीतंत्र के सदस्य भी भावात्मक स्तर पर अपने मूल समूह से जुड़े रहते हैं, जहां संसाधनों (Resources) और अवसरों (Opportunities) का नितांत अभाव है, वहां यह विचार जनसाधारण को कुछ सांत्वना देता है। अधिकारीतंत्र के बारे में यह विचार इसके प्रसिद्ध सिद्धांतकार मैक्स वेबर (1864-1920) की संकल्पना से मेल नहीं खाता।

इसके अलावा, तीसरी दुनिया के देशों की विशाल जनसंख्या और व्यापक निर्धनता के कारण वहां सरकारी क्षेत्र में रोज़गार के अवसर बढ़ाने की मांग लगातार उठाई जाती है। उसे पूरा करने के लिए निम्न स्तरों पर आवश्यकता से अधिक कर्मचारी रख लिए जाते हैं, और उनकी योग्यता पर भी विशेष बल नहीं दिया जाता है और प्रशासन में 'लालफ़ीताशाही' (Redtapism) का बोलबाला हो जाता है। तीसरी दुनिया के प्रशासनिक व्यवहार की ये विशेषताएँ अधिकारीतंत्र के कानूनी-तर्कसंगत प्रतिरूप (Legal-Rational Model) से बहुत दूर जा पड़ती हैं जिसकी संकल्पना मैक्स वेबर (1864-1920) ने प्रस्तुत की थी।

फिर, विकासशील देशों के प्रशासनिक अधिकारी ज्यादातर नियमों और प्रक्रियाओं (Rules and Procedures) का प्रयोग अपने उत्तदायित्व से बचने के लिए करते हैं, लोक प्रशासन के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए नहीं। यह अभिवृत्ति सामाजिक और आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के विपरीत सिद्ध होती है। इन सब त्रुटियों को दूर करने के लिए इन देशों में विधानमंडल (Legislature) और न्यायपालिका (Judiciary) से जुड़े हुए सचेत विशिष्ट वर्गों को अधिक सक्रिय भूमिका निभानी होगी, और पत्रकारों (the Press) तथा सामाजिक आंदोलनों (Social Movements) के कार्यकर्त्ताओं को निरंतर सजग रहना होगा।

चुनाव-प्रक्रिया (Election Process): तीसरी दुनिया के देशों में लोकतंत्र को बहुत सराहा जाता है। परंतु वहां उदार लोकतंत्र (Liberal Democracy) की संस्थाएं विस्तृत रूप में विकसित नहीं हो पाई है। केवल भारत में स्वाधीनता के बाद लगातार नियमित रूप से चुनाव होते रहे हैं। अन्य देशों में ये संस्थाएं थोड़े-थोड़े समय तक ही प्रचलित रह पाई हैं। उदाहरण के लिए पाकिस्तान में 1984 के चुनाव जनरल जिया-उल-हक के अधिनायतंत्र की पुष्टि के लिए कराए गए, और 2002 में राष्ट्रपति पद के लिए जनरल परवेज मुशर्रफ की वैधता स्थापित करने के लिए चुनाव कराए गए। म्यांमार (बर्मा) में तो सैनिक शासन ने चुनाव को मज़ाक ही बना दिया। वहां लंबे सैनिक शासन के बाद 1990 में आम चुनाव कराए गए जिनमें 'नेशनल लीग फ़ॉर डेमोक्रेसी' को भारी बहुमत से विजयी मिली, परंतु सैनिक शासन ने उसे सत्ता सौपनें से इनकार कर दिया।

मैक्सिको में साधारणत: एक ही दल के शासन को कायम रखने के लिए चुनाव कराए गए हैं, और इनमें बार-बार रिश्वत (Bribery) और बल-प्रयोग (Coercion) का सहारा लिया गया है। केन्या में एकदलीय शासन को सुदृढ़ करने के लिए चुनाव के समय एक ही दल के उम्मीदवारों में प्रतिस्पर्धा (Competition) की अनुमति दी गई है। केवल 1980 और 1990 के दशकों में लेटिन अमरीका और अफ्रीका के कुछ हिस्सों में वस्तुत: प्रतिस्पर्धात्मक चुनाव कराए गए हैं।

फिर, जहां-जहां प्रतिस्पर्धात्मक चुनाव कराए गए, वहां भी प्रतिस्पर्धा का उद्देश्य कुछ विशेष व्यक्तियों, संजातीय समूहों (Ethnic Groups) और समुदायों (Communities) को लाभ पहुँचाना रहा है, किसी विचारधारा (Ideology) को बढ़ावा देना नहीं रहा।

कुछ देशों में पैसे देकर ढेर सारे वोट बटोर लिए गए हैं, जैसे कि 1985 में फ़िलिपीन्स में राष्ट्रपति मार्कोस के शासन-काल में हुआ। 1986 में उन्हें भ्रष्टाचार के आरोप में अपने पद से हटा दिया गया।

इन सब त्रुटियों के बावजूद तीसरी दुनिया में चुनाव केंद्रीय सरकार और स्थानीय शासन के बीच संपर्क की कड़ी की भूमिका निभाते हैं, और जनसंख्या में राजनीति सजगता (Political Awareness) को बढ़ावा देते हैं। अंतत: ये चुनाव विशिष्टवर्गों के शासन को पश्चिमी जगत् और अंतर्राष्ट्र अभिकरणों (International Agencies) की दृष्टि में वैध ठहराने का काम करते हैं जो कि विकासशील देशों के विकास में आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए (Fill in the Blanks)–

1. विकासशील देशों में राज्य की स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए इन देशों में ..... का सहारा लिया जाता है।
2. तीसरी दुनिया में ..... के आधार पर लोगों के मन में कुछ विशिष्ट धारणाएँ घर कर चुकी होती हैं जो आधुनिक संस्थाओं के काम में बाधा उत्पन्न करती है।
3. विकासशील देशों में कई बार ..... आर्थिक विकास में सहायक भी सिद्ध होती हैं।
4. तीसरी दुनिया में ..... केन्द्रीय सरकार और स्थानीय शासन के बीच संपर्क की कड़ी की भूमिका निभाते हैं।
5. तीसरी दुनिया के कुछ साम्यवादी देशों ने जनगतिशीलन के माध्यम से ..... प्राप्त करने का प्रयत्न किया।

14.3 सारांश (Summary)

- सूचना और संचार प्रौद्योगिकी में इंटरनेट और वर्ल्ड वाइड वेब जैसे अभूतपूर्व विकास भूमंडलीकरण के महत्त्वपूर्ण पक्ष और निर्धारक तत्त्व है। इसके कारण उत्पादन, संग्रहण और आँकड़े का विश्लेषण आसान हो गया है और इसे पूरी दुनिया में तेजी से फैलाया जा सकता है।
- स्वाधीनता के बाद इन देशों में आधुनिकीकरण (Modernization) की जो प्रक्रिया शुरू हुई, उसने परंपरागत जीवन-शैली की जगह औद्योगीकरण (Industrialization), शहरीकरण (Urbanization), मुद्रा-विनिमय (Montetary Exchanges), औपचारिक शिक्षा (Formal Education) और जनसंपर्क के साधनों (Mass Media) के विस्तृत प्रयोग को बढ़ावा दिया। जब लोगों की अभिरुचियों और हितों में विविधता पैदा होती है तो समाज में तरह-तरह के संगठन–जैसे कि किसान संघ (Peasant Unions), मजदूर संघ (Trade Unions), वाणिज्यमंडल (chambers of Commerce) और व्यावसायिक साहचर्य (Professional Associations) उभरकर सामने आते हैं।
- कभी-कभी हित समूह इतने शक्तिशाली हो जाते हैं कि सरकार भी उन्हें रूष्ट करने का जोखिम नहीं उठा सकती, अन्यथा सरकार स्वयं अस्थिर हो जाती है। ईरान के शाह का पलायन (1979), दक्षिण कोरिया में राष्ट्रपति पार्क की हत्या (1979), और मिस्र में राष्ट्रपति सादात की हत्या (1981) ऐसी स्थितियों के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।
- 1980 और 1990 के दशकों से पहले तीसरी दुनिया के देशों में दलीय प्रणालियां (Party Systems) साधारणत: बहुत कमजोर रही हैं। देखा जाए तो सऊदी अरब, कतर, जॉर्डन, बहरीन, कुवैत, और भूटान जैसे राजतंत्रीय देशों में तो कोई दलीय प्रणाली रही ही नहीं, और वहां की राजनीति पर शासक परिवारों (Ruling Families) का प्रभुत्व रहा है। जहां-जहां सैनिक शासन (Military Rule) स्थापित होता है, वहां प्रचलित राजनीतिक दलों पर कानूनी प्रतिबंध लगा दिया जाता है–जैसा कि पाकिस्तान में कई बार हुआ। परंतु जब वहां असैनिक शासन (Civilian Rule) की मांग जोर पकड़ने लगती है, तब राजनीतिक दल फिर से उभरकर सामने आ जाते हैं।
- अनेक विकासशील देशों में स्वाधीनता से पहले राष्ट्रवादी आंदोलनों ने ऐसे प्रभावशाली दलों को जन्म दिया जो स्वाधीनता के बाद भी बने रहे। परंतु ऐसे दल देर-सवेर कमजोर पड़ गए, क्योंकि वे लोगों की नई-नई आशाओं की पूर्ति नहीं कर पाए। घाना में क्वामें नक्रूमा के पतन के साथ उसकी 'कॉन्वेंशन पीपल्स पार्टी' भी लुप्त हो गई।
- कई देशों में एकदल-प्रधान प्रणाली (One -party Dominant System) के विलय के बाद बहुदलीय प्रणाली (Multiparty System) का आविर्भाव हुआ है, जैसा कि भारत में देखा जा सकता है।
- जनसंपर्क के साधन-समाचार-पत्र, पत्रिकाएं, रेडियो, टेलीविजन, इत्यादि आधुनिकीकरण के महत्त्वपूर्ण उपकरण हैं। तीसरी दुनिया के देशों में ये साधन भी बहुत विकसित नहीं हैं। समाचार-पत्र साधारणत: विशिष्ट वर्गों के उपभोग की वस्तु हैं, और इनका वितरण अधिकांशत: शहरों तक सीमित है।

नोट

- भारतीय प्रशासनिक सेवा (Indian Administrative Service) का ढांचा भी उपनिवेशवादी दौर की देन रहा है। यह सेवा 'इंडियन सिविल सर्विस' (Indian civil Service: ICS) की उत्तराधिकारी है जिसे ब्रिटिश राज में स्थापित किया गया था। उन दिनों इसे 'फौलादी ढांचा' (Steel Frame) कहा जाता था। अत: 'भारतीय प्रशासनिक सेवा' आज भी पर्याप्त सुदृढ़ है, और इसने कई बार 'संरक्षक अधिकारीतंत्र' की भूमिका निभाई हैं।
- यह विचार कि तीसरी दुनिया (Third World) के देशों में अधिकारीतंत्र (Bureaucracy) के सदस्य इसके अंतर्गत अपने-अपने क्षेत्र (Region) जाति (Caste), जनजाति (Tribe), भाषा (Language) या धर्म (Religion) के लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अत: इन समूहों के लोग अपने इन तथाकथित प्रतिनिधियों से यह आशा करते हैं कि वे उनकी समस्याओं पर विशेष ध्यान देंगे और उनकी सहायता करेंगे।
- तीसरी दुनिया के देशों में लोकतंत्र को बहुत सराहा जाता है। परंतु वहां उदार लोकतंत्र (Liberal Democracy) की संस्थाएं विस्तृत रूप से विकसित नहीं हो पाई हैं। केवल भारत में स्वाधीनता के बाद लगातार नियमित रूप से चुनाव होते रहे हैं। अन्य देशों में ये संस्थाएं थोड़े-थोड़े समय तक ही प्रचलित रह पाई हैं। उदाहरण के लिए पाकिस्तान में 1984 के चुनाव जनरल जिया-उल-हक के अधिनायतंत्र की पुष्टि के लिए कराए गए, और 2002 में राष्ट्रपति पद के लिए जनरल परवेज मुशर्रफ की वैधता स्थापित करने के लिए चुनाव कराए गए।
- मैक्सिकों में साधारणत: एक ही दल के शासन को कायम रखने के लिए चुनाव कराए गए हैं, और इनमें बार-बार रिश्वत (Bribery) और बल-प्रयोग (Coercion) का सहारा लिया गया है।
- इन सब त्रुटियों के बावजूद तीसरी दुनिया में चुनाव केंद्रीय सरकार और स्थानीय शासन के बीच संपर्क की कड़ी की भूमिका निभाते हैं।

14.4 शब्दकोश (Keywords)

लालफीताशाही : लालफीते से बंधी फाइलों को धीरे-धीरे आगे सरकाने की प्रवृत्ति।

तटस्थ : गुटबाजी से अलग रहना।

14.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भू-मण्डलीकरण और तुलनात्मक राजनीति के अंत:सम्बंधों पर प्रकाश डालिए।
2. विकसित और विकासशील समाजों में भू-मण्डलीकरण की अनुक्रिया का विश्लेषण कीजिए।
3. विकसित और विकासशील देशों में राजनीतिक सार्वभौमिकरण पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर :- स्व-मूल्यांकन (Answer: Self-Assessment)

(1) राष्ट्र निर्माण और राज्य निर्माण (2) बंधुत्व (3) परंपरागत भावनाएँ
(4) चुनाव (5) आर्थिक संवृद्धि

14.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. *तुलनात्मक शासन एवं राजनीति*–डॉ. बीरकेश्वर प्रसाद सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन (पी. एण्ड डी.) 24, दरियागंज, अंसारी रोड, दिल्ली।
2. *तुलनात्मक राजनीति*–जे.सी. जौहरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि., दिल्ली।
3. *तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ*–सी.बी. गेना, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड, दिल्ली।
4. *तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा*– ओम प्रकाश गाबा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा।

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY
Jalandhar-Delhi G.T. Road (NH-1)
Phagwara, Punjab (India)-144411
For Enquiry: +91-1824-300360
Fax.: +91-1824-506111
Email: odl@lpu.co.in